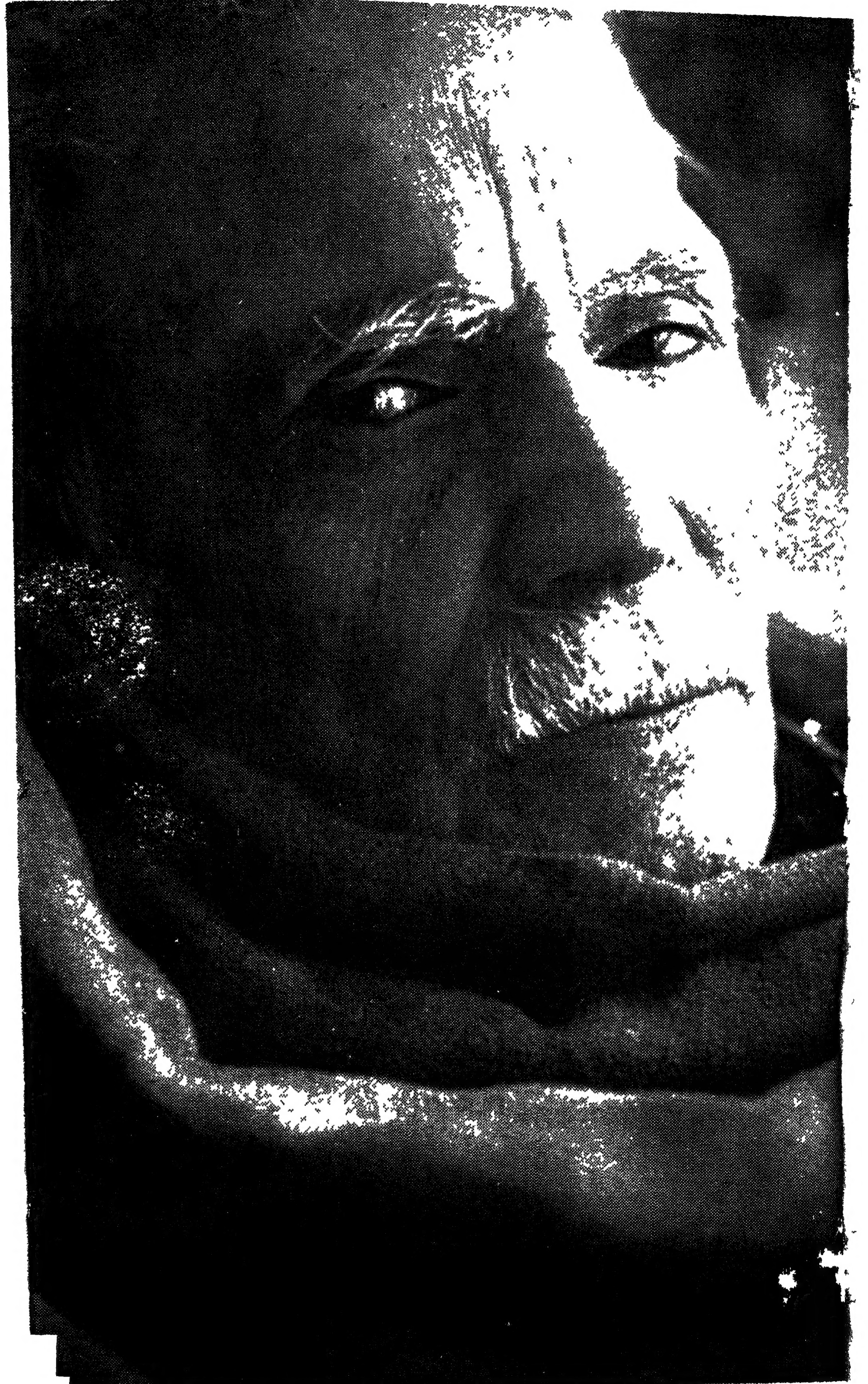
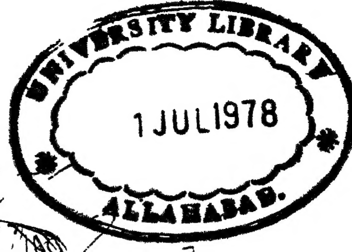


एक भारतीय आत्मा





माखनलाल चतुर्वेदी

यात्रा-पुरुष

सम्पादक: श्रीकान्त जोशी

प्रथम सस्करण, १९६९

० ०

आवरण नारायण

० ०

प्रकाशक

नेशनल पब्लिशिंग हाउस

२/३५, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-६

मुद्रक : रूपक प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

दादा को.

(जो अपने अभिनन्दन-ग्रन्थ के सबसे बडे
विरोधी थे)

उन्हीं की पंक्तियों के साथ—

"हम उल्का पर चढ-चढ तुमको
पाते है गर्जन में,
प्रतिभा मे, पुरुषार्थ-नगर मे
श्रम, साधन, सर्जन में।"

भूमिका का आरम्भ

'माखनलाल चतुर्वेदी यात्रा-पुरुष' इस गूजते हुए नाम के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य के हरावल के अप्रतिम स्रष्टा स्वर्गीय पडित माखनलाल चतुर्वेदी के दुर्दमनीय किन्तु आराधना-विनत, उन्मुक्त किन्तु प्रेमबद्ध, क्रान्तिकारी किन्तु वैष्णव जीवन-दृष्टि से आपूरित, परम्पराओ के गौरव-पक्ष को स्वीकार देने वाले किन्तु रूढियो और जिजीविषा के अवरोधक तत्त्वो को निर्ममता से कुचल देने वाले, मौलिकताओ और प्राथमिकताओ के पुजीभूत, गतिशील, ओजस्विता से ऊर्जित, आश्चर्यजनक प्रभविष्णुता से सजीवित और सम्पूर्ण मानवता तथा मानवीय तेजस्विता के प्रति निष्काम भाव से समर्पित, अविस्मरणीय व्यक्तित्व का और उनके उन्मेषपूर्ण कृतित्व का प्रामाणिक विश्लेषण उपस्थित करने का सभवत प्रथम मौलिक प्रयास किया गया है।

महान् यात्रा-पुरुष

माखनलालजी एक महान् यात्रा-पुरुष थे। जीवन-प्रवाह की बहुमुखी धाराओ के डेल्टे मे उनका सतत् गतिशील जीवन अपनी वेणुमयी एव शखमयी उपस्थिति को आजीवन अभिव्यक्ति देता रहा। उनका ऊर्जस्वित व्यक्तित्व समर्पण के उस बिन्दु तक पहुँच चुका था जो "अपनी प्रकाश-यात्रा मे, ज्योतिर्मय की अभीप्सा मे, दूसरे के पथ को आलोकित करते हुए खुद निछावर हो जाता है।'[१]

उनका सन्तोचित गरिमा से अभिषिक्त व्यक्ति सहसा ही अन्त करण की उस अदम्य ऊर्जा को पहचानने नही देता था जो उनके जीवन की अस्तित्व-शिखा थी। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे, "उनके सौम्य सत रूप को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ था। मेरे मन मे उनके रूप की कल्पना बहुत गर्म स्वभाव के योद्धा की-सी थी, परन्तु वे तो अत्यन्त मृदु स्वभाव के सन्त लगे। वस्तुत जो स्वभाव के सन्त होते है वे ही अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह कर सकते है, यह बात मुझे थोडी देर से समझ मे आयी…" (पृष्ठ ११३)

---

१ डॉ० शिवप्रसाद सिह

उनके यात्राशील व्यक्तित्व को एक साथ ही अनेक व्यक्तियो ने जिस तरह पहचाना है उससे मुझे बहुत परितोष हुआ है। गत कुछ दशको मे हिन्दी समीक्षा और चाहे जो उपलब्ध करती रही हो वह माखनलालजी को कभी भी पूरी तरह उपलब्ध न कर सकी। इस ग्रन्थ मे माखनलालजी को वास्तविक रूप मे उपलब्ध करने के कुछ ईमानदार एव वस्तून्मुखी प्रयत्न किये गये है। प्रारम्भ के ये प्रयत्न और उपलब्धियो के सोपान बनेंगे, इसमे मुझे सदेह नही है।

यात्राशील व्यक्तित्व की एक अन्य सशक्त झॉकी श्री गिरिजाकुमार माथुर ने इन शब्दो मे अकित की है, "जब सत्य की अभिव्यक्ति कठिन थी और इतिहास के मौन को स्वर देना सकटमय था, जब भावना के हरहराते प्रपात बन्दी थे और माध्यम-पथ अवरुद्ध थे तब उन्होने विद्रोह को शब्द दिए, प्रपातो पर जडे हुए पाषाण-खण्ड सरकाये, और जब धारा वेग से बह निकली तो वही उन्होने अपनी उपलब्धि मानी। अन्य उपलब्धियो को अस्वीकार कर दिया। धारा चलती चली गई लेकिन वह धारा के साथ-साथ तट पर चलते रहे—असपृक्त, निर्मोही, रवि ठाकुर की पक्ति की तरह—

जदि तोर डाक शुने केऊ ना आशे
तबे एकला चलो रे।"

निसदेह माखनलालजी का पथ 'एकला' पथ था, उस पर कोई भी तो नही था कि जो चलकर दिखा पाता कि माखनलालजी अकेले नही है, वह भी है, साथ या अनुवर्ती रूप मे या आगे।

श्री वीरेन्द्र मिश्र का तो सम्पूर्ण निबन्ध इसी शीर्षक की व्याख्या है। इस ग्रन्थ मे और भी महत्त्वपूर्ण लेख है जो इस महानायक की गतिशीलता की पहचान व्यक्त करते है।

मैं यहाँ प्रयत्न करना चाहता हूँ कि माखनलालजी की इस गतिशीलता को सृजन की उनकी विशेष भूमि से सयुक्त कर उस दिशा को ओर कुछ सकेत दूं जिस ओर ठीक तरह से चलने पर उनके कृतित्व को समझने की वास्तविक सामर्थ्य के उपलब्ध होने की सम्भावना है।

स्वतत्रता-सघर्ष मे, प्रारभ से भाग लेते रहने के कारण हिन्दी की सघर्ष-भीरु-समीक्षा ने अपने प्रारम्भ के दिनो से ही माखनलालजी से कन्नी काटते रहने मे अपनी खैर समझी। उनका उल्लेख अथवा उनसे परिचय सुरक्षावादी साहित्यिक या समीक्षक के लिए असुरक्षा को जन्म देने वाली बात थी। जिस व्यक्ति का पहला ही लेख[1] ब्रिटिश-शासन को बर्दाश्त न हुआ हो उससे किसी भी प्रकार की आत्मीयता स्थापित करना सुविधाजीवी साहित्यकारो के लिए परेशानी की बात ही थी,

---

१ 'शक्ति पूजा' शीर्षक से सन् १६१२ में लिखा गया लेख।

किन्तु दूसरी तरफ माखनलालजी के बढते हुए प्रभाव और दिन दूनी रात चौगुनी बढती हुई ख्याति को नकारना भी कठिन बात थी। परिणामत माखनलालजी को यह उपदेश दिए जाने लगे कि वे शान्तिनिकेतन (साहित्य) और आनन्द-भवन (राजनीति) मे से किसी एक को चुन ले। इस तरह के परामर्शों के बडे सटीक उत्तर चतुर्वेदीजी देते रहे। सन् १९१७ मे ऐसे ही एक परामर्श के उत्तर मे उन्होने वर्चस्वी पत्रकार श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा था

सखे, बता दे कैसे गाऊँ
अमृत मौत के दाम न हो
जगे एशिया, हिले विश्व
औ' राजनीति का नाम न हो।

स्पष्ट ही उस युग की उनकी राजनीति के अनुपयुक्त एव निष्क्रिय विरोध को वे सम्पूर्ण दृष्टि अथवा सम्पूर्ण सत्य नही मान पाते थे। अपने एक विख्यात भाषण मे उन्होने कहा था, "लोग साहित्य को जीवन से भिन्न मानते है। वे कहते है, साहित्य अपने ही लिए हो। साहित्य का यह धधा नही है कि हमेशा मधुर ध्वनि ही निकाला करे जीवन को हम एक रामायण मान ले। रामायण जीवन के प्रभाव का मनोरम बालकाण्ड ही नही है, किन्तु करुण-रस मे ओतप्रोत अरण्य-काण्ड भी है और धधकती हुई युद्धाग्नि से प्रज्वलित लकाकाण्ड भी है।"

उन दिनो अकसर ही एक प्रश्न उनसे किया जाता था। उपर्युक्त भाषण ही मे उक्त प्रश्न का उल्लेख करते हुए वे कहते है, "मेरे मित्र मुझसे पूछते है कि आपके कवि और राजनीतिज्ञ साथ-ही-साथ जिन्दा कैसे रह लेते है ? मैं कहता हूँ भाई, सध्या होती है, शान्ति का राज्य स्थापित हो जाता है, तब मैं अपनी बाँसुरी ले लेता हूँ और एक तरफ बैठकर सबसे दूर बजाने लगता हूँ। मेरे वेणु-वादन से कोई पागल होवे या न होवे, मै तो हो ही जाता हूँ। जब प्रभात होता है, विश्व के सहारको से मुझे लडने की आज्ञा मिलती है, तब मैं उसी बाँसुरी से रण के नक्कारे पर चोट लगाता हूँ और रणक्षेत्र की तरफ कूच कर लेता हूँ। साहित्य ही जीवन की भित्ति है। उसमे रेलगाडी के डिब्बो की तरह अलग-अलग अगो के लिए स्थान नही है।"[१]

सम्पूर्णतावादी दृष्टि और मूल्यो का प्रश्न

माखनलालजी का साहित्य के प्रति उपर्युक्त सम्पूर्णतावादी दृष्टिकोण आज भी नकारा नही जा सकता (विशेष देखे. 'सम्पूर्ण जीवन के क्रान्तिद्रष्टा रचनाकार' शीर्षक लेख) वे दृढता से मानते थे कि "जीवन तो पूरा ही लेना होता है,

---

१ नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर मे २ दिसम्बर, १९३४ को दिया गया भाषण।

उसकी किस्ते नही होती।' जीवन, साहित्य और समाज की उनकी व्याख्या पराधीनता के उस विकट युग मे बर्दाश्त नही की जा सकी तो आश्चर्य नही होना चाहिए। उस युग की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'सरस्वती' सास्कृतिक पत्रिका बनने का सकल्प व्यक्त करती रहती थी। इस पत्रिका मे माखनलालजी की रचनाएँ सन् १९५५ से पूर्व कभी भी प्रकाशित नही की जा सकी। एक सुरक्षित पत्रिका मे असुरक्षित व्यक्ति कैसे प्रवेश पा सकता था !

माखनलालजी का सम्पूर्णतावादी दृष्टिकोण मूल्यो का प्रश्न भी उपस्थित करता है। आज तो हम मूल्यो की चर्चा करते हुए कभी थकान का अनुभव नही करते, किन्तु माखनलालजी ने आज से लगभग पाँच दशक पूर्व यह प्रश्न उपस्थित किया था कि क्या मनुष्य के सामने कुछ मूल्य ऐसे नही होते कि जो उससे हर दिशा मे बडे होते है और जिन्हे अस्वीकार करना उसके मनुष्य न होने का प्रमाण-पत्र पेश करने के समान होता है।

१० अगस्त, १९५७ को (रक्षाबन्धन के दिन) दादा (चतुर्वेदीजी) बडे मूड मे थे। उनकी मनीषा अकसर उनकी सहजता और प्रसन्नता की मन-स्थितियो मे ही उद्दीप्त होती थी। प्रसगवश मूल्यो की चर्चा चल निकली थी। हम कुछ सामान्य साहित्यकार ही उनके पास थे। उन्होने कहा था, "स्वतन्त्रता के पूर्व स्वतन्त्रता से बढकर और कौन-सा मूल्य हो सकता था ? जो राष्ट्र स्वतन्त्र नही है वह अपनी सस्कृति की चर्चा किस जुबान मे करना चाहता है ? जो राष्ट्र अपना झण्डा नही फहरा सकता वह मानवता का झण्डा उठाकर कहाँ जाना चाहता है ? जो व्यक्ति स्वय बँधा हुआ है उसकी आत्मा मुक्त रहकर या परलोक के गुण गाकर कौन-सी कीर्ति कमाना चाहती है ? जिसे दुनिया के राष्ट्र अपने बराबर सीट पर भी नही बैठाना चाहते, वह सबकी बराबरी का नारा किस दम्भ की प्रदर्शिनी के लिए लगाये जा रहा है ? यह सब न कर वह साफ-साफ क्यो नही कहता कि वह कायर है, डरपोक है, वह सिर झुकाकर कलम उठा सकता है, किन्तु सिर उठाकर झण्डा नही उठा सकता ··" दादा का मुँह तमतमा उठा था, वे एक मिनट चुप रहे और बडे ही धीरे से उन्होने कहा, "हम पढे-लिखे तो थे नही बेटा, पर एक बात थी कि कई बार मुझे यह लगता था कि मै यह हूँ पर मात्र यह नही हूँ। लोग समझे नही, या समझना नही चाहा, यह सब अलग बात है।"

मुझे आज भी महसूस होता है कि स्वतन्त्रता के पूर्व की हिन्दी समीक्षा या तो मूल्यो की वास्तविकता से अपरिचित थी या फिर कुछ भ्रामक मूल्यो मे उलझी हुई थी, अन्यथा माखनलालजी जैसे स्पष्ट और प्रखर व्यक्तित्व को समझने मे कौन-सी बाधाएँ हो सकती थी ? स्वर्गीय आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे मनस्वी समीक्षक भी मूल्यो की इस वास्तविक भूमि को पहचानने मे असमर्थ-से रहे। वाजपेयीजी ने लिखा था, "सैनिक होने से ही कोई साहित्यकार समीक्षक की

सराहना का अधिकारी नही बन सकता, क्योकि सैनिक बनने का पुरस्कार उसे जनता के साधुवाद अथवा व्यवस्था-सभा के सभासद् के रूप मे प्राप्त हो चुका है। साहित्यिक दृष्टि से सैनिक का स्वत कोई महत्त्व नही है।"[1]

मैं भी मानना चाहता हूँ कि साहित्यिक दृष्टि से सैनिक का कोई मूल्य नही है किन्तु साहित्यिक का तो है। सैनिक यदि साहित्यिक है तो उसका साहित्यिक मूल्य क्यो नही है ? और हमे ज्ञात है कि चतुर्वेदीजी तो सैनिक बाद मे हुए थे, उनका वास्तविक व्यक्तित्व तो सभी दिशाओ मे एक उदात्त साहित्यकार का व्यक्तित्व ही था। इस तरह क्या हम पडित नेहरू और विंस्टन चर्चिल जैसे व्यक्तियो का सम्यक् आकलन कभी भी कर पाएँगे ? स्वतन्त्रता के पूर्व के स्वतन्त्रता-सग्राम के सैनिको परतो यह वक्तव्य और भी अधिक असतुलित आक्षेप करता है, क्योकि उस युग का सैनिकत्व महज सैनिकत्व न था। उसके साथ जीवन के ऐसे मूल्य सयुक्त थे जो (माखनलालजी की दृष्टि मे) सम्पूर्ण जीवन के मूल्य ही नही, अपितु जीवन से भी बडे मूल्य थे।

वाजपेयीजी हिन्दी समीक्षा-भवन के मजबूत और महत्त्वपूर्ण स्तम्भो मे भी प्रमुख थे। उनमे स्पष्टवादिता और निर्भीकता का मणि-काचन समन्वय था। यही कारण था कि अपनी मृत्यु से लगभग पाँच वर्ष पूर्व उन्होने मुझसे खडवा मे ही कहा था, "माखनलालजी के प्रति मैं भीतर से बदल गया हूँ।" और (समग्र-समीक्षा खड मे प्रकाशित) अपने विशेष लेख मे (सभवत अपने-आपको सँवारते हुए) उन्होने मुक्त वाणी मे घोषित किया है, "जब तक राजनीति भावनात्मक (मूल्यपरक) थी और साहित्य के समान वृत्तियो की अपेक्षा रखती थी तब तक चतुर्वेदीजी दोनो का पल्ला पकडे रहे, परन्तु जब उन्होने इन दोनो मे खीचतान देखी और यह पाया कि दोनो की सहकारिता या सहचारिता सम्भव नही है, तब वे राजनीति से एकान्तत विरत हो गए। क्रान्ति-द्रष्टा कवि एव चिन्तक श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' ने भी माखनलालजी के इस सदर्भ को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "जब तक स्वतत्रता का सग्राम चलता रहा, माखनलालजी उसकी अगली पक्ति मे खडे होकर जूझते रहे, शरीर से · भावना से जब वह सग्राम समाप्त हुआ, बलिदान की परम्परा पर आप से आप रोक लग गई, किन्तु यह रोक माखनलालजी के बलिदान पर नही लगी। देशभक्ति का वरण माखन-लालजी ने सत्ता के लिए नही, आराध्य के द्वार तक पहुँचने के लिए किया था।" (पृष्ठ १३८)।

निष्कर्ष यह है कि माखनलालजी के सम्पूर्णतावादी एव मूल्यनिष्ठ दृष्टि-कोण को सम्यक् रूप मे ग्रहण करने पर ही उनकी अन्य विशेषताओ को सही

---

१ आधुनिक साहित्य

परिप्रेक्ष्य मे परखा जा सकता है और हम किसी सही निर्णय के निकट पहुँच सकते है।

मूल्यनिष्ठता का किसी साहित्यकार के सदर्भ मे विश्लेषण हमे उक्त साहित्यकार के व्यक्तित्व को स्पर्श करनेकी प्रेरणा देता है। मूल्य अर्थात् व्यक्ति के मूल्य अर्थात् उसका वह दृष्टिकोण जिसे हम पुरानी समीक्षा की भाषा मे विषयीगत दृष्टिकोण कहते रहे है। माखनलालजी का सम्पूर्ण साहित्य विषयगत (उतना और उस तरह) नही है, (जितना और जिस तरह) वह विषयीगत है। यदि वह विषयगत होता तो मैथिलीशरणजी के काव्य की इतिवृत्तमयी पद्धति को अपनाकर ही रुक गया होता, किन्तु स्थिति इसके ठीक विपरीत है। युग-कवि श्री सुमित्रानदन पत के शब्दो मे, "माखनलालजी की रचनाओ मे राष्ट्रीय उद्बोधन के तेजस्वी गीत तथा सगुण भक्तिपरक एव आध्यात्मिक स्वरो की प्रमुखता होने पर भी अभिव्यक्ति, भाव-बोध तथा प्रकृति-स्पर्श की दृष्टि से उनमे रहस्य-भावना, सूक्ष्म अभिव्यजना, प्रकृति का जीवन्त स्पर्श, हृदय का तारुण्य और सौन्दर्य-मूल्यो की स्वीकृति आदि अनेक ऐसे तत्त्व है कि उनके काव्य को छायावादी काव्य से उस तरह पृथक् नही रखा जा सकता जिस तरह हम श्रीधर पाठक, गुप्तजी या हरिऔधजी के काव्य को रख सकते है और कुछ लोग उन्हे छायावाद का प्रवर्तक मानते है तो यह उपर्युक्त धारणा को ही पुष्ट करता है।"[१]

छायावाद के पुरस्कर्ता प्रथम कवि

आज इस विषय पर अनेक गण्यमान्य समीक्षक और काव्य-स्रष्टा समवेत स्वीकृति देने लगे है कि हिन्दी काव्य के अभिनव समृद्धि-युग 'छायावाद' के पुरस्कर्ता पडित माखनलाल चतुर्वेदी ही थे, यह दूसरी बात है कि छायावाद को जन्म देकर भी छायावाद की परिधि को उन्होने अपनी परिधि नही माना।

कविवर रामधारीसिह 'दिनकर' के शब्दो मे, "छायावाद हिन्दी मे उद्दाम वैयक्तिकता का पहला विस्फोट था   छायावाद की दुर्दशा पराकाष्ठा को पहुँच गई होती यदि उसमे पतजी, निरालाजी, प्रसादजी, माखनलालजी और नवीन नही हुए होते   माखनलालजी इन कवियो के बहुत पहले से मैदान मे थे और छायावाद की छाया शायद सबसे पहले उन्ही पर पडी थी। वह और प्रसाद प्राय समकालीन थे, किन्तु सन् १६१२-१३ की लिखी हुई कविताओ को देखने से ज्ञात होता है कि आगे चलकर उदय होनेवाली किरण की झाईं जैसी माखनलालजी की रचनाओ मे स्पष्ट होकर पड रही थी, वैसी प्रसादजी की रचनाओ मे नही।"[२]

---

१ छायावाद पुनर्मूल्यांकन, पृ० १०७
२ 'मिट्टी की ओर'।

छायावाद सम्बन्धी माखनलालजी की वर्चस्विता को मान्यता देनेवाले कुछ अन्य मत इस प्रकार है

" १९१३ के लगभग छायावादी प्रवृत्ति का आरम्भ (माखनलालजी की 'मेरा उपास्य' कविता से) माना जा सकता है। उन्हे हम हिन्दी का प्रथम अभि-व्यजनावादी कवि कह सकते है। मुझे ज्ञात नही कि इस काल की किसी भी खडी-बोली हिन्दी रचना मे अभिव्यजना की यह सफाई हो, इस काल की प्रसाद की रचनाओ मे भाषा की स्वच्छता और अभिव्यक्ति की आधुनिकता नही आ पायी थी छायावादी काव्य का जो वैशिष्ट्य है वह अपने पूर्ण विकास के साथ उनकी शैली मे व्यजित है।"[१]

—डॉ० विनयमोहन शर्मा

"छायावाद को अन्त प्रकाश देने वाले कवियो मे माखनलालजी दीपस्तभ की भाँति रहे है, यद्यपि खडीबोली मे छायावाद का श्रीगणेश करने का श्रेय प्रसादजी को है। जिस प्रकार गुप्तजी उपाध्यायजी के 'प्रिय प्रवास' के लिए पूर्व-पृष्ठ बने, उसी प्रकार माखनलाल प्रसाद की कविताओ के लिए प्रसाद और माखनलाल के बाद छायावाद के जो सीनियर कवि आते है वे है निराला और पन्त।"[२]

—स्व० शान्तिप्रिय द्विवेदी

" मेरे मत से छायावाद के पहले कवि पडित माखनलाल चतुर्वेदी है। उनकी रचनाएँ बहुत काल तक प्रकाश मे नही आयी, उनके सकोची स्वभाव के कारण। प्रसाद, पन्तादि की रचनाएँ बहुत बाद की है।"[३]

— डॉ० प्रभाकर माचवे[३]

इन सकलित मतो के अतिरिक्त इसी ग्रथ मे सर्वश्री आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० शिवप्रसादसिंह, डॉ० कमलाकात पाठक तथा डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित आदि विश्रुत समीक्षको ने माखनलालजी के हिन्दी की छायावादी कविता एव छायावादी गद्य को दिये गए विशिष्ट योगदान की प्रभावपूर्ण चर्चा की है। इस दिशा मे अभी बहुत काम शेष है। प्रस्तुत ग्रन्थ भविष्य मे किये जाने वाले कार्यो के लिए भूमिका का निर्माण करने मे ही अपनी सार्थकता स्वीकार करता है। माखनलालजी के काव्य-अध्ययन की दिशा मे (मूल्य दृष्टि से आगे बढने पर) हम छायावाद के परिवेश मे उनके प्रदेय का निष्पक्ष आकलन कर सकते है।

---

१ 'युगारम्भ' का माखनलाल अक तथा 'अवन्तिका' (जनवरी, १९५४)
२ 'राष्ट्रीय ही नही, प्रेममय जीवन के कवि' लेख से
३ 'अवन्तिका' (जनवरी, १९५४)

अप्रतिम मौलिकता : अतिक्रमणशील कृतित्व

मै कह चुका हूँ कि छायावाद उनका प्रारम्भ मात्र ही है, परिधि नही है। परिधिबद्ध होकर रहना माखनलालजी के स्वभाव के अनुकूल कभी नही रहा। मर्यादा का उनके लिए अप्रतिम महत्त्व था, किन्तु कोई भी मर्यादा उनकी परिधि नही बन सकी। यह परिधिविहीनता अथवा अतिक्रमणशीलता माखनलालजी की मौलिक जीवन-दृष्टि का बडा ही सशक्त परिचय देती है। उनका व्यक्तित्व मौलिकताओ का एक दुर्लभ सपुजन उपस्थित करनेवाला व्यक्तित्व था। उदाहरणार्थ सभी को विदित है कि वे परमवैष्णव थे। वैष्णव की चरम समर्पणशीलता उन्हे सदा ही अभिभूत किये रहती थी, किन्तु इसके साथ ही वैष्णवत्व की परम्परागत धारणा को उन्होने क्रान्तिकारी आधुनिकता मे परिणत कर लिया था। अपने महत्त्वपूर्ण लेख 'एक भारतीय आत्मा का केन्द्रीय स्वर क्रातिमुखी वैष्णवता' मे नयी कविता के चिन्तक कवि डॉ० जगदीश गुप्त ने इसी पक्ष का विवेचन करते हुए कहा है—

" आधुनिक युग की जिज्ञासा अभेद को वही तक स्वीकार कर पाती है जहाँ तक व्यक्तित्व का आत्यन्तिक विलयन न हो, क्योकि पहले मूल्य का आधार वह था जिसमे विलयन काव्य माना जाता था पर अब मूल्यबोध उसमे केन्द्रित हो गया है जिसकी निजी स्थिति ही ऐसी है कि सर्वथा विलीन होने पर अपना अर्थ खो देती है—

जैहै बनि-बिगरि न बारिधिता बारिधि की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की।"

विशिष्ट व्यक्तित्व की यह कामना मध्यकाल की वैष्णव भक्ति मे चरम रसात्मकता के साथ निरूपित की जा चुकी है। यह विचित्र सत्य है, किन्तु विवशता और बेचारगी साथ लगी रही। व्यक्तित्व की अवधारणा बेबसी और बेचारेपन से मुक्त होकर मानव के गौरव और स्वाभिमान के रूप मे, सारी विषमता के बावजूद, अपने को स्थापित करना चाहती है। यह वर्तमान-युग का एक प्रखर सत्य है। इस स्थिति तक पहुँचने मे जो लम्बी यात्रा तय की गयी है और जिनके द्वारा की गयी है, उनमे माखनलाल चतुर्वेदी का अनेकमुखी कृतित्व अविस्मरणीय कहा जायेगा। उनमे 'पुनरुत्थान का भाव न होकर नये के प्रति एक आवेग, एक उन्मेष और ऐसी ललक भी दिखाई देती है, जो त्याग एव बलिदान की भाषा मे क्रान्ति की भूमिका प्रस्तुत करती है।"[1] (पृष्ठ २०१-०२)

१. ३० जनवरी, १९६९ को (चतुर्वेदीजी की प्रथम पुण्यतिथि पर) खण्डवा के लायस क्लब द्वारा आयोजित समारोह में डॉ० गजानन शर्मा ने माखनलालजी की वैष्णव जीवन-दृष्टि के मौलिक पक्ष का विवेचन करते हुए कहा था—"माखनलालजी की महानता यह है कि उन्होंने परम्परागत वैष्णव-प्रेम को नया आयाम दिया। उनका प्रणय-स्वर सूर और मीरा से भिन्न

उदात्त राष्ट्रवाद · मानवीय गौरव में चरम आस्था

मानव के गौरव और मानवीय आस्था मे माखनलालजी का चरम विश्वास था। उनके काव्य-जीवन के प्रथम चरण मे भी (प्रारभिक राष्ट्रीय कविताओ मे भी) मानवतावाद की अन्तरव्यापिनी धारा अपनी उन्मुक्त, निश्छल और वादरहित स्थिति मे उपलब्ध होती है। यह आश्चर्य की ही बात है कि उनकी एक भी कविता सकुचित राष्ट्रवाद को अभिव्यक्ति नही देती। राष्ट्रवाद की उनकी उदात्त सर्वमगलकारिणी भूमि स्वत ही अनूठी और अभूतपूर्व है, और इस तरह राष्ट्रीय-सास्कृतिक काव्य की अभिव्यक्ति मे भी उनका मौलिक अवदान छुप नही पाता। एक मनोमुग्धकारी रहस्यमयता से अनुप्राणित होने के कारण वह एक ओर समर्पण के आदर्श को व्यक्त करता है तो दूसरी ओर आत्मार्पण के सौन्दर्य को। हिन्दी समीक्षा के लिए ये सभी बिन्दु अभी तक अप्राप्य रहे है। इस ग्रन्थ मे स्व० आचार्य वाजपेयी, स्व० डॉ० सुधीन्द्र, डॉ० शिवप्रसादसिंह, डॉ० रामाधार शर्मा और डॉ० कमलाकान्त पाठक के लेखो मे इस अप्राप्य को प्राप्त करने के सफल प्रयत्न किये गये है। वाजपेयीजी के शब्दो मे "(माखनलालजी के काव्य-विकास का) द्वितीय चरण राष्ट्रीय उन्नयन और आत्मोन्नयन की सम्मिलित भूमियो पर सस्थित है। राष्ट्रीयता और रहस्यवाद एक बडी ही सुन्दर और रगीन रेशमी डोर से बँधे हुए है। इस काल मे जहाँ एक ओर राष्ट्रीयता केवल आत्म-विर्सजन तक सीमित नही रह गई, वही दूसरी ओर रहस्यवाद किसी वैयक्तिक परिवेश मे घिरा न रहकर सार्वजनिक काव्य का विषय बन गया है।"

माखनलालजी के काव्य की मौलिक विशेषताएँ अगणित है। ओज और माधुर्य परस्पर-विरोधी गुण है पर उन्होने प्राय सर्वत्र ही इन दोनो के विरोध को सुन्दर समन्वयात्मक उपस्थिति प्रदान करने मे दुर्लभ सफलता प्राप्त की है।

अभिव्यक्ति का क्षेत्र प्रतीक विधान

इस प्रकार छायावाद के प्रतीक विधान के समकक्ष ही माखनलालजी ने अपने स्वतन्त्र, ओजस्वी और जन-मानस को मथ सकने की क्षमता के परिचायक प्रतीक-जगत् की स्थापना की है। इस ग्रन्थ मे डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी ने इसी विषय की सफल चर्चा की है।

है। वह एक ऐसा स्वर है जो एक ओर तो लोकबद्ध है, दूसरी ओर आकाश की तरह मुक्त भी है।" 'वेणु लो गूँजे धरा' की भूमिका में उन्होने अपनी इस दृष्टि को स्पष्ट करते हुए लिखा है, "मेरे निकट तो श्यामसुन्दर मीठा, आकर्षणशील परम सत्य है। जब वायु जोर से चलती है, मुझे लगता है, उसने वेणु ले ली है और जब अधड़ का सन्नाटा सुनने लगता हूँ तो लगता है धरा गूँजने लगी है।" यह धरा गुँजाने वाला स्वर माखनलालजी की अपनी मौलिकता है।

अभिव्यक्ति के क्षेत्र मे माखनलालजी की मौलिकता अपनी अपरिसीम शक्तियो का उन्मुक्त परिचय देती हुई और भी अधिक भास्वर है। क्या गद्य और क्या पद्य, दोनो ही मार्ग उनकी आभा मे अद्वितीय दीप्ति से सयुक्त है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के सतुलित शब्दो मे, "उनकी अभिव्यजना शैली आज भी उनकी अपनी ही है। वे ही उसके स्रष्टा, विधायक और पुरस्कर्ता है इतनी अधिक रूपकात्मकता और भाषा-प्रयोगो का बाहुल्य आधुनिक हिन्दी के किसी अन्य कवि मे नही मिलता "

काव्य ही नही, गद्य के क्षेत्र मे भी माखनलालजी का शैलीकार अपने स्वतत्र प्रतिमान उपस्थित करता है। माखनलालजी उन दुर्लभ साहित्य-चिन्तको मे से थे जो सपूर्ण भाषा मे चिन्तन करते है। देखा गया है कि बडे-बडे साहित्यकारो की भी सोचने, बोलने और लिखने की भाषा मे बहुत बडा अन्तर होता है। वे टुकडो मे सोचते है, अनसँवरे हुए-से बोलते है और चरम सावधानी से लिखते है। माखनलालजी की मनीषा ने इन भेदो को लगभग पाट लिया था। वे सम्पूर्ण भाषा मे सोचने, बोलने और लिखने की असामान्य प्रतिभा से युक्त थे। यह प्रतिभा केवल उन व्यक्तियो को प्राप्त होती है जो कला की मूल व्यक्ति-भूमि को दृढता से ग्रहण किये रहते है, किन्तु साथ ही समाज और जीवन की जीवत चेतनाओ को आत्मसात् करने की सूक्ष्म 'अणु-शक्ति' का भी जिनमे अभाव नही हो पाता। माखनलालजी की भाषा मे एक साथ ही परिष्कृति और अनगढपन की जो दुहरी अनुभूति कुछ समीक्षको को होती रही है उसका कारण उनकी यही विशेषता है। उनकी भाषा उनके सघर्षपूर्ण जीवन की अनुकृति कही जा सकती है, कथ्य मे उनकी गरिमा और अभिव्यक्ति मे उनके उतार-चढाव की महिमा को व्यक्त करने वाली।

राष्ट्रीय स्वतत्रता सग्राम के, मध्यप्रदेश के अन्यतम सेनानी, स्वतत्र-चेता माखनलालजी का जीवन भयानक यातनाओ और विकराल अर्थ-सकट का जीवन रहा है। आनेवाला हर सकट (आजीवन) उन्हे बडे से और बडा बनाता चला गया। उनकी सहानुभूति के विशाल से विशालतर और उनकी अभिव्यक्ति के सहज से सहजतर होते रहने की प्रक्रिया उनके सघर्षोन्मत्त जीवन की ही प्रक्रिया है।

मौलिकता का स्रोत जिजीविषा

जीवन से चतुर्वेदीजी का चरम लगाव था। अन्तिम साँस तक वे जीवन की सार्थकता मे दिव्य आह्लाद का अनुभव करते रहे। सुख की सुखहीनता और दु.ख की दुखहीनता मे उनका प्रगाढ विश्वास था। यह विश्वास उन्हे और भी मुक्त कर देता, यह विश्वास उन्हे और भी गति प्रदान करता और यही विश्वास उनके चिर-तारुण्य को अक्षुण्ण बनाये रखता। उनकी विराट् मौलिकता उनकी अक्षय जिजीविषा और चरम आकर्षणशीलता की ही उपलब्धि थी—

जीवन, यह मौलिक महमानी !
खट्टा, मीठा, कटुक कसैला
कितने रस, कैसी गुण-खानी
हर अनुभूति अतृप्ति-दान मे
बन जाती है आँधी-पानी
कितना दे देते हो दानी ?

अथवा

कितना, लो, कितना देखोगे ?
चाख-चाख, नव-नवल, विश्व-रस
लोगे और, और फिर लोगे !
तुम्हे ऊब आ गई जगत् से
साथी को तुमने क्या माना
तुमने उसका स्वाद न परखा
तुमने यह वरदान न जाना
इतना मौलिक, कितना भोगे ?
कितना, लो, कितना देखोगे ?[१]

स्पष्ट है कि जीवन खट्टा हो या मीठा, गुण की खान हो या अतृप्ति-दान का माध्यम, शाप हो या अभिशाप, माखनलालजी के लिए वह स्वादपूर्ण ही था, वरदानमय ही था, वह कभी न उबाने वाला ऐसा तत्त्व था, जिसमे से उन्हे चिरन्तन रस (आनन्द) और अभिनव मौलिकता की प्राप्ति होती रहती थी। मुझे आश्चर्य है कि जीवन को वाद बनाने वाली एक पश्चिमी धारा के समीक्षक उन्हे पहचानने मे असमर्थ क्यो रहे ?

माखनलालजी की गद्य-शैली की चर्चा करते हुए डा० शिवप्रसादसिंह ने ठीक ही लिखा है कि ("माखनलालजी की) शैली मे स्पन्दन, जिन्दादिली और उष्णता है। यह आज के नये से नये लेखक के लिए ईर्ष्या की वस्तु हो सकती है। पर सच-मुच के अनुकरण करनेवालो से कहूँगा कि बडा खतरनाक है यह पथ, क्योकि इस पर उन-जैसा बलिपथी ही चल सका।" (पृष्ठ २६८)

शलाका पुरुष का वक्तव्य

हिन्दी की नई कविता के शलाका-पुरुष श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने विचारोत्तेजक निबन्ध मे चतुर्वेदीजी की भाषा पर नितान्त मौलिक किंतु

१, 'वेणु लो गूँजे धरा' (पृ० ३८-३९-४०)

वास्तविक दृष्टि से विचार किया है। उन्होने लिखा है, "(चतुर्वेदीजी की) भाषा मै अब न लिखूँ, पर उसका मैं सम्मान करता हूँ वह भाषा को एक जीवन्त, प्रवहमान और सतत परिवर्तनशील साधन के रूप मे ही बरतते आये—ऐसे साधन के, जिसके बदलते रहने को उन्होने स्वीकार भी किया और साथ ही प्रेरित भी। इसीलिए उनकी भाषा अनगढ रही, अस्थिर रही, ठेठ शब्दो को भी उतनी ही सहजता से अपनाती रही जितनी से सस्कारी शब्दो को, जो चाहे सस्कृत के हो चाहे फारसी के, पर इस सब के साथ सहज रही, कृत्रिम कभी नही हुई, हिन्दी ही रही, यद्यपि बनती हुई हिन्दी · " (पृष्ठ ४८०)

अज्ञेयजी ने माखनलालजी के भारतीय आत्मा से तादात्म्य के पक्ष को उकेरते हुए आगे कहा है —"(चतुर्वेदीजी की भाषा मे) मॅजाव की कमी रही तो उसी अर्थ मे और उसी हद तक जिसमे और जिस सीमा तक हिन्दी समाज मे मँजाव की कमी है एक भारतीय आत्मा भारतीय ही है और रही है " (पृष्ठ ४८१)

अज्ञेयजी का उपर्युक्त वक्तव्य अपने परिवेश के प्रति जागरूक और समर्पित, माखनलालजी के गतिशील व्यक्तित्व की ओर भी सकेत कर रहा है। व्यक्तित्व की यह दीप्ति ही वह महत्त्वपूर्ण कारण थी कि जिसके कारण हिन्दी के प्रेरणाशील व्यक्तित्व डॉ० शिवमगलसिंह 'सुमन' ने लिखा है, "(उनकी) कविता प्रयत्न-साध्य कभी नही रही, (उनके) स्वरो मे कवि-धर्म और जीवन-धर्म का समाहार हो गया था।"[१] (पृष्ठ ५)।

समय से आगे

जीवन, जिजीविषा और अविभाजित समय को ग्रहण करते रहने की पुरजोर क्षमता ही माखनलालजी के चिर-तारुण्य का रहस्योद्घाटन करती है। यह तारुण्य उन्हें सदा ही 'समय से आगे' रखता रहा। उनके व्यक्तित्व के इस पहलू पर इस ग्रन्थ मे अनेक लेखको ने अपने विचार व्यक्त किये है। मै हिन्दी समीक्षा के भीष्म श्रद्धेय श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के लेख से एक उद्धरण मात्र सकेत रूप मे दे रहा हूँ। उन्होने लिखा है, "···१६१२ से जब मैं अपनी एक कविता लेकर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे प्रविष्ट हुआ, तब से लेकर आज तक जिस एक कवि की रचना-दीप्ति को काल की गति लुप्त न कर सकी वह माखनलाल चतुर्वेदी ही है। चतुर्वेदीजी क्या द्विवेदी युग के कवि है, क्या वे छायावाद या रहस्यवाद-युग के कवि है, क्या वे वर्तमान प्रगतिवाद के कवि है, यह कहना सचमुच कठिन है। जब

---

१. द्रष्टव्य —श्री सुमित्रानंदन पत का यह वाक्य कि (माखनलालजी) जैसा सहज कवि इस युग में दूसरा न हुआ। (२० दिसम्बर, १६६५ का पत्र)

मध्यप्रान्त की काव्यधारा की विवेचना करने के लिए नक्षत्र' (सन् १९४४) का प्रकाशन हुआ तब ठाकुर लक्ष्मणसिंह और मगलप्रसाद विश्वकर्मा (ये दोनो चतुर्वेदीजी से छोटे थे) सधिकालीन धारा मे रखे गये और उनके बाद चतुर्वेदीजी को नवीन धारा मे रखा गया। इसमे सदेह नही कि यदि फिर ऐसा सग्रह किया जाए तो नवयुवक कवियो की रचनाओ मे चतुर्वेदीजी की रचनाएँ अग्रगण्य हो जाएँ। यह सच है कि नवीन कविता की जो शैली प्रवर्तित हो रही है उसके कारण वर्तमान युग के कितने ही कवि निष्प्रभ हो चुके है परन्तु चतुर्वेदीजी की रचनाओ के प्रति अभी तक (१९६६) लोगो का उतना ही आग्रह है जितना पहले था।" सभवत यही कारण है कि अपने एक निजी पत्र मे डॉ० रमेशकुन्तल मेघ ने मुझे लिखा था, "निराला और माखनलाल ये दो भविष्य के कवि है।"

केन्द्रीय ज्योति

माखनलालजी का कृतित्व (विशेषकर उनका काव्य और उनके निबन्ध) उनके व्यक्तित्व के विविध आयामो के मध्य केन्द्रीय ज्योति से युक्त है। अच्छे समीक्षक भी जब उनके व्यक्तित्व की चर्चा करते समय उनके महान् वक्ता होने अथवा नई पीढी का प्रथ-प्रदर्शक-निर्माता होने की उनकी विशेषताओ को उनके कृतित्व की तुलना मे उपस्थित करते है तो भावुकतामयी असावधान भाषा का प्रयोग कर देते है। निश्चय ही वे असामान्य वक्ता थे, महान् पत्रकार थे, नई पीढी के बेमिसाल मार्ग-द्रष्टा थे, क्रान्तिकारी योद्धा थे और पत्र-लेखन मे अद्वितीय थे। इसमे कही भी सदेह करने के लिए अवकाश नही है, किन्तु उनकी इन समस्त विशेषताओ को उनके कृतित्व-सूर्य की परिक्रमा करने वाले उपग्रहो के रूप मे ही स्वीकार किया जा सकता है। ये कभी भी मूल ग्रह का स्थान नही ले सकती। इतनी विविध दिशाओ मे उन्हे जो अभूतपूर्व सफलताएँ प्राप्त हुई है उसका एक-मात्र कारण यही है कि अपने कृतित्व के धरातल पर वे सबसे बढकर थे और उनके युग की कोई भी प्रतिभा, कोई भी शक्ति, उनकी प्रशस्ति, सम्मान-भावना और स्वीकृति को उन्मुक्त रूप से प्राप्त कर सकने पर भी इतनी बडी नही हुई कि उनमे किसी प्रकार की हीन-चेतना उत्पन्न कर पाती।

न उनमे हीन-चेतना थी, न अहमन्यता। बेशक स्वाभिमान उनमे कूट-कूटकर भरा था। न उन्होने किसी को अपने से छोटा समझा और न ही किसी तथाकथित बडे के आतक ने उन पर कोई प्रभाव ही अकित किया। किन्तु उनका शील अक्षुण्ण था।

नयी पीढी का स्वच्छ स्नेह

जहाँ स्वच्छ स्नेह था वहा वे शुद्ध समर्पण थे। नई पीढी से उन्हे सदा ही

स्वच्छ स्नेह की ही प्राप्ति होती रही। कभी आदान की अपेक्षा न करने वाले उनके निश्छल मन के सम्मुख नयी से नयी प्रतिभा को उन्मुक्त किन्तु स्वत ही विनत भी रहना पडता। वह कभा उद्दण्ड भी होती तो उसकी उद्दण्डता को निकट भविष्य की अधिकाधिक विनतता की भूमिका ही बनना होता था। अज्ञेय जी ने बिलकुल ठीक लिखा है कि "अपनी रचना से बाहर या परे ऐसा प्रभाव भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का भी रहा और स्वर्गीय महावीरप्रसाद द्विवेदी का भी· · (किन्तु) 'एक भारतीय आत्मा' इस दृष्टि से भी अद्वितीय है। माखनलालजी ने स्नेह और वात्सल्य के अमृत से सीचकर ही नयी पौध को बढाया और फूलने-फलने का अवसर दिया। युवतर प्रतिभाएँ बराबर न होकर भी कभी उनके निकट छोटी नही हुई, स्नेह का सम्बन्ध एक साथ ही दोनो भावो का निर्वाह करता रहा।" (पृष्ठ ४८१)

सक्षेप मे (किन्तु निश्चय ही अपने अधूरेपन के साथ ही) माखनलालजी के कृतित्व और व्यक्तित्व को समझने मे इस भूमिका मे सकेतित् विचार-सूत्र पर्याप्त सहायता दे सकते है। कुछ अति-परिचित सूत्रो की चर्चा मैने जान-बूझकर नही की है। भावी हिन्दी समीक्षा को माखनलालजी का वास्तविक मूल्याकन करने का महान् कार्य क्षतिपूर्ति सहित करना होगा। जहाँ तक प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्बन्ध है यह भविष्य की शोधो के लिए एक प्रेरणा-पुष्प की भाँति ही है। इधर कुछ विश्वविद्यालयो मे उन पर शोध-कार्य हो रहा है। एक-आध शोध-ग्रन्थ प्रकाशित भी हुए है किन्तु दुर्भाग्यवश कुछ अपवादो को छोडकर ये ग्रथ शोध-वृत्तिहीन और भ्रामक ही है। इनमे महज बटोरन है, बुद्धिहीन बटोरन। एक कार्य जो स्वर्गीय आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के निर्देशन मे हुआ था उससे स्वय वाजपेयीजी बहुत ही असन्तुष्ट थे। मुझे आशा है, वास्तविक कार्य का समय अब आ रहा है।

मैं, अपना वक्तव्य समाप्त करने से पूर्व, डॉ० शिवप्रसादसिंह के शब्दो को उद्धत करना ही श्रेयस्कर समझता हूँ। अपने लेख के समापन मे उन्होने लिखा है, "इस· विवरण को माखनलालजी के भावलोक का सरसरी रेखाचित्र ही समझना चाहिए। माखनलालजी का कृतित्व काफी विस्तृत और गहरे विश्लेषण की अपेक्षा रखता है। कई दृष्टियो से यह भावलोक सामान्य छायावादी लेखको से भिन्न रहा है। उनके भीतर युग-चेतना अविकृत ढग से अपना प्रभाव छोड गयी है। माखनलालजी के कृतित्व को सही ढग से समझने का अर्थ है, अपनी पुरानी पीढी के अवदान को उसके सही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे समझना और मुझे विश्वास है कि (यह ग्रन्थ) इस दिशा मे प्रयत्नशील अनुसधित्सुजनो के लिए· (अनवरत) प्रेरणा का कार्य अवश्य करेगा।" (पृष्ठ २६६)

प्रस्तुत ग्रन्थ

'माखनलाल चतुर्वेदी यात्रा पुरुष' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित होने वाला प्रस्तुत ग्रन्थ मूलत· एक अभिनदन ग्रथ के रूप मे प्रकाशित होनेवाला था। मै सन् १९६५ से सन् १९६९ तक इस ग्रन्थ पर अनवरत रूप से कार्य करता रहा हूँ। और इस तरह जिस सामग्री का सचयन मैंने किया है (और कर रहा हूँ) उसका एक महत्त्वपूर्ण किन्तु अपने आप मे सम्पूर्ण अग ही इस ग्रथ के रूप मे उपस्थित किया जा सका है।

मुझे प्रसन्नता है कि पूज्य दादा अपने निधन से पूर्व इस ग्रथ को एकाधिक बार सुन चुके थे। उनके उदात्त परामर्शों का मैने पूरा लाभ उठाया है।

माखनलालजी के 'सम्पूर्ण' तक पहुँचने के लिए एक ओर उनके अनेक अप्रकाशित ग्रथो के प्रकाशन की आवश्यकता है तो दूसरी ओर यह और भी आवश्यक है कि नयी शोधो के आधार पर इस तरह के सम्पादित और स्वरचित ग्रन्थ भविष्य मे भी लिखे जाते रहे।

मेरी नम्र धारणा है, प्रस्तुत ग्रथ अपनी मौलिक विशिष्ट सामग्री के लिए तो महत्त्वपूर्ण है ही, वह इसलिए भी उल्लेखनीय है कि इस निस्पृह युगस्रष्टा के मूल्याकन और व्यक्तित्व-विश्लेषण की दिशा मे यह पहला प्रामाणिक प्रयास है।

माखनलालजी के अद्वितीय व्यक्तित्व का ही यह प्रताप है कि इस ग्रथ-निर्माण मे हिन्दी जगत् की सभी पीढियो, सभी वर्गो और सभी वादो की वरेण्य प्रतिभाओ ने हिस्सा बटाया है। यह ग्रथ भली-भाति सिद्ध करता है कि हिन्दी जगत् मे (और हिन्दी जगत् के बाहर भी) वे कितने सर्वमान्य थे, प्रणम्य थे और उनके प्रदेय के प्रति कितनी अस्खलित श्रद्धा उनके समकालीनो से लेकर अतिआधुनिको तक मे विद्यमान थी। मैं इस ग्रन्थ के प्रत्येक लेखक के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

स्मरण-नमन

इस ग्रथ की पृष्ठभूमि मे जो सबसे बडी दीप्तिमयी प्रेरणा रही है उसका नाम डॉ० शिवमगलसिंह 'सुमन' है। वे मेरे प्रणम्य है। मैं इस अवसर पर उनका सादर स्मरण करता हूँ।

स्वर्गीय आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', प्रभाकर माचवे और डॉ० जगदीश गुप्त ने अपने उत्प्रेरक पत्रो से और रचनात्मक सहयोग से मेरे हौमले को कभी भी नत नही होने दिया, अत· मै इनके सम्मुख विनत हूँ। एक विशेष स्नेह-प्रसगवश मै श्री गोपीकृष्ण 'गोपेश' को भी विस्मृत

नही कर सकता । श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने अस्वस्थता के बावजूद मेरी सक्रियता को स्नेह और समर्थन प्रदान किया अत मै उनके प्रति भी आभार-नमन व्यक्त करता हूँ ।

ग्रन्थ मे कुछ दुर्लभ चित्र भी सम्मिलित किये गये है जिनके लिए अन्य छाया-चित्रकारो के अतिरिक्त मैं सर्वश्री पन्नालाल त्रिपाठी और वामन ठाकरे के प्रति विशेष रूप से आभारी हूँ

मै मध्यप्रदेश के वर्तमान शिक्षामत्री माननीय श्री जगदीशनारायण अवस्थी, सूचना एव प्रकाशन के राज्यमत्री भाई श्री बालकवि वैरागीतथा महाविद्यालयीन शिक्षा के सभी अधिकारियो के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होने श्रद्धेय चतुर्वेदीजी के सन्दर्भ मे मेरे द्वारा सम्पन्न होनेवाले समस्त सम्पादन, सचयन एव लेखन कार्यों के लिए अपेक्षित स्थिरता प्रदान करने मे अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया है। मुझे आशा है भविष्य मे भी मुझे यह अनिवार्य सहयोग अनवरत रूप से प्राप्त होता रहेगा ।

मध्यप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमत्री तथा प० माखनलाल चतुर्वेदी के अभिन्न सहयोगी आदरणीय भगवन्तरावजी मण्डलोई का आशीर्वाद और सहयोग मेरे लिए सदा ही प्रेरणास्पद रहा है। उनकी आत्मीयता वरेण्य है।

मेरे निजी परिवेश मे जो व्यक्ति बहुत महत्त्वपूर्ण रहे है, उनमे डॉ० रामाधार शर्मा का नाम सर्वोपरि है। उनके अतिरिक्त डॉ० श्रीनारायण अग्निहोत्री हैं। मै इनका अपनी समस्त आत्मीयता के साथ स्मरण करता हूँ ।

मै अपने निजी परिवार के सदस्यो का भी स्मरण करना चाहता हूँ। मेरे द्वारा दिये जाने वाले कष्टो और आये दिन उत्पन्न होने वाली असुविधाओ को कठिनतम अर्थसकट के मध्य भी जिस तरह इन सबो ने सहा है वह शब्दो मे व्यक्त नही किया जा सकता है ।

कर्मवीर प्रेस के सचालक श्रीयुत बृजभूषण चतुर्वेदी का भी उनके द्वारा किये गये सभी कार्यो के लिए मैं स्मरण करता हूँ। श्रद्धेय दादा का गौरव, भविष्य मे, पारिवारिक धरातलो पर, उन्ही के हाथो मे सुरक्षित है, ऐसा मै मानना चाहता हूँ। स्मरण के ये पवित्र क्षण मेरे सम्पूर्ण आभार-क्षण है ।

और अन्त में

और अन्त मे मैं स्मरण करता हूँ भाई सुरेन्द्र मलिक का। ग्रन्थो के प्रकाशन के लिए लोग प्रकाशको को ढूँढते फिरते है, किन्तु ४ अगस्त, १९६८ की एक सुख मध्याह्न मे वे स्वय ही मेरे निवास पर खण्डवा पधारे। थोडी ही देर मे उनकी आत्मीयता ने मुझे अभिभूत कर लिया। वर्तमान ग्रथ को जिस अभिरुचि औ कलात्मकता के साथ उन्होने सँवारा है वह एक ओर उनके वर्चस्वी प्रकाश

व्यक्तित्व को व्यक्त करती है तो दूसरी ओर स्वर्गीय पडित माखनलाल चतुर्वेदी के प्रति उनमे अर्तानिहित श्रद्धा को। मै उनके प्रति तथा नेशनल पब्लिशिग हाउस के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूं।[१]

—श्रीकान्त जोशी

जवाहरगज
खण्डवा (म० प्र०)
१८ जुलाई, १९६९

अनुक्रम

० ०

संजीवनी खण्ड

संस्मरण खण्ड

समीक्षा खण्ड

(क) समग्र समीक्षा

संजीवनी खण्ड

वह ....

◇ ◇

डॉ० शिवमंगलसिह 'सुमन'

प्रात स्मरणीय दादा के साथ द्विवेदी युग के काव्याकाश का अन्तिम नक्षत्र अस्त हो गया। हमारी पीढी का भीष्म पितामह था वह, वर्षों से शरशय्या पर पडा उत्तरायण की प्रतीक्षा करता, महानिलय की वह पुण्य-तिथि थी ३० जनवरी, जिस दिन राष्ट्र के अलबेले जोधा ने बडी धज से छाती पर गोली खायी थी। गाधी के ग्वालो मे वह भी एक था, माखन के स्थान पर नमक-चोरी मे साथी और कस के आतक का विद्रोही। बडी मनमोहक छवि उसने पायी थी, माखन-सी मसृण, तप्त स्वर्ण-वर्ण, उन्नत ललाट, उषस् मुसकान, दूधिया मूछे, हिमानी हँसी, अभिव्यक्ति का धनी। उसकी वाणी का वैभव गायत्री छद-सा उन्मुक्त और उदात्त था, जिसके आरोह-अवरोह अनुष्टुप और त्रिष्टुप के मजीर बनते थे। अतल मे डूब-डूबकर उसने मोती सहेजे, भारती के थाल मे सजाये और उनका पानी कभी नही झरने दिया। बडा पानीदार था वह, अन्यथा कभी का नेता-मत्री बन जाता। अनन्त पारावार के अनबिंधे मोतियो ने उसे आशीषा भी खूब, अन्त तक उसके भाल पर अपनी आब झलमलाते हुए, तरल-सरल। बडा हठीला था वह, यशोदा के नटखट लाडले-सा। कभी कलम से खेलता, कभी पिस्तौल से। मिट्टी खाने का चाव था उसे। बाबई की मिट्टी मे उसे ब्रज की मिट्टी की सुगन्ध मिली, वह अकुरा उठा। उसकी लेखनी से बासुरी की स्वर-लहरी फूट पड़ी। लकुटी और कामरिया तो अन्त तक उसके साथ रही। निमाडी कपास के झीनेपन ने उसे लुभाया, खीचा, अटकाया-भटकाया, जीवन का ताना-बाना बुनने के लिए। खण्डवा के खण्ड को उसने सम्पूर्ण कर दिया, तीर्थ बना दिया। शायद ही कोई हिन्दी साहित्य का सवेदनशील सर्जक हो जिसने उसकी देहली पर मत्था न टेका हो, नवीन, सुभद्रा, महादेवी, जैनेन्द्र, उदयशकर, प्रेमी, मिलिन्द, भगवतीचरण, यशपाल, रामविलास, वृन्दावनलाल वर्मा, दिनकर, बच्चन, भवानी, प्रभाग, भारती, जगदीश गुप्त, अचल आदि। तुलसी से निराला तक का तार उसने जोड़ दिया था, वह साहित्य-

देवता था। मराठी, गुजराती, बगला, तमिल आदि के विद्वान भी उसके द्वारे ठहरकर कृतार्थ होते। लोकमान्य का वह अनन्य भक्त था, आगरकर, सप्रे का अतरग। गणेशशकर विद्यार्थी और भगतसिंह की दीवानगी पर वह फिदा था और दोनो की शहादत पर कुरबान। अन्तिम महाप्रयाण मे भी उसके मुख पर वही तरलता प्रतिबिम्बित रही। अब खण्डवा सदियो उसके बिखरे वैभव को समेटे—

"जो मिल जाता है सस्ता लगता है,
जाने लगता तब मोल उभरता है।"

साहित्य के धर्म-क्षेत्र या कुरुक्षेत्र मे सर पे कफन बाध के बडी फबत से वह आया था। बाद मे बहुतो ने मुकुट और पगडिया सवार ली पर वह अपना शिरस्त्राण उतारने को तैयार न हुआ, उसे तो जोधा का विरद् ढोना था। सिंहासनाहीन अश्वमेधो की परम्परा का चक्रवर्ती बनना उसे कभी न भाया। उसकी फूल की अभिलाषा बलिदानी यौवन की अमर अभिलाषा बन गई। बिस्मिल, आजाद, भगतसिंह का दर्द वह आजीवन ढोता रहा। विष की कटुता को नगण्य करने के लिए ही तो वह अपने दर्द का ठट्ठा मारकर हँसता था। हाई स्कूल के विद्यार्थी के रूप मे अमर शहीद गणेशशकर विद्यार्थी के प्रताप मे पहले-पहल उसकी इन पक्तियो को पढकर हम लोगो ने अजीब दीवानापन महसूस किया था—

नदी नद सब जल के भडार सुखा देते है अपना रक्त,
मेघ से तब दो वर्षा बूद कही पाते है वर्षा भक्त,
कलम की स्याही गिरती जाय पत्र पर उठता आता चित्र।

बहुत दिनो तो लोग उसकी मनुहारी मुसकान के मुगालते मे रहे पर बडा विकट था वह युग। सदियो से पद-दलित, मान-मर्दित राष्ट्र मोहनदास की कर्मठता से उत्तेजित और उद्दण्ड हो उठा था। माखनलाल ने बासुरिया धर दी और पाचजन्य उठा लिया।

अमर राष्ट्र, उद्दण्ड राष्ट्र, उन्मुक्त राष्ट्र
यह मेरी बोली
यह सुधार समझौतो वाली
मुझको भाती नही ठठोली।

बडी बेलाग चुनौती थी उसके बोलो मे। क्योंकि उसके घर मरण और सपनों मे होडा-होडी हो रही थी। मरण-त्योहार के राही कही पथ न भूल जायँ इसलिए वह स्वय मील का पत्थर बन गया। उत्सर्ग की वेदी पर उसने अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया और अपनी अकिंचनता मे ही धन्य हो उठा—

दौड दौड़कर लम्बी राते
क्यों छोटी कर आई रानी,

बोलो तो पत्थर क्या देवे
मीठे ओठ, न खारा पानी।

पथिको पर किसी प्रकार का एहसान जताने की बात भी नही थी—

मैं हू सजनि, मील का पत्थर,
अक पढो चुपचाप पधारो
मत आरोपो अपनेपन को
मत मुझ पर देवत्व उतारो।

इस बलिपथी ने रक्त की रेखाओ से नये क्षितिजो को उभारा था। राष्ट्र का ओज उसकी वाणी मे मूर्तिमान हो उठा था।

द्वार बलि का खोल
चल, भूडोल कर दे
एक हिमगिरि, एक सिर
का मोल कर दे।
मसलकर, अपने
इरादो सी उठाकर
दो हथेली है कि
पृथ्वी गोल कर दे।

उसकी कविता प्रयत्नसाध्य कभी नही रही। उसके स्वरो मे कविधर्म और जीवनधर्म का समाहार हो गया था। वेणु के कूजन और शख के उद्घोष की यह बानगी स्वय मे ही अनन्य थी। आग को किसका आधार चाहिए? फुरसत के समय नये शब्द के लिए नये अर्थ की और नये अर्थ के लिए नये शब्द की परेशानी होती है। पार्वती और परमेश्वर का यह जोडा एक ही धर्म जानता है, सर्जन और विनाश। वाक् और अर्थ की इस महिमा से वह भली-भाति परिचित था, इसीलिए अमरता उसके द्वार पर पानी भरती थी, निगोडी पनिहारिन, जमुनातट की अल्हडा ग्वालिनी।

पहले-पहल उसे सन् १६३८ मे देखा था, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे, साहित्य के प्रबुद्ध अध्वर्यु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के यज्ञ-मण्डप मे। हम एम० ए० के छात्र यह देखकर विस्मित और अवाक् रह गए थे कि काशी के दिग्गज पडितो की भूमि मे निमाड का एक निर्भीक जलस्रोत सबकी हँसी उडाकर चला गया। आचार्य शुक्ल भी उसकी अभिव्यजना के आवेश से विस्मित हुए थे। उसने एक निबन्ध पढा था जिसमे समालोचक और सर्जक के स्वरूपो का समाकलन था। अपनी चुटीली शैली मे आलोचको के मर्म पर प्रहार करते हुए और सबको निरुत्तर करते हुए बड़ी मस्तानी अदा मे मुसकराते-मुसकराते कुछ ऐसे नावक के तीर वह छोड गया जो वर्षो भावको के मर्म मे कसकते रहे। प्रभात के सपने-सी

उसकी स्मृति आज भी ताजी बनी हुई है। अपने प्रवचन का समापन करते करते उसने कहा था कि—साधना की प्रत्यचा मे आराधना का तीर, चिन्तन की श्वास के साथ जितना ही खीचा जायगा उतना ही लक्ष्यबेध करने मे समर्थ होगा। गगा-तटवासी मै नर्मदा के प्रपातो का उसी दिन कायल हो गया। उसके ठीक दस वर्ष बाद जब मालवा के पठारो का प्रीतिभाजन बना तो उसके चरणो को पलोटकर धन्य हो गया। आश्चर्य कि उसकी रमणीयता क्षण-क्षण नवता ही प्राप्त करती गई। आज उसके अभाव मे तो वह और भी उभर उठी है—वैसी ही मादक, वैसी ही स्नेहमयी।

कभी उसने कहा था—

मै पहला पत्थर मदिर का
अनजाना पथ जान रहा हूँ
गढूँ नीव मे, अपने कन्धो
पर मन्दिर अनुमान रहा हूँ।

इस मार्मिक अभिव्यक्ति का अर्थ तो अब कुछ-कुछ सूझने लगा है जब वह नीव का पत्थर अनजाने पथ की ओर अग्रसर हो गया। निश्चय ही उसके कन्धो पर आधारित कलशो से नया मन्वन्तर भास्वर होगा और उसकी वाणी का वर्चस्व बीहड से बीहड पथो मे भी हमारा भय-मोचन करता रहेगा।

चतुर्वेदीजी की जीवन-झांकी

० ०

कृष्णदेव शर्मा

पद्मभूषण डॉ० माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्यकार, प्रणय और प्रलय के उन्मुक्त गायक, हिन्दी छायावादी कविता के आदि-प्रवर्तक, यथार्थवादी कहानीकार, उत्कृष्ट गद्यकार, प्रभावक नाटककार, उच्चकोटि के भाषणकर्त्ता, निर्भीक सम्पादक, स्वातन्त्र्य समर के सेनानी, तरुण-साहित्यकारो के प्रेरणा-स्रोत, दिशा-दाता, स्वर-पाथेय थे। यहा इनकी जीवन-झाकी प्रस्तुत करना लेखक का अभीष्ट है।

वंश-परिचय

चतुर्वेदीजी के पितामह पडित रामनारायण चौबे अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान थे। इनके सात पुत्र हुए, जिनके नाम ये है—मुकुन्दरामजी, छोटेलालजी, वशीधरजी, तुलसीरामजी, बिहारीलालजी, नन्दलालजी और हीरा-लालजी। श्री मुकुन्दरामजी की मृत्यु अल्पायु मे ही हो गई थी। श्री छोटेलालजी का स्वर्गवास सन् १६१२ या '१३ मे हुआ। इनके कोई सन्तान नही हुई। श्री वशीधरजी सस्कृत एव व्याकरण के अच्छे ज्ञाता थे। कवि चतुर्वेदी ने सस्कृत इन्ही से सीखी थी। इनका देहावसान सन् १६१२ मे हुआ था। इनके दो पुत्र हुए—अयोध्याप्रसादजी और बद्रीप्रसादजी। दोनो दिवगत हो चुके है, पहले सन् १६२२ मे और दूसरे सन् १६५३ मे। अयोध्याप्रसादजी के एकमात्र पुत्र है—वृन्दावनजी। इनका जन्म सन् १६०६ मे हुआ। ये नादनेर की जायदाद का भार संभालते है। बद्रीप्रसादजी की एकमात्र सतान है—गणेशप्रसादजी। इनका जन्म सन् १६४० मे हुआ। ये नौकरी करते है। श्री तुलसीरामजी का स्वर्गवास सन् १६१३ मे हुआ। इनकी एकमात्र सतान श्री हरिकृष्णजी थे, जिनका गोलोकवास सन् १६५२ मे ५४ वर्ष की आयु मे हुआ। श्री बिहारीलालजी का स्वर्गवास सन् १६०० मे हुआ। इनके कोई पुरुष-सतान न थी।

श्री नन्दलालजी अन्य भाइयो की अपेक्षा अधिक मेधावी, विद्वान, होनहार और रूपवान थे। इनका स्वर्गवास दिसम्बर सन् १९२१ मे हुआ। इनके चार पुत्र हुए—श्री माखनलालजी, श्री रामदयालजी, श्री हरिप्रसादजी और श्री बृजभूषणलालजी। इनमे कवि अग्रज है।

श्री रामदयालजी का जन्म सन् १८८९ मे हुआ और स्वर्गवास ५ सितम्बर सन् १९५८ मे। इनके एकमात्र पुत्र है श्री विनोदकुमारजी। इनका जन्म सन् १९३७ मे हुआ। ये बम्बई मे है।

श्री रामदयालजी से छोटे है श्री हरिप्रसादजी। इनका जन्म सन् १९०१ मे हुआ। ये बहुत दूरदर्शी, चतुर, कष्टसहिष्णु तथा परहितचिंतक है।[1] सन् १९५२ से '६२ तक मध्यप्रदेश विधान सभा के सदस्य भी रह चुके है। इनका इटारसी मे अपना 'महाकौशल प्रिंटिंग प्रेस' भी है जिसकी देखरेख ये स्वय करते है। इनके पाच पुत्र है—श्री अरविंदकुमार, श्री सुभाषचन्द्र, श्री सन्तोषकुमार, श्री राकेश और श्री अजय। श्री अरविन्दकुमारजी का जन्म २२ जुलाई, सन् १९३५ मे हुआ। ये मध्यप्रदेश सरकार के प्रकाशन-विभाग मे जन सम्पर्क अधिकारी है। श्री सुभाषचन्द्रजी का जन्म दिसम्बर, सन् १९३७ मे हुआ। ये मध्यप्रदेश सरकार के माध्यमिक शिक्षा-विभाग मे कार्य करते है। शेष तीनो पुत्रो का जन्म क्रमश १२ मई, सन् १९४९, १७ अगस्त, सन् १९५६ और ६ जून सन्, १९५८ मे हुआ। ये तीनो विद्याध्ययन मे रत है।

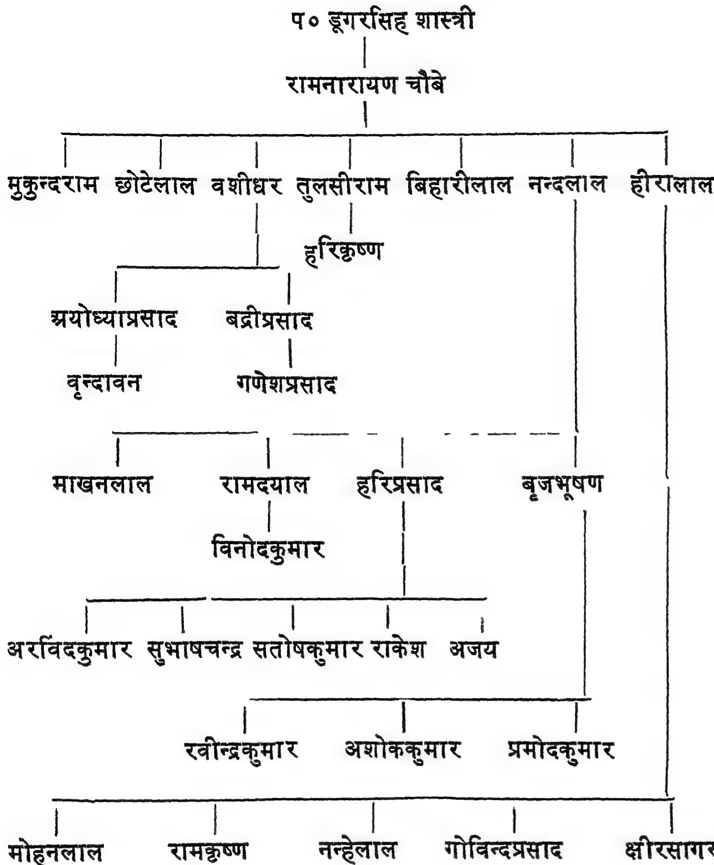
श्री बृजभूषणलालजी कवि के सबसे छोटे भाई है। इनकाजन्म १५ मई, सन् १९२८ मे हुआ। ये राजनीतिशास्त्र तथा इतिहास मे एम० ए० और ला ग्रेजुएट है। सन् १९५३-५५ मे खण्डवा मे प्रथम श्रेणी के ऑनरेरी मजिस्ट्रेट भी रह चुके है। आजकल ये 'कर्मवीर' के सम्पादक है। इनके तीन पुत्र है—श्री रवीन्द्रकुमार, श्री अशोककुमार और श्री प्रमोदकुमार जिनका जन्म क्रमश १७ मार्च, सन् १९४६, ५ दिसम्बर, सन् १९५० और ३ अक्टूबर, सन् १९५२ है। ये तीनो अभी शिक्षा-अध्ययन मे लीन है।

श्री हीरालालजी चतुर्वेदी चतुर्वेदीजी के सबसे छोटे काका थे। इनका स्वर्गवास अगस्त, सन् १९३८ मे हुआ। इनके पाच पुत्र हुए—श्री मोहनलाल, श्री नन्हेलाल, श्री रामकृष्ण, श्री गोविन्द और श्री क्षीरसागर। इनमे श्री मोहनलालजी दिवगत होचुके है—सन् १९२१ मे। शेष चारो पुत्र नौकरी करते है।

सुविधा और स्पष्टता के लिए श्री चतुर्वेदीजी का वश-वृक्ष यहा दिया जाता है :

---

१. इन दिनो ये मध्यप्रदेश के केबिनट स्तर के मंत्री है।



पूर्वस्थान और जन्मस्थान

राजस्थान की जयपुर रियासत का राणीला ग्राम चतुर्वेदीजी का आदिस्थान है। यहा से उनके प्रपितामह डूगरसिह शास्त्री होशगाबाद जिले के बाबई नामक ग्राम मे आकर बस गए थे जिसे आज लगभग १३० वर्ष होने को है। बाबई होशगाबाद तहसील का एक बडा गाव है और होशगाबाद से १४ मील पूर्व मे पुरानी बाबई सड़क पर बसा हुआ है। 'आईने-अकबरी' के अनुसार यह मालवा-सूबा का एक अग था और यहा पर जगली हाथी बहुतायत से पाए जाते थे। बाबई, औरगजेब के बाद, हवेली बागड के नाम से प्रख्यात था, जहा उसके गढ का राजा शासन करता था। यही बाबई कवि माखनलाल की जन्मभूमि है। किन्तु आज यह चतुर्वेदी परिवार बाबई छोड़कर खण्डवा और इटारसी मे स्थायी

रूप से बस गया है। केवल कवि की एक बहन कस्तूरीबाई बाबई मे ही रहती है।

जाति, गोत्र और अल्ल

चतुर्वेदीजी आदिगौड ब्राह्मण और घूसावट चौबे है। कालान्तर मे यह 'चौबे' शब्द किन्ही कारणो से 'चतुर्वेदी' मे परिवर्तित हो गया जिसे अधिकाश परिवारो ने अपना लिया। यह परिवार भी उनमे से एक था। चतुर्वेदीजी का गोत्र वशिष्ठ है। प्रारम्भ मे चतुर्वेदीजी का अल्ल 'चौबे' ही था जो आज बिलकुल छूट गया है और 'परिजनो' मे 'दादा' तथा 'साहित्य-जगत्' मे 'साहित्य-देवता' एव 'एक भारतीय आत्मा' के नवीन नाम को प्राप्त हो गया। कुल का पैतृक व्यवसाय पुरोहिती था। यह खानदान बाबई मे जितना ही अधिक अपनी विद्या के लिए प्रसिद्ध रहा है, उतना ही अपनी दृढता और लडाई-झगडे के लिए भी प्रसिद्ध रहा। इस परिवार के लोगो से जमीदार भी पनाह मागते और पुलिस के प्रजादलन कार्य मे रुकावट होती रहती। पुराने ढग से श्राप देने मे तो नही, सबको सीख सिखाने मे ही उनका पहला आनन्द निहित रहता था। किन्तु पुरोहिती आज इस परिवार का पूर्ण अग नही रही है।

कवि की जन्मतिथि और नाम

चतुर्वेदी जी का जन्म चैत्र शुक्ल कामदा एकादशी, सवत् १९४६ विक्रमी तदनुसार ४ अप्रैल, सन् १८८९ को दिन के ग्यारह बजे हुआ था। उस दिन पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र था। कवि की जन्मराशि सिह है। नामकरण सस्कार मे कवि को मोहनलाल अभिधेय प्राप्त हुआ, किन्तु उनका नाम मोहनलाल के स्थान पर 'माखनलाल' रखा गया। कुल-परपरा के अनुसार उनके नाम के साथ बाद मे चतुर्वेदी लगा दिया गया। प्रारभ मे कवि अपनी रचनाओ मे माखनलाल चतुर्वेदी नाम ही दिया करता था। 'सुबोध-सिन्धु' के हिन्दी सस्करण मे कवि ने सन् १९१२ मे 'शक्ति-पूजा' पर एक लेख लिखा था, जिसके कारण उस पर पुलिस द्वारा राजद्रोह का आरोप लगाया गया किन्तु श्री माणिकचद जैन की बुद्धिमानी और कवि की कार्यकुशलता एव सावधानी के कारण यह आरोप गलत सिद्ध हुआ। तब से वह 'श्रीगोपाल', 'भारत-सन्तान', 'कुछ नही', 'भारतीय', 'सुधार-प्रिय', 'पशुपति', 'नीति-प्रेमी', 'एक विद्यार्थी','एक निर्धन विद्यार्थी', 'एक भारतीय प्रजा', 'एक नवयुवक', 'तरुण भारत', 'एक प्रान्तीय वाणी', 'एक उच्च शिक्षित', 'एक भारतवासी', 'श्रीयुत नवनीत', 'श्री विश्वव्याप्त', 'श्री चचरीक', 'श्री शकर','श० श० श०','क्ष० त्र० ज्ञ०', 'वनवासी', 'वनमाली', 'एक भारतीय आत्मा' जैसे चित्र-विचित्र नामो से लिखते रहे है। स्वय चतुर्वेदी जी ने इस सुदीर्घ नामावली-

ग्रहण करनेके विषयमे लिखा है "आज हिन्दी वाले यहकहतेहै कि माखनलालजी को भी उपनाम रखने की क्या आवश्यकता थी, पर वे क्या जाने ? यह उपनाम रखना मेरी विवशता थी, मजबूरी थी ।" और यह विवशता थी पुलिस के भयकर पजे से अपनी जीवन-रक्षा की । बाद मे तो उसकी रचनाए 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से ही एक युग से प्रकाशित होती रही। इसी पवित्र नाम के कारण वह 'साहित्य-देवता' के गौरवपूर्ण आसन पर प्रतिष्ठित रहे।

पिता और पितृत्व

कवि के पिता स्वर्गीय श्री नन्दलाल चतुर्वेदी का स्वभाव बहुत प्रिय था। वे हँसमुख, दयालु और ग्रामीणो के बहुत काम आनेवाले व्यक्ति थे। मुसलमान, हरिजन, शिकारी—सब जातियो के व्यक्ति उनके पास सहायतार्थ आते थे और वे सबकी सहायता करते थे । वे कसरती भी बहुत थे। गणेश-चतुर्थी के उत्सव मे जब चतुर्दशी के रोज़ गणेश की प्रतिमा गजाल नदी मे विसर्जित की जाती थी, बाढमयी गजाल को पारकर जाना कवि-पिता के लिए बाये हाथ का खेल था। चतुर्वेदी जी ने सहायता, व्यायाम, तैरने की प्रवृत्ति अपने पिता से ग्रहण की।

चतुर्वेदी जी का कहना था—"मुझे बडे दादा (छोटेलाल चतुर्वेदी) पुजारी बनाना चाहते थे, परन्तु मुझे स्कूल मास्टरी पसन्द थी। अत. बडे दादा के पास से मै भाग आया और पिताजी के कहने के अनुसार स्कूल-मास्टर हो गया।" स्पष्ट है कि कवि-मन पर इनका प्रभाव किंचित् भी न पडा।

स्वर्गीय श्री बशीधर जी चतुर्वेदी स्वभाव से कठोर प्रकृति के थे। कवि चतुर्वेदी ने इन्ही से सस्कृत सीखी थी। उनका भी कोई स्थायी प्रभाव कवि के मन पर नही पडा।

माता और बूआ का स्नेह-वात्सल्य

चतुर्वेदी जी की माता श्रीमती सुन्दरी बाई चिरकाल तक यशस्वी पुत्र को अपने वरद-हस्त की शीतल छाया देकर २९ अप्रैल, सन् १९५३ को स्वर्ग सिधार गई। उनका स्वभाव बहुत भोला और पूजा-भाव से भरा हुआ था। वे जगल मे रहना और गाय की सेवा करना अधिक पसन्द करती थी। वे अपना इष्ट हनुमान जी को लेकर आयी थी और बाबई के नृसिह मदिर के पीछे जो हनुमानजी का मदिर था, वही अपना पूजन करने जाती थी। यो वे अपने श्वसुर-गृह के इष्ट की भी पूजा किया करती थी।उनमे एक पुरुषोचित वीरता थी। कवि ने ममतामयी मा के महत्त्व को लक्ष्य कर लिखा है—"मेरे जीवन की कोमलतर घडियो का आधार मेरी मा है। मेरे छोटे-से ऊचे उठने मे भी, फूला न समाने वाला तथा मेरी वेदना मे व्याकुल हो उठने वाला, उस जैसा कोई नही।" मृत्यु-पर्यन्त कवि की माता

उसकी सुखसुविधा का ध्यान किये रही। यह माता के जीवन का ही प्रभाव था कि कवि 'प्रलय-पथी', पूजा-भाव का उपासक, भाइयो का हितचिंतक और गौ-रक्षा का समर्थक बना रहा।

कवि की बूआ श्रीमती पार्वती बाई (पारी बाई) अत्यन्त धर्मपरायणा थी। उनका यह दुर्लघ्य नियम था कि जब तक भगवान के सामने वैष्णव-भक्ति-पूरित पाच-पद नही गा लिये जाते, तब तक किसी को भोजन नही मिलता था। उन्होने अपनी ही गोद मे शिशु माखनलाल को इस प्रकार के पद धीरे-धीरे कण्ठस्थ कराने प्रारम्भ कर दिये थे। उन वैष्णव-पदो मे 'जागिये रघुनाथ कुअर भोर भयो प्यारे' पद भी गाया जाता था, जिसकी पैरोडी उन्होने 'बैल-वन्दना' के रूप मे आठ वर्ष की अवस्था मे ही बनाई थी। इस पर कवि को बूआ का कोप-भाजन बनना पडा था, किन्तु यह तो उसका नित्य का कर्म था। अत जब कोई पडोसिन बूआ को आकर कह देती कि जब तक इस लडके को नही टाल दोगी, तब तक तुम्हारे घर मे शाति नही होगी, तब बूआ कहती, "यशोदा के घर से एक बार कन्हैया चला गया तो वह बेचारी जिन्दगी-भर तडप-तडपकर रोयी, मै तो ऐसी भूल नही करूगी।" बूआ का कवि पर बहुत स्नेह था। रामायण, भागवत और कथा-कहानियो का वे कोष थी, जिसके कारण वे कवि के लिए विशेष श्रद्धा का केन्द्र बनी हुई थी। बूआ के स्नेह ने कवि को राधाबल्लभ सम्प्रदाय की ओर उन्मुख किया।

बाल-वृत्ति का वैशिष्ट्य

चतुर्वेदीजी बचपन मे बडे नटखट स्वभाव के थे। कुश्ती और व्यायाम करने मे उनकी विशेष रुचि थी। पेडो पर चढना उनके बाए हाथ का खेल था। तैरना उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण अग था। भ्रमण को वे स्वास्थ्य के लिए उपयोगी मानते थे। दूसरो के साथ मनोविनोद करने मे उन्हे विशेष आनन्द आता था। पिटना-पीटना उनका स्वभाव बन गया था। इन सबके कारण उनमे निडरता पर्याप्त मात्रा मे आ गई थी, अत. वे खतरो के साथ भी खेल जाते थे।

काव्य-प्रेरणा-स्रोत

यो तो काव्य-सृजन की प्रतिभा कवि मे जन्मजात होती है, किन्तु इस प्रतिभा के भी कुछ प्रेरक तत्त्व होते है। इन्ही तत्त्वो को हम कवि के प्रेरणा-स्रोत भी कह सकते है। यह आवश्यक नही कि प्रत्येक कवि के प्रेरणा-स्रोत समान हो, उनमे वैभिन्य भी हो सकता है और होता ही है। यदि एक कवि का मूल प्रेरणा-स्रोत प्रेम अथवा उसकी असफलता हो सकता है तो दूसरे की कल्पना के इन्द्रधनुषी वितान प्रकृति की क्रोड मे जाकर स्वत ही तनने लगते हैं। माखनलाल जी के काव्य के प्रेरणा-स्रोत मुख्यत. ये थे :

१ विन्ध्या और सतपुडा के निर्झर,
२. स्वामी रामतीर्थ के भाषण,
३ स्वामी रामकृष्ण परमहस के उपदेश,
४ कवि पत्नी, और
५ अमर शहीद गणेशशकर विद्यार्थी।

शिक्षा

बाबई के जिस प्राथमिक विद्यालय मे पिता स्वर्गीय नन्दलाल चतुर्वेदी ने शिक्षा प्राप्त की थी, उसी विद्यालय मे चतुर्वेदीजी को भी शिक्षा-अध्ययन के लिए प्रविष्ट करा दिया गया, जहा से सन् १६०१ मे उन्होने प्राइमरी-परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १६०५ मे, प्राइमरी-परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद, इन्होने 'प्राइमरी टीचर्स ट्रेनिग' की परीक्षा जबलपुर केन्द्र से उत्तीर्ण की। परीक्षा मे हिन्दी विषय मे ६४ प्रतिशत और गणित मे ६६ प्रतिशत अक प्राप्त किये थे। "यह सब पिताजी के प्रयत्न और आशीर्वाद का फल था।" विद्यार्थी जीवन मे ये बडे मेधावी, कर्तव्य-परायण और विनोदप्रिय रहे। किंतु दुर्भाग्य! आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न न होने के कारण ये उच्च शिक्षा प्राप्त करने मे असमर्थ रहे।

माखनलालजी ने अपने बडे काका स्वर्गीय श्री वशीधर जी के सरक्षण मे सस्कृत का अध्ययन किया, किन्तु कवि के पिता को इससे सतुष्टि नही हुई थी। पिता के इस असन्तोष से माखनलालजी को भी परितोष नही हुआ।

माखनलालजी ने उर्दू, फारसी, अरबी, बगला, मराठी, गुजराती तथा अंग्रेजी का भी स्वत अध्ययन किया था। इन सभी भाषाओ पर उनका पूर्ण अधिकार था। यह बात बहुत कम लोग जानते है। सस्कृत व उर्दू मे तो कवि ने कविता भी की है। ये कविताए अद्यतन अप्रकाशित है। कवि ने एक बार अंग्रेजी मे भाषण भी दिया था।

विवाह और सतति

माखनलाल चतुर्वेदी का विवाह सन् १६०३ (बैसाख सवत् १६६०) मे अपनी जन्मभूमि बाबई के निवासी श्री परमसुख हलवाई की सुपुत्री ग्यारसी बाई (एकादशी बाई) के साथ बडी धूमधाम से सम्पन्न हुआ था। उस समय चतुर्वेदी जी की आयु चौदह वर्ष थी और पत्नी की नौ वर्ष। इनके एक कन्या भी उत्पन्न हुई, पर वह कुछ दिन ही जीवित रह सकी और अपनी अभागिन माता को आसू बहाने के लिए छोडकर उसकी गोद सूनी कर चलती बनी। कवि का वैवाहिक जीवन सदा अभावमय ही रहा और निरन्तर उपेक्षा के कारण पत्नी का स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता ही चला गया और उन्हे यक्ष्मा ने आ दबाया। इसका परिणाम यह

हुआ कि दिसम्बर, सन् १६१४ (पौष कृष्ण ४, सवत् १६७१) मे इनकी पत्नी इह-लोक की लीला समाप्त कर सदा-सर्वदा के लिए इनका साथ छोडकर चली गई। कवि का जीवन अन्धकारमय हो गया। वह जिस तरफ दृष्टि डालता, दु ख ही दु ख दिखाई देता था, जिसकी अभिव्यक्ति भाई छेडो नही मुझे' शोक-गीति मे हुई है।

यद्यपि ग्यारसी बाई नही रही पर माखनलाल जी के काव्य मे उन्ही का मधुरतम व्यक्तित्व अपनी वाणी का कूजन करता रहा है। उन्होने विदा लेकर अपने पति को देश के बलि-पथ पर निर्द्वन्द्व जूझने के लिए निश्चित कर दिया था। यह जूझना कठोर साधना मे खो जाने से कम नही था। कवि की कठोर साहित्यिक-साधना को फलवती बनाने के लिए प्रस्तुत पक्तियो का लेखक उस वदनीया को अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता है।

कवि माखनलाल आजीवन पत्नी की स्मृति मे प्रतिवर्ष श्रावण मास मे अत्यत श्रद्धा के साथ 'रामचरितमानस का पाठ करते रहे।

आर्थिक कष्ट

चतुर्वेदीजी का जन्म दीनता और दारिद्र्य के वातावरण मे हुआ था, जिसका प्रभाव चतुर्वेदीजी पर भी पडना स्वाभाविक था, किन्तु इन्होने दैन्य और दारिद्र्य को यथासभव दूर करने की चेष्टा की। इतने पर भी वह आर्थिक दृष्टि से मुक्त न हो सका। उसे अपने अनुज श्री बृजभूषणलाल चतुर्वेदी के विवाह मे ३२०० रुपया ऋण लेना पडा था, जिसे उसने १ वर्ष के समय मे ही चुका दिया था। कवि की आर्थिक स्थिति का अनुमान उसके स्वय के कथन से सरलता से लगाया जा सकता है "मेरे जीवन का सबसे बडा सपना है कि अपना भी घर का घर हो और उसमे एक बाथरूम हो। किराये के घर की भी जिन्दगी क्या जिन्दगी है ? हर क्षण लगता रहता है कि कोई है, जो हमसे भी बडा है और उसके हम किरायेदार है।" कवि माखनलाल के आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न न होने के अधोलिखित कारण कहे जा सकते है

१. क्रान्तिकारियो की सहायता।
२ विद्यार्थियो की सहायता।
३ मित्रो का आतिथ्य।
४ कर्मवीर के सचालन मे आर्थिक कठिनाइयो का निवारण।

यहा यह भी ज्ञातव्य है कि मध्यप्रदेश सरकार चतुर्वेदीजी को सन् '६५ से ५०० रुपया प्रतिमास अनुवेतन के रूप मे आर्थिक सहायता देती रही। किन्तु ५०० रुपये से क्या होता है जबकि मासिक व्यय २२०० रुपये के लगभग हो। सब वस्तुए मँहगी होने पर खर्च बढ ही जाता है। किन्तु इन सब विपरीत परि-

स्थितियो मे भी, अपने अन्तर्मन के घोर-से-घोर दु खो मे भी, चतुर्वेदी जी ने अपनी भावना और चिन्तन के वैभव को कभी क्षीण नही होने दिया। उनके जीवन मे निराशाए भले ही रही हो, कई आघात-प्रतिघात भी रहे हो, लेकिन उसकी जिजीविषा कभी नही गई। फाके-कशी के दिनो मे भी उनकी फाके-मस्ती मस्ती ही थी।

कारावास, कांग्रेस और क्रांतिकारी दल

महाकौशल मे असहयोग आन्दोलन का श्रीगणेश चतुर्वेदी जी ने 'कर्मवीर' के द्वारा ही किया। 'कर्मवीर' का तूफानी प्रचार प्रादेशिक सरकार को असह्य हो गया था। अत॰ सरकार ने चतुर्वेदीजी पर दफा १२४ (अ) केअनुसार, बिलासपुर मे दिये गये १२ मार्च, सन् १६२१ के अभिभाषण पर राजद्रोह का अभियोग चलाया। जबलपुर मे बदी करके आपको बिलासपुर ले जाया गया। २ जुलाई सन् १६२१ को बिलासपुर के मजिस्ट्रेट मि० पारघी के सम्मुख आप उपस्थित किये गये। ५ जुलाई, सन् १६२१ को मि० पारघी द्वारा आठ मास की सपरिश्रम कारावास की आज्ञा दी गई। यह समाचार समस्त प्रदेश मे फैल गया और जगह-जगह सरकार के विरोध मे प्रदर्शन किये गये, किन्तु इनका परिणाम नकारात्मक ही रहा। इन्हे बिलासपुर जेल मे रखा गया। इनकी कैदी सख्या १३३२ थी। इन्हे कुछ दिन जबलपुर जेल मे भी रखा गया, जहा से ४ मार्च सन् १६२२ को इनकी निष्कृति हुई। कारागृह मे रहते हुए कवि ने रस्सिया बटी, मोट खीचा और गेहू पीसे। अन्य अनेक कष्ट भी उठाये, क्योकि जेल-अधिकारियो का व्यवहार इनके प्रति कठोर था, किन्तु इसमे अपवाद भी है।

सन् १६२३ के नागपुर के विख्यात झण्डा-सत्याग्रह मे चतुर्वेदी जी ने सक्रिय सहयोग दिया और वे ही इस सत्याग्रह के अन्तिम सेनानी भी थे।

काग्रेस मे रहते हुए चतुर्वेदी जी सन् १६३०-३१ मे भी जेल गये। इस समय चतुर्वेदीजी के साथ स्वर्गीय पडित रविशकर जी शुक्ल, सेठ गोविन्ददास, प० द्वारकाप्रसाद मिश्र और भार्गवजी भी थे। मि० लीली ने इन सबको सजाए सुनाई थी। इस समय चतुर्वेदी जी ने प्रो० रमाशकर शुक्ल के आग्रह पर जनता को यह सदेश दिया था

"इन्हे गुलामी वर रहे
उन्हे रहे षड्यन्त्र।
मरना हमको वर रहे
भारत रहे स्वतन्त्र।"

जबलपुर कारागृह से माखनलाल जी की निष्कृति ८ मार्च, सन् १६३१ को हुई।

माखनलाल चतुर्वेदी का क्रान्तिकारी दल से परिचय सन् १६०५ मे असित

गागुली और फणीन्द्र मजूमदार से स्थापित हुआ। इन्होने १३ जनवरी सन् १९०६ मे क्रातिकारी दल मे रहने की दीक्षा प्राप्त की। क्रातिकारी दल मे इनकी सदस्य-सख्या १९ थी। इन्होने सन् १९१६ तक क्रातिकारी दल मे सक्रिय कार्य किया। आर्थिक सहायता भी दी। एक आलोचक के अनुसार, "क्रातिकारियो के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और रासबिहारी बोस जैसे क्रातिकारी तक ने उनके यहा आश्रय पाया।" सन् १९४२ मे महात्मा गाधी से आज्ञा लेकर कानपुर मे प्रिंसिपल खन्ना के यहा रहकर इन्होने क्रान्तिकारी दल की सहायता की थी।

विभिन्न कार्यकलाप —सक्षिप्त विवरण

साहित्य-क्षेत्र मे आपका प्रवेश एक पत्रकार के रूप मे ७ अप्रैल, सन १९१३ मे खण्डवा से प्रकाशित 'प्रभा' के साथ हुआ। सम्पादक के स्थान पर गगराडे जी का नाम छपा था। चतुर्वेदी जी को तीस रुपये मासिक वेतन पर सहायक सम्पादक के रूप मे कार्यरत किया गया। २६ सितम्बर, सन् १९१३ मे अपनी प्राथमिक-पाठशाला की अध्यापकीय-वृत्ति से त्यागपत्र दे दिया। किन्तु किन्ही आर्थिक कठिनाइयो के कारण यह पत्रिका एक वर्ष पश्चात् द्वादश अक प्रकाशित कर बन्द हो गई। कानपुर के साप्ताहिक 'प्रताप' के भी माखनलालजी अक्टूबर, सन् १९२३ से ३ मार्च, सन् १९२४ तक सम्पादक रहे। १७ जनवरी, सन् १९३० को पडित विष्णु दत्त शुक्ल और माधवराव सप्रे के आग्रह से 'कर्मवीर' का प्रकाशन हुआ। इसके सम्पादक चतुर्वेदी जी ही बनाये गये। बाद मे तो यह पत्र चतुर्वेदीजी के ही स्वामित्व मे खण्डवा से प्रकाशित होने लगा और आज तक बराबर प्रकाशित हो रहा है। कर्मवीर के सम्पादक बनने के साथ ही आप राजनीति मे सक्रिय भाग लेने लगे और १९२१ मे महात्मा गाधी द्वारा सचालित राष्ट्रीय आन्दोलन मे आप जेल गये। गाधीजी के राष्ट्रीय आन्दोलन मे जेल जाने वाले आप मध्यप्रात के सर्वप्रथम व्यक्ति थे। सन् १९२३ मे नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह मे सरकार को इन्होने करारी मात दी। सन् १९३१ मे मध्यभारत प्रजापरिषद् (झासी) के दूसरे अधिवेशन के सभापति निर्वाचित हुए। इस समय का आपका भाषण विद्रोह और निर्भीकता मे बेजोड है। सन् १९३६ मे कांग्रेस पार्लियामेटरी बोर्ड मध्यप्रदेश के अध्यक्ष चुने गए। चुनाव चतुर्वेदी जी ने ही करवाये। राजनैतिक आन्दोलनो की भाति साहित्यिव आन्दोलनो का भी आपने सफल नेतृत्व किया। सन् १९२९ मे आप भरतपु के सम्पादक-सम्मेलन के अध्यक्ष बने। सन् १९३० मे रायपुर और सन् १९३५ ं कटनी मे होने वाले मध्यप्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति बनाये गये सन् १९३८ मे बनारस मे होने वाली भारतीय हिन्दी पत्रकार परिषद के सभापि निर्वाचित हुए। सन् १९४३ मे हरिद्वार के अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन अध्यक्ष निर्वाचित हुए और चादी के सिक्को से आपका तुलादान हुआ। सन् १९५

से आपने राजनीति से सन्यास-ग्रहण कर साहित्य-सेवा मे ही अपना जीवन लगा दिया।

भारत की विभिन्न सस्थाओ और महापुरुषो से भी आपका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। आपने नई प्रतिभाओ को जन्म देकर उनका निर्माण किया है। विस्तार-भय से इन सबका उल्लेख यहा अपेक्षित नही है।

रोग

जब माखनलाल जी की आयु डेढ वर्ष की थी, तो यह इतने बीमार हुए कि एक दिन तो सारा घर-भर इस चिन्ता से भर उठा कि अब इस बच्चे का बचना कठिन है। सभी आशा छोड चुके थे। कहते है, गाव के बूढे मारवाडी सुनार हुलासी ने कोई दवा दी और शिशु ने सज्ञा पायी। सन् १९१४ मे अल्पायु मे ही इनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया, जिससे उन्हे गहरा आघात पहुचा और वह 'हृदय की धडकन' बीमारी से पीडित हो गया। यह रोग उसका जीवन-सगी बन बैठा और उसने कवि को कही का न छोडा। फरवरी, सन् १९१८ मे कानपुर से लौटने पर कवि इस हृदय-रोग से ग्रस्त हो गया। अप्रैल, १९१९ मे इस रोग से उनकी जीवन-रक्षा हो गई। सन् १९३७ मे पेट के फोडो का आपरेशन हुआ। सन् १९३९ मे त्रिपुरी काग्रेस के अवसर पर स्वागत समिति के उपाध्यक्ष चुने गये, किन्तु अधि-वेशन मे आपरेशन के कारण न जा सके। २७ अगस्त, सन् १९६२ को आखो मे 'मोतियाबिंद' उतर आने के कारण शल्योपचार हुआ और नेत्रो मे पुन ज्योति आयी।

पुरस्कार, उपाधि और सम्मान

चतुर्वेदी जी की 'हिमकिरीटनी' पर अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सन् १९४३ मे एक हजार रुपये का 'देव पुरस्कार' तथा सन् १९५४ मे उत्तर-प्रदेश सरकार ने १५०० रुपये का पुरस्कार प्रदान किया। 'हिमतरगिनी' नामक काव्य-पुस्तक पर सन् १९५४मे साहित्य अकादमी ने पाच हजार रुपये का साहित्य का प्रथम पुरस्कार तथा उत्तर प्रदेश सरकार ने १५०० रुपये का पारितोषिक प्रदान किया। विक्रमी सवत् २०१० मे स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त के सभापतित्व मे साहित्यकार ससद्, प्रयाग द्वारा साहू जगदीशप्रसाद पुरस्कार श्री माखनलाल चतुर्वेदी को 'माता' काव्य के लिए प्रदान किया गया। इसी पुस्तक पर उत्तर-प्रदेश सरकार ने भी १२०० रुपये का पुरस्कार प्रदान किया। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा ही चतुर्वेदी जी को उनके कहानी-सग्रह 'कला का अनुवाद' पुस्तक पर ६०० रुपये की धन-राशि पुरस्कार-स्वरूप प्रदान की गई। इनके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश राज्य सरकारो द्वारा चतुर्वेदी जी को अनेक बार पुरस्कृत किया

गया।

काशी धर्म महामण्डल द्वारा सन् १९३५ मे चतुर्वेदी जी को 'सम्पादक भूषण' की सम्मानित उपाधि से समलकृत किया गया। श्री माखनलाल चतुर्वेदी को इनकी अमूल्य हिन्दी सेवा के उपलक्ष्य मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थायी-समिति की २२ बैसाख सवत् २००३ (सन् १९४६) की बैठक के निश्चय सख्या ३ के अनुसार सम्मानार्थ 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि सम्मेलन के कराची अधि-वेशन मे श्री वियोगी हरि जी के सभापतित्व मे अर्पित की गई। दिसम्बर, सन् १९५९ मे सागर विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० की सम्मानित उपाधि उपकुल-पति डॉ० द्वारकाप्रसाद मिश्र द्वारा खण्डवा मे हुए विशेष दीक्षान्त समारोह मे प्रदान की गई। भारत सरकार ने २६ जनवरी, सन् १९६३ को गणतन्त्र दिवस के अवसर पर कवि को 'पद्मभूषण' की सम्मानित उपाधि प्रदान की। राजभाषा विधेयक के विरोध मे आपने यह उपाधि मृत्यु के कुछ ही पूर्व लौटा दी।

१६-१७ जनवरी, सन् १९६५ को मध्य प्रदेश सरकार ने आपका सम्मान किया, और ७५०० रुपये की थैली प्रशस्ति पत्र के साथ आपको भेट की। इससे बडा सम्मान राज्य सरकार और भारत सरकार की ओर से शायद ही किसी साहित्यकार का हुआ हो।

३० जनवरी, १९६८ को सायकाल साढे पाच बजे आपका देहावसान हुआ। यह समय लगभग वही था जब ३० जनवरी, १९४८ को महात्मा गाधी ने महा-प्रयाण किया था।

माखनलालजी का गांव हिरनखेड़ा

◇ ◇

लाला राममनोहर

(माखनलालजी का गाव हिरनखेडा के नाम से विख्यात रहा है । यहा वर्षों उनके छोटे भाई स्व० रामदयाल चतुर्वेदी रहते रहे है जो डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अध्यक्ष रहेहै । उसी गाव के निकटवर्ती गाव सोभलवाडा के निवासी लाला राममनोहर जी के हाथ की उन्ही की भाषा मे माखन-लालजीके प्रति लिखित इस श्रद्धाजलि का अपना अलग ही महत्त्व है । (छोटे भाई श्री रामदयाल चतुर्वेदी का अब स्वर्गवास हो चुका है ।)

लालाजी माखनलालजी से आयु मे पन्द्रह-सोलह वर्ष बडे थे । यह लेख सन् १९४४ मे खडवा के एक सज्जन के पास लालाजी ने लिखकर भेजा था जो सर्वप्रथम चतुर्वेदीजी की स्वर्ण-जयन्ती पर प्रकाशित 'सगम' केविशेषाक मे प्रकाशित हुआ था ।)

श्रीमान पूज्य पडितजी का नाम 'कर्मवीर' मे पढकर उनके दर्शनो की प्रबल इच्छा हुई । सन् १९१९मे उनके मझले भाई से परिचयहो गया। दैवयोग से छितगाव पहुचा और वहा मालूम हुआ कि बिलासपुर जेल से छूटकर पडितजी यहा आ गए है । इनके वियोग मे कुछ दिन पहले इनके पिता शरीर त्याग चुके थे, गृह मे पूज्य माताजी अत्यन्त व्याकुल बिलख रही थी । तीन भाई, तीन बहने, एक भाई की पत्नी, इन सबो का भार और जेल की यातनाओ से कृश शरीर, इस अवस्था मे छितगाव स्टेशन पर दर्शन हुए, तो भी चतुर्वेदीजी उज्ज्वल आत्मा और प्रसन्न-चित्त दीख रहे थे । थोडा परिचय हुआ, इसके बाद पडितजी ने बानापुर स्टेशन पर आबादी से कुछ हटकर इन्दौर जाने वालो की आने-जाने की सुविधा के विचार से अपना हैडक्वार्टर रखा, फिर वहा जब मैं आता तब अवश्य दर्शनो को पहुंचता । बातचीत मे ग्रामीण जीवन की बात और गरीब लोगो की स्थिति की ही चर्चा चली तो उन्होने बताया कि सन् १९२० मे सिवनी मालवा तहसील के हिरनखेडा ग्राम के एक मालगुजार श्रीयुत कालूरामजी को मालूम हुआ कि मैं

उपयुक्त जगह चाहता हू तो उन्होने प्रेमपूर्वक प्रार्थना की कि "बस्ती के बाहर लगभग तीन फर्लाग पर बडे चाव से एक जो बगीचा उन्होने लगाया था वह बर्बाद हो रहा है। और वह चाहते है कि उसे मुझे समर्पित कर दे, ताकि वह हरा-भरा बना रहे।" पडितजी ने स्थान देखकर बगीचा पसन्द तो किया, परन्तु दूसरी बात नही मानी और उसकी पूरी कीमत देकर अपने हृदय को विश्राम देने को और गाव के असहाय दुखी लोगो की हालत हृदयगम करने को उसे ले लिया। सन् '२० से ही जब जरा-सा भी अवकाश पाते, छोटे-से स्टेशन खुटवासा पर उतरते। हाथ मे दवाओ का बक्स अवश्य होता। तीन मील बिना किसी को सूचना दिए चल देते और वहा जा पहुचते जहा अपनी तरफ से बगीचे की देखरेख को रघुनाथ कोटवार को रख दिया था। उसकी रूपा नाम की एक दसवर्षीया कन्या भी थी। चतुर्वेदीजी महात्माजी के सुदामा जैसे भक्त थे। हाथ से कती, हाथ से बुनी खादी पहिनना, और अपने हाथ से पीसना आदि इनका व्रत था। हिरनखेडा से दो मील दक्षिण की तरफ सोभलवाडा ग्राम मे लाला मनोहरलाल भी स्वदेशप्रेमी खादीधारी अपना नाम रखकर रहते थे। उनकी भी पडितजी पर श्रद्धा हो गई थी, जब सुन पाते तो तुरन्त चलकर आश्रम (बगीचे मे) आ पहुचते और एक वालटियर की तरह अपने-आप खडे होकर जो कार्य होता सुचारू रूप से करने का भाव जाहिर करते।

यहा से ग्रामीण जीवन की अल्प-बुद्धि से थोडी जो बाते याद आती है लिखता हू।

पूज्य पडितजी आश्रम मे रात्रि के पिछले पहर मे चार बजे उठते, शौच आदि से फारिग होकर ठीक चार बजे प्रवचन प्रारम्भ कर देते। गीताजी का स्थित-प्रज्ञ आदि और शम्भु-पद-दर्शन के कुछ भजन बडे चाव से होते, कुछ गाव के सज्जन भी उस समय इकट्ठे हो जाते। फिर तुरन्त ही जगल की तरफ निकल देते। बहुत शीघ्र चलने के स्वभाव से कारण आप दूर निकल जाते, जब स्मरण आता पीछे फिरकर देखते तो साथ के लोग बहुत पीछे रह जाते, तो आप खडे हो जाते, उनके आ चुकने के बाद फिर चलना प्रारम्भ होता। इस तरह घूमकर आने के बाद ग्राम के दुखी प्राणी आश्रम मे आकर जमा हो जाते। फिर जितने भी बीमार लोग इकट्ठे होते उन्हे एक-एक करके बिना सकोच के घटो देखते और हरएक को अपने पास से औषधि देते। कुछ लोग ऐसे भी आते जो रोगी को वहा लाने मे असमर्थता बतलाते, तो अवकाश पाकर उसके घर जाते और रोग का अनुभव प्राप्त कर आश्रम मे आकर औषधि देते। मुझे खूब स्मरण है, यहा के आसपास और कुछ दूर की जनता को आपकी औषधि से सेंट-परसेंट लाभ हुआ। कठिन से कठिन रोगियो को भी पडितजी के अनुभव के अलावा उन्हे कभी शायद ही दवाए मिली हो। दवा खूब कारगर होती थी। चतुर्वेदीजी को चाय

की आदत थी, दूध थोडा हो, परन्तु इस निर्जन स्थान पर पैसा देकर भी नही मिलती थी। एक गाय खरीदनी पडी जिसका नाम साधना रखा, उसका सुदर्शन नामक सुन्दर बछडा था। उससे दूध का काम चलता। रोटी की जगह मैदान मे उपलो मे सिकी बाटी ही आप सिर्फ बना लेते थे। यहा शहर का तो क्या गाव का भी आडम्बर न था। मकान साधारण टप्पर। सोने को नीचे की जमीन। उसी पर आपका बिस्तर होता। साहित्यिक प्रेमी और देशभक्त आदि महानुभावो को इसका पता लग ही गया था। फिर क्या था। पडितजी को देखने लोग यहा आ पहुचते। उनमे से महात्मा भगवानदीन, प० सुन्दरलालजी, ठक्कर बप्पा, नागपुर के टिकेकरजी, हिन्दू-मुसलमान, हरिजन आदि सब पधारते और अभिन्न जीवन बिताकर सुख का अनुभव करते थे। बगीचा लगभग दो-ढाई एकड जमीन मे हिरनखेडा बस्ती से तीन फर्लांग पूर्व की तरफ एक विशाल तालाब के दक्षिण मे लगा हुआ है। इस तालाब मे लगभग आठ महीने एक सारस का जोडा रहता है। जब कभी इसका नृत्य हुआ करता। इसके अलावा इसमे तरह-तरह के जल के पक्षी—बगुला, चिडिया कोलाहल करते रहते। यहस्थान अग्रेजो के शिकार के लिए सुरक्षित बना था। धडाधड समय-समय पर बन्दूक के फैर (फायर) होते रहते। किन्तु कुछ दिन बाद लिखा-पढी करने से वहाँ की शिकार बन्द हो गई। इनके मझले भाई भी काग्रेस-प्रेमी होने के कारण अपनी सरकारी नौकरी छोड चुके थे। उनकी इच्छा इस स्थान मे एक विद्या-मन्दिर (जिसमे कम खर्च मे हाई स्कूल तक शिक्षा हो) खोलने की हुई, इससे अपने सब विनोद को तिलाजलि दे, पडितजी ने वहा सेवासदन विद्या-मदिर की स्थापना कर दी। यह विद्या-मदिर कुछ वर्षो तक खूब अच्छी तरह चला, दूर-दूर के छात्र इसमे पढने आते। बाद मे परिस्थितिवश यह बन्द करना पडा और चतुर्वेदीजी स्थायी रूप से खण्डवा मे ही रहने लगे।

दादा का प्रिय गांव : नादनेर

◇ ◇

डॉ० रेवाप्रसाद द्विवेदी

प० माखनलाल जी चतुर्वेदी के जीवन मे 'हिन्दी सेवा के लिए' उनके जन्म-स्थान बाबई से दस मील दूर नर्मदाजी के तट पर अवस्थित 'नादनेर' नामक गाव का उतना ही महत्त्व है जितना गोसाई तुलसीदासजी के जीवन मे सूकरखेत का। नादनेर मे भगवान राम का एक मदिर है। ७०-७५ वर्ष पूर्व यहा सस्कृत की पढाई भी होती थी। पढाने वाले थे दादा अर्थात् प० माखनलाल जी के चाचा प० वशीधर जी। बचपन मे चतुर्वेदी जी पास के बगलवाडा गाव से उनके चाचा जी के पास सस्कृत पढने नादनेर भेजे गए। उक्त मदिर मे लल्लूलालजी की प्रेम-सागर गर्भगृह के ऊपर बस्ते मे लिपटी रखी रहती थी। चतुर्वेदीजी का कहना था कि इसी प्रेमसागर से उन्हे हिन्दी की साहित्यिकता का प्रथम परिचय प्राप्त हुआ। उन्ही के शब्दो मे उनकी आखो मे साहित्यिक आसू पहली बार प्रेमसागर से आए। चतुर्वेदीजी भेजे गए थे पढने सस्कृत और प्रेमसागर था ग्रन्थ हिन्दी का। अत. गुरुजी ने उसे पढने से चतुर्वेदीजी को रोका। किन्तु चतुर्वेदीजी प्रेमसागर पर इतने मुग्ध हो चुके थे कि वे उसे गुरुवचन की अवज्ञा कर छिप-छिपकर पढने लगे। चतुर्वेदीजी इस विषय मे अपना चित्रणीय सस्मरण इस प्रकार सुनाते है···"जब गुरुजी देर के लिए बाहर जाते तो मैं प्रेमसागर निकाल लाता और घास की गजी या कटी फसल की पूरो से भरी गाडियो मे छिपे-छिपे औंधे लेटकर इसे पढता। मेरी चौकसी करती मदिर मे काम करने वाली कहार की एक लडकी। वह गुरुजी को दूर से ही आते देख मुझे सावधान कर देती। मैं भी प्रेमसागर का बस्ता बांध उसे झटपट यथास्थान रख आता। जब कभी पकड़ लिया जाता तो दण्ड भी पाता। प्रसन्नता की बात है कि यह प्रेमसागर इस मदिर मे आज भी सुरक्षित है।

नादनेर मे चतुर्वेदीजी के सहपाठी अभी भी विद्यमान है। उधर का कोई व्यक्ति जब चतुर्वेदीजी से मिलता था तो वे अपना साहित्य-चिन्तन बिसार देते

थे और नादनेर के अपने मित्रो मे से प्रत्येक की खबर ललक के साथ पूछते थे। वार्धक्य मे भी उन्हे प्रत्येक के नाम याद थे। नई पीढी के व्यक्तियो को चतुर्वेदी-जी के पूछे नाम कभी-कभी समझ मे नही आते। जिसे वह पटेल उमेदसिह आदि नाम से जानता है उसे चतुर्वेदीजी लेटू पटेल नाम से पुकारते थे। न समझने पर उसके परिवार का परिचय देते और नादनेर के उन गली-कूचो का भी उल्लेख करते। चतुर्वेदीजी की जीवनी लिखते समय श्रीबरुआ को नादनेर के मित्रो ने एक का नाम 'मोती' बतलाया। वे वहा से उस नाम के किसी अन्य व्यक्ति का चित्र ले आए। किन्तु चतुर्वेदी जी को लगभग छ दशाब्दिओ बाद भी उसे अपने मित्र का चित्र मानने का भ्रम नही हुआ। कितने सपुष्ट थे, चिर बिछुडे नादनेर के सस्कार 'भारतीय आत्मा' के वृद्ध और बहुशाखी मस्तिष्क मे ?

नादनेर के स्मरण मे चतुर्वेदीजी कहार बालिका का स्मरण अवश्य करते थे। उन्हे उसका नाम भी याद था। काल की सुदीर्घ सक्रान्ति व्यक्त करते हुए उस बालिका के लिए उनके मुख से ये शब्द अवश्य ही निकलते "अब तो वह बूढी होकर मर भी गई होगी।" मानो वे उसे एक बार जीवित देखना चाहते है। और उसके प्रति अपनी चिरसचित कृतज्ञता से उबरना चाहते हो। हिन्दी ससार जब कभी भी चतुर्वेदीजी के प्रेमसागर पढने की उक्त घटना का चित्राकन करेगा उस कहार बालिका को अवश्य ही स्मरण रखेगा। चतुर्वेदीजी गद्य-कवि के रूप मे अधिक विश्रुत है। यह घटना भी स्मरणीय है कि उन्हे हिन्दी की साहित्यिकता का प्रथम परिचय हिन्दी के गद्यग्रन्थ के द्वारा ही मिला। प्रेमसागर से चतुर्वेदीजी को हिन्दी की ओर प्रवृत्त पाकर लल्लूलाल जी की स्वर्गस्थ आत्मा भी अवश्य ही कृतकृत्यता का अनुभव कर रही होगी। माता नर्मदा के उत्तरी तट पर अवस्थित भगवान राम का वह मदिर भी हिन्दी साहित्य का तीर्थ है जहा चतुर्वेदीजी को प्रेमसागर का आकर्षण-मन्त्र प्राप्त हुआ।

चतुर्वेदीजी उक्त मदिर के सामने रखी हुई एक विशाल शिला पर बैठकर पढा करते थे। वे उसका भी स्मरण किया करते। प्रसन्नता की बात है कि वह शिला आज तक उसी स्थान पर उसी रूप मे स्थित है। परन्तु दुख की बात है कि भगवान राम का वह मदिर खडहर हो चुका है और वहा चतुर्वेदी का स्मरण दिलाने वाला कोई चिह्न नही है। भगवान की प्रतिमा और प्रेमसागर चतुर्वेदीजी के ही कुटुम्ब के एक परिवार के साथ सुरक्षित है।

पं० माखनलाल चतुर्वेदी

◆ ◆

ठाकुर लक्ष्मणसिह चौहान

चतुर्वेदीजी पहले खडवा मे रहते थे। वहॉ इनका विकास हुआ। अतएव निवास का प्रेम और उत्थान की कृतज्ञता इन्हे जकडकर खडवे मे रखना चाहती थी, परन्तु यहाँ तो मध्यप्रदेश का मानचित्र हृदय मे समाया हुआ था। खडवे की अटक इन्हे न अटका सकी। उन्होने जाग्रति के सूर्य का आभास देखने के लिए सुदूर क्षितिज पर दृष्टि दौडाई और देखा, कई अन्य भक्त भी अपने-अपने दीपक लेकर सूर्य की पूजा को तैयार है।

श्रीयुत् चतुर्वेदीजी के सम्पादकत्व मे 'कर्मवीर' ने मध्यप्रदेश की जो सेवा की है उसको आज मध्यप्रदेश की सीमा के बाहर का भारतवर्ष भी जानता है, क्योकि 'कर्मवीर' अपने छोटे-से जीवन मे प्रान्तीय ही नही, भारतवर्षीय हो रहा है।

नौकरशाही इस जाग्रति के प्रवर्त्तक को कब तक अपनी प्रकाशमय झॉकी का विस्तार करने देती[1] उसके छोटे-मोटे प्रयत्न व्यर्थ हुए। अन्त मे, वह अपना शैतानी अन्धेर लेकर चतुर्वेदीजी पर टूट पडी और परिणाम यह हुआ कि वे बिलासपुर की जेल मे कैदी हुए। उनका अपराध था कि उन्होने सच बात कही कि "सन् सत्तावन मे हमारे जो बाप-दादे लडे, वे बहादुर थे (कायर कभी लड नही सकते)। ब्रिटिश राज के प्रेस एक्ट ने हमे नामर्द बना दिया है।" दूसरी सच बात चतुर्वेदीजी ने यह कही कि डेढ सौ साल के अन्दर ब्रिटिश सरकार सिर्फ दस फीसदी हिन्दुस्थानियो को पढा सकी (इसको मजिस्ट्रेट साहब अस्वीकार नही करते)। तीसरी सच बात यह थी कि सरकार की नीति देश के हित के विरुद्ध है। चौथी बात यह कही कि हमारे यहॉ के स्वदेशी कपडे के व्यापार को नष्ट करने के लिए कम्पनी के नौकरो ने जुलाहो के अगूठे काट डाले। ये पुलिस के शब्द है, किन्तु सच है कि कम्पनी के नौकरो से तग आकर जुलाहो ने अपने अँगूठे काट डाले। पाँचवी सच बात यह थी कि हिन्दुस्थान मे अग्रेजो लोग मुट्ठी भर है, यदि

---

१. १९२१ का एक संस्मरण

हम चाहे तो उनका कचूमर कर डाले, किन्तु कम तादाद वाले अग्रेजो को मारना कायरता और नीचता है। छठवी सच बात यह है कि सरकार को धोखा देने मे हम सफल नही हो सकते क्योकि ब्रिटिश गवर्नमेट से हम धोखेबाजी मे नही जीत सकते और सातवी सच बात चतुर्वेदीजी ने यह कही कि हम अहिंसात्मक असहयोग से इस सरकार की बिजली बुझा देना चाहते है।

मजिस्ट्रेट भी स्वीकार करते है कि चतुर्वेदीजी ने हिंसा का प्रचार नही किया। वे इसका भी सबूत कही नही पाते कि उनके भाषण का जनता पर क्या असर हुआ, तो भी वे ऐसा कहते है कि बाते चाहे सच हो, तो भी अगर वे ऐसी है कि उनसे सरकार के प्रति घृणा उत्पन्न होती हो तो वे सच बाते कहना राजद्रोह है, इसलिए चतुर्वेदीजी को गत ५ जुलाई, १९२१ को आठ मास की कडी जेल दी गई।

पाठक ! फैसले पर मुसकराना नही, न शका करना कि इस फैसले मे कुछ रहस्य है। हमारी ब्रिटिश सरकार अपने मजिस्ट्रेटो को गुप्त आज्ञाएँ जरूर भेजती है। हम उन्हे नही जानते। परन्तु हम यह जानते है कि चतुर्वेदीजी ने सुस्त मध्यप्रदेश मे नई जान फूँक दी थी। नरसिंहपुर के नवाबो की नवाबी प्रकट की थी और उनके द्वारा सचालित 'कर्मवीर' निर्भयतापूर्वक स्वतन्त्रता की भेरी बजा रहा था।

नरसिंहपुर के कुशासन की जॉच का प्रश्न उठाने पर कौसिल मे होम मेम्बर मि० जोशी ने ४ मार्च, १९२१ को कहा था कि कर्मवीर के सम्पादक प० माखनलाल चतुर्वेदी पर मुकदमा चलाने का प्रश्न मजूरी के लिए सरकार के पास गया है। स्पष्ट है कि यह मुकदमा चलनेवाला था नरसिंहपुर के कुशासन की निर्भीक आलोचना करने पर किन्तु सरकार ने मजूरी दी बिलासपुर के १२ मार्च के भाषण के लिए चतुर्वेदीजी पर मुकदमा चलाने की।

इस प्रकार ऊधव का बदला माधव के बहाने लिया गया और वह भी जब चतुर्वेदीजी बीमार थे। अत्यन्त आग्रह करने पर परिषद् मे वे शायद दस-पन्द्रह मिनट बोले और इतने धीरे-धीरे कि पास के लोग भी कठिनाई से सुन पाते थे। उनके भाषण के बीच मे पडाल की रोशनी भी बुझ गई थी। वह भाषण विघ्नपूर्ण अवश्य था, पर सरकार ने उसे राजद्रोहपूर्ण माना।

उस दिन पडाल मे दो सब इस्पेक्टर और दो ई० ए० सी० व्याख्यानो के नोट लेने गए थे। सरकार ने उनमे से दो सीनियर (अधिक साल के) अफसरो को गवाही मे नही बुलाया किन्तु नये अफसरो को गवाही मे बुलाया और बुलाया जमीदार कहलानेवाले एक व्यक्ति को, जो कहा जाता है चतुर्वेदी के भाषण के समय नही था, किन्तु दूसरे दिन पहले-पहल परिषद् मे आया था। सरकार का 'जी हुजूर' होने के कारण जनता ने जिसका स्वागत तालियाँ (उपेक्षा से) पीटकर

किया था।

खैर, सरकारी अदालत तो ठहरी, फैसला दे दिया गया। चतुर्वेदीजी ने असहयोगी होने के कारण अपनी तरफ से कोई पैरवी नही की। फैसला सुनकर लोगो और समाचारपत्रो के मुँह से यही निकला—'बेचारा जज क्या करे, उसे अपनी नौकरी का भी तो खयाल था, उसने एक साल की सजा नही दी, यह क्या कम किया।'

फैसला न्याय करने की इच्छा और किसी दबाव के नीचे झुकने की व्यवस्था, न्यायी-भाव और अन्यायी-क्रिया, आत्मा और शैतान के द्वन्द्व का चित्र है और उसका परिणाम अन्याय और शैतान की विजय यह स्वाभाविक था। फैसले के बाद ही चतुर्वेदीजी के हृदय ने स्वराज्य के द्वार और श्रीकृष्ण-जन्मस्थान (जेल) मे जाकर शान्ति पायी और सज्जन मजिस्ट्रेट के दु खित हृदय ने कुछही दिन बाद शान्ति पायी मृत्यु की गोद मे, जहाँ वे पापियो की आज्ञा मानने को बाध्य नही होगे। किन्तु, सरकार लोगो के कुतर्को को सुनकर मृत मजिस्ट्रेट के पीछे एक सर्टिफिकेट लेकर दौडी। उसने सी० पी० गजट मे मि० पारधी की मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए इस बात पर जोर दिया कि वे न्यायात्मा अफसर थे।

न्याय का परिणाम यह हुआ कि जिस आदमी के जीवन का सिद्धान्त अहिसा हो, जिसका ध्येय हो 'शत्रुओ पर भी हो न प्रहार' (—भारतीय आत्मा), जिसका हृदय माखन के ही समान कोमल हो और जिसने बात सच कही हो, किन्तु कही हो जीवित शब्दो मे, वह व्यक्ति ब्रिटिश जेल गया। किन्तु, जेल मे जाते हुए उनके ये शब्द आज भी उनकी आत्मा को हमसे अविभिन्न कर रहे है

पिंजडे के द्वार कहता हूँ,
मुझे याद रहो।
कौम को जिन्दा रखो,
जीते रहो शाद रहो।।
फूलो के हार नही
हार से हटना सीखूँ।
प्यारी जजीर से जाने दो
लिपटना सीखूँ।।
लेके ढेरा मजे से रस्सियाँ
बटना सीखूँ।।
धक्के खाते हुए स्वच्छन्द हूँ
ये रटना सीखूँ।।

० ०

मातृ-वेदी पर था बलिदान
तो होने ही को था।
आज या कल यहाँ मेहमान
तो होने ही को था।।

कसाईखाना बंद होकर रहा

(आज से अडतालीस वर्ष पूर्व अपने प्रात के रतौना नामक एक अनजाने गाव मे अंग्रेज कम्पनी ने भारतीय शेयर-होल्डरो की मदद से २५०० गाये रोज काटनेवाला एक बहुत बडा कसाईखाना बनाना शुरू किया था। अपने विख्यात साप्ताहिक 'कर्मवीर' द्वारा प० माखनलाल जी ने उसका ऐसा विरोध किया कि फिरगी कम्पनी को घुटने टेकने पडे। यहाँ उक्त आन्दोलन का सक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है। मध्यप्रदेश का यह पहला आन्दोलन था जिसमे ब्रिटिश शासन को घुटने टेकने पडे थे।)

सन् १९२०। प० माखनलाल चतुर्वेदी बम्बई जा रहे थे। वे पाइनियर पढ रहे थे। उसके विज्ञापनो मे उन्होने 'सेन्ट्रल प्रॉविन्सेस ट्रेनिंग एण्ड ट्रेडिंग कम्पनी' का विज्ञापन पढा। इस कम्पनी का कसाईखाना सागर जिले के रतौना ग्राम मे खुलने वाला था। उन्होने आगे बढना अनुचित समझा और चालीसगाव स्टेशन पर उतर पडे। थोडे ही घटे प्रतीक्षा करने के बाद वे नई टिकट लेकर जबलपुर होकर कलकत्ता की ओर जाने वाली बम्बई मेलमे बैठ गए और खण्डवा पहुँचते ही उन्होने पहला अग्रलेख इस गोवध के खिलाफ १७ जुलाई, सन् १९२० को लिखा।

उस समय 'कर्मवीर' मे एक अग्रलेख लिखा जा चुका था। वह रुकवाया गया। स्वर्गीय ठाकुर लक्ष्मणसिह जी 'कर्मवीर' के सहायक सपादक थे। उन्होने सब व्यवस्था की। स्वर्गीय प० पूज्य माधवरावजी सप्रे को बहुत सुख हुआ कि 'कर्मवीर' मे गोवध के खिलाफ चर्चा आ रही है। उन्ही की सलाह पर अग्रलेख मे जाने वाली प्रतिक्रिया उस युग के 'कर्मवीर' का महान आन्दोलन बन गई। 'कर्मवीर' के जुलाई, १९२० से लेकर दिसम्बर, १९२० तक के अक इसी रतौना आन्दोलन से भरे पड़े है। एक विभाग ही 'रतौना विभाग' कहकर खोल दिया गया

था जिसमे इस सबध की विस्तृत प्रतिक्रियाए प्रकाशित होती थी।

उस समय जबलपुर के मौलाना ताजुद्दीन ने अपने 'ताज' साप्ताहिक मे उर्दू मे लेख लिखकर इस आन्दोलन को बल पहुचाया जिसमे जबलपुर के श्री अब्दुल हासिद साहिब भी सम्मिलित थे। इस आन्दोलन की सफलता के लिए चतुर्वेदीजी लाला लाजपतराय जी के पास लाहौर भी गये क्योकि वे उस समय अखिल भारतीय काग्रेस के कलकत्ता मे होने वाले विशेष अधिवेशन के अध्यक्ष होने जा रहे थे। चतुर्वेदीजी ने उपर्युक्त कम्पनी की रचना का कच्चा चिट्ठा कम्पनी सम्बन्धी कागजो के साथ स्वर्गीय लालाजी के सामने रख दिया, परिणामत लालाजी ने अपने उर्दू दैनिक 'वन्दे मातरम्' मे इस कम्पनी के खिलाफ अग्रलेख लिखे और सितम्बर मे होने वाले काग्रेस के विशेष अधिवेशन मे अपने भाषण मे इसका उल्लेख किया और प्रस्ताव रखे जाने की चर्चा होने लगी कि इतने ही मे स्वर्गीय प० विष्णुदत्त शुक्ल के नाम पर मध्यप्रदेश सरकार का तार आ गया कि रतौनी का कसाईखाना रोक दिया गया।

यह उल्लेख करना आवश्यक है कि उन दिनो मराठी के पत्रो ने तथा 'अमृत बाजार पत्रिका' ने इस आन्दोलन मे बहुत साथ दिया। यो तो सारे भारत के पत्रो ने ही इस चमडा कमाने वाली सरकारी कम्पनी का विरोध किया और हिन्दी पत्र प्राय सम्पूर्ण रूप से इस कम्पनी का विरोध करते रहे। मध्यप्रदेश का एक अग्रेजी साप्ताहिक तथा छिंदवाडा से निकलने वाला 'युद्ध समाचार' नाम का हिन्दी साप्ताहिक इस आन्दोलन का विरोध करते रहे।

जब चतुर्वेदी जी कलकत्ता गये तब विचित्र दृश्य देखने को मिला। सी० पी० ट्रेनिग एण्ड ट्रेडिंग कम्पनी के शेयर बेचने का उत्तरदायित्व कलकत्ता की जिस डेबनपोर्ट कम्पनी ने ले रखा था, उसका साथ देने वाले हिन्दू और मुसलमान कर्मचारी उससे अलग हो गए थे। कलकत्ता के मारवाडी सज्जनो ने तो यह कहकर चतुर्वेदीजी की भर्त्सना भी की कि मध्यप्रदेश के कितने ही बडे-बडे हिन्दुओ ने इस गोहत्या कम्पनी के शेयर खरीद रखे है। स्वर्गीय श्री बसन्तलाल मुरारका और स्वर्गीय श्री पद्मराज जैन के प्रभाव और प्रयत्नो से चतुर्वेदी जी को वह फेहरिस्त प्राप्त हो गई जिसमे उक्त गोहत्या कम्पनी के शेयर खरीदनेवालो के नाम थे। चतुर्वेदी जी अत्यत लज्जित हुए कि मध्यप्रदेश के बडे-बडे धर्मध्वजियो ने कसाईखाने के शेयर खरीद रखे थे। जब उन्होने यह फेहरिस्त स्व० दीवान बहादुर बल्लभदास जी तथा वर्धा जाकर स्वर्गीय जमनालालजी बजाज को बताई तो वे भी उक्त कम्पनी के हिस्सेदारो के नाम पढकर अचम्भा करने लगे।

उन दिनो हिन्दू धर्माचार्यों ने तो इस कसाईखाने का विरोध किया ही था, मुस्लिम तथा सिक्ख धर्माचार्यों ने भी इसका विरोध किया था। चतुर्वेदीजी एक मुस्लिम नेता की यह बात आज भी नही भूलते कि जब उन्होने उन्हे लिखा

था कि एक महीने मे एक मुसलमान की थाली मे कभी-कभी ही गोमाँस पहुँचता है किन्तु एक अग्रेज की थाली मे वह एक दिन भी गैरहाजिर नही रहता। उन दिनो इस आदोलन का ऐसा जोर बढा था कि देश भर मे इस विषय पर लेखो, कविताओ का ताँता-सा लग गया था। 'कर्मवीर' के अग्रलेखो को अन्य भाषाओ मे अनुवादित करके प्रकाशित किया जा रहा था। इस देश की और विशेषत इस प्रान्त की गौशालाओ की स्थापनाओ की तिथियो पर ध्यान दिया जाय तो इक्के-दुक्के बहुत बडे शहरो को छोडकर अधिकाश गौशालाए उन्ही दिनो स्थापित हुई थी।

चतुर्वेदीजी के खिलाफ ब्रिटिश सरकार का रुख बेहद कठोर हो गया था और स्वर्गीय दीवान बहादुर बल्लभदास जी से तत्कालीन अग्रेज होम मेम्बर ने कहा था कि या तो अगस्त माह के भीतर-भीतर यह आन्दोलन बन्द होना चाहिए या प० माखनलाल चतुर्वेदी को सरकारी मेहमान (जेल) होने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।[१]

---

१ चतुर्वेदी से प्राप्त विवरण के आधार पर श्रीकान्त जोशी द्वारा प्रस्तुत।

ये है उस युग की कहानी

○ ○

भाई अब्दुल गनी

पूज्य श्रद्धेय दादा प० माखनलालजी चतुर्वेदी का सागर जिला और मध्य-प्रदेश सदैव इसलिए ऋणी रहेगा कि उनके द्वारा सपादित 'कर्मवीर' ने अग्रेज सरकार द्वारा रतौना पर खोले जाने वाले कसाईखाने को बन्द कराने मे विजय दिलवाई।

रहली (सागर) मे तहसील काफ्रेस ने जिसके अध्यक्ष प० माखनलाल चतुर्वेदी थे, सर्वप्रथम असहयोग आन्दोलन का बिगुल बजाया था। बारडोली की तरह रहली को सत्याग्रह का केन्द्र चुना गया था।

सन् १९२१ मे असहयोग आन्दोलन मे मै गिरफ्तार किया गया और एक साल कैद की सजा दी गयी। मैं सागर जेल मे फॉसी मिलने वालो के गुनहखाने मे रखा गया कि मै किसी तरह माफी माग लू। उसी समय खडवा से गिरफ्तार होकर श्री अर्जुनलाल सेठी सागर जेल मे रखे गए। मुझे सागर से बिलासपुर जेल भेज दिया गया। उसी दिन पूज्य दादा प० माखनलाल चतुर्वेदी गिरफ्तार होकर बिलासपुर जेल मे आ बिराजे।

बिलासपुर का जेल दादा की गिरफ्तारी के सबब से और उनसे सलाह-मशवरा लेने के लिए प्रान्तीय नेताओ का अखाडा बना हुआ था। स्व० सुभद्रा-कुमारी चौहान, लक्ष्मणसिंह चौहान, बेरिस्टर राघवेन्द्रराव, ठाकुर छेदीलाल ये सब के सब दादा से मिलने आते थे। आज ये सभी साथी मुझे और दादा को छोड-कर चल बसे है। उन दिनो सेठ गोविन्ददास जी राजनीति मे नही उतरे थे।

जेल मे दादा मेरी पूरी खबर रखते। मेरी उम्र उस समय बीस साल की थी। दादा रोज हलुवा बनाकर भेजते। मैं अपनी फरमायश बिल्ली के बच्चे की पूछ मे चिट्ठी लिखकर भेजता। बिल्ली का बच्चा पोस्टमैन का काम करता। सभी खबरे हमे रोज मिलती रहती। जेल की सजा हँसकर कट रही थी। दादा को नौ माह की सजा हुई थी। इसके बाद मौलवी अब्दुल लतीफ सिवनी से गिरफ्तार

होकर बिलासपुर जेल मे भेजे गये । डॉ० बी० बी० राय (विधान सभा सदस्य) के पिता बिलासपुर जेल के जेलर थे। डॉ० राय छोटे से बालक थे जो रोज हम लोगो से मिला करते थे और समाचारपत्र पढने के लिये दे जाते थे ।

असहयोग आन्दोलन चौरीचौरा काड से बद हो गया। सन् १९२३ मे राष्ट्रीय तिरगे झडे को लेकर जबलपुर और नागपुर मे सत्याग्रह छिड गया। जबलपुर के टाउनहॉल पर राष्ट्रीय झडा लगाने पर तपस्वी प० सुन्दरलाल (प्रान्तीय कॉग्रेस के अध्यक्ष) गिरफ्तार कर लिये गए । नागपुर की सिविल लाइन मे झडा ले जाने पर गिरफ्तारियॉ शुरू हो गयी । इस सत्याग्रह का सफल नेतृत्व दादा ने किया । बालाघाट से सत्याग्रह करने जत्थे के जत्थे आने लगे । दादा के बुलाने पर हम लोग नागपुर जा पहुँचे । पुलिस कामठी मे ही ट्रेनो मे धर-पकड करने लगी । हजारो लोगो के आने, ठहरने और खिलाने का इन्तजाम दादा करते थे । स्व० जमनालाल बजाज, पूनमचन्द रॉका, बैरिस्टर नरकेशरी अभ्यकर इतने बडे सत्याग्रह का सचालन कर रहे थे । चारो तरफ से जत्थे के जत्थे तिरगा लहराते चले आ रहे थे । मुझे, भाई रामकृष्ण पाडे और दुर्गाप्रसाद जैन को सिविल लाइन मे घुसते हुए गिरफ्तार कर सात-सात माह की कैद की सजा देकर नागपुर सेण्ट्रल जेल मे ठूस दिया गया । दादा ने मुझसे कहा कि अभी जेल मत जाओ, क्या जल्दी है ? नागपुर मे पुलिस ने रहना, सोना, खाना हराम कर दिया। खडवा जेल से समझौता होने पर स्व० सत्यदेव विद्यालकार आबिदअली के साथ मैं छोड दिया गया । यह समझौता स्व० सरदार पटेल और सरकार के बीच हुआ था। इस झडा सत्याग्रह के बाद दादा 'प्रभा' का सपादन करने कानपुर चले गए और मै 'समालोचक' नामक साप्ताहिक पत्र का सपादन करने लगा ।

एक संस्मरण

० ०

शुकदेवप्रसाद तिवारी 'निर्बल'

बात है सन् १९२० की। देश मे महात्मा गाधी के नेतृत्व मे 'सत्याग्रह आन्दोलन' जोरो पर था। हिन्दू मुस्लिम ऐक्य का बोल-बाला था। सुहागपुर मे शताब्दियो से हिन्दुओ के डोल जो प्रतिवर्ष भाद्रपद शुक्ल की ग्यारस को घाट पूजने नदी पर जाते थे, वे छीपापुरा मस्जिद के सामने होकर ही जाया करते थे। सन् १८५७ से उस समय जब कि डोल और ताजिये साथ ही निकलने का अवसर आया था एव भयकर हिन्दू-मुस्लिम दगा हुआ था। इसके पश्चात् सन् १९०७ मे भी एक बार और ऐसा ही मौका आया था। सन् १९२० मे भी ऐसी घटना घटते-घटते बची, कारण कि उस रास्ते भर मे मुसलमानो की आबादी थी और मस्जिद थी।

मैं उन दिनो सुहागपुर तहसील मे एकमात्र कॉंग्रेस कार्यकर्ता था। जब सन् १९२० मे डोल निकलने का समय आया तब इस विषय पर विचार करने के लिए एक समिति बनी। इसमे बुरहानपुर से अब्दुलकादिर सिद्दीकी, जबलपुर से एक काजी जी, गनेरा से दीवान लक्ष्मणप्रसाद, सुहागपुर से सेठ मुराद खाँ, हाजी सेठ इशहाक जी, सेठ सुलेमान जी, प० रामदयाल जी दुबे, पटेल मिस्त्री रघुनाथ सहाय जी व श्री प० धनराजप्रसाद जी तिवारी और प० दशनारायण तिवारी आदि सम्मिलित हुए तथा इस समिति की अध्यक्षता करने को प० माखनलाल चतुर्वेदी जबलपुर से बुलाए गए।

विचार-विमर्श होने पर अत मे चतुर्वेदीजी ने मार्ग बदलकर डोलों को बाजार की ओर से जाने का सुझाव रखा और बतलाया कि इस नये मार्ग पर विशेषत हिन्दुओ के ही घर है, श्री बिहारी चौक और बाजार चौक है। अत उत्सव यहाँ अच्छा होगा। बात ऐसी थी कि प्राय सभी उपस्थित सज्जनो को स्वीकार हुई। कागज लिखा गया और सब उपस्थित सज्जनो के हस्ताक्षर हुए। तब से अभी तक बडी धूम-धाम से डोलोत्सव यहाँ मनाया जाता है। देहात के

हजारो आदमी इसे देखने आते है। इस कारण सुहागपुर के इतिहास मे श्री चतुर्वेदीजी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा।

सन् १९४७ मे जब मैं सुहागपुर नगरपालिका का बालिग मताधिकार के आधार पर अध्यक्ष हुआ तब ताजियो का मार्ग और चौक अलग निर्धारित कर सदा के लिए ही झझट मिटा दिया गया।

'कौन कहता है कि तुम वृद्धत्व मेरे पास आये'

○ ○

डॉ० राम बिल्लौरे

"प० माखनलाल चतुर्वेदी वर्तमान हिन्दी गद्य के 'साहित्य देवता' के नाम से विख्यात थे···कवि रूप मे वे 'एक भारतीय आत्मा' तथा राष्ट्रसेवी के रूप मे 'चतुर्वेदीजी' के नाम से सुप्रसिद्ध थे। हिन्दी के सम्मेलनो मे उन्हे 'डिक्टेटर' के रूप मे सबोधित किया जाता था।"

विद्वद्वर डॉ० रामचरण महेन्द्र द्वारा उल्लिखित उक्त तीन रूपो के सिवा श्रद्धेय चतुर्वेदीजी का एक रूप और रहा जो उनके कवि को राष्ट्रसेवी की दृढता भरी लगन, और डिक्टेटर को वस्तु के आर-पार देखकर अपना निर्णय देने तथा विरोधियो से भी उसे मनवा ले जाने की शक्ति, साहस और धैर्य प्रदान करता है और वह है—बीतते हुए वर्षो के प्रभाव से इनकार करने वाला उनका चिरबदी तारुण्य जिससे उन्होने कहा है

चल रही घडिया
चले नभ के सितारे,
चल रही नदियाँ
चले हिमखण्ड सारे।
चल रही है सास
फिर तू ठहर जाये ?
दो सदी पीछे कि
तेरी लहर जाये ?

श्री चतुर्वेदीजी के दुबले शरीर पर जेल-जीवन के कष्टो तथा भयकर गरीबी मे भी परिस्थितियो को ठोकर मारकर अपने लिये आमत्रित की गई मुसीबतो के घाव स्थायी रूप से घर कर गये थे जिन्हे सम्हालने के लिए एक छोटा-मोटा अस्पताल-सा सदा उनके साथ रहता था, किन्तु शरीर की रुग्णता का उनकी आँखो पर जिनसे महाकौशल के राष्ट्रीय जागरण का इतिहास झाँकता, कला पर जिससे

चिर तारुण्य के गीत नि सृत होते रहते, तथा व्यवहार की मिठास, ताजगी और तेजी पर कोई प्रभाव नही पडने पाता ।

चतुर्वेदीजी का बाल्यकाल सूझ, शरारत और साहस के ताने-बाने से बुना हुआ था। दुबले-पतले बालक माखन को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए इनके पिताजी ने एक गाय खरीदी, जिसके दूध पर प्राय इन्ही का एकाधिकार रहता था। किन्तु आगे चलकर उसके दो हिस्सेदार और खडे हो गए—एक तो रुग्णा बहन और दूसरा कबरी बिल्ली का बच्चा। जब यह हिस्सेदारी असह्य हो उठी तो शरारती माखन ने दोनो को एक साथ मजा चखाने का एक अनोखा तरीका आजमाया। एक बार बहन तेज बुखार मे पडी थी। बिलाव को उसके सिरहाने रखा दूध चट करने का अच्छा मौका मिला, किन्तु माखनलाल भी ताक लगाए बैठे थे। बिलाव दूध पीने मे मग्नहुआ और इन्होने उसकी पूछ कसकर पकड ली। खीचतान मची। बहन यह दृश्य देखकर भय से कॉप रही थी किन्तु माखन की दृष्टि मे इतना दण्ड शायद पर्याप्त नही था, इसलिए उन्होंने उस नन्हे बिलाव को लेटी हुई बहन पर दे मारा। चीख-पुकार सुनकर मा दौडी आयी। तब तक बिलाव और माखन दोनो पलायन कर चुके थे। बहन पसीने मे लथपथ बेहोश-सी पडी थी। इस आकस्मिक धक्के से उसका ज्वर तो उतर गया किन्तु माँ उस दिन नटखट माखन को चॉटो से गरम किए बिना नही रही।

जब माखन की शरारते सीमातीत होने लगी तो पिताजी ने उसे एक ऐसे अध्यापक के सिपुर्द कर दिया जिनके ज्ञान की अपेक्षा सोटे की धाक अधिक मान्य थी। उनका विशुद्ध नाम तो था बलवत भट्ट, किन्तु भाषा-विज्ञान के मुख-सुख नियमानुसार लोगो को उन्हे बालम भट्ट कहने मे विशेष सुविधा होती थी। माखनलालजी की प्रारम्भिक कविताओ के गिने-चुने आलम्बनो मे से एक बालम भट्ट भी थे, सम्भवत आगे चलकर 'कृष्णार्जुन-युद्ध' मे गालव के शिष्य शख और शशि को लेकर निर्माण किया गया सुन्दर एव निर्दोष हास्य बालम भट्ट की सस्कृत पाठशाला का ही आभारी हो। भाग्य से ही ऐसा कोई दिन निकलता जब बालम भट्ट का सोटा माखन के हाथ-पॉव और पीठ का मुआइना न करता, कभी सिद्धात कौमुदी और अमरकोश कारण बनते तो कभी इनकी शरारते गुरुजी को इन्हे पीटने के लिए लाचार करती। बालम भट्ट को 'भाखा' ग्रन्थो से चिढ थी और माखनलाल भाखा मे लिखी प्रेमसागर पर बेहद लट्टू थे। गॉव के मदिर मे प्रेम-सागर की एक प्रति रखी रहती थी। पुजारी की उपस्थिति मे किसकी मजाल थी कि उसे छूता और पुजारीजी कही जाते तो मदिर मे ताला बन्द करके जाते। किन्तु 'जो आशिक है वो साहब फादकर दीवार आता है' वाली पक्ति के इस भावी कवि ने आशिको की इसी परम्परा का पालन किया। पुजारी के पीठ फेरते ही माखनलाल दीवार फॉदकर मदिर मे जा बैठते। दो-तीन दिन तो यह साधना

निर्विघ्न चलती रही। सम्भवत आगे भी चलती रहती किन्तु प्रेमसागर पढने की भूख के साथ-साथ कपि-स्वभाववश रूख तोडने की आदत भी तो ये साथ लिये चलते थे। मन्दिर खोलने पर पुजारीजी देखते कि गोपाललाल जी ने श्रीजी का मुकुट धारण कर लिया है और श्रीजी उनका मुकुट पहनकर गोपालकृष्ण बनने का उपक्रम कर रही है। अन्य देवताओ ने भी अपने-अपने स्थान परिवर्तित कर दिये है और भोग लगाने के लिए रखे हुए प्रसाद मे उत्तोत्तर गड्ढा पडता जाता है। भक्ति-भीने स्वर मे पुजारी जी ने इस चमत्कार की कथा बालम भट्ट से कही। तर्कशास्त्री बालम भट्ट इसे स्वीकार करने को तैयार नही थे। एक दिन जब हमारे नन्हे साधक निश्चिन्त भाव से अपनी साधना मे लीन थे कि मदिर का द्वार खुला, पुजारीजी के पीछे भीमकाय बालम भट्ट भी थे। उस दिन प्रेमसागर के इस भक्त की जिस प्रेम से पूजा हुई वह अभूतपूर्व थी।

इसके लगभग तीस वर्ष बाद की घटना है। श्री देशबन्धु विद्यालकार अपनी धनुर्विद्या के प्रदर्शन के लिए खडवा आये थे (उस समम तक वे गुरुकुल कॉगडी के मुख्याधिष्ठाता नही हुए थे)। स्थानीय जैन धर्मशाला मे उन्होने अपना प्रदर्शन किया। उनका एक प्रयोग ऐसा था जिसमे दर्शको मे से किसी की ऑख पर ढीले कॉच वाला एक चश्मा चढा दिया जाता था और फिर एक साथ दो बाण छोडकर उन कॉचो को गिरा दिया जाता था। धर्मशाला का प्रेक्षागृह सब श्रेणी के दर्शको से खचाखच भरा था। विद्यालकारजी ने उक्त प्रयोग के लिए किसी नवयुवक का आह्वान किया। कोई हिला तक नही। छोडे हुए बाण चश्मे के कॉंचो के साथ ऑखो की पुतलियो को भी ले बैठे तो ? दस मिनट की प्रतीक्षा के बाद जब प्रदर्शक के मुख पर निराशा और क्षोभ की रेखाएँ उभरने लगी थी, उसी समय प्रथम श्रेणी के दर्शको मे से एक क्षीणकाय मूर्ति उठी। स्व० श्री आगरकरजी तथा अन्य मित्र जब तक यह कहकर रोके कि आप अति साहस कर रहे है तब तक तो चतुर्वेदीजी ने प्रदर्शक का चश्मा अपनी ऑखो पर चढा लिया था। देशबन्धुजी के बाण छूटे और चश्मे के काचो को गिराते हुए निकल गये। दर्शक जहॉ देशबन्धुजी के कौशल पर विस्मित हुए वहॉ मुट्ठी भर हड्डियो वाले माखनलालजी के साहस और धैर्य पर भी उन्हे कम आश्चर्य नही हुआ। उस समय तक एक-दो मित्रो को छोडकर सम्भवत कोई नही जानता था कि चतुर्वेदीजी क्रातिकारी दल के एक प्रभावशाली सदस्य है अन्यथा उन्हे आश्चर्य न होता।

सन् १९३७ की बात है। मैं इदौर क्रिश्चियन कॉलेज का विद्यार्थी था। एक दिन मुझे खडवा से पिताजी का पत्र मिला कि 'पूज्य दादा (चतुर्वेदीजी) सख्त बीमार है। उनके पेट के फोडो का आपरेशन होने वाला है। जीवन-मरण का प्रश्न है। शीघ्र चले आओ।' इससे पूर्व मैने सुना था कि पूज्य दादा का जीवन

अनेक प्रकार के सकटो मे गुजर रहा है। यह बीमारी सकटो की माला मे सुमेरु बन गई। खडवा पहुँचकर मैं सीधे अस्पताल गया। मझली दीदी (पू० दादा की मझली बहन) फेमिली वार्ड के बरामदे मे चितित मुद्रा मे खडी थी। उनसे ज्ञात हुआ कि पिछली रात दर्द के कारण दादा सो नही पाये। अब जरा झपकी लगी है। मै बाहर ही ठहरा रहा। दादा के कमरे मे सन्नाटा था। अधखुले दरवाजे से एक बिल्ली किसी शिकार पर त्राटक बाँधकर बैठी हुई दिखाई पडती थी। मैं जीजी से दादा के स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे और अधिक जानकारी हासिल करता रहा। उन्होने कहा, 'स्वय डाक्टर भी आपरेशन के सम्बन्ध मे चिंतित है। प्रभु जाने कैसे बेडा पार लगेगा।' हम लोग यो चर्चा कर ही रहे थे कि बिल्लीकी पीठ पर धप्प से एक मोसम्बी लगी और वह जोर से उछलकर स्टूल पर रखी तश्तरी को गिराती और तोडती हुई भागी। मैने जीजी से पूछा, 'भीतर और कौन है ?' बोली, 'कोई तो नही।' मैं भीतर पहुँचा। दादा के रुग्ण-पीत मुख पर हल्की-सी मुसकान थी। बिल्ली पर निशान ठीक जम जाने के कारण उन्हे ऐसा ही सतोष था जैसा बाजी जीतने पर किसी बच्चे को होता है। मै प्रणाम करके उनके निकट ही कुर्सी पर बैठ गया। थोडी देर बाद डाक्टर आये। स्ट्रेचर आया और दादा को आपरेशन के लिए ले जाया गया। उस आपरेशन के लिए जिसके सम्बन्ध मे स्वय डाक्टर भी चिंतित थे। अनेक मित्र इस अवसर पर वहाँ एकत्रित हो गये थे। सभी चिंतित थे, मगर दादा की पेशानी पर एक भी बल नही था। प्रारम्भ से ही दुर्बल शरीर, अनेक प्रकार के सकटो की माला, फिर यह भयकर बीमारी व जीवन-मरण का निर्णायक आपरेशन, तिस पर बिल्ली पर निशाना साधने एव निश्चिन्त भाव से यो मुसकराने की वृत्ति। मुझे दादा की यह कविता-पक्ति स्मरण हो आयी—"कौन कहता है कि तुम वृद्धत्व मेरे पास आये ?"

एक भेंट : एक इतिहास

◇ ◇

अनोखेलाल अरझरे

श्रद्धेय प० माखनलालजी चतुर्वेदी से मेरा सम्पर्क लगभग सन् १६२५-२६ से प्रारभ हुआ, शायद इसी वर्ष 'कर्मवीर' का प्रकाशन जबलपुर से बन्द होकर खडवा से शुरू हुआ था। इसके पूर्व भी जब वे राजनैतिक दौरो पर खण्डवा आते थे मै स्वयसेवक के नाते उनके साथ जाता रहता था। उनसे मेरा आत्मीय सम्पर्क लगभग १६३२ से आरभ हुआ। इसकी एक घटना है। मै उन दिनो होल्कर कालेज, इन्दौर मे लॉ का विद्यार्थी था और साथ ही इन्दौर जिला काग्रेस कमेटी का मत्री भी था। १६३२ का असहयोग आन्दोलन समाप्त हुआ था और इसके बाद ही स्वर्गीय दादा (चतुर्वेदीजी) सेठ जमनालालजी बजाज के साथ इन्दौर आये थे। उनके स्वागत और अभिभाषण के लिए सयुक्ता गज, इन्दौर मे एक विशाल सभा हुई थी। उस समय यद्यपि जिला काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष स्वतन्त्रता सग्राम के तेजस्वी सेनानी श्री आर्यदत्त जुगडान थे, परन्तु उम्र मे छोटे होने पर भी जिला काग्रेस कमेटी के सब सदस्यो ने मिलकर मुझे निर्देश दिया कि उस सभा का सभापतित्व मै करूँ। इन्दौर के सुप्रसिद्ध देशभक्त छोटेलाल अग्रवाल ने जब मेरा नाम प्रस्तावित किया तो दादा और जमनालालजी दोनो ही चकित-से हुए और खण्डवा के एक तरुण को इन्दौर मे ऐसा स्थान मिल सका, यह जानकर वे आनन्दविभोर हो उठे। दादा ने मुझे गले लगा लिया। मैंने उनके तथा जमनालाल जी के चरण-स्पर्श किये और सभा का कार्य प्रारभ किया। सभा बडी सफल रही। इसके बाद स्वर्गीय जमनालालजी और दादा मुझे अपने साथ दौरे पर रतलाम ले गये। यही से मेरे सम्बन्धो की घनिष्ठता का आरम्भ हुआ। इसी का परिणाम था कि सन् १६३५ मे जब मैं वकील होकर खण्डवा आया तब निमाड जिला काग्रेस कमेटी की अध्यक्षता का भार मुझे ही सौपा गया।

यो इन ४०-४५ वर्षों मे अनेक अविस्मरणीय सस्मरण मेरी आखो के सामने है जिनसे दादा की आत्मा की भारतीयता और उसके लिए सर्वस्व त्यागने का

उनका सकल्प अभिव्यक्त होता है। उनकी देशभक्ति और कर्तव्य-परायणता का महान् उदाहरण मै आपके सामने प्रस्तुत करता हूँ।

सन् १९३७ के आम चुनाव के पूर्व की यह घटना है। उन दिनो महाकौशल की काग्रेस राजनीति मे दो दल थे। एक स्वर्गीय श्रद्धेय रविशकरजी शुक्ल का था और दूसरे दल के नेता सेठ गोविंददास और पडित द्वारकाप्रसाद मिश्र थे। पडित रविशकर शुक्ल प्रान्त के सर्वश्रेष्ठ सगठनकर्त्ता और जाने-माने नेता थे। वे सौम्य मनोवृत्ति के नेता था। उनका प्रान्त मे और विशेषकर छत्तीसगढ मे बडा प्रभाव था। दूसरे दल के नेता सेठ गोविन्ददासजी और मिश्रजी उग्र राजनीति मे विश्वास रखते थे। अतएव दोनो दलो मे सघर्ष चलता था। उन दोनो दलो मे समन्वय लाने का कार्य श्रद्धेय पडित माखनलालजी करते थे। यही कारण था कि यद्यपि दादा मध्यप्रदेश की राजनीति के प्रारभिक प्रणेताओ मे अन्यतम थे, फिर भी उन्होने कभी महाकौशल कॉंग्रेस कमेटी की अध्यक्षता स्वीकार नही की। इस सम्माननीय पद के लिए वे सदा ही दूसरो के नाम प्रस्तावित करते रहे और प्रान्त की राजनीति सुचारु चल सके, इसका सतत प्रयत्न करते रहे। दादा के साथ मध्यप्रदेश के तरुणो का एक अलग दल था जो उनके निर्देशन मे दोनो दलो मे सतुलन लाने का काम करता था। इस दल मे सर्वश्री ठाकुर निरजनसिह, भवानीप्रसाद तिवारी, सुकुमार पगारे आदि हम अनेक तरुण थे। निश्चय ही प्रान्त की उस युग की राजनीति मे दादा का स्थान अप्रतिम और विवादरहित था। यही कारण था कि १९३७ मे कॉंग्रेस प्रान्तीय पार्लियामेटरी बोर्ड के दादा ही अध्यक्ष चुने गये थे। दोनो दलो को स्वीकार होने वाले वही एक वयोवृद्ध एव उपयुक्त व्यक्ति थे। मैं भी निमाड जिला कॉंग्रेस का अध्यक्ष होने के कारण महाकौशल पार्लियामेटरी बोर्ड का सदस्य था। जब विधान सभा (Legislative Council of M. P & Berar) के महाकौशल के सदस्यो के चयन का प्रश्न आया तो शुक्लजी तथा गोविंददास-मिश्र दलो के बीच घोर सघर्ष हुआ। प्रत्येक दल अपना बहुमत बनाने पर उतारू था। दादा का प्रयत्न था कि दोनो दलो मे से कोई भी एक दल हावी न हो जाए और दोनो को बराबर की शक्ति प्राप्त हो। इसीलिए, इसी दृष्टि से प्रातीय पार्लियामेटरी बोर्ड मे उम्मीदवारो का चयन किया गया था। प्रश्न सत्ता-प्राप्ति का था, अत दोनो ही दलो को पूर्णत सतुष्ट करना सभव नही था। उधर अखिल भारतवर्षीय पार्लियामेटरी बोर्ड के अध्यक्ष स्वर्गीय सरदार वल्लभभाई पटेल थे। दादा और सरदार वल्लभभाई ने नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह मे साथ-साथ कार्य किया था इसलिए दादा और सरदार पटेल के सम्बन्ध मित्रता के थे। दादा की देशभक्ति और देश-सेवा पर उन्हे ही नही, राष्ट्रपिता

गाधीजी को भी बडी आस्था थी।[1]

सरदार पटेल के साथ अपने सम्बन्धो के आधार पर दादा को विश्वास था कि वे प्रातीय पार्लियामेंट द्वारा चयन किये हुए उम्मीदवारो की सूची केन्द्रीय बोर्ड से अवश्य ही स्वीकार करवा ले जाएगे। उधर स्वर्गीय रविशकरजी शुक्ल, सेठ गोविंददासजी और मिश्रजी भी दौड-धूप मे लगे हुए थे। इन प्रयासो मे शुक्लजी को सरदार पटेल को प्रभावित करने मे विशेष सफलता प्राप्त हुई। परिणामत. सरदार पटेल ने दादा को बम्बई बुलाया। यह एक ऐतिहासिक भेट थी। सौभाग्य-वश दादा मुझे भी साथ मे ले गये थे। ऑपेरा हाउस सिनेमा के सामने एक भवन मे सरदार और दादा की भेट हुई। सरदार ने, जिस प्रकार अपने व्यक्ति को स्नेह और विश्वास के साथ निर्देश देते है, वैसा निर्देश देते हुए कहा, "माखनलालजी, बहुमत तो शुक्लजी को मिलना चाहिए।" दादा ने उत्तर दिया, "सरदार साहब, आप जो चाहेगे वही होगा पर मेरी दृष्टि मे यह मेरे प्रान्त के हित मे नही होगा। शुक्लजी १९२६ मे कॉग्रेस के विपरीत चुनाव लड चुके है और उनके और काग्रेस-विरोधी श्री राघवेन्द्रराव के मित्रता के सम्बन्ध रहे है। यद्यपि मेरी मान्यता यह है कि अब शुक्लजी की कॉग्रेस-निष्ठा पर प्रश्न या शका करने का कोई कारण नही है, फिर भी मेरे प्रात मे एक आन्तरिक धारणा है कि कही राघवेन्द्रराव अपने पुराने साथी के साथ फिर से काग्रेस-विरोध मे न उभर आए। यह सच है कि गोविन्ददासजी और मिश्रजी तरुण और उग्र है, फिर भी उनकी काग्रेस-निष्ठा पर शक नही किया जा सकता। ऐसी स्थिति मे दोनो दलो का सन्तुलन आवश्यक है और इसी मे हमारे प्रान्त की राजनीति और काग्रेस की सुरक्षा है।"

सरदार अपने आदेश के विपरीत इस तर्क को सहन नही कर सके और तेजी से बोले, "नही माखनलालजी, आपको शुक्लजी को ही बहुमत मे लाना होगा।" दादा की भारतीय आत्मा का आत्म-सम्मान जाग उठा और उन्होने जवाब दिया, "आप समर्थ है, चाहे जो करे, परन्तु अपने विवेक और विचार से अपने प्रान्त के लिए जो बात मै हितकर नही मानता वह मेरे द्वारा नही होगी।" सरदार पटेल और तेज हुए और कडककर बोले, "वह ठीक नही होगा और आपके लिए भी ठीक नही होगा। आपको मेरे कहे अनुसार काम करना ही है।" दादा ने उत्तर दिया, "सरदार साहब, मेरा देश और मेरा प्रान्त और उनके हित मुझसे और मेरे हितो से बडे है और उनकी सुरक्षा और हितो के लिए एक बार नही अनेक बार भी माखनलाल को बलिदान करना पडेगा तो वह सहर्ष करेगा। मुझसे यह सब

---

१ १९३३-३४ मे जब बापू खण्डवा आये थे तब वे यहाँ से बाबई भी गए थे। बाबई (होशगाबाद) माखनलालजी की जन्मभूमि है। उन्होने अपने खण्डवा के भाषण में कहा था कि "मै बाबई जैसे छोटे स्थान पर इसीलिए जा रहा हूँ क्योकि वह माखनलालजी का जन्मस्थान है। जिस भूमि ने माखनलालजी को जन्म दिया है, उसी भूमि को मै सम्मान देना चाहता हूँ।"

नही हो सकेगा।" वातावरण बहुत तनावपूर्ण और गर्म हो गया था। सरदार साहब तमतमा गये थे और उनकी भृकुटी चढ गई थी। दादा भी दृढ और कृत-सकल्प मुद्रा मे बैठे थे। कुछ देर मौन रहा और फिर हम लोग अनुमति लेकर चले आये।

इस घटना के बाद तो सरदार का क्रोध दादा पर टूट पडा और यद्यपि दादा का नाम नर्मदा कमिश्नरी के सात नगरो से विधान सभा के लिए प्रस्तावित किया गया था, फिर भी इस बहुमत के विपरीत वर्धा आश्रम मे उस समय निवास करने वाले एक महाशय को माखनलालजी का टिकट दे दिया गया, साथ-ही उन्हे कही से चुनाव नही लडने दिया गया। इतना ही नही, दादा की अध्यक्षता मे प्रान्तीय पार्लियामेटरी बोर्ड द्वारा चयन किये गये कई उम्मीदवारो को हटाकर नये उम्मीदवार लिये गये। उन हटाये जाने वाले उम्मीदवारो मे हरदा के विख्यात काग्रेसी प० चन्द्रगोपाल मिश्र (प्रो० महेशदत्त मिश्र के पिता) और निमाड के दरबार कालूसिंह सहेजला भी थे। दादा पर यह बहुत बडा आक्रमण था, बहुत बडा आघात था पर इस सब के बाद भी उन्होने अपने पद का और अपने कर्तव्य का निर्वाह पूरी तरह किया और १९३७ के चुनावो मे काग्रेस को अद्वितीय विजय दिलवायी। सदा की तरह इस बार भी दादा ने विजय को तो स्वय प्राप्त किया, किन्तु उसका फल और सत्ता-सुख दूसरो को समर्पित कर दिया।

मै जब भी इस घटना को याद करता हू तब मुझे दादा की 'पुष्प की अभि-लाषा' कविता की ये पक्तियाँ याद आ जाती है.

मुझे तोड लेना वनमाली
उस पथ पर देना तुम फेक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावे वीर अनेक।

माखनलालजी अति निकट से

○ ○

डॉ० श्रीनारायण अग्निहोत्री

माइकेल एजेलो मूर्तिकला का शीर्षस्थानीय कलाकार है। लियोनार्डो डा विंची चित्रकला के चरम आदर्श का स्रष्टा है। उसी प्रकार प्लूटार्क जीवन के महत्त्व को शब्दो की सीमा मे समेटनेवाला सर्वोपरि अध्येता है। रोम के सभी महापुरुषो के शब्द-चित्रो के सग्रह के रूप मे उसकी कृति शताब्दियो से महापुरुषो के जीवन के महत्त्व को अध्ययन करने वालो के लिए प्रकाशस्तम्भ के रूप मे है। उसकी मान्यता थी कि महान् पुरुषो के चरित्र का महत्त्व हिमालय की ऊँची चोटियो के समान ऊपर उभरे हुए उनकी जीवन की अवधि के विस्तार मे बिखरे तथा सबका ध्यान बलात् अपनी ओर आकर्षित करने वाले कृतित्वो मे ही नही आँका जा सकता। उसके अनुसार महान् पुरुषो के चरित्र की वास्तविक महत्ता तो उनके दिन-प्रतिदिन के जीवन की साधारण भाव से सम्पन्न की गई कृतियो मे ही पायी जा सकती है। ससार के रगमच पर सतत रूप से चलने वाले जीवन-नाटक की झाँकी की झलक जितनी गहराई से किसी भी महापुरुष के चरित्र के महत्त्व को उभारकर सामने लाती है उतनी प्रभावात्मकता प्रसिद्धि के चकाचौंध प्रकाश मे प्रस्तुत की गई प्रदर्शन की वस्तुओं की विशेषता एव दुर्बलता के गुण से होड़ लेती हुई उनकी बहुचर्चित उपलब्धियो मे नही पायी जाती है। माखनलालजी चतुर्वेदी 'भारतीय आत्मा' का व्यक्तित्व विशाल महासागर के वक्ष पर तैरते हुए हिमशैल की भाँति है। इस जल-तल पर उतराते-से दिखाई पडनेवाले हिमाद्रि का विस्तार द्वीप की भाँति तथा उसकी ऊँचाई पर्वत के समान होती है। पर जल के ऊपर यह प्रकृति द्वारा सँजोया हिम-सग्रह कितना ही बडा और ऊँचा क्यो न दिखाई पडे, वास्तव मे उसकी विशालता का तीन-चौथाई से अधिक अश जल के भीतर रहता है। उसी प्रकार पूज्य दादा (प० माखनलाल चतुर्वेदी) का व्यक्तित्व बाहर से कितना भी महान् क्यो न हो (और उसकी महानता का साक्षी इतिहास है—उनके साथी सन्त विनोबा, रार्जाष टडन है) पर उनकी

वास्तविक महानता तो वर्तमान के विस्तार मे लहराने वाले प्रसिद्धि के सागर के जल के भीतर है। लेखक ने दादा जी के चरणो के निकट बैठकर अपनी सामर्थ्य के अनुसार उन्ही के अनुग्रह के सहारे डुबकी लगाकर देखने की चेष्टा की है। दादाजी स्वय परम वैष्णव है। उन्होने पुष्टिमार्गीय भगवद्नुग्रह का महत्त्व समझा है और भगवत् कृपा के रूप मे मुझे अपने अतीत मे प्रवेश करने की अनुमति दी है। उनके चरित्र के महत्त्व के अकन मे यदि कुछ भी सफलता प्राप्त हुई है तो उसका श्रेय दादाजी के अनुग्रह को है, और जहाँ कही झाँकी फीकी लगे वहाँ मेरी ग्राहिका शक्ति की कमी ही समझी जानी चाहिए, उनके चरित्र की महत्ता की कमी नही।

दादाजी के बचपन की झाँकियाँ भारतीय ज्ञानपीठ के द्वारा प्रकाशित उनकी जीवनी मे देखी जा सकती है। कुछ आत्मकथाओ (महात्मा गाधी, प० नेहरू, राजेन्द्र बाबू) को छोडकर शायद ही कोई दूसरे के द्वारा लिखित जीवनी हो जिसमे महापुरुषो के बचपन की महत्त्वपूर्ण गाथाओ मे सम्मिलित की जा सकने वाली सामग्री इतनी बहुलता से उपलब्ध हो। प्रस्तुत सस्मरण-माला मे उनके जीवन मे बिखरे हुए महत्त्वपूर्ण क्षणो की स्मृति को बटोरकर सँजोने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत सस्मरण उन्ही के मुँह से सुनी हुई ताजी कहानी की तरह है।

"बात १९२० की है। मैं कर्मवीर निकालने के लिए जबलपुर गया। वहाँ गुरुवर्य प० माधवराव सप्रे थे, रायबहादुर प० विष्णुदत्त शुक्ल थे, दीवानबहादुर बल्लभदासजी थे, रायसाहब गोविन्दलाल पुरोहित थे तथा मेरे और दीवान बहादुर के वकील कनछेदीलाल जैन थे। जब मैं 'कर्मवीर' का डिक्लेरेशन लेने के लिए जिला मजिस्ट्रेट श्री मिथाइस आई० सी० एस० के पास जाने को था, उस समय रायबहादुर प० विष्णुदत्तजी शुक्ल ने एक पत्र दिया था। उस पत्र मे लिखा गया था कि मै बहुत गरीब हूँ और उदरपूर्ति के लिए कोई अखबार निकालना चाहता हूँ। इसलिए मैं 'कर्मवीर' निकालना चाहता हूँ। मुझे यह शर्त स्वीकार नही हुई थी। रायबहादुर शुक्लजी समझते थे कि जिला मजिस्ट्रेट के सामने मेरी घिग्घी बँध जायेगी और मै उनके सामने कुछ बोल नही पाऊँगा। मिस्टर मिथाइस से मिलने पर जब मुझसे पूछा गया कि एक अग्रेजी 'वीकली' के होते हुए मै हिन्दी साप्ताहिक क्यो निकालना चाहता हूँ, तब मैने उनसे निवेदन किया कि—

'आपका अग्रेजी साप्ताहिक तो दब्बू है। मै वैसा पत्र नही निकालना चाहता। मैं ऐसा पत्र निकालना चाहूँगा कि ब्रिटिश शासन चलते-चलते रुक जाय।' कहना नही होगा कि मिस्टर मिथाइस मेरे कथन से बहुत प्रभावित हुए और उन्होने कहा कि "मै ऐसे पत्र को देखना चाहता हूँ। मैं आइरिश हूँ और

आइरिशजन यह देखना चाहते है कि आप शासन बिगाडे और मै शासन को ठीक से चलाऊँ ।'

"इसके पहले कि मिस्टर मिथाइस और कुछ कहे मैने २५०० रु० के नोट उनके टेबिल पर रख दिए। मिथाइस साहब के बँगले पर ही यह बातचीत हुई थी। मुझे यह रकम दीवानबहादुर बल्लभदासजी ने दी थी (यह कहते हुए कि मैं जमानत देकर भी 'कर्मवीर' निकालूंगा)। उस समय १६१० का प्रेस-एक्ट प्रचलित था जिसमे जमानत देने पर कोई कारण डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को नही बताना पडता था। जमानत न देने पर कारण बताना पडता था। मालूम होता है कि मिथाइस उस बात को और प्रेस एक्ट को भी पढकर वहाँ बैठे हुए थे। इसीलिए चिट अन्दर जाते ही मुझे बुलवा भेजा। उसके पहले ही एक दीवानबहादुर महाशय (जो दीवानबहादुर बल्लभदासजी नही थे और उनके पिता गोविन्ददास भी नही थे) अन्दर से निकले और सीधे अपनी गाडी मे बैठकर चले गए। वे एक विक्टोरिया किस्म की गाडी अपने साथ लाये हुए थे जो साहब के बँगले के बाहर खडी थी।

मिस्टर मिथाइस ने मुझसे कहा, "मै तो आपसे जमानत लूँगा नही इसलिए यह रुपया अपनी जेब मे रख लीजिये। मै उस शासन को ठीक बनाऊँगा और आपको आलोचना का मौका न दूँगा।'

"उसी स्पस्टवादिता से मिस्टर मिथाइस मेरे मित्र हो गये। यहाँ तक कि पीछे मेरे घर पर आकर चाय भी पी। मिस्टर मिथाइस ने मुझको सूचित किया कि "मिस्टर चतुर्वेदी, आप भरपूर कोशिश कीजिए कि आपका पत्र सफल हो। मैं अपने शासन को अच्छा रखूंगा। ब्रिटिश शासन छुई-मुई का पौधा नही है अत वह फूंक मे उडाया नही जा सकता।'

"मै चुपचाप मिस्टर मिथाइस की बाते सुनता रहा था। मेरी इच्छा उत्तर देने की हो रही थी परन्तु मैंने उत्तर नही दिया। मेरी यह सब चर्चा मिस्टर मिथाइस से अग्रेजी मे हुई थी। (दादाजी किसी भी अग्रेजी स्कूल मे नही पढे। अग्रेजी का ज्ञान उनके स्वाध्याय का परिणाम है। यही बात उनके मराठी, गुजराती और बॅगला के विषय मे सत्य है।) कहना न होगा, वहाँ से लौटकर उसी समय २५०० रुपये दीवानबहादुर बल्लभदासजी को लौटा दिये गए थे।

"इस प्रकार १७ जनवरी, १६२० ई० से 'कर्मवीर' का प्रकाशन प्रथम बार जबलपुर मे आरम्भ हुआ। उस दिन लार्ड सिन्हा बम्बई से जबलपुर आये थे। वे उस समय बिहार के गवर्नर थे।"

यह दादा (प० माखनलाल चतुर्वेदीजी) के जीवन-महासागर के वक्ष पर उतराते हुए हिमशैल रूपी व्यक्तित्व के बाहरी रूप की एक झाँकी है। उस हिमशैल के जल के भीतर के विशाल रूप की झलक इसी समय के संस्मरण की दूसरी

किस्त मे मिलेगी।

दादाजी (प० माखनलाल चतुर्वेदी) के जीवन को हम राजनीति, क्रान्ति एव साहित्य का सगम कह सकते है। सगम की महिमा धार्मिक केन्द्र होने मे होती है और दादाजी के जीवन के महत्त्व का सर्वोच्च अग धर्म का शृगार (परम वैष्णवता) ही है। दादाजी कॉग्रेस जनो के बीच बडे क्रान्तिकारी है। क्रान्तिकारियो के बीच वे परुष-सुकुमारता के ज्वलन्त उदाहरण है। सुकुमार भावनाओ के बीच मे रमते हुए वे जीवनमुक्त से सानुराग विरक्ति के मूर्तिमान स्वरूप थे। निम्नलिखित सस्मरण उनके जीवनकी इन्द्रधनुषी रगीनी की झलक प्रस्तुत करता है। उन्ही के शब्दो मे सुनिये—

"सन् १९२२ ई० मे एक दिन ऐसा आया कि जिसकी याद मुझे नही (अर्थात् यह ठीक से स्मरण नही कि यह घटना दादाजी के जेल जाने से पहले सन् १९२० की है अथवा जेल जाने के बाद १९२२ की है)। समय बहुत गुजर चुका है, मुझे याद नही है कि यह बात कब की है। एक रोज मथुराजी के श्री शिवचरणलाल के बडे भाई श्री रामचरणलाल लाहौर से मेरे पास आए। वे यह सोच रहे थे कि मै क्रान्तिकारी दल का मन्त्री हूँ। अत मेरे पास आना उनका फर्ज था। काले पानी मे रहते हुए बीच मे परिवर्तन का हाल उनसे कहता कौन? १९०६ से मै क्रान्तिकारी था और उस समय तक रहा जब हिन्दू यूनिवर्सिटी की कोण-शिला रखने के लिए गॉधीजी काशीआये। उस अवसर पर कितने ही राजा-महाराजा वगैरह आए थे। कोण-शिला किसने रखी थी मुझे याद नही परन्तु उसमे गॉधीजी का भाषण हुआ था। उन्होने कहा था कि तुम मुझे पिस्तौल दो, मै तुम्हे स्वराज्य दूँगा। मेरे साथ, ग्यारह बगालियो ने अपनी-अपनी पिस्तौल दी थी। इस कारण मै क्रान्तिकारी दल का नही रह गया था। किन्तु रामचरणजी को इसका पता न हुआ, अत वे जबलपुर मेरे पास आ गए। जबलपुर मे आकर उन्हे एक पत्र मिला। यह कहना मै भूल गया कि रामचरणलालजी को एक कविता लिखने के कारण आजन्म कालेपानी की सजा हुई थी। इसी कारण रामचरणलालजी के साथ मेरी सहानुभूति बहुत अधिक थी। उन्होने जबलपुर आकर 'तिलक' नाम का एक पत्र निकाला। मैंने उनसे बतलाया था जब तक आप मुझे, सप्रेजी (माधवरावजी सप्रे) और रायबहादुर विष्णुदत्तजी शुक्ल को गालियॉ न देगे तब तक आपका पत्र न चल सकेगा क्योकि 'कर्मवीर' के सामने 'तिलक' का चलना कठिन होगा। इस कारण उन्होने गाली लिखना शुरू किया। वह तरह-तरह की गालियॉ दिया करते थे और बेसिर-पैर की बात अपने 'तिलक' मे लिखा करते थे। 'तिलक' मे उनके सहायक एक बैरिस्टर साहब थे। वे जबलपुर मे बैरिस्ट्री करते थे। जिस घटना को मै लिखना चाहता हूँ उसकी तारीख मुझे याद नही किन्तु घटना तो मै लिखना चाहता हूँ। यह या तो सन् '२० की बात है या

सन् '२२ की बात है। सन् १९२१ मे मुझे सजा हो गई थी अत मै जेल मे रहा था। यह पत्र तो मेरे सामने ही निकलता था। हम इस पत्र को बहुत गम्भीरता से लेते थे क्योकि गाली-गलौज तो कह-सुनकर बडी मुश्किल से श्री रामचरण-लाल ने प्रारम्भ की थी। तब मै गभीरता से वे मुद्दे बताया करता था जिनसे मुझ पर तथा मेरे साथियो पर आक्रमण हो सकता था। एक बार रामचरण-लालजी का वारट पजाब से आया। उस दिन मुझे मालूम हुआ कि महाशय बिना पुलिस को खबर दिये वहाँ से लाहौर भाग गए थे और मेरे पास आ पहुँचे थे। उनके जबलपुर आने पर मैंने मुसलमान पत्र सपादक भाई ताजुद्दीन और भाई अब्दुल हादी से उनको मिलवाया। वे अन्त तक मेरे साथ रहे। हाँ, एक बार पजाब की पुलिस रामचरणलालजी को पकडने आयी। रामचरणजी पर तीन हजार रुपये लगा हुआ था। वह उसको मिल सकता था, जो उन्हे जिन्दा पकड ले या पकडवा दे। उनकी मृत देह पर १५०० रु० मिलनेवाला था। जिस दिन पजाब की पुलिस उन्हे पकडने आयी उस दिन उसने 'कर्मवीर' प्रेस (जो सिमिरिया वाली रानी की कोठी मे था) घेर लिया। तब मुझे मालूम हुआ कि पुलिस क्यो आयी। उसी समय मैं ताँगा लेकर निकला और पहले श्री रामचरण-लाल के पास गया। वे जबलपुर के गजीपुरा के कार्यालय मे नही थे। तब मुझे सन्देह हुआ कि हो न हो वे बैरिस्टर महाशय के घर मे कैद है।

बैरिस्टर महाशय की पत्नी तो थी नही, उप-पत्नी थी। मैंने उस उप-पत्नी से कहा कि 'तुम कुलवधुओ मे नही आती।'

वह नाराज होकर बोली, "क्यो?'

मैंने निवेदन किया कि 'कुलवधू आते ही पूछती कि क्या खाओगे इत्यादि। वह तुमने नही पूछा।'

मै चाहता था कि वे थोडा-सा हटे और अपना चाबियो का गुच्छा मुझे दे दे तो रामचरणलालजी का पता लगाया जा सके। इस कारण जब उन्होने मिठाई के लिए बाहर जाने की बात तय की तब मैंने उनसे निवेदन किया कि आप कहाँ जा रही है?

वे बोली कि मैं मिठाई लेने स्वय बाहर जा रही हूँ।

मैने कहा कि आप बाजार से सस्ती मिठाई लायेगी?

अर्थात् मै चाहता था कि वे थोडी दूर जाएँ जिससे कि मुझे समय मिल सके और मैं रामचरणलालजी को ढूँढ सकूँ। अत मैंने बडे मन से कहने का-सा अभिनय किया और कहा कि यो तो आप सस्ती मिठाई न लाएँ। मुझे मिठाई खिलानी ही है तो मुझे इमरती बहुत पसन्द है।

यो तो मुझे इमरती बिलकुल पसन्द नही है और सच पूछिए तो कोई भी मिठाई पसन्द नही। केवल दूध के छेने की बगाली मिठाई मुझे पसन्द है—सदेश

और रसगुल्ले। मगर ढूँढने के डर से मैं नही खाता। बैरिस्टर साहब जबलपुर की पुलिस कोतवाली के पास रहते थे और इमरती कमानियाँ के पास मिलती थी। उनके चलते-चलते मैने यह भी कह दिया कि ये चाबियाँ तो आपके बदन पर शोभा नही देती।

उन्होने आँचल के छोर से लटकता हुआ चाबियो का गुच्छा वहा जमीन पर फेक दिया और वैसे ही इमरती लेने चली गई। श्री रामचरणलाल मेरे वचनों को सुन रहे थे। वे वही कोठरी मे बन्द थे। उनके घर से बाहर निकलते-निकलते बोल उठे, "मै यहाँ बन्द हूँ। मुझे निकालो!'

रामचरणलालजी निकाले गये। उस समय मैंने कितने ही लोगो से बहुत विनती के स्वर मे निवेदन किया कि वे रामचरणलालजी को अपने यहाँ रखे परन्तु किसी ने मेरी प्रार्थना पर ध्यान नही दिया। तब मै एक मुसलमान गार्ड के पास पहुँचा। उस मुसलमान गार्ड से मेरी यही जान-पहचान थी कि उनकी पत्नी को नागपुर से जबलपुर आते समय रास्ते मे ट्रेन पर ही बच्चा पैदा हो गया था। मै भी उसी गाडी से आ रहा था और मैंने इधर-उधर से माँगकर गुड तथा ब्राडी का प्रबन्ध किया था। अनवर गार्ड ने मुझे धीरज दिया और कहा कि 'श्री रामचरणलाल जैसे आपके आदमी वैसे मेरे आदमी है। दादा, उनको मेरे पास ले आइये, मै उनको रखूँगा।'

वे मालगाडी के गार्ड थे। मैने उनसे निवेदन किया कि आदमी बडा सिर-फिरा है। अत आप इस झगडे मे न पडिये। उसने कही गोली चला दी तो ? इस पर अनवर बोल उठे, 'आप इससे निशाखातिर रहिये। मालूम होता है कि वह आदमी मेरे ही लायक है। आप उन्हे ले आइये।'

मै बहुत भरोसा दिलाने पर रामचरणलाल जी को उनके घर ले गया और चाबियो का गुच्छा साबिक दस्तूर वही का वही डाल दिया जिससे आगन्तुका को मालूम हो कि मैने चाबियाँ नही उठाई थी। यो मेरा स्वास्थ्य तो अच्छा न था। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने मुझसे कहा था कि भैया, आप कुछ न खाया करे, अपने पेट का खयाल करे। परन्तु मैने अपने पेट का खयाल न किया और श्रीमती बैरिस्टर साहबकीलायीहुई इमरती खायी, और फिर पिछवाडे खडे हुए और पर्दा पडे हुए अपने ताँगे मे रामचरणजी को बैठाकर अनवर गार्ड के यहाँ पहुँचा। मेरी पेटी मे उस समय उनसठ रुपये थे। वे मैंने रामचरणलाल जी को सिपुर्द किये। नागपुर से बैरिस्टर अभ्यकर ने मेरी चिट्ठी पर उनको सात सौ रुपये और दिये। वहाँ से रामचरणलाल जी पाडिचेरी के आश्रम मे चले गये और अन्त तक वही रहते रहे। मैंने उनसे निवेदन किया कि मैं अब रिवोल्यूशनरी पार्टी मे नही हूँ परन्तु उन्होने माना ही नही। मैंने अपने कथन मे बहुत से किन्तु-परन्तु लगाये, इन किन्तु-परन्तुओ पर रामचरणलाल जी ने विश्वास नही किया, यद्यपि मैने

दादा : एक बड़ी प्रेरणा

◇ ◇

रामदयालसिंह 'रघुवंशी'

सन् १९२४ की बात है। चौदह-पन्द्रह वर्ष के लडके के रूप मे मै दादा के सम्पर्क मे आया था। आज इस बात को लगभग चालीस वर्ष से अधिक होने को आये किन्तु दादा से जो सम्बन्ध उस समय था वह आजीवन बना रहा। मेरे जीवन-निर्माण मे उनका बहुत बडा हाथ रहा है और आज मैं जो कुछ भी हूँ, उसका सम्पूर्ण श्रेय उनको ही है।

सन् १९२६ मे भी दादा राष्ट्र की, विशेषकर मध्यप्रान्त की इनी-गिनी हस्तियो मे से थे। उनके जैसी तेज बुद्धि और उनका-सा व्यापक प्रभाव उन दिनो भी किसी और का रहा होगा, यह मुझे याद नही पडता।

मेरी दृष्टि मे दादा का सम्पूर्ण जीवन 'ऊचे विचार और सादा लिबास' का एक सच्चा उदाहरण रहा है। दादा सदा से ही गरीब रहे। अर्थ-सकट के बादल उनके परिवार पर आज तक भी आजीवन मडराते रहे। किन्तु मुझे याद नही कि अपने इन सकटो का रोना दादा ने कभी किसी दूसरे के सामने रोया हो, बल्कि मुझे तो ताज्जुब है कि वे अपने लम्बे-चौडे परिवार की गाडी किस बूते पर चलाते रहे ? गरीबी के साथ स्वाभिमान को निभाना एक असम्भव-सी बात है किन्तु दादा ने सारा जीवन इसी असम्भव को सम्भव बनाने मे लगा दिया। यही उनका सन्देश भी रहा है। वे सदा हम लोगो से यही कहते भी रहे कि अपनी मर्यादा और स्वाभिमान सदा रखना चाहिए। पैसा नही है तो क्या हुआ, कष्टो मे है तो क्या हुआ, बहुत बडी मुसीबतो मे है तो भी क्या हुआ ? इसका यह अर्थ नही ही है कि निराश हो जाएँ और अपना स्वाभिमानी मस्तक झुक जाने दे ?

अपनी असह्य गरीबी मे भी दादा ने अनेक विद्यार्थियो को उनकी जरूरत के दिनो मे भारी सहायता दी। आज कुछ लोग अपने ऊचे पदो पर होने से उनसे प्राप्त सहायता की चर्चा शायद अपने छोटे होने के भय से न करे, लेकिन मै ऐसे अनेक व्यक्तियो को जानता हूँ जिन्हे उन्होने अपनी जरूरतो की बलि चढ़ाकर

आर्थिक सहायता दी। स्वय मुझे उनसे यह सहायता एक लम्बे अरसे तक मिलती रही है। यहाँ तक कि सन् १९३० मे जब वे जेल गए तब भी उन्होने जबलपुर के अपने मित्र श्री मनोहर पत गोलवलकर के जरिए अपनी अनुपस्थिति मे भी मेरी सहायता की व्यवस्था की थी। दूसरा कोई व्यक्ति इस परिस्थिति मे मुझे सहज ही निराश्रित छोड सकता था किन्तु दादा ने ऐसा नही होने दिया। सहायता देना और किसी पर उपकार-भाव से सहायता देना ये दो अलग-अलग बाते है। दादा ने बराबर सहायता देते हुए भी मुझे छोटा नही महसूस होने दिया, उल्टे मेरे स्वाभिमान को वे मजबूत ही करते रहे।

उनके साथ मैंने यात्राए की है। सन् १९२६ मे प० मोतीलाल नेहरू मध्य-प्रदेश का दौरा करने आये थे। चुनाव वगैरह का सिलसिला रहा होगा। तब दादा ने उनके साथ प्रान्त का दौरा किया था। खण्डवा से इटारसी और फिर वहाँ से बैतूल तक मै भी उनके साथ था। उन दिनो उम्र मे बहुत कम होने पर भी मै यह नही भूला हूं कि मोतीलालजी उन्हे बहुत सम्मान और स्नेह प्रदान करते थे।

एक और दृश्य मुझे याद आता है, सन् १९२८ मे एक बार महात्मा गाधी सुबह-सुबह की कलकत्ता मेल से खण्डवा से गुजर रहे थे। दादा स्वभावत उनसे मिलने स्टेशन पर गए। साथ मे मैं भी था। गाधीजी से बाते करते हुए दादा इतने तल्लीन हो गए थे कि उन्हे गाडी के चलने का भी भान नही रहा। गाडी के चलने के साथ ही उन्होने झटके से डिब्बे के पायदान से जब पैर हटाना चाहा तो उनकी चप्पल पायदान पर ही छूट गई। आज भी मुझे वह दृश्य याद आता है कि दादा एक चप्पल पहने खडे है और दूसरी चप्पल को तेज होती हुई ट्रेन के पाय-दान पर दूर जाते हुए देख रहे है।

अपनी यात्राओ मे दादा जहाँ भी रुके सदा ही धर्मशालाओ मे ठहरे। उनका कितना ऊचा नाम था? जहाँ वे जाते उनसे मिलने-जुलने वाले बडे-बडे लोगो का ताँता लगा रहता किन्तु कभी भी मैंने उन्हे किसी होटल मे ठहरते हुए नही देखा। धर्मशालाओ मे भी उनके पहुँचने से रौनक आ जाती थी। आज भी मुझे दादा की आजीवन भोगी हुई गरीबी की याद आती है और आज भी मै यह बात नही भूल पाता कि गरीबी न तो उन्हे लटा सकी और न उनके चेहरे की चमक और होठो की हँसी छीन सकी।

दादा का 'कर्मवीर' अपने ज़माने का एक बहुत बडा पत्र था। उसका व्यापक प्रभाव था। यह पत्र अपने युग का निर्माता रहा है। राष्ट्रीय भावो को प्रेरित करने मे और स्वतत्रता-सग्राम मे 'कर्मवीर' का जो योग रहा है उसकी सही कल्पना आज की पीढी तो शायद कर भी न सके। ऐसे पत्रो को जो राष्ट्रीय भावनाओ को पेरित करते रहे हो और जिनका हमारी स्वतत्रता के सग्राम मे इतना बलवान योग रहा हो, कमजोर देखना या उनका अन्त होते देखना

हमारी स्वतन्त्रता की भावना को भारी ठेस पहुचाने वाली चीज़ है। पर आज तो जमाना ही पूजीवादियो के हाथ मे चला गया है। पूजीवाद से निर्धन अखबार बिना पर्याप्त साधन के कैसे टक्कर ले ? 'कर्मवीर' इस बदले जमाने मे इतने दिन कैसे जिन्दा रहा, यह भी कम आश्चर्यजनक बात नही है। क्योकि 'प्रताप,' 'आज', 'मतवाला' 'प्रणवीर,' सैनिक साप्ताहिक आदि अनेक तत्कालीन अखबारो का इस पूजीवादी युग मे बहुत पहले अन्त हो चुका है। फिर भी 'कर्मवीर' चल रहा है। दादा सक्रिय रहे तब तक वह किसी न किसी प्रकार अपने अस्तित्व को व्यक्त करता रहा।

साहित्य के क्षेत्र मे भी दादा की यश-पताका लगभग साठ वर्षो तक निर्विघ्न उडती रही। वे चाहते थे कि मैं भी उनके पत्र मे काम करूँ और साहित्य की ओर खिचू किन्तु मै जानता था कि मेरी मनोवृत्ति के वह सबाप्रतिकूल था। मुझे उन्होने 'प्रियप्रवास' पढाना शुरू भी किया था जिसका पहला ही छन्द है .

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला।

लेकिन मै जानता था कि यह मेरे बूते का रोग नही है। दादा वकीलो के मुहल्ले मे रहते थे। उसी मुहल्ले का असर शायद रहा हो कि मेरी भी वकील बनने की इच्छा हुई। यह कार्य मुझे अपने स्वाभिमान के अनुकूल प्रतीत हुआ और इसी ओर मै बढा भी।

आज इतने वर्ष हो चुके है किन्तु मैने वर्षों तक दादा के जीवन और उनकी दिनचर्या मे कोई अन्तर नही पाया। वही गरीबी, वही स्वाभिमान, वही स्वागत मे ललकती हुई उनकी चमकदार ऑखे, वैसा ही दमकता हुआ उनका भव्य ललाट, वही दूसरो के काम आते रहने की तीव्र मनोवृत्ति और वैसे ही स्नेह मे सराबोर दादा। समय के साथ उनका यश दिन दूना रात चौगुना बढता गया, किन्तु उनके कष्टो मे कमी कभी नही हुई, उनकी मुसकराहट की रौनक भी वैसी ही बनी रही। दादा इस रूप मे मेरे जीवन की बहुत बडी प्रेरणा बने रहे।[१]

---

१. श्री रामदयालसिंह रघुवंशी मध्यप्रदेश कांग्रेस के कई दशकों से सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे हैं। वे मध्यप्रदेश के गुना क्षेत्र से विधान सभा के सदस्य चुने जाते रहे है। दादा से उनका सन् १९२४ से घनिष्ठ सम्बंध रहा।—संपा०

गांधीजी और चतुर्वेदीजी : एक प्रसंग

○ ○

वा० गो० शेवड़े

हम गाधीजी के अन्ध-भक्त तो नही थे, लेकिन उनके लिए नितान्त आदर-भाव था, उनका लोहा मानते थे, उनके रहते व्यक्तिगत भेट-चर्चा का मौका नही आया। पिछली कतार मे खडे होकर ही झाँकते और सिर हिलाते रहे। लिडियाकर 'बापू' नाम से सम्बोधन करने के हकदार नही थे।

१९३५ मे एक अग्रेजी साप्ताहिक निकालने का विचार उठा। उन दिनो हर कार्य का श्रीगणेश 'बापू' के आशीर्वाद से होता था तो हमारी ओर से गाधीजी के आशीर्वाद की माँग की गयी।

गाधीजी से, उनका अड्डा उस समय सेवाग्राम मे था, तुरन्त ही एक कार्ड आ पहुँचा। टेढी-मेढी लिखावट थी, जैसे स्याही मे पाँव डुबोकर मुर्गी कार्ड पर दौड गयी हो। कार्ड का मजमून कुछ इस तरह था ·

"अभी जो अखबार निकल रहे है, काफी है। देश के उद्धार के लिए आपके अखबार की कोई जरूरत नही।"

हमने कहा, "मानते है भई, खूब आशीर्वाद दिया। यह वाकया इस कारण याद आता है कि आज के जमाने मे देश के बडे-से-बडे आसामी से उनके पी० ए० द्वारा टकित, नानखटाई के धधे के लिए भी, आशीर्वाद-सन्देश प्राप्त हो सकता है जिसमे राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए ऐसे धन्धो की जरूरत का विवरण होता है। सन्देशो की फैक्टरियाँ खुल गयी है।

यह बात अलहदा है कि जवानी के ठस्से मे हमने गाधीजी की सलाह मानी नही। अखबार निकला, खूब भुगता, आखिर् मानना पडा कि गाधीजी हमसे कही ज्यादा बुद्धिमान और दूरदर्शी थे।

इसके कुछ समय बाद की बात है। शायद हमारा अखबार शुरू हो गया था और हाँफते-कराहते चल रहा था।

एक बार पडित माखनलालजी चतुर्वेदी नागपुर आये, और हमारे दौलत-

खाने पर आ टिके। हम माखनलालजी (पूज्य दादा) के चेला-चपाटियो मे शुमार थे।

दादा ने हमसे पूछा, "वासुदेव, वर्धा चलोगे ?"

हमने कहा, "चलिए, चले।"

शाम को वर्धा पहुँचे और स्वर्गीय जमनालालजी की 'सराय' मे डेरा डाल दिया। 'सराय' इसलिए कि वहाँ आने-जाने वालो की नुक्ताचीनी या लेखा-जोखा नही होता था। खादी का लिबास और एक झोला प्रवेश पाने के लिए काफी होता था।

खैर, हमारे पहुँचने के करीब एक घटे बाद ही प्रार्थना का कार्यक्रम था। उस समय गाधीजी की सन्ध्या की प्रार्थना बजाजवाडी मे एक छत पर हुआ करती थी, उसके लिए गाधीजी की सवारी सेवाग्राम से आ पहुँची।

हम लोग भी प्रार्थना-स्थान पर एक कोने मे जा बैठे। चश्मा लगाते हुए भी गाधीजी की नजर तेज थी और उन्होने उस निलम्बित सन्धि-प्रकाश और सौ-पचास के झमेले मे माखनलालजी को देख लिया।

मिनट-दो मिनट तकली चलाते रहे और नजर तकली पर ही रखकर कुछ डोलते हुए पूछा, "कब आये, माखनलाल ?"

"अभी शाम को ही आया, बापूजी !"

एक मिनट और तकली चली, और गाधीजी बोले, "मैने एक पत्र दिया था, वह मिला भी ?"

"हाँ, बापू, मिल गया," माखनलालजी ने आँखे मूँदकर जवाब दिया, "और वह गलती सुधार दी गयी।"

प्रार्थना के बाद हम लोगो ने रसोडा की ओर मोर्चा लिया। गाधीजी और माखनलालजी के बीच हुए चुस्त और सन्दिग्ध वार्तालाप का क्या सन्दर्भ था यह जानने की चुलबुलाहट हो रही थी, लेकिन दादा कुछ सन्नाये हुए-से थे, कान लाल हो गये थे, इसलिए पूछने का साहस नही हुआ।

रात को जब अपने-अपने बिस्तर पर पडे तो हमने पूछा कि मामला क्या था ? दादा तनकर उठ बैठे और गाधीजी से हुई बातचीत का सन्दर्भ सुनाया।

मामला ऐसा था कि दादा के 'कर्मवीर' साप्ताहिक मे एक-दो ऐसे विज्ञापन छप गये थे जो नही छपने चाहिए थे। खडवा से ही सिद्धनाथ माधव आगरकरजी द्वारा सम्पादित 'स्वराज्य' नाम का दूसरा साप्ताहिक निकलता था। एक प्रति-स्पर्धा की भावना भी रही हो तो आश्चर्य नही। अस्तु।

वे विज्ञापन देखकर आगरकरजी ने तुरन्त ही गाधीजी के पास पत्र द्वारा चुगली कर दी। उन दिनो प्रतिस्पर्धी पर गाधीजी की इतराजी करवा देना यानी एक बडी-सी विजय पाप्त करने जैसा माना जाता था।

गाधीजी पत्र-व्यवहार मे कभी उपेक्षा नही करते थे। उन्होने आगरकरजी का पत्र माखनलालजी को भेज दिया और लिखा, "यदि आगरकरजी जो लिखते है वह सच है तो वह ठीक नही।"

बस इतना ही। बात जरा-सी थी। गाधीजी के पत्र मे न कोई नाराजी थी, न कोई नीति-विषयक प्रवचन। उनकी दृष्टि मे कुछ बाते ठीक होती थी और कुछ ठीक नही और जरूरत पडने पर वे अपना विचार सामने रख देते थे।

लेकिन उस 'ठीक नही' से ऐसी बेचैनी होती थी जैसे कोई कयामत बरस पडी हो। माखनलालजी को उस 'ठीक नही' के निराकरण के लिए वर्धा जाने की जरूरत महसूस हुई। गाधीजी का व्यक्तित्व क्या रहा होगा और उनके 'ठीक नही' को शिरोधार्य मानने वालो का नैतिक स्तर भी क्या रहा होगा ? अब वह नैतिक स्तर कहाँ देखने मे आता है ?

याद इसलिए आती है कि आज कोई ऐसा व्यक्ति जिन्दा नही कि जिससे 'ठीक नही' के डर से हम अँधेरे मे भी टेढी चाल न चले। नीति-विषयक हरकतो पर आज कोई लगाम नही और नीति पर 'भाषण' झाडने वालो का भी आज कोई टोटा नही पर इस निरे शब्द-छल से हम पर जूँ तक नही रेगती।

दादा : कुछ सदाबहार प्रसंग

० ०

बलराम पगारे

सर्वप्रथम दादा से सन् १९२८ मे भेट हुई। माणिक स्मारक वाद्य मण्डल द्वारा खेले गए नाटक 'सत्य-विजय' को देखकर उन्होने मुझे याद किया था। इसके बाद से वे मुझे प्रोत्साहन देते रहे। मेरे पिता का नाम (श्री रामभाऊ कानूनगो) जब उन्होने सुना तो वे और भी खुश हुए क्योकि वे 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक के मच-व्यवस्थापक रह चुके थे। दादा ने लिखने-पढने की प्रेरणा मुझे भी दी—जैसा कि उनका स्वभाव था। मैने उनकी प्रेरणा से कहानी लिखना शुरू किया। उन दिनो दादा भारती मन्दिर की तरफ घूमने जाते थे, वहाँ के झरने के निकट बैठकर साहित्य-चर्चाएँ होती थी।

इन्दौर के अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन (सन् १९३५) के अध्यक्ष गाधीजी थे। इसमे दादा के साथ हम लोग गए। सभा प्रारम्भ होने के पहले पूज्य बापू से अध्यक्षता ग्रहण करने को कौन कहे, इस बात ने चिन्ता का रूप ले रखा था। इस चिन्ता का निराकरण यह हुआ कि दादा ही बापूजी से प्रार्थना करे। ये वाक्य जब माइक पर कहे गए तो गाधीजी चर्खा कात रहे थे। उनकी अगुलियाँ नही रुकी किन्तु उनकी पुतलियाँ दादा पर टिक गई। वे बोले, "ये जो माखनलाल जी है इनको मैं जानता हूँ, ये कवि है—मेरे प्रति पाँच मिनट से अधिक न बोले तो ठीक होगा।" दादा ने बापू को प्रणाम किया और मुसकराते हुए माइक पर खडे हो गए। पाँच मिनट तक उनका मत्र-मुग्ध भाषण चलता रहा और जैसे ही पाँच मिनट समाप्त हुए दादा ने गाधीजी की ओर देखा। गाधीजी का हाथ चर्खे पर चल रहा था। वे सिर नीचा किये सूत कात रहे थे। उन्होने दादा को देखा और मुसकरा दिए और दादा का भाषण फिर चल पडा (दादा ने मुसकराहट का अर्थ और बोलने की अनुमति के रूप मे लिया था)। इस तरह उधर चर्खे से पवित्र सूत प्रवाहित हो रहा था और इधर दादा की जिह्वा पर बैठी हुई सरस्वती प्रवाहित थी। हर पाँच मिनट पर दादा बापू को देखते और बापू मुसकरा देते। इस

तरह वह अद्वितीय भाषण लगभग पैंतालीस मिनट चलता रहा। भाषण-समाप्ति के बाद जब पूज्य गाधीजी माइक पर आए तो बोले, "मैने कहा था कि माखनलालजी कवि है"—और वे जोर से खिलखिलाकर हँस उठे। दादा का ऐसा जानदार भाषण मुझे दोबारा सुनने को नही मिला।

इससे पूर्व इन्दौर साहित्य सम्मेलन की प्रारम्भिक तैयारियो को देखने के लिए दादा जब इन्दौर गए तो बडवाह पर उन्होने द्राक्षासव माँगा। हम कुछ लोग तब भी उनके साथ थे। भूल से शीशी साथ न थी। उन दिनो दादा को द्राक्षासव की प्रतिदिन आवश्यकता पडती थी। बरसो का अभ्यास था। बहुत खोजने पर भी दादा को बडवाह मे द्राक्षासव नही मिला। इस पर दादा बोले, "द्राक्षासव की बेचैनी तो शराबी से कम नही कही जा सकती। ऐसी चीज़ को मुँह लगाना भी ठीक नही है।" और यह कहते हुए नियमित लिया जानेवाला द्राक्षासव उसी रोज से सदा के लिए उन्होने छोड दिया।

किसी होली का बात है। उन दिनो मै शाम को प्रायः दादा के पास जाता था। उस दिन भी गया। दादा ने मुसकराते हुए पूछा, "क्हो, भगी (भग लिए) तो नही हो ?" और फिर ठहाका मारकर हँस पडे। उसी दिन उन्होने बताया कि, "हमने भी एक बार भग पी थी। सध्या का समय था, जिस सज्जन के यहाँ टिका था उन्होने शाम के वक्त बाहर ओसारे मे खटिया डाल दी थी। इसके पहले ही भगवान शकर का प्रसाद समझकर मैने भी थोडी-सी पी ली थी। और मैंने देखा कि उसका असर थर्मामीटर के पारे की तरह बढता जा रहा था। देहात मे सध्या के समय पशु-धन का जगल से चलकर घर आना और पशुओ के गले मे बँधी हुई घटियो का मधुर-मधुर निनादित होना यह अजीब समा होता है, ऐसा ही उस दिन भी था। उधर शिव का 'प्रसाद' मन को कुछ दूसरी ओर ले जा रहा था। इतने मे आतिथेय ने कहा, 'दादा, चलिए, भोजन तैयार है', और चूँकि कई चौपाये मेरे सामने से गुजर चुके थे मैं भी विजया के प्रभाववश उन्ही चौपायो की तरह चलता हुआ भोजनालय मे पहुँचने लगा। सब अवाक् थे। उस रोज़ के बाद से मैने भग नही पी।"

ट्रेन का ज्ञान-युग था। दादा की प्रथम काव्य-कृति 'हिम-किरीटनी' निकल चुकी थी। मैं प्रवास मे था। खण्डवा से रतलाम-सूरत होकर बम्बई जा रहा था। मार्ग मे जो सज्जन मेरे सामने बैठे हुए थे उनकी नजर रह-रहकर 'हिम-किरीटिनी' पर पडती थी। मैंने उनका यह भाव पढकर उन्हे पुस्तक देते हुए कहा, "देखिए।" प्रथम पृष्ठ उलटते ही जहाँ पर कि दादा ने लिखा था, "अपने नगर और मेरे अचल के यशस्वी कलाकार प्रिय बलराम को सस्नेह-सवात्सल्य" सामने के सज्जन ने मुझे देखा और अपनी समस्त श्रद्धा को अपने नमस्कार मे उडेलते हुए वे बोले, "भाई, आप तो उस नर्मदा के किनारे के पत्थर हो जहाँ सब

शकर ही माने जाते है। आप माखनलालजी के निकटतम आदमी है इसलिए पहला नमस्कार मै आप ही को क्यो न कर लूँ ?" और दादा के प्रति असीम श्रद्धावान इस व्यक्ति को देखते हुए मैंने पूछा कि "क्या परिचय पूछने की धृष्टता कर सकता हूँ ?" सो बडे विनीत स्वर मे वे बोले, 'मैं झवेरचन्द मेघाणी हूँ।' उनके कहते न कहते मेरे हाथ उनकी ओर जुड चुके थे।"

इन्दौर के साहित्य सम्मेलन की ही बात है। दादा इन्दौर के रगभवन मे दूसरी मजिल पर ठहरे थे। उन दिनो भी वे सीढियाँ नही चढ पाते थे। एक दिन मैंने देखा कि इसके पूर्व कि कोई व्यवस्था दादा को ऊपर ले जाने की हो बालकृष्णजी शर्मा 'नवीन' आगे बढे और दादा को कधे पर बैठाकर 'हाथी-घोडा-पालकी, जय कन्हैयालाल की' कहते हुए खट-खट सारी सीढियाँ देखते-देखते चढ गए।

एक पुस्तक, दो रिवाल्वर, तीन खत

◦ ◦

अनिलकुमार

अहिंसा के राजनीतिक महत्त्व को अस्वीकार नही किया जा सकता, किन्तु क्रान्तिकारियो की रिवाल्वर-गोली-निष्ठा भी पूजा की वस्तु है। इस देश मे क्राति-कारियो का एक समय रहा है। उनका जीवट, मरण को गले लगाने की उत्कटता बलिपथ का प्रेम, सिर हथेली पर रखकर मातृभूमि की दास्यश्रृ खला काटने की लगन से कोई सही दिमाग व्यक्ति शायद ही इनकार कर सकेगा। रासबिहारी बोस, चन्द्रशेखर आजाद, खुदीराम, धीगरा, भगतसिह, चाफेकर का जीवन भारत माता के मस्तक का रक्त-तिलक बन गया। कई ऐसे भी हुए, जो जीवित रहकर बूंद-बूंद रक्त का तर्पण करते हुए माता के भाल तिलक की लालिमा सुरक्षित रखने मे उद्यत रहे। दादा माखनलाल चतुर्वेदी का नाम क्रान्तिकारियो की श्रृ खला मे जोडा जा सकता है।

कवि, लेखक, वक्ता माखनलाल का असल स्वरूप क्रान्तिनिष्ठा का था। उनके साहित्य की खास रगत क्रान्ति के उद्‌घोष मे देखी जा सकती है। उनको विद्रोह मे परख सकते है। काव्य और गद्य मे बार-बार आने वाले बलिपथ, सिर कमल, रक्त-स्नान के प्रतिमान कवि की रुचि और दिशा का सकेत देते है।

यहा क्रान्तिकारी भूमिगतो से सम्बन्ध रखने वाले दादा के जीवन के तीन मार्मिक सस्मरण प्रस्तुत है। उनकी समयसूचक सूझ और प्रत्युत्पन्नमतित्व की जितनी दाद दी जाये कम ही है।

पुलिस तलाशी लेती है, तुम कोई किताब पढ़ो

रूस से क्रातिविषयक कोई किताब खडवा आयी। ऐसी किताब कहाँ जाती। सीधे माखनलालजी के पास ही पहुँची। अग्रेजी राज का गुप्तचर विभाग चुस्त और मुस्तैद था। उसको तो पराये घर मे हुकूमत करनी पड़ रही थी, तिस पर मौत को कठहार बनाने वाले बागी क्रान्तिकारियो का दबदबा था।

उन दिनो विदेशो से किताबो मे रिवाल्वर आया करते थे, जिनका इस्तेमाल क्रान्तिकारी करते थे। विदेश से दादा के पास पुस्तक आयी है, यह बात पुलिस को हाथोहाथ मिल गयी। शायद पुलिस की नजर किताब से ज्यादा पिस्तौल पर थी।

खतरे की वस्तु दादा हाथोहाथ इधर-उधर कर देते थे। यह तो पुस्तक थी। पुस्तके उनके पास काफी आती थी। 'कर्मवीर' मे समीक्षा के लिए भी बडी सख्या मे किताबे आती थी। सारी किताबे सामने के भवन मे 'कर्मवीर' कार्यालय मे भेज देते थे। यह रूस की पुस्तक भी प्रेस भेज दी। पुस्तक देकर डाकिया गया और पुलिस का गिरोह आया। इन्स्पेक्टर ने कहा, "हम तलाशी लेना चाहते है।" दादा के घर और प्रेस की पुलिस दर्जनो बार तलाशी ले चुकी थी।

दादा ने प्रेस के व्यवस्थापक को बुलाया। उनसे कहा, "इनको 'कर्मवीर' कार्यालय की तलाशी लेनी है। तुम कोई किताब लेकर वही बैठकर पढो, तब तक ये तलाशी ले लेते है।" व्यवस्थापक चतुर था। दादा का आशय समझ गया। पुलिस को तलाशी के काम मे लगाकर स्वय वही रूसवाली पुस्तक लेकर बैठ गया। पुलिस को तलाशी मे कुछ भी नही मिला। वे लौटकर दादा से क्षमा मागते हुए विदा हो गये।

ये लिफाफे डाकखाने मे छोड़ देना

नर्मदा-ताप्ती की कछारो मे, विन्ध्य-सतपुडा बियावान मे दादा पुलिस को चकमा देते हुए खूब भटके है। उस समय वे पॉवो मे प्रभजन, भुजाओ मे मरुद्‌गण और मस्तिष्क मे रुद्र का आवेश लिए चलते थे। बरसों से रोगशैयाग्रस्त दादा को देखकर उसकी कल्पना नही की जा सकती।

इन्ही नदी कछारो मे क्रान्तिकारियो के गुप्त मिलन-केन्द्र थे। किसी औघड साधु का आश्रम या मठ इन गतिविधियो का सचालन केन्द्र होता था। एक बार ऐसे ही किसी बाबा के आश्रम से दादा के पास तीन खत आए। खत बडे महत्त्व के थे। उनमे भूमिगत क्रान्तिकारियो की सूचना थी। दादा के लिए कोई योजना भी दी गयी थी, जिसके अनुसार उनको राहत कार्य करना था। मध्यप्रदेश के विरोधी दल के प्रसिद्ध नेता ठाकुर निरजनसिह, जिनकी उम्र उस समय दस-पन्द्रह साल रही होगी, ये तीनो खत लेकर आये थे।

दादा ने खत पढकर लिफाफे मे रखे ही थे कि गुप्तचर विभाग के लोग तलाशी का कागज लेकर आ गए। प्रसगावधान रखकर दादा ने उनका हँसते हुए स्वागत किया। ठाकुर निरजनसिंह से कहा, "अरे लडके, सामनेवाली होटल मे जाकर चाय और पान ले आ।"

लडका उठा, आगे बढा, दादा ने आवाज देकर उसे बुलाया। कहा, "ये खत पोस्ट कर देना।" और दादा ने वही के वही लिफाफे लडके को थमाकर रवाना

कर दिया ।"

पुलिस ने पूछा, "यह छोकरा कौन है ?"

दादा बोले "हमारा नौकर है ।"

तलाशी मे क्या मिलता ! पुलिस के लोग अपना-सा मुँह लेकर चले गए ।

मेरी मौत उस कमरे मे है; लीजिए, यह रही चाबी !

दादा जिस मकान मे रहते है, उसमे बाहर के हिस्से मे एक कमरा है । कमरे मे एक आलमारी है । इस आलमारी मे फल-दवाइयाँ रखी रहती थी । एक बार फलो की पेटी मे दो रिवाल्वर आए ।

क्रान्तिकारियो से सम्बन्धित कोई खतरे की चीज दादा के पास पहुँचती इसके पहले ही वे उक्त वस्तु की व्यवस्था सोच चुके होते । पर कभी-कभी भाग्य चकमा भी देता है ।

फलो की पेटी आलमारी मे रखकर ताला लगाया गया । दादा सोच रहे थे, पुलिस कम से कम इतनी देर मे आ सकती है । काम उसके पहले कर डालना है ।

दादा इतनी बाते सोच ही रहे थे कि पुलिस आ गयी । उनकी अपेक्षा से काफी पहले । पुलिस अधिकारी ने आते ही कहा कि हमे आपके घर की तत्काल तलाशी लेनी है । दादा मुसकराए । अधिकारी की आँखो मे झाँका और कहा, "मेरी मौत उस कमरे मे है, लीजिए यह रही चाबी । ताला खोलकर ले जाइए ।"

अधिकारी इगित समझ गया । उसने साधारण पुलिस को बाहर ही निगरानी के लिए रखा । चाबी लेकर भीतर अकेला ही गया । आलमारी की तलाशी ली । शायद अधिकारी के हृदय मे मातृभूमि का प्रेम उमड आया । उसने आलमारी बन्द की । चाबी दादा कोसौपते हुए कहा, "आपकीआलमारी मे कुछ नही मिला । शायद हम लोग बहुत जल्दी आ गए । खैर, घटेभर बाद फिर आयेगे ।"

अधिकारी चला गया । दादा मन्तव्य समझ गए । रिवाल्वर यथास्थान भिजवाये गए । पुलिस के लोग सूचना के अनुसार पुन. आए और खानापूरी करके चले गए । इस बार भी दादा मृत्युजय रहे ।

देश के स्वाधीन होने के बाद मध्यप्रदेश के मुख्य मत्री बने प० रविशकर शुक्ल । दादा ने मुख्य मत्री को फोन करके उक्त पुलिस अधिकारी की आशसा की और तरक्की करवाई ।

पुलिस का वह देशभक्त अधिकारी अब तक सेवा-मुक्त हो चुका होगा । प्रदेश के मुख्य मत्री जीवन-मुक्त हो चुके है । अग्रेजी शासन हार मानकर देश से रवाना हो चुका है ।

माखनलालजी की प्रथम जेल-यात्रा

◇ ◇

श्रीकान्त जोशी

दादाजी, पडित माखनलाल चतुर्वेदी, साहित्य के क्षेत्र मे अनेक धाराओ के जन्मदाता थे। उन्होने सदा ही अछूती दिशाओ मे अपने कदम बढाए। वे हिन्दी के प्रथम छायावादी कवि, प्रथम गद्य-काव्य के लेखक और हिन्दी की राष्ट्रीय-सास्कृतिक धारा के प्रथम उद्घोषक थे। वे हिन्दी के अप्रतिम प्रतीकवादी कवि थे जिन्होने राष्ट्रीय-सास्कृतिक काव्य को नितान्त अनूठे और अछूते प्रतीक प्रदान किये तथा हिन्दी भाषा की शक्तियो को समृद्ध और व्यापक बनाने मे अपना मौलिक योग दिया। वे हिन्दी के प्रथम निबन्धकार थे जिन्होने चिन्तन और काव्य का समन्वय करते हुए एक नवीन सूत्रप्रधान किन्तु आकर्षक शैली को जन्म दिया। वे हिन्दी के प्रथम प्रयोगशील कलाकार थे जिन्होने विषय और शैली दोनो ही क्षेत्रो मे आजीवन प्रयोग किये। वे उन विरल पत्रकारो मे से थे जिन्होने पत्रकारिता को साहित्य की ऊचाई दी और साहित्य को पत्रकारिता की-सी ऊष्मा और जीवनबोध प्रदान किया। वे शायद हिन्दी के एकमात्र वक्ता रहे जिन्होने साहित्य की भाषा और भाषण की भाषा के बीच चली आने वाली खाई को अपनी निसर्ग-जात प्रतिभा से पाट दिया। उनकी प्रथम, किन्तु प्रौढ और प्रेभविष्णु दिशा-यात्राओ के अभी और भी उल्लेख हो सकते है किन्तु मै उनके जिस स्वतन्त्रता-समर के सैनिक व्यक्तित्व की ओर ध्यान खीचना चाहता हूँ। उसकी भी यही विशेषता थी कि वह अपनी सैनिक यात्राओ मे भी प्रथम बना रहा।

मध्यप्रदेश की स्वातत्र्य-पूर्व राजनीति मे रतौना कसाईखाना आन्दोलन, १९२१ का आन्दोलन, १९२३ का झण्डा सत्याग्रह, १९२६ के चुनाव, १९३० और ३२ के आन्दोलन और १९३७-३९ की घटनाओ और प्रसगो का असाधारण महत्त्व है। माखनलालजी ने लगभग इन सभी मे प्रान्त के वर्चस्वी नेता के रूप मे भाग लिया।

रतौना कसाईखाना आन्दोलन तो माखनलालजी ने शुद्ध पत्रकारिता के शस्त्र से लडा था। सागर के पास रतौना नामक स्थान मे उस युग की ब्रिटिश सरकार एक बहुत बडा कसाईखाना स्थापित करना चाहती थी। कैसे अग्रेज़ी के पत्र 'पायोनियर' मे चतुर्वेदीजी ने यह सवाद पढा और किस दूरदृष्टि और साहस के साथ इसके विरोध मे उन्होने आवाज़ उठाई, कैसी प्राण-घातक धमकियो को बर्दाशत करते हुए वे आगे बढते रहे और किस प्रकार इस कार्य के लिए उन्होने 'कर्मवीर' के अनेक पृष्ठो का नुकीले शस्त्रो के रूप मे उपयोग किया, यह सब इस आन्दोलन की सफलता के उपरान्त कलकत्ता काग्रेस मे लाला लाजपतराय द्वारा कहे गये एक ही वाक्य से समझा जा सकता है, जिसका अभिप्राय यह था कि "माखनलालजी का केवल यह कार्य ही उनको अमर बनाने के लिए काफी है।"

१९२३ के झण्डा-सत्याग्रह की सफलता मे भी माखनलालजी का बहुत बडा हाथ रहा। मुझे अफसोस यह है कि काग्रेस द्वारा प्रकाशित झण्डा-सत्याग्रह की रिपोर्ट स्वय माखनलालजी द्वारा ही तैयार की गई थी जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्होने उक्त रिपोर्ट मे स्वभावत ही अपनी अक्षम्य उपेक्षा की। जो लोग चतुर्वेदीजी का स्वभाव जानते है वे इस बात को भी खूब जानते है कि जीवन मे (और वह भी राजनैतिक जीवन मे) जहाँ सामान्यत अपने आपको प्रयत्न-शील होकर उछाला और मचस्थ किया जाता है वहाँ भी चतुर्वेदीजी ने अपने आपको छुपाया और स्वय को सब कुछ करते हुए भी कुछ न करने की परिस्थि-तियो मे व्यक्त किया। इस आन्दोलन मे उनके कार्य की कुछ चर्चा प० द्वारका-प्रसादजी मिश्र ने अपने 'मध्यप्रदेश मे स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास' मे की है। यह आशिक चर्चा भी उनकी तेजस्विता का भली-भाति परिचय देती है। इस आन्दोलन का स्वर्गीय सरदार पटेल, स्वर्गीय जमनालालजी बजाज और स्वर्गीय देशरत्न राजेन्द्रप्रसादजी के साथ उन्होने नेतृत्व किया था और जब बिहार के सत्या-ग्रही श्री हरदेवनारायणसिंह का इस आन्दोलन मे लोमहर्षक बलिदान हुआ तो उस समय उनकी अर्थी को कधा देने वालो मे थे राजेन्द्रबाबू, सरदार पटेल, सेठ जमनालाल बजाज और चतुर्वेदीजी।

उपर्युक्त बाते तो मैं प्रसगवश कह गया हूँ। असल मे चतुर्वेदीजी के स्वातत्र्य-पूर्व की राजनीति मे दिये गये योगदान का अपेक्षित मूल्याकन अभी तक नही हुआ है। यह बहुत आश्चर्यजनक बात है, क्योकि काग्रेस की मध्यप्रदेश मे आदि स्थापना करने वालो मे वे अग्रगण्य थे। सन् १९२१ के आन्दोलन मे महाकोशल की ओर से सर्वप्रथम गिरफ्तार होने वाले व्यक्ति माखनलालजी ही थे। प्रान्त के वर्तमान वरिष्ठ नेता जो काग्रेस मे है अथवा काग्रेस के बाहर भी है, इस सचाई को भली-भाति जानते है। वर्तमान युग के ओजस्वी हिन्दी सैनिक तथा स्वतन्त्रता सग्राम के त्यागशील सेनानी सेठ गोविन्ददास के शब्दो मे, "सन् १९२० के असह-

योग आन्दोलन मे मध्यप्रदेश मे कोई व्यापक दमन नही हुआ। मध्यप्रदेश मे केवल तीन ही प्रधान व्यक्ति गिरफ्तार किये गये, प० माखनलाल चतुर्वेदी, प० सुन्दर लाल और महात्मा भगवानदीन। सुन्दरलालजी प्रयाग से आये थे, भगवानदास-जी नागपुर के थे। वर्तमान महकौशल से केवल माखनलालजी को यह गौरव प्राप्त हुआ।" इसी सन्दर्भ को आगे बढाते हुए सेठजी ने लिखा है

"१९३० के सत्याग्रह मे समूचे मध्यप्रदेश मे जो सबसे पहले पॉच व्यक्ति गिरफ्तार हुए वे थे प० माखनलाल चतुर्वेदी, पडित रविशकर शुक्ल, प० द्वारका-प्रसाद मिश्र, श्री विष्णुदयाल भार्गव और मै। सन् १९२६ के चुनावो मे जब अनेक प्रमुख काग्रेसवादियो ने काग्रेस को छोडकर 'स्वतन्त्र काग्रेस-दल' के नाम से चुनाव लडा जिसमे पडित रविशकर शुक्ल भी थे, तब काग्रेस को महाकोशल मे जिताने का श्रेय बहुत दूर तक प० माखनलाल चतुर्वेदी को है। इस प्रकार चतुर्वेदीजी स्वतन्त्रता सग्राम के, और जिस स्वतन्त्रता सग्राम का सचालन काग्रेस ने किया उसके, मध्यप्रदेश के प्रधान सचालको मे से रहे है।"

मध्यप्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमत्री और स्वतन्त्रता सग्राम के सेनानी प० द्वारका प्रसाद मिश्र ने भी खण्डवा मे दिये गये अपने १८ दिसम्बर, सन् १९५९ के अभिभाषण मे स्पष्ट किया था, "श्रद्धेय चतुर्वेदीजी से मेरा सम्बन्ध बहुत पुराना है। मै तो उनसे सदा ही प्रेरित होता रहा हू किन्तु नवयुवक पीढी के निर्माण मे वे वरदान के रूप मे हमारे सामने रहे है। वे इस प्रान्त के सर्वप्रथम सत्याग्रही नेता रहे जिन्होने इस रूप मे सबसे पहले जेल-यात्रा की। उनके बाद ही मध्य-प्रदेश मे असहयोग आन्दोलन के इतिहास का निर्माण हुआ है। उनसे प्रेरणा पाकर मध्यप्रदेश के सत्याग्रहियो ने ही नही वरन् सम्पूर्ण देश के जन-जीवन ने अपनी वाणी और क्रिया को सफल बनाया।"

सन् १९२१ मे जिस असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व चतुर्वेदीजी ने किया था उसका फल उन्हे तत्काल ही मिला। १२ मार्च, १९२१ को उनके बिलासपुर मे दिये गये भाषण के सन्दर्भ मे उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया और उनपर देशद्रोह का आरोप लगाते हुए कहा गया कि "उन्होने ब्रिटिश हिन्दुस्तान मे कानून से स्थापित सरकार के प्रति घृणा और द्वेष का भाव उत्पन्न किया।" जहॉ तक १२ मार्च के भाषण का सम्बन्ध था निश्चय ही चतुर्वेदीजी पर लगाया गया उपर्युक्त आरोप बेबुनियाद था। सचाई यह थी कि मध्यप्रदेश की तत्कालीन सरकार उन की कार्यवाहियो से घबरा उठी थी और उन्हे गिरफ्तार करने के मौके की तलाश मे थी। प्रसग के तीखेपन का जायका देने के लिए मध्यप्रदेश के तेजस्वी देशभक्त और उस युग के माखनलालजी के सहयोगी स्वर्गीय ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी चौहान की कुछ पक्तियॉ उद्धृत करने योग्य है। उन्होने लिखा है, "नौकरशाही इस जागति के प्रवर्तक को कब तक अपनी प्रकाशमयी झॉंकी का विस्तार करने देती,

उसके छोटे-मोटे प्रयत्न व्यर्थ हुए। अन्त मे वह अपनी शैतानी का अघोर अस्त्र लेकर चतुर्वेदीजी पर टूट पडी और परिणाम यह हुआ कि वे बिलासपुर जेल मे कैदी हुए। उनका अपराध था कि उन्होने सच बात कही कि यह जो सन् १८५७ मे हमारे बाप-दादा लडे वे बहादुर थे, कायर कभी नही लड सकते। ब्रिटिश राज्य के प्रेस एक्ट ने हमे नामर्द बना दिया है " कुछ और आगे बढकर लक्ष्मणसिहजी लिखते है, "पाठक, फैसले पर मुसकराना नही, न शका करना कि इस फैसले मे कुछ रहस्य है। हमारी ब्रिटिश सरकार अपने मजिस्ट्रेटो को गुप्त आज्ञाएँ भेजती है। हम उन्हे नही जानते परन्तु हम यह जानते है कि चतुर्वेदीजी ने सुस्त मध्यप्रदेश मे नई जान फूँक दी थी, नरसिहपुर के नवाबो की नवाबी प्रकट की थी और उनके द्वारा सपादित 'कर्मवीर' निर्भयतापूर्वक स्वतन्त्रता की भेरी बजा रहा था।"

ठाकुर साहब ने नरसिहपुर की नवाबी का जो उल्लेख किया है वह साभिप्राय है क्योकि बिलासपुर वाला भाषण तो निमित्त मात्र था, असल मे चतुर्वेदीजी नरसिंहपुर के नवाबो के कारनामो के खिलाफ विद्रोह करने के कारण ही वहाँ के नवाबो के सकेत पर गिरफ्तार किये गये थे।

१९२१ मे माखनलालजी की इस गिरफ्तारी ने मध्यप्रदेश ही को नही, समस्त देश को दहला दिया था। स्वय महात्मा गाधी ने 'यग-इडिया' मे इस गिरफ्तारी की चर्चा करते हुए लिखा था, "पडित माखनलाल स्वतन्त्र रहने की अपेक्षा अपनी आत्मा के लिए जेल जाकर अपने देश की अधिक सेवा कर रहे है। इस महान आन्दोलन की शक्ति मौखिक आन्दोलन मे नही है किन्तु उन्मत्त सरकार द्वारा बलि किए जाने वाले निरपराधियो के कष्टो से होने वाले शान्त आन्दोलनो मे है।"

उत्तर प्रदेश मे अमर शहीद स्वर्गीय गणेशशकर विद्यार्थी ने इस गिरफ्तारी का विरोध करते हुए माखनलालजी का स्मरण इन भावनामयी पक्तियो मे किया था, "एक ऐसे व्यक्ति का जिसके जीवन मे, प्रत्येक कार्य मे, प्रत्येक विचार मे, अहिसा की छाप लगी हो, जो ईसा, टाल्सटाय तथा गाधी और रोम्या रोला की बात को अक्षरश मानता हो जिसकी भावभगी तक से निश्छल, नीरव, सरस, मनोहारी भाव टपके पडते हो, उस मध्यप्रदेश के प्राण, हिन्दी साहित्य के कवीन्द्र और भारत के हेनरी फ्रेडरिक को पकड लेना हृदयहीनता नही तो क्या है ?"

इस गिरफ्तारी से मध्यप्रदेश मे तो विरोध-सभाओ का ताता ही लग गया। इनमे सबसे बडी सभा बिलासपुर मे ही हुई थी जिसकी अध्यक्षता स्वय स्वर्गीय रविशकरजी शुक्ल ने की थी। इस सभा मे उस युग की दिग्गज हस्तियाँ सम्मिलित थी—श्री राघवेन्द्रराव, श्री माधवराव सप्रे, सुश्री सुभद्राकुमारी चौहान, मौलाना ताजुद्दीन, श्री घनश्यामसिह गुप्त और पडित खानखोजे।

जब मुकदमा चला तो चतुर्वेदीजी ने उस युग के अनुरूप अपना वक्तव्य अंग्रेजी मे ही दिया। यह वक्तव्य 'कर्मवीर' मे अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ था। चतुर्वेदीजी ने कहा था

"I have a clear conscience and believe that in doing my honourable and legitimate duty towards my country, I have done no wrong under any moral laws I am not at all to seek justice from this or for the matter of that from any British Court I have been prompted to make this statement in furtherence of my sacred duty of exposing the moral wickedness underlying this system of Government I can do no better service to relieve my motherland of subjection than to cheerfully and patiently suffer for it I commend this course of conduct to my comarades"

(मेरी अन्तरात्मा निर्मल है और मै विश्वास रखता हूँ कि मेरे देश के प्रति अपने सम्माननीय और योग्य कर्तव्य का पालन करने मे मैने किसी भी नैतिक कानून के प्रति अपराध नही किया। मैं इस या किसी भी ब्रिटिश कोर्ट से न्याय कराने के लिए जरा भी उत्सुक नही हूँ। इस बयान को पेश करने मे मेरी यह आन्तरिक प्रेरणा है कि मै इस शासन प्रणाली की नैतिक दुष्टता को प्रकट करने के पवित्र कर्तव्य का और भी अधिक पालन करूँ। मै अपनी मातृभूमि को पराधीनता से मुक्त कराने के लिए इससे और अच्छी सेवा नही कर सकता कि मैं उसके लिए खुशी से, धैर्य से कष्ट सहन करूँ। मैं अपने अन्य देश-भाइयो को इसी मार्ग का अवलम्बन करने की सिफारिश करता हूँ।)

जिस अदालत मे माखनलालजी पर मुकदमा चला था उसके न्यायाधीश श्रीपारधी नामक (अन्तश्चेतना सम्पन्न) महाशय थे। सम्भवत वे जानते थे कि उन्होने निर्दोष माखनलालजी को सजा दी है। अपने ही इस निर्णय का उन पर बहुत बुरा प्रभाव पडा। डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र ने इस प्रसग की चर्चा करते हुए लिखा है, "मुझे वह दिन याद है जब इसी बिलासपुर मे ब्रिटिश शासन के एक सामान्य पुरजे पारधी साहब को विवश होकर अपने फैसले मे घोषित करना पडा था कि श्री चतुर्वेदीजी ने राजद्रोह किया है जिसके लिए उन्हे जेल की सजा भुगतनी होगी। वह पहला जेल-दण्ड था जिसने कृशकाय चतुर्वेदीजी के स्वास्थ्य को अपनी निष्ठुर कठोरता के कारण जीवन-पर्यन्त अस्त-व्यस्त कर दिया। किन्तु उसकी प्रतिक्रिया दण्डदाता पर भी कम नही हुई। श्री पारधी साहब भी अपने हृदय को विवशता की ऐंठन मे सम्हाल नही पाये और शीघ्र ही काल-कवलित हो गए।"

जेल मे पहुँचते ही चतुर्वेदीजी की पोशाक बदल दी गई। हिन्दी के सुविख्यात

उपन्यासकार एव चिन्तक श्री जैनेन्द्रकुमार (जो उन दिनो चतुर्वेदीजी के सान्निध्य मे स्वय-सेवक के रूप मे रहते थे) ने लिखा है, "सजा के बाद तो उन्हे कैदी का बाना पहना दिया गया। आधे बाहो का बडीनुमा कुर्ता होता था, जिसमे काज-बटन का कोई काम न था। गले मे तार के सहारे पडा हुआ तौक और लकडी का एक टिकट और टागो मे घुटन्ना। वह मूर्ति अब भी कभी-कभी आँखो मे घूम जाती है।"

जेल के द्वार पर चतुर्वेदीजी ने जो सन्देश दिया था उसकी कुछ पक्तिया इस प्रकार है

पिंजडे के द्वारा कहता हू मुझे याद रहो,
कौम को जिन्दा रखो, जीते रहो, शाद रहो
फूलो के हार नही, हार से हटना सीखू,
प्यार जजीरो से, जाने दो, लिपटना सीखू,
ले के ढेरा, मजे मे, रस्सिया बँटना सीखू,
धक्के खाते हुए, स्वच्छन्द हूँ, यह रटना सीखू,
मातृवेदी पर यह बलिदान तो होने ही को था,
आज या कल यहाँ मेहमान तो होने ही को था।

सन् १६२१ के माखनलाल स्वतत्रता के अवरोधो को एक तरफ कधो से धका रहे थे, दूसरी तरफ कडियो (हथकडियो) का साज पहन रहे थे और तीसरी तरफ अपनी कलम के सहारे अपनी भूमि और अपने आराध्य को अपने स्मरण और समर्पण प्रदान कर रहे थे। उनके व्यक्तित्व की यह त्रिविधता आजीवन बनी रही। स्वतन्त्र भारत मे हथकडियाँ तो उन्हे नही मिली लेकिन शायद उससे भी बडी सजा उन्हे दी गई। जिस राष्ट्र के माध्यम से अपने आराध्य तक पहुँचने के लिए उन्होने अपना सर्वस्व दे दिया वही अपनी भाषा नही प्राप्त कर सका। राजनीति जब तक देशभक्ति रही तब तक माखनलालजी उसके अभिन्न अग बने रहे। उधर राष्ट्रभाषा का रथ भी गौरव-पथ पर अग्रसर होता रहा, किन्तु जैसे ही राजनीति 'सत्ता की नीति' मे परिणत हुई, माखनलालजी उससे दूर हट गये।

जब राजनीति साहित्य के द्वार आयी

० ०

रामनारायण उपाध्याय

तारीख १६ दिसम्बर, १९६५ खण्डवा के इतिहास मे स्मरणीय रहेगी और सच तो यह कि भारतीय साहित्य के ही इतिहास मे। कारण इस दिन राजनीति के हाथो साहित्य का सम्मान हुआ और वह भी श्रद्धापूर्वक साहित्य के द्वार पहुँचकर। शासन ने साहित्य के चरणो मे अपना प्रणाम निवेदन किया और उसी की देखरेख मे खण्डवा जैसे छोटे-से नगर मे देशभर के अनेक साहित्यकारो ने एकत्रित होकर हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्यकार प० माखनलाल जी चतुर्वेदी के प्रति अपनी स्नेह-श्रद्धाजलि अर्पित की। चतुर्वेदीजी साहित्य मे 'भारतीय आत्मा' के नाम से और साहित्यिको मे दादा के नाम से प्रख्यात रहे है। दादा का यह सम्मान विलम्ब से हुआ और इतने विलम्ब से हुआ कि उन्हे मच तक ले जाने के लिए एम्बुलेस कार की जरूरत पडी, लेकिन विलम्ब से हुआ यह नही, हुआ, यही बडी बात है, क्योकि राज्य शासन के द्वारा किसी साहित्यिक के सम्मान-समारोह का भारत मे यह पहला अवसर है। कई बार मेरा मन इस विचार के आते खुशी से भर-भर गया कि दादा साहित्य की अनेक प्रवृत्तियो के प्रवर्तक, पोषक के रूप मे अग्रणी रहे। तो इस सम्मान-समारोह के रूप मे भी वे अग्रणी ही रहे।

जब उनके सम्मान की चर्चा चली, तो जिले के प्रमुख चिकित्सक को यह चिन्ता हुई कि जिस व्यक्ति ने वर्षो से अपने कमरे की देहलीज नही लाघी, वह अपने घर से चार फर्लांग दूर पुलिस ग्राउण्ड पर आयोजित सम्मान-समारोह मे कैसे उपस्थित होगा? उन्होने पूरे एक सप्ताह तक प्रतिदिन उन्हे कुछ समय मोटर मे बैठाकर पूर्वाभ्यास कराया, जिससे उस दिन असुविधा न हो। दादा ने सोचा होगा कि यह कैसा सम्मान-समारोह है जो उनके प्राप्त सुख को भी छीनकर उन्हे बिना इच्छा घूमने के लिए बाध्य करता है। अस्वस्थता से उनकी याददास्त भी कमजोर हो गई है। एक दिन भाषा-विभाग के सचालक श्री अनन्त मराल शास्त्री ने पूछा कि "ऐसे कौन व्यक्ति है, जो दादा के अन्तरग माने जाते है और जिन्हे

समारोह का निमत्रण जाना ही चाहिए ।" जब मैंने दादा से पूछा, तो वे बोले, "एक तो धर्मवीर भारती को लिख देना, एक हरिभाऊ उपाध्याय को लिख देना, श्रौर एक जगदीश गुप्त को लिख देना और एक गणेशशकर विद्यार्थी को लिख देना ।" सुनकर मै स्तब्ध रह गया ।

समारोह की सारी तैयारी पन्द्रह दिनो मे पूरी हुई । एक दिन अचानक भाषा विभाग के सचालक श्री मरालजी ने खण्डवा आकर कलेक्टर के यहाँ मीटिग की और बताया कि शासन-साहित्य-परिषद् दादा का राज्य-स्तर (स्टेट लेबल) पर सम्मान करने जा रही है । मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री पाटस्करजी उत्सव के अध्यक्ष होगे और मुख्य मत्री प० द्वारकाप्रसाद मिश्र के द्वारा उन्हे साढे सात हजार रुपये की थैली के साथ प्रशस्ति-पत्र प्रदान किया जायेगा । मीटिग के तुरन्त बाद सब अपने-अपने कार्यो मे जुट गए । लोककर्म-विभाग ने एक शानदार सभा-मण्डप तैयार कर दिया । शिक्षण-सस्थाओ ने सास्कृतिक कार्यो का आयोजन किया और शासकीय कर्मचारियो ने आवास-निवास से लगाकर यातायात तक की व्यवस्था की । आल इडिया रेडियो ने कार्यक्रम की सूचना प्रसारित कर प्रचार मे पूरा योग दिया ।

बाहर से आये हुए साहित्यकारो के ठहरने की व्यवस्था एक लॉज मे की गई थी । जब श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी दादा से मिलने के लिए आये तो दादा ने पूछा, "आप कहाँ ठहरे है, महाराज ?" वे बोले, "हमारे ठहरने की व्यवस्था एक लाज मे की गई है ।" दादा ने कहा, "आप कब से लाज करने लगे !" श्रीनारायणजी ने कहा, "आज तो सारा देश ही सरम-दान कर रहा है, महाराज !" और हँसी का एक ठहाका गूँज गया ।

जब हिन्दी के ललित निबन्धकार श्री विद्यानिवास मिश्र दादा से मिलने आये तो बोले, "दादा, मुझे तो इस बात की खुशी है कि आखिर राजनीति, साहित्य के दरवाजे आयी ।" मैने कहा, "आयी तो लेकिन देर से आयी ।" वे बोले, "देर से ही सही, लेकिन आना तो सीखी ।" फिर बोले—"किसी स्वतन्त्र देश मे अगर स्वतन्त्रचेता साहित्यकार का सम्मान नही होता, तो वह स्वतन्त्रता दो कौडी की है ।"

उन्होने बताया, "कैनेडी ने जब राष्ट्रपति पद की शपथ ग्रहण की तो उन्होने अमेरिका के सबसे वयोवृद्ध कवि रॉबर्ट फ्रास्ट से आशीर्वाद ग्रहण किया था । मै उन दिनो वहाँ था । राष्ट्रपति ने कहा था, "मुझे इस बात का गर्व है कि मुझे अपने देश के सबसे वयोवृद्ध कवि का आशीर्वाद प्राप्त है ।"

दोपहर को उन्होने दादा की एक कविता को टेप रेकार्ड करने की इच्छा जाहिर की । दादा का स्वास्थ्य ऐसा नही है कि वे कुछ बोलकर लिखा सके । लेकिन अपनी इस अस्वस्थता के क्षणो मे भी वे गहरे विनोदी रहे हैं । जब भी कोई

उनसे रचना की माग करता है और उन्हे पारिश्रमिक का प्रलोभन देता है, तो वे एक शेर कहा करते है। मैने विनोद की चुटकी लेते हुए कहा, "दादा, वही सुना दीजिए ना अपना पेटेन्ट शेर।" वे मूड मे आ गए और उन्होने कहा, "अच्छा तो सुनो

अस्सी पिच्यासी क्या करता है
सुन वे ओ सौ वाले
मेरे घर से लौटा करते,
नौ नौ सौ वाले।"

सुनकर हम लोग खूब हँसे और सारा वातावरण कमल की गध से महका-सा हो गया। तब मैने कहा, "दादा, अब एक गम्भीर रचना भी टेप करा दीजिए। और उन्होने 'अधकार' कविता की कुछ पक्तियाँ टेप करा दी।

उसके बाद भारतीय ज्ञानपीठ के मत्री भाई लक्ष्मीचन्द जैन और बरुआ जी ने उनकी जीवनी का दूसरा भाग लिखा देने के बाबत उनसे चर्चा की। मैने कहा, "दादा, मै गवाह हूँ, अब तो आपको दूसरा भाग देना ही पडेगा।"

वे बोले, "गवाह के चुस्त होने से क्या होता है, मुद्दई तो सुस्त है।" और फिर हँसी का एक ठहाका गूँज उठा।

जब जगदीश गुप्त आए, तो उन्होने पूछा, "भारती नही आए?" मैने कहा, "वे गाडी चूक गए।" गुप्तजी बोले—"भारती और भारत की गाडी चूक जावे, ऐसा हो नही सकता," और फिर उन्होने धीरे से कहा, "वे अपनी गाड़ी नही चूके, दादा की गाडी चूक गए।"

सम्मान-समारोह के उपलक्ष मे नगर की समस्त शिक्षण-सस्थाओ और कचहरी की छुट्टी कर दी गई थी। समारोह से पूर्व जहाँ सयोजको को यह चिन्ता थी कि पडाल भरेगा या नही, वहाँ ठीक समय पर इतने लोग एकत्रित हो गए कि बेचारा सभा-मण्डप भी छोटा पड गया। मच पर दादा के साथ ही बाहर से आए हुए साहित्यकारो के बैठने की व्यवस्था थी और वहाँ सर्वश्री नन्ददुलारे बाजपेयी, डॉ० उदयनारायण तिवारी, जैनेन्द्रकुमार, लक्ष्मीचन्द जैन, विद्यानिवास मिश्र, डॉ० जगदीश गुप्त, प० श्रीनाराथण चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी, उदयशकर भट्ट, सूर्यनारायण व्यास, डॉ० भागीरथ मिश्र, राजबली पाण्डे, डॉ० शम्भुनाथ सिंह, हरिकृष्ण प्रेमी, बरुआ, झाबरमल शर्मा, कुसुमाकर और वासुदेव गोस्वामी आदि वर्चस्वी और यशस्वी साहित्यकार विराजमान थे। बडा ही भव्य वातावरण था। यदि देश के कोने-कोने से आए हुए उन साहित्यकारो का परिचय भी करा दिया जाता, तो उससे समारोह की सुन्दरता मे चार चाँद लग जाते, लेकिन आयोजन आखिर सरकारी ठहरा। मच पर एक ओर दादा और राज्यपाल बैठे थे और दूसरी ओर मुख्य मत्री, लेकिन उनके सबसे नजदीक बैठा था उनका नौकर लल्लू

मानो वह कह रहा था कि दादा को अब सम्मान से अधिक सार-सम्हाल की जरूरत है।

समारोह से सिर्फ कुछ घटे पूर्व जब मुख्यमत्रीजी का हवाई जहाज खण्डवा नगर के ऊपर मँडराया, जनता तभी अपने पाँवो मे पख बाँधकर सभास्थल पर एकत्रित हो चुकी थी। सभा-मण्डप मे आते ही जब मिश्रजी ने हजारो नर-नारियो के बीच मच पर बैठे वयोवृद्ध दादा के चरणो मे झुककर प्रणाम किया तो खुशी से अनेक की आँखो मे आँसू छलछला आए। यह प्रणाम दादा की युग-व्यापी सहिष्णुता की विजय थी, तो मिश्र जी की उदार नीतिमत्ता का भी प्रमाण था। मिश्र जी का यह प्रणाम मानो इस बात की याद दिला रहा था कि वे न सिर्फ एक प्रान्त के मुख्य मत्री है वरन उससे कही अधिक ऊँचे 'कृष्णायन' काव्य के लेखक और 'सारथी' सम्पादक भी है। साथ ही यह प्रणाम इस बात का भी ज्वलत साक्षी था कि राजनीति की सफलता से साहित्य की सफलता बहुत बड़ी है और आज पर नेता का लाख आधिपत्य हो, कल, पर प्रणेता का ही अधिकार है। मिश्र जी का आज का भाषण भी उनके साहित्यिक स्वरूप की ही याद दिला रहा था। जब उन्होने अपने भाषण मे कहा कि . 'मै पिछली बार यहाँ सागर विश्वविद्यालय के उपकुलपति के रूप मे दादा को डी० लिट्० की उपाधि देनेआया था और आज उससे भी सौभाग्यशाली अवसर मिला है उनके सम्मान करने का। वे हमारे राष्ट्र की विशिष्ट विभूति है, क्योकि उन्होने काव्य एव कर्म दोनो के द्वारा स्वतन्त्रता-सग्राम लडा और उससे युवको को प्रेरणा मिली' तो जनमन खिल उठा।

उनके पश्चात् मध्य प्रान्त के राज्यपाल श्री हरिविनायक पाटस्कर का भाषण उनके निर्मल हृदय का परिचायक था, सर्वथा आत्मीयता और सहृदयता से पूर्ण। जब उन्होने कहा कि 'पिछले आठ वर्षो मै मैंने जितने भी कार्य किए, उनमे मै इस कार्य को सबसे पवित्र मानता हूँ' तो श्रोता आदर से अभिभूत हो उठे।

उसके पश्चात् उपस्थित साहित्यकारो की मनोभावनाओ को मानो मूर्त स्वरूप देते हुए हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक श्री नन्ददुलारे बाजपेयी ने कहा "श्री चर्वेतुदी ने राजनीति से प्रारम्भ कर साहित्य मे परिसमाप्ति की, यह उनके व्यक्तित्व की सबसे बडी विशेषता है। वर्तमान मे ऐसा कोई कवि दिखाई नही देता, जिसने देश को केन्द्रित कर इतना लिखा हो। उनकी राष्ट्रीय काव्य-रचना भारत की अपनी विशेषता है। ससार के किसी देश मे राष्ट्रीय काव्य नामक साहित्य की कोई अलग से शाखा नही है। भारतीय साहित्य मे राष्ट्रीय काव्य की भी स्थापना करने का श्रेय श्री चतुर्वेदी को रहा है।"

यह भी एक सयोग की बात थी कि मध्यप्रदेश के जिन भूतपूर्व मुख्यमत्री श्री भगवन्तराव मडलोई के मन्त्रित्व काल मे दादा के सम्मान की यह योजना बनी उन्हे आज आभार-प्रदर्शन का काम करना पडा। एक दृष्टि से यह दुखद

प्रसग था, पर एक दृष्टि से अत्यन्त सुखद भी, क्योकि पूर्णाहुति का पात्र भाग्य किसी के भी हाथ मे दे दे, यज्ञ के ब्रह्मा तो वे ही थे और अपने यज्ञ की पूर्णता का आभार-प्रदर्शन वे करे तो यह उचित ही है। उल्लेखनीय है कि अपने चेहरे पर बिना किसी तरह की शिकन लाए उन्होने जिस शालीनता से अपने विचार व्यक्त किए, उसकी नगर मे बडी चर्चा रही। उन्होने कहा, 'श्री चतुर्वेदी की दो ही इच्छाएं रही। एक यह कि देश आजाद हो और दूसरी यह कि हिन्दी राष्ट्रभाषा बने और उन्होने अपने जीवनकाल मे अपनी दोनो इच्छाएँ पूरी होते देख ली।'

अन्त मे अपने सम्मान का उत्तर देते हुए श्री चतुर्वेदी ने अपने टेप कराए भाषण के माध्यम से कहा

'मै अपने आपको उस बागवान की तरह पाता हूँ, जो यद्यपि बगीचे के पेड-पौधो को उगाता है, धूप-पानी से उनकी रक्षा करता है और खतरो से उन्हे बचाता है, किन्तु जरूरत के वक्त उन्ही दरख्तो की छाया मे सरक्षण प्राप्त करता है। एक बार मैने कहा था—मै तो साहित्य की इमारत का वह पत्थर हूँ, जिसे शिल्पियो ने अयोग्य समझकर दूर रख दिया था, किन्तु अच्छे पत्थरो के अभाव मे जिसे उसी इमारत के सुन्दरतम कोण पर लगाने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। मै तो आज निमित्त मात्र हू।

"जहाँ कही मनुष्य का अपने अभिमत के प्रति समर्पण है, जहाँ कही जीवन की कर्म से आराधना है, जहाँ कही उत्सर्ग और बलिदान के मोम-द्वीप अधकार को भगाने मे अपनी बलि दे रहे है, जहाँ कही नगण्यता गण्यमान्यता को चुनौती दे रही है, जहाँ कही हिमालय की रक्षा मे सिरो को हथेलियो पर लेकर मरण-त्योहार मनाने वाली जवानियाँ है और जहाँ कही पसीना ही नगीना बना हुआ है, वही पर, केवल वही पर आपका माखनलाल न दीखते हुए भी उपस्थित रहना चाहता है।"

इस सारे आयोजन मे जो बात मन को सबसे ज्यादा अखरी वह यह कि अपने शासकोय सम्मान के इन महत्वपूर्ण क्षणो मे दादा एक भी शब्द नही बोल पाये। उन्हे मौन बैठे देखकर ऐसे लगता था, मानो स्थितप्रज्ञता की उस अवस्था मे पहुँचे हुए है, जहाँ मनुष्य सुख-दुख, हर्ष और विषाद की अवस्था से ऊपर उठ जाता है, फिर भी उन्होने इन थोडे से शब्दो मे अपना जीवन-चरित्र ही कह दिया है। काश आज वे माइक पर बोलते! सोचता हूँ, हीरे-मोतियो की वर्षा ही हो जाती चारो ओर!

दूसरे दिन समारोह के सबसे महत्त्वपूर्ण अग साहित्य गोष्ठी का आयोजन था लेकिन जैसा कि सदा से होता आया है मत्रियो के आकर चले जाने से भीड छँट गई थी और शुद्ध जल की तरह वहाँ निर्मल साहित्यिक वातावरण रह गया था। आज की गोष्ठी का विषय था—'साहित्य की वर्तमान प्रवृत्तियो का समाज पर

प्रभाव'। उसकी दो बैठके हुई। विचारो का स्तर ऊँचा था और उनका प्रकाशन खुले दिल से हुआ। विचारो के कुछ मोती इस प्रकार है

जैसा कि कुछ लोग समझते है कि साहित्य मे अराजकता आ गई है या उसकी अवनति हुई है पर ऐसी बात नही है। जब भी नये रास्ते बदलते है, वे कुछ को पसन्द आते है कुछ को नही लेकिन सबका लक्ष्य आगे बढने की ओर रहता है।

—उदयशकर भट्ट

केवल खोखले आदर्शो एव झूठे नारो से देश उन्नत नही होता। देश उन्नत होता है चारित्रिक सच्चाई से। चीन के हमले के समय हमारी फौजे वापिस लौटी इसे मैं भारत की हार नही मानता, लेकिन जिस दिन हिन्दुस्तान के अधिकाश कवियो ने हिन्दुस्तान की विजय का झूठा गीत गाया, गालियो का गीत गाया, उस दिन हमारी असली हार हुई, क्योकि वह हमारी सास्कृतिक हार थी।

—विद्यानिवास मिश्र

कवियो के तीन प्रकार होते है। कुछ कवि युग-चरण होते है। वे युग का निर्माण करते है। दूसरे कवि युग-चारण होते है। उन्हे कोई स्वय प्रेरणा नही होती, पर वे दूसरे के विचारो का उपयोग करते है। तीसरे प्रकार के कवि युग-चरवण होते है। उन्हे न तो अनुभूति होती है और न वे दूसरो के विचारो का प्रचार ही करते है। वे तो महज समूचे साहित्य का चरवण करते है। चतुर्वेदी जी पहली श्रेणी के कवि है। उन्होने एक नये युग का निर्माण किया है।

— राजबली पाडेय

तुलसीदास कविता करते थे, यह उन्होने हम पर बहुत बडी कृपा की, क्योकि यदि वे कविता न भी करते, तो भी इतने बडे सत, भक्त और साधक थे कि वे बहुत बडे आदमी होते, लेकिन हम जो कविता करते है, यदि हम से वह कविता हटा दी जाय तो हम कुछ भी नही बचते। कविता हटा लेने पर भी जो जीवन से महान बना रहे, वही सच्चा कवि है। —शिवमगल सिह 'सुमन'

हजारो वर्षों से यहा की सस्कृति मे इस्लाम से एव पाश्चात्य सस्कृति से सघर्ष हुआ। मुसलमानो से राजनैतिक सघर्ष था। अग्रेजो से राजनैतिक ही नही, सास्कृतिक सघर्ष भी चला। इससे विचारो मे उत्तेजना फैली, सास्कृतिक भूकम्प आया। आज जो विचार बदल रहे है, नाना वाद आ रहे है, वे स्थायी नही है। हमारी सस्कृति हजारो वर्ष पुरानी है और उसमे स्थायित्व है। अतएव आज जैसे सक्रमणकाल मे घबराने की आवश्यकता नही। इसी मे से स्थायी साहित्य आयेगा। —श्रीनारायण चतुर्वेदी

माखनलालजी मे वैष्णवधारा प्रबल रही, किन्तु उन्होने जेल के सीखचो को प्रणाम किया और उससे युग-धर्म विच्छिन्न नही हुआ बल्कि राष्ट्रीय कविता की एक नई धारा आई। आज जो कवितायें आ रही है उनमे राष्ट्रीय चेतना कम नही

है। आज हम किसी को उपदेश नही देते, एक अनुभव देते है। —जगदीश गुप्त

मै समझता हूँ पूर्ववर्ती कवि और आज के कवि मे अन्तर है। आज के कवि को प्रबुद्ध होना है। उसे युग-चेतना को वाणी देकर अपनी प्रवृत्तियो को परिचित करना है, इसलिए उसे ज्ञान की आवश्यकता है। आज आस्था का नही, अन्वेषण का युग है। —भगीरथ मिश्र

जगत् के साथ, सत्य के साथ सम्बन्ध बनाना आवश्यक है। राष्ट्र शब्द को लेकर जो आत्मार्पण की बात कही गई, वही मुख्य बात है। मूल्य होता है समर्पण से; चाहे वह किसी के प्रति हो और इसी मे से साहित्य की सृष्टि होती है। चतुर्वेदीजी की कविता मे हरियालापन आज भी है। उम्र पक गई, पर कविता हरी है। वे शरीर की दृष्टि से पुष्ट नही रहे, पर उनका काव्य कितना पुष्ट है। वह युवको को भी लज्जित करने वाली कविता आज तक देते रहे, वे इसीलिए चिरन्तन युवा है। जिन्दगी मे जब तक ताजगी रहती है, तभी तक वह जिन्दगी है। पकी कि गई। ज्ञान का असली रूप जानना नही, जिज्ञासा है। बडे-बडे वैज्ञानिक विज्ञान-वेत्ता नही, जिज्ञासु होते है और यही साहित्य का भी प्राण है। —जैनेन्द्रकुमार

पूज्य दादा माखनलाल जी का यह सम्मान-समारोह खण्डवा मे एक त्योहार की तरह मनाया गया और जनसाधारण ने इसमे उसी भावना से भाग लिया, जिससे गगा या नर्मदा मे वह स्नान करता है। दादा के मन पर इसका क्या प्रभाव पड़ा, यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है और इसका उत्तर देना सरल नही, पर उत्सव के बाद बहुत समीप से, बहुत गहराई से उन्हे देखभालकर यह अवश्य कहा जा सकता है कि इससे उनकी आत्मगौरव की भावना प्रतिच्छवित नही हुई, उनका चिन्तन ही चादनी मे नहा गया है। सचाई यह है कि वे सदा मन के इतने ऊँचे स्तर पर रहे है कि कोई समारोह उन्हे गर्वित करे, यह सभव नही। मेरा तो खयाल है कि इस समारोह को जन-साधारण की तरह दादा के मन ने भी एक पारिवारिक पर्व ही माना—उनकी खुशी यही थी कि उनके इतने अपने एक साथ उनसे मिल लिए। दादा शतायु हो।

चतुर्वेदीजी के साथ तीन दिन

◇ ◇

डॉ० पद्मसिह शर्मा 'कमलेश'

बम्बई मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सन् १९४८ के अधिवेशन के समय से मै ऐसे अवसर की खोज मे था जिसमे श्रद्धेय माखनलालजी चतुर्वेदी के जीवन और साहित्य के विषय मे, उनके निकट रहकर, कुछ जान सकू। इस बीच कई बार पत्र लिखकर भी तिथि निश्चित की, पर जीवन की व्यस्तताओ ने बाधा बनकर यह कार्य न होने दिया। सन् १९५२ मे जब दिसम्बर की छुट्टियाँ हुई तब अचानक विचार आया कि क्यो न खडवा की तीर्थयात्रा की जाय। इस विचार का आना था कि कार्यक्रम बन गया और मै २८ दिसम्बर की प्रात काल दो बजे बम्बई एक्सप्रेस मे सवार हो गया। चल तो पडा, पर रेलगाडी से पूरे दिन यही आशका बनी रही कि कही ऐसा न हो कि यह साहित्यिक सत खडवा से बाहर हो और मेरा जाना व्यर्थ हो जाय, लेकिन सहसा जिस प्रेरणा ने मुझे खडवा जाना सुझाया था, उससे यह भावना भी जाग्रत हुई कि जब मै इतनी श्रद्धा-भक्ति लेकर जा रहा हूँ तब ऐसा नही हो सकता कि मेरा श्रम विफल हो जाय। यो कभी आशा और कभी निराशा के अचल मे मुह छिपाता मैं उस दिन सायकाल ५ बजे खडवा पहुँचा।

'कर्मवीर' कार्यालय के पास ही श्रद्धेय चतुर्वेदीजी का निवासस्थान है। वाहक प्रेस के बदले वही पहुँच गया। पूछा तो पता चला कि चतुर्वेदीजी घूमने गए है। एक किशोर ने मेरा सामान तो वाहक से वही उतरवा लिया और मुझसे प्रेस जाने के लिए कहा। मैं प्रेस पहुँचा। सकुचित और अपराधी बना हुआ। कार्यालय मे एक शान्त स्वभाव के लगभग चालीस वर्ष की अवस्था के स्वस्थ सज्जन बैठे थे। उनसे मैने अपना मन्तव्य कहा और पहले लिखकर निश्चय न करने की भूल तथा धर्मशाला मे स्थान न मिलने की विवशता बताई। मैं क्या कहू जैसे कोई घाव पर शीतल मरहम लगा देता है, वैसे वह सज्जन बोले, "आप बैठिए। अभी दादा आते होगे, तब सब ठीक हो जाएगा।" और एक लडके से चाय लाने को कह

दिया। उनकी इस शालीनता को देखकर मेरा अन्तर उनके प्रति आदर से भर गया और मै चुपचाप उनकी मानवता का चिन्तन करता हुआ बैठ रहा। यह चतुर्वेदी जी के लघु भ्राता श्री बृजभूषण चतुर्वेदी थे जिन्हे चतुर्वेदीजी 'ब्रज बाबू' कहकर पुकारते है और जो प्रेस तथा कर्मवीर' का सचालन करते है।

चाय पीकर समाप्त ही की थी कि जिस किशोर ने मेरा सामान वाहक से घर पर उतरवाया था उसने आकर सूचना दी कि दादा घूमकर आ गए है और सामान अतिथिगृह मे रखवा दिया गया है। मै प्रेस से उठा और बिना हाथ-मुह धोए और कपडे बदले ही चतुर्वेदीजी के पास पहुँच गया। उस समय चतुर्वेदीजी एक पलग पर तकिए के सहारे बैठे थे। मै उनके चरण छूकर एक कुर्सी पर बैठ गया। वह कमरा जिसमे वह बराबर पलग पर तकिए के सहारे बैठे रहते है और रात को जिसमे सो भी रहते है अधिक बडा नही है। उसमे दो बडी-बडी आलमारियाँ है, जिनमे आवश्यक पुस्तके और अन्य सामग्री रखी है। एक कोने मे शेल्फ मे वे गुजराती, मराठी, अग्रेजी, हिन्दी, सस्कृत आदि भाषाओ की पुस्तके है जिन का अध्ययन वह बहुधा करते रहते है। एक जाली की छोटी-सी आलमारी मे दवा की शीशियाँ रखी है। इन शीशियो का उपयोग वह दिन मे कई बार करते है। चित्र उस कमरे मे केवल चार है। एक नर्मदा के भेडाघाट का है जो घर के भीतर जाने वाले दरवाजे पर उस स्थान पर लगा है जिसपरसे वह उसे बार-बार देख सकते है। दूसरा महात्मा गाधीजी का है। यह आदमकद तैल चित्र है। शेष दो फोटो है जिनमे एक कवि की पूज्या माताजी का और दूसरा स्वय कवि का जिसमे वह अपने भाई के एक पुत्र के साथ है। मुझे लगा कि चारो चित्र कवि की आत्मा की प्यास को बुझाने के लिए लगे है। यह भेडाघाट तो कवि को बचपन ही से प्रिय रहा है और उसके सौदर्य का वर्णन करते-करते आज भी वह आत्मविभोर हो जाते है। महात्माजी के व्रत पर उनका जीवन ही देश की बलि चढ चुका है। माताजी के प्रति उनकी श्रद्धा है और शिशु उनके खिलौने है। वह बराबर इसी कमरे मे रहते है और यही आगतुको से मिलते है। केवल खाना खाने के लिए भीतर घर मे जाते है।

मैने चरण-स्पर्श करने के कुछ देर बाद उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध मे पूछा तो कहने लगे, "मुझे सर्दियाँ बडी कष्टप्रद होती है इसीलिए मैं सर्दी के मौसम मे कही नही जाता। अभी-अभी इन्फ्लुएजा हो चुका है।"

"शायद इसीलिए आप हमारे आगरा विश्वविद्यालय के कवि-सम्मेलन मे भी नही आ सके ?" मैने पूछा।

वह बोले, "कवि सम्मेलन मे न आ सकने का तो इसके अतिरिक्त एक और भी कारण है। वह यह कि मै बराबर अस्वस्थ रहता हूँ, इसीलिए मेरे साथ तीन-चार आदमी सभालने के लिए चलते है। इस प्रकार मेरी यात्रा बडी व्यय-साध्य होती है। कवि-सम्मेलन मे बुलवाने वाले इतना दे नही सकते। अपनी ओर से कुछ

माँगना अशोभनीय जान पडता है। छोटे-मोटे स्थानो की बात जाने दीजिए,एक बडे सम्मेलन मे मुझे बुलाया गया था। मै चला गया, पर वहाँ से जो कुछ मिला, उसके अतिरिक्त मुझे तीन सौ रुपए अपने पास से खर्च करने पडे । तब से मैंने निश्चय कर लिया है कि जाना ही नही और कही जाना तो अपने बलबूते पर। लेकिन अपनी स्थिति ऐसी नही है कि निभा सके, इसलिए कवि-सम्मेलनो मे जाना बन्द-सा ही है ।"

इस समय इतनी ही बात हुई और वह चुप हो गए। मैंने भी कपडे आदि बदलने के लिए आधे घटे की उनसे छुट्टी माँग ली। नौ बजे के करीब मैं फिर उनकी सेवा मे पहुँचा। मै सफर की थकान और सिर-दर्द के कारण नाश्ते के लिए मना कर चुका था, इसलिए थोडा-सा दूध ही लिया।

इस समय जो बातचीत हुई वह गद्य काव्य को लेकर हुई। 'साहित्य देवता' के नाते वह हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ गद्य-काव्य लेखको मे है और मैं गद्यकाव्य पर खोज कर रहा था। इसलिए, इस विषय पर जब उनके विचार जानने की अभिलाषा मैने प्रकट की,तब उन्होनेकहा,"मैगद्य-काव्य नाम की चीज नही मानता। मैने तो जो कुछ गद्यमे लिखा है और जिसे आप लोग गद्य-काव्य कहते हैं, वह मेरे निकट भाव की भाषा है और मैं उसे इसी नाम से पुकारता हूँ। यह भाव की भाषा मुझे कैसे मिली इसकी भी एक कहानी है। हुआ यह कि मै आरम्भ ही से इस बात की तलाश मे रहा कि कोई बहुत अच्छा गद्य मिले। बात यह है कि हमारा घर राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय का है। इस सम्प्रदाय के आचार्य हितहरिवश है। इस सम्प्रदाय मे राधादेवी कृष्ण की प्रथम सेविका है। राधावल्लभीय और कबीर, दो ही ऐसे सम्प्रदाय है जिनका जन्म हिन्दी कविता से हुआ। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र राधावल्लभीय सम्प्रदाय के मानने वाले थे। इससम्प्रदाय की मान्यता होने से हमारे यहाँ पाँच वैष्णव-भजन गाए बिना भोजन नही मिलता। यह अनिवार्य था। इस का फल यह हुआ कि क्रान्तियुग मे फरारी के दिनो मे किसी जगल मे यदि किसी गौड के यहाँ रोटी खायी, तब भी पाँच पद अवश्य गाए गए। उनमे एक चाव-सा रहा। भाषा मे यह बात इस प्रकार आयी कि मुझे भोपाल राज्य मे नादनेर गाँव मे सस्कृत पढाई जाती थी। अध्यापक थे मेरे बाबा—ताऊजी। उनमे प्रेम तो कम था पर अध्यापक की प्रखरता बहुत थी। बडे कडे थे। उनका कहना था, 'सस्कृत पढो, पर हिन्दी नही।' उस समय मेरी अवस्था बारह-तेरह वर्ष की थी। प्राइमरी पास करके गया था। उन्होने हिन्दी पढने पर तो रोक लगाई, पर मुझे मन्दिर-पूजा का अधिकार दे दिया। मन्दिर मे मूर्ति के ऊपर का भाग खाली था, ताकि कोई मूर्ति के ऊपर पैर रखकर न जा सके। शेष दुछत्ती मे एक ताबे की परात मे बहुत-से किताबो के बस्ते रखे थे। मैंने एक दिन दुछत्तीमे पहुँचने के लिए रस्सी बाधी और ऊपर चढ गया। जल्दी मे एक पुस्तक हाथ लगी—लल्लूलालजी

का 'प्रेम सागर' । उसे लेकर मै नीचे उतर आया और बस्ते ज्यो के त्यो जमा दिए।

"पुस्तक तो ले आया, पर पढू कैसे ! समस्या का समाधान खोजा तो ज्वार की करब से भरी एक बैलगाडी मे छिपकर पढने लगा । पुस्तक इसी मे छिपा देता था । एक दिन मथुरा-गमन का प्रसग आने पर मेरी आँखो मे आँसू छलछला आए । मैं कह नही सकता, मेरी क्या दशा हुई । आज जब मैं अपने उस गद्य को देखता हूँ जिसे लोग गद्य काव्य कहते है तब पाता हूँ कि मेरे गद्य-काव्य का जनक 'प्रेमसागर' है और इस आधार पर मै कह सकता हूँ कि हिन्दी को गद्य-काव्य का जन्म देने मे लल्लूलालजी का पहला हाथ है । इस प्रकार आगरा ही से पहले-पहल गद्यकाव्य का जन्म हुआ । जब 'प्रभा' पत्रिका निकलती थी तब अगरा के ऋषीश्वरनाथ भट्ट और ब्रजनाथ गोस्वामी उसमे लिखा करते थे । मैंने उनसे लल्लूलालजी के घर का चित्र मगाया था । यद्यपि पिताजी हिन्दी के अध्यापक थे और घर पर तुलसीकृत रामायण थी तथापि उस दिन चोरी से 'प्रेमसागर' पढने मे जो स्वाद मिला, वह अपूर्व था ।

"दूसरा धक्का मुझे स्वामी रामतीर्थ की शैली ने दिया । उनके एक-एक वाक्य मे अनन्त बलशाली प्रयोग है । · लल्लूलाल जी की तरह रामतीर्थ भी परम वैष्णव हैं ।

"तीसरा हिन्दी गद्यकाव्य लेखक मै पूर्णसिंह को मानता हूँ । 'सरस्वती' मे उनकी 'नयनो की गगा' पढी, तो मैंने कहा कि रामतीर्थ के शिष्य से यही आशा की जा सकती है ।

"रायकृष्णदासजी ने लिखा, तब बडा प्यारा लगा । मैं तो जीवन की सार्थ वस्तुओ का उपासक था । एक आदमी और पसद आया। वह था लाला हरदयाल। तर्क के अपरिमित जोर मे यह आदमी धर्म का सम्मार्ग छोड गया बाकी भाषा वही है जो रामतीर्थ की देन है ।"

इसी बीच एक शिशु ने आकर अपने खिलौने उनको दिखाए । वह यह चर्चा बन्द करके उसको समग्र भाव से खिलाने लगे और उसकी सन्तुष्टि के बाद बोले, "मुझे बगला नही आती । मैंने जो गद्यकाव्य लिखे है वे मेरी अपनी ही उमग है । सन् १९१३ की रामनवमी को मैने 'जियो और जीने दो' नामक गद्यकाव्य लिखा था । मैं अपने छोटे-छोटे गद्यखडो मे किसी प्रभु के पास नही, किसी प्रिय के पास पहुँचना चाहता हूँ । मेरे लिए प्रभु और प्रिय मे कोई अन्तर नही है । इसीलिए मैंने देश को भी राधा और कभी कृष्ण मानकर उनकी आराधना की है ।"

"तो क्या आप वैष्णववाद को क्रान्ति का प्रेरक मानते है ?" मैंने पूछा

उन्होने कहा, ' अवश्य । क्रान्ति मेरे वैष्णववाद से दूर नही है । 'वैष्णविज्म' शास्त्रीय धार्मिक जीवन के विरुद्ध विद्रोह था । शास्त्र का ईश्वर शेषनाग की गोद मे बैठकर लक्ष्मी से पैर दबवाने का आदी था। भक्तो का ईश्वर भक्तो की कुटिया

छानने का आदी था। यह सघर्ष है, जिसका मूल है ईश्वर। उसे ईश्वरत्व से उतार कर मजदूरी मे लगाना है। वही ईश्वर धनुष-बाण से तुलसी की कुटिया रखाता है। मैंने अपने नारायण से सम्पूर्ण देश की कुटिया छवा ली और जो देश बना उसे नारायण मानने लगा।"

जब मैने कहा कि यह तो आपकी एक मौलिकसूझ है, तब वह कहने लगे, "जिसे आप मौलिकता कहते है वह मेरी लाचारियो का नाम है। मुझे देश की सेवा करनी थी। उसके लिए लेखनी ही का सहारा था, इसलिए उस समय यह सोचना आवश्यक था कि सतह पर से इतनी ऊची उठी हुई चीज लिखूँ कि किसी पर सकट न बरस जाय। सन् १९२० मे एक व्यक्ति के लिए लिखा था

फिसल जाऊँगा, ललचा रहे, तुम्हारी आज्ञा है
मत हटो !
लिए वे दड-भेद कस रहे और तुम कहते हो
मर मिटो।
आपदाओ के जीवनप्राण ! विवश करते
मुझको भगवान !
जहाँ खुल पडती जरा जबान, बनाते
काँटोवाला स्थान !
पाप से मिलती हो, तो देव नही है देश
भक्ति की चाह,
कहो, आज्ञा दो कैसे बढूँ, बताओ परम मुक्ति
की राह।

इन पक्तियो को सुनाने के बाद वह सहज भाव से बोले, अब पैसठ वर्ष की अवस्था मे मुझे यह कहने का अधिकार हो कि ऐसे अज्ञात को देश मे ज्वाला जलाने के लिए प्रस्तुत करने का अभ्यास किसी को था ही नही, तो अनुचित नही है। अभ्यास कदाचित् किसी को किसी भाषा मे नही था। सावरकर को एक कविता के ऊपर काला पानी होने की बात सुनी थी।

सत्याग्रह मे इस भावना से जो परिवर्तन आया, उसका आभास इन पक्तियो से मिल सकता है

दो आज्ञा, अन्दर से पा लूँ तग जगह मे कर दो बन्द
भूख और एकान्त चिन्तना दोनो का लूटूँ आनन्द
वे हथकडियाँ, मृदुल बेडियाँ बनी कोट कोडे स्वच्छद
देने मे तुमको बल देवे इन सबके हित करुणाकन्द।

उस स्थिति मे मैं सबको ले जाकर प्रभु के सामने खडा कर देना चाहता था। 'आनन्द मठ' ही का आदर्श यहाँ पूर्ण रूप से आया है। हमारी प्रार्थना उन दिनो

जेल मे यह होती थी

माधव दिवाने हाव भाव पै बिकाने,
अब कोऊ चहै निदै चहै बन्दै काह परवाह ।
बौरन से बातै जनि कीजै नित आइआइ
ज्ञान ध्यान खान पान काहू की यहाँ न चाह ।।
भोगन के व्यूह तुम्हे भोगिवौ हराम भयो
दुख की सराह यहाँ चाहिए सदा ही आह ।
विपदा जो टूटे कोई सब सुख लूटै
मन मोहन न छूटै तो कराह भी सदा सराह ।।

यह मूल भावना है । जब खडीबोली मे लिखने लगा तब मैने कुछ खो दिया । बहुत खोया है । पाया है केवल बलिदान का आवेग । हाँ, मै यह अवश्य मानता रहा हूँ कि खुला लिखने से काव्य का सौष्ठव जाता रहता है, और माधुर्य पर देश का उत्तरदायित्व है । शैली की दृष्टि से 'वन्दे मातरम्' मेरा आदर्श है, जिसमे सब चीजे आ जाती है ।"

"तब तो ऐसा लगता है कि आप बचपन ही से असाधारण प्रतिभा लेकर पैदा हुए है ।" मैने सहज भाव से कह दिया ।

बिना सकोच ही के अपने बचपन का परिचय देते हुए वह बोले, "बचपन मे मै शरारती बहुत था । उन दिनो बुआ आती थी और महीनो रहती थी । प्रभाती गाती थी । मै लिहाफ ओढे कस्तूरी बहन के साथ सोता रहता था । उनकी प्रभाती 'जागिए ब्रजराज कुवर भोर भयो प्यारे' से आरम्भ होती थी । एक दिन मैने उनके स्थायी और अतरे को बदलकर लेटे ही लेटे गाना शुरू किया 'उठो मेरे दोनो बैल, जगल तुम चरो घास, घर की अब छोडो आस, भोर भयो प्यारे !' काका घर पर थे । इस पर दो लाते पडी लेकिन यही मेरी पहली कबिता थी । वैसे पिताजी मेरी शरारत से सुख पाते थे और कभी नही डाटते थे । मेरी दूसरी रचना 'नर-काव्य' है । हुआ यह कि बालम भट्ट नाम के एक सज्जन 'अमर कोश' पढाते थे । वह लडको को लकडी लाने के लिए जगल मे ले जाते थे । पिताजी को यह पसन्द नही था, पर मै इसमे शरारत का मौका पा लेता था, इसलिए चला जाता था । एक दिन बालन भट्ट हम सबको नदी किनारे ले पहुँचे और बाटियाँ बनने लगी । सब कुछ तैयारी हो गई पर देखा तो नमक नही । दो लडके नमक लेने भेजे गए, पर वे बडी देर तक लौटकर ही नही आए । मुझे उस समय तुकबन्दी की सूझी और ये पक्तिया गुनगुनाने लगा

बालम भट्ट के तीन छोकरे,
दो बाजार मे जा सटके,

नमक बिन अटके
बालम भटके

न जाने कैसे बालम भट्ट ने यह सुन लिया। पूरा भरा हुआ घडा मेरे ऊपर उलट दिया। दो तमाचे जडे और ऊपर से पिताजी से भी शिकायत की, "गुरुजी, तुम्हारा लडका बडा चाडाल है। मेरे ऊपर गीत बना दिया और पिटा।"

तीसरी घटना मेरे फूफा के यहाँ की है। फूफा के बडे भाई हमारे सामनेही रहते है। बीच मे केवल सडक थी। उनकी भतीजी द्रौपदी दस वर्ष की थी और मै बारह वर्ष का। पास मे ही हनुमान जी का मदिर था। मैने उन पर कील से एक 'समन' लिखकर लगा दिया। उसे काशीराम नामक भाट ने पढ लिया। चट से द्रोपदी के पिता धनीरामजी से जाकर बोले,"काका,तेरी तो जड से काट ली!"

"कौन ने काट ली रे?"

"तेरे भाई के भतीजे ने।"

धनीराम ने लट्ठ उठाया और मुझे मारने दौडे। मै भागा और खेतो मे जाकर छिप गया। उस पर मैंने फिर एक तुकबन्दी लिखी

धनीराम की पोली पाई,
उसमे निकली द्रौपदीबाई।
द्रौपदीबाई ने बिछाई खाट,
उस पर बैठा काशी भाट।
काशी भाट ने काटी जामन,
उसमे से निकला बैजू बामन ··

पचास वर्ष की उम्र मे सोचने लगा था कि इस चापल्य ही मे शायद वे सब प्रवृत्तियाँ मौजूद थी जो परिस्थितिया पाती गई और विकसित या अविकसित होती गईं।"

थोडी देर रुककर वह बोले,"सुभद्रा (स्वर्गीया श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान) के पति श्री लक्ष्मणसिंह चौहान बचपन से मेरे प्रिय विद्यार्थी थे। उन्हे मैने पढाया नही तो भी वह मेरे बहुत निकट रहे है। मैट्रिक मे थे तब रामायण उन्हे पढाता था। उनसे बडी पारिवारिकता और सान्निध्य रहा। वह मेरे सब भेदो को जानते थे।"

"तो क्या आपने अध्यापकी भी की है?" मैने पूछा।

"बिलकुल," उन्होने कहा, "मैं साधारण स्थिति का व्यक्ति हूँ। पिताजी भी अध्यापक थे। मैंने भी मिडिल पास करके नार्मल मे दाखिला लिया और अध्यापक बना। लेकिन अध्यापक होते हुए भी मेरे साहित्यिक और राजनैतिक कार्य बराबर चलते रहे है। जब मैं अध्यापक था तब भी मेरी विचित्र प्रकृति मुझसे नाना प्रकार से भावुकता का प्रदर्शन कराती रहती थी। उसका एक ही उदाहरण दूँगा—वह

यह कि मै सफल अध्यापक था। पर, सन्ध्या के समय एकान्त मे चला जाता था और एक छोटे पेड को अपना कोट पहनाकर तथा उसे अपना साफा बाँधकर कहता था, 'बडे अच्छे लगते हो, प्यारे !' और घटो उसे बैठा देखता रहता था। जब समाधि भग होती थी तब अपने कपडे उससे उतारकर पहनता था और चला आता था।

"आप राजनीति मे कैसे आए ?" मैने पूछा और प्रसग बदला।

वह बोले, 'इसका कारण श्री माधवराव सप्रे थे। वह मुझे बहुत प्यार करते थे और लोकमान्य तिलक से प्रभावित थे। वह क्रान्तिकारी होते हुए भी गाधीवाद से प्रभावित थे। वही मुझे क्रान्तिकारी से गाधीवादी बना गए। वैसे एक बार मैने खेल-ही-खेल में सन् १९०६ मे दशाश्वमेध घाट पर गगाजल और गीता हाथ मे लेकर देश पर बलिदान होने की प्रतिज्ञा की थी। सन् १९१३-१४ के अक्टूबर मे लखनऊ सम्मेलन मे गणेशजी (श्रद्धेय गणेशशकर विद्यार्थी) भी मिले। वह भी क्रान्तिकारियो के साथ सबद्ध थे। उनके भेजे यू० पी० के क्रान्तिकारी मेरे यहाँ खडवा मे रहते थे। गणेशशकरजी के सपर्क ही से राजनीति और साहित्य दोनो एक साथ मेरे जीवन के अग हो गये। सार्वजनिक जीवन मे आकर मैंने अपने क्रान्तिपथ को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करना प्रारम्भ किया। गणेशजी ने ही सबसे पहले मेरी रचनाएँ छापना शुरू किया। इधर सप्रेजी ने इस प्रान्त के व्यक्तियो को सस्थाओ के निर्माण मे लगाया। सप्रेजी का दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक था, गणेशजी का बधुत्वपूर्ण। पत्नी की मृत्यु पर स्वय गणेशजी आए और मुझे ले गए।

उन्होने मुझसे इस दु ख को भुलाने का आग्रह किया। पत्नी की मृत्यु पर मैंने बहुत लिखा। एक रचना बहुत करुण थी जिसका प्रकाशन गणेशजी ने नही करने दिया। यो मैंने जीवन से प्रभावित होकर ही लिखा है। यह एकेडेमिक दिशा है जो मेरी पढने-लिखने की प्रकृति मे से आ गई। कलकत्ता जाऊँ तो इम्पीरियल लायब्रेरी मे और बम्बई जाऊँ तो पेटिट इन्स्टीट्यूट मे समय गुजारता हूँ। मैं जीवन को उसकी मूर्ति मानता हूँ और रचना को उसकी कीर्ति, अत सघर्ष मे जब तक जीवन नही जागता, तब तक लिखने की कभी इच्छा नही होती। जीवन जाग उठता है, तब लिखने का न्योता नही देना पडता। यह मेरा बल नही है, मेरी भयकर कमजोरी भी है।"

उन्होने कुछ विराम लिया और मैंने उनके दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध मे कुछ जानने की जिज्ञासा प्रकट की जिसे उन्होने इस प्रकार शान्त करने की चेष्टा की। "मेरी शादी चौदह साल की उम्र मे हुई थी। पत्नी तब दस वर्ष की थी लेकिन सघर्षों ने पत्नी को टी० बी० का शिकार बना दिया। मै उसे बलवर्धक भोजन न दे सका और न उचित इलाज ही करा सका। उसके बाद दूसरी शादी के लिए भी लोगो ने जोर दिया लेकिन मै सदा यही कहता रहा कि शादी से उस साथी

को कहाँ से लाएगे । एक बार स्वीकृति दे भी दी तो तीसरे दिन गणेशजी को तार दे दिया ।

मेरी स्वीकृति भयकर है । साथ ही एक कविता भी उस समय लिखी जिसकी दो पक्तियाँ ये है

किया जनकजा ने कुजो मे सौदा जीवन-धन का ।
तृण से हलका मूल्य हो गया तभी जनक के प्रण का ।।

पत्नी की मृत्यु के बाद से मेरा खाना-पीना कठिन हो गया । उदासी ने घेरा और बीमार हो गया । कारण जो बोलता नही, वह अधिक सहता है ।

लेकिन तब से एक विचित्रता मेरे स्वभाव मे आ गई । लडकियो के प्रति पूज्य भावना मेरे हृदय मे बढ गई । सात वर्ष तक तो यह हुआ कि मैंने किसी से राखी ही नही बधवाई । राखी का दिन आता था और मै टिकिट कटाकर किसी पास वाले स्टेशन पर उतर जाता था । तभी से मेरा मन इतनी सुकुमारता से भर गया है कि बच्चियो की विदा का दृश्य बडा कष्टप्रद होता है । आँखे भर आती है। सब से बडी बात तो यह हुई कि मैं बडे और छोटे सबको माँ लिखने लगा । श्रीबालकृष्ण शर्मा नवीन मुझे'माई डियर मदर' 'मेरी प्यारी माँ'—लिखा करते थे लेकिन सुभद्राकुमारी चौहान के साथ हमारा 'माँ' लिखना चला गया । मैंने १८-१९ वर्ष से 'माँ' नही लिखा ।"

हमारी यह बैठक समाप्त हो गई और हम लोग खाना खाने के लिए अन्दर गए । मेज पर थाली आयी तो उनका भोजन बहुत ही सादा और हलका था । नाश्ते के वक्त मैंने देखा था कि उन्होने आधे पानी और आधे दूध मे 'ओवल्टीन' डालकर दो प्याले लिए थे। सोचा, कोई न कोई रहस्य है जो वह इस प्रकार का भोजन करते है । उनसे जब इसका कारण पूछा तब बोले, "बात सन् २७ की है । मैं अक्सर बीमार हो जाता था, कभी पेचिश, कभी कुछ । तब से मेरा यह नियम हो गया है कि एक तो मै सदा उबला हुआ पानी पीता हूँ, यहाँ तक कि यात्रा तक मे बोतले साथ चलती है । दूसरे, पत्ती के या घुलकर पानी हो जाने वाले साग लेता हूँ, जैसे घिया, तोरई, ककोडा आदि । दाल नही खा सकता । दाल का पानी लेता हूँ । फुलके एक-दो चलते है । अन्त मे दूध या दही लेता हूँ । दोपहर का भोजन तभी करता हूँ जब दस्त की शिकायत नही रहती । सामान्यत डेढ पौने दो बजे का समय निश्चित रहता है । शाम को दो प्याले दूध और ओवल्टीन लेता हू । और आखिरी हिस्से के साथ ईसबगोल का सेवन करता हूँ ।"

"लेकिन दादा, आपका शरीर दुर्बल भले ही हो, आपका मानसिक सतुलन तो गजब का है ।"

"इसके लिए मैंने स्वर-साधना की है । उसका इतिहास यह है कि जब बावन वर्ष की उम्र मे सहसा मेरा मानसिक सतुलन बिगड गया, तब मुझे 'कल्याण' मे

एक लेख पढने को मिला। उसमे स्वर-साधना का तात्रिक विवेचन था। स्वर से मुझे सकेत मिलते है। बाएँ नथने का स्वर शीत और दाएँ का उष्ण होता है। बाए नथने का स्वर अटूट रहता है। अत बाएँ नथने मे रुई लगा लेता हूँ। दायाँ मेरे अनुकूल है। बायी करवट लेटा जाय और दायाँ स्वर साधा जाय तो स्वास्थ्य ठीक रहता है।"

तदनन्तर वह विश्राम करने चले गए। सायकाल के समय चायपान के बाद तागा आया और हम लोग एक तालाब के किनारे पहुँचे। तालाब के किनारे ही वह मदिर है जहाँ किसी समय पत्नी के साथ वह सैर करने के लिए आया करते थे। उन्होने रास्ते मे आते हुए पडावा मुहल्ले का वह मकान भी दिखाया जहाँ उनकी पत्नी का स्वर्गवास हुआ था। मुझे आश्चर्य तो तब हुआ जब उन्होने खडवा की प्राचीन दशा का व्योरा देना आरम्भ किया। आबादी, जिनिंग फैक्टरियो, कपास की गाडियो, ज्वार की खास पैदावार और भाँग-गाजे के गोदामो से लेकर साहित्यिक और सास्कृतिक जीवन की कोई ऐसी महत्त्वपूर्ण वस्तु न थी, जिस पर उन्होने चर्चा न की हो। जनजीवन के हर पहलू पर उनकी टिप्पणियाँ सुनकर मुझे उनके विराट और सहानुभूतिशील हृदय की झलक मिली।

दूसरे दिन हमारी बैठक फिर जमी। आज की बात 'कर्मवीर' और पत्रकार-कला को लेकर आरम्भ हुई। मध्यप्रदेश के साहित्यिक और राजनीतिक जीवन मे 'कर्मवीर' का विशेष हाथ रहा है। नई पीढी के निर्माण मे भी 'कर्मवीर' का अपना विशेष महत्त्व है। उन्होने कहा, 'कर्मवीर' का डिक्लेरेशन १२ सितम्बर, १९१९ को दिया था। वह मेरे राजनीतिक और साहित्यिक प्रयत्नो को गति देने का प्रमुख साधन सिद्ध हुआ। वैसे सन् १९०६ ही से मै 'रिवोल्यूशनरी पार्टी' मे हो गया था। स्वदेशी कपडा पहनने से पुलिस को सदेह हो गया और तब तिरेसठ बार तलाशी लेने से दो बार जेल की यात्रा करनी पडी। इसके बाद सन् १९१६ मे मध्यप्रदेश मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन को निमत्रण भी मैने ही दिया था। साहित्य और राजनीति के सचालन के लिए तभी मैंने एक पत्र की आवश्यकता अनुभव की और जैसा कि कहा है 'कर्मवीर' का आरम्भ किया। सच तो यह है कि मै जर्नलिज्म को नही मानता। मैंने तो जर्नलिज्म मे साहित्य को स्थान दिया है। बुद्धि के ऐरावत पर म्युनिसिपल कूडा ढोने का जो अभ्यास किया जा रहा है अथवा ऐसे प्रयोग मे जो सफलता प्राप्त की जा रही है उसे मै पत्रकारिता नही मानता। निन्दा और स्तुति के ग्राहको को छोडकर केवल गुणग्राहको का समूह रह जाता है जिन पर पत्र चलाना पडता है। इतना धीरज और पाबन्दी स्वीकार करनी पडती है। तब भी केवल साप्ताहिक पत्र पर जीवन-यापन करने का एकमात्र उदाहरण कर्मवीर' है। यत्रणा और कठिनाइयो का इतिहास अवश्य इसके साथ निर्माण हुआ है। मैंने उसके द्वारा सरकार की कठोर-से-कठोर आलोचना की है। जब राजाओ

और प्रजा की लडाई रियासतो मे चलती थी तब प्रजा का सहायक था, पर ब्रिटिश सरकार और राजाओ की लडाई मे राजाओ का सहायक रहा हूँ। सबसे बडी बात तो यह रही है कि 'कर्मवीर' के सचालन के लिए मैने खडवा जैसे छोटे से गॉव को चुना जो प्रान्त के कोने मे है। गभीरता से विचारणीय बाते ये है .

१ 'कर्मवीर' सपादन और 'कर्मवीर' परिवार की कठिनाइयो का उल्लेख न करना, २ कभी धन के लिए अपील न निकालना, ३ ग्राहक सख्या बढाने के लिए 'कर्मवीर' के कॉलमो मे न लिखना, ४ क्रान्तिवादी पार्टी के खिलाफ गाधीजी के वक्तव्य छापने से इनकार करना, ५ सनसनीपूर्ण खबरे कभी न छापना, और ६ विज्ञापन जुटाने के लिए किसी आदमी की नियुक्ति न करना या विज्ञापन वाली पार्टी के पास न जाना। आप देखिए कि जिसे लोग व्यवसाय मानते है, उसी पत्र-कार-कला मे इतने ऊँचे आदर्श को रखना कितना कठिन कार्य है।"

कुछ देर रुककर वह फिर कहने लगे, "मुझे लगता है कि पत्रकारिता के लिए बडा साहस चाहिए। जिस दिन से मैने राजनीति छोडी है, किसी मिनिस्टर के के पास न तो मेरी चिट्ठी गई और न सन्देश। दूसरी बात यह है कि तब से मैं साहित्य ही मे रहा। किसी मित्र से इकन्नी तक नही ली। अपना समय आप ही काटा है। वैसे मैं आप से कहूँ कि हिन्दी साहित्य से पेट भरने के युग का आरम्भ ही नही हुआ। आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी पचास रुपए के नौकर हुए और सौ रुपये मे रिटायर हुए। यद्यपि अब युग बदल गया है पर मुफ्त मे पढने की पद्धति हिन्दी से अधिक किसी भाषा मे नही। इस दृष्टि से, मेरी राय मे, हिन्दी का पाठक अधिक गिरा हुआ है। रोटी, कपडे, शराब और शौक की चीजो का मूल्य तो वह देता है, पर ज्ञान और ज्ञान-प्रसाधन का मूल्य चुकाने को तैयार नही। हिन्दी का सबसे बडा शत्रु यही है। उदाहरण के लिए, मराठी के पत्र लख-पतियो के हाथो मे नही गए, तमिल, तेलुगु और कन्नड के पत्र नही गए, बगला के नही गए, उर्दू के नही गए, परन्तु हिन्दी के बहुत से दैनिक गए। और यह सब इसलिए किया गया कि जब हिन्दी के पत्र अपने शत्रु अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य का मुकाबला कर रहे थे, तब मित्र अर्थात् पाठक आगे नही आए। आज भी यदि कुछ पत्र जीवित है, तो वे मनस्वियो की दृढता से। दु ख है कि सारे क्रान्तिवाद, प्रगति-वाद और न जाने किन-किन वादो के होते हुए भी हमने अपनी इस महान् कला को प्राय पूजीपतियो के चरणों मे अर्पित कर दिया। यूरोप मे यह हुआ, भारत मे भी हो रहा है, पर पत्रकारिता को मजहब बनाकर मरने वाले चन्द शहीदो के लिए मेरा मन सदैव मातम मनाता रहेगा।" मैने देखा कि उनकी आखें कुछ भीग-सी रही है। गला कुछ भर-सा आया है। फिर भी जैसे तीव्र वेदना का अनुभव कर रहे हो, ऐसे उन्होने कहा,' जब तक पत्रकारिता मे टोटा रहा, तब तक धनिक साथ नही आए, किन्तु जब, कम से कम नफा होने लगा था, नगण्य हानि होने

लगी, तब धनिक आगे आए, क्योकि जनरुचि का नियन्त्रण, कीर्ति की दूकानदारी और धन का ब्याज, इन तीनो रूपो मे उनके पास काफी बडा लाभ पहुँचने लगा, जो केवल धनिक होने से नही पहुँच सकता था। हर्ष की बात यही है कि हिन्दी-भाषी धनिको ने पत्रकारिता का कर्तव्य अपने सिर पर लिया, तो वह हिन्दी-भाषी जनता के स्वतन्त्र मापदड के कारण अथवा धनिक पत्र-सचालको की श्रेष्ठ रुचि के कारण उनका व्यवसाय और उनकी सचालन की नीतिया अनैतिक नही हो पायी। इसे मैं पत्रकारिता को मजहब बनाकरपिछली शताब्दी मे जीने और मरने वाले पत्रकारो के चारित्र्य की सबसे बडी विजय मानता हूँ।"

इसी बीच दो विद्यार्थी आ गये। वे इस महाभाग ही के आश्रित है। यही उनकी पढाई की व्यवस्था करते है। उनकी कठिनाइयो और परेशानियो को सुन-कर उचित निर्देश देने के बाद जब वह फिर मेरी ओर मुडे तब मैने पूछा, "आप इतना सब कैसे करते है?" इस पर वे सहज भाव से बोले, "तरुणाई मेरी प्रेरणा का स्रोत है, अत मै इसके लिए जो भी कर सकू, मेरे लिए असीम सुख का कारण होता है। जिस नए लडके को पहली और मस्तानी कविता लिखते देखता हूँ, उसी पर मेरा प्यार उमड पडता है। मुझे पहली उठान मे बाधा होने से चिंता होती हे। आगे बढने पर चिन्ता करना उसका काम है,मेरा नही। यो मै क्रान्ति के तत्त्व प्यार के अगाध माधुर्य मे ढूँढता रहता हूँ। वस्तुत तरुण को मै कली मानता हूँ। वही आगे चलकर फूल बनने का सौभाग्य पाता है। मुझे कलियाँ तोडने मे दु ख होता है। मेरा एक भी फोटो ऐसा न मिलेगा जिसमे फूलमाला पहने हुए हूँ। मै तो ईश्वर तक की पूजा फूल से नही करता। मुझे किसी का सौभाग्य लूटकर अपने को सजाना या भक्ति-भाव प्रदर्शित करना पसन्द नही। हा, मातृभूमि की पूजा के लिए मैं तरुण और फूल दोनो का उपयोग कर सकता हूं, इसलिए एक तरुण को अपने स्वभाव के बारे मे मैने लिखा था

जिस दिन कलियो से उसको आतरिक प्यार आता है।
उस दिन उसके सर मा के चरणो उतार आता है।

अपने इस स्वभाव के कारण ही मुझे तरुण से तरुण सौदर्य को सूली पर चढाने मे झिझक नही हुई। जो केवल कल्पनाओ मे जीवित है और अपने प्राण को सवारते है, उन्हे मैं अपने स्नेह के लिए मधुर भले ही मानू पर अपने प्रेम के लिए सकट मानता हूँ। साहित्य की प्रतिक्षण की नवीनता मे रमणीयता ढूँढने वाली प्रवृत्ति से इनकार नही करता, मगर मेरे सौन्दर्य का निर्माण यो होता है—'एक बडे पहाड के किसी दर्रे मे, किसी गड्ढे मे उलझकर रह जाने वाले नाले मे पूरी गहराई पर, जहाँ मनुष्य की पहुँच कठिन है, एक गुलाबाँस उग आया है और गुलाबाँस के पास एक साप का जोडा अठखेलिया कर रहा है। उस गुलाबाँस मे आया हुआ फूल, हवा की लहरो पर लहरा रहा है। बस, वह फूल मुझे चाहिए।

काश, मैं उसे ला सकू! काश, कोई और मुझे लाकर दे सके! यह मेरा सौन्दर्य है। वह माधुर्य कहाँ जिसमे खतरा न हो। सकट का मूल्य चुकाए बिना मिली चीज मेरे जीवन मे तो चोरी ही-सी लगती है, अत सुन्दरता का मूल्याकन मुझे सकट ही मे दीख पडता है।" वह भावावेश मे बोलते जा रहे थे और मैं सुन रहा था। सौन्दर्य की इस चर्चा को और गहराई मे ले जाकर उन्होने लौकिक-अलौकिक स्नेह की जो अपनी व्याख्या की, वह यह है "अलौकिक वस्तुओ को लौकिक जीवन मे लाने का प्रयत्न ही स्नेह की साधना है। केवल लौकिक मे स्नेह से वस्तुओ का नाश हो जाता है। वर्षा का पानी आरम्भ मे गदला होता है, बाद मे वही बहते-बहते समुद्रमुखी होकर निर्मल हो जाता है। वास्तव मे स्नेह अखड है। उसके टुकडे करके देखना समय अथवा प्रभु के टुकडे करके देखने के समान है, अप्रिय कर्म है। इसलिए लौकिक आकर्षणो मे साधना का दान रहे तो अलौकिक परम सिद्धि अपने आप आ जाया करती है। विनोबा के कथनानुसार ईसा अस्तबल मे और कृष्ण कारागार मे पैदा होकर भी विश्व के नियन्त्रक और नायक हो सके। लौकिकता अलौकिकता का पदार्थ पाठ बनकर ही रह सकती है। जो स्नेह पिता के प्रति अक्षुण्ण नही है वह प्रभु के प्रति अक्षुण्ण रह सकेगा इसकी कम ही आशा है, अत स्नेह को टुकडे करके देखना खतरनाक है।

"तब तो आपका दर्शन सन्तो और सूफियो का-सा है।"

"निश्चय ही ऐसा है। राल्फवाल्डी ट्राइन के ग्रन्थ 'इन्ट्यून विद द इनफिनिट' ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। स्विस ग्रन्थकार पेपिनी के ईसा पर लिखे ग्रन्थ 'स्टोरी ऑफ क्राइस्ट' ने तो मुझे मतवाला बना दिया था। 'वाल्ट ह्विटमेन' को पढकर भी मुझे बडा सुख मिला। विनोबा तो मुझे बेहद प्रिय है। उनका प्रभाव भी मुझ पर बहुत है। वस्तुत मै धार्मिक जडता के विरुद्ध विद्रोह ही को सतत्व मानता हूँ। इसीलिए हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, किसी भी धर्म के सत हो, मेरे लिए आराध्यदेव जैसे है। यह दृष्टि मुझे अपने पिताजी से मिली है, जो अध्यापक थे और बिना हिन्दू, मुसलमान या हरिजन का भेद किए सबको समान भाव से देखते थे।"

चर्चा की गम्भीरता को कम करने के लिए मैंने उनसे लिखने की पद्धति और वातावरण के विषय मे कुछ बताने की प्रार्थना की। उन्होने कहा, "पढते समय जो प्रतिक्रिया होती है, उसे मैं कभी-कभी लिखता रहता हूँ। मेरा लेखन दशाश कल्पना का है, पर नौ अश जीवन से आया है। जहाँ कोई घटना घटी, व्यक्ति पर बीती या समाज पर सकट उतरा या देश की दशा मे परिवर्तन हुआ, वहाँ मेरी बेचैनी की सीमा नही रहती और जिस तरह आकाश से बरसा हुआ पानी नदी-नालो तथा खाई-खदको मे आकार ढूढने लगता है, उसी तरह विविध जीवनो से होने वाले परिणाम जीवन की आकुलता को आकार और प्रकार प्रदान करते है।

यो मेरे भाग्य से कुछ चीजे नही लिखी गई है । मेरी बडी इच्छा थी कि मै गाव मे रहूँ, पर यह न हो सका । गॉव मे गाय हो, चौपाल हो, बगीचा हो, ऐसा वातावरण मेरे मन के बहुत अनुकूल पडता। हिरनखेडा मे बनाया भी, पर रह न सका, सधा नही, दरिद्रता की कठोरताने मुझे बार-बार झकझोरा । कबीर का वह दोहा आपने पढा-सुना होगा जिसमे उसने प्रभु से प्रार्थना की है कि वह इतना दे दे जिस मे कुटुम्ब के साथ अपनी और साधु की क्षुधा-निवृत्ति हो जाय, यह भी नही हुआ । इसी तरह कोई ऐसा साथ रहता, जो व्यवस्था रख सकता, तो लिखना और भी ठीक होता। जब भी मुझे व्यवस्था मिल जाती है, एक चीज पूरी लिखकर ही उठता हूँ। लेकिन, मैं माग पर कोई चीज़ नही लिख पाता। अपवाद है महादेवी । प्रयाग मे था और 'बगदर्शन' निकल रहा था । इस डर से कि उनकी आज्ञा की अवहेलना न हो बगदर्शन' की पक्तियाँ लिखी । गगा मैया की कृपा से वह प्रयत्न सफल हो गया । मुझ से 'माता' शीर्षक कविता लिखाने मे सुभद्रा सफल हुई थी । परन्तु उनका वह आग्रह वर्षो पुराना था जो जबलपुर जेल मे पूरा हुआ सन् १९२० मे।

"लिखने के लिए मुझे सफेद कागज प्रिय है । रगीन पर लिखने की प्रवृत्ति नही, पर मिल जाय, तो झिझकता नही । '४२ मे कानपुर मे खाकी कागज ही पर लिखता था । लाइन और बिना लाइनदार सब पर लिखता हूँ । हाँ, फाउन्टेन-पैन से लिखा, पर रेड इक निब से लिखना ज्यादा पसद करता हूँ । लोग बाएँ से दाएँ लिखते है पर मै नोटबुक मे दाए से, ताकि कोई नई चीज आने पर उसी मे लिख दूँ । प्रारम्भ मे दाएँ और फिर बाएँ लिखता हूँ । प्रवास मे लिफाफो की चिंदियो पर भी लिखा है । कोलाहल मे तो मैं लिख ही नही सकता। लिखने की कठिनाई वह आगतुक है, जो मेरे यहाँ नित्य आता रहा और कहता रहा कि सिर्फ पाँच मिनिट का काम है। उसके पॉच मिनिट के काम पर मेरी सारी रचनाएँ स्थगित हो गई और कभी पूरी नही हुई, क्योकि मैं सिर्फ एक बैठक मे लिखने का अभ्यासी हूँ । दो बैठको मे दो वस्तुएँ लिख पाता हूँ, एक नही । सशोधन अवश्य करता हूँ । लिखते समय ही उलटफेर करता जाता हूँ ।

"लिखने के लिए सबसे प्रिय समय रात का है । मै अन्धकार को प्यार करता हूँ । मैं उसे प्राकृतिक अवस्था मानता हूँ, क्योकि उस पर किरणो के पैर जम पाते है और वे अच्छी लग पाती है । वह मेरे जीवन का साथी भी रहा है । क्रातिकारी दल की बैठक रात ही को हो पाती थी । मै क्रान्तिकारी के साथ लेखक भी था, अतः दोनो कार्य रात ही को ठीक होते रहे है । मै जेल मे बारह से दो बजे दोपहर को भी लिखता था, जब पुलिस का पहरा बदलता था, दिन का अन्धकार रहता था, क्योकि उस समय भी एकान्त मिलता था। उस समय यदि कोई रचना पूरी न हो पाई तो नही ही हो पाई।

"लिखने मे मैंने कई नामो का प्रयोग किया है। 'वनमाली' नाम से मैंने दो कहानियाँ लिखी है जो सिनेमा के लिए देना चाहता था। उदयसिह चन्द्रवशी नाम भी कभी रखा था, जिस पर बालकृष्ण नवीन जी ने कहा कि चन्द्रवशी मर गए और चार्ज माखनलाल को दे गए। 'प्रताप' और प्रभा' मे 'शषस' या 'क्षत्रज्ञ' मे से कोई नाम देकर राजनीतिक लेख लिखता था। क्रान्तिकारी होने के नाते भारत की कल्पना 'आनन्दमठ' द्वारा हुई, अत 'भारतीय आत्मा' उपनाम रखा गया। मित्रो को पसन्द नही था पर माता-पिता के नाम की तरह देशसूचक नाम रखने मे किसी की रुचि का खयाल नही किया।

"मैने कभी कविता 'डिक्टेट' नही कराई। पहले तो चिट्ठिया भी डिक्टेट नही करता था, पर अब करता हूँ। भाषण,कहानी आदि डिक्टेट करता हूँ। कहानियाँ मैने ४०-४२ लिखी होगी।"

"और हॉबीज़ आपकी क्या-क्या रही है?"

"अखबारो की कतरन काटना मेरी बहुत छोटेपन की आदत है। 'बगवासी' आता था। समझता तो कुछ न था, कतरने काटता था और स्कूल से लेई लाकर उन्हे दीवारो पर चिपका देता था। मैं ऐसी हरकत पर खूब पिटता था, क्योकि दीवार खराब हो जाती थी और पुतने मे कागज बाधा डालते थे। कविता भी शरारत मे लिखता था सो वह भी हॉबी थी। किसी पर कुछ न कुछ फिट करना मेरा काम था। बचपन मे चमकीले पत्थर समेटने का भी मुझे बडा शौक था। उनसे मेरी जेबे भरी रहती थी। पिताजी या अध्यापक उन्हे जेबो से फिंकवाते थे। प्रात काल स्कूल जाते समय कनटोपे मे मूगफली भर ले जाता था। गणित करके बाहर जाता और मूगफली खा आता था। एक दिन पकडा गया और पोल खुल गई। पेड पर चढना और कुए मे उतरना भी मेरी हॉबी रही है। वृक्षो, गायो और नन्हे बच्चो के साथ या अकेला रहना मुझे बहुत प्रिय रहा है, पर विधाता का अभिशाप देखिए कि गायो और वृक्षो मे तो रह नही सका तथा बच्चे हुए नही, रह गया मैं अकेला। पत्नी की मृत्यु पर मेरा यह हाल हुआ कि दो-तीन दिन निरुद्देश्य किसी स्टेशन का टिकट कटाकर चला जाता और शाम को लौट आता, तभी गणेशजी ले गए।"

इसके बाद मैंने उनकी दिनचर्या जाननी चाही तो उन्होने बताया,"वर्षा और गर्मी के दिनो पाच बजे उठता हूँ। सर्दी मुझे कष्टप्रद है। इसलिए उठ तो चार-पाच बजे जाता हूँ, पर बिस्तर पर पडा रहता हूँ और आठ बजे धूप निकलने पर बाहर निकलता हूँ। शौचादि से निवृत्त होने पर ओवल्टीन और दूध लेता हूँ, फिर डाक देखता हूँ, इसके बाद पूजा मे जाता हूँ और बच्चो को स्कूल भिजवाता हूँ। फिर सलाह-मशविरा करने वालो को समय देता हूँ। एक बजे स्नान भोजन आदि के लिए उठता हूँ। तीन-साढ़े तीन तक आराम करता हूँ उस समय छाँट कर रखी हुई

पुस्तके बिस्तर पर रख लेता हूँ, उन्हे पढाता भी हूँ, उसमे समय लगाता हूँ, शाम को कोई 'मैटर' डिक्टेट कराना होता है तो कराता हूँ, डाक देखने के बाद कभी-कभी सुबह भी ऐसा ही करता हूँ, जाडे मे साढे पाँच बजे और वर्षा मे साढे छ बजे शाम को तागे मे घूमने उसी मदिर पर जाता हूँ, जिस पर आप साथ थे। वही कभी-कभी थोडा-सा टहल भी लेता हूँ, रात का समय सस्थाओ की चर्चा को देता हूँ, खासकर लिखने का काम रात को करता हूँ। नीद अच्छी आए, तो काम अच्छा होता है, अन्यथा दिल की धडकन बढने से बीमार हो जाता हूँ। रात की लम्बी यात्राएँ नही करता।"

इस बातचीत के बाद हमारी प्रात कालीन बैठक समाप्त हो गई।

दोपहर को जब वह विश्राम कर चुके तब मै फिर उनके पास जा बैठा। उस समय बातचीत जो आरभ हुई वह नई पीढी को लेकर हुई। समस्त हिन्दी-जगत् जानता है कि चतुर्वेदीजी ने नई पीढी को उठाने मे अपने 'कर्मवीर' को सदैव खुला रखा है। नए लेखको, कवियो और हिन्दी क्षेत्र मे काम करने वालो का उल्लेख करते समय उन्होने कहा, "जो प्रतिभा फूट चुकी है उसकी जय-जयकार करेंगे तो बढेगी, आलोचना करेंगे, तो बढेगी। लेकिन नया लेखक तो बोई हुई फसल है। कटी हुई फसल से बोई फसल पर किसान को आशा अधिक होती है। यदि नन्हा बच्चा अगुली पकडकर चलाया जाता है, तो यह परम आवश्यक है कि सरस्वती के आगन का नन्हा बच्चा चलने के लिए अगुली की आशा करे तो साहित्य के ईमान की तरह पके हुए साहित्यिको की उगलियाँ आगे आएँ। यदि आकाश मे उगे हुए नक्षत्रो के डूबने से पहले ही नए नक्षत्र उग आते है और आकाश उनके लिए जगह कर देता है तो पृथ्वी की नई पीढी को भी अपने पूर्वगामियो के मरने की प्रतीक्षा क्यो करनी पडे ?" वह साहित्य मे नित्य-प्रति उठने वाले नवीन प्रवादो को पसद नही करते, पर नई अभिव्यजना शैलियो के प्रति उनकी नीति जडताग्रस्त नही है। इस बात का पता उनके इस कथन से चलता है, "वाद की कविताएँ पहले भी थी। क्लासीफिकेशन नही था। शृगार था, पर, छायावाद नही; प्रगतिवाद भी था, पर, नाम प्रगतिवाद नही। मै इस दावे को मान्य करता हूँ कि बिजली के खभे पर भी कविता लिखी जा सकती है। मैने मील के पत्थर पर लिखी है। प्रतिभाहीनता को उत्तेजक भाषा मे लिखकर कविता की सज्ञा नही दी जा सकती। कविता मे कविता का माधुर्य, कविता की मस्ती, कविता की निर्भयता आनी ही चाहिए। छायावाद शृगार से अलग है। लेकिन अतर मे माधुर्य के साथ उतरकर अपने अभिमत के प्रति व्यक्त की गई अपनी बेबसी के उन्माद को यदि हम आकर्षण से ओत-प्रोत करते हैं तो वह कविता का एक रूप बन जाता है जो कभी छायावाद के रूप मे व्यक्त होता है, कभी रहस्यवाद के और जब हम अपने अभिमत के विराट् को तेजस्वी रूप मे व्यक्त करके उसके मार्ग मे आनेवाली समस्त

रुकावटो के विरुद्ध विद्रोह कर उठते है—और छोटे-बडे व्यक्तियो तथा सस्थाओ की बलि चढाने लगते है ताकि हमारे स्वप्नो का कल हमारे अभिमत के अनुकूल बन सके, तो हम उसे प्रगतिवाद कहने लगते है। किन्तु यदि उन दोनो मे से किसी पर किसी लोलुपता की माया अथवा विश्व के किसी राजनीतिक वाद की छाया मडराने लगती है तो कविता का मूलभन लुट जाता है और वादो की दलाली की तो दूकाने चलने लगती है। नवीनता को सौदर्य मानने वाले साहित्यिक मे यह क्षुद्रता क्यो हो कि वह मौलिकता से घबरा उठे। इसीलिए प्रयोगवाद से भी डरने की जरूरत नही। मेरी राय मे वह अपने मे सम्पूर्ण नही है। हाँ, उसे भाषा के सपूर्ण क्षेत्र मे एक बहुत छोटा किन्तु वेगशील अध्याय माना जा सकता है।''

माखनलालजी जीवन की गहराई मे डूबे हुए तपस्वी कलाकार है। मुझे उनकी सबसे बडी विशेषता उनकी पारिवारिक जीवन के प्रति श्रद्धा प्रतीत हुई। इस युग मे, जबकि परिवार की शृ खला टूट रही है वह दृढता से पारिवारिकता का जयघोष करते है। उन्होने मुझसे कहा, ''कलापूर्वक और ईमानदारी से जो अपनी सरल इच्छाओ के प्रतिकूल होकर चल सकता है, वही जीवन और समाज को उध्र्वमुखी बना सकता है। मै इसी सिद्धान्त को मानता हू। इसलिए, बैक बैलेस, पत्नी-सुख, पुत्र-सुख आदि जिनको लोगो ने सुख माना है वे मेरे भाग्य मे चाहे न हो पर, मै अपने को गृहविहीन नही मानता। मै तो पारिवारिक रहा और पारिवारिक ही रहूगा। अपनी माँ, अपने भाई और अपने मित्रो के परिवारो मे मै पारिवारिक ही रहना चाहता हूँ। विश्व के उपभोग की इकाई मैं परिवार ही को मानता हूँ।'' जब उन्होने यह कहा, तब मेरी समझ मे यह आया कि उन्होने अपने भाई ब्रजभूषणजी को क्यो अपनी 'याददाश्त', 'सहायक' और 'उदारचेता' कहकर पुकारा था। तभी मेरे लिए उनके अपने परिवार के बच्चो मे प्रेम से फल-वितरण का रहस्य भी स्पष्ट हुआ। मातृभक्त तो वह इतने है कि उन्होने सत्याग्रह-आश्रम की सदस्यता को इसलिए अस्वीकार कर दिया था कि उसमे आश्रितो को खादी पहनाने की शर्त थी और आप माताजी को इसके लिए बाध्य नही करना चाहते थे। पिता के प्रति उनका प्रेम इस घटना से प्रकट है कि एक बार वह उनकी बीमारी की बात सुनकर रात को ग्यारह बजे भरी हुई नदी को पार करके पहुच गए थे। इस प्रकार उनमे कोमलता और साहसिकता दोनो का विचित्र सम्मिलन हुआ है। एक बार उनसे मिलने वाला उनको कभी भुला नही सकता। वह अगर चाहे भी तो वह उसे भूलने न देगे और बराबर पत्र लिखते रहेगे। ऐसा स्नेह का ततु उनके पास है, जो सबको सदैव समान भाव से बाँधे रहता है।

दो दिन उनके सान्निध्य मे रहा था। खूब चर्चा हुई थी। मन जैसे प्रसन्नता से छलक रहा था। कहा, ''दादा, अब तो मुझे जाना ही है। कुछ कविताए सुनने की इच्छा और शेष है।'' उन्होने इस पर मुझे कई रचनाएँ सुनाई। कविता-पाठ

उनका सीधा-सादा है। लेकिन उनके शब्दो मे जादू का असर है। शब्द निकलते है और सुनने वाले के हृदय को व्यजना के पखो पर उठाकर किसी सुदूरलोक मे ले जाते है। उनका व्याख्यान जिन्होने सुना है वे जानते है कि वह साहित्य बोलते है। फिर, कविता-पाठ का तो कहना ही क्या ? जब मै चला, तो उनकी ये पक्तिया मेरे मानस-पट पर अकित थी

रहन मै रख चुका जग की रवानी,
यहाँ भाई-बहन है आग-पानी।
भले उनका न जावे आ बुढापा,
कभी मेरी न जाएगी जवानी।

यह जैसे उनके छलकते हृदय का सार है। तभी तो आज भी जो कविताए वे लिखते है, उन्हे पढकर किशोर और तरुण कवि भी दातो तले अगुली दबाते है।

आज सात वर्ष बाद भी मैं उनके स्नेह और दुलार की निधियाँ बटोरता रहता हूँ। घर के समारोहो और कभी-कभी केवल समाचार लेने के लिए उनके पत्र आते रहते है। निश्चय ही उनके हृदय मे मातृत्व का अक्षय भडार है। वह एकाकी होकर भी न जाने कितने परिवारो के पथ-प्रदर्शक है। तरुणाई के तो सरक्षक है ही। खडवा की राजनीतिक और सास्कृतिक गतिविधियो के वह केन्द्र है। दुर्बलता बढ गई है, खाना एक बार ही खा पाते है और नमक तक छोड दिया है। लेकिन उनके तेज की दीप्ति बढती ही चली जाती है। सयम और सतुलन ने उनके जीवन को आतरिक शक्ति दी है। प्रदर्शन से वह बराबर बचे है और अब तो उसका प्रश्न ही नही। बाहर जाना इस सीमा तक बन्द हो गया है कि सागर विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त डी० लिट्० की उपाधि वहाँ के उपकुलपति ने खडवा मे एक विशेष आयोजन मे उन्हे प्रदान की थी। साहित्यिक सम्मान और निर-भिमान जीवन को साथ-साथ निभाकर उन्होने आज तक अपने काव्य को निखारा ही है। यह बहुत बडी बात है। उनकी नई कविताए तो अद्वितीय है। वह इस दृष्टि से अत्यन्त महान् स्रष्टा है। उन्होने अपने बहत्तर वर्ष पूरे कर लिए है। तन से बूढे पर मन से युवक इस भारती के सपूत की मगल आरती के स्वरो मे हम भी अपनी श्रद्धा के शब्दो की गूँज मिलाकर गौरव का अनुभव कर रहे है।

माखनलाल चतुर्वेदी : व्यक्तित्व और विचार

○ ○

नर्मदेश्वर उपाध्याय

वयोवृद्ध कवि, लेखक और पत्रकार पडित माखनलाल चतुर्वेदी से निकट से मिलने का मेरे लिए यह दूसरा पुनीत अवसर था। कई बरस बीते, जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मेरठ अधिवेशन मे भाग लेने के बाद वे कानपुर पधारे थे। उसी समय मैं भी मेरठ अधिवेशन से लौटते समय कानपुर मे अपने श्रद्धेय मामाजी (स्वर्गीय पडित चन्द्रशेखर पाण्डेय) से मिलने के लिए रुक गया था। उन्होने ही चतुर्वेदीजी के कानपुर आने की शुभ सूचना मुझे दी और यह भी बताया कि दूसरे दिन उनके सनातन धर्म कालेज मे चतुर्वेदीजी का व्याख्यान होगा जिसे किसी भी मूल्य पर मुझे अवश्य सुनना चाहिए। चतुर्वेदीजी पडित सद्गुरुशरण अवस्थी के पास रुके थे और वही उनसे मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ। दूसरे दिन, मामाजी के साथ जाकर मैने उनके कालेज मे मत्रमुग्ध होकर उस भारतीय आत्मा की तेजस्वी वाणी का रसास्वादन किया। करतलध्वनि के साथ समाप्त हुए उनके भाषण का अन्तिम वाक्य मेरे प्राणो मे आज भी अपना आलोक बिखेर रहा है। मेरे विचार से जो उन्मेष बनकर आए और इतिहास बनकर लौट जाय वही जीवित है और जो ऐसे जीवन का निर्माण कर सके वही कला है।

सयोग ही कहिये, पिछले अगस्त मे (सन् १९६०) अकस्मात मुझे तुलसी साहित्य समिति-नेपानगर के एक कवि-सम्मेलन मे सम्मिलित होने का आमन्त्रण मिला। रेलवे से पूछताछ की तो मालूम हुआ कि मध्यप्रदेश मे इलाहाबाद-बम्बई लाइन पर खण्डवा जकशन के बाद वह चौथा रेलवे स्टेशन है जहाँ अखबारी कागज का बहुत बडा कारखाना है। वहा पहुचने के लिए खण्डवा मे कुछ प्रतीक्षा के बाद दूसरी पैसेंजर गाडी मिलेगी। यह जानकर मेरी खुशियो का ठिकाना न रहा और मैंने मन ही मन खण्डवा मे रुककर पडित माखनलालजी के दर्शन करने का सकल्प किया। 'एक पन्थ, दो काज' सरीखी यह यात्रा सुफल होगी, ऐसा मानकर मैंने अपनी स्वीकृति तत्काल भेज दी।

शनिवार, ३० अगस्त, १९६०। वाराणसी-बम्बई एक्सप्रेस अपनी पूरी रफ्तार के साथ भोर होते-होते इटारसी पार कर चुकी थी और कुछ ही घटो मे खण्डवा पहुँचने वाली थी। तीसरे दर्जे का आखिरी डिब्बा, जिसमे मैं सफर कर रहा था, अपने पीछे रेलवे लाइन के दोनो ओर दूर तक फैले हुए हरे-भरे मैदानो, सघन वनो एव विन्ध्य की मनोरम पर्वत-शृखलाओ की नैसर्गिक शोभा को जैसे मुड-मुडकर निहारता तेजी के साथ भाग रहा था। आकाश मेघाच्छन्न था और कई दिनो से पानी का तार टूट नही रहा था। तेज हवा के झोको के साथ रह-रहकर बराबर बरखा की हलकी फुहारे आकर जी को हल्का कर जाती थी।

जिस समय गाडी खण्डवा के प्लेटफार्म पर आकर रुकी, मौसम साफ हो चुका था। सुबह की हलकी गुलाबी धूप खिलकर निकल रही थी और लम्बे सफर की सारी थकान जैसे गायब हो चुकी थी। प्लेटफार्म पर सामान रखकर हाथ-मुँह धोने का बन्दोबस्त कर ही रहा था कि बडा-सा बिस्तरबन्द जिसमे एक सूटकेस भी बँधा हुआ था और एक मेरी डोलची कुली के हवाले किये दिखाई पडे लम्बे-लम्बे डग भरते हुए काशी के कवि मित्र श्री शकरदेव अवतरे। खण्डवा जैसी अनजान जगह पर एक परिचित को पाकर उस समय बेहद खुशी हुई। अब तक मै अकेला ही था। एक से दो भले। ऐसा मानकर उनका रास्ता रोक ही तो लिया, जिसके फलस्वरूप अवतरेजी की धर्मपत्नी के हाथ की बनाई स्वादिष्ट पूरियो ने चाय का मजा दूना कर दिया। वे भलेमानस भी उसी ट्रेन पर सफर करके बनारस से नेपानगर जा रहे थे और मिले मुझे खण्डवा मे जाकर।

चाय के बाद हम दोनो ने पान जमाया, फिर एक भद्र व्यक्ति से 'कर्मवीर' के सम्पादक पडित माखनलालजी का पता पूछा। उन्होने कृपा कर किशोर बालक को हमारे साथ किया। स्टेशन के बाहर खण्डवा नगर की साधारण गलियो-सडको से गुज़रते हुए हम कुछ ही समय बाद उस मुख्य स्थल पर आ पहुँचे जहाँ माखनलालजी पिछले अनेक वर्षो से निवास करते है। पीपल के सघन वृक्ष की छाईं मे, लम्बी सडक पर स्थित साधारण-सा पक्का मकान। दालान मे ही पडी बेच पर असबाब रखकर सामने के छोटे से कमरे मे प्रवेश के पहले दरवाजे पर लगा परदा उठाया तो देखा चारपाई पर स्वय चतुर्वेदीजी साक्षात विराजमान है। बगल मे बैठे हुए किसी व्यक्ति को किसी गम्भीर पारिवारिक विषय पर परामर्श दे रहे है। सकेत पाकर हम लोग कमरे मे दाखिल हुए। चरण-स्पर्श कर हम लोग बैठे ही थे कि वृद्ध जन ने अपनी बात समाप्त कर विदा ली और चतुर्वेदीजी ने हम नवागुन्तको पर दृष्टिपात किया। मैंने सक्षेप मे अपना और भाई अवतरेजी का परिचय बताया। ऐसा लगा कि उन्हे पुरानी बाते अच्छी तरह याद है और सहज ही अपना मुक्तहास बिखेरते हुए वे मुझसे पूछ ही तो बैठे, "ये बाल आपने अभी से सफेद कर डाले और दात भी '

उस समय ऐसी स्निग्ध आत्मीयता-भरे उलाहने को शिरोधार्य करने के सिवाय दूसरा कोई चारा नही था।

मैं ध्यान से देख रहा था, श्री माखनलाल तकिये के सहारे चारपाई पर सीधे बैठे हुए है। वृद्धावस्था के कारण मझोले कद का उनका शरीर काफी दुर्बल हो गया है। किन्तु गौर मुखमण्डल से खुशनुमा सुबह की ताजगी जैसे फूट पड रही है। ऑखो से जैसे सलौने सपनो का आलोक मुसकरा रहा है। बिखरी हुई सफेद केशराशि और खुली हुई शिखा। बदन पर खादी की सादी धोती और कुरता। कुरते पर ऊनी सदरी। गले मे ऊनी मफलर। बदन का कुछ हिस्सा ऊनी शाल से ढका हुआ था, सर्दी से बचाव के लिए।

यही सीधा-सादा व्यक्तित्व था मेरे सम्मुख उस भीष्म पितामह का जो अपना समस्त जीवन देश, समाज, साहित्य और सस्कृति के लिए अर्पित कर चुके है। ऊबड-खाबड जिन्दगी का काफी लम्बा फासला तय कर चुकने के बाद आज भी उनमे बच्चो जैसा उत्साह और जवानो जैसी ज़िन्दादिली है। एक ही समय भोजन करते है, नपे-तुले ढग से जीवन बिताते है। इन सबके बावजूद आज भी जब लिखते है तो शखध्वनि-सी पुनीत उनकी वाणी से ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न दिशाओ के शिखर जैसे आलोकित हो उठते है। सीधा-सादा स्वभाव, कोई बनावट नही, कोई शृगार नही। साहित्य और समाज की जीवन्त प्रवृत्तियो के प्रति एक कुशल पहरुए की भॉति वे अभी भी पूरी तरह सतर्क है, जागरूक है।

हॉ, तो उस छोटे से कमरे की जिस चारपाई पर बैठे हुए वे हम लोगो से बाते कर रहे थे, उसी पर एक ओर देश के कोने-कोने से आयी हुई ताजी पत्र-पत्रिकाएँ पडी थी और बगल मे छोटी-सी मेज़ पर रखे हुए विभिन्न विषयो के गम्भीर ग्रन्थ जैसे बता रहे थे कि इस वृद्धावस्था मे भी उन्होने इनका पिण्ड नही छोडा है। दीवार से लगी अलमारियो मे भी काफी किताबे रखी हुई थी। लेकिन उनके रख-रखाव मे भी कोई सजावट या बनावट नही थी। उनकी स्थिति भी कुछ वैसी ही थी जैसी कि चतुर्वेदीजी की। सामने शीशे मे मढा हुआ अमर शहीद गणेशशकर विद्यार्थी का एक चित्र टगा हुआ था जो कभी माखनलालजी के सहकर्मियो मे अद्वितीय थे। उसी के पास एक दूसरा चित्र टँगा था महाराष्ट्र की अमर विभूति पडित माधवरावजी सप्रे का। सप्रेजी एक महान हिन्दी-प्रेमी महाराष्ट्रीय नेता थे। चतुर्वेदी उन्हे अपना गुरु मानते थे। अपनी कृति 'साहित्य-देवता' उन्होने सप्रेजी को ही समर्पित की थी।

बातचीत का सिलसिला शुरू ही हुआ था कि एक आदमी तश्तरी मे लगे हुए पान, लोग, इलायची वगैरह दे गया। उनसे भेट-वार्ता (इण्टरव्यू) करने के इरादे से मैं खण्डवा आया हूँ, यह जानकर उन्हे हैरानी हुई, कुछ सकोच भी। मुझे निराश न लौटना पड़े, शायद यही सोचकर उन्होने अनुमति दे दी और मेरा

पहला सवाल था :

"आपको कविता करने की रुचि कैसे हुई और कालान्तर मे उस अभिरुचि को पनपने का मौका कैसे मिला ?"

मेरे प्रश्न के उत्तर मे माखनलालजी अपने बचपन की यादो को ताज़ा करते हुए बोल रहे थे, "मेरा जन्म होशगाबाद ज़िले के बाबई ग्राम के एक साधारण वैष्णव परिवार मे हुआ था। मेरे पिताजी हिन्दी, उर्दू फारसी और सस्कृत के ज्ञाता थे। वे छिदगाव को प्राइमरी पाठशाला मे मुर्दारिस थे। घर मे मेरी बुआ थी जो भगवान की बडी भक्त थी। वे मुझे बहुत चाहती थी और मेरे पालन-पोषण मे उनकी अधिक रुचि थी। बचपन मे उन्ही के पास सोया करता था। भोर होने पर, नीद खुलने पर, उनके बैन मेरे कानो मे गूजते थे — 'जागिये रघुनाथ कुँवर पछी वन बोले।"

भोर की बेला मे यह पद सुनने मे बहुत भला लगता था और एक दिन बर-बस ही लिहाफ ओढे-ओढे यह तुकबन्दी कर डाली

"उठो मेरे दोनो बैल, भोर भयो प्यारे
करो तुम जगल की सैर
जगल चरो घास
अब तो छोडो घर की आस
भोर भयो प्यारे।'

हा, एक बात और थी। वैष्णव परिवार मे जन्म लेने के कारण पाँच पद पढे बिना भोजन करने का निषेध था। मुझे अष्टछाप कवियो की पदावली याद करा दी गई थी और मैं उन्ही के पाच पद पढकर भोजन करता था। एक दिन मन मे तरग उठी और मैंने जो तुकबन्दी की, वह कुछ इस प्रकार थी

"श्याम लोचन मन बस गयो री,
मधुर बैन, कर सयन नयन सो,
छीन लीन्ह मन चपल ऐन सो,
कछू न सुहावत सुधि न रैन सो,
जब हरि हँसि गयो री।

० ० ०

अति कारे प्यारे अनियारे
कजरारे नही जात निहारे
उरग समार दो अलके संवारे
जो मेरो हियो डस गयो री।

० ० ०

नागर नट पनघट तक आयो
झटपट पट घूंघट सरकायो
मै तन-मन की सुरति हिरानी
मानो प्रान निकस गयो री।

० ० ०

कल न परत मोहे आठो जाम सखि
कछु न सुहावत वन औ धाम सखि,
रूठ्यो माखनचोर श्याम सखि
मन परवश भयो री,
श्याम-लोचन मन बस गयो री ॥

"बचपन मे ही तेरह-चौदह वर्ष की उम्र मे मेरा विवाह हो गया था। गाव की पढाई पूरी कर मैं खडवा आया। नार्मल की पढाई पूरी करने के लिए जबलपुर जाना पडा और वही से कुछ बगाली तरुणो का साथ पाकर मैने काशी की यात्रा की। काशी मे दशाश्वमेध घाट पर सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी सखाराम गणेश देउस्कर ने मुझे क्रान्तिकारी बनने की दीक्षा दी। कुछ ही समय बाद एक ऐसी घटना घटी जिसने मेरी विचारधारा को एक नया मोड दे दिया। मेरा एक अनन्य मित्र था जो दिल्ली मे रहा करता था। जब भी मै वहाँ जाता, उससे मिलता था। उससे मेरा कोई भेद छिपा भी नही रहता था। मेरे मन मे उस तरुण के लिए बडा अनुराग था। एक दिन क्रान्तिकारियो के हाईकमान ने मुझे बताया कि उसी लडके ने क्रान्तिकारियो के खिलाफ गवाही दे दी है और यह सब मेरे पाप का परिणाम है। मै तब तक अनेक देशघातको को अपनी पिस्तौल का शिकार बना चुका था। हाईकमान की बात मुझे लग गई थी और तत्काल मैं दिल्ली के लिए रवाना हो गया। वहाँ जाकर मैंने अपने उस तरुण मित्र को मौत के घाट उतार दिया। ऐसा कर तो दिया लेकिन बाद मे बडा हृदय-मथन हुआ। उन्ही दिनो गाधीजी का 'हृदय-परिवर्तन' का आवाहन सुनाई पडा। पिस्तौल मैंने वापस कर दी क्योकि मेरा हृदय-परिवर्तन हो चुका था।"

प्रश्न · "गाधीजी से आपकी भेट पहली बार कहाँ हुई थी और 'भारतीय आत्मा' के छद्म नाम से आपने लिखना कैसे शुरू किया?"

उत्तर "गाधीजी से पहली बार मै साबरमती आश्रम मे मिला था। 'भारतीय आत्मा' तो मेरी कमजोरी का नाम है। स्वतन्त्रता सग्राम के दिनो मे अपने को अप्रकट रखता था। स्वराज्य मिलने पर फिर मैंने अपने ही नाम से लिखना शुरू कर दिया।"

उसी समय कुछ और अतिथि आ गये। चतुर्वेदीजी ने सबके बैठने की व्यवस्था की और हम सबको एक-दूसरे से परिचित कराया। नवागन्तुको मे भी

अधिकाश स्त्री-पुरुष मालवा और इन्दौर के तरुण कवि, लेखक थे जो नेपानगर की यात्रा मे खण्डवा से मेरा साथ देने वाले थे। कोई व्यतिक्रम न हो, इसलिए चतुर्वेदीजी ने कहा, "हॉ, और क्या पूछना चाहते हो ?"

मैंने पूछा, "चतुर्वेदीजी, इस जिन्दगी मे तो आपने काफी उतार-चढाव देखे होगे ? राजनीति मे रहकर भी आप इतने लम्बे अरसे से साहित्य के लिए बराबर लिख रहे है ? आपने क्या कभी कोई व्यवधान अथवा थकान नही अनुभव की ? कुछ बताएँ ?"

उत्तर · "तुम्हारी बात पर मुझे लोकमान्य तिलक का एक अनमोल वचन याद आ रहा है। एक बार उन्होने मुझसे कहा था, 'माखनलालजी, मैंने तो बहुत गरीबी मे काम शुरू किया था। अखबार के जिस दफ्तर मे काम करते थे उसी मे रात को सोते भी थे। जमीन पर बिछे गद्दे को औधा कर उसी पर लिखते थे। गद्दा झुक जाता था लेकिन खयाल नही झुक पाते थे।'

"तो, बस, वैसा ही मानो। शरीर झुक गया है लेकिन खयाल है कि नही झुक पाते। लिखते समय हाथ काँपता है तो उसे दूसरे हाथ से पकडकर लिखता हूँ। गरीबी से मुझे भी बराबर जूझना पडा। सच पूछो तो गरीबी का व्रत लेकर ही प्रखर राष्ट्रसेवा, सार्वजनिक सेवा की जा सकती है। सन् १९१४ मे, जब मेरी धर्मपत्नी का देहावसान हुआ तो उनके दाह-सस्कार के लिए भी मेरे पास पैसे नही थे। इसी खण्डवा के एक प्रतिष्ठित नागरिक की मदद से उनका क्रिया-कर्म हुआ। उनसे कोई सन्तान नही थी और इसी से दुबारा मैंने कोई विवाह नही किया।

"मै कालिदास के प्रान्त का निवासी हूँ। एक बार की बात हैं, हुशगाबाद के समीप जरीपुर गाव से होकर एक नाला बहता है। एक दिन वही एकान्त मे हरी दूब पर लेटे-लेटे देखता क्या हूँ कि सामने दूर गुलाबो के फूलो की झाड है और उसी के चारो ओर साप का एक जोडा मन्त्रमुग्ध होकर चक्कर काट रहा है। सौन्दर्य की परिभाषा मुझे वही देखने को मिली। वही मेरे जीवन मे उतर आयी। खतरो मे रहकर जो मौन रह सके वही साहित्य की सेवा कर सकता है।"

प्रश्न "नयी पीढी के हिन्दी कवियो और लेखको के बारे मे आपके क्या विचार है ? आप उनसे क्या कुछ आशा रखते हैं ?"

उत्तर "मैं हिन्दी साहित्य मे प्रतिभा का उपासक रहा हूँ। परम्पराओ को चाहे जितना तोडना-मोडना और मरोडना पडे, साहित्य को सजग और जीवित रखना चाहिए। जैसे मनु ने कन्या और पुत्र मे कोई अन्तर नही माना, उसी तरह मैं भी गद्य और पद्य मे कोई अन्तर नही मानता। नये लोगो ने यदि तुके तोड दी तो मै बुरा नही मानता। हॉ, एक बात है, हमने शब्दो का लोच खो दिया। ब्रजभाषा की श्रेष्ठता को भी नही स्पर्श कर पाये। बच्चे का नाम तोड

सकते है, किन्तु कविता के शब्दो को नही तोड सकते। यह पथरीलापन किसी भी भाषा मे शोभा नही देता।"

यही से चतुर्वेदीजी की धाराप्रवाह वाणी ने एक नया मोड लिया। भाषा के प्रसग मे राष्ट्रभाषा हिन्दी के विराट स्वरूप की व्याख्या करते हुए उन्होने बताया कि हमे एक बात का ध्यान हमेशा रखना चाहिए। प्रान्तीय और भौगोलिक भेद होते हुए भी हिन्दी को अविच्छिन्न मानना चाहिए। उसमे कोई भेद नही करना चाहिए। उत्तरप्रान्त को इस उत्तरदायित्व को निबाहना चाहिए कि हिन्दी का रूप सजग और स्पष्ट बना रहे।

"हिन्दी साम्राज्यवाद' की बात जो अकसर कही जाती है, न मैं उसे मानता हूँ, न वह हिन्दी ससार मे कही है। सोलह करोड की आबादी कुछ कम नही है जिसमे हिन्दी फैली हुई है। इस देश के प्रान्तो की भाषाएँ हिन्दी का स्वागत करे या न करे, हिन्दी भाषा उन सबका स्वागत करती रहेगी और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रो मे जाकर इस देश की जो भी भाषा अपना ऊँचा स्थान प्राप्त करेगी, वह गौरव भारतवर्ष का और प्रकारान्तर से हिन्दी का होगा।"

चतुर्वेदीजी से बाते करते-करते घटा भर से ऊपर हो चुका था। गाडी का वक्त करीब आ रहा था। मुझे उनसे अब और कुछ नही पूछना था, इसलिए उन्होने आगन्तुक तरुण कवियो से कुछ सुनने-सुनाने का आग्रह किया। हम सब एक-एक करके अपनी कविताएँ सुनाते जा रहे थे और चतुर्वेदीजी बडे मनोयोग से उन्हे सुनते जा रहे थे। जो पक्तिया उन्हे प्रिय लगती, उन्हे दुबारा सुनाने का आग्रह करते, कुछ को स्वय दुहराने लगते और जब भी रस-विभोर होते, नयी पीढी के उन अकिंचन अकुरो के साथ खुद भी झूम-झूम उठते थे। अपनी चीज़े सुना चुकने के बाद हम सबने आग्रह किया कि अन्त मे चतुर्वेदीजी अपनी कुछ पक्तिया सुनाएँ। वे सहज ही सकुचित हो उठे कि मैंने तत्काल अपने बैग मे से 'त्रिपथगा' नवम्बर, १९५८ का अक निकाला और उसे खोलकर उनके सम्मुख रखते हुए हठ किया कि उसी मे प्रकाशित 'भरे चक्षु का वैभव' नामक अपनी काव्यकृति वे सुना ही दे। इधर मेरा बाल-सुलभ हठ था और उधर कविता मे 'घनश्याम के हठ' की बात थी। उन्होने हम सबकी बात रख ली। उनकी ओज-भरी वाणी की रसधार प्रवाहित हो उठी। रोम-रोम जैसे पवित्र हो उठा।

चलते समय वे चारपाई से उठकर बाहर तक सबको पहुँचाने आये और हमसे कहने लगे, "तुम कुछ खाये-पीये भी नही, ऐसे ही चले जा रहे हो।" मैंने कहा, "कल प्रयाग लौटते हुए यहाँ रुकूगा।"

नेपानगर से दूसरे दिन खण्डवा लौटते समय दरबार कालेज, रीवाँ के प्राध्यापक और हिन्दी के यशस्वी तरुण कवि श्री जयकुमार 'जलज' ने मेरा साथ दिया। उन्होने माखनलालजी को पहले कभी नही देखा था, इसलिए वे मुझसे

अधिक खुश थे। गाडी से उतरकर दोपहर लगभग एक बजे हम चतुर्वेदीजी के निवासस्थान पर पहुँचे। उनका कमरा बन्द था। बगल के कमरे मे भाई के परिवार के बच्चे खेल रहे थे। उन्होने मुझे पहचान लिया और बताया कि 'दादा जी' अभी स्नान-भोजन करके विश्राम कर रहे है। हम लोगो ने वही सामान रखकर खण्डवा नगर की परिक्रमा शुरू की। 'जलज' को अपने कुछ सम्बन्धियो और परिचितो से मिलना था और मुझे कुछ पुराने शहर की एक झाँकी लेनी थी जिसे उस कवि मनीषी ने अपनी साधना का क्षेत्र बनाया। खण्डवा के जिस स्कूल मे चतुर्वेदीजी अध्यापन-कार्य करते थे, वह आज उन्ही के नाम पर चल रहा है। तब उसमे कुल अडतालीस छात्र शिक्षा पाते थे और आज उनकी सख्या लगभग तीन सौ है।

शाम को लौटते-लौटते आसमान मे बादल घिर आये थे और कुछ पानी भी बरस गया था। चतुर्वेदीजी को हमारे आने की सूचना मिल गयी थी और वे प्रतीक्षा कर रहे थे। खण्डवा के यशस्वी कवि और वहाँ के श्री नीलकण्ठेश्वर महाविद्यालय के प्राध्यापक श्रीयुत श्रीकान्त जोशी को उन्होने हमारे आने की खबर दे दी थी और थोडी ही देर बाद वे भी आ गये और उन्ही के साथ उसी कालेज के कॉमर्स विभाग के अध्यक्ष श्री पी० सी० जैन, जो 'जलज' के सम्बन्धी थे।

'जलज' का परिचय पाकर चतुर्वेदीजी प्रसन्न हुए। चाय और पान के साथ कविता का दौर शुरू हुआ। उसी बीच परिवार की नन्ही-मुन्नी-सी एक प्यारी बेटी अपने कुछ दोस्तो के साथ आयी और 'दादाजी' के पाव छूकर अपने जन्म-दिन की घोषणा की। दादा ने उसे प्यार किया और दक्षिणा दी। हँसते-खेलते बच्चे अपनी मुसकान के फूल बिखेरते वापस चले गये और 'दादा' फिर हम लोगो के हो गये।

साझ के डूबते हुए सूरज की सुनहली धूप बादलो को चीरकर नयी ताजगी से बाहर आ गयी थी और कुछ वैसी ही ताजगी, कुछ वैसा ही उल्लास अपने मन मे सजोये हम चतुर्वेदीजी से विदा हो रहे थे। वे बरामदे मे निकल आये थे। रास्ते मे मुझे दिक्कत न हो इसलिए मेरे पान के डिब्बे को घर के लगे पानो से भरवा दिया था। हम उन्हे अपने इतने निकट पाकर सचमुच निहाल हो चुके थे। गाडी का वक्त हो रहा था और हमे उस 'भारतीय आत्मा' के चरणो की धूल माथे लगाकर प्रस्थान करना पड़ा।

भारतीय आत्मा

००

राममनोहर त्रिपाठी

मुझे तोड लेना वनमाली,
उस पथ मे देना तुम फेक।
मातृभूमि पर शीश चढाने,
जिस पथ जाएँ वीर अनेक।

यह तो एक फूल की चाह थी जो अपनी राष्ट्रीय निष्ठा और मातृभूमि की खातिर कुर्बान होने वालो के चरणो तक पहुँचने की अभिलाषा मे खिला हुआ है। जब साहित्यकार ने अपनी बात इस सुमन के माध्यम से कही थी तब भी, और आज भी साहित्य-तपोवन का यह ऋषि कोई दूसरी चाह के लिए नही, बल्कि जागतिक श्रद्धा देश की सस्कारशील राष्ट्रीय निष्ठा के लिये अपना साहित्य-सौरभ बिखेरकर पथ की दुविधाओ को चुनौती दे रहा है।

सेण्ट्रल रेलवे का स्टेशन खण्डवा आया। उतरकर ताँगे मे सामान लेकर जवाहरगज की ओर चला। रास्ते मे ताँगेवाले से 'कर्मवीर' प्रेस चलने के लिए कहा तो उसने एक निर्दिष्ट स्वीकृति के साथ पूछा, "तो दादाजी के यहाँ आप जा रहे है ?" मैने 'हाँ' कर चुप्पी साधी। ताँगेवाले के भी वे दादाजी है, और वह दादाजी के बारे मे एक छोटा भाषण दे गया। अपढ और गवार दिखने वाला व्यक्ति दादाजी को इतना निकट से बखूबी जानता है। तब लगा कि बहुत से झूठे अहम् के तमगे लगाये अहमन्य साहित्यकारो की तुलना मे धन्य है वह तागेवाला।

दादा का द्वार आ गया था। तागेवाले ने सामान उतारा और चला गया। लेकिन यह तागेवाला भी खूब है, इन्ही विचारो के साथ मैं अन्दर कमरे मे घुसा। सामने ही पलग पर दादाजी बैठे हुए थे।

पलग पर कृशकाय 'भारतीय आत्मा' प० माखनलाल चतुर्वेदीजी थे या कोई महर्षि था जो मृगचर्म पर बैठा तपारूढ लग रहा था। चेहरे पर वही दस-पन्द्रह वर्ष पहले जैसी कान्ति, धवल केश जिनमे अन्तरात्मा की उज्ज्वलता छायी

हुई लग रही थी।

और दादा ने पहचाना खूब! मैने अपना परिचय शुरू मे ही दिया तो बोले, "अरे भाई पहचान लिया।" फिर तो घटे-भर से ज्यादा तब बैसवाडे से लेकर बम्बई तक और प्रयोग से लेकर प्रतिभा तक काफी बाते हुई। भाई श्रीकान्त जोशी आ गये तो वातावरण जरा साहित्यिक बन गया। मुझे भी तो दादाजी से कुछ पूछना था क्योकि अब तक वही पूछ रहे थे। जिज्ञासा की लहरे प्रश्नो के तट पर आकर टकराने लगी, दादाजी बोल रहे थे- -

"साहित्य जहाँ केवल मात्र कल्पना का खिलवाड नही है वहाँ वह आदर्शों की निष्ठा का ढिढोरा भी नही। नये-से-नये आविष्कार को जग मे साहित्यिक के पास जाना ही पडता है, जहाँ उससे आशा की जाती है कि वह ऐसे ढग से नवीनता को उपस्थित करे कि वह लोगो के हृदय मे व्याप्त हो जाय।"

एक मिनट के लिए वे चुप हो गये और मुझे लगा कि यह कहते-कहते उनका मुखमण्डल और भी रक्ताभ हो उठा है।

" साहित्य, शब्दो की लाशो का सग्रह नही है, माना कि शब्द की नदी मे न कोई डूबता है, न शब्दकोश की नाव पर कोई तैरता है। शब्दकोश का सिह किसीको खाता नही और शब्दकोश की गाय दूध नही दे सकती। परन्तु प्रयाग मे त्रिवेणी के तट पर बँधी नौकाओ की तरह अथवा गौशाला मे बँधे पशुग्रो की तरह यदि हम शब्दो को शब्दकोश मे बाँध देते है तो वह साहित्य मे उसी तरह बँधकर नही रहते। वे भावो से प्रभावित होते है, अभावो से जाग्रत होते है और अनुभावो से प्रेरणा लेते है।

"साहित्य अपने विशाल वक्षस्थल मे विश्व की समस्त शोधो और आविष्कारो को रखकर भी आज की शोधो को बल का साहित्य बनाता आया है। वह सिंहासन है कि नही, मै नही जानता, किन्तु वह ऐसी मृगछाला अवश्य है, जिस पर बैठे हुए के अधिकार और आकर्षण को कोई चुनौती नही दे सकता। वृक्ष पानी पीकर चाहे जितना ऊँचा उठे, किन्तु उसके फल और फूल नीचे को ही गिरते है। इस तरह कला भी सगीत, नृत्य, चित्र, विज्ञान बनकर चाहे जितनी उन्नति करे, यह कला चाहे जैसी अर्थवती हो, वह साहित्य बनकर भाषा, विज्ञान, काव्य या गद्य के क्षेत्र मे सदैव बलवती और फलवती है।"

नयी पीढी के रचनाकारो पर बात चली तो मुझे आश्चर्य लगा कि हिन्दी के बुजुर्ग लेखको मे वे अकेले इस प्रकार के साहित्यप्रहरी है जो कल नही, बल्कि आज तक के साहित्य की खबर रखते है। कुछ बिलकुल नये कवियो पर बात चली तो मैं आश्चर्यचकित था। नये छन्दो और रचना-शिल्प पर बात उठी तो उन्होने कुछ बहुत ही अच्छी बाते कही।

"देखो भाई, प्राचीन जमाने के लोगो ने जब साहित्य लिखा उसके आलोचक

अवश्य पैदा हुए होगे, किन्तु जब जीवन की समझ और रुचि से साहित्य का त्रैराशिक लगाना जो जाति भूल जाती है, वह अपने स्वप्नो और आविष्कारो मे पिछड जाती है। अनुष्टुप जैसे छोटे छन्दो को रस प्राप्त हुआ, त्रिष्टुप जैसे छोटे छन्दो मे वैदिक युग के लोगो ने रस लिया, उसके पश्चात् सूत्र आये। लोगो ने कभी उनके खिलाफ शिकायत नही की। तब आज अगर कही से शिकायत उठती है तो उसके कोई अर्थ नही।

"स्वय गोस्वामी तुलसीदास ने सस्कृत छोडकर जब अवधी मे लिखना प्रारम्भ किया तब कहा जाता है कि काशी के पडितो ने उनका कितना विरोध नही किया। यथार्थ मे पहले विरोध करना, फिर नाराज भर होना, फिर चुप रह जाना और तब उसकी प्रशसा करना—यह मानव-स्वभाव की कमजोरी रही है जो हर युग-देश मे रहेगी।"

जिज्ञासा प्रकट करने पर कि लोग नये का विरोध करते है, उसे समझने के उपक्रम से दूर रहकर सिर्फ उस पर कीचड उछालते है, ऐसा एक पिछली जिम्मेदार पीढी और एक तथाकथित गैर-जिम्मेदार नयी पीढी का जो यह विचार-सघर्ष चल निकला है, इस पर आपका क्या मत है, इस पर उन्होने बताया कि "नवीनता, हृदय और मस्तिष्क के केन्द्रो से आती हुई यह वस्तु लोगो की प्रसन्नता का सिक्का कब से अपने लिए मागने लगी। रस्सी के दो सिरे होते है। दोनो मिलते है तो मोठ बनती है। पहले ही दिन क्यो मौठ बँध जाय? एक सिरा अपनी तपस्या से घबराता क्यो है, जो दूसरे को अपनी प्रशसा करता प्रारम्भ से ही देखना चाहता है। सघर्ष आविष्कारो का जनक रहा है। भाषा के क्षेत्र मे यह नियम कहा चला जाएगा? बोली मानव विश्व का नियमन करती है, बोली बन्द तो उसकी होती है जो मरने लगता है, किन्तु यह नियमन आकर्षक हो, मीठा हो, मार्ग का दायित्व अपने कन्धो पर अनुभव करने वाला हो तो इसका विरोध किसी से क्यो हो? अत. भाषा और साहित्य के क्षेत्र मे मैं तो आगे बढ जाने और बढते जाने वालो पर दृष्टि रखे हुए हूँ कि वे एक युग पीछे छोडकर दूसरा युग ग्रहण करे क्योकि उन्हे पीछे छोडने वाला एक युग और उससे आगे आयेगा ही।"

इतना बोलकर वे दवा लेने के उपक्रम मे लग गये लेकिन मुझे और मेरी जनकारी की अतृप्ति को देखते हुए पिछले सदर्भ को सूत्रबद्ध कर फिर कहने लगे—

"यदि ससार की प्रतिभा जीवित है और वह है, तो नये युगो को समय के उलटते रहने की तरह उगते ही रहना होगा। ऋषियो की भाषा को मृतभाषा कहने वाले, तुलसी की अवधि को कोसने वाले नही रह पाये तो इससे तो लगता है कि प्रतिभा जीवित रहती है, कोई उसे चाहे या न चाहे।"

जिसे 'भारतीय आत्मा' कहते है वह आज भी भारतीय आत्मा की तरह

पवित्र और कान्तिमान प्रतिभा की तरह है, जिससे प्रकाश तो मिल ही रहा है। नये रचनाकारो को विकास भी मिल रहा है। आयु की दृष्टि से पुराने पर विचारो-भावनाओ मे आज के ताजे खिले सुमन की तरह ही श्रद्धेय चतुर्वेदीजी का व्यक्तित्व है।

सुविधाओ का दास बनना कभी भी सच्चा साहित्यकार नही स्वीकारता। सभी जानते है कि वे आर्थिक तगी मे है, सभी मानते है कि उन्होने साहित्य को बहुत कुछ दिया है। पर उनके होठ न तो कभी खुले है, न खुलेगे। असुविधाओ मे मुसकराने वाले, ‍घर्षो के प्रतीक छन्दध्वज फहराने वाले महान सेनानी ने कभी स्वतन्त्रता-सघर्ष को प्रकाशित करने के लिए छीजती बाती को छन्दो की लौ उधार नही दी थी। उधार देने वाले प्रत्याशा मे रहते है, दान देने वाला कभी आशा नही करता।

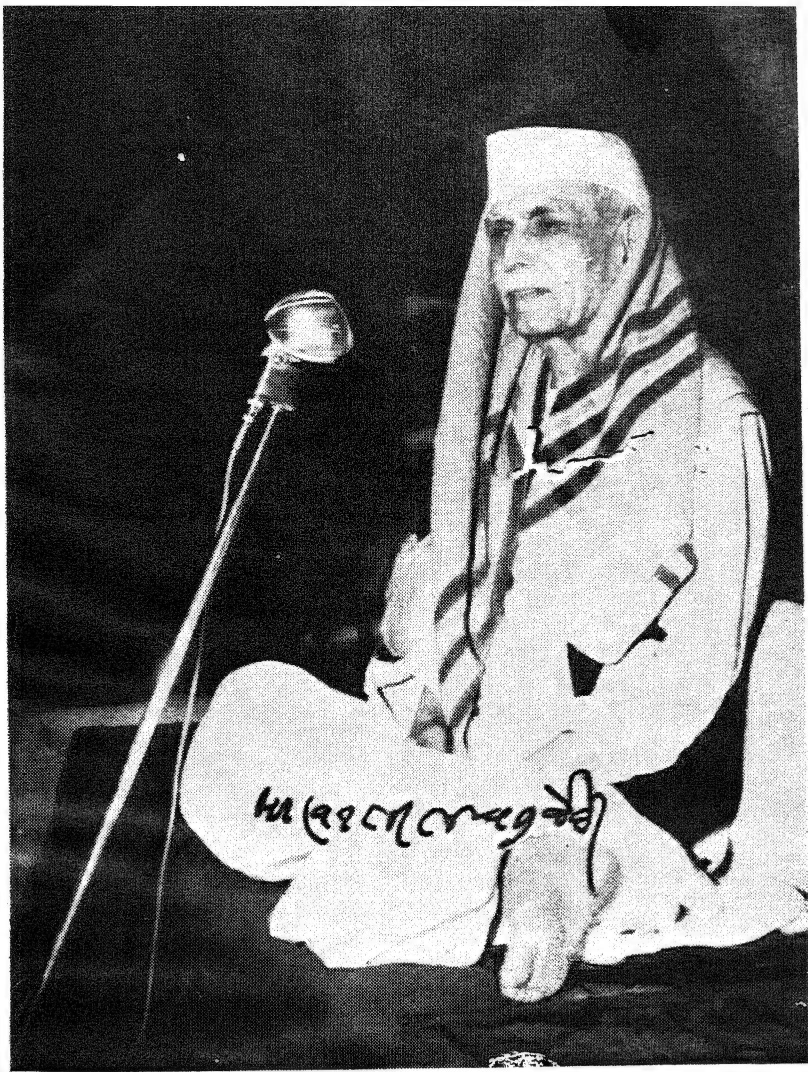
कानपुर की बाते चली तो मुझे ऐसा लगा कि उनके हृदय पर पुराने चित्र उभर आये है। गणेशजी के सान्निध्य के वे क्षण छोटे-छोटे सस्मरण बनकर बोलो मे फूटने लगे। रायबरेली मुशीगज काण्ड की सजा और पेशिया और न जाने कितने पुराने लोगो की यादे उनके मन मे ताजी धरोहर की भाति सुरक्षित है। यह सब कुछ साहित्य है, हिन्दी का इतिहास है।

हिन्दी पत्रकारिता के कटीले पथ के पथिक दादा माखनलालजी चतुर्वेदी को पत्रकार बहुत प्यारे है। उन्होने आज की प्रगतिशील पत्रकारिता पर सन्तोष व्यक्त किया।

मै कागज पर कुछ लिख भी रहा था और मन ही मन डरता भी जा रहा था, तभी दादा का प्रश्न मुझ पर पड ही गया, "यह सब नोट कर रहे हो?"

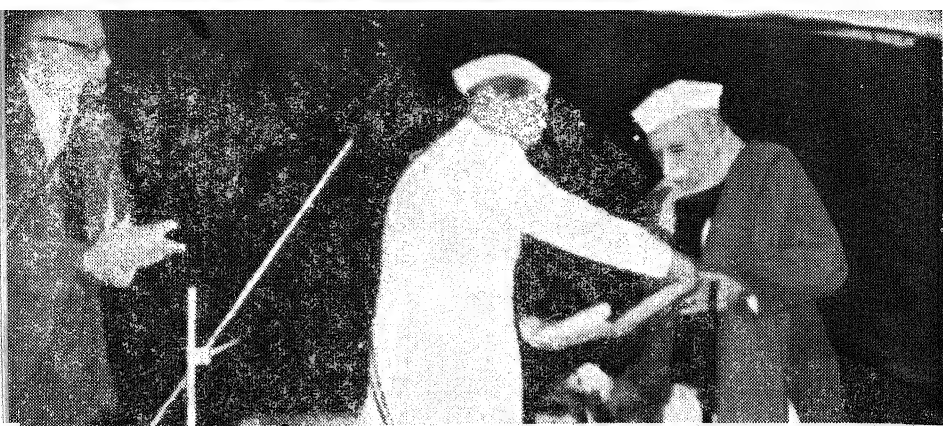
मैने विनम्र निवेदन किया, "दादाजी, नोट तो बहुत करना है मगर आप का स्वास्थ्य भी ठीक नही। मै तो केवल बन्धुवर अक्षयकुमार जैन की आज्ञा का पालन कर सका हूँ। अभी तो मुझे बहुत कुछ पूछना है।" जिज्ञासा की अतृप्त लहरे अभी भी प्रश्नो के तट पर थी।[1]

१. सन् १९६३ में ली गई भेंट



मनस्वी वक्ता माखनलाल चतुर्वेदी

मैं तो हूँ बलिधारा पंथी
फेंक चुका कब का गंगाजल !



सागर विश्वविद्यालय के एक विशेष दीक्षान्त समारोह (खण्डवा) में उपकुलपति पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र चतुर्वेदीजी को डी० लिट्० की मानद उपाधि प्रदान करते हुए।

० ०

मध्यप्रदेश प्रशासन की शासन साहित्य परिषद् द्वारा आयोजित 'माखनलाल सम्मान समारोह' में मुख्यमंत्री पं० द्वारकाप्रसाद मिश्र द्वारा चतुर्वेदीजी का मंच पर चरण-वन्दन

चतुर्वेदीजी खण्डवा की नगर-पालिका के जयन्ती-समारोह में प्रमुख अतिथि श्री एस० के० पाटिल का स्वागत करते हुए। साथ में (बाएँ से) सर्वश्री सिद्दीकी, भगवन्तराव मण्डलोई और रायचन्द नागड़ा (दाएँ)

० ०

'माखनलाल सम्मान समारोह' में आए हुए सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के समूह की झाँकी



आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, देवव्रत शास्त्री और सुरेन्द्र शर्मा के साथ चतुर्वेदी
(१६३२)



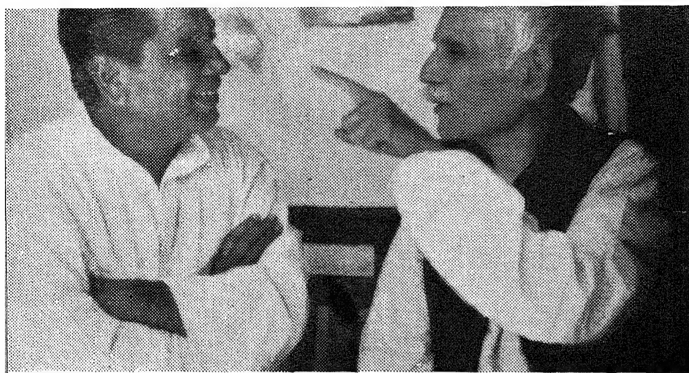
डॉ० शम्भुनाथसिंह,
जैनेन्द्रकुमार
और. उदयशंकर भट्ट
के साथ
(१९६५)



डॉ० धर्मवीर भारती
के साथ
(१९६०)



डॉ० जगदीश गुप्त
तथा
श्रीकान्त जोशी
के साथ
(१९६५)



सुप्रसिद्ध कवि
भवानीप्रसाद मिश्र
के साथ
(१९६२)



सुप्रसिद्ध कवि
डॉ० शिवमंगलसिंह 'सुमन'
के साथ
(१९६२)



ग्रन्थ के सम्पादक
श्रीकान्त जोशी
के साथ
(१९६५)

संस्मरण खण्ड

जब उनका ध्यान करते हैं

० ०

वियोगी हरि

श्रद्धास्पद माखनलाल चतुर्वेदी का जब स्मरण आता है या ध्यान करते हैं, तो हम जैसे एक ऐसे उद्यान मे पहुच जाते है, जहा से निकलने का मन नही होता, लताए जहा की सदा ही लहलही, कभी न मुरझाने वाले रग-रग के फूल और बरबस खीच लेने वाली सौधी-सौधी रसभीनी महक।

या फिर, हम जैसे अनायास एक ऐसे हिमशिखर पर पहुच जाते है, जहा देखते है उस पर बिखरे पडे स्वर्ण-कण और एक धवल धारा, जिसके दरस, परस, मज्जन और पान से तत्क्षण मानस शुभ्रता का अनुभव करने लगता है।

अथवा, हमे जैसे कोई ऐसी वज्र शिला पर खडा कर देता है, जिसके चारो ओर अन्तरिक्ष अग्नि-स्फुलिंग फेक रहा हो, और ताण्डव के पदाघात से धरा काप और डोल रही हो।

सो, हम उस वाणी के सकेत पर कभी सरस-मधुर, तो कभी सुखद-सात्विक और कभी प्रखर-प्रचड दृश्य देखने लगते है, जब इस अजर-अमर कवि का, लेखक का, वक्ता का, भक्त का और लोक-नेता का स्मरण करते और ध्यान धरते हैं।

प्रकृति यो हिसाब-किताब से और किफायतशारी से काम लेती है, पर कभी-कभी अपने किसी उपासक की साधना पर वह ऐसी रीझ जाती है कि जो प्रसादी उसे देती है उसका कोई हिसाब नही रखती। कोई कहना चाहे तो प्रकृति का इसे पक्षपात भी कह सकता है।

आने वाले युग मे माखनलालजी की गणना प्रकृति के ऐसे ही लाडले साधको मे की जायेगी। कितने, कहा ऐसे मिलेगे जो एक साथ ही सरस प्रखर कवि हों, गद्य के निकष पर खरे उतरनेवाले लेखक हो, वाणी के अनमोल रत्न बिखेरनेवाले वक्ता हो और राष्ट्र-वेदिका पर भारतीय आत्मा को आलोकित करानेवाले हो।

माखनलालजी की लेखनी तथा वाणी मे जो अनुपम चमत्कार देखनेमे आया वह अन्यत्र कदाचित बहुत कम मिलेगा। उनका एक-एक पद, एक-एक वाक्य

नये से नये परिधान मे हम देखते है । लक्षणा और व्यजना दोनों ही मौलिक होती है उनकी । माधुर्य और ओजस् दोनो पर उनका एक समान प्रभुत्व है ।

जो भी लिखा वह नया-सा, और जो भी कहा वह भी नया ही, परन्तु पूर्व परम्परा का कभी विच्छेद नही होने दिया, क्योकि उन्होने नई से नई उपलब्धियो के आगे भी शील-सम्पदा की उपेक्षा नही की ।

रामचरितमानस के नित्य-पाठ का स्थान उनकी दिनचर्या मे सदा मूर्धन्य रहा । इसी प्रकार राधावल्लभ सम्प्रदाय की रस-परम्परा का कभी त्याग नही किया ।

कहते है सच्चा वैष्णव वही, जो दूसरो को वैष्णव बना ले । इसी प्रकार कवि वही, जो अनेक को प्रेरणा दे-देकर कवि बना लेता है । रस को वह स्वभावत. अपने पास सेतकर रख नही सकता, उसे दोनो हाथो सदा लुटाता ही रहता है । माखनलालजी ने न जाने कितने तरुणो को प्रेरित किया वाणी की आराधना करने के लिए । अपने गोत को बढते हुए देखकर उनको वैसे ही सुख मिला, जैसे "ज्यो बडरी अखियान लखि, आखनि को सुख होत ।"

कहा गया है कि मै एक-दो सस्मरण श्रद्धेय चतुर्वेदीजी के सम्बन्ध मे लिख दू । मुझे दो पुरानी बाते याद आ रही है, और उनको लिख देता हू

जहा तक याद आता है, सितम्बर का महीना था, सन् १९३२ का । बेतूल चतुर्वेदीजी के बुलाने पर शायद मै तीसरी बार गया था । हम दोनो ने पत्र-व्यवहार द्वारा विचार किया था कि बेतूल मे बैठकर कुछ साहित्य-सेवा की जाय, और साथ ही कुछ जन-सेवा भी, खास करके हरिजनो की । जमीन का एक टुकडा भी शहर से कुछ बाहर पसन्द कर लिया था । छोटी-सी योजना भी बना ली थी । गाधीजी ने ब्रिटिश प्रधानमत्री रेम्जे मेक्डानल्ड द्वारा दिए साम्प्रदायिक फैसले के विरोध मे तभी यर्वदा जेल मे अनशन किया था । पूना पैक्ट बन जाने पर, उस फैसले का वह अश रद्द हो गया, जिसमे कि हरिजनो को हिन्दू सभा मे से अलग कर दिया गया था । उस दिन बेतूल नगर मे एक विशाल सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया था । सभा मे श्रद्धेय माखनलालजी का बडा ही प्रभावोत्पादक भाषण हुआ । उनके अनुरोध पर मैने भी कुछ शब्द कहे थे । बेतूल से मै इलाहाबाद आया और नवम्बर मे मुझे दिल्ली जाना पडा, 'हरिजन सेवक' पत्र के सम्पादन का दायित्व लेने के लिए । अत बेतूल की हमारी वह योजना पूरी न हो सकी । परन्तु चतुर्वेदीजी उससे नाराज नही हुए । मुझे उन्होने पत्र द्वारा अपनी शुभकामनाए भेजी । दिल्ली आया, सो आया । न इलाहाबाद मे बैठ सका, और न बेतूल मे ही ।

दूसरा प्रसग है १९३६ का । बहुत दिनो से सोच रहा था कि कविता तो क्या, तुकबन्दिया बाँधना सदा के लिए छोड दू, और हरिजन सेवा मे ही अपना

सारा समय लगाऊ। मैने अपना यह विचार खडवा मे चतुर्वेदीजी के निवास-स्थान पर सबसे पहले रखा, साहित्यिक गोष्ठी के अवसर पर। श्रद्धेय चतुर्वेदीजी ने अपना स्नेह उस दिन खूब मुझ पर बरसाया और मेरे कवि का यदि उसे किसी भी रूप मे कवि कहा जाय, मर्शिया भी कहा। वह दृश्य आज भी मेरी आखो के सामने है। उसे कैसे भूलू !

यो तो कितनी ही बार चतुर्वेदीजी से मिला, सत्सग हुआ—दिल्ली मे, बम्बई मे, प्रयाग मे, इन्दौर और खडवा मे, किन्तु जहाँ आत्मीयता अधिक होती है वहाँ के सस्मरण कहा बहुत याद रहते है !

भावना, कल्पना और कविता के ज्वालामुखी

○ ○

वृन्दावनलाल वर्मा

सन् १९१६ की बात है, 'प्रताप' कार्यालय मे श्री गणेशशकर विद्यार्थी ने परिचय कराया।

सुन्दर, शान्त, गम्भीर।

मै उस समय नही जानता था कि श्री माखनलाल चतुर्वेदी भावना, कल्पना और कविता के ज्वालामुखी है।

कैसे जान सकता था ? शान्त ज्वालामुखी को तो पहचाना जा सकता है, परन्तु इनको पहचानने का साधन तब मिला, जब गणेशजी ने इनकी कुछ कविताए मुझको सुनाई

और ये उस समय मुसकराए तक नही। सुन्दर, शान्त, गम्भीर ज्वालामुखी।

मै सोच रहा था—इस 'भारतीय आत्मा' के सगमरमरी होठो पर क्या कभी मुसकान भी आती होगी ?

गणेशजी ने 'प्रताप' मे प्रकाशित होनेवाली 'गोलमाल कारिणी सभा' की लेखमाला का हवाला देते हुए मेरा परिचय कराया। मै भी उसमे लिखा करता था।

ज्वालामुखी पर एक मधुर स्मित आया। मैंने देख लिया, यह ज्वालामुखी आसुओ, स्पन्दनो और कम्पनो के साथ मन को साज-सजावट भी दे सकता है।

फिर तो हम लोग बातूनी ही हो पडे। दो वर्ष बाद मै झासी से कानपुर जा रहा था। गणेशजी ने बुलाया था। रात थी। ऊपर लेटा था। जब चिरगाव मे गाडी खडी हुई, मैं आखे मूदे पडा था नीद नही आयी थी, तन्द्रा-सी थी।

मेरे ऊपर किसी आगन्तुक की छाया पडी। सोचा होगा कोई यात्री बैठ जायेगा अपने आसन पर, परन्तु छाया नही टली। मैंने आख नही खोली।

किसी ने ज़ोर से कन्धा पकडकर हिलाया। "अरे ओ गोलमालकारी !"

नीद तो थी ही नही। तन्द्रा भी चल दी। आखे खोली, तो वही सुन्दर,

शान्त गम्भीर ज्वालामुखी—माखनलाल चतुर्वेदी।

मैं फडफडाकर उठ बैठा, नीचे कूद पडा और फिर हम दोनो लिपट गए।

वही एक कोने मे बैठ गए और बाते तब समाप्त हुईं जब कानपुर स्टेशन आ गया।

और बाते भी क्या ? कह नही सकता कि बेसिर-पैर की थी, परन्तु बतला सकता हूँ कि उनका ओर या छोर न था। आज कोई बात याद नही आ रही है, परन्तु इतना कभी नही भूला कि हम दोनो हँसते-हँसते कानपुर पहुचे। बात का विषय 'हृदयो का सोपान' वाली कविता थी। उस समय हम दोनो ने अनेक नर-नारियो के हृदयो का जो वर्गीकरण किया था वही हँसी का विषय बन गया।

फिर बरसो के बाद एक दिन झासी आए अस्वस्थ, निर्बल और पीले से, क्या ज्वालामुखी सचमुच शान्त हो गया है ? मुझको बडी ठेस पहुची

रोगग्रस्त थे और यात्रा के कारण बहुत थके हुए।

देश के एक बडे कार्य के लिए वे अर्थ-सग्रह कर रहे थे। मध्यप्रान्त से सम्बन्ध रखनेवाले एक 'बडे आदमी' झासी मे रहते थे। कार्य के उद्देश्य को बहुत समझाया-बुझाया, काफी सिरखपी की, परन्तु 'बडे आदमी' टस से मस न हुए।

ज्वालामुखी गरम हो गया।

मुझसे अकेले मे बोले, "मैं भूख-हडताल करूगा, तब हिलेगा यह कजूस।"

"भूख-हडताल इतनी बीमारी मे और उसका ऐसा उपयोग ?" मैने कहा।

"लोहा गरम आच से ही पिघलता है।"

"परन्तु लोहे को पिघलाने मे कही आच ही न बुझ जाय ?"

वे हँस पडे, "भाई, शका मत करो। यह कजूस लोहा नही है, महज रागा या सीसा है।"

मेरे हठ को वे न माने और उन्होने भूख-हडताल कर दी, परन्तु उनका अनुमान ठीक था, वह रागा सीसा ही था। थोडी-सी ही आच मे पिघल गया। जिस सस्था के लिए वे आर्थिक सहायता चाहते थे उसको उस 'बडे आदमी' ने मध्य-प्रान्त मे पहुचा दिया।

जब झासी से चलने लगे, मैंने कहा, 'सत्याग्रह का यह प्रयोग मुझे ग्राह्य नही लगा।" उन्होने मेरे कन्धे झकझोरकर प्रतिवाद किया, "इन लोगो को मैं जानता हू, तुम नही जानते।" मैंने सोचा शायद। फिर लगभग पन्द्रह वर्ष पीछे खडवा मे भेट हुई। मेरी भाजी के ब्याह मे वर पक्ष की ओर से आए थे।

बहुत कम बात हो पायी।

क्या फिर कभी रेल-यात्रा मे साथ होगा, जब हम आज के हृदयो का वर्गीकरण करे और हँसे या रोएँ ? परन्तु हृदय तो वे ही है और शरीर के बाए भाग मे उनका वही स्थान है।

शादय हमारे वर्गीकरण या विश्लेषण मे कोई गलती हो।

इस ज्वालामुखी ने हिन्दी भाषा को जो शक्ति और लौ दी है वह सम्भव है कि, उस वर्गीकरण, विश्लेषण और (हृदयो के) अनन्त यौवन को समझने की भी सूझ दे।

सन्त : वक्ता : विद्रोही

० ०

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

श्रद्धेय प० माखनलाल चतुर्वेदी सदा ही हिन्दी के गौरव रहे है। उनकी जिह्वा मे सरस्वती का निवास था। उनके समान वक्ता दुर्लभ ही था। उनकी लेखनी मे राग, स्फूर्ति और शक्ति की निर्झरिणी थी। मुझे बाल्यकाल की बात याद आ रही है जब 'कर्मवीर' पढने के लिए हम लोग लालायित रहते थे। उनकी कलम मे अद्भुत शक्ति थी। जहाँ एक ओर उससे शक्तिशाली ब्रिटिश शासन काँपता रहता था वहाँ दूसरी ओर युवको मे वह उत्साह और प्रेरणा भरती रहती थी। उनकी कविताएँ बहुत लोकप्रिय थी। वे केवल परिपाटी विहित काव्य-पद्धति का अनुसरण करके नही लिखी जाती थी बल्कि उनका एक अपना ही ढग था। वस्तुत वे परवर्ती, नवीन काव्य-धारा का उन्मेष कर रही थी। वे हृदय की अतल गहराई से सीधे निकलती थी और पाठको पर जादू का-सा असर करती थी। 'कर्मवीर' उन दिनो राष्ट्रीय जागरण का अग्रदूत था और खोये हुए भारतीय स्वाभिमान को जगाने वाला तथा साहित्य मे नवीन शक्ति-सचार करने वाला महान पत्र था।

मैं बहुत दिनो बाद चतुर्वेदीजी के दर्शन का सौभाग्य पा सका। वे प० बनारसीदास के साथ गुरुदेव से मिलने शान्तिनिकेतन आये थे। उनके सौम्य सत रूप को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ था। मेरे मन मे उनके रूप की कल्पना बहुत गर्म सुभाव के योद्धा की-सी थी। परन्तु वे तो अत्यन्त मृदु स्वभाव के सत लगे। वस्तुत जो स्वभाव के सत होते है वे ही अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह कर सकते है। यह बात मुझे थोडी देर से समझ मे आयी। परन्तु यही सत्य है। जो स्वभाव के साधु और आचार के सयमी होते है वे ही विचारो मे क्रान्ति उत्पन्न कर सकते है। चतुर्वेदीजी ऐसे ही सत पुरुष है।

शान्तिनिकेतन मे जब वे पधारे थे तो कुछ अस्वस्थ थे। गुरुदेव से मिलने के बाद वे जल्दी ही चले आये थे। दुर्भाग्यवश मै भी उन दिनो अस्वस्थ था। वे मुझे

रुग्णावस्था मे ही देखने आये थे। मैं उनके साथ गुरुदेव के पास नही जा सका था। परन्तु स्वस्थ होने के बाद मिला और उनकी चर्चा चली तो यह देखकर मुझे प्रसन्नता हुई कि गुरुदेव उनके सौम्य और मोहक व्यक्तित्व से प्रभावित हुए थे।

मैने उनकी वक्तृताओ की बडी प्रशसा सुनी थी, परन्तु मेरा दुर्भाग्य था कि मैं सुनने का कभी अवसर नही पा सका था। सबसे पहला अवसर मुझे आज से कोई छब्बीस वर्ष पहले काशी मे मिला। जहा तक मुझे स्मरण है यह व्याख्यान हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर हुआ था। मुझे आज बिलकुल स्मरण नही है कि उन्होने किस विषय पर भाषण दिया था लेकिन इतना अच्छी तरह याद है कि हजारो की सख्या मे लोग चुपचाप मुग्ध भाव से सुन रहे थे। सभा मे एक अद्भुत शाति थी जो पहले और बाद मे बोलने वालो के समय नही दिखाई पडी थी। मै इस सभा मे थोडी देर से आया था। उनकी वाणी मे निश्चय ही बहुत बडी शक्ति थी लेकिन इस वक्तृता का भी मैं पूरा रस नही पा सका था। आखिरी बार उनके दर्शन दरभगा की ओरिएटल काफ्रेंस के अवसर पर हुआ था। वहाँ कुछ हिन्दी विरोधी वातावरण बन गया था लेकिन चतुर्वेदीजी की वक्तृता ने विचित्र प्रभाव डाला। मेरे एक मित्र जो राष्ट्रभाषा के नाम से ही चिढ जाते थे, बोले कि यदि यही राष्ट्रभाषा होने वाली है जिसे चतुर्वेदीजी बोल रहे है तो मै अपना विरोध वापस लेता हूँ। उस वक्तृता के बाद मुझे स्पष्ट याद है कि स्वर्गीय प० अमरनाथ झा ने मुझे बुलाकर पूछा कि चतुर्वेदीजी की वक्तृता आपको कैसी लगी और मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना स्वय ही कहने लगे कि जादू का-सा असर है इस वाणी मे। मैने अपने उस मित्र की बात बताई जो अपना विरोध वापस ले रहे थे तो अत्यन्त गम्भीर झा साहब बडी प्रसन्नता के साथ हँस पडे। कहने लगे कि यही तो कह रहा हूँ कि जादू है।

चतुर्वेदीजी ने हिन्दी की कम से कम तीन पीढियो को प्रभावित किया है। उनकी कविता, उनकी वाणी और उनके लेख सभी उत्साह और स्फूर्ति देने वाले रहे है। मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई है कि श्री श्रीकान्त जोशी और उनके मित्रो ने हिन्दी के इस भीष्म पितामह के प्रति मुझे अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने का अवसर दिया है। श्री जोशीजी ने एक महान यज्ञ का अनुष्ठान किया है। चतुर्वेदीजी को अपनी श्रद्धा निवेदन करके हिन्दी साहित्यकार स्वय कृतार्थ होगे। जिस भारतीय आत्मा ने कई पीढियो तक साहित्य और राष्ट्र को प्रेरणा और शक्ति प्रदान की है उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना उचित ही है परन्तु इस कृतज्ञता से वस्तुत हम अपना ही उपकार करेगे।

पं० माखनलाल चतुर्वेदी : एक प्रेरक व्यक्तित्व

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

प० माखनलाल चतुर्वेदी से मिलने के मुझे कम अवसर मिले है—मेरा अधिकाश जीवन उत्तरप्रदेश मे, विशेषतया इलाहाबाद मे बीता तथा उनका मध्यप्रदेश मे खडवा मे। किन्तु उनके साहित्य से मेरा परिचय विद्यार्थी-जीवन मे ही हो गया था और उससे मेरा सपर्क बढता ही गया।

मेरे पिताजी की अभिरुचि सस्कृत तथा हिन्दी साहित्य की ओर विशेष थी—विशेषतया धार्मिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक साहित्य की ओर। उपर्युक्त विषयो से सबधित पत्र-पत्रिकाओ को भी मँगाने का उन्हे शौक था। चतुर्वेदीजी द्वारा सपादित 'प्रभा' प्रारम्भ से ही हम लोगो के घर आती थी। लेखो के अतिरिक्त उसके चित्र भी प्रेरणादायक होते थे, यह मुझे अच्छी तरह स्मरण है। 'प्रभा' कदाचित सन् १९१४ के लगभग निकली थी जब मैं इटर-मीडिएट मे पढता था। उनका साप्ताहिक पत्र 'कर्मवीर' तथा श्री गणेशशकर विद्यार्थी द्वारा सपाहित 'प्रताप' भी नियमित रूप से हम लोगो के यहाँ आते थे। कुछ समय तक 'प्रताप' का सपादन भी चतुर्वेदीजी ने किया था। देश को स्वतत्रता-प्राप्ति के लिये जाग्रत करने मे इन दोनो साप्ताहिक पत्रो का विशेष हाथ था।

चतुर्वेदीजी के साहित्यिक रूप का परिचय मुझे उनके नाटक 'कृष्णार्जुन-युद्ध' से पहले-पहल प्राप्त हुआ था। यह नाटक कदाचित सन् १९१८के लगभग प्रकाशित हुआ था। मुझे स्मरण है कि इसे पहली बार पढने पर मुझ पर दो प्रभाव पडे थे। एक तो यह कि देश के प्राचीन कथानको को लेकर आधुनिक काल की समस्याओ पर किस प्रकार नया प्रकाश डाला जा सकता है। दूसरे यह कि हिन्दी मे साहित्यिक नाटक भी रगमच की दृष्टि से सफलता के साथ लिखा जा सकता है। यह वास्तव मे खेद का विषय है कि इस परम्परा को हिन्दी नाटक साहित्य के अन्तर्गत आगे विकसित नही किया गया। यही कारण है कि हिन्दी नाटक प्राय

साहित्यिक पाठ्य-नाटक बनकर रह गए, दृश्यकाव्य नही बन सके।

चतुर्वेदीजी की फुटकर कविताएँ हम लोग कालेज के दिनो मे चाव से बराबर पढा करते थे। वह राष्ट्रीय कविताओ का युग था और चतुर्वेदीजी की कविताएँ हम नवयुवको को उत्साह और उमग से भर देती थी तथा देशसेवा की प्रेरणा देती थी। पुस्तक-रूप मे उनकी काव्य-रचना 'हिमकिरीटिनी' नाम से बहुत बाद को सन् १६४२ मे प्रकाशित हुई थी। उनके उत्कृष्ट साहित्यिक निबन्धो का सग्रह 'साहित्य देवता' भी लगभग इसी समय प्रकाशित हुआ था। इसको लगभग बीस-पच्चीस वर्ष हो चुके। उपर्युक्त रचनाओ के फलस्वरूप हिन्दी नाटक, कविता तथा निबन्ध साहित्य के क्षेत्रो मे चतुर्वेदीजी का नाम अमर है और रहेगा। किन्तु इसे नही भुलाना चाहिए कि चतुर्वेदीजी कोरे साहित्यिक नही रहे बल्कि देश के उत्थान तथा स्वतन्त्रता के सग्राम मे उन्होने निरन्तर भाग लिया। उनकी रचनाओ मे जो आग है उसके मूल मे यही कारण है।

उनके प्रभावोत्पादक वक्ता के रूप को मैने एक बार ही देखा। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टडन का स्नेह चतुर्वेदीजी के प्रति विशेष था। चतुर्वेदीजी किसी काम से प्रयाग आए थे और हम लोगो ने उन्हे प्रयाग विश्वविद्यालय की हिन्दी परिषद् मे व्याख्यान देने के लिए आमत्रित किया था। टडनजी सभापति के पद पर आसीन थे। उस दिन की उस सभा के दृश्य को मै आज तक नही भुला सका हूँ। चतुर्वेदीजी की वक्तृत्वशक्ति, भाषा पर अधिकार तथा प्रभावोत्पादन प्रतिभा से हम सभी मत्रमुग्ध-से हो गए थे। उस समय भी हिन्दी मे इस स्तर के वक्ता कम ही थे।

उनका जितना भी समादर हम लोग करे, वह उनकी सेवाओ की दृष्टि से कम ही होगा।

बन्धुवर श्री माखनलाल चतुर्वेदी

◇ ◇

बनारसीदास चतुर्वेदी

हिन्दी के एक सुप्रसिद्ध कवि मन्दाग्नि से पीडित होकर इन्दौर की एक सराय मे पडे हुए थे। डाक्टर सरजूप्रसाद का इलाज चालू था, पर बचने की आशा क्षीण ही थी। इतने मे वसन्त पचमी आ गई। भला कवि-हृदय क्यो न मचलता ? यद्यपि उन्हे यह आशका थी कि शायद यह उनके जीवन का अन्तिम वसन्त हो, तथापि वे उस दिन माता सरस्वती की विधिवत् आराधना करना ही चाहते थे।

आम्र-मजरी मगाई गई और सरस्वती का एक चित्र भी, जो शायद कपडे के किसी थान पर से उचेट लिया गया था, कही से लाया गया।

एक आले मे एक चित्र रखा गया और पैसे मे दो-तीन आने वाली कुछ मोम-बत्तियाँ भी जलाई गई। चारो ओर फूल-पत्तियो से उसे सजाया गया। कवि महोदय ने अपनी पुरानी कविता का पाठ बहुत धीमे स्वर मे प्रारम्भ किया ·

तोको ही नित रटे शेष शम्भु अरु नारद
पाकर तेरी प्रभा हुए ये विज्ञ विशारद
ध्यान किये ये भगत भाव भाषा के दारद
कीजिय इत आ कृपा अहो माता मम शारद
करि सुरत नयन झुकि भुकि परत,
खड्यो तिहारे द्वार पै,
श्री करुणा स्वामिन अम्ब
अब द्रवहु गरीब गँवार पै।

कविता उनकी बाल्यावस्था की कृति थी। उसमे नाना प्रकार के अनुनय-विनय से माता सरस्वती को फुसलाने की कोशिश की गई थी और उलाहना भी खूब दिया गया था

है भीर पडी गाढी जबै, कृपा न करि मुख मोरिबौ,
जग मे अस देखौ नही, अद्‌भुत नातौ तोरिबौ।

कवि महोदय के जर्जर शरीर और क्षीण स्वर को देख-सुनकर मै चकित बैठा हुआ था। निस्सन्देह उन पर गाढी भीर पडी थी, उस पिंजर मात्र अवशिष्ट कवि ने जो सबक मुझे सिखाया उसे आज तक नही भूला।

पिछले उनचास वर्षो मे कविवर माखनलाल चतुर्वेदी के श्रीमुख से अनेक कविताएँ हमने सुनी है, कई बार उनके स्फूर्तिमय भाषणो को सुनकर हम मन्त्र-मुग्ध-से बैठे रहे है और अपनी कलामय उगलियो के इशारे से मनोहर शब्द-चित्रो का निर्माण करते हुए उन्हे कई बार देखा है, पर ये सब दृश्य इन्दौर वाले करिश्मे के सामने हमे नाचीज ही प्रतीत हुए है। आज तो माखनलालजी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ वक्ता माने जाते है और उनकी स्पीचो को सुनने के लिए सैकडो-सहस्रो श्रद्धालु व्यक्ति उपस्थित होते रहे है। बडे-बडे नगरो मे सुसज्जित मचो पर से उनके भाषण भी हमने सुने है, पर इन्दौर का दृश्य इसके सर्वथा विपरीत था। सराय की वे काली-काली दीवारे, अपरिचित तथा अश्रद्धालु मुसाफिरो का कुसग, चारो ओर का ऊधम-भभ्भड, वह करुणोत्पाक चेहरा और गद्‌गद कठ और श्रोतागण के नाम पर दो-चार आदमी, जो उस निर्जीव-से व्यक्ति मे जान आती देखकर आश्चर्य मे बैठे थे, और 'परसाद' के तौर पर दी गई उन गडेरियो की हमे खूब याद है, क्योकि उन दिनो कविवर माखनलालजी का वही भोजन थी जिन्हे कवि की वासन्ती मनोवृत्ति ने और भी सरस बना दिया था।

बन्धुवर माखनलालजी की कविताओ का मै प्रारम्भ से ही भक्त रहा हूँ और उनको पुस्तकाकार मे छपाने का मेरा आग्रह भी शायद सबसे पुराना है। मेरे बार-बार के तकाजो से तग आकर उन्होने अपनी कविताओ का एक पुलिन्दा मुझे भेज भी दिया था, पर विश्वसनीय प्रकाशक के अभाव मे मै उन्हे छपा नही सका। मुझे इस बात का खेद है क्योकि जो भी सग्रह उनकी कविताओ के प्रकाशित हुए है, वे साधारण पाठको की दृष्टि से सन्तोषजनक नही। इसमे सग्रहकर्ताओ का कोई दोष नही, क्योकि साहित्यिको की रुचि भिन्न-भिन्न होती है। इसके सिवाय कवि लोग भी तरह-तरह के रगो मे लिखते है और स्वय उनकी शैली तथा भावो का विकास होता रहता है। मेरे साथ मुश्किल यह रही है कि मेरी रुचि का विकास नही हो पाया। उसका एक उदाहरण सुन लीजिए। मै 'नवीन' जी से बार-बार उनकी वह कविता जिसमे 'मैं मृग जाने कब प्यासा' या ऐसा ही कुछ भाव आता था, पढने का आग्रह किया करता था। कई बार उन्होने मेरी फर्माइश को पूरा किया पर आखिर एक बार झुँझलाकर उन्होने कह ही दिया, "यार! तुम तो उसी अलल 'बछेडा' युग मे रह रहे हो। तुम्हारी रुचि का विकास ही नही हुआ!" बात ठीक थी। नवीनजी जब वेदान्त की गहराई मे उतरते थे तो मेरी तबीयत घबरा जाती थी। यही हाल भाई माखनलालजी की कविताओ के विषय मे हुआ है। उनके यौवन-काल की रचनाएँ ही मुझे प्रिय है। उन्हे मैंने नकल करके रख भी

लिया था। उनकी बाद की रचनाएँ कभी-कभी इतनी गूढ हो गई है कि उनका अर्थ सन्दर्भ के अभाव मे समझना मेरे लिए कठिन हो गया है। वस्तुत मैं अपने को उनकी साहित्यिक कृतियो का मूल्याकन करने का अधिकारी मानता भी नही। मेरी श्रद्धा मूलत साहित्यिक व्यक्तित्व के प्रति ही रही है।

बहुत वर्षों तक मेरी यह धारणा थी कि भाई माखनलालजी को राजनीति से अलग ही रहना चाहिए था और एक बार तो मैने इसी आशय की एक तुकबन्दी साबरमती आश्रम से लिखकर उन्हे भेज दी थी। उन पक्तियो के साथ मैंने कुछ पुष्प भी भेजे थे, जिन्हे मै ट्यागानिक्या (भूतपूर्व जर्मन ईस्ट अफ्रीका) से लाया था। मेरी वह तुकबन्दी और माखनलालजी का काव्यमय उत्तर सुरक्षित रह गये है। दोनो यहाँ उद्धृत किये जाते है।

श्रद्धा के फूल

('एक भारतीय आत्मा' की सेवा मे 'एक भारतीय हृदय' द्वारा समर्पित)

१ रजत मुकुट धारिणी धवल-गिरि-शिखर-शिरोमणि 'कल मजीर'[1]
ब्रिटिश-सूर्य जिस पर प्रकटाता अन्धकार भीषण गभीर॥
उस आकाश-विचुम्बित नग पर सुमन मनोहर करते बास।
हिम की हृदयहीन शीतलता कर न सकी कोमलता नाश॥
प्रेम अश्रु से सदा सीचते रहते अपना जीवन मूल,
सूखे किन्तु हरे जीवित है, फिर भी ये श्रद्धा के फूल।

२ श्वेतकाय पुरुषो के जिसने सहे सैकडो अत्याचार,
जिसके काले कधे सहते है गोरी प्रभुता का भार,
वह अधिकारहीन अफ्रीका करती विनती बारबार,
जगजननी हे भारतमाता! कीजे अब मेरा उद्धार।
चार मील ऊचे से लेने तेरे चरण-कमल की धूल,
आरत अबला आज भेजती है कुसुमित श्रद्धा के फूल॥

३ क्रूरा, कुलटा राजनीति को कुटिला गति ही भाती है,
कूट-कूटकर कवि का कोमल हृदय कुचलती जाती है।
कभी किया कमनीय कठ से जिस कोकिल ने सुन्दर गान,
राजनीति चचला चरण का चचरीक बन करता ध्यान।
कौसिल नो-कौसिली कलह मे कविता देवी को मत भूल,
इसीलिए अर्पित करती वह प्यारे! ये श्रद्धा के फूल।

---

१ कल मजीर लगभग चार मील ऊँची है।

४ कविता[१] 'कुली प्रथा' का जग मे हो सकता है क्या सम्बन्ध ?
पद्य-पद्म नहि हुआ प्रफुल्लित लगी न पिंगल पवन सुगन्ध,
नीरस है यह हृदय सरोवर सदा यहाँ रहता है ताप,
पुष्प नही 'आकाश पुष्प' ही इसमे पा सकते है आप।
शुष्क पत्र ये नही पत्र को, इनमे कोरे भरे त्रिशूल,
कविता कली कदापि नही है, ये सूखे श्रद्धा के फूल ।।

५ नर-नारायण-समर, तुम्हारा देता है मन को सन्तोष[२],
जीवित जोश भरा करता है भव्य-भाव का सीकर कोष।[३]
दिया हृदय को बेध हृदय ने, लगा प्रेम का तीखा शूल,
तब बलिदान वारि करता है सिंचित मेरा जीवन मूल।
जीवन फूल चढाता रहता साबरमती नदी के कूल,
हे कवि मणे ! कीजिये स्वीकृत ये मेरी श्रद्धा के फूल।

प्राप्ति-स्वीकार

कल्पना की कुटिया मे बैठ, तेज की करता था मनुहार,
सिमटकर बिखरा बीसो बार, हृदय की इन बूँदो का हार,
किये ऋतुराज, सुरेश, निदाघ, प्रतीक्षा पर कितने बलिहार,
निठुर वनमाली, कब तक यार, खटखटाऊ, यह तेरा द्वार,
भूलकर अपने को कह उठा—पतित का हाजिर 'जीवन-मूल,'
शूल-सा बेध कौन कह उठा। चढा, ला है, श्रद्धा के फूल ?
असहनीय हो उठा तुम्हारा यह श्रद्धा सकेत सखे।
ऊसर है, पाषाणपूर्ण, अपने जीवन का खेत, सखे।
कैसे हलधर के हल से, मैं अतस्तल झकझोर उठूँ।
अरे स्याम घन बरसाने को कैसे तुझे निहोर उठू।
यहाँ धूल उडती है माधव, क्यो लतिकाएँ झूल उठे ।।
कैसे फूल बता—पाषाणो पर श्रद्धा के फूल उठे।
अहा राह से भटक, इधर से एक भाग्यशाली आया।
वनमाली की कृपा, 'देश का' विमल 'हृदय' माली आया।
टूट चुके थे तार और तर्जनी, किन्तु यह कैसी तान।
साबरमती, प्राण की बाजी पर यह तेरा जीवन-दान।

---

१ कुली प्रथा के विरुद्ध आंदोलन उन दिनों मेरे द्वारा चलाया जा रहा था।
२. 'नर-नारायण समर'— कृष्णार्जुन युद्ध।
३ 'जीवित जोश','हृदय', 'बलिदान' और 'जीवन फूल' एक भारतीय आत्मा की कुछ कविताओ के नाम।

मै तोडूँगा नही, रहे कसो के सारे शूल रहे,
उनके मस्तक पर लहराते ये श्रद्धा के फूल रहे।।
अफ्रीका, सयुक्त बने आ, उठ, अब मत मन मार अरी,
पतित पराजित अपमानित का है मीठा अपराध हरी,
किलि मजारो, हेमाचल से ऊँची उठकर बोल सखी,
नभ, जल, थल, हिलु-डुल जाने दे, तू किंचित मत डोल सखी,
अरी श्याम-दुनिया, सोने की लका की अब बारी हो,
शूलो पर श्रद्धा के फूलो से अपनी तैयारी हो।
ट्यागानिका, चढाई जिस पर तूने प्यारी अजलियाँ,
वही कुली सेवक करता है, एकत्रित भारत-बलियाँ
वह मेरे अन्तरतम का स्वर, वह मेरा उपहार बहिन,
मेरे बेटे जगे, खुले परतत्र जगत् का द्वार बहिन।
सखे, सिखा दे, कैसे गाऊँ ? अनचाहा कुछ काम न हो,
जगे एशिया, विश्व हिला दूँ, राजनीति का नाम न हो।
विवश बाँसुरी से कहता हूँ हीतल हूक मचा दे तू,
और सबेरे रण डका बन कसकर चोट लगा दे तू ॥
स्वप्न कार्य मे, अँगुली मे मनसूबे उठते झूल,
अपराधी हूँ, यहाँ फेंक मत 'ये श्रद्धा के फूल'।

आज मै अपनी यह गलती महसूस करता हूँ। राजनीति मे पडना भाई माखनलाल जी के लिए अनिवार्यत आवश्यक था और उन्होने उसमे पडकर कोई अक्षम्य अपराध नही किया। पर एक प्रश्न मेरे मन मे बराबर उठता रहा है, वह यह कि उन जैसे तपस्वी नेता और सेवक का उस क्षेत्र मे उचित सम्मान क्यो नही किया गया ? कम-से-कम वे राज्य सभा मे तो भेजे ही जा सकते थे। एक बार मैंने यह बात काग्रेस के तत्कालीन मत्री श्रीयुत् श्रीमन्नारायणजी से कही थी और उन्होने मेरे प्रस्ताव के औचित्य को स्वीकार भी किया था। वस्तुत जहाँ तक मध्यप्रदेश के साहित्यिको का सम्बन्ध है, सबसे प्रथम अधिकार भाई माखनलाल चतुर्वेदी तथा स्वर्गीय ठाकुर गोपालशरणसिंह का था।

जब मैंने इस बात का जिक्र अपने एक पत्र मे किया तो माखनलाल ने उत्तर मे यही लिखा, "आप राज्य सभा मे पहुँच गए, यही अच्छा हुआ। मेरे पहुँचने से कुछ बनता-बिगडता नही।" भाई माखनलाल जी उम्र मे मुझसे पौने चार वर्ष बडे है और उन्होने निरन्तर मुझे अपना अनुज ही समझा है और वैसा ही प्रेमपूर्ण व्यवहार भी किया है। मेरे किसी भी आग्रह को उन्होने कभी भी नही टाला। मेरे कहने से वे फीरोजाबाद पधारे और भरतपुर के पत्रकार

सम्मेलन मे मेरी प्रार्थना पर उन्होने सभापति बनना मजूर किया और स्वास्थ्य की नाजुक हालत मे भी उन्होने खडवा से शान्तिनिकेतन की लम्बी यात्रा की। मुझे याद है कि जब सन् १६३२ मे मैने श्री मैथिलीशरणजी, सियारामशरणजी, पतजी, माखनलालजी और जैनेन्द्रजी आदि को गुरुदेव (रवीन्द्रनाथ ठाकुर) से मिलने के लिए निमत्रण भेजा था तब उनमे से केवल माखनलाल जी और जैनेन्द्रकुमार ने आना मजूर किया था। जब मै भाई माखनलाल जी और जैनेन्द्र जी को गुरुदेव से मिलाने ले गया (२२ दिसम्बर, १६३२) तो बडी देर तक साहित्यिक चर्चा होती रही। गुरुदेव ने हिन्दी भाषा के लचीलेपन की बडी प्रशसा की। जब बात-चीत आगे बढी तो माखनलालजी ने उनसे एक प्रश्न किया, 'हम सैनिको के लिए आपका क्या सन्देश है ?" चतुर्वेदी जी तब हाल ही मे जेल से छूटे थे। गुरुदेव ने उसके उत्तर मे कहा, "मेरा श्रीनिकेतन ही आपके प्रश्न का उत्तर है। जो कुछ भी मुझसे बन सका है मै करता रहा हूँ। अपने कार्य का सुफल देखने के लिए शायद मैं जीवित न रहूँ किन्तु सम्भवत एक समय आयेगा जब लोग मेरे विनम्र प्रयास के महत्त्व का अनुभव करेगे। ब्रिटिश शासन मेरे प्रति बहुत अन्यायशील रहा है क्योकि अपने विचारो को स्पष्ट अभिव्यक्ति देते रहने पर भी उसने मुझे कभी जेल नही भेजा है। लार्ड कर्जन के जमाने मे मैने एक भाषण दिया था। बगाल गवर्नमेट के सचिवालय के एक अनुवादक ने मुझसे कहा था, "आपने यह क्या कह दिया है ? आपके भाषण की प्रतियो के लिए अनेक आज्ञापत्र प्राप्त हो रहे है और मैं बडे धर्म-सकट मे पड गया हूँ। मुझसे बाद मे यह भी कहा गया कि मैं अपने भाषण के कुछ हिस्सो को निकाल दूँ किन्तु मै सहमत नही हुआ और मैंने उसे ही प्रकाशित होने दिया।"

निसन्देह गुरुदेव का उत्तर बडा विनम्रतापूर्ण था किन्तु मेरे मन मे यह खयाल आया कि कही गुरुदेव ने माखनलालजी के प्रश्न की ध्वनि को गलत तो नही समझा था कि हम लोग तो सैनिक है जबकि आप तटस्थ साहित्यिक है। यद्यपि माखनलालजी का यह तात्पर्य कदापि नही रहा होगा। मेरा यह सौभाग्य है कि मैं इन दो कवियो को मिला सका और मुझे प्रसन्नता है कि गुरुदेव माखनलालजी से मिलकर प्रसन्न हुए। बाद मे भी वे श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी के समक्ष उन्हे याद करते रहे। माखनलालजी ने मेरे प्रत्येक लेख या प्रस्ताव पर पूरा-पूरा ध्यान दिया और जहा-जहा हम लोग सहमत रहे, उन्होने हार्दिक तथा जोरदार समर्थन भी किया।

मुझे इस बात का खेद और पछतावा है कि अपने प्रमादवश मै भाई माखन-लालजी की आज्ञाओ का पालन नही कर सका। उनके बार-बार बुलाने पर भी मैं खण्डवा की यात्रा नही कर सका। उन दिनो भी नही, जब मेरे पास फर्स्ट क्लास का फ्री-पास था। हरिद्वार के सम्मेलन मे भी नही जा सका।

माखनलालजी मे हास्य रस की मात्रा की कमी नही है। भरतपुर के सम्मेलन मे श्रीमान् सरदार बहादुर किवे साहबने एक लेख पढा था— मध्यभारत मे लका'। जब निबन्ध पढा जा रहा था तो श्री दुलारेलाल भार्गव ने कहा, "आप लोग सी० पी० मे रहते है। हम अवधवासी लोग राक्षसो पर विजय प्राप्त करने आनेवाले है।" इस पर माखनलालजी ने कहा, "आपका आगमन सिर माथे पर, पहले सीताहरण तो करा दीजिये।" जब वे पटना के प्रान्तीय सम्मेलन मे पधारे थे तो स्वभावत जगह-जगह उनको भोजन के लिए निमन्त्रित किया जाता था। ऐसे निमन्त्रणो मे वे जान-बूझकर मुझे पास बिठला लेते थे और अपने बजाय भोजन की सामग्री मेरी पत्तल पर परोसवा देते थे। क्रिकेट मे कभी-कभी जिस प्रकार 'रनर' (दौडनेवाला) रखे जाने का नियम है उसी प्रकार भोजन के न्यौतो मे उन्होने मुझे अपना 'रनर' बना लिया था। इसप्रकार वे अपनी मन्दाग्नि की क्षतिपूर्ति मेरी जठराग्नि द्वारा कर लेते थे। इससे गलतफहमी पैदा हो जाती थी। लोग मुझे मुख्यतया 'भोजन भट्ट भाड' ही समझने लगते थे। हँसी-मजाक मे मेरे स्वभाव से भी इस भ्रम का समर्थन हो जाता था। नवराष्ट्र कार्यालय की दावत से स्वर्गीय देवव्रत शास्त्री को यह शिकायत रही कि उसमे मेरी हास्य प्रवृत्ति के कारण कोई गम्भीर वार्तालाप न हो सका। सर सच्चिदानन्द सिन्हा को भी यही गलतफहमी हो गई थी।

माखनलालजी अद्वितीय वक्ता है और मेरी उस कला मे बिलकुल ही गति नही। पटनावाले मेरे भाषण मे कुछ उग्रता आ गई तो माखनलालजी ने डाट-फटकार बतलाने के बजाय सिर्फ इतना ही कहा, "कौन कहता है कि आपने लाठी चलाना छोड दिया है ?"

उनका-मेरा पत्र-व्यवहार

भाई माखनलालजी के चालीस-पचास पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं। इनके अतिरिक्त अन्य पत्र भी होगे, जिनको खोज निकालना इस समय अत्यन्त कठिन है। इन पत्रो मे उनकी कृपापूर्ण सहृदयता के स्पष्ट प्रमाण मिलते है। इन पर तो एक अलग लेख ही लिखा जा सकता है। क्या ही अच्छा होता यदि इन पत्रो का सग्रह अलग से छपा दिया जाता, क्योकि उनसे माखनलालजी के कवि हृदय का अच्छा परिचय पाठको को मिल सकता है। माखनलालजी के एक पत्र का अश यहा उद्धृत किया जाता है

"अभी उस दिन कोई दस-बारह दिन पहले सतपुडा के एक ग्वालिन डीह नामक झरने पर गया था। दोनो तरफ पर्वतमालाएँ थी। बीच मे राजगति से झरने महाराज जा रहे थे। उस समय जब मैं एक कऊ के झाड के नीचे से झुककर निकल रहा था एक तरुण ने मेरी आखो को थोडी देर के लिए प्रकृति के उस

आनन्द से गैरहाजिर देख लिया। उसने पूछा, "तुम इस समय क्या सोच रहे हो, दादा ?" मैंने कहा, "मैं चाहता हू मेरे साथ इस समय बनारसीदासजी, प्रो० रामकुमारजी, प्रो० सद्गुरुशरणजी अवस्थी होते।" इसके पश्चात् और चर्चाए हुई जिनको यहाँ देकर उन चर्चाओ के आधारो को बाजार मे नही रखना चाहता।"

मुझे इस बात का पछतावा है कि मैं भाई माखनलाजी के साथ सतपुडा के सुन्दर दृश्यो का निरीक्षण नही कर सका।

गद्य-लेखो का सग्रह

भाई माखनलालजी की कविताओ के तो कुछ सग्रह छप गए है, पर समय-समय पर उन्होने पत्रो मे जो सम्पादकीय लेख तथा नोट लिखे थे उनका कोई भी सग्रह हमारे देखने मे नही आया। उनके गद्य-लेखो मे भी काव्य जैसा आनन्द आता है। उस दिन अकस्मा ३० जनवरी, सन् १९३७ का 'कर्मवीर' मुझे दीख पडा। उसमे एक अग्रलेख द्वारा सैयद अमीरअली मीर को श्रद्धाजलि अर्पित की गई थी। यह लेख माखनलालजी की श्रद्धायुक्त कृतज्ञता का उज्ज्वल उदाहरण है। माखनलालजी के सैकडो ही लेख इस योग्य है कि उन्हे पुस्तकाकार मे प्रकाशित कर दिया जाय।

ठेठ हिन्दी व्यक्तित्व

हिन्दी जगत् मे अनेक नेता हुए है और कितने ही अब भी विद्यमान है पर माखनलालजी जैसा ठेठ हिन्दी व्यक्तित्व बहुत कम लोगो मे पाया जाता है। इस विषय मे पडित पद्मसिंह शर्मा उनके अग्रज थे। निरन्तर अग्रेजी ग्रन्थो तथा पत्रो को पढने का एक दुष्परिणाम यह होता है कि मेरे जैसे कितने ही लोग अग्रेजी मे सोचते है और तत्पश्चात् उसका अनुवाद हिन्दी मे कर देते है। इसका असर हम लोगो की लेख शैली पर भी पडता है। हम लोगो के लिए यह बडे सौभाग्य की बात हुई कि माखनलालजी ने सिर्फ हिन्दी द्वारा ही शिक्षा प्राप्त की और सो भी नॉर्मल स्कूल तक। उर्दू, मराठी, गुजराती तथा अग्रेजी का जो कामचलाऊ ज्ञान उन्होने अर्जित किया सो अपने निजी प्रयत्न से। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि उनके चिन्तन की ठोस नीव हिन्दी भाषा पर ही रही। उनकी अद्भुत भाषण-शक्ति का रहस्य भी यही है। स्वर्गीय प० अमरनाथ झा माखनलालजी को हिन्दी-जगत् का सर्वश्रेष्ठ 'ओरेटर' (वक्ता) मानते थे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि झा महोदय स्वय अग्रेजी और हिन्दी दोनो के बहुत अच्छे वक्ता थे।

सन् १९०८ मे माखनलालजी को अपने एक लेख 'स्वदेशी आन्दोलन और बायकाट' पर पैतीस रुपये का पुरस्कार मिला था। आज उसे अठावन वर्ष हो

गये। इन अठावन वर्षो मे उन्होने हिन्दी जगत् को अपनी वाणी तथा लेखनी से क्या-क्या नही दिया ? नवीन पीढी के बीसियो ही कवि उनके द्वारा प्रभावित हुए है और सहस्रो लक्षो श्रोताओ को उन्होने राष्ट्रीयता तथा हिन्दी-प्रेम का स्फूर्तिमय सन्देश सुनाया है। देश की स्वाधीनता के लिए जिन-जिन लेखको तथा कवियो ने अनेक खतरो मे पडकर प्रशसनीय काम किया है, उनमे माखनलालजी का नाम अग्रगण्य है। क्रान्तिकारी लोगो के साथ भी उनका सम्बन्ध बहुत पुराना था। सन् १९०६ मे उन्होने काशी मे सखाराम गणेश देउस्कर से क्रान्तिकारी व्रत की दीक्षा ली थी और अपने रक्त से प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे। अण्डमान द्वीप से लौटे हुए स्वर्गीय रामचरणलाल शर्मा को उन्होने किस प्रकार आश्रय दिया और पाडिचेरी जाने मे मदद दी, उसका रोचक वृत्तान्त हमे अभी-अभी हरिकृष्ण जी प्रेमी की पुस्तक 'आज के लोकप्रिय कवि' पुस्तकमाला मे पढने को मिला है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्वर्गीय रामचरणलालजी शर्मा अपनी अण्डमान यात्रा की पुस्तक दिल्ली के डा० युद्धवीरसिंह को सौप गए थे, पर उसके प्रारभिक पृष्ठ गायब थे। गत वर्ष 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' ने उस पुस्तक को कई अको मे छापने की कृपा की थी। यद्यपि महात्मा गाधी के असहयोग आन्दोलन के प्रारम्भ होने पर माखनलालजी ने क्रान्तिकारी कार्यपद्धति को तिलाजलि दे दी पर अमर शहीद गणेशशकरजी की तरह वे क्रान्तिकारियो को आश्रय बराबर देते रहे है।

आत्मचरित

क्या ही अच्छा होता यदि भाई माखनलालजी अपना जीवन चरित लिखा सकते, पर स्वास्थ्य की वर्तमान स्थिति मे यह भी अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। हमारा एक व्यावहारिक सुझाव है कि भाई माखनलालजी ने जो सस्मरण अपने लेखो मे जहा-जहा दिये हो, जो-जो काव्यमय श्रद्धाजलिया अर्पित की हो—उन सबको एक पुस्तक मे इकट्ठा कर दिया जाय। उनके द्वारा लोकमान्य तिलक, माधवराव सप्रे तथा देवीशकर जोशी तथा सैयद अमीरअली मीर, श्री हरदेवनारायणसिंह इत्यादि को अर्पित श्रद्धाजलिया अपना खास महत्त्व रखती हैं। पराधीनता के युग मे भाई माखनलालजी के घर की तलाशिया इतनी बार हुई और उनके द्वारा एकत्रित साहित्यिक सामग्री इतनी नष्ट-भ्रष्ट हो गई कि उनका सग्रहालय नितान्त अधूरा रह गया, फिर भी जो कुछ बचा है, उसके पर्चे-पर्चे की रक्षा हो जानी चाहिए। मध्यप्रदेश की सरकार से हमारी विनम्र प्रार्थना है कि वह इस बचे-खुचे सग्रहालय की सुरक्षा के प्रबन्ध मे भरपूर सहायता दे।

'एक भारतीय आत्मा' का दर्शन-बोध

○ ○

जैनेन्द्रकुमार

सन् २१ का शुरू रहा होगा। महात्मा भगवानदीनजी के पकडे जाने और सजा पाने की खबर आयी। वह मेरे मामा होते थे, और मामी दिल्ली मे मेरी मा के साथ थी। उनके मन मे छटपटाहट थी कि वे नागपुर पहुचे। मेरी मा ने कहा कि जैनेन्द्र, मामी को नागपुर साथ ले जाओ। मै बेकार था ही, सन् २० मे कालेज छूट चुका था और कुछ समझ मे न आता था कि मुझे क्या करना चाहिए। जबलपुर होकर जाना था। वहा माताजी ने श्रीकनछेदीलाल वकील के मकान का पता दिया और फिर 'कर्मवीर' कार्यालय के बारे मे कहा गया कि वहा से नागपुर के सबध मैं काफी जानकारी मिल जाएगी।सयोग की बात कि प० सुन्दरलाल इलाहाबाद से उसी ट्रेन मे जबलपुर के लिए बैठे थे। जबलपुर स्टेशन पर उतरते समय उनका साथ हो गया और यद्यपि मामी के साथ मै गया सीधा कनछेदीलालजी के ही यहा, लेकिन उसके बाद 'कर्मवीर' वाली कोठी मे आसानी से पहुचना हो सका। बस, वहा पहली बार दादा के दर्शन हुए।

बातचीत ? बातचीत के लायक मैं था कहा ? इतना मद और चकित था अपने सम्बन्ध मे, इतना झेपीला और सकुचित कि वहा की बहार देखता ही रह सकता था। 'बहार' जान-बूझकर कह रहा हू। कारण, असहयोग के नये-नये दिन थे और अनेकानेक किशोर युवक स्कूल-कालेज छोडकर आए हुए वहा देशभक्ति की बाते और शायद काम भी करते घूमते-फिरते दिखाई देते थे। कहिए कि उनका क्षेत्र ही वहा था। फिर वहा सुभद्राकुमारी चौहान भी थी जिनकी कविता नई 'कोपल' की तरह तभी फूटकर उदय मे आ रही थी और सभी की सराहना और ध्यानाकर्षण का केन्द्र बनी हुई थी। सुभद्रा के पति श्री लक्ष्मणसिंह चौहान 'कर्मवीर' मे काम करते थे। सुभद्रा की प्रकृति स्फूर्तिशील थी और विशेष दुविधा उसके व्यवहार मे नही थी। इस प्रफुल्लित और उत्साहपूर्ण वातावरण मे मैं जैसे बिलकुल बाहरी और अजनबी था। किसी तरह भी उस वातावरण मे घुल-मिल

सकने के योग्य और समर्थ अपने को न पाता था। इसलिए माखनलालजी के दर्शन से आगे उनसे किसी विशेष वार्तालाप की मुझे याद नही है। इतना याद है कि माखनलालजी मुझे अत्यन्त मनोज्ञ और शुभ-दर्शन प्रतीत हुए थे। मै शुरू से रहन-सहन की दृष्टि से बडे सकरे और एकाकी-से वातावरण मे रहता आया था। इससे सहसा वहा की चहल-पहल और स्फूर्ति-जागृति मे मैं स्तब्ध-सा बना रह गया। असल मे मुझे स्वय मे कोई साहस ही न था इसलिए माखनलालजी के अधिक निकट अथवा प्रिय हो सका यह न कह सकूगा। सुभद्रा से भी एक शब्द की बातचीत तक शायद ही हो सकी। बहुत दूर लगते थे ये लोग, जैसे चोटी पर हो और मै तब तलहटी मे खडा उनकी ओर निगाह ऊचे उठाकर ही देख सकता हूँ लेकिन मानना होगा कि मैने उन शिखरो की तरफ बहुत ही विचित्र आकर्षण अनुभव किया। यह इसलिए कहता हू कि कुछेक दिन बाद हम लोग नागपुर चले गए और वहा खबर मिली कि दादा को गिरफ्तार कर लिया गया है। उसी सिल-सिले मे बाद मे सूचना पायी कि नागपुर स्टेशन होकर ही उन्हे बिलासपुर ले जाया जा रहा है। वही उन पर मुकदमा चलने को था, क्योकि अभियोग वही के भाषण के सम्बन्ध मे था। मैं नही जानता कि क्या कैसे हुआ। लेकिन मैने पाया कि मै भी उसी या अगली ट्रेन मे बैठकर बिलासपुर पहुच गया हू। विशेष परिचय हो सका था या निकटता प्राप्त हुई थी, ऐसी बात नही थी। फिर भी भीतरी कुछ अनिवार्यता रही होगी कि मैं इस तरह बिलासपुर जा पहुचा। अवस्था मेरी सोलह वर्ष से अधिक न होगी और यह अवस्था बडी रोमाटिक सुनी जाती है। कुछ वैसा ही रोमास का-सा आकर्षण रहा हो तो विस्मय नही है।

बिलासपुर जेल मे उन्हे रखा गया। सुभद्रा भी वहा पहुच गई थी और उस नगर मे और आसपास राष्ट्रीय जागरण का स्फुलिंग चेतने मे लग गई थी। मैं मानो स्वयसेवक के रूप मे उसकी सेवा मे नियुक्त था। हम लोग जेल मे जाकर 'दादा' से अकसर मिला करते थे। सजा के बाद तो उनको कैदी का बाना पहना दिया गया। आधे बाहो का बडीनुमा कुर्ता होता था, जिसमे काज-बटन का कोई काम न था। गले मे तार के सहारे पडा तौक और लकडी का एक टिकट और टागो मे घुटन्ना। वह मूर्ति अब भी कभी-कभी आखो मे घूम जाती है। मेरा तब हिन्दी या साहित्य से कोई वास्ता न था। जानता था कि सुभद्रा कवि है और दादा तो 'भारतीय आत्मा' है। लेकिन तब कवि और कविता मेरे लिए ऊपर लोक के तत्त्व थे अर्थात् दोनो ही मुझे अगम थे और उनके प्रति मेरा आश्चर्य इस कारण और अधिक बढकर रह जाता था। सुभद्रा दादा से बिलकुल खुली थी और बेधडक ही नही बल्कि मचलकर उनसे सब तरह की बाते कर लिया करती थी। मैं दूर से साक्षी भर सकता था लेकिन सुभद्रा के माध्यम से इस तरह जैसे मैं भी उनके समीप उपस्थित हो सका। सुभद्रा प्रसिद्ध कवयित्री हो लेकिन उमर मे तो

कुछ मुझसे ज्यादा बडी न थी। कौन जाने एकाध महीनो छोटी ही रही हो। मेरे लिए वह दूर हो लेकिन उसके लिए मै दूर नही था। वह हर तरह बेनियाज़ मुझसे बोल लेती थी और आदेश उपदेश चढा दिया करती थी। इस नाते मैंने देखा कि मेरा भी बन्दपना कुछ-कुछ टूट रहा है और दादा की उपस्थिति मे जुबान हमेशा बन्द ही नही रहती, कभी खुल भी जाती है। उनकी आखो मे तब बडी ममता दीखती थी, जैसे उसमे करुणा भी मिली हो।

काफी बाद सन् अट्ठाईस के दिसम्बर की कलकत्ता काग्रेस के समय दादा ने मुझे निहारते हुए कहा कि जैनेन्द्र, तुम तो लेखक बन निकले हो, लेकिन जब तुम पहली बार मिले थे तो क्या तुम जानते हो कि तुम्हे देखकर बडी ही निराशा हुई थी। ऐसा लगता था कि इस लडके मे तो किसी भी तरह की कोई सम्भावना तक नही है, बल्कि इस बात की चर्चा और दूसरो से भी हो आया करती थी। कहते हुए उनका भाव गद्‌गद था और आगे मेरे लिए उनमे बधाइया उमड रही थी लेकिन मै जानता हू कि पहली भेट के समय भी निराशा मुझसे चाहे उन्हे कितनी ही हुई हो, पर अपनी ममता से वचित उन्होने मुझे नही किया था। बिलासपुर जेल के दफ्तर मे ऐसा हुआ है कि सुभद्रा कुर्सी पर बैठी है, दादा बराबर की कुर्सी पर से उससे बात कर रहे है और मैं फर्श पर दोनो के चरणो के पास बैठा हू। रह-रहकर दादा मुझे स्नेहसिक्त ममत्व से देख लेते है और फिर बात उनकी जारी हो जाती है। स्नेह अलक्ष्य रूप से काम करता है। उसको शब्दो की आवश्यकता नही होती और कौन जानता है कि वह स्नेह-मिश्रित करुणा भाव भीतर-भीतर ही मुझे अभिसचित नही करता गया होगा।

सुभद्रा उनकी कविताए भी जेल से ले आया करती और मुझे दिखाती थी। उन कविताओ से मन मे स्फूर्ति पैदा होती थी। देशभक्ति से वे भरी होती और रस उनमे से छलकता-सा लगता। उनकी प्रसिद्ध कविता 'कोयल बोलो तो' लगभग उसी समय की लिखी हुई है।

उसके बाद महात्मा भगवानदीनजी बैतूल जेल से रिहा हुए। यह सन् बाईस की बात है। माताजी के साथ मैं बैतूल गया था। महात्माजी ने कहा कि क्या करते हो, यही रहकर चलो देश का काम करो। इस तरह माताजी चली आयी और मै पीछे बैतूल ही मे टिका रह गया और काग्रेस का काम करने लगा। इस सम्बन्ध मे मध्यप्रदेश काग्रेस कमेटी के मेम्बर के नाते जब-तब दादा से मिलना हो जाया करता था। इससे पहले काफी समय प० सुन्दरलाल प्रदेश काग्रेस के अध्यक्ष थे और कार्यालय जबलपुर था। इस सब समय मुझे दादा की आत्मीयता और सहानुभूति प्राप्त होती रही और उसका मूल्य भी मालूम होता गया। प० सुन्दरलाल का साथ कोई विशेष प्रिय अनुभव न था। मेरा मन उस शासन के नीचे कुठित-सा रहा करता था। उस समय थोड़ी देर का भी दादा का सान्निध्य

मानो मुझमे हरियाली जगा दिया करता था। मुझे याद नही है कि उस परिस्थिति मे मैने कभी किसी आरोप या ताकीद का भार अनुभव किया हो बल्कि उस उपस्थिति मे ये अह के बन्धन खुलते-से लगते थे। वे दिन मुझे याद है कि कैसे ताकीद भरे अनुशासन का आतक मुझेझुलसाए रहता था और कैसे फिर दादा का सामीप्य मुझे अनायास स्वस्थ बना देता था।

मध्यप्रदेश से फिर दिल्ली लौट आना पडा और दादा के दर्शन यदा-कदा काग्रेस अधिवेशन पर होते थे, विशेष सम्पर्क का लाभ नही मिल पाता था। लेकिन सन् १९२३ मे नागपुर मे झडा सत्याग्रह छिड पडा। तार आया और मैं भी वहा पहुच गया। माखनलालजी उस समिति के सदस्य थे, जो सत्याग्रह का सचालन करती थी। विनोबा उसमे थे,जमनालाल बजाज और महात्मा भगवानदीनजी भी उसमे थे। दादा प्रकाशन-प्रचार का काम सभालते थे और मुझे भी उनके नीचे उसी तरह का काम सौपा गया। तब मै कई हिन्दी-अग्रेजी दैनिको का सवाददाता बन गया था। दादा के कार्य करने की पद्धति मे अनुशासन की कडाई न थी और मुझे नही याद पडता कभी किसी तरह का ऊपरी आदेश मुझे उनसे प्राप्त हुआ हो। उनका स्निग्ध-विश्वस्त भाव ही जैसे मुझे स्फूर्ति देता और काम मे कोई त्रुटि नही होने देता था। पैसे के बारे मे भी कोई किसी ताकीद का सामना मुझे नही करना पडा। अपनी सूझ-बूझ से चलता था और करता था और किसी रोक-टोक का अनुभव नही होता था। मुझमे आत्म-विश्वास की बेहद कमी थी लेकिन जैसे उस काम से मुझमे आत्म-विश्वास जागा और मैं अपने हीन भाव से किंचित् उद्धार पा सका।

सन् १९२३ के इस सत्याग्रह के अन्त मे सन्धि हुई और उससे तत्काल बाद के दिल्ली के स्पेशल काग्रेस अधिवेशन मे दादा आए। उन्होने मुझे खोज निकाला और एकाएक जब उन्हे मैने पहाडी धीरज के स्थान पर देखा तो सहसा मै विश्वास न कर सका। मैं किसी तरह कोई सुपरिचित व्यक्ति न था और जिस-तिस तरह मुझे ढूढ निकालना आसान काम न रहा होगा। तब मुझमे किसी प्रकार साहित्यिक सभावनाए भी नही देखी जा सकती थी। फिर भी दादा ने इसे कष्ट न माना, आतमीयता के सहज व्यवहार पर माना ये उनके स्निग्ध एव मनस्वी व्यक्तित्व के परिचायक है। यही घटना इसके थोडे अरसे बाद भी हुई। भरतपुर साहित्य सम्मेलन से वे दिल्ली पधारे थे। मैं घर लौटता हू तो देखता हू दादा की लिखी पक्तिया है कि, "आया था, तुम मिले नही। चतुरसेनजी के यहा चांदनी चौक ठहरा हू। मिल लेना।" चतुरसेनजी से यह मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ। दादा के कारण चतुरसेनजी ने मुझे प्रेम से अपनाया और शायद वही परिचय था जिसके कारण एक रोज मै स्वय साहित्यिक बन सका। अन्यथा यह सम्भावना मेरे मन मे कभी उदित न हो सकती थी, न कभी यथावश्यक साहस ही मुझमे हो

सकता था।

बाद मे वह यहा साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन मे आए, लेकिन तब तक तो मैं लेखक माना जाने लगा था और वह कथा दूसरी हो जाती है।

दादा कवि है, लेखक भी है। लेकिन वक्ता के रूप मे उनकी छटा सबसे निराली है। हिन्दी मे वैसा उदाहरण मुझे दूसरा नही मिला। साहित्यकार तो ठीक लेकिन सामने उपस्थित सहस्र-सहस्र श्रोताओ को एक ही भाव मे विभोर कर देने की क्षमता कम विस्मयकारी नही है। फिर उसमे वह उत्ताप और उत्तेजना भी नही होती जो मच का उपयोग करनेवाले राजनैतिक नेताओ मे पाया जाता है। दादा के वक्तृत्व से मानो गरमी की जगह प्रकाश मिलता है और उत्तेजन के बजाय उत्कर्ष। प्रयोजन से लदी उनकी वाणी नही होती बल्कि केवल सवेदन से झकृत होती है, उसका स्पदन सहसा आपको छू जाता है और यह अनुभव आपको नही होता कि आप आदाता है जबकि प्रदाता कोई दूसरा है। मैंने हठात् उनको सुनते हुए कई बार यह अनुभव किया है कि एक विशेष प्रकार का तादात्म्य स्थापित हो जाता है जिसका विश्लेषण नही किया जा सकता बल्कि जिसका अगीकार ही किया जा सकता है। उनके काव्य की भी यही खूबी है। उसको सीधे-सादे प्रयोजनबद्ध किसी अभिधार्थ मे समेटा नही जा सकता। उसमे एक झकृति और गूज है जो निरे अर्थ को लाघ जाती है और जिसके आशय को पाने-पकडने मे समीक्षक खोया-खोया-सा रह जाता है, वैसी ताजगी और हरियाली शायद किसी दूसरी वाणी मे नही है और गुण है, लेकिन यह सद्य:स्फूर्ति मौलिकता जैसे माखनलालजी के भाग की विशेषता है। राष्ट्रीय ललकारसे भरी कविताए अवश्य है लेकिन माखनलालजी के हृदय का नवनीत जो उनके विश्व प्रणय भाव के आवेदन-निवेदन मे है, वहा कमाल की नजाकत है।

इस अनुपम मार्दव को उनकी प्राणशक्ति के हठीलेपन की तुलना मे बिठाकर देखे तो विलक्षण मालूम होता है। वैसा नाजुक और सूक्ष्म सवेदन की मूर्च्छना से सयुक्त व्यक्तित्व हिन्दी क्षेत्र मे शायद दूसरा नही मिलेगा। काया स्वल्प है और आकृति के बनाव तक मे वह मृदुता प्रतिबिम्बित देखी जा सकती है। उनका स्वास्थ्य कभी वैसा नही रहा जिसे बलिष्ठ कह सके। सन् १९२१ मे भी उनके साथ दो बक्स दवाई और पथ्य के चला करते थे। तब से कभी वे फर्स्ट क्लास से कम मे बैठे हो ऐसा नही लगता। दवाइयो का अम्बार भी उसी तरह साथ न रहा हो यह भी कम सम्भव है। नजाकत की हद ही मानिए। मान-सभ्रम के बारे मे भी वे उतने ही 'सेन्सेटिव' है। बडे से बडे सत्ता या प्रतिष्ठा प्राप्त के साथ होकर वे उससे उन्नीस रहना नही सह सकते। इसीलिए अपनी सभी प्रतिभा और निपुणता के बावजूद वे आज विशेष सुविधा सम्पन्न परिस्थिति मे नही है। पर इस सब सूक्ष्म सवेदनात्मक वृत्ति के रहते मूल प्राण स्तर पर वे अत्यन्त दृढ और सक्षम है।

सन् १९६५ के अन्त तक किसी भी दूसरे के लिए यह सभव नही हो सकता था कि वैसे दुर्बल स्वास्थ्य को लेकर वह जीता ही न चला जाता बल्कि निरन्तर भर-पूर भाव से देता भी चला जाता। किन्तु माखनलालजी की वदान्यता और कर्मण्यता इस सारे काल मे कभी तनिक कुठित और निष्क्रय नही हो सकी है। उनकी जीवनस्पृहा को कोई बाह्य प्रभाव निस्तेज नही कर सका है। उनकी दान-शीलता अजस्र रहे चली गई है। रोगो ने कितना भी उन्हे घेरा हो, अपग तक कर दिया हो, लेकिन उनके चेहरे के सौम्य-सुभग भाव को कोई कभी नही हर सका है। खिन्नता अपना विकार उस चेहरे पर कभी नही अकित कर पायी है और सदा वहा से औदार्य की आभा ही प्राप्त होती रही है।

आज का युग कुछ बुद्धि के अतिरेक का मालूम होता है। साहित्य मे विशेष-कर काव्य पर उसका फदा कसा-सा दीखता है। वह तत्त्व जिसका माखन-लालजी के साहित्य मे प्राचुर्य और जिसके कारण उसकी सुषमा और हरीतिमा मुरझाकर कभी पीली पडनेवाली नही है, उस तत्त्व की आज कुछ अवमानना दीखने मे आती है। मुझे लगता है कि उसकी प्रतिष्ठा की पुन आवश्यकता है। उस तत्त्व को मै रोमास कहता हू। यथार्थता यदि हमको बाध लेती है तो साहित्य फिर विज्ञान का पूरक नही रहता, वह मानो उसका बन्धुत्व हो जाता है। यथार्थ जितना है सत्य उतना ही नही है। सत्य अनन्त और असीम है। उसकी उपलब्धि मे पुरुषार्थ के लिए सदा ही अवकाश रहनेवाला है, अर्थात् कल्पना भी सत्य के सीमान्त को थाह नही सकती। उस सत्य के प्रति दावेदारी का मनोभाव यथार्थ-वाद मे ही आता है। ऐसे यथार्थ का अयथार्थ और कदर्य तक बन जाता है। सत्य के सधित्सु के लिए, अत रोमाटिक होने से कभी छुटकारा नही है। माखनलाल-जी का जीवन-अनुभव विशाल और बहुमुखी है। लेकिन इस अनुभव ने उनकी दृष्टि को विस्मिति के भाव से वचित नही होने दिया है। इसलिए उनमे और उनकी रचनाओ मे एक आशा और आनन्द का स्वर है। निराशा और कुठा से वह काव्य अथवा कवि कही परास्त और पराजित नही है। ज्ञान के किनारो के पार जानेवाली उत्कठा और अभीप्सा से वह सम्पन्न है। मेरा कहना है कि यथार्थ बोध से घिरे रहनेवाली और रोमाच के स्पर्श से भय खानेवाली कविता आयु से ही पीत और पाडुर दिखने लगती है। वह माखनलालजी से प्रभूत मात्रा मे उस तत्त्व को ग्रहण कर सकती है जो कविता को चिरयौवन दे सके और सदा के लिए उसको मलिन अथवा जर्जर होने से बचा सके।

ऐसे माखनलालजी हो सकते है किसी अपेक्षा और किसी की दृष्टि मे विफल दिखाई दे। सचमुच कुछ ही पहले कही पढने को मिला था कि जिस खपरैल वाले घर मे वह बरसो से रहते आए है, वह उन्हे शायद खाली कर देना पडेगा · मालिक मकान की ऐसी ही नीयत है। यानी उनके पास रहने को अपना मकान

तक नही है। लोग है जिनके पास महल तक है और जाने कितनी-कितनी उनकी आमदनी है। होगे वे लेकिन उनसे विशेष वास्ता अनुभव नही होता है। पर मेरे मन मे, जब भी खडवा के आसपास से गुजरना होता है, उनके दर्शन की लालसा तीव्रता से उठ आती है। इन्दौर गया, बुरहानपुर गया या बम्बई के रास्ते उधर आना या जाना हुआ तो उस लालसा का सवरण मै नही कर पाता हू और कुछ-एक घटे के लिए ही सही, उनका दर्शन और आशीर्वाद पा लेने का प्रयास अवश्य करता हू। बडा अच्छा लगता है और उनकी स्नेहाकुल आखे और वाष्पाकुल वाणी से स्नान पाने जैसा आनन्द मिल जाता है। दादा स्वय बहुत अरसे से विधुर है, लेकिन इस कारण, बल्कि उनमे कौटुम्बिकता और पारिवारिकता का भाव और भी समृद्ध हो गया है। इधर पिछले दो-तीन बार उनके दर्शन के समय पत्नी भी साथ थी, और जब मैने उन्हे कहा कि तुम्हे साहित्यतीर्थ का दर्शन-वदन प्राप्त हो रहा है, तो सचमुच उनके अभ्यन्तर से भी उन्हे ये साक्ष्य प्राप्त होती गई कि ये पुण्यलाभ सचमुच तीर्थ-दर्शन से प्राप्त हो सकनेवाला लाभ है, जो और किसी सासारिक लाभ से अलग मूल्य रखता है। वे शब्द को बहुत स्पष्ट नही बोल पाते थे किन्तु मैं विस्मय मे रह गया यह देखकर कि उस अवस्था मे भी वे आधुनिक मति-गति के कितने घनिष्ठ स्पर्श मे रहते और उस सबके बीच मानसिक दृष्टि से तो स्वय कितने स्वस्थ और अडिग बने रहते है।[1]

---

१. सन् ६५ में लिखा गया लेख।

कवि, वक्ता और देशभक्त

० ०

रामधारीसिह 'दिनकर'

'एक भारतीय आत्मा' की कविता पहले-पहल मैंने सन् १९२० मे 'साप्ताहिक प्रताप' मे पढी थी। तब मेरी उम्र कोई बारह साल की थी। वह कविता लोकमान्य तिलक के निधन पर रची गई थी

वज्रपात पर मिटे हाय, हम,
रोने दो, सहार हुआ,
कसक कलेजे फाड, दुखी,
यह बुरे समय पर वार हुआ।

वह कविता मेरी समझ मे, पूरी की पूरी आयी थी या नही, नही कह सकता। किन्तु, पसन्द मुझे वह इतनी आयी थी कि पूरी की पूरी कविता मुझे कठ हो गई थी और गाव मे मै अकसर उसे लोगो को सुनाया करता था। उस समय मुझे यह जानने की फिक्र नहीं थी कि 'एक भारतीय आत्मा' किस कवि का नाम है, न इसे जानने का मेरे पास कोई सुयोग था। पीछे जब मैं साहित्य मे आया, तब बहुत दिनो के बाद माखनलालजी के बारे मे थोडी जानकारी हासिल हुई। किन्तु उनकी तिलकजी की मृत्यु पर लिखी कविता बराबर मेरे मन मे गूजती रही और जब मैं अपने लिए पत, प्रसाद, महादेवी और निराला से भिन्न राह खोजने लगा, तब इस कविता ने अज्ञात रूप से, मेरी बडी सहायता की। इसीलिए, मेरा विचार है कि साहित्य मे मेरा अगर कोई गुरु हो सकता है तो वे गुरु श्री माखनलालजी है।

नया कवि जब साहित्य मे आता है, तब समकालीन कवियो की रचनाए वह बडे चाव से पढता है। किन्तु, मेरी नजर सबसे अधिक माखनलालजी की कविताओ पर रहती थी। गरचे, पत्रो मे उनकी कविताए काफी लम्बे अन्तराल के बाद छपा करती थी तब भी मुझे सबसे अधिक आनन्द उन्ही की कविताए पढकर होता था।

पगली ! तेरा ठाट किया है रत्नाम्बर परिधान
अपने काबू नही और यह सत्याचरण विधान
उन्मादक मीठे सपने ये, और अधिक मन ठहरे,
साक्षी न हो न्याय मन्दिर मे कालिन्दी की लहरे ।

यह कविता 'मनोरमा' मे छपी थी । और थोडे दिनो बाद 'विशाल भारत' मे यह पढा कि जब प० बनारसीदास चतुर्वेदी ने माखनलालजी को यह सुझाया कि यदि किसी व्यक्ति के सामने साहित्य और राजनीति के क्षेत्र समान रूप से खुले हो तो मेरी समझ मे यह नही आता कि वह साहित्य को छोडकर राजनीति की ओर क्यो जाता है, तब माखनलालजी ने उन्हे ये चार प क्तिया जवाब मे लिखकर भेजी थी

सखे, बता दे, कैसे गाऊ, अमृत मौत का दाम न हो,
जगे एशिया, हिले विश्व पर, राजनीति का नाम न हो ?
व्यथित बासुरी से कहता हू, हीतल हूक मचा दे तू,
अरी गरीबिन, रण-डका बन कसकर चोट लगा दे तू ।

आदमी जो कुछ बनता है, अनेक घटनाओ के कारण बनता है, अनेक प्रभावो के कारण बनता है । मेरा ख़याल है, मेरे भीतर राजनीति-प्रियता की कही जो एक चिनगारी आ गिरी थी, उसे माखनलालजी की कविताओ ने तेज कर दिया । माखनलालजी की कविताएँ केवल कविताएँ नही थी । कविताएँ होती हुई भी वे कविताओ से कुछ बडी चीज थी । वे व्यक्ति की नही, समग्र राष्ट्र की भावनाए थी । एक युग की नही, भारत के पूरे इतिहास की आवाज थी । माखनलालजी केवल अपना ही हृदय नही हिलोरते थे, कविताओ के द्वारा वे सारे देश के हृदय को हिलोर देते थे। जन-जीवन मे कविता कितना बडा आलोडन मचा सकती है, इसके जितने बडे प्रमाण माखनलालजी की कविताओ ने दिए उतने बडे प्रमाण इतिहास मे कभी-कभी ही देखने को मिले होगे । मगर जिन लोगो ने कविता का वह जादू नही देखा, उनकी दृष्टि मे मेरा कथन बकवास ही माना जायेगा । उस समय कविता की शक्ति जिन्दगी से चोट लेने और जिन्दगी पर चोट देने मे परखी जाती थी । किन्तु, अब भारत मे भी यह मान्यता पहुच गयी है कि कवि का धर्म तटस्थता है, कर्म से तटस्थता, विचार से तटस्थता, जीवन से तटस्थता और सम्भव हो तो अर्थ से भी तटस्थता । चूकि जिन्दगी कविता से असर लेने को तैयार नही है, इसलिए कवि उसकी उपेक्षा करेगा, अपनी सारी भक्ति अपने शब्दो को अर्पित करेगा । सौ साल से यूरोप के अनेक श्रेष्ठ कवि इसी साधना मे रहे है और उस साधना के पथ पर उन्होने बलिदान भी किया है । पाठको के साथ अपने सम्बन्ध का बलिदान, कलम से कमाई करने के लोभ का बलिदान, लोकप्रियता और कीर्ति का बलिदान, सुख, शान्ति और कभी-कभी सज्ञा का बलिदान । मगर हम लोग तो

माखनलालजी की परम्परा मे बढे है, यह मानते है कि कविता केवल शुद्ध कविता ही नही होती। बहुत-सी मिश्रित कविताए भी शुद्ध कविताओ से श्रेष्ठ होती है। और जो कविताए केवल अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिए लिखी जाती है, समाज पर प्रभाव उन कविताओ का भी पडता है और जो कवि अपने बारे मे यह सोचता है कि वह काल-मुक्त है, समय के प्रभाव से वह भी मुक्त नही है।

फिर किसी वक्त पत्रो मे इस बात की चर्चा आयी कि माखनलालजी को जेल मे एक बार बैत की सजा मिली थी या मिलनेवाली थी। मित्रो ने उन्हे शायद यह राय दी थी कि आप किसी तरह ननु-नच करके इस सजा से बच जाइये नही तो आपका कोमल शरीर इस दड को सँभाल नही सकेगा। इस पर माखनलालजी ने निम्नलिखित पक्तिया लिखी जो आग की शलाका के समान आज भी चमक रही है

मत व्यर्थ पुकारे शूल-शूल,
कह फूल-फूल, सह फूल-फूल।
हरि को ही-तल मे बन्द किये,
केहरि से कह नख हूल-हूल।
कागो का सुन कर्तव्य-राग,
कोकिल-काकलि को भूल-भूल।
सुरपुर तज दे, आराध्य कहे,
तो चल रौरव के कूल-कूल।

किन्तु, माखनलालजी की प्रतिभा का सबसे अद्भुत चमत्कार सन् १९२९ मे दिखायी पडा जब बोरस्टल जेल मे भगतसिह और यतीन्द्रनाथ दास के साथ अनेक क्रान्तिकारी नवयुवक अनशन कर रहे थे। इन युवको के उपवास के समाचार से सारा देश व्याकुल हो रहा था। उपवास करते किसी को चालीस दिन, किसी को पैतालीस दिन और किसी को पचास दिन हो गए थे। लोग रोज ही अखबारो की प्रतीक्षा अत्यन्त उत्कठा से करते थे और रोज ही जो समाचार आते थे उनसे सरकार की निष्ठुरता और युवको की मर्दानगी और प्रत्यक्ष होती जाती थी। हालत यह थी कि हर देशभक्त भारतवासी के हृदय मे इन क्रान्तिकारियो के लिए वही प्रेम उमड रहा था जो प्रेम अपने सगे-सम्बन्धी के लिए होता है। सभी देशवासी व्याकुल थे, सभी देशवासी बेहाल थे। हवा मे क्रोध और करुणा इस प्रकार एकाकार हो रहे थे मानो बछडे बाघो से जूझ रहे हो और गाये कठघरो मे बन्द रँभा रही हो। ऐसे मे अचानक माखनलालजी की 'मरण त्यौहार' नामक कविता पत्रो मे छपी जिसमे कवि ने कहा था कि नाश ने भारत को चुनौती भेजी है। उस चुनौती का पूरा जवाब न तो चरखावाले दे पाये, न आनन्द-भवनो के सम्राट्, न उस चुनौती का जवाब पाडिचेरी दे सकी। देश

की भट्ठियो से जब जवाब नही चला तो यह काम करने को जहाँ-तहाँ से चिनगारियाँ आगे बढ चली।

नाश ने सागर तरगे चीर कर
गगन से भी कठिन स्वर गभीर कर,
'सधि का सदेश' भेजा है यहाँ,
पूछकर, 'किसके कलेजा है यहाँ ?

० ० ०

'राजपथ की गालियाँ हमने सही
प्रार्थनाएँ, पुस्तके रच कर कही,
श्रेष्ठ है, वह विपिन है अपना अहा!
वध गजेन्द्रो का नही होता जहाँ!
है रिपोर्टो मे कलेजा छप रहा,'
देश के 'आनन्द-भवनो' ने कहा।

० ० ०

'नाश जी! नक्षत्र यदि लाचार है
श्री सुधाकर भी उतरते द्वार है,
तो जलेगी तेल कर निज कामना,
आइये, मिट करेगी सामना।

ये कुछ बानगी के पद है जिन्हे मैने स्मृति से लिखा है। पूरी कविता घटनाओ की लपेट मे लिखी गयी थी और वह इस मान्यता का खडन करती थी कि पत्रकारिता कवित्व के धरातल तक नही पहुच सकती। शासन के अत्याचार, युवको की वीरता और देश की विवशता और बेचैनी से भरी हुई उस कविता ने सारे हिन्दी भाषी भारत का हृदय हिला दिया। मोमबत्ती के बूद-बूद करके गलने के क्रम मे देश को युवको के शनै -शनै मिटने का रूपक दिखायी पडा और जिसने जहाँ भी वह कविता पढी उसकी छाती खौल उठी, उसका हृदय विदीर्ण हो गया, उसकी आखो से आसू निकल पडे। उस कविता का अन्तिम पद अत्यन्त मर्मवेधी था और उसे पढकर आसुओ को रोक रखना सचमुच असम्भव बात थी।

जम्बुकेश, चलो! जहा सहार है,
वन्य-पशुओ का लगा बाजार है,
आज सारी रात कूकेगे वहा,
मोम-दीपो का मरण-त्यौहार है।

लगभग ऐसी ही प्रसिद्धि माखनलालजी की 'कैदी और कोकिल' नामक

कविता की भी हुई थी। अंग्रेजी सल्तनत के खिलाफ भारतवासियो के हृदय मे जो आक्रोश भरा था, मानो वही आक्रोश माखनलालजी की इन पक्तियो मे फूट पडा था

हू मोट खीचता लगा पेट पर जूआ,
खाली करता हू ब्रिटिश अकड का कूआ।

कवि, देशभक्त और वक्ता, इन तीनो रूपो मे माखनलालजी का देश मे जो सम्मान रहा है, वह सम्मान बिरले साहित्यकार को नसीब होता है। देशभक्ति के आवेग ने माखनलालजी को मथा और अपनी कविताओ के जरिये उन्होने सारे देश के हृदय को मथ डाला। अभिनव काव्य-सिद्धान्त की कसौटी पर घिसकर किसी को भी यह कहने की गलती नही करनी चाहिए कि माखनलालजी की कविताएँ इसलिए हीन है क्योकि ये देशभक्ति का प्रचार करती है। वन्देमातरम् कहकर जो क्रान्तिकारी वीर फासी पर झूल गये, उन्होने क्या केवल एक मन्त्र का प्रचार किया था ? अथवा यतीन्द्रनाथ दास की मृत्यु पर जो लोग रो उठे वे क्या देशभक्ति का प्रचार करने को रोये थे ? उगती सभ्यता के कवि भावनाशील और बुझती सभ्यता के कवि बुद्धिपीडित होते है। कविता के भीतर बुद्धिपीडा का जो तूफान उठा है, वह उस सभ्यता से उठा है जिसका क्षयकाल समीप है। यूरोप शिखर से उतरने वाला है इसलिए भावना वहाँ बुद्धि से हार रही है और कवि अपने भीतर के आलोचक से दबता जा रहा है। किन्तु, भारत तो हजार साल के पतन के बाद उत्थान की ओर बढनेवाला है। आध्यात्मिक क्लान्ति की नकल यहाँ चाहे जितनी की जाय, किन्तु वह चीज़ यहाँ जड नही पकडती क्योकि आग धुएँ से नही जनमती, धुआँ ही आग से पैदा होता है।

जिन लोगो ने माखनलालजी का भाषण नही सुना वे हमारे या आपके कहने से यह नही समझ पाएँगे कि हिन्दी मे वक्तृता की कैसी अद्भुत शक्ति है अथवा पुराने जमाने मे नबी और पैगम्बर किस आवेश मे बोलते रहे होगे। पटना के स्वर्गीय डा० सच्चिदानन्द सिन्हा हिन्दी की शक्ति से अपरिचित थे और इसी कारण वे हिन्दी का मखौल उडाया करते थे किन्तु सन् १९३५ मे जब पडित माखनलालजी चतुर्वेदी पटना पधारे, उनका व्याख्यान एक दिन सिन्हा साहब ने भी सुना और भाषण सुनकर वे बिलकुल चकित रह गये। फिर उन्होने माखन-लालजी के सम्मान मे बहुत बडी पार्टी दी और बार-बार उनके व्याख्यान सुनने को वे सभाओ मे सम्मिलित होते रहे। इसी प्रकार, जब माखनलालजी का भाषण मुजफ्फरपुर मे हुआ तब तत्कालीन कौंसिल ऑफ स्टेट के माननीय सदस्य स्वर्गीय श्रीनारायणजी मेहता ने भरी सभा मे यह कहते हुए माखनलालजी के पाँव पकड लिये कि "महाराज, ऐसा भाषण मैंने आज तक नही सुना था।"

यह हिन्दी का भयानक दुर्भाग्य रहा कि माखनलालजी ससद् सदस्य के रूप

मे दिल्ली नही लाये जा सके। अगर वे कुछ वर्ष भी दिल्ली रहे होते तो निश्चय ही उनके मुख से प्रवाहित होनेवाली हिन्दी से हिन्दी-विरोधियो के भाव मे बहुत बडा परिवर्तन आ गया होता। किन्तु, क्रान्ति का स्वभाव है कि वह जिनके कन्धो पर चढकर विजय के द्वार तक पहुचती है, अकसर वह उन्हे अपना आहार बना लेती है। जब वह सत्ता के आसन पर बैठने लगती है, तब वह उन्हे पीछे भी धकेल देती है जिन्होने उसे सत्तासीन करने के लिए जीवन-भर काम किया है। किन्तु माखन-लालजी ने इस उपेक्षा और अन्याय को जिस शालीनता के साथ मौन रहकर सहा है, उससे उनकी देश-भक्ति और भी पुष्ट दिखायी देती है, उनकी ऊचाई कुछ और बडी मालूम होती है।

जब तक स्वतन्त्रता का सग्राम चलता रहा, माखनलालजी उसकी अगली पक्ति मे खडे होकर जूझते रहे, शरीर से जूझते रहे, भावना से जूझते रहे। जब वह सग्राम समाप्त हुआ, बलिदान की परम्परा पर आप से आप एक रोक लग गई। किन्तु यह रोक माखनलालजी के बलिदान पर नही लगी। देशभक्ति का वरण माखनलालजी ने सत्ता के लिए नही, आराध्य के द्वार तक पहुँचने के लिए किया था। इसीलिए सत्ता के छलसे साधक को निराशा नही हुई। विफलताबोध का दश उसे नही लगा। बलिदान खुद मे एक आनन्द है, फकीरी अपने आप मे एक नशा है।

मै बलि का गान सुनाती हू,
प्रभु के पथ की बनकर फकीर,
मा पर हँस-हँस बलि होने मे,
खिच हरी रहे मेरी लकीर।

देश अथवा मानवता का इतिहास सत्ता के लाडलो से नही बनता, वह उन लोगो से रोशनी पाता है जो 'प्रभु के पथ के फकीर' है, जिनके बलिदान की लकीर हमेशा हरी रहती है।

वह मेरी माँ हैं

० ०

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

पडित माखनलाल चतुर्वेदी मेरे जीवन का निर्माण करने वाले व्यक्तियो मे वहुत प्रमुख स्थान रखते है। कदाचित् वह स्वय नही जानते थे कि मैने उनसे क्या पाया क्योकि वह उनसे आगे आने वाली पीढी को स्वभाववश सहज सरक्षण देते रहे है। और सोचते भी नही थे कि उन्होने किस के लिए क्या किया। चतुर्वेदीजी मे साहित्य-सृजन की अद्‌भुत प्रतिभा रही है और खेद की बात है कि उनकी इस प्रतिभा का पूरा उपयोग नही हो पाया। उन्होने आर्थिक सघर्ष, राजनीतिक कार्यो और उदीयमान साहित्यकारो का मार्ग प्रशस्त करने मे अपने जीवन के अधिकाश वे क्षण व्यय कर दिए जिनसे वह साहित्य-सृजन कर सकते थे। उन्होने अपने आप को अनेक उगती हुई प्रतिभाओ मे वितरित कर दिया। पत्रकारिता, राजनीति, समाज-सुधार, राष्ट्रभाषा-प्रसार और नवीन साहित्यिक प्रतिभाओ के लालन-पालन आदि कार्यो से जो समय वह बचा पाते वही साहित्य-सृजन मे लगाते। मैं सोचता हूँ कि मुशी प्रेमचन्द, श्री जयशकर प्रसाद और श्री मैथिलीशरण गुप्त आदि की भाँति उन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन एकमात्र साहित्य-सृजन मे लगाया होता तो हिन्दी साहित्य के भडार को और न जाने कितने रत्न प्राप्त हुए होते। उन्होने अपने यश की बलि देकर साहित्यकारो की एक सेना ही तैयार कर दी जिनकी रचनाओ ने हिन्दी भाषा का मस्तक ऊँचा उठाया है। मुझे भी चतुर्वेदीजी ने ऐसी खुली हवा मे ला बिठाया था, जहाँ मेरा स्वाभाविक विकास हो पाया। उसका यह अर्थ नही कि मेरे निर्माण मे अन्य व्यक्तियो का हाथ नही। मै अनेक हाथो मे पला और पुष्ट हुआ हूँ, लेकिन चतुर्वेदीजी का स्नेह माँ के दूध के समान रहा।

चतुर्वेदीजी की स्नेह-छाया मे रहने का सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ, लेकिन इस सौभाग्य को प्राप्त करने का मैंने प्रयास नही किया था, न मैने कभी उन्हे प्रत्यक्ष देखा था और न उनसे पत्र-व्यवहार ही हुआ था। 'कर्मवीर' के सम्पादक, प्रतिष्ठित राजनीतिक नेता और राष्ट्रीय कवि के नाते उनका नाम था और यही

अप्रत्यक्ष परिचय मेरा उनसे था। मेरी उस समय विशेष हस्ती न थी। अजमेर से प्रकाशित 'त्यागभूमि' पत्रिका के सहायक सम्पादको मे एक मै भी था। हाँ, 'आँखो मे' और 'जादूगरनी' दो काव्य-पुस्तके एव 'स्वर्ण विहान' पद्य-नाटिका, बस ये तीन कृतियाँ मेरी प्रकाशित हुई थी। एक बात अवश्य थी कि मेरा दीवानापन उन दिनो चरम सीमा पर था, भावनाओ का तूफान मेरे प्राणो मे उमडता था। मेरे उन तूफानी दिनो मे चतुर्वेदीजी ने मुझे अपने पास खीच लिया।

बात शायद सन् १६३० की है। सत्याग्रह आन्दोलन मे मै जेल गया था। उससे छूटा ही था कि विदेशी शासन ने 'त्यागभूमि' पत्रिका का प्रकाशन वर्जित कर दिया और मै बेकार हो चुका था। कविताएँ 'वाहवाही' दिला सकती थी, रोटी नही। मेरे साथ मेरी पत्नी भी थी और एक बच्चा, और एक बच्ची की मृत्यु हो चुकी थी। मै किसी भी कीमत पर साहित्यकार का जीवन त्यागना नही चाहता था। भाग्य आजमाने के लिए मैने 'चाँद' के सपादक और स्वामी श्री रामरावसिंह सहगल को सहायक सम्पादक के पद पर बुला लेने के लिए पत्र लिखा, क्यो कि सबसे पहले-पहल उन्होने ही मेरी एक कविता 'चाँद' के प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित की थी। इसलिए समझा था वह मेरे दीवानेपन की कुछ कद्र करते है। खैर, उन्होने मुझे नियुक्ति-पत्र भी भेज दिया लेकिन ठीक उसी दिन मुझे चतुर्वेदीजी का पत्र मिला, जिसमे लिखा था, "सुना है कि 'त्यागभूमि' के बन्द होने से तुम बेकार हो। मेरे पास आ जाओ और मेरे दु ख-सुख मे हिस्सा बँटाओ।" मेरे आश्चर्य की सीमा न थी। मेरा उनसे परिचय न था। मैने उन्हे लिखा भी न था लेकिन उन्होने मुझे बुलाया है। मैं अपने छोटे से परिवार के साथ खण्डवा जा पहुँचा।

चतुर्वेदीजी से मेरी भेट हुई। सारी नयी पीढी उनके चरण छूती लेकिन मैने नही छुए। कुसस्कारी आदमी हूँ, कभी बडो के पाँव नही छुए। गाधीजी से प्रत्यक्ष होने पर उनके भी नही। इसका मनोवैज्ञानिक कारण है जिसे बताने का अवसर यह नही है। खैर, चतुर्वेदीजी ने हाथ पकडकर पलँग पर अपने पास ही बैठा लिया। बोले, "तुम आ गए, मेरे मन की साध पूरी हुई। मै लम्बे अरसे से तुम्हे अपने पास बुलाना चाहता था।" मैंने साश्चर्य पूछा, "क्यो?" उत्तर मिला, 'तुम नही जानते कि इसका कारण है तुम्हारी पुस्तक 'आँखो मे'। मै इन्दौर गया था। वहाँ सर सेठ हुकुमचन्द के शीशमहल मे ठहरा था। रात को नौ बजे के लगभग जब मै बिस्तर पर आराम कर रहा था और सो ही जाना चाहता था कि दो लडके लाडलीप्रसाद सेठी और ईश्वरचन्द्र जैन जो नए-नए कवि बन रहे थे आ धमके और बोले, दादा, आज आपको एक नए कवि की काव्य पुस्तक मे से कुछ सुनाएँगे।' मैने कहा, 'अभी तो मै आराम करना चाहता हूँ।' वे बोले 'आप सुने, चाहे न सुने, हम तो पढेगे।' और लाडलीप्रसाद ने तुम्हारी 'आँखो मे' पुस्तक मे से चार-छ पक्तियाँ पढी और वह चुप हो गया। मैं बिस्तर से उठा और बोला, 'चुप क्यो हो गये! पढो-पढो' उसने

कहा, 'नही, आपके आराम मे बाधा पडती है।' लेकिन मैने उसे पढते रहने को बाध्य किया और एक बैठक मे तुम्हारी पूरी पुस्तक सुन डाली। मैने उन लडको से कहा, 'मै इस लडके को अपने पास बुलाऊँगा। सो देख लो मैने तुम्हे बुला लिया है ।"

मै तो उनकी बाते सुनकर गद्गद् हो गया। इतने महान कवि को मेरी पहली ही काव्य-पुस्तक ने इतना प्रभावित किया यह जानकर मै फूला नही समाया। पुस्तक स्वय मुझे भी पसन्द थी, फिर भी मैने उसे इतना असर करने वाली नही कूता था। उसमे है क्या, केवल प्रेमोद्गार। यह ठीक है कि जो उसमे मेरी कलम से निकला वह मेरे अन्त करण की चीख थी, अकृत्रिम। मैंने चतुर्वेदीजी से कहा, 'आपने मुझे अपने पास बुलाया, यह तो मेरा सौभाग्य है, लेकिन मेरी कविता की जो सराहना आपने की वह मात्र आपकी उदारता है।' वह बोले "नही, प्रेमी बात यह नही है, मैने तुम्हारी अन्य रचनाएँ नही पढी। सिर्फ यही पढी है। तुम्हारी अनुभूति गहन है और अभिव्यक्ति सरल और स्वाभाविक। तुम्हारी बात दिल से निकलती है और दिल मे प्रवेश करती है। हम लोग कविता के प्रत्येक चरण को चमत्कारपूर्ण बनाने का यत्न करते है, लेकिन तुम्हारा चमत्कार यह है कि तुम कोई चमत्कार पैदा करने का यत्न नही करते। कविता तुम्हारे अन्त.करण से झरने के समान प्रस्फुटित होती है। तुम नही जानते कि मैं तुम्हारी पुस्तक का सबसे बडा ग्राहक हूँ। अब तक 'आँखो मे' की लगभग सौ प्रतियाँ मै खरीद चुका हूँ। जो भी नया कवि मेरे पास प्रोत्साहन पाने या मार्गदर्शन के लिए आता है उसे मै तुम्हारी पुस्तक भेट करता हूँ।" उन्हे धन्यवाद देने के लिए मुझे शब्द भी नही सूझ रहे थे। मै चुप रहा। मन मे इस बात का सन्तोष हुआ कि मैं ऐसे स्थान पर आ पहुँचा हूँ जहाँ मेरे पागलपन का अपमान नही होगा बल्कि उसे प्यार मिलेगा।

मैं खण्डवा मे रह गया। अपने पास ही चतुर्वेदीजी ने एक छोटा-सा मकान किराये पर ले दिया। 'कर्मवीर' के सम्पादन का सम्पूर्ण भार मुझ पर डाल दिया। जब वह खण्डवा मे रहते तो अग्रलेख मुझे बोलकर लिखवाते। एक-दो पिप्पणियाँ भी, लेकिन अकसर वह खण्डवा के बाहर ही रहते थे और अग्रलेख, टिप्पणियाँ आदि भी मुझे ही लिखनी होती। वह जहाँ भी रहते वहाँ से उनके सम्बन्ध मे अपने विचार लिखते रहते। इस प्रकार सम्पादन-कला मे मुझे मार्गदर्शन प्राप्त होता रहता। मैं निरा कवि था। 'त्यागभूमि' मे रहते हुए दो-चार लेख और कुछ कहानियाँ लिखी थी लेकिन प्रकाशित एक ही कराई थी। गद्य के नाम पर इतनी ही देन मेरी थी और चतुर्वेदीजी ने 'कर्मवीर' का सारा ही कार्य मुझ पर छोड दिया। मुझे अपनी रुचि, अपनी इच्छा और अपनी योग्यता के अनुसार काम करने दिया। 'कर्मवीर' के सम्पादकीय विभाग मे एकमात्र मै ही था और एक ही प्रबन्धक था और हम दोनो के ऊपर थे चतुर्वेदीजी जो प्रायः बाहर रहते। पत्र नियमानुसार समय पर प्रकाशित होता और उसकी प्रतिष्ठा थी। 'कर्मवीर' मे मैं जो कुछ लिखता

(कविता के अतिरिक्त), किसी पर अपना नाम नही देता था, इसलिए मुझे चिन्ता रहती थी कि उसका स्तर नीचा न रहे। चतुर्वेदीजी ने शुरू के आठ-दस दिन जो अग्रलेख बोलकर मुझे लिखवाए उसने उनकी भाषा-शैली को मेरे मन मे बैठा दिया। कभी कोई पाठक यह नही पहचान पाता था कि क्या चतुर्वेदीजी ने लिखा है और क्या प्रेमी ने। उन्ही दिनो मैने स्वर्गीय श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्बन्ध मे अग्रलेख लिखा था। सयोगवश अच्छा बन गया। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने उस अग्रलेख की प्रशसा मे पडित माखनलालजी चतुर्वेदी को पत्र लिखा जिसमे यह भी लिखा था कि ऐसा लेख आप ही लिख सकते थे। पडितजी ने वह पत्र मुझे दिया और कहा, "देखो, तुम्हारे लेख की बनारसीदासजी ने कितनी प्रशसा की है?" मैने कहा, "इस लेख के नीचे यदि हरिकृष्ण 'प्रेमी' लिखा होता तो क्या बनारसीदासजी प्रशसा के शब्द लिखते?" उन्होने कहा, "शायद न भी लिखते, लेकिन मुझे तो सन्तोष है कि मैने अपना काम सम्हालने के लिए उपयुक्त व्यक्ति को चुना है।"

उन्ही दिनो इन्दौर के उस समय के महाराजा तुकोजीराव को अग्रेजो ने गद्दी से उतारा था। चतुर्वेदीजी कही यात्रा पर थे इसलिए इस घटना पर अग्रलेख मैने लिखा। वह एक विचित्र ही अग्रलेख था। तुकोजीराव ने चाहे कुछ भी कुत्सित कार्य किया हो लेकिन अग्रेजो ने भारतीय नरेशो को सधियो मे सम्राट का मित्र कहा था। क्या यही मित्रता का दर्जा है कि अग्रेज नरेशो को अपनी इच्छा से गद्दी से उतार दे? मुझे इसमे भारत का अपमान जान पडा। अग्रलेख का शीर्षक था। 'सम्राट के मित्र'। सीधे तौर पर यह तो लिखा जा सकता नही था कि सभी नरेश स्वाभिमान की रक्षा के लिए विदेशी शासन से विद्रोह कर दे। इसलिए व्यग्यात्मक शैली मे लेख लिखा गया। लेकिन उससे ध्वनि यही निकलती थी कि अग्रेजो को भारत से बाहर करने मे नरेशो को कदम उठाना चाहिए। अक प्रकाशित होने के दो-तीन दिन बाद मुझे चतुर्वेदीजी का पत्र प्राप्त हुआ जिसमे लिखा था, "तुम्हारा 'सम्राट के मित्र' लेख पढा, तुम्हारी ओजस्वी लेखनी पर गर्व हुआ। लेख किसी क्रातिकारी के हस्ताक्षरो से प्रकाशित करके बँटवाने योग्य है, फिर भी यह मत भूलो कि ऐसे ओजस्वी लेख महँगे पड सकते है। 'कर्मवीर' और तुम्हारा माखनलाल बहुत गरीब है।" पत्र पढकर मुझे सचमुच सकोच हुआ। 'कर्मवीर' पर विदेशी शासन की क्रूर दृष्टि थी इसलिए उससे जमानत माँगने और सम्पादक को जेल भेजने का बहाना ही शासनाधिकारी खोजते रहते थे। मै डरा कि सचमुच ही यह लेख चतुर्वेदीजी के लिए महँगा न पड जाय। ऐसा हुआ नही। जब चतुर्वेदीजी यात्रा से लौटे तो मुझसे बोले, "सच पूछो तो तुम्हारा लेख मुझे बहुत पसन्द आया था। तुमको मैंने जो यह लिखा कि लेख महगा पड सकता है इसका यह अर्थ न लगाना कि मै डरता हूँ या तुम्हे कायर बनाता हूँ। मेरा तात्पर्य सिर्फ इतना है कि हमारी लडाई लम्बी

है। पत्र हमारा शस्त्र है। शत्रु हमारे शस्त्र ही तोड डाले ऐसा अवसर जहाँ तक बने मत दो, फिर भी यह भी सत्य है कि सत्य को प्रकाशित न करे तो पथ से विचलित होगे। तुम्हारा यह लेख मुझे महँगा भी पड जाये तो मुझे पश्चात्ताप न होगा। तुम निर्द्वन्द्व होकर लिखो, तुम्हारी लेखनी मे और भी ओज आए, यह मेरी कामना है। मैंने सत्य को प्रकाशित करने के लिए अनेक बार कीमते चुकाई है, अब भी चुकाने को प्रस्तुत हूँ। मेरी लेखनी बिक नही सकती और तुम भी कभी नही बेचना।"

चतुर्वेदीजी के व्यक्तित्व मे जहाँ ओज रहा है वही शालीनता थी। बार-बार देश के हित मे जेल जाने तथा अन्य प्रकार के कष्ट सहने से उनका शरीर जर्जर हो गया था। खडवा के नागरिक ही क्या, सपूर्ण भारत के लोग उनके तपस्वी व्यक्तित्व का सम्मान करते थे। किन्तु फिर भी खडवा मे कुछ व्यक्ति थे जो उनके व्यक्तित्व को लोगो की नजरो मे गिराने का भरपूर यत्न करने रहते थे। खडवा से ही एक 'साप्ताहिक स्वराज्य' नाम का पत्र प्रकाशित होता था। आगरकरजी उसके सम्पादक थे। उनका चतुर्वेदीजी से व्यक्तिगत विद्वेष था। पहले वह चतुर्वेदीजी के साथ 'कर्मवीर' मे उसी प्रकार थे जिस प्रकार उनके साथ बाद मे मैं रहा। बाद मे उन्हे अलग होना पडा और स्नेह का सम्बन्ध शत्रुता मे बदल गया। खडवा नगर दो दलो मे बॅट गया—एक चतुर्वेदीजी का मौन पुजारी था और एक दल आगरकरजी का मुखर समर्थक। 'स्वराज्य' विदेशी शासन के विरुद्ध उतनी आवाज नही उठाता था जितना विष-वमन चतुर्वेदीजी के सम्बन्ध मे करता था। मैने अनेक बार चतुर्वेदीजी से कहा कि इनकी बातो का उत्तर देना चाहिए। चतुर्वेदीजी केवल मुसकराकर रह जाते और कहते, "तुम अपनी लेखनी को गदा न करना। मुझसे जो कुछ भी सेवा बन पडी है उसके पुरस्कार मे यदि लोगो की नफरत प्राप्त हो तो होने दो, लेकिन हम साहित्यकार के वास्तविक पद से विचलित न हो इसी मे हमारी विजय है।" मेरे जीवन मे भी ऐसे क्षण आए है जब साथियो ने मुझे भरपूर बदनाम करने का यत्न किया है लेकिन मैंने चतुर्वेदीजी से जो मत्र पाया उसी का पालन किया।

यद्यपि चतुर्वेदीजी खडवा नगर के इस गन्दे सघर्ष से अपने आपको अलग रखने का यत्न करते थे, फिर भी उनके प्रशसक कभी-कभी उनके मान की रक्षा करने के लिए कोई कदम उठा ही लेते थे। ऐसी ही एक घटना उन दिनो घटी जब मैं 'कर्मवीर' मे था। गाधीजी हरिजनो के हित मे भारतव्यापी यात्रा पर निकले थे। मध्यप्रदेश के दौरे मे प्रदेश के प्रमुखतम नेताओ के नाते प० रविशकर शुक्ल और प० माखनलाल चतुर्वेदी गाधीजी के साथ थे। गाधीजी का खडवा आने का भी कार्यक्रम था। चतुर्वेदीजी के विरोधी दल ने षड्यत्र किया कि चतुर्वेदीजी को गाधीजी के स्वागत-कार्यक्रम मे भाग लेने का अवसर ही प्राप्त न हो। कुछ

व्यक्तियो ने एक वकील साहब के घर पर अपने ही दल के कुछ व्यक्तियो को जमा करके एक स्वागत-समिति का निर्माण कर लिया। 'स्वराज्य' मे एव बाहर के पत्रो मे इस स्वागत-समिति की घोषणा कर दी गई जिसे पढकर चतुर्वेदीजी के प्रशसक चौके और इसका प्रतिकार करने का निश्चय किया। उन्होने टाउन-हाल मे दूसरी स्वागत-समिति जनता की बनाने के लिए सार्वजनिक सभा बुलाई। मैने इस मामले मे कोई दिलचस्पी नही ली थी। सध्या के समय घर में बैठा हुआ 'कर्मवीर' के लिए लेख लिख रहा था कि श्री अनोखेलाल अरझरे आए और बोले, "अरे, चलते नही हो सभा मे!" मैंने पूछा, "कैसी सभा?" वह बोले, "अजीब आदमी हो, बडे सम्पादक बने फिरते हो और नही जानते आज कैसी सभा है? अरे भाई, गाधीजी के लिए स्वागत-समिति बनानी है। पाखडियो ने षड्यत्र करके और दादा की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उनका अपमान करने का निश्चय किया है। हमे इसे विफल करना है।" खैर, मै उनके साथ हो लिया। जब हम टाउन हाल मे पहुँचे, तो वहाँ का दृश्य ही विचित्र पाया। विरोधी दल के लोग पहले ही वहाँ जम बैठे है और उनके दल का ही एक व्यक्ति अध्यक्ष की कुर्सी पर विराजमान है तथा उन्ही के दल के एक व्यक्ति ने प्रस्ताव रख दिया कि जो स्वागत-समिति बन गई है उसी को जनता स्वीकार करती है। चतुर्वेदीजी के प्रशसको ने भी प्रस्ताव अध्यक्ष को दिया कि जो स्वागत समिति बनी है उसने जनता के अधिकारो की अवहेलना की है और नई स्वागत-समिति बनाई जानी चाहिए। अध्यक्ष महोदय कह रहे है कि जो प्रस्ताव पहले आया है पहले उसी पर बहस होगी। मैं सभा मे भाग न लेने का निश्चय करके ही पहुँचा था। लेकिन वहाँ कि गडगड देखकर मुझसे रहा नही गया। मैंने कहा "सभापति जी ठीककहते है की जो प्रस्ताव पहले आया है उस पर पहले बहस होनी चाहिए। लेकिन प्रस्ताव पर सशोधन उपस्थित करने का अधिकार सभापति जी मानेगे और सशोधन पर पहले बहस कायदे से होनी चाहिए।" सभा की भीड ने भी मेरा अनुमोदन किया और सभापति जी ने मुझे सशोधन पेश करने की अनुमति प्रदान की। मैने मच पर जाकर कहा कि मेरा बहुत सक्षिप्त सशोधनहै, प्रस्नाव मे केवल एक अक्षर बढाने का। मूल प्रस्ताव है, कि जो स्वागत-समिति बनाई गई है उसे खडवा की जनता स्वीकार करती है। मेरा सशोधन है कि स्वीकार शब्द के पहले 'अ' अक्षर बढा दिया जाय। तब प्रस्ताव का रूप होगा जो स्वागत समिति बनाई गई है उसे खडवा की जनता अस्वीकार करती है। सभापति जी और उनके साथी भौचक्के रह गए। लगे कहने कि यह सशोधन नही प्रस्ताव का विरोध है, और विरोध मे आप बाद मे बोल सकते है। लेकिन एकत्रित जन-समूह को मजा आ गया था और लोग चिल्लाए, "नही साहब, एक अक्षर का परिवर्तन सशोधन ही है और इसी पर पहले बहस होनी चाहिए। सभापति जी को राजी होना पड़ा। पहला भाषण मेरा हुआ और ऐसा वातावरण

बना कि फिर विरोधियो के किसी भाषण का प्रभाव नही पडा। सशोधन पास हो गया। सभापति और उनके साथी सभा छोडकर भाग गए। फिर चतुर्वेदीजी के प्रशसको ने सभा चालू रखी और पिछली समिति को अस्वीकार करके नई बनाई गई। इससे यही सिद्ध हुआ कि चतुर्वेदीजी के विरोधी चालाक और वाक्पटु राजनीति के खिलाडी थे लेकिन चतुर्वेदीजी के व्यक्तित्व पर खडवा की जनता की आस्था अटूट थी।

चतुर्वेदीजी के प्रेमियो ने जो विजय प्राप्त की उसे स्वय गाधीजी ने घपले मे डाल दिया। पहली स्वागत-समिति की नामावली और उसका कार्यक्रम गाधीजी के पास पहले ही पहुँच चुका था। दूसरी स्वागत-समिति की नामावली और कार्यक्रम की भी प्राप्ति उन्हे हुई। उन्होने लिखा कि मेरे स्वागत-समारोह के लिए खडवा मे दलबन्दी हो इसे मैं स्वीकार नही करूँगा। यदि दोनो समितियाँ समझौता करके कार्यक्रम बनाकर नही भेजती तो मै खडवा नही आऊँगा। आखिर समझौता हुआ कि जब गाधीजी आएँ और उनका जुलूस निकले तो रोनो दलो का कोई व्यक्ति गाधीजी के साथ न बैठे। गाधीजी जहाँ ठहरे वहाँ किसी दल का व्यक्ति मिलने न जाए। सभा के समय दोनो दलो की समितियो के व्यक्ति मच पर न बैठे। पहले जनता की समिति हार पहनाए और थैली भेट करे, फिर दूसरी। गाधीजी को यह समझौता भेज दिया गया। वह खडवा आए। उनके साथ प० रविशकर शुक्ल, प० माखनलाल चतुर्वेदी और श्री रामनाथ 'सुमन' थे। प० रविशकर शुक्ल और प० माखनलाल चतुर्वेदी ट्रेन से उतरकर पहले ही चल पडे और गाधीजी और श्री रामनाथ 'सुमन' एक खुली कार मे आसीन हुए। मैं सुमनजी से चर्चा कर रहा था कि गाधीजी के चरण छूने वालो का हुजूम कार पर टूट पडा और मैं उसमे पिसा जाने लगा। गाधीजी ने कहा, "क्या जान देने का इरादा है ?" मैंने कहा, "तो क्या करूँ ?" उन्होने मेरा हाथ पकडा और कहा, "बैठ जाओ मेरे पास।" मुझे बैठना पडा। मुझे गाधीजी के पास बैठते देख विरोधी दल के एक प्रतिष्ठित सज्जन और कही जगह न पाकर मडगार्ड पर ही खडे हो गए। मुझे सतोष हुआ कि मैंने ही समझौता नही तोडा, दूसरे दल ने भी तोडा है।

जैसे-तैसे जुलूस से छुटकारा पाकर मै लौटा तो मैंने देखा कि चतुर्वेदीजी अपने बरामदे मे अकेले खडे है। मैंने पास जाकर देखा कि उनकी आँखो से आँसू बह रहे है मानो उनका सम्पूर्ण अस्तित्व आँसू बनकर वह जाना चाहता है। मैंने पूछा, "बात क्या है ?" वह बोले, "गाधीजी को जहाँ ठहराया गया है मैं वहाँ गया लेकिन मुझे द्वार पर रोक दिया गया। जो गाधीजी सारे मध्यप्रदेश मे मुझे साथ लिए फिरे, सभी सभाओ मे मुझे बोलने के लिए कहा, उनसे मेरे अपने खंडवा नगर मे मुझे मिलने की भी अनुमति नही है।"

तब मैंने बताया, "चतुर्वेदीजी, आप तो खंडवा से अनुपस्थित रहे और यहाँ

ापके विरुद्ध षड्यत्र होते रहे।" मैने उन्हे सारा विवरण दिया। तब उनकी ाँखो के आँसू समाप्त हुए और आँखो मे स्वाभाविक चमक आयी। वह बोले, 'प्रेमी, तुमने मेरी लाज रख ली।" मैने कहा, "इसमे मेरा कोई चमत्कार नही है बल्कि मै तो इस मामले मे उदासीन ही था। यह खडवावासियो की आपके प्रति अटूट आस्था है, जिसने विरोधियो की एक न चलने दी। विरोधी लोग लाख कीचड उछाले आप पर, उससे उनका ही मुँह काला होगा।"

सध्या को सभा थी। गाधीजी का स्वागत करने, थैली भेट करने और उनका अभिवचन सुनने के लिए चतुर्वेदीजी उस सभा मे नही गए। उनके नगर मे गाधी जी आएँ और उन्हे मच पर जाकर दो शब्द कहने का भी अधिकार नही हो यह स्थिति वह बर्दाश्त नही कर सकते थे। जब सभा शुरू हुई तो गाधीजी ने आँख दौडाई तो चतुर्वेदीजी को नही पाया। खडवा का कोई व्यक्ति मच पर नही था। उन्होने सुमनजी से पूछा, सुमनजी ने नीचे आकर मुझसे। मैने सक्षेप मे सारी बात बताई। उन्होने गाधीजी से कहा। गाधीजी ने कहा, "नही, नही, साहित्यकार किसी नगर का नही, सारे देश का है। सारे ससार का है। खडवा के मच पर माखनलाल नही होगा, तो कौन होगा ?" प० रविशकर शुक्ल कार लेकर चतुर्वेदी जी के घर गए। उन्हे लेकर आए। उन्हे मच पर बैठाया। उनका भाषण भी हुआ। मैने देखा कि अपने स्नेह, तप, त्याग और सेवा के बल पर ही चतुर्वेदीजी ने जन-मानस पर अपना राज्य स्थापित किया है। उनकी वाणी मे जादू है। जादू इसलिए है कि वह नही बोलती, उनके अन्त करण की अनुभूति बोलती है। जितनी सबल वाणी उन्हे प्राप्त हुई उन्हे उतना ही सबल स्वास्थ्य प्राप्त होता तो साहित्यकार के नाते जो महान् व्यक्तित्व उन्हे प्राप्त हुआ उससे भी ऊँचा राजनीति के क्षेत्र मे प्राप्त हुआ होता। जिस शासन ने उनके जीवन के सध्याकाल मे उनका सम्मान-समारोह किया, उस शासन की बागडोर उनके हाथ मे होती।

माखनलालजी ने मुझे अपने पास बुलाया और बुलाने के बाद मेरे सम्बन्ध मे एक सपना भी पाला कि कोई पुत्र नही, बहन, भाई, भतीजे-भतीजियाँ है और मैं एक पुत्र का कर्तव्य निभाऊँ। उनका उत्तराधिकारी एक साहित्यकार ही हो जिसका दिल भी उनके जैसा हो। वह 'कर्मवीर' को सम्हाल ले और उनकी परपरा का पालन करे। मै अच्छा कवि हो सकता हूँ, अच्छा नाटककार हो सकता हूँ और अच्छा आदमी भी हो सकता हूँ लेकिन अच्छा पुत्र नही हूँ। किसी पिता का पुत्र बनकर उसकी सम्पत्ति का दान लेना मुझे कभी रुचा नही। एक बार मुशी प्रेमचद ने भी, जब उनके बच्चे छोटे थे, यत्न किया था कि उनका प्रेस और प्रकाशनादि कार्य मे सम्हाल लूँ, लेकिन मैं ऐसा नही कर पाया। पिता की सरपरस्ती से मेरा मेल नही मिलता लेकिन माँ के स्नेह को प्राप्त करने की लालसा मेरे हृदय मे सदा रही है क्योकि मैं जब ढाई वर्ष का था तभी मेरी माँ का देहान्त हो गया था। मै

माँ की पूर्ति चाहता रहा हूँ और माखनलालजी मे मैने माँ को ही पाया है।

माँ की स्नेह-छाया मे सदा बने रहना मेरे भाग्य मे नही है और मुझे खडवा छोडना पडा। लाहौर से 'भारती' मासिक पत्रिका प्रकाशित करने की योजना बनी और श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' को लाहौर जाकर उसका सम्पादन सम्हालना था किन्तु सारी व्यवस्थाएँ हो जाने पर मिलिन्दजी बीमार हो गए और उन्होने मुझे आदेश दिया कि तुम लाहौर जाकर इस कार्य को सम्हालो। मैंने उनका आदेश चतुर्वेदीजी के सामने रख दिया। उन्होने मिलिन्दजी का पत्र पढा। वह विचार मे डूब गए और उनकी आँखो मे आँसू भी छलके। मैंने कहा, "आप आज्ञा नही देगे तो मै नही जाऊँगा।" उन्होने कहा,' प्रेमी, तुम्हारे प्रति मेरी ममता और मोह बहुत बढ गया है और जो कुछ मैंने तुम्हारे सबध मे मन मे सोच रखा था वह मै जबान पर नही लाया। मेरा सब कुछ तुम्हारा है। तुम वेतन-भोगी नौकर नही, मेरी सतान हो। तुम्हे छोडना · इस प्रकार की कल्पना भी मैंने नही की थी।" मैंने कहा, "तो जाने दीजिए। पजाब से 'भारती' प्रकाशित नही होगी क्योकि जो लोग उसके प्रकाशन का आर्थिक भार सम्हालने को तैयार हुए थे, उनका आग्रह था कि सम्पादन मैं और मिलिन्दजी ही सम्हाले। इससे पजाब मे, जहाँ हिन्दी भाषा का प्रसार बहुत कम है, हिन्दी की जो ज्योति जगाने का सपना कुछ लोगो ने पाला है वह पूरा नही होगा। चतुर्वेदीजी बोले, "प्रेमी, राष्ट्र की और राष्ट्रभाषा की सेवा के लिए ही हम साँस ले रहे है और अपने व्रत के लिए हमे कुर्बानियाँ देनी होगी। मैं तुम्हे जाने की प्रेरणा दूंगा। मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि तुम्हारा स्वतन्त्र विकास भी होना चाहिए। तुम्हे दूसरो की छाया मे रहकर जो सार-सम्हाल चाहिए थी वह तुम पा सके हो। अब तुम पूर्ण जवान हो अपनी प्रतिभा और शक्ति का खुलकर उपयोग करो। यह आवश्यक है अन्यथा तुम ससार को जो देने आए हो न दे पाओगे। मुझे अपनी और 'कर्मवीर' की चिन्ता है लेकिन 'कर्मवीर' तुम्हारे भविष्य का घेरा बन जाए यह भी ठीक नही है। तुम जाओ, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।"

मैं लाहौर चला गया और पजाब का ही होकर रह गया। चतुर्वेदीजी ने अपने स्नेह की छाया तब भी मुझ पर बनाए रखी। वह लाहौर आते रहे, केवल मेरे लिए आते रहे। प्रारम्भ मे पजाब मे जमने मे मुझे बहुत कठिनाइयाँ आयी लेकिन उन्होने मेरा परिचय श्री पुरुषोत्तमदास टडन से कराया और मेरे सिर पर उनका वरद हस्त रखवाया जिससे मेरे अनेक सकट टले और धीरे-धीरे पजाब ने मुझे समझा और मैने पजाब को, और कुछ ही वर्षों मे एक नये ही प्रेमी का जन्म हुआ जिसे यश भी प्राप्त हुआ और लोगो का प्यार भी।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने जितना साहित्य का सृजन किया है उससे अधिक साहित्यकारो का। केवल मध्यप्रदेश मे ही नही, सारे भारत मे साहित्यकारो की

एक पूरी पीढी चतुर्वेदीजी के आशीर्वाद से पुष्ट हुई है। यह उनकी बहुत बडी देन है। मै चतुर्वेदीजी का यह स्वभाव गाँठ बाँधकर साथ लेकर पजाब पहुँचा था। वहाँ मेरे आस-पास हिन्दी भाषा मे साहित्य-सृजन करनेकी साध रखने की तमन्ना रखनेवाली नई पीढी की भीड लगी रहने लगी। इन्ही लोगो मे श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' भी है जिन्होने मूलत उर्दू के लेखक होते हुए भी मेरे साहचर्य से हिन्दी भाषा पर अधिकार प्राप्त किया। पडित माखनलाल चतुर्वेदी प्रतिभा को परखने मे जौहरी है। जब पहली बार वह मेरे पास लाहौर आए तब अश्क जी मेरे पास ही रहते थे। उन्होने अश्कजी को काफी प्रोत्साहित किया और भविष्य मे भी उनमे अपनी दिलचस्पी बनाए रखी। मैंने उनकी परम्परा का पालन किया। जो कुछ मैंने उनसे पाया उसे मैने खुलकर पजाब मे बिखेरा।

चतुर्वेदीजी की मुझमे दिलचस्पी कभी समाप्त नही हुई। हम एक-दूसरे से मीलो दूर रहे लेकिन हृदय दूर न हो पाए। वह मेरी इसी प्रकार खोज-खबर लेते रहे जैसे कोई माँ अपनी सतान की लेती है।

मध्यप्रदेश और माखनलालजी

० ०

सेठ गोविन्ददास

सगीतकार की कुशलता की कसौटी मात्र वीणा के स्वरो को साधने और उन पर सिद्धहस्तता प्राप्त करने मे नही है, अपितु उसके मधुर कण्ठ मे भी है। जिसका वीणा और वाणी दोनो पर ही अधिकार हो ऐसा सगीतकार ही सफल और श्रेष्ठ सगीतज्ञ माना जायगा।

पडित माखनलाल चतुर्वेदी मध्यप्रदेश की उन विभूतियो मे थे जिन्हे मेरे उक्त कथन के अनुरूप वीणा और बाणी दोनो का सफल साधक और सगीतज्ञ कहा जा सकता है। उनके व्यक्तित्व मे साहित्य और राजनीति दोनो ही विद्याओ का उसके समग्र रूप मे सम्मिलन हुआ है। वे जितने उच्चकोटि के साहित्यकार थे उतने ही ऊँचे स्वतत्रता-सग्राम के सेनानी। साहित्य और राजनीति दोनो का ही उत्कृष्ट रूप हमे उनमे देखने को मिलता है।

जिस समय की राजनीति मे प० माखनलाल चतुर्वेदी का प्रवेश हुआ वह प्रधानतया राजनीति न होकर देशभक्ति थी, जिसे हम देशभक्ति-प्रेरित राजनीति कह सकते है और इस दृष्टि से यदि हम लोकमान्य तिलक, महात्मा गाधी, पडित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, देशबन्धु दास और पडित मोतीलाल नेहरू आदि को किसी राजनैतिक पद पर न रहने पर भी राजनैतिक क्षेत्र के उत्कृष्ट नेता मान सकते हैं तो प० माखनलाल चतुर्वेदी को भी।

सन् १६१८ की बात है। देश के हर क्षेत्र मे नवजागरण की लहर पर लहर उठ रही थी। अग्रेज़ी भाषा मे इस युग को 'रिनेसा' का युग कहा जा सकता है। जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड के बाद देश अग्रेजी राज्य की समाप्ति के लिए कटिबद्ध हो गया था। देश की सबसे महत्त्व की राजनैतिक सस्था काग्रेस ने जलियावाला बाग के हत्याकाण्ड पर एक जाँच कमेटी नियुक्त की थी और भारत सरकार ने श्री हण्टर के नेतृत्व मे एक दूसरी कमेटी। जो स्वाभाविक बात होनी थी वही हुई। काग्रेस जाच कमेटी ने इस हत्याकाण्ड के सच्चे रूपो को देश के

सम्मुख उपस्थित किया और हण्टर कमेटी ने सारे हत्याकाण्ड की लीपा-पोती की। काग्रेस जाच कमेटी मे सबसे अधिक भाग लिया था प० मोतीलाल नेहरू ने और काग्रेस अधिवेशन होनेवाला था पजाब के अमृतसर मे। इस अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये थे पडित मोतीलाल नेहरू और इस अधिवेशन के बाद से ही काग्रेस बढ चली कुछ न कुछ क्रियात्मक कार्य की ओर। इसके तीन वर्ष पूर्व ही महात्मा गाधी अपने सत्याग्रह के सफल प्रयोग कर अफ्रीका से लौटे थे और देश के नेतृत्व की बागडोर धीरे-धीरे उनके हाथो मे जा रही थी।

ऐसे ही समय जबलपुर से एक साप्ताहिक पत्र 'कर्मवीर' निकालने की योजना बनी। इस योजना मे उस काल के जबलपुर के राजनैतिक क्षेत्र मे रुचि रखनेवाले सभी प्रमुख महानुभावो का योग था। ये थे प० विष्णुदत्त शुक्ल, दीवान बहादुर सेठ वल्लभदास, व्यौहार रघुवीरसिंह और श्री गोविन्दलाल पुरोहित। इसके थोडे दिन पहले ही जबलपुर मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ था और उस अधिवेशन मे अनेक वर्षो तक अज्ञातवास मे रहने के बाद प० माधवराव सप्रे आये थे। 'कर्मवीर' प्रकाशन की यह योजना सप्रेजी को सौपी गई और सप्रेजी इस पत्र के सपादन के लिए खण्डवा से प० माखनलाल चतुर्वेदी को लाये।

पुराने मध्यप्रदेश की राजधानी नागपुर मे थी। और नागपुर एव विदर्भ मे नरम और गरम दल के सगठनो का काफी जोर रहा था। अमरावती के श्री मुधोलकर काग्रेस के अध्यक्ष भी हो चुके थे, परन्तु असहयोग आन्दोलन के पूर्व की आधुनिक काल की राजनीति नागपुर और विदर्भ तक ही सीमित थी। उसका कोई प्रभाव जबलपुर या वर्तमान महाकोशल मे नही था। यह समूचा क्षेत्र राजनैतिक दृष्टि से सुप्त क्षेत्र कहा जा सकता है। कलचुरियो के त्रिपुरी साम्राज्य और गोडो के गढा-मण्डला राज्य को कई शताब्दिया बीत चुकी थी। उनका कोई प्रभाव इस समय इस क्षेत्र पर नही रह गया था। असहयोग आन्दोलन के पूर्व के कुछ वर्षो मे इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे प्रमुख रूप से योग दिया 'कर्मवीर' ने।

परन्तु एक बात नही भुलाई जा सकती। जबलपुर के चारो ओर के क्षेत्र की यह आधुनिक जागृति साहित्यिक क्षेत्र से आरम्भ हुई थी। यह बात सन् १९१५ की है। इस वर्ष श्री 'शारदा भवन' नामक एक छोटे से पुस्तकालय की स्थापना हुई। शनै -शनैः इसी सस्था के द्वारा उस समय की हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओ मे से एक पत्रिका 'श्री शारदा' का प्रकाशन हुआ और 'शारदा पुस्तक-माला' के नाम से एक पुस्तक-माला निकली। इस सस्था मे एक व्याख्यान माला भी आरम्भ हुई और आगे चलकर इस सस्था ने राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर का रूप लिया। यह सस्था मेरे द्वारा ही सस्थापित हुई थी। सस्था के वार्षिकोत्सव देश

के अनेक गण्यमान्य व्यक्तियो के सभापतित्व मे हुए जिनमे प्रमुख थे प० मदन-मोहन मालवीय, स्वामी श्रद्धानद, डॉ० भगवानदास आदि। शारदा भवन पुस्त-कालय और 'कर्मवीर', इनके चारो ओर जबलपुर और जबलपुर के चारो तरफ का आधुनिक साहित्यिक और राजनैतिक जीवन पनपा और इस प्रकार दोनो एक-दूसरे के पूरक बन गये। यही से माखनलालजी का और मेरा सपर्क भी हुआ। उसी समय से मैने देखा माखनलालजी की साहित्य-प्रतिभा और राज-नैतिक सूझबूझ एव साहस को। मानव सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना अपनी ज्ञान-शक्ति के कारण है। ज्ञानशक्ति का प्रस्फुटन प्रधानतया वाणी और लेखनी द्वारा होता है। माखनलालजी की लेखनी का माधुर्य और ओज उनकी वाणी द्वारा भी उतना ही प्रकट होता था। वे जैसे कुशल लेखक है वैसे ही वक्ता भी। 'कर्मवीर' मे उनके लेख और सार्वजनिक सभाओ मे उनके भाषण दोनो ने जबलपुर और जबलपुर के चारो ओर के क्षेत्र को स्फूर्ति देना आरम्भ किया। फिर उनकी देशभक्ति केवल लेखन और भाषण तक ही सीमित नही रही। उन्होने देश की स्वाधीनता के लिए सघर्ष किया और देश के स्वातत्रय-आन्दोलन मे सक्रिय भाग भी लिया। सन् १६२० के असहयोग आन्दोलन मे मध्यप्रदेश मे कोई व्यापक दमन नही हुआ। मध्यप्रदेश मे केवल तीन ही प्रधान व्यक्ति गिरफ्तार किये गये—प० माखनलाल चतुर्वेदी, प० सुन्दरलाल और महात्मा भगवान दीन। सुन्दरलालजी प्रयाग से आये थे, भगवानदीन जी नागपुर के थे। वर्तमान महाकोशल के केवल माखनलालजी को यह गौरव प्राप्त हुआ। सन् १६३० के सत्याग्रह मे समूचे मध्यप्रदेश मे जो सबसे पहले पाच व्यक्ति गिरफ्तार हुए थे। वे थे पडित माखनलाल चतुर्वेदी, प० रविशकर शुक्ल, प० द्वारकाप्रसाद मिश्र, श्री विष्णुदयाल भार्गव और मैं। सन् १६२६ के चुनाव मे जब अनेक प्रमुख काग्रेसवादियो ने काग्रेस को छोड स्वतत्र-काग्रेस दल के नाम से चुनाव लडा जिसमे प० रविशकर शुक्ल भी थे तब काग्रेस को महाकोशल मे जिताने का श्रेय बहुत दूर तक प० माखनलाल चतुर्वेदी को है। कॉंग्रेस सगठन मे चतुर्वेदीजी एक ऐसे व्यक्ति है जिन्होने कभी कोई गौरवपूर्ण पद प्राप्त न करते हुए भी आरभ से अत तक काग्रेस को नही छोडा। माखनलालजी मे तेजस्विता कितनी है इस सबध मे मुझे एक व्यक्तिगत घटना का स्मरण हो आता है। सन् १६२० मे मैं मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष चुना गया। उस समय तक मेरी छोटी-मोटी साहित्यिक सेवाए ही थी। चतुर्वेदीजी को यह चुनाव बिलकुल गलत जान पडा, जो चाहे, उस समय मुझे ठीक न जान पडा हो पर आज सर्वथा ठीक जान पडता है। चतुर्वेदीजी ने इस बात की परवाह न करकि जो 'कर्मवीर' पत्र मेरे ताऊ वल्लभदासजी के हाथ मे है, मेरा पत्र मे खुलकर विरोध किया।

इस प्रकार चतुर्वेदी जी स्वतत्रता सग्राम के, और जिस स्वतत्रता सग्राम का सचालन कांग्रेस ने किया, उसके मध्यप्रदेश के प्रधान सचालको मे से तो रहे ही है, परन्तु जो उपलब्धि उन्हे सदा अमर रखेगी वह है उनका उत्कृष्ट कोटि का साहित्य। वे प्रधान रूप से कवि है। उनकी कविता मे स्वतत्रता की भावनाए माधुर्य और ओज दोनो महान् गुणो के साथ जिस प्रकार प्रस्फुटित हुई है वे आधुनिक काल के कदाचित् किसी कवि की रचनाओ मे नही। इन कविताओ का सृजन वे 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से करते रहे है जो इन कविताओ के सृजन के लिए उपयुक्त उपनाम है। सचमुच ही इन कविताओ से आधुनिक काल की भारतीय आत्मा का अपूर्व पोषण हुआ। उनके काव्य-सग्रह 'हिम-तरगिनी पर स्वतत्र भारत की साहित्य अकादमी का पहला पुरस्कार दिया गया। वे जैसे ओजपूर्ण पद्य-रचयिता थे वैसे ही गद्य साहित्य के सृजक। उनके गद्य साहित्य मे भी पद्य का-सा प्रभाव और प्रवाह रहता है। उनके गद्य लेखो का सग्रह 'साहित्य देवता' के नाम से प्रकाशित हुआ है, जो साहित्य की एक अमूल्य निधि है। जिस नाटक मे पद्य और गद्य का सुन्दर मिश्रण होता है वह नाटक भी उनकी लेखनी से उद्भूत हुआ है। आधुनिक काल के नाट्य साहित्य मे वह पहला नाटक है जो सफलतापूर्वक अनेक स्थानो पर खेला भी गया। सभी जानते है इस नाटक का नाम 'कृष्णार्जुन युद्ध' है। खेद की बात यही है कि चतुर्वेदीजी ने एक ही नाटक लिखा। मुझे मालूम हुआ है कि अभी उनका बहुत-सा साहित्य अप्रकाशित पडा है। यह सबसे अधिक आवश्यक है कि उनका समूचा साहित्य प्रकाशित हो।

चतुर्वेदीजी अपनी साहित्यिक सेवाओ के साथ मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन और अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद को सुशोभित कर चुके थे।

इसके बाद भारत सरकार ने उन्हे पद्मभूषण अलकार से अलकृत कर तथा सागर विश्वविद्यालय ने उन्हे डॉक्टरेट देकर एव मध्यप्रदेश सरकार ने उनका शासकीय सम्मान कर उचित कार्य किये है, इस अलकार और इस डॉक्टरेट एव सम्मान से उल्टे भारत सरकार, सागर विश्वविद्यालय और मध्यप्रदेश सरकार समादृत हुई है। (राजभाषा विधेयक के विरोध मे चतुर्वेदाजी ने इसे लौटा दिया था।)

श्रद्धांजलि और उलाहना

० ०

सीताचरण दीक्षित

पडित माखनलाल चतुर्वेदी के उन शब्दो की छाप आज भी मेरे हृदय पर ताजी है जो उन्होने विद्यार्थियो को सरकारी शालाएँ छोडकर राष्ट्रीय शालाओ मे जाने की प्रेरणा देते हुए सन् १६२१ के आरम्भ मे भडारा की एक सार्वजनिक सभा मे कहे थे। मै उस समय तेरह-चौदह वर्ष का था, और मेरे मन पर जिन चार-पाँच नेताओ का सबसे अधिक प्रभाव पडा था उनमे से चतुर्वेदीजी का स्नेह पात्र बन गया, और बाद मे उनके अन्य भाइयो की तरह मै भी उन्हे 'दादा' कहने लगा। यदि आज मै यह कहूँ कि चतुर्वेदीजी मेरे दादा है, तो शायद उनके सैकडो अनुज भी आगे बढकर अपना-अपना दावा पेश करने लगेगे। परन्तु इसमे मुझे जरा भी शका नही कि 'दादा' शब्द का जितना सार्थक प्रयोग मैने चतुर्वेदीजी के लिए किया है उतना अपने सगे भाइयो के अतिरिक्त और किसी के लिए नही किया। इसमे मेरी कोई विशेषता नही है, सारा श्रेय दादा को है, क्योकि उन्होने मुझे इतना स्नेह प्रदान किया कि मै चाहता तो भी उनसे दूर नही जा सकता था। आज मै सोचता हूँ कि हमारे बीच कौन-सी चीज ऐसी थी जो दोनो को इतना निकट खीच ले गई और फिर वर्षो तक न मिलने पर भी, उस सम्बन्ध को अक्षुण्ण रख सकी तो मेरा ध्यान दादा की कविता और उनके साहित्य की ओर नही, उनकी सर्वतोमुखी देश-भक्ति की ओर जाता है, जिसमे अपने आपको निसार कर देने की भावना कूट-कूटकर भरी है। शायद उन्होने मुझे भी अपने ही पथ का पथिक पाया हो। उनके काव्य और साहित्य के लिए मेरे मन मे बहुत आदर है। एक बार मैने उनसे ही कहा था—और तोषामोदन का आरोप तो मेरे मित्र या अमित्र कोई भी मुझ पर नही कर सकते—कि दादा, यदि आप अपने जीवन को अधिक व्यवस्थित करते और हिन्दी के पत्रकारो तथा साहित्यसेवियो का सहारा मिलता तो हिन्दी को भी एक वैसा ही गौरवशाली कवि उपलब्ध हो गया होता, जैसा कि अवतार बगला मे हुआ। परन्तु मेरे लिए उनकी सबसे अच्छी कविता

'फूल की चाह' ही रही। आज भी मैं उसकी पक्तियाँ याद करता हूँ तो मुग्ध हो जाता हूँ और उसमे मुझे दादा के सारे अरमान समाये हुए मालूम होते है। उसमे दादा है, वह दादा मे है, उनके सारे जीवन का, जैसा कि मैने उसे दूर और पास से देखा है, अध्ययन उस छोटी-सी कविता की छ पक्तियो को सामने रखकर किया जा सकता है। जो उसमे आत्म-बलिदान की भावना मात्र देखते है वे उसके ऊपरी अर्थ की चर्चा करते है। मुझे उसमे आत्मबल का सरोवर दिखाई देता है। एक जमाने मे कितने लोग उसे गाते हुए ब्रिटिश राज्य की पुलिस की सगीनो के सामने सीना तान कर खडे हो जाते थे।

एक बार मै दादा से मिलने हिरनखेडा गया था, जहाँ उनके अनुज रामदयाल जी गुरुकुल की पद्धति पर एक विद्या मन्दिर चलाते थे। गया तो था एक-दो दिन के लिए ही, परन्तु वहाँ पहुँचने के बाद दादा और सारे परिवार के स्नेह मे ऐसा बध गया कि लौटने को जी ही नही चाहा। कई दिन बना रहा। दादा के प्रेम ने सारे परिवार पर ऐसा रग चढाया था मानो प्रेम का फाग खेला गया हो। सबकी बातो मे तो प्रेम की सुधा थी ही, सारा जीवन उसमे पग पाया था। पचास-साठ विद्यार्थी, अतिथि और घर के लोग सब मिलकर सत्तर-अस्सी लोगो का वह परिवार था। दीदी जिस तरह दादा, मझले 'बीर' और ब्रज की बहन थी, उसी तरह हमारी भी। विद्यार्थी तो उनमे साक्षात् माता के दर्शन करते थे।

निश्चय ही यह सब दादा की प्रसादी थी। वे दिन मे पाँच-सात बार मेरी याद करते और मै जब उनसे बात करता, मुझे लगता कि वन-राजि के आश्रयभूत इस विद्याश्रम मे जाने पर दादा के सब सुषुप्त भाव जागृत हो गए है और वे बन्धन तोडकर निकल भागना चाहते है। परन्तु उनकी कोई बात ऐसी न होती थी जिसमे देश-प्रेम की स्वाभाविकता और देश की स्वतन्त्रता तथा उन्नति के लिए छटपटाहट न हो। उनकी कुछ कविताएँ जो बाद मे बहुत प्रसिद्ध हुईं, मैने पहले-पहल उनके ही मुँह से हिरनखेडा मे सुनी थी।

एक दिन दादा ने मुझसे कहा, "तुमने भी तो कवि का दिल पाया है, लिखते भी हो, आज देश-प्रेम से विरहित कोई कविता सार्थक मानी जा सकती है ?"

मैने प्रतिप्रश्न किया, "यदि ऐसा हो तो सुमित्रानन्दन पत की अधिकतर कविताएँ निरर्थक न हो जायेगी ?"

"तुम समझते हो, पत की कविता मे देश-प्रेम नही है ?" दादा ने पूछा और कहा, "पत छायावादी कवि है। उनकी कविताओ के साथ देश-प्रेम छाया के समान चलता है। उनकी कविताएँ पढकर कितने लोगो को अपनी भाषा, अपनी सस्कृति, अपनी प्रकृति, अपनी कविता पर अभिमान हुआ, यह पूछने से जान सकोगे। यह देशाभिमान का ही 'छायावादी' रूप है।"

उन्होने उसी समय पत की पुस्तक 'पल्लव' मँगाई और उसमे से एक के बाद

एक हिस्से पढकर सुनाने लगे। बीच-बीच मे वे मीमासा करते जाते थे और मुझसे पूछते जाते थे, "इस अश को पढकर कोई भी सहृदय व्यक्ति अपने देश को प्यार किये बिना रह सकता है?" उस दिन मैने पहली बार जाना कि पत भी देशभक्त कवि है। पत की भाषा को लेकर उन्होने कहा, "केवल इतनी ही बात ले ली जाये तो भी पत देशभक्तो मे अग्रणी माने जायेगे। कुछ लोगो का असर प्रत्यक्ष होता है, कुछ का परोक्ष। पन्त परोक्ष रूप से असर करते है। उनकी भाषा प्रेरणादायी और उसकी असाधारणता मे जो स्वाभाविकता है वह हिन्दी का गौरव बढाती है। भाषा का गौरव देश का ही गौरव है। इतना मीठा कवि देशभक्त न हो यह हो ही नही सकता। मेरे मन मे कवि की व्याख्या ही बदल गई।

मैने बात आगे चलाई, "इसका उलटा भी आप सही मानते है? हरेक देश-भक्त भी कवि होता है?"

उन्होने उत्तर दिया, "मनुष्य अपने जीवन से भी कवि हो सकता है। जो प्रेम, उदारता, करुणा, सेवा, तप आदि आदर्शों का जीवन व्यतीत करता है वह अवश्य कवि है। ईश्वर को ऋषियो ने कवि कहा है। इसीलिए न कि हम उसमे सब सद्-गुणो और आदर्शो की कल्पना करते है? वह कविता लिखता है, ऐसा तो किसी ने कही कहा। जो भी आदर्शमय जीवन व्यतीत करता है, उससे पैदा हुए कष्टो मे आनन्द से नाचने लगता है, उन कष्टो को सिद्धि का प्रतीक मानकर अपने आप को धन्य समझता है, वह कवि नही तो क्या है?"

उन्होने आगे कहा, "कवि मे हृदयबल आवश्यक है। हृदय की कोमलता मै जान-बूझकर नही कहता। कोमलता मे दौर्बल्य भी होता है। जिसके हृदय मे जितना अधिक बल होगा वह उतना ही बडा कवि हो सकेगा। व्यास और वाल्मीकि अमर इसीलिए हुए।"

"आपके इन विचारो मे कल्पना-शक्ति का क्या स्थान है?"

"कल्पना-शक्ति हृदय के बल से आप ही आप विकसित हो जाती है। परन्तु कल्पना-शक्ति मे हृदय का बल बढाने की शक्ति नही होती।"

उस दिन यह निर्झरिणी बहुत देर तक प्रवाहित होती रही, और ऐसे छोटे-मोटे अवसर तो उठते-बैठते आ जाते थे।

'महाकोशल' पत्र आरम्भ मे नागपुर से निकला था। मै उसका सपादक, सचालक, व्यस्थापक सब कुछ था। हम अग्रेजी तथा अग्रेज सरकार के विरुद्ध पडनेवाले समाचारो को सनसनीदार बनाकर और बढाकर प्रकाशित किया करते थे। एक बार जर्मनी मे किसी ने कहा कि यदि इग्लैड ने अमुक कार्रवाई की तो हम लदन पर बम बरसायेगे। 'महाकोशल' मे एक बडे शीर्षक के साथ यह छोटा-सा समाचार प्रकाशित किया गया। शीर्षक था "लदन पर बम बरसेगे"।

उन दिनो नागपुर के पत्र-विक्रेता केवल पत्र का नाम ले-पुकारकर पत्र बेचा करते थे। 'महाकोशल' निकलने पर मैंने कुछ नये विक्रेता तैयार किये और उन्हे कानपुर की तरह शीर्षक चिल्ला-चिल्लाकर बेचना सिखाया। कानपुर मे 'वर्तमान' सपादक प० रमाशकर अवस्थी ने अपने पत्र-विक्रेताओ को यह तरीका सिखाया था। 'वर्तमान' मे हाकरो के चिल्लाने की सुविधा का ख्याल करके ही मुख्य शीर्षक दिए जाते थे।

उस दिन हमारे हाकरो ने 'लदन पर बम बरसेगे' की पुकार से सारे शहर को गुजा दिया। दूसरे ही दिन खुफिया पुलिस का एक अफसर आकर मुझे यह सन्देश दे गया कि होम मेम्बर साहब (श्री ई० राघवेन्द्र राव) ने आपको याद किया है। अमुक दिन, अमुक समय पर कोठी पर उनसे मिल ले।

राव साहब से प्रान्त के काग्रेसी बहुत नाराज थे, क्योकि उन्होने काग्रेस को छोडकर सरकारी पद ग्रहण कर लिया था। परन्तु व्यवहार-कुशलता, शिष्टाचार, अतिथि-सत्कार आदि गुणो मे उनकी बराबरी करनेवाला कोई नही था।

मै निर्धारित समय पर उनकी कोठी पर पहुचा। उन्होने खूब आदर-सत्कार के साथ मुझसे बाते की और अन्त मे कहा, "आपको अपना पत्र और गभीर बनाना चाहिए, नही तो वह बढ नही सकेगा। लोग उसे अफवाहे फैलानेवाला समझकर उसकी उपेक्षा करने लगेगे। यह देखिये, आपने क्या शीर्षक दिया है— 'लदन पर बम बरसेगे'। भला बताइए तो, समाचार की दृष्टि से इसका क्या महत्त्व है? हाकर की आवाज सुनकर भले ही इसे कोई खरीद ले परन्तु पढने के बाद तो यही सोचेगे न कि आपने पाठक को धोखा देने के लिए यह शीर्षक दिया है? फिर पुलिस भी आपके पीछे पड जाएगी और मेरे पास आपके पक्ष मे कोई तर्क न होने के कारण मै भी आपकी कोई मदद न कर सकूगा।" इन शब्दो द्वारा उन्होने बडे सुन्दर तरीके से मुझे चेतावनी दे दी कि यदि ऐसी हरकते जारी रही तो मेरे खिलाफ कार्यवाही की जाएगी।

मैने पडित रविशकर शुक्ल को सारी बात बताई। उन्होने कहा, "ज्यादा जिम्मेदारी से काम करो। राव साहब ने जो कुछ कहा है उसका शब्दार्थ बिलकुल सही है।"

थोडे दिन बाद पडित माखनलाल चतुर्वेदी से भेट हुई। मैंने जब सारी कहानी उन्हे बताई तब उन्होने कहा, "शीर्षक तो अवश्य अनुचित था, परन्तु इसमे पछताने की कोई बात नही है। इसका एक पहलू और भी है जो नैतिक दृष्टि से उतना ही तुम्हारे पक्ष मे है। हमारा उद्देश्य ब्रिटिश सरकार के प्रति असन्तोष फैलाना है। यह कार्य जिस बात से भी सिद्ध हो वह उचित है। तुम अपनी नीति कायम रखो, परन्तु यह मन्त्र सदा याद रखो कि जो कुछ भी लिखते हो वह पाठक

के मन को पटने योग्य होना चाहिए। बिलकुल ही बे-पर वाली बात नही होनी चाहिए। पाठक छूट जाएगा तो तुम्हारे हाथ मे कुछ न रहेगा।"

चतुर्वेदीजी ने वही बात ऐसे ढग से कही थी कि उससे मुझे बल मिला। 'महाकोशल' थोडे से सुधार के साथ उसी नीति पर चलता रहा।

चतुर्वेदीजी पर गाधीजी की अपेक्षा लोकमान्य तिलक का प्रभाव मुझे अधिक दिखाई दिया। मैने इस विषय मे उनसे कभी स्पष्ट चर्चा की हो, ऐसा याद नही आता, परन्तु उनकी बातचीत मे लोकमान्य के सिद्धान्तो का जितना रग चढा दिखाई देता था उतना गाधीजी के सिद्धान्तो का नही। फिर भी लोकमान्य के अधिकतर अनुयायियो के लिए उनके मन मे मैंने बहुत आदर नही पाया। श्री नरसिह चिन्तामणि केलकर से उनका सम्बन्ध अच्छा अवश्य था। दो या तीन बडी-बडी जिल्दो मे केलकरजी की लिखी लोकमान्य तिलक की जीवनी (मराठी) की अनेक प्रतिया उनके पास प्रचारार्थ आयी थी। उन्होने उनमे से कुछ प्रतिया बिकवा देने का प्रयत्न भी किया था।

लोकमान्य के 'केसरी' और 'मराठा' की नीति यह थी कि ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असन्तोष फैलानेवाले लेख और समाचार बराबर छापे जाए, परन्तु उन्हे ऐसे ढग से और ऐसी दु अर्थी भाषा मे लिखा जाए कि वे कानून की पकड मे न आए। फिर यदि सपादक पर मुकदमा चलाया जाये तो वह अपना बचाव करे और यह साबित करे कि हमारे लिखने का वह अर्थ नही है जो सरकार निकालती है, वरन् वह है जो हम बताते है। लोकमान्य ने स्वय अपने विरुद्ध चले मुकदमे मे भी यही किया था।

दूसरी ओर, गाधीजी कहते थे कि जो लिखो वह साफ लिखो, उसे मजूर करो और जरूरत हो तो उसका परिणाम खुशी-खुशी भोगो।

चतुर्वेदीजी ने मुझे जो सलाह दी वह लोकमान्य के विचारो के अनुसार थी। लिखते-लिखते मुझे याद आता है कि उन्होने मुझसे बात करने मे 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुजरो वा" का भी अपने परामर्श की पुष्टि मे हवाला दिया था।

गाधीजी ने रचनात्मक कार्य पर ज़ोर दिया, परन्तु चतुर्वेदीजी का उनमे बहुत अश दान रहा, यह मै नही जानता। वास्तव मे उनका अधिकतर योगदान प्रचार के क्षेत्र मे रहा, और वह प्रचार बहुमुखी था—भाषणो और व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा पत्रो द्वारा, काव्य द्वारा जीवन के उदाहरण द्वारा।

अहिंसा उनके लिए एक हद तक स्वाभाविक है, उससे आगे वे नही गए। क्रान्तिकारियो को मदद करने मे उनकी अहिंसा आडे नही आयी। इसीलिए श्रद्धेय गणेशशकर विद्यार्थी के साथ उनका इतना भाईचारा सध सका।

परन्तु अहिंसा की नीति थी या निर्वेद जिसने उन्हे आत्मरक्षा के प्रति भी

उदासीन बना दिया, यह सिद्ध होना अभी शेष है। कभी-कभी आश्चर्य होता है कि चतुर्वेदीजी के भी कुछ कट्टर विरोधी थे जिन्होने उनके विरुद्ध आन्दोलन ही छेड दिए और उन आन्दोलनो का चतुर्वेदीजी के जीवन पर प्रभाव भी पडा, परन्तु चतुर्वेदीजी ने अपने विरुद्ध किसी आरोप का, किसी आन्दोलन का, किसी लेख का प्रतिवाद नही किया।

उन पर यह आरोप भी लगाया गया था कि 'कृष्णार्जुन युद्ध' नामक प्रसिद्ध नाटक उनका लिखा हुआ नही है, उन्होने दूसरे की कृति को अपने नाम से प्रकाशित करवा दिया है। पहले तो यह कहा गया कि वह स्वर्गीया श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के पतिदेव ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान का लिखा हुआ है। परन्तु बाद मे, शायद उनके इनकार करने पर एक अन्य व्यक्ति को, जिनका नाम अब मुझे याद नही रहा, खडा कर दिया गया, और खूब कीचड उछाला गया। परन्तु चतुर्वेदीजी ने उसका भी कोई प्रतिवाद नही किया।

जब यह प्रवाद उग्र था उन दिनो मै श्रद्धेय गणेशजी के 'प्रताप' मे काम करता था। एक दिन पडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से यह चर्चा चली तो उन्होने कहा, "बेकार ही लोग माखनलालजी के पीछे पड गए है। 'कृष्णार्जुन युद्ध' तो उन्होने मेरी हाजिरी मे लिखा था।" जहा तक मुझे याद है, उन्होने यह भी कहा था कि वह कानपुर मे लिखा गया था।

मैने बालकृष्णजी से पूछा कि आप इस विषय मे लिखकर इस प्रवाद का अन्त क्यो नही कर देते? उन्होने अपने अलबेले ढग से जो उत्तर दिया वह सुनने मे ही अच्छा लग सकता था, परन्तु उसका आशय यह था कि चतुर्वेदीजी प्रतिवाद करने के पक्ष मे नही है।

मैने स्वय भी इसी कारण उन दिनो कुछ नही लिखा था। परन्तु मुझे इस नीति से कभी सन्तोष नही हुआ। भले ही हम लम्बे विवाद मे न पडते, परन्तु एक बार स्थिति स्पष्ट अवश्य की जानी चाहिए थी।

उत्तर न देने और विवाद से दूर रहने की नीति के कारण आगे चलकर प्रान्त उनकी पूरी सेवाओ के लाभ से वचित हो गया। वे स्वय राजनीति से सन्यास ले बैठे और उसके बाद उनका साहित्य-सर्जन भी कम हो गया। उनके जीवन मे निर्वेद ने स्थान पा लिया।

चतुर्वेदीजी के सम्बन्ध मे मैने इकत्तीस-बत्तीस वर्ष पूर्व एक लेख लिखा था, जो ६ नवम्बर, १९३४ के 'महाकोशल' मे प्रकाशित हुआ था। चतुर्वेदीजी ने अखबारी कागज के टुकडो पर पेसिल से कुछ लिखकर उन टुकडो को रद्दी की टोकरी मे डाल दिया था। मैं उन्हे उठाकर ले गया और उन पर लिखे हुए कुछ वाक्यो के

के जैसे-तैसे लेख के अन्त मे दे दिए थे। ये वाक्य अन्यत्र उपलब्ध होगे ऐसी आशा नही है। इनके ही आधार पर मैं इस लेख का आगे का भाग तैयार कर रहा हूँ। पुराना लेख देखते हुए मुझे लगा कि यदि उसके कुछ अनुच्छेद यहाँ जैसे के तैसे उद्धृत कर दिए जाएँ तो उनसे चतुर्वेदीजी के जीवन पर कुछ जरूरी प्रकाश पडेगा। अतएव आगे के पाँच अनुच्छेद मैंने उस लेख से ले लिए है।

"पडित माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी के गौरव है परन्तु ऐसे गौरव जिस पर किसी को ईर्ष्या नही होती। उनका हृदय ससार के साथ रहता है, किन्तु उनकी साहित्यिक कर्मण्यता बहुधा जेल मे जागृत रहती है। 'कवि' माखनलाल 'राजनीतिज्ञ' माखनलाल अथवा 'कर्मवीर'-सम्पादक माखनलाल से बहुत ऊँचे है। दुर्भाग्य से यदि ऐसा कहा जा सके—वे राजनीति की चपेट मे आ गये और उसके कीचड मे फँसकर अपने कवि का, अपने गायक का, निरादर कर बैठे। अब विन्ध्य सत्पुडा और अमरकटक की मनोहर मालाओ, झरनो, प्रपातो, नर्मदा की उत्ताल तरगो, दीनो की आह और पीडितो की कराह का बल पाने पर ही उनका कवि और गायक उन्हे वशीभूत कर पाता है, अन्यथा वे उस रस्से के समान दीखते है जिसे एक ओर तो राजनीति और सार्वजनिक जीवन खीचते है और दूसरी ओर कवितादेवी। कभी एक का बल बढ जाता है, कभी दूसरे का। जब वे कवितादेवी की ओर खिच जाते है तब कुछ अमर फूल खिला जाते है। राजनीति उन्हे खीचकर जब चहारदीवारी के अन्दर बन्द करा देती है, तब उनका कवि कला के पखो पर बैठकर उडने लगता है, तब चहार दीवारी के अन्दर गुँजारे हुआ करती है पर, किसे खेद न होगा कि वे फूल बहुधा दिखाई नही देते, गुजारे बहुधा सुनाई नही पडती? क्यो? क्योकि माखनलाल के अनुसार 'मौन' साहित्यिक का एक गुण है।

"इन पक्तियो के लेखक ने पडित माखनलाल चतुर्वेदी की कुछ उत्कृष्ट रचनाओ का रसास्वादन किया है। परन्तु चतुर्वेदीजी की सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ अप्रकाशित पडी है। अनेक बार अनेक साहित्यरथी महारथियो ने चतुर्वेदीजी पर उन्हे प्रकाशित कराने के लिए जोर डाला, परन्तु चतुर्वेदीजी—अलमस्त तो हम नही कहेगे—महासकोची कवि है। उलाहने सुनते-सुनते कभी प्रकाशित करने के तैयार हो जाते है, परन्तु प्रेस तक पहुँचने के पूर्व ही उनकी समस्त कर्मण्यता विलुप्त हो जाती है और बेचारी पाँडुलिपियाँ फिर ताला-कुजी के अन्दर शोभित होने लगती हैं।

"चतुर्वेदीजी प्रकृत कवि है। उनके आसपास का सारा वातावरण कवितामय होता है। वे जो कुछ लिखते और बोलते है उस सब मे सुन्दर गद्य काव्य का आनन्द मिलता है। वे उच्चकोटि के व्याख्याता है और साहित्य पर तो, ऐन मौके पर,

बिना तैयारी, उनके समान बोलने वाले अथवा बोलने मे उनके निकट तक पहुँचने वाले, हिन्दी के एक-दो ही साहित्य महारथी होगे।

'चतुर्वेदीजी की कविता का रसास्वादन फिर कभी हम पाठको को कराने का प्रयत्न करेगे। इन पक्तियो द्वारा हम केवल उनके साहित्यिक विचारो का परिचय देना चाहते है।

' द्विवेदी मेला का अवसर था। एक मित्र ने उलाहना दिया कि आपने कुछ नही कहा। चतुर्वेदीजी ने उत्तर दिया, मेले मे कहनेकी मेरे पास कोई बात नही। भगवान की कृपा इतनी ही है कि यह शान्ति निकेतन के शारदोत्सव की तरह द्विवेदी मेला है। फिर उन्होने कहा, "जिस जमाने को द्विवेदीजी ने आनेवाले कल के व्यक्ति बनकर उलटना चाहा था, उन्हे सुख होगा कि वह कल आज हो गया और यह मेला उस अमर आज का त्योहार है। किन्तु भय है कि यह आज शीघ्र ही कल होता नजर नही आता। आते हुए कल के पुरुष कम दिखाई दे रहे है, क्यो कि 'बेचैनी' और 'हलचल' द्विवेदी के प्रदान किये हुए ये दोनो ही पख बहुत कम लोगो के पास सबल दिखाई देते है। जहाँ अस्थिरता हृदय की, अकर्मण्यता हाथो की, असहिष्णुता मजहब की, कवायद आचार की, आत्मप्रशसा और दम्भ विजय की और जीवन भविष्य को छोडकर भूतकाल की जागीर हो, वहाँ आज कल बने कैसे ?

साहित्यिक को भूत और वर्तमान का ज्ञान होना चाहिए और उसकी दृष्टि इतनी विशाल होनी चाहिए कि वह भविष्य को देख सके। किन्तु साहित्यिक जितना बोलता है उतना ही चुप रहता है। चतुर्वेदीजी कहते है कि मौन और वाणी दोनो का जिसे आशीर्वाद न हो वह साहित्यिक कैसा ? हाँ, मौन से ही तो सपदा निकाल लाने मे पराक्रम है, और फिर उसे वाणी देना तो और भी कौशल्य की बात है और मौन क्या है ? राजपूताने के भूतकाल, बिहार के तप, दिल्ली की विजय, त्रिवेणी के सगम यमुना के विहार और नर्मदा के पुण्य मे वह छिपा हुआ है। यदि इस सबका मुझे पता न हो तो मै साहित्यिककैसा ? यदि मैंने सम्पूर्ण भूत पर दृष्टि डालने की ओर दुर्लक्ष्य किया हो तो सम्पूर्ण भविष्य का आकलन कैसे कर सकूँ ? जो मापदण्ड गहराई नापेगा वही तो ऊँचाई नापने के भी काम आ सकेगा ? भूत पर ही तो भविष्य की नीव हो सकती है। अतएव चतुर्वेदीजी कहते है—"सनातन अनन्तता मे भूत उतना ही जाज्वल्य, उतना ही जीवित हो जितना भविष्य।"

इसी विचार को अधिक स्पष्ट करते हुए चतुर्वेदीजी अन्यत्र कहते है, ' राष्ट्र वह सनातन जो त्रिकालदर्शी हो, धर्म वह सनातन जो त्रिकालदर्शी हो, समाज वह जो त्रिकालदर्शी हो, त्रिकालदर्शी—जिसे भूत का ज्ञान हो, वर्तमान के गतिचक्र

पर जिसका हाथ हो और भविष्य मे आनेवाली परिस्थितियो की जिसकी तैयारी हो। वह सनातन नही जिसे भविष्य न दीखे।" और वे कहते है कि "साहित्य मे हमे सनातनता लानी चाहिये।"

एक स्थान पर वे कहते है, "दूर का तीर मारने के लिए उसे प्रत्यचा पर चढाकर जोर से पीछे खीचना होता है। साहित्य मे डोरी पर तीर जमाना वर्तमान है, पीछे खीचना इतिहास और तीर मारना भविष्य का लक्ष्य वेध करना है।"

जो घृणा, गदगी, फूट आदि के बीज बोनेवाला हो उसे साहित्य कहा जाये या नही ? इस विषय पर ससार के साहित्यिको मे बहुत मतभेद है, और वह रहेगा ही। यथार्थवाद के नाम पर जो बहुत-सी कृतियाँ प्रकाशित होती रहती है, उनके पीछे तर्क यह है कि 'कला तो कला के लिए है,' आदर्शवाद से उसका कोई मम्बन्ध नही। यथार्थवादी साहित्यिक या कलाकार मानता है कि जब हम प्रत्यक्ष जीवन मे सब कुछ देखते, सुनते और भोगते है तो साहित्य अथवा कला मे ही उसमे परहेज क्यो किया जाये ? चतुर्वेदीजी ऐसा नही मानते। वे ऋषि-मुनियो के इस ज्ञान के परिपोषक जान पडते है कि मनुष्य को असत् से सत् की ओर, तम से ज्योति की ओर और मृत्यु से अमरता की ओर जाना है, और जब उसके सामने असत्, तम और मृत्यु है कि तब इनके पार जाने का मार्ग जानने वाले अथवा उस मार्ग की साधना करने वाले कलाकार, साहित्यकार और गुरु को उस ज्ञान का लाभ आस-पास के लोगो को देना ही चाहिए। साहित्य मे यही आदर्शवाद है। वे कहते है, "साहित्य प्रेम राज्य का स्थापक है। वहाँ समता भी समता है, विषमता भी समता है। प्रेम विषमता के प्रति सूरदास और होमर बनकर रहता है।'

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान" इसमे आधी कल्पना ही यथार्थ मालूम होती है। इस पक्ति का कवि आदिकाव्य रामायण की रचना का यह इतिहास भूल गये कि रामायण की रचना विरह-व्यथा से नही करुणा के उद्‌गार से हुई थी। "मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम: शाश्वती समा यत्क्रौचमिथुनादेकमवधी काममोहितम्" (वा० रा० १, २, १५)। पहले क्रौच और क्रौची के प्रति करुणा, बाद मे व्याध के प्रति। चतुर्वेदीजी इसी करुणा को काव्य का उद्‌गम मानते है। वे कहते है, "काव्य का जन्मस्थल जन-पीडा मे है," व्यक्तिगत पीडा अथवा वियोग मे भी नही, क्योकि इसमे लोक-कल्याण की वेदना का अभाव है, केवल रोना ही रोना है। जहाँ परोपकार का भाव है और तज्जन्य वेदना है, वहाँ 'रामायण' की निर्मिति होती है, अन्यथा 'छुईमुई' की। अतएव चतुर्वेदी जी कामना करते है, "लोकगीतो मे करुण काव्य हो, बलिदान का कीर्तन हो। पनचक्कियो ने जिन ग्राम-गीतो को पीस दिया, उनकी फिर सृष्टि कर सकूँ।"

उनके आनन्द का उद्‌गम भी बलिदान की भावना मे ही है। उनका साहित्य

बलिदान के मत्र से विरहित हो ही नही सकता। "आनन्द का पागलपन, आराध्य पर चढ जाने की आसक्ति, सीमारेखाओ के ऊपर चढकर खिलखिलाने का बल जहाँ न हो, वहाँ साहित्य कैसा ?" यह बल चतुर्वेदीजी ने जीवन-भर बटोरा। इसीलिए तो उनका कवि जेल की चहारदीवारी के अन्दर मुखर हो सका।

'कला कला के लिए है'—इस सिद्धान्त के पक्ष मे कितने भी तर्क क्यो न दिये जाते हो, परन्तु इनकी दुहाई देने वालो मे सख्या उनकी ही अधिक है जो साहित्य अथवा कला के द्वारा समाज की गदगी को उभारा करते है। वास्तव मे ऐसे अधिकतर लोग गदगी के सिवा कुछ देखते ही। नही जो देखते है उनके तर्क मे बल होता है और उन्ही के कारण यह सिद्धान्त अब तक चर्चा का विषय बना हुआ है, अन्यथा इसे कब का तिरस्कृत कर दिया गया होता। चतुर्वेदीजी कहते है, "जब जनसमूह सकुचितता छोडकर विशाल होने लगता है, आपस मे मिलता-जुलता है। चौपालो, मुसाफिरखानो, सरायो, पचायतो, श्मशानो और भोजनालयो मे बैठकर विचार करता है, तब क्या हमे समाज की अतडियो मे कोई सगीत सुनाई नही देता ? यदि कला कला ही के लिए है तो भी वह अन्धी, बहरी और गूँगी तो न होनी चाहिए।"

'कला के लिए कला' का समर्थक कैसे भी सनातन सिद्धान्तो की दुहाई देता हो, प्रत्यक्ष कृति मे वह बहुधा वर्तमान का ही पिष्टपेषण करता है। उसके सामने यदि कोई नगा खडा हो तो वह उसे देखेगा, दूसरे को दिखायेगा, परन्तु उससे यह कहना पसद नही करेगा कि भई, कपडे पहन लो क्योकि दुनिया नगे रहने की अवस्था से बहुत ऊपर उठ गई है, और जिस युग मे तुम जी रहे हो उसमे नगे रहना असभ्यता का चिह्न माना जाता है। वह मानता है कि हर आदमी को अपना निर्णय आप करना चाहिए, उसे सिखाने का अधिकार किसी को नही है। "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वर गुरु साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नम" उसके (यथार्थवादी के) लिए परिहास का मत्र है। चतुर्वेदीजी यथार्थवादी की इसी सीमित दृष्टि को नही मानते। यह भारत के सत्साहित्य की परम्परा से मेल नही खाता। वे कहते है, "भाषा पर ही अधिकार हो जाने से कोई लेखक और विचारक कैसे हो सकता है ?" परन्तु आगे बढने के पहले हम 'भाषा' का अर्थ स्पष्ट कर ले। हमने जो देखा, सुना या जो हमारे मन मे आ गया उसे वाणी या लिपि मे व्यक्त कर देना भाषा है, विश्व के चालू व्यवहार की भाषा है, जिससे यथार्थवादी को सतोष हो जाना चाहिए। परन्तु चतुर्वेदीजी को 'एक भारतीय आत्मा' को इससे सतोष नही होता। वे कहते है, "हमे विश्व की नही, विश्व के सचालन की भाषा पढनी चाहिए, जहाँ हमारा लेखको का अस्तित्व सिन्धु मे विन्दु की तरह विलीन हो जायेगा किन्तु जहाँ पथ-प्रदर्शक, राजनीतिज्ञ, तत्त्वदर्शी मानव-शास्त्रज्ञ, इतिहासज्ञ, अर्थशात्री और भौगोलिक महान ग्रन्थो की तरह इस अजीब

विश्व के विशाल पुस्तकालय मे डोल रहे है।''

अश्रु से चतुर्वेदी को भी प्रेम है, परन्तु वे अश्रु-विरह पीडित प्रियतम और प्रियतमा के नही, उस बालक के जैसे है जो अपना घर भूल गया है और उसे खोजता हुआ जहाँ-तहाँ खडा हो जाता है और बारीकी से देखता है कि यह घर मेरा है या नही और जब उसे ज्ञान होता है कि नही है तब उसकी व्याकुलता बढ जाती है, आँसू बहने लगते है और उसे अधिक खोजने की प्रेरणा देते है। वे अश्रु अपनी सतान का दु ख देखकर कातर हुए उस पिता के अश्रुओ के समान है जो इस विचार मे डूब जाता है कि मैं अपनी सन्तान का दु ख कैसे दूर करूँ और जिसे कोई रास्ता खोजे नही मिलता। वे अश्रुलोक नेता के, भक्त के, साधक के अश्रुओ के सामान है जिनके लिए अश्रु हृदय को स्वच्छ करके आराध्य के निकट-तर ले जाने वाले तरल वाहन है और जिनके द्वारा अश्रु का धनी अपने आराध्य का सदेश-सगीत सुनता है। चतुर्वेदीजी कहते है, 'सदेशवाही वायु के पृष्ठ पर लिखे मेरे अन्तरतर के वाक्यो का क्या मूल्य यदि उस पर मेरे अश्रु अर्धविराम, पूर्ण विराम, आश्चर्य और प्रश्न के चिह्न नही लगाते? यदि करुण वेदनाओ और पुकारो मे मुझे अपने जीवन का सदेश न मिले तो मेरे सारे साहित्यिक प्रयत्न मेरे युग को ही क्यो, मेरे अपने लिए भी घोरतर हो।''

इस जीवन-सदेश की प्राप्ति के लिए वे आतुर है। ''मेरा जी चाहता है कि मेरा मजहब, मेरा व्रत, मेरी तपस्या हो—आत्मदर्शन के आसव मे चूर रहना।'' परन्तु जीवन की तत्त्व प्रधानता और इस आकाक्षा की साधना से सामजस्य स्थापित करना उन्हे कठिन मालूम हो रहा है और वे प्रश्न नही करते, बल्कि खोजते है, ''पर यह सधे कैसे?''

जीवन का आनन्द रहस्य मे, गुप्तता मे है। इसीलिए गुप्तता का अनावरण करने के लिए मनुष्य छटपटाता रहता है, परन्तु जैसे ही आवरण खुला कि सिद्धि के सतोष मे डूब जाता है, धीरे-धीरे अपना सुख खो देता है और अन्त में फिर से नये रहस्य के पीछे दौडने लगता है। जब तक गुप्तता रहती है वह उसकी कल्पना का सुख भोगता रहता है। परन्तु गुप्तता से बौद्धिक सम्बन्ध प्रधान नही होता, प्रेम सम्बन्ध प्रधान होता है। वहाँ मनुष्य उसे सचित रखना चाहता है। गुप्तता मे वह शाश्वत का आश्वासन पाता है। वह चाहता है कि गुप्तता उसे अपनी झलके मात्र दिखाती रहे, जिससे वह निरन्तर उसके पीछे दौडता रहे। चतुर्वेदीजी भी गुप्त प्रेम-सम्बन्ध के सकेतो के कायल है, परन्तु उनका प्रेम अज्ञात के प्रति रुख करके आश्वस्त होना चाहता है। वे कहते है, ''गुप्त प्रेम-सम्बन्धो के सकेतो के बिना जीवन के पागलपन की मिठास का स्वाद कैसे मिले? फिर वह गुप्त सम्बन्ध चाहे नर्मदा से हो, चाहे यमुना से, विन्ध्य से हो या हिमालय से, वृन्दावन से हो या काशी से या फिर हर आँखो मे अपने को ढूँढने की प्यास हो।''

स्पर्धा को वे शत्रु मानते हो या मित्र, गुप्तता मे मिलकर, उसमे समाकर, वह बहुत बलवती हो जाती है। 'स्पर्धा, स्पर्धा ही आज का मन्त्र है, चाहे साहित्य उसके साथ रहे या उसका विरोध करे, जहाँ प्रकट है, वह अपनी परिमितता लिये हुए है, जहाँ गुप्त है, वहाँ खूब सबल, गर्वीली और प्रभावशाली है।" स्पर्धा का अर्थ यदि ईर्ष्या-द्वेष लगाया जाये तो यह समझ लेने मे कठिनाई न होगी कि यह निष्कर्ष जीवन के अनुभवो का है, केवल कल्पना-सुलभ साक्षात्कार कर नही।

और, इसे अनुभवजन्य सत्य मानने के बाद, "जगत स्पष्ट रूप से कह रहा है कि ऋषियो और सतो को जमीन मे गाड दो, क्योकि वे थोडे रह गये, उनका बहुमत नही रहा और यह तो प्रजासत्ता का युग ठहरा।"

और निष्कर्ष के रूप मे, "हमने झूठ, दम्भ, अज्ञान, चालाकी और दाव को बहुमत प्रदान किया है, तब विश्व के निर्माण और विश्व-वाणी के निर्माण के लिए वे निरकुश निर्णायक हो तो हमे दुख क्यो होना चाहिए ?"

पं० माखनलाल चतुर्वेदी, लाहौर और मैं

○ ○

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

प० माखनलाल चतुर्वेदी का नाम मैने पहली बार लाहौर मे सुना। सन् १९३४। जनवरी-फरवरी के दिन हिन्दी भवन लाहौर से एक हिन्दी पत्रिका निकलनी शुरू हुई, 'भारती'। श्री हरिकृष्ण प्रेमी उसका सम्पादन करने के लिए खडवा से आये और लाहौर मे कुछ हिन्दी के लेखक और कवि इकट्ठे मिल बैठने लगे। श्री चन्द्रगुप्त विद्यालकार और प० उदयशकर भट्ट तो पहले ही लाहौर मे थे। चन्द्रगुप्त की कुछ रचनाएँ मैने 'विशाल भारत' मे पढी थी। पर भट्ट जी का नाम नही सुना था। प्रेमीजी के आने पर ही उन्हे जाना। उनके अतिरिक्त बी० पी० माधव, करुण जी तथा कुछ दूसरे युवक बाहर से आ गये और गोष्ठियाँ होने लगी।

१९३१ ही से प्रेमचन्द से पत्र-व्यवहार होने के कारण मैं उन दिनो हिन्दी मे आने की सोच रहा था, लेकिन उपयुक्त वातावरण न होने के कारण सफल न हो रहा था। प्रेमचन्द से मेरा पत्र-व्यवहार उर्दू मे होता था। मैं अपनी रचनाएँ भी उन्हे उर्दू मे भेजता था। एकाध लघुकथा उन्होने स्वय अनुवाद करके 'जागरण' मे छापी, एकाध 'हस' मे भी छापी। लेकिन वे अत्यधिक व्यस्त थे। मेरी रचनाओ का अनुवाद अथवा जितना सशोधन वे चाहते थे वह सब करके छापना उनके वश की बात न थी। वे चाहते थे कि मै अपनी रचनाएँ उन्हे हिन्दी मे भेजूँ। हिन्दी मैंने थोडी-बहुत पढ तो रखी थी। बी० ए० मे पचास नम्बर का पेपर भी दिया था, लेकिन हिन्दी मुझे आती नही थी और हिज्जो की बेशुमार गलतियाँ हो जाती थी और मै चाहता था कि अपनी कहानियाँ हिन्दी मे करके किसी को दिखाऊँ, तब पत्रिका मे भेजूँ।

अनारकली से एक छोटी-सी सडक निकलकर मेयो अस्पताल के साथ-साथ जाती थी और अस्पताल रोड कहलाती थी। इस पर कुछ प्रकाशको और पुस्तक-विक्रेताओ की दुकाने थी। कुछ वर्षों से वहाँ एक छोटी-सी दुकान 'हिन्दी भवन' के नाम से खुल गई थी। मै उधर से गुजरता था तो हिन्दी की नयी किताबे देखने के

लिए दूकान मे चला जाता था। सन् १६३२ मे 'हिन्दी भवन' का प्रेस भी खुल गया। उसके कुछ ही महीने बाद मैं एक दिन उधर से गुजरा तो हिन्दी भवन के ऊपर, दूसरी मजिल पर 'भारती' का बोर्ड लगा देखा। पूछने पर पता चला कि एक हिन्दी पत्रिका निकलने जा रही है और उसका सम्पादन करने के लिए हिन्दी के युवक कवि और नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी आये है।

कुछ दिन मै उस बोर्ड को देखता रहा, फिर एक दिन मैं अपनी उर्दू कहानियो की फाइल लिये ऊपर चला गया। कमरे मे नया फर्नीचर लगा था, और प्रेमी जी —गोरे-चिट्टे, मझला कद और सरल अबोध-सा भाव मुख पर लिये, मेज के पीछे बैठे थे।

मैने अपना परिचय दिया और हिन्दी मे आने की इच्छा प्रकट की और जहाँ तक मुझे याद है अपना एक लेख 'उर्दू काव्य की नयी धारा' उन्हे सुना डाला। वही कुछ महीने बाद मैंने 'भारती' का पहला अक देखा। उसमे किसी पृष्ठ पर छ पक्तियो की कविता थी, जो मुझे बडी भायी। उसकी पहली दो पक्तियाँ आज भी मुझे याद है :

अपनी बहती सी घडियो मे रावी से कह देना
बहन नर्मदा ने भेजा है, एक खिलौना, लेना।

इस कविता के नीचे लिखा था—'एक भारतीय आत्मा'

प० माखनलाल चतुर्वेदी की यही पहली कविता है जो मैने पढी। उन्होने ये पक्तियाँ प्रेमीजी के लाहौर-आगमन के सिलसिले मे 'भारती' के पहले अक के लिए लिखी थी।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी अपने तमाम दोषो के साथ (और दोषो से कौन माई का लाल मुक्त है ?) कही बडे ही सरल और उदार है। जल्दी ही हममे घनिष्ठता हो गई और काफी समय हम साथ-साथ गुजारने लगे। जहाँ तक मुझे स्मरण है पहला फ्लैट उन्होने कृष्णा गली की नयी आबादी मे ऊपर की मजिल मे लिया था। उसके एक कमरे मे बैठे मैने उनके पूरे के पूरे खण्डकाव्य 'स्वर्ण विहान' तथा 'अनन्त के पथ पर' सुने, लम्बी-लम्बी प्रेम-भरी कविताएँ लिखते और मित्रो को सुनाते देखा। उन्ही के यहाँ मैंने पहली बार बच्चन का नाम सुना, बाहर से आने वाली एक युवती के हाथ बच्चन की हस्तलिखित पुस्तक 'मधुशाला' देखी। उन्ही के यहाँ मैंने महादेवी और पन्त का नाम सुना और हिन्दी कविता की ओर मेरी रुचि हुई। तब यह कैसे सम्भव है कि चतुर्वेदीजी का जिक्र वहाँ न आता। सच्ची बात यह है कि बिना मिले भी मै चतुर्वेदी के सम्बन्ध मे, उनके सरल औदार्य के सम्बन्ध मे, उनके विधुर जीवन के सम्बन्ध मे, उनके पत्रकार और राजनीतिक कार्य-कलाप के सम्बन्ध मे बहुत कुछ जान गया था और कुछ दिन बाद जब प्रेमीजी ने मुझे बताया कि चतुर्वेदीजी लाहौर आने वाले है तो मुझे कम

खुशी नही हुई।

गालिबन अप्रैल का महीना था, लेकिन खासी गर्मी पडने लगी थी। मैं उन दिनो चगड मुहल्ले मे रहता था, रिक्शे तब थे नही और ताँगे मे चलने की सकत मुझमे नही थी। प्रेमीजी का घर चगड मुहल्ले से बहुत दूर था, रेलवे स्टेशन उससे भी कही दो मील आगे था, इसलिए चतुर्वेदीजी को स्टेशन पर ले आने मैं प्रेमीजी के साथ नही गया, पर दूसरे दिन दोपहर को उनके यहाँ पहुँचा। बाहर के कमरे मे खुरी चारपाइयो पर ही दोनो लेटे थे। मैने जाकर नमस्कार किया तो पण्डितजी उठ बैठे। मँझला कद, अत्यन्त गोरा रग, सुन्दर चेहरा, तीखी नाक, भाव-प्रवण गहरी आँखे और चौडा माथा, मूँछे उनकी होठो के कोनो से कटी होठो पर गिरती थी और खासी बडी थी और मूछो और सिर के बाल एकदम सफेद थे बदन पर बडी और धोती उन्होने पहन रखी थी। उनकी यही पहली झलक मेरे मानसपट पर आज भी अकित है।

उन दिनो मुझमे बडी महत्त्वाकाक्षा थी। आज भी कम नही। लेकिन आज छपने की उतनी नही, जितनी अच्छा लिखने की है। शायद अपना प्रकाशन होने से वह भूख आज वैसी तीव्र न रही हो, पर उन दिनो यह भूख दावानल-सी मन मे धधकती थी। मैं चाहता था कि 'भारती' के पहले ही अक मे मेरी कहानी रहे। मैने अपनी एक कहानी 'कुर्बानगाहे इश्क' हिन्दी मे करके प्रेमीजी को दिखायी भी। उन्होने उसकी हिन्दी भी सुधार दी, पर 'भारती' मे छापने से इनकार कर दिया। वे नयी-नयी पत्रिका निकाल रहे थे और शुरू-शुरू मे जमे हुए लेखको की कहानियाँ देना चाहते थे। तब वह कहानी मैंने पडित बनारसीदास चतुर्वेदी को भेजी, उन्होने न केवल लौटा दी वरन एक नुस्खा भी बता दिया कि मैं वैसी ही कहानियाँ लिखूँ और जवानी के उस जोश मे उनसे अत्यन्त कटु पत्र-व्यवहार भी हो गया। बहरहाल उन्ही दिनो चतुर्वेदीजी लाहौर आये, प्रेमीजी ने मुझे सलाह दी कि मैं अपनी लघु कथाएँ उन्हे सुनाऊँ उन्हे जरूर पसन्द आएँगी और वे अपने साप्ताहिक मे छाप देगे।

लाहौर के उन दिनो मे मैंने अपनी चार-छ. छोटी कहानियाँ (जिन्हे उर्दू मे अफसाने कहा जाता था) चतुर्वेदीजी को सुनायी। उन्होने बडी पसन्द की और कहा कि मै हिन्दी मे करके उन्हे 'कर्मवीर' के लिए भिजवाऊँ।

उनके जाने के बाद प्रेमीजी की सहायता से मैंने अपनी चार छोटी कहानियाँ हिन्दी मे करके 'कर्मवीर' के लिए भिजवाई। मेरे पास इसका ब्यौरा नही कि कौन-कौन-सी कहानियाँ थी, पर मेरा खयाल है कि 'सम्वाददाता,' 'सतीत्व का आदर्श,' 'फूल का अजाम' और 'जादूगरनी' ये चार कहानियाँ थी। उन्ही दिनो प्रेमीजी ने मेरा एक निबन्ध भी भारती के लिए ले लिया था। मेरी फाइल मे चतुर्वेदी जी का एक कार्ड मौजूद है, जो उन्होने मुझे शिमला लिखा (मैं मई मे शिमला चला गया था)

जिसमे इन दोनो बातो का उल्लेख है। पत्र 'कर्मवीर' के छपे कार्ड पर है और उस पर १७ मई, १९३४ की तारीख है। कार्ड के एक ओर लिखा है :

प्रियवर अश्रुजी,

सप्रेम नमन

"आपका लाहौर का पत्र मुझे मिल गया था। आपकी अभी तक मेरे पास चार कहानियाँ पहुँची है। एक कहानी तो 'कर्मवीर' मे प्रकाशित हो गयी है— नामानिगार शेष मे से एक-आध किसी मासिक पत्र मे भिजवाने की सोच रहा हूँ। मै जो कुछ आपसे कह आया था, भूला नही हूँ।

मै आपका प्रबन्ध 'उर्दू काव्य की एक नयी धारा' 'भारती' मे पढूँगा। आप यदि एक बार याद दिला देगे तो उस पर अपने टूटे-फूटे विचार भी लिख भेजूँगा।

खडवा मे गर्मी बहुत पड रही है। बीच मे कुछ दिनो को भारत भर मे सबसे अधिक गर्मी थी, परन्तु अभी मै यही हूँ।

श्रीमती उपेन्द्रनाथ से मेरा नमन कहिए। योग्य सेवा लिखते रहिए।"

और कार्ड के दूसरे ओर

छोटी कहानियाँ कुछ और भिजवाइए। आपके शिमला पते पर 'कर्मवीर' जाता है कि लाहौर के ?

आप चिन्ता न कीजिए, बढे चले जाइए। लगातार उद्योग के पश्चात् हिन्दी साहित्य मे एक आपका भी स्थान होगा।

आपका अपना,
मा० ला० चतुर्वेदी

आज इस पत्र को पढता हूँ तो एक बात याद आती है। चतुर्वेदीजी के आने पर यह भी तय हुआ था कि मै हिन्दी मे आना चाहता हूँ तो मुझे अपना उपनाम बदल देना चाहिए और उन्होने मेरा उपनाम 'अश्क' के बदले 'अश्रु' कर दिया था। मेरा खयाल है 'कर्मवीर' मे मेरी कहानियाँ इसी उपनाम के साथ छपी होगी। 'भारती' मे मेरा लेख भी इसी नाम से छपा होगा लेकिन मेरा यह नाम मेरे किसी मित्र को अच्छा नही लगा। फिर कुछ वर्ष बाद मैंने उपनाम का दुमछल्ला ही अपने नाम से काटने का प्रयास किया। सम्पादको को लिखा भी, पर कोई तैयार नही हुआ। शायद उपेन्द्रनाथ के लम्बे और कठिन नाम के बदले 'अश्क' छोटा और सरल था। उस वक्त उर्दू के प्रसिद्ध कवि स्व० मीराजी 'अदबी दुनिया' मे सहकारी सम्पादक थे। चतुर्वेदीजी का पत्र ढूँढते हुए 'म' की तख्ती मे उनका एक पत्र मिला है, जो सन् १९३९ मे उन्होने मुझे प्रीतनगर मे लिखा था। उसकी पहली ही पक्ति है

मैं तो आपको अश्क ही कहूँगा, क्योकि यह आपका तखल्लुस नही, बल्कि नाम है।

इस पत्र से पता चलता है कि मै १६३६ तक चतुर्वेदीजी के उस आदेश को निभाने का प्रयास करता रहा, पर सफल नही हुआ।

इसी सदर्भ मे एक दिलचस्प बात यह है कि मैने एक बार अपना गोत्र 'भारद्वाज' भी अपने नाम के साथ लगाने का प्रयास किया था और चाहता था कि मेरे बच्चे अपने नाम के साथ भारद्वाज लिखे और बडे लडके को प्रीतनगर मे दाखिल कराया था तो उमेश भारद्वाजके नाम से, पर बडे होने पर उसने हीनही, मेरे सभी बच्चो ने वही नाम अपना लिया।

केवल एक व्यक्ति ऐसा है जो आज भी मुझे इसी नाम से पुकारेगा और वे है भाभी श्रीमती हरिकृष्ण प्रेमी। वे मुझे सदा 'अश्रुजी' कहकर पुकारती रही और आज भी यदि मिलूँ तो कहेगी "कहो अश्रुजी, कैसे हो ?"

लाहौर मे चतुर्वेदीजी के उस सक्षिप्त प्रवास की दो-तीन बाते मुझे आज भी ऐसे याद है जैसे कल हुई हो।

एक दिन मैं प्रेमीजी के यहाँ गया तो मैने देखा कि चतुर्वेदीजी एक अटैची से कोई दवाई निकाल रहे है और मै चकित-सा खडा देखता रहा क्योकि सारी अटैची दवाओ की शीशियो से भरी थी और उसके साथ रखी टोकरी मे भी कुछ दवाएँ थी न जाने क्यो यह चित्र मेरे दिमाग मे हमेशा अकित रहा है और वर्षो तक मै इस बात पर हैरान भी रहा हूँ कि कोई आदमी सफर पर इतनी दवाएँ लेकर चल सकता है।

आज जब मेरे साथ यात्रा पर टोकरी भर दवाएँ चलती है तो मुझे उस दृश्य की और भी याद आती है कि मैं कितना मूर्ख था और जिन्दगी को कितना कम समझता था।

दूसरी याद शालीमार गार्डन की एक पिकनिक की है। प्रेमीजी का सारा परिवार, उनके साले और उसकी बहू समेत, चतुर्वेदीजी को साथ लेकर शालीमार की सैर करने गया था। प्रेमीजी ने मुझे और मेरी पहली पत्नी शीला को भी निमन्त्रित किया था। उस पिकनिक मे सबसे दिलचस्प बात यह हुई कि जब बाग की सैर करके, चारदीवारी और उसके बुर्जों पर चढकर बारह बजे के करीब भाभी और उनकी भाभी और मेरी पत्नी खाना बनाने लगी तो दोनो स्टोवो ने जवाब दे दिया। बहुतेरी मिन्नत-समाजत की, पुचकारा-सहलाया लेकिन कमबख्तो ने सनद तक नही दी। अप्रैल का महीना था, बाग मे हवा तेज चल रही थी। स्टोव भी क्या करते ? हारकर कही से ईंटे ढूँढ खडी की और छड़ियाँ बीनने चल पडे। अब इधर आँते हाहाकार मचा रही है, उधर हम बाग मे सूखी छडियाँ बीन रहे है। मैं अपनी बात कह सकता हूँ कि ऐसे मे चतुर्वेदीजी की उम्र मे मै झीख उठता लेकिन वे परम शान्ति से मुसकराते, छडियाँ बीनने मे हमारी सहायता करते और बीच-बीच मे एक-आध फुलझडी छोडकर हमारा उत्साह और मूड दोनो बरकरार रखे रहे।

फिर आर्यसमाज, गणपत रोड के हॉल मे होने वाली एक सभा की याद आती है, जिसमे चतुर्वेदीजी ने भाषण दिया था। हिन्दी भाषा मे इतना ओजपूर्ण भाषण दिया जा सकता है इसकी मुझे कल्पना भी नही थी। अब तो मैंने महादेवी को सुना है और यह भी देखा है कि कैसे उनकी वाणी से अनायास उपमाएँ और अलकार झरते चले चाते है और मथर गति से बहने वालीसरिता-सी उनकी वाणी श्रोताओ के मन की खेतियाँ सँराव करती चलती है। पन्त जी (श्री सुमित्रा-नन्दन पन्त) को बोलते सुना है और देखा है कि कभी जब वे इन्स्पायर्ड होकर बोलते है तो श्रोता मत्रमुग्ध बैठे रह जाते है। लेकिन इस शान्त मथर गति और माधुर्य की तो मै कल्पना कर सकता था। इस भाषा मे इतना ओज है इस बात का पता मुझे पहली बार चतुर्वेदीजी का भाषण सुनने पर ही चला। लगता था, जैसे एक तरल लावा है जो उस सुन्दर मुख से निकलकर श्रोताओ की नस-नस मे घुला जा रहा है। कई बार उस बीच मुझे रोमाच हो आया और कई बार श्रोताओ के साथ मिलकर मै अनायास करतल-ध्वनि कर उठा। मच पर खडे अपनी ओज-पूर्ण वाणी मे श्रोताओ को ललकारते हुए चतुर्वेदीजी की वह छवि सदा-सदा के लिए मेरे मानस-पट पर अकित हो गयी।

इसके बाद उनसे वर्षों भेंट नही हो पायी। १९३४ की मई मे मै शिमला चला गया। चार महीने वहाँ रहा। आकर लॉ कालेज मे दाखिल हो गया। उधर पत्नी बीमार पड गई। फीस और खाने-पीने की समस्या, कानून की पढाई, पत्नी की बीमारी जिन्दगी का सघर्ष कुछ इस द्रुत गति से बढा कि सारी औपचारिकताएँ उसमे बह गईं। सुनता हूँ कि चतुर्वेदीजी तीन साल बाद फिर लाहौर आये थे। लेकिन मै उस वक्त लॉ करने के बाद, जालन्धर मे अपनी बीमार पत्नी की तीमारदारी मे सलग्न था। १९३६ के दिसम्बर मे उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी लम्बी बीमारी के दौरान मन कुछ ऐसा उदास हुआ कि मै फिर कविता करने लगा। इससे पहले मैंने हिन्दी मे कविता नही की थी। कालेज छोडने के एकाध साल बाद ही उर्दू मे गजल कहना छोड दिया था और कहानियाँ लिखने लगा था। लेकिन उन दिनों मन मे कुछ ऐसा उद्वेग था, कुछ ऐसा बेपनाह तूफान कि कविता ही मे बह सकता था। आयास-प्रयास की वैसी अपेक्षा नही थी। प्रेमीजी का साथ था। उनसे एक छन्द सीख लिया, मात्राएँ गिनना सीख लिया और उर्दू-हिन्दी मिश्रित भाषा मे कविताएँ करने लगा। उन कविताओ मे से पहली मैंने अपनी पत्नी की मृत्यु के कुछ दिन पहले या बाद, दिसम्बर १९३६ मे 'विशाल भारत' मे भेजी—

चल दोगी कुटिया सूनी कर, इसी घडी इस याम
युग-युग तक जलते रहने का मुझे सौप कर काम
इतना क्या कम था, तुम आई
उडते-से पक्षी की नाई

चार घडी का जीवन लाई
जडता गति होकर बह निकली, उत्फुल्लित उद्दाम,
चल दोगी कुटिया सूनी कर इसी घडी इस याम ।

पडित बनारसीदास चतुर्वेदी को वह कविता इतनी पसन्द आयी कि उन्होने उसी अक मे उसे दे दिया । उनका यह कायदा था कि उन्हे जो रचना पसन्द आती थी, उसकी कुछ छपी हुई कापियाँ वे अपने मित्रो को भेज दिया करते थे। उस कविता की प्रतियाँ भी उन्होने अपने मित्रो को भेजी । स्वर्गीय बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने एक बडा ही प्रोत्साहन-भरा पत्र मेरे लिए प० बनारसीदास चतुर्वेदी को भेजा और प० माखनलालजी चतुर्वेदी ने एक सवेदना भरा पत्र सीधे मुझको। उस पत्र की प्रतिलिपि मेरे पास नही, लेकिन उसकी पहली पक्ति मुझे आज भी याद है । उन्होने लिखा था कि मेरी कविता पढकर उन्हे अपना बाईस वर्ष पुराना दुख फिर याद हो आया ।

पत्नी की मृत्यु के बाद मेरी जिन्दगी बेतरह उखड गई और चतुर्वेदीजी से किसी तरह का सम्पर्क नही रहा ।

आठ-दस वर्ष पहले इन्दौर या उज्जैन मे बिलकुल याद नही कहाँ और किसके यहाँ एक सक्षिप्त-सी भेट की जरूर याद आती है । दूसरी मजिल का एक नीम अँधेरा-सा कमरा है, मैं चतुर्वेदीजी के साथ खाने की मेज पर बैठा हूँ । हम लोग पुराने दिनो की बाते कर रहे है और चतुर्वेदीजी की जिज्ञासा पर मै उन्हे पुनर्वास के प्रयास मे इलाहाबाद के अपने सघर्ष की बात सुना रहा हूँ कि सहसा मैं आतिथ्य से पूछता हूँ, "मैने कितनी रोटियाँ खा ली है ?"

वे बता नही पाते तो चतुर्वेदीजी हँसकर पूछते है, "तुम गिनकर खाते हो ?"

जब मै स्वीकार मे सिर हिलाता हूँ तो कहते है, "यह भी कोई खाने का ढग है । हम तो जब तक भूख रहती है खाते है ।"

लेकिन मैं हाथ खीच लेता हूँ, क्योकि मुझे डर है कि मैं ज्यादा न खा जाऊँ और मेरा पेट न खराब हो जाए । लेकिन चतुर्वेदीजी हाथ नही खीचते, डटकर खाते है । खाना खत्म करके दूध के गिलास मे साबित ईसबगोल की पुडिया घोलते है और पी जाते है ।

चतुर्वेदीजी के सक्षिप्त-से सम्पर्क की यही अन्तिम स्मृति मेरे मन पर अकित है । कुछ वर्ष पहले मैने कही चतुर्वेदीजी के सम्बन्ध मे श्री धर्मवीर भारती और पुष्पाजी के सस्मरण अथवा पत्र पढे थे तो मुझे सहसा खयाल आया था कि उनका सम्पर्क छोडने से मैं बहुत बडे स्नेह से वचित रह गया । कुछ ऐसा ही स्नेह, जिसका सस्पर्श मैंने स्वर्गीय बाबू शिवपूजन सहाय के सक्षिप्त से सम्पर्क मे पाया और तभी मैंने कई बार सोचा कि चतुर्वेदीजी का स्नेह पाकर भी क्या मैं उससे दूर हो गया ? तभी मेरे दिमाग मे १९३७ की एक घटना घूम गई, जब मेरा

पहला नाटक 'जय-पराजय' छपा था और मैं उसकी एक प्रति प्रेमीजी को देने गया था तो भूमिका मे अपना नाम न देखकर उन्होने कुछ ऐसी बात कह दी थी कि मुझे बहुत बुरा लगा था और और उनसे मेरा सम्बन्ध एकदम कट गया था और चूँकि उनसे कट गया था, इसलिए चतुर्वेदीजी से भी कट गया। उनके कारण नही मेरी ही हद से बढी हुई भावप्रवणता के कारण।

लेकिन आज जब मैं इन स्मृतियो को सँजोने बैठा हूँ तो मुझे यह मानने मे जरा भी सकोच नही कि हिन्दी मे मेरे आने और सफलता पाने मे प्रेमीजी के साथ गुजरे हुए उन दो-तीन वर्षों और चतुर्वेदीजी के उस स्नेह-भरे सक्षिप्त-से सम्पर्क और उस उन्मक्त प्रोत्साहन का बड़ा हाथ था।

खद्दर की एक अमलिन चादर

० ०

ठाकुरप्रसादसिह

श्री माखनलाल चतुर्वेदी के सबध मे सहज श्रद्धावश लिखने का निश्चय काफी पहले किया था लेकिन जब लिखने की बारी आयी और मैंने उनके विषय मे कुछ सोचना-विचारना शुरू किया तो लगा कि उन्हे सच पूछिये तो सीधी आँखो से मैंने कभी देखा भी नही है। जिसे कभी देखा नही, कभी जिसके नजदीक बैठा नही, जिसके साथ या जिसके युग के साथ कभी जिया नही, उसके विषय मे कुछ लिखूँ तो दुस्साहस ही होगा। वैसा ही दुस्साहस जैसा बहुत से लोग बिना पुस्तके पढे आलोचना लिख देने के सिलसिले मे कर दिया करते है। पहले उत्साह मे मैंने श्रीकान्तजी को लिख दिया था कि पूज्य दादा पर कुछ लिखना चाहता हूँ। लेकिन जब सचमुच वे मुझसे लेख लेने के लिए कटिबद्ध हो गये तो मेरे होश उड गये। मै पीछे हटता गया इस आशा से कि वे एक दिन निराश होकर मुझसे लेख माँगना छोड देगे और जैसे हिन्दी साहित्य के अधिकाश सम्पादक मेरी चुप्पी से निराश होकर निश्चिन्त हो गये है, वैसे ही जोशीजी भी हो जायेगे। लेकिन जाने क्या बात है पहले तो वे खुद तकाजे करते थे अब पडित कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' से भी पत्र भिजवाने लगे। प्रभाकरजी निवेदन तो करते नही, सीधे आदेश देते है, और अब आदेश एक से दो, दो से चार होते जा रहे है, मेरी हालत सच पूछिये तो उस छोटे बच्चे की-सी हो गयी है जिसे लडकपन से ही झूठ बोलने की आदत पड गई हो और वह लबी-चौडी कहानियाँ सुनाकर अपने साथियो पर अपनी छाप छोडने की खतरनाक लत मे पड गया हो। एक दिन कभी ऐसा भी आता है जब एक झूठ को सच सिद्ध करने के लिए उसे बार-बार झूठ बोलना पडता है और तब भी आस-पास वाले यह ताड लेते है कि जो कुछ यह कह रहा है, झूठ ही कह रहा है। मेरा खयाल है कि श्रीकान्तजी और प्रभाकर जी दोनो ही इस षड्यत्र मे एक हो गये है और मेरी इस डीग मारने की आदत का निबटारा ही कर देने पर आमादा

है। मैं बिलकुल घिर गया हूँ क्योकि मैने कभी डीग मारी थी कि मैं माखनलाल जी को जितना जानता हूँ कोई नही जानता, इसलिए मुझसे वे कहलवा लेना चाहते है कि माखनलालजी को जानना तो दूर की बात है, मैंने उन्हे खुली आँखो से कभी देखा भी नही। मेरे सामने सिवा इस झूठ को स्वीकार कर लेने के और कोई चारा नही है, आज खुली अदालत मे मैं यह स्वीकार कर लेता हूँ कि मैने माखनलालजी को आज तक अपनी आँखो से कभी देखा ही नही।

अपनी आँखो से न देखने का मतलब यह नही है कि मैंने उन्हे एकदम नही देखा है। मैंने उन्हे देखा अवश्य लेकिन अपनी बगल मे बैठे हुए एक अपरिचित श्रोता से आँखे लेकर उसकी आँखो से देखा और जी भरकर देखा। कैसे, यह अब बताना ही होगा क्योकि बिना बताए निकल भागने का कोई रास्ता सूझ नही रहा है। बात इस प्रकार है, १६३७-३८ मे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बनारस अधिवेशन के समय मे किसी प्रकार चोरी से पडाल मे पहुँच सकने मे समर्थ हो गया, एकदम स्कूल का विद्यार्थी था और नागरी प्रचारिणी सभा के घेरे को तोडकर भीतर जाने की आकाक्षा जब हुई तो सिवा इसके कि चारदीवारी लाँघ जाऊँ या फाटक के भीतर जो भीड थी उससे रास्ता निकाल लूँ। साहित्यकारो को देखने का और कोई अच्छा तरीका मेरी समझ मे उस समय नही आ सकता था। आज इस उम्र मे यह देखकर हैरानी थोडी बढ जाती है कि जो तरीका मैने बचपन मे साहित्यकारो के बीच घुसने का अपनाया था वही तरीका ऐसे लोग अख्तियार कर रहे है, जिनकी काफी उम्र हो गयी है। बहरहाल मै कुल जमा सातवी कक्षा का विद्यार्थी था और मुझे यह हक हासिल था कि मै नागरी प्रचारिणी सभा के पीछे की चारदीवारी लाँघ जाऊँ और मच पर बैठे साहित्यकारो को देखूँ और मैने यह किया भी। पर भीतर जाकर लगा कि सारी मेहनत बेकार हो गयी है, मैं जहाँ खडा हूँ वहाँ से मच काफी दूर पडता है और वहाँ विराजमान साहित्यकारो का समूह तैल-चित्र की तरह लिपा-पुता दिखलाई पडता है। आवाज तो सुन पडती है लेकिन यह नही पता लगता कि उतने सब लोगो मे से बोल कौन रहा है? असफलता की खीझ मेरे चेहरे पर उभर आयी। लेकिन तभी मेरी बगल मे बैठे एक सज्जन ने मेरी परेशानी देखकर एक विचित्र-सी मशीन मेरे हाथ मे दे दी और मुसकराकर कहा, "दिक्कत होती हो तो इससे देखिए।" वह शायद दूरबीन थी और ज्योही मैने उसे आँखो के आगे रखा, सारा दृश्य ही बदल गया, ऐसा लगा जैसे सारे का सारा मच ही मेरे पास आ गया है और जो साहित्यकार भाषण दे रहे है वे ठीक मेरे सामने बैठे हुए श्रोताओ के ऊपर खडे ओजस्वी वाणी मे धाराप्रवाह कुछ बोल रहे है। दूरबीन ऐसी थी कि उसमे सामने का सारे का सारा दृश्य कई रगो मे दिखलाई पड़ता था। इसलिए खद्दर की वेशभूषा मे खडे

वे व्यक्ति ऐसा लगा कि कई रगो के वृत्त उन्हे घेरे हुए है। वे वृत्त दूरबीन के फोकस के घटने-बढने के साथ घटते-बढते जाते थे। सामान्य कद के वे मेरे सम्मुख आकार मे भी काफी बडे लगते थे जैसे वे स्वय न हो, उनका विराट रूप हो।

मेरी बगल मे बैठे सज्जन मेरे कान मे फुसफुसाए, "माखनलाल जी है, 'कर्मवीर' के सपादक" मै जैसे धक से रह गया। ज़रा तेजी और भाव-विभोर स्वर मे कह पडा, "'कोकिल बोलो तो' के कवि ?" वे मुसकराये जैसे मेरी जानकारी से खुश हुए हो। मेरी पीठ परस्नेह सेहाथ रखतेहुए उन्होने कहा, "बच्चे हो लेकिन पढते-लिखते हो, ऐसा लगता है।"

तब तक माखनलालजी के वक्तव्य का सदर्भ भी मेरी पकड मे आ चुका था। मैने उत्साह से उनसे कहा कि माखनलालजी इस समय 'साहित्य देवता' के सम्बन्ध मे से अपना वक्तव्य दे रहे है।

तभी आवेश से भरी उनकी आवाज़ और तेज हो गयी और ऐसा लगा जैसे वे अपना वक्तव्य समाप्त करने जा रहे है, "साहित्यकार की लेखनी शाति के समय वशी का कार्य करती है, क्राति के समय उसे युद्ध के नगाडे को गुजित करने का कार्य भी करना होगा।" चारो तरफ पूरे पडाल मे सन्नाटा छा गया था और सभी श्रोताओ के ऊपर से तरल अग्नि की तरह चतुर्वेदीजी के विचार कई मिनटो तक प्रवाहित होते रहे। मुझे ऐसा लगा कि अब आँखो के आगे दूरबीन लगाने की कोई आवश्यकता नही रही। अब चाहे आँखे खुली रखी जाएँ या मुँदी, माखनलालजी का चित्र एक क्षण भी आँखो से ओझल होनेवाला नही है।

मैने उसके बाद माखनलालजी को कभी नही देखा इसलिए मेरे मानस-पटल पर उनका जो स्वरूप तब अकित हो गया था वह आज भी जैसे का तैसा बना हुआ है। इधर वर्षो से सुन रहा हूँ वे अस्वस्थ होते जा रहे है, चलने-फिरने मे असमर्थ हो गये है और पिछले वर्ष जब उन्हे सम्मानित करने के लिए मध्य प्रदेश के मुख्यमत्री तथा अन्य साहित्यकार खडवा पहुँचे, वे दूसरो के द्वारा उठाकर मच पर लाये गये। काल अपना कार्य कर रहा है। पर मेरे मन पर बचपन मे अकित हो गये उस सतरगे विराट् पुरुष पर काल की लहरो का कोई असर आज भी नही पडा है। भविष्य मे भी नही पडेगा, यह बात मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ। यह बात इसलिए नही कह रहा हूँ कि मैंने उन्हे अत्यन्त क्षीण-अस्वस्थ रूप मे नही देखा है या उन्हे इस रूप मे इसलिए नही देखना चाहता हूँ कि मेरा पुराना चित्र न बिगड जाय। बल्कि इसलिए कह रहा हूँ कि माखनलालजी का जो स्वरूप उनकी लेखनी ने पिछले वर्षो मे उभारा है वह बचपन के उस विराट् सतरगी आकृति से कही अधिक विराट्, कही अधिक रगीला है। अपने छोटे से साहित्य से साहित्य जीवन मे बहुत से वयोवृद्ध साहित्यकारो के साथ रहा हूँ। अत्यन्त नजदीक से देखा है बहुतो को और अधिकाश के प्रति सहज

करुणा मन मे उभर आयी है। इसलिए कि वे चुक गये है। वे पूज्य है। वे आराध्य है। पर प्रेरणा का श्रोत उनका सूख गया है। एक-एक कर मेरे रास्ते के ये छाया वृक्ष टूटते-सूखते-गिरते गये है लेकिन इस सारी भीड-भाड मे एक आवाज ऐसी भी है जो जब धीमी होती है तब तो किसी वृद्ध की लगती है लेकिन ज्योही तेज होती है तो ऐसी लगती है जैसे कोई बच्चा चीख रहा हो, ऐसा बच्चा जिसने अभी-अभी जन्म लिया है और जिसे दुनिया इतनी ताजी, इतनी रगीन, इतनी नयी लग रही है कि वह न चाहते हुए भी उत्साह से चीखने के लिए बाध्य हो गया है। जैसे चीख की कोई तुक नही होती, चीख का कोई अर्थ नही होता, वैसे ही इस वृद्ध बालक की अत्यत आवेश मे लिखी गयी पक्तियाँ अकसर आगे-पीछे की पक्तियो से बे-मेल लगती है, उनका सीधा अर्थ नही होता और जब उनका कोई अर्थ ही नही होता तो वे अर्थ-ध्वनियो से आगे बढकर सकेत-ध्वनियो मे प्रवेश कर जाती है, ऐसी सकेत-ध्वनियाँ जो केवल देवता दे सकते है या केवल बच्चे। मै जिस बूढी आवाज की चर्चा कर रहा हूँ वह एक साथ बूढे और बच्चे दोनो की मिली-जुली आवाज है, उसे ध्यान से सुनना पडता है क्योकि पता नही कब वह बूढे की आवाज बच्चे की आवाज मे बदल जाय और इसके पहले कि आप उसे सुने वह खो जाय, रह जाय बाद मे बचा एक पछतावा उसे न सुन सकने का, उसे अपनी बगल से अनजाने मे निकल जाने का, अतरक्षि मे खो जाने का।

वह जिसकी आवाज है उसका नाम है माखनलाल चतुर्वेदी। उनकी लगभग हर कविता इन्ही गुणो से जगमग है और जब मै उनकी कोई भी नवीन रचना पढता या सुनता हूँ तो प्रयत्न करके अपने भीतर के उसी आदिम सस्कार को जागृत रखता हूँ जो सकेतो को, केवल सकेतो को पकडता है। दुनिया की सार्थक शब्दावली जिसके लिए व्यर्थ होती है। मै सोचता हूँ कि जब तक माखनलाल की कविताओ मे कही-कही झलक गये इन सकेतो को पकडने और उनके विशिष्ट अर्थों को समझकर झकृत होने की शक्ति मेरे भीतर बची हुई है तब तक मैं सारे विरोधो के बीच भी जीवित रह सकने की अपनी हैसियत बनाये हुए हूँ। माखन-लालजी पिछले वर्षो मे तेजी से कमजोर होते गये लेकिन उतनी ही तेजी से वे नये भी होते नये जैसे गाँव के किनारे कोई पुराना पेड हर वसत मे कही से कुछ नये पत्ते, कुछ नयी कोपले ऋतुराज के अभिवादन के लिए अपनी बूढी जर्जर काँपती हथेलियो पर उठाए और कहे, 'इस बार के वसत को भी मेरी यह भेट स्वीकार हो।'

७४ हो या ७६ या ८०, एक भी वसत माखनलालजी की अभ्यर्थना के बिना नही गया है। कभी सिर भेट करने की ललकार आयी थी तो वे आगे बढने वाली भीड़ मे सबसे आगे दिखलायी पड़े लेकिन स्वतन्त्रता के बाद सिरो पर ताज लेने

के लिए उतावली भीड मे खोजा गया तो वे कही दीखे नही। पूरी जिन्दगी भर होठो पर रखकर बजायी जाने वाली बॉसुरी से निर्मम काल-देवता के नगाडे पीटने का काम लिया और यह तय है कि इससे बॉसुरी खड-खड हो जाती। बॉसुरी खड-खड हो भी गई लेकिन उसने कभी किसी के होठो का स्पर्श नही किया। कभी यह शिकायत नही की कि उसे प्रेम-गीतो का माध्यम नही बनाया गया। यह सब कुछ हुआ, वर्षो तक प्रवृत्ति और प्रकृति के विरुद्ध तूफान के बीच एक क्रान्तिकारी और सत्याग्रही की जिन्दगी बिताने के बाद भी बाँसुरी के भीतर की बॉसुरी मरी नही। जब जरा-सा अवसर मिला, मन से या बे-मन से उसे किसी ने एक क्षण के लिए भी होठो पर धरा तो वह वैसे ही पिहक उठी जैसे कभी जब वह हरी होती और कृष्ण के होठ बजाने के लिए उसे मिलते। मैंने अपनी ऑखो के सामने कितने ही लोगो को अपनी जाति, अपनी प्रकृति, अपना धर्म बदलते देखा है—कभी लाचारी से, कभी समझौते के चक्कर मे, कभी इसके या उसके मोह मे। लेकिन इस भीड मे ऐसा भी आदमी था जिसने कबीर के शब्दो मे जीवन की चादर ऐसे जतन से ओढी कि इतनी लबी उम्र तक प्रतीक्षा के बाद भी जब वह अपने प्रिय के पास जायेगा तो उसे यह शिकायत नही होगी कि उसने अपने व्यक्तित्व की चादर ओढकर मैली कर दी है। साफ धुली खादी की एक चादर जैसा, साफ धुला अमलिन व्यक्तित्व। माखनलालजी को कभी याद करता हूँ तो न जाने क्यो याद आती है उस साफ धुली खादी की चादर की और याद आती है कबीर की। एक विचित्र-सी समानता है इन दोनो नामो मे। यदि सघर्ष न होता तो माखनलालजी एक अद्भुत प्रेम-गीतकार होते।

यदि जातियो, धर्मो का द्वेष विष की तरह बनारस की गलियो मे व्याप्त न होता तो कबीर केवल एक गृहस्थ होते, चादर बुनने वाले गृहस्थ और अतत वे अपने भीतर की यात्रा पर इतनी दूर निकल जाते जहाँ से उन्हे लौटा सकना असभव होता। दु ख इसी बात का है कि दो अतर्मुखी व्यक्तित्व वाले कवि बाहर की मार से उत्तेजित होकर युद्ध-क्षेत्र मे आने के लिए बाध्य हो गये और जब उन्होने अन्याय के प्रतिरोध के लिए तलवार उठा ली तो वे उसे तब तक चलाने के लिए प्रतिबद्ध हो गये जब तक अन्याय समाप्त न हो जाय। दोनो ही तलवारे अपनी म्यान मे नही लौटी। उनकी यही नियति थी कि वे जिस घर से निकले वह घर उन्हे फिर नसीब न हो।

उत्सर्ग और बलिदान के कवि

◊ ◊

मुकुटबिहारी वर्मा

"मै बलि-पथ का अगारा हूँ, जीवन-ज्योति जलाता आया" की प्रणेता 'भारतीय आत्मा' अब हमारे बीच नही रही। महात्मा गाधी की पुण्य तिथि पर जब राष्ट्र स्वतन्त्रता के लिए प्राण उत्सर्ग करनेवालो को श्रद्धाजलि भेट कर रहा था, ठीक उसी दिन अपने कर्मक्षेत्र खण्डवा मे 'भारतीय आत्मा' के रूप मे राष्ट्र-भारती के अनन्य उपासक, उत्सर्ग और बलिदान के महाकवि प० माखनलाल चतुर्वेदी का देहावसान हुआ।

राष्ट्रपिता के निर्वाण दिवस पर देहावसान सभवत कोई आकस्मिक घटना नही थी, बल्कि उनके जीवन और ध्येय के अनुरूप ही विधाता ने ऐसा किया, क्योकि 'एक फूल की चाह' के रूप मे उन्होने यही तो कामना की थी

मुझे तोड लेना वनमाली
उस पथ मे तुम देना फेक,
मातृभूमि पर शीश चढाने
जिस पथ जाते वीर अनेक।

माखनलालजी 'भारतीय आत्मा' के नाम से कविता करते थे और जो लोग उन्हें जानते है वे यह स्वीकार किए बिना नही रह सकते कि यह उनका कल्पित नाम ही न था बल्कि वास्तव मे वह भारत की आत्मा की ही प्रतिध्वनि गुजरित करते थे। वह आत्मा जो देश की पराधीनता से छटपटाती थी, उससे मुक्त होने के लिए व्याकुल थी और देश के लिए शहीद होने के सिवा जिसकी कोई चाह नही थी, 'एक फूल की चाह' के रूप मे उनकी यह भावना कविता मे व्यक्त होकर अमर हो गई है, लेकिन जिस 'कर्मवीर' के प्रवर्त्तक और सपादक होकर वह खुले रूप मे देशसेवा के क्षेत्र मे आए, उसका यह आदर्श-वाक्य भी उनकी इसी भावना का द्योतक था,

कर्म है अपना जीवन-प्राण,
कर्म मे बसते श्री भगवान।
कर्म से होता दुखियो का त्राण,
आओ, हम सब मिलि होवे कर्म पर बलिदान।

बल्कि सच पूछो तो उनका सारा काव्य और साहित्य ऐसी ही भावना से ओतप्रोत है। लोकमान्य तिलक के स्वर्गवास पर शोकाजलि अर्पित करते हुए भी, 'भारतीय आत्मा' ने अपनी कविता मे उनसे यही कहलवाया था—

भारत मेरा अविभाज्य रहे,
धन-वैभव की, सुख-साधन की
धुन, जीवन मे सब त्याज्य रहे।

और

बलि होने की परवाह नही,
मैं हू, कष्टो का राज्य रहे,
मै जीता, जीता, जीता हू,
माता के हाथ स्वराज्य रहे।

स्वर्गीय बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' से एक बार इस सम्बन्ध मे चर्चा चलने पर उन्होने बताया कि 'प्रताप' मे जब 'भारतीय आत्मा' की कविता पहुचती तो चाहे हम लोग तत्काल समझ न पाए तो भी जैसी की तैसी छापते थे, क्योकि चिन्तन करने पर वह अपने मे ऐसा गूढ अर्थ लिए होती थी जो देश, समाज आदि सभी पर लागू होती थी। और लोगो ने भी उनके काव्य और साहित्य की भूरि-भूरि सराहना की है। किसी ने उन्हे रससिद्ध साहित्याचार्य कहा है तो अन्य ने साक्षात साहित्य-देवता कहने मे भी सकोच नही किया। मै सिर्फ यही कह सकता हू कि उनकी कलम और वाणी मे साक्षात सरस्वती का वास था। जो वह लिखते थे, उसमे साहित्य समाविष्ट होता था और बोलते तो मानो साहित्य की अजस्र धारा बह निकलती थी।

कविता ही नही, गद्य मे भी उनकी वैसी ही गति थी। सम्पादकीय हो या किसी विषय का विश्लेषण, चाहे नाटक या कहानी हो, या फिर व्यग्य ही क्यो न हो, अबाध गति से उनकी कलम चलती थी। आश्चर्य यह कि किसी मे शिथिलता का कही नाम नही। साथ ही प्रेम, विराग, जोश सभी मे एक ही नाद। अत देश-प्रेम का, बलिदान का, प्रेम का, शहादत का, सभी तरह का उनका रूप पाते हुए भी उन्हे लक्ष्यच्युत कभी नही पाया।

इससे भी बढकर बात यह कि पुराने वह कभी नही पडे। द्विवेदी युग से लेकर आधुनिक काल तक वह आगे ही रहे। तरुणाई का उन्होने सदा आह्वान किया। तरुणो को अपनाया तथा आगे बढ़ने को प्रोत्साहित किया। इसीलिए बहुतो

को उन्होने बनाया। विरोध अपने विरोधी का भी नही किया। सहायता को सदा मुक्तहस्त रहे। स्वार्थसाधन की वृत्ति उनमे नही थी, स्वाभिमान कभी नही खोया, सहृदयता के तो साक्षात रूप थे, कलुष और दुर्भावना से सदा दूर रहे। इसीलिए धनी और साधन-सम्पन्न न होते हुए भी जीवन भर सस्थावत रहे, लोगो को बटोरने और प्रोत्साहित करने का कार्य कभी नही छोडा। सेवा के पुरस्कार की माग या चाह कभी नही की। न विज्ञापनबाजी के चक्कर मे पडे, कर्म और केवल कर्म की ही साधना मे रहे। इसीलिए सबके सम्मान-भाजन बने। 'दादा' के प्रिय नाम से सबोधित हुए और व्यक्तियो का समुदाय सदा उनके आस-पास रहा। विश्वविद्यालय को भी उन्हे सम्मानित करना पडा और शासन का सम्मान ग्रहण करने वह राजभवन या किसी सरकारी मुकाम पर नही गए बल्कि स्वय उनकी कुटिया मे आकर राजपुरुषो ने उन्हे सम्मानित किया।

मध्यप्रदेश के होशगाबाद जिले के बाबई गाव मे माखनलालजी का जन्म सन् १८८८ मे हुआ था। नॉर्मल तक की मामूली पढाई के बाद अध्यापक के रूप मे उन्होने कार्यारम्भ किया। लेकिन भाग्य और भावना का सम्मिश्रण उन्हे साहित्य और देश-सेवा के पथ पर ले गया, जिसमे अपनी लगन और सच्ची भावना से आगे बढते हुए उन्होने ताजा कलियो के महत्त्व को कभी नही भुलाया और तरुणाई को प्रोत्साहन देने तथा बलिपथ के लिए उसका आह्वान जीवन भर करते रहे। बलि-पथ के लिए आह्वान करते हुए उन्होने कहा—

मत व्यर्थ पुकारे शूल-शूल,
कह फूल-फूल, सह फूल-फूल।

और

कागो का सुन कर्तव्य-राग,
कोकिल कलरव को भूल-भूल।
सुरपुर ठुकरा, आराध्य कहे,
तो चल रौरव के कूल-कूल।

यही नही, बल्कि एक कविता मे यह भी कहा—

बनने दे अपनी कराह को
बरसो की हुकार।
और जवानी को चढने दे,
बलि के मीठे द्वार।

इसी का परिणाम था कि वृद्धावस्था मे भी तरुण उनकी तरफ खिचते रहे। यह कैसे होता था, इसका एक उदाहरण राजधानी की शोकसभा मे व्यक्त एक 'आपबीती' से अभी-अभी सामने आया। सम्बद्ध सज्जन ने बताया कि नागपुर के एक पत्र मे देशभक्ति की उनकी कविता पढकर माखनलालजी ने अपने सेवक

को भेज, रात को ही उन्हे बुलवाया (प्रकाशित कविता मे खण्डवा का उनका पता दिया हुआ था, इसलिए यह सम्भव हुआ)। बातचीत के बाद, देशभक्ति की भावना की थाह ले, सहसा पूछा, "मेरे साथ रहोगे ?" अनुकूलता तथा बलिदान की तैयारी दरसाने पर पूछा, "अविवाहित हो न ?" ब्याह हो जाने की बात सुनकर कुछ हिचके, पर आश्वस्त किए जाने पर कहा, "आधी रात को भी कहू तो तैयार रहना होगा।" इस तरह कडी परीक्षा कर उन्हे अपना बना लिया।

यह था उनका तरीका तरुणो को आकर्षित करने का। और यह बात नही कि उनकी बलि ही उन्होने मॉगी, उनको तैयार करने और उनके खर्चे चलाने मे भी वह किसी से पीछे नही रहते थे। न जाने कितने विद्यार्थी उनकी सहायता से पढते रहे, साहित्यिक और जरूरतमन्द देशसेवको की गुपचुप सहायता भी वह बराबर करते रहे। यही नही बल्कि रुपये-पैसे से भी बडी सहायता वह यह करते थे कि किसी की अच्छी रचना देखते ही उसकी पीठ ठोकते और उसे प्रोत्साहित करते। छोटे-बडे सभी तरह के साहित्यिक इस दायरे मे आते थे और उनका प्रोत्साहन एव सहयोग पाकर कई खूब आगे निकल गए। कुछ खुलेआम इसकी दाद देते है, पर कुछ ऐसे भी है जो आगे बढ जाने पर कृतज्ञता के बजाय अपना ही अधिक महत्त्व मानने लगे। इतने पर भी माखनलालजी कभी किसी के खिलाफ कुछ नही कहते, न कोई शिकायत। सद्भावना और शुभ-कामना ही उनका तो सदा काम रहा। यही नही, बल्कि वक्त पडने पर सहानुभूति-सहायता मे भी पीछे नही रहे। यह उनकी बहुत बडी विशेषता और विशाल-हृदयता थी।

माखनलालजी के देहावसान का समाचार आकाशवाणी से सुनते ही लगभग अर्द्धशताब्दी पूर्व की स्मृतिया सहसा उभर आयी, जबकि मुझे उनके स्नेहपूर्ण साहचर्य का सौभाग्य लाभ हुआ था और उसके कारण ही मेरा भावी जीवन पत्र-कारिता की ओर उन्मुख हुआ था। वह सयोग मुझे न हुआ होता तो मैं नही जानता कि जीवन की कौन-सी राह मैं पकडता और उसमे कितनी सिद्धि प्राप्त कर पाता। यो भी वह वातावरण बहुत सुखद और स्फूर्तिदायक था।

जलियावाला बाग-हत्याकाण्ड के बाद देश अपनी बेबसी और कुछ करने की आकाक्षा से बेचैन था। तरुण वर्ग ही नही, बुजुर्ग और प्रबुद्ध वर्ग भी पराधीनता के इस नग्न रूप से सिहर उठा था। ऐसे समय गाधी का असहयोग-रूपी अस्त्र सामने आया, जिसने निराशा मे आशा का सचार किया और बेसहारो को गाधी के नेतृत्व का सहारा मिला। सत्य और अहिसा के सहारे, असहयोग का वह हथि-यार पाकर, देश शक्तिशाली ब्रिटिश शासन के मुकाबले को उठ खडा हुआ।

ऐसा वातावरण था जब मै माखनलालजी के 'कर्मवीर' मे पहुचा। सन् १९२० की यह बात है। मेरी उम्र इस समय सोलह वर्ष के आसपास थी और मैं नौकरी करने नही बल्कि पढने के लिए अपने मामा स्वर्गीय शकरलालजी वर्मा के

साथ वहा गया था, जो 'कर्मवीर' मे सहायक सपादक होकर जबलपुर गए थे। पढाई के लिए एक दिन मै स्वर्गीय मातादीन शुक्ल के साथ हितकारिणी हाईस्कूल भी गया, जहा वह अध्यापक थे। लेकिन सिर्फ एक ही दिन वहा गया, फिर नही गया। कारण कि असहयोग का उस समय जोर था और 'कर्मवीर' उसका गढ था। उस वातावरण मे स्कूल जाना भी सभव ही नही था।

स्कूल तो इस तरह छूटा नौकरी का वह समय नही था, न उसकी योग्यता ही थी। आवारागर्दी और आलसीपन मे ही जिन्दगी बिगडती लेकिन वातावरण वैसा नही था, न मन ही उस तरह का था। वह वातावरण भी ऊचा उठानेवाला था। कर्मवीर' का वातावरण दफ्तरी नही घरेलू था, व्यक्ति देशभक्ति की भावना से विभोर और स्फूर्तिदायक थे। 'कर्मवीर' का दफ्तर, प्रेस और कार्यकर्ताओ का निवास दो कोठियो मे समाविष्ट था। स्वर्गीय माधवराव सप्रे और माखनलाल चतुर्वेदी उसके ध्रुवचक्र थे, जिनकी छत्रछाया मे न केवल प्रबन्ध और सपादन का काम ही चलता था बल्कि कार्यकर्ता और अन्य लोग भी अनुप्राणित होकर जीवन को ऊचा उठाने का प्रयास करते थे।

यहा थोडा 'कर्मवीर' के बारे मे बता देना आवश्यक है। अमृतसर काग्रेस के बाद जबलपुर से साप्ताहिक रूप मे वह शुरू हुआ था और माखनलालजी प्रकट रूप मे उसी के सपादक के रूप मे अपने असली नाम से सामने आये थे। उससे पहले भी सपादन का काम उन्होने किया था, खण्डवा की 'प्रभा' का सपादन उन्होने ही किया, पर नाम अन्य का जाता था। इसी तरह 'प्रताप' मे भी कुछ काम किया, पर नाम से नही। कविताएँ अवश्य 'प्रताप' मे बराबर निकलती थी, पर 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से। स्वर्गीय गणेशशकर विद्यार्थी से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था, पर लखनऊ मे हुए हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन से पहले, प्रत्यक्ष सम्पर्क उनसे भी नही हुआ था। तब तक शायद 'भारतीय आत्मा' के सिवा, वह उनका असली नाम भी नही जानते थे। 'नवीन' जी से मुलाकात भी लखनऊ जाते हुए रेल मे ही हुई थी और लखनऊ मे चतुर्वेदीजी से गणेशजी के मिलन पर ही भौचक्के होकर भक्तिभाव से 'नवीन' जी दोनो के चरण-कमलो मे नत होकर आजीवन साथी बने थे।

'कर्मवीर' उस समय के मध्य प्रदेश का (जिसे 'मध्य प्रान्त' कहा जाता था) बहुत शक्तिशाली पत्र था। प्रान्त के सर्वश्री विष्णुदत्त शुक्ल, व्योहार रघुवीरसिंह, ई० राघवेन्द्रराव, रविशकर शुक्ल, रायबहादुर केलकर, बैरिस्टर छेदीलाल और लोकमान्य के साथी माधवराव सप्रे के सहयोग से वह निकला था। इससे प्रान्त के सार्वजनिक जीवन पर उसकी गहरी छाप थी। सम्पादन मे माखनलाल चतुर्वेदी के साथ लक्ष्मणसिंह चौहान का मुख्य हाथ था, जो अब सुभद्राकुमारी चौहान के पति के रूप मे ही ज्यादा पहचाने जा सकते है, पर उस समय वे माखनलालजी

की तरुण भावनाओ से ओतप्रोत थे। आगरा और इलाहाबाद मे पढकर बी० ए० कर चुके थे और उस समय भी एल-एल० बी० कर रहे थे, पर 'अभ्युदय' मे काम कर चुके थे और दिल्ली-काग्रेस की रिपोर्ट जो उन्होने की थी, वह पुस्तकाकार 'अभ्युदय' से निकल चुकी थी। जोश और उत्साह उनका लिखने मे भी उतरता था तथा जलियाँवाला-हत्याकाड ने उन्हे बहुत प्रभावित किया था। उनकी पत्नी सुभद्राकुमारी उस समय इलाहाबाद मे पढती थी और वही से कविताएँ भेजती रहती थी, बाद मे स्कूल छोडकर वही आ गई थी। वह भी जलियाँवाला काड से बहुत प्रभावित थी। सिद्धनाथ माधव आगरकर आगर (ग्वालियर) से हैडमास्टरी छोडकर आए थे और तरुणाई से कुछ ऊपर प्रौढता का बाना लिए हुए थे, पर थे वह भी देश-भक्ति से सराबोर। मामाजी (स्वर्गीय शकरलाल जी) मे भी देश-भक्ति की भावना और भावुकता जोरो पर थी। अन्य व्यक्ति भी, जो पूरे या आशिक रूप मे काम करते थे, इस वातावरण से अछूते नही थे।

मै इस वातावरण मे भी रम गया। माखनलालजी और सप्रेजी से 'केसरी' निकालने के वक्त लोकमान्य किस तरह काम करते थे, यह सुनता और जो भी काम मुझ से बन पडता, वह करते हुए अनायास पत्रकारिता मे दीक्षित होने लगा। आगरकरजी चतुर्वेदीजी के अन्य विद्यार्थियो के साथ मुझे भी अँग्रेजी पढाते और समाचार-चिट्ठियो का सार तैयार करने, पुस्तक-समालोचना के लिए प्रोत्साहन देने, समाचार-सग्रह कराने और अपनी लिखी टिप्पणिया भाषा-सुधार की दृष्टि से देखने को प्रोत्साहित करते थे। माखनलाल जी की डाक का बहुत कुछ काम मैंने सम्हाल लिया था। साथ ही उनका और सप्रेजी का काम भी करता कि वे कुछ बोलकर लिखाते तो लिख देता। इसके सिवा प्रबन्ध के कामो मे भी योग देता। ग्राहको के पते हाथ से लिखे जाते थे और चार आदमियो के होते हुए भी वक्त पर काम पूरा न होता। ऐसे वक्त मैं जुटकर काम कर देता। एक बार ऐसा हुआ कि पतो का ढेर था और वक्त कम, तब मैने कहा कि 'इसमे क्या धरा है' और सुबह से ही जो लिखने बैठा तो खत्म करके ही उठा। वह तब की बात है जब लाला लाजपतराय बम्बई मे ट्रेड यूनियन काग्रेस के सभापति हुए थे। उधर से उनके गुजरने पर माखनलालजी कुछ लोगो के साथ स्टेशन गए थे और मुझे काम करते देख गए थे। दोपहर को जब वे लौटे तब भी मुझे उसी तरह काम करते देख सहसा उन्होने कहा था "ओ हो! सम्पादक जी डटे हुए है!" बस इसी तरह मेरा 'सम्पादक जी' नामकरण हुआ, जिसका उन्हे बाद मे भी स्मरण रहा और हरि-द्वार-सम्मेलन के अपने अध्यक्षीय भाषण मे उन्होने मेरा उल्लेख ही नही किया बल्कि लौटते हुए दिल्ली मे उस समय प्रकाशित अपनी 'हिमकिरीटिनी' पुस्तक प्रेमस्वरूप जो मुझे दी, उसमे अपने हाथ से लिखा—'प्रिय श्री मुकुट जी और बचपन के मेरे 'सम्पादक जी' को सस्नेह।' कहने की जरूरत नही कि उनके ऐसे

व्यवहार से मैने कितना प्रोत्साहन पाया और ऐसे प्रोत्साहनो के फलस्वरूप ही अध्ययन-उन्नति करते हुए मैं सचमुच सम्पादक बना। इसलिए पत्रकारिता मे मै उन्हे अपना आदिगुरु मानूँ और उन्हे सदा प्रेम एव श्रद्धा से स्मरण करूँ तो यह स्वाभाविक ही है।

माखनलालजी जब इस दुनिया मे नही रहे तो उनके साथ सम्बन्ध की कुछ बातो को जिन्हे बहुत कम लोग आज जानते होगे, प्रकाश मे लाना अप्रासगिक नही होगा।

माखनलालजी सम्पन्नता मे नही पले थे, पर दूसरो का मार्गदर्शन करने और अपने आचरण आदर्श रखने की कोई दैवी शक्ति उनमे थी। उदारता और सहृदयता शायद उन्होने अपने अभावपूर्ण जीवन से ही अपनायी थी, क्योकि जो स्थिति उन्होने भोगी, उससे अभावग्रस्तो की कठिनाई और उनकी सहायता की आवश्यकता वह पूरी तरह समझते थे। विद्यार्थियो और साहित्यिको की सहायता वह आँख मूँद कर करते थे। उनके भाई तथा दूसरो से उनके बारे मे जो जाना-सुना—उसके अनुसार, जब वह शायद सात रुपये महीने के अध्यापक थे तब भी उनकी यही वृत्ति थी। साथ ही, जैसा कि उस समय शायद आम बात थी, अपने विद्यार्थियो को स्कूल मे पढाने तक ही अपने कर्तव्य की इतिश्री वह नही मानते थे। इससे घर पर भी, रात को भी, विद्यार्थी पढने आते। और कभी-कभी ऐसा होता कि पढने-पढाते देर हो जाती तथा विद्यार्थी या वह नीद मे वही लुढक जाते। इसको लेकर कई तरह के प्रवाद फैले और उनके चरित्र पर भी कीच उछाली गई, लेकिन वह अविचल रहे और अपनी गति चलते रहे।

गणेशशकरजी से मुलाकात की बात यो बताई कि पत्र-व्यवहार तो कविताओ को लेकर पहले से था, पर मुलाकात 'प्रभा' परिवार के साथ खण्डवा से हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन मे लखनऊ जाने पर ही हुई। इस रेल-यात्रा मे ही उन्हे बालकृष्ण जी मिले, जो उज्जैन के माधव कालेज के विद्यार्थी थे और शायद सम्मेलन के लिए ही लखनऊ जा रहे थे। अपने स्वभाववश माखनलालजी बालकृष्ण की ओर आकर्षित हुए और बातचीत मे जान लिया कि कोई गरीब विद्यार्थी है। रास्ता काटने पर लखनऊ आए तो माखनलालजी ने बालकृष्ण से पूछा, "कहाँ ठहरोगे?" "हमारा क्या, हम तो विद्यार्थी है, कही भी टिक जाएगे।" जवाब पाकर उन्हे अपने ही साथ ठहरने का निमन्त्रण दिया। बालकृष्णजी रास्ते भर देखते आए थे कि माखनलालजी सोडा भी पीते थे (क्योकि हाज्मा तब भी ठीक नही था) और छूतछात का ब्राह्मणोचित ध्यान नही रखते थे, अत. उन्होने सकोच किया और कहा कि 'तुम्हारे साथ हम भी भ्रष्ट नही होना चाहते।' माखनलालजी ने जब भ्रष्ट न करने का आश्वासन दिया, तभी वह उनके साथ हुए।

लखनऊ के साहित्य सम्मेलन की घटना है। माखलनाल जी यो सकोची थे

और लखनऊ मे भी अपने खण्डवा के साथियो के बीच छिपे-छिपे-से रहते थे पर गणेश जी को उनके आने की खबर मिल चुकी थी। इसलिए जिस 'भारतीय आत्मा' से आन्तरिक साक्षात्कार कर चुके थे, उसके प्रत्यक्ष साक्षात्कार के लिए खण्डवा कैम्प पहुँचे और उन्हे तलाश करने लगे। जब एक तरफ छिपे-से माखन-लालजी को उन्हे बताया गया तो उन्होने लपककर माखनलालजी को गले से लगा लिया। कहते है, वह दृश्य बडा भावपूर्ण था और भाव-विह्वल बालकृष्ण 'नवीन' को जब यह मालूम हुआ कि 'प्रताप' के जिन प्रतापी सम्पादक की वह मन ही मन पूजा करते थे, वह यही है तो उनके साथ ही जिन माखनलाल जी ने रेल मे उन्हे प्रेमपूर्वक गले लगाया था उनका महत्त्व भी उन्होने आँक लिया और लपककर दोनो के चरणो मे लिपट गए। बस तभी से युगल जोडी मे बालकृष्ण जी भी मिल गए और फिर तो कानपुर मे उनकी शिक्षा-दीक्षा, पत्रकारिता तथा राजनीति की राह भी खुल गई। इसी के फलस्वरूप बालकृष्ण 'नवीन' के रूप मे विकसित हुए।

इसके बाद गणेशजी का तथा माखनलालजी का कानपुर आना-जाना भी शुरू हुआ और खण्डवा मे कई बार गणेशजी को ऐसे भी मौके आए कि माखनलाल जी के घर सूखे चावलो के सिवा कुछ भी न मिला। लेकिन जमाना ऐसा था कि स्वाभिमान के साथ बिताई गरीबी मे लज्जा का अनुभव नही किया जाता था। फिर, अध्यापक माखनलाल का तो यह हाल था कि विद्यार्थियो की जरूरत पहले और उनकी बाद मे, इसलिए वेतन लेकर घर आते-आते किसी की पट्टी और किसी की पुस्तक आदि मे ही उसका काफी अश खर्च कर आते थे।

'कर्मवीर' के दिनो मे भी उनका यही हाल था और इन्दौर आदि मे विद्यार्थी उनके खर्च से पढते थे, जो छुट्टियो मे जब आते तो उनका स्नेह ही नही पाते बल्कि उनके कपडे तक भी इच्छानुसार ले जाते थे। अन्यो के प्रति भी उनकी उदारता मे कमी न थी और प्रवास मे जाते वक्त उनके गले मे जो सूती या रेशमी शाल होता वह वापसी मे शायद ही कभी वापस आता, क्योकि किसी जरूरतमन्द को देखते ही उसे दे डालते थे।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के होते हुए भी छूतछात जैसी भावनाओ से वह दूर थे और सैयद अमीर 'अली' मीर जैसे मुसलमानो के प्रति स्नेह और आदर का व्यव-हार करते थे। जबलपुर आने पर मीर साहब 'कर्मवीर' कार्यालय मे ही ठहरे थे और एक बार रसोई मे साथ-साथ बिठाकर उन्हे और चतुर्वेदीजी को मैने भोजन कराया था।

साथियो के साथ अपनेपन का और मुक्त व्यवहार उनका होता था। बात-चीत मे विनोद बराबर चलता। कविताओ के सम्पादन के वक्त भी, मै देखता, कविता मे डूबकर उसे पढते जाते और आपस मे सलाह करके सशोधन करते।

अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा 'शकर', रामनरेश त्रिपाठी से लेकर, उस समय नरसिंहपुर मे विद्यार्थी रामकुमार वर्मा और इलाहाबाद मे पढ रही सुभद्राकुमारी चौहान तक की कविताए वहाँ आती थी। सबकी हस्त-लिपियाँ तभी पहली बार मैने देखी और यह भी देखा कि कविता का पृष्ठ किस भावना से सॅजोया जाता है। विनोद की इसमे भी कमी नही रहती थी और एक बार सुभद्राकुमारी तथा लक्ष्मणसिंहजी दोनो की कविताएँ मजेदार ढग से दी गई थी। पति-पत्नी दोनो ही जलियाँवाला से दग्ध थे और कविता के विषय भी स्वभावत यही थे। लक्ष्मणसिंहजी की कविता का शीर्षक था स्त्रीवाची—'नही कह पाई कुछ हाल !' उसे नीचे दिया गया और सुभद्राकुमारी की कविता (शायद 'जलियाँ-वाला मे वसन्त' को ऊपर। यो जलियाँवाला बाग मे 'वसत' वाली सुभद्राकुमारी की कविता, इस सम्बन्धी कविताओ मे नया मोड थी, क्योकि जहाँ अब तक कविगण जलियाँवाला बाग के चित्रण सुनहरे रूप मे करते थे वहाँ सुभद्राकुमारी ने पहली बार लिखा कि वहाँ कोयल नही, काक है शोर मचाते' और उसका बीभत्स रूप उपस्थित किया। रामनरेश त्रिपाठी तथा अन्य वरिष्ठ कवियो ने तुरन्त उसकी दाद दी और फिर उस विषय की कविताओ ने यही रूप धारण किया।

माखनलालजी का जीवन सुखो तथा सम्मान की चाह के लिए नही बल्कि देश को पराधीनता और अभावो से मुक्त करने के लिए समर्पित था। इसीलिए उन्होने अमीर बनने के बजाए बलि-पथ पर चढने और दूसरो को भी उसी पथ को अपनाने के लिए आह्वान करने का मार्ग अपनाया। साहित्य के वह मूर्त रूप थे, पर साहित्य उनका आराध्य नही बल्कि इस उद्देश्य की सिद्धि का साधन ही था। वाणी पर सरस्वती थी, भाषणो से वह मन्त्रमुग्ध करते थे, पर उसका उप-योग भी उन्होने इस उद्देश्य के लिए ही किया। उसी उद्देश्य के लिए पहले उन्होने पिस्तौल का मार्ग अपनाया, क्रान्तिकारी बने। इसी के लिए बाद मे गाधी के अनुयायी हुए। कष्टो और बाधाओ की उन्होने परवाह नही की। और आजादी की अलख जगाते हुए ही उन्होने जीवन-यात्रा पूरी की।

इसीलिए राष्ट्र आज उन्हे याद करता है और अस्सी वर्ष की परिपक्व अवस्था मे अपनी चाह के अनुसार शहीद-दिवस पर जब उन्होने निर्वाण प्राप्त किया तो सारा राष्ट्र उनके प्रति नतमस्तक है। उत्सर्ग और बलिदान की जो अलख उन्होने जगाई, वह उनके साथ ही खत्म न हो जाए, यही उनके प्रति श्रद्धावनत होते हुए हमारी कामना है।

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी

० ०

किशोरीदास वाजपेयी

मै सन् १९१६ मे हिन्दी की ओर उन्मुख हुआ, जब प० किशोरीलाल गोस्वामी काशी से लौटकर वृन्दावन मे रहने लगे थे और 'वैष्णव सर्वस्व' मासिक पत्र का सम्पादन-सचालन कर रहे थे। उन्ही के सम्पर्क मे आकर हिन्दी जगत् को कुछ देखने लगा। प्रथम विश्वयुद्ध के दिन थे और राजा महेन्द्रप्रताप तथा प० राधाचरण गोस्वामी की राष्ट्रीय हलचलो ने वृन्दावन के भक्ति-प्रवाह मे मिलकर एक अद्भुत दृश्य उपस्थित कर दिया था। कालिन्दी मे भगीरथ तपस्या मिल रही थी। उसी समय हिन्दी के प्रमुख और प्रौढ कवि प० माखनलाल चतुर्वेदी के नाम से और कामो से परिचित हुआ। उस समय हिन्दी के दो ही प्रमुख राष्ट्रीय पत्र थे—प्रतापी श्री गणेशशकर विद्यार्थी का 'प्रताप' और सजग प्रहरी प० माखनलाल चतुर्वेदी का 'कर्मवीर'। दोनो साप्ताहिक थे और प्रबल वेग से राष्ट्र मे नव चेतना प्रसारित कर रहे थे। विद्यार्थी जी के राष्ट्रीय कार्यो के गढ कानपुर का ही निवासी होकर भी तब तक मै उनके प्रत्यक्ष दर्शन न कर सका था। जब होश सभाला, पजाब मे सस्कृत-शिक्षक बनकर रहने लगा। मुझे क्या पता था कि उत्तर प्रदेश को जगाने वाले विद्यार्थीजी इतनी जल्दी विदा हो जाएँगे। परन्तु खडवा के 'कर्मवीर' प० माखनलाल चतुर्वेदी के दर्शन मुझे कई बार प्राप्त हुए।

सन् १९२४ या २५ की बात है, मैं पजाब से मध्यप्रदेश चला गया। रायपुर की रामचन्द्र सस्कृत पाठशाला का मैं अध्यापक था और इस पाठशाला की समिति के मत्री थे प० रविशकर शुक्ल। शुक्लजी पहले अपने छोटे से समाज की सेवा करते थे। 'कान्यकुब्ज' नामक मासिक पत्र निकालकर एक रूढि-ग्रस्त समाज को जागरण दे रहे थे। नागपुर काग्रेस मे मै भी गया था, जहाँ श्री जमनालाल बजाज अपनी 'रायबहादुरी' छोडकर प्रथम बार 'राष्ट्रबहादुर' बने थे—काग्रेस के इस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष थे। प० माखनलाला चतुर्वेदी के दर्शन यहाँ दूर से किए। प० रविशकर शुक्ल ने इस अवसर पर कान्यकुब्ज-सम्मेलन भी किया

था और उन्होने पेशावर से आये हुए प्रतिनिधि के रूप मे मेरा परिचय कराया था। उस समय मै पेशावर के 'नेशनल हाई स्कूल' मे हैड सस्कृत टीचर था। उसके कई वर्ष बाद रायपुर मे 'राजनैतिक सम्मेलन' हुआ जहाँ चतुर्वेदीजी के निकट से दर्शन हुए।

प० रविशकर शुक्ल काग्रेस से पृथक् होकर उस 'स्वराज्य पार्टी' मे आये थे, जिसकी स्थापना प० मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चितरजनदास ने की थी। राजनैतिक सम्मेलन का रूप व्यापक था, स्वराज्य पार्टी मात्र का जलसा वह न था। मुझे जहाँ तक पता है, चतुर्वेदीजी काग्रेस को छोड कभी किसी दूसरी पार्टी मे नही गए है पर इस राजनैतिक सम्मेलन की अध्यक्षता उन्होने ही की थी। इस सम्मेलन मे स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की भी धूम थी। स्वामीजी उस समय राष्ट्रीय दृष्टिकोण से हिन्दू सगठन का बिगुल बडे जोर से बजा रहे थे। प० रविशकर शुक्ल आर्यसमाज से प्रभावित थे और प० मदनमोहन मालवीय की उन पर छाप थी। चतुर्वेदीजी तो आर्य सस्कृति के प्रतीक है ही। इसी से आप समझ सकते है कि उस सम्मेलन का रूप क्या रहा होगा। चतुर्वेदीजी और स्वामी जी भी शुक्ल जी के घर पर ही ठहरे थे। वही मैने समीप से उन्हे देखा, पर उनसे बात करने लायक तो था नही उस समय। उनके अध्यक्षीय भाषण को मैने ही लिपिबद्ध किया था, समाचारपत्रो मे भेजने के लिए। दो और सज्जन भी भाषण नोट करने को बैठाये गए थे पर मेरा श्रम ही सराहा गया। चतुर्वेदी जी ने स्वय कहा कि पूरे का पूरा भाषण वाजपेयी ने नोट करके सजा-सवार दिया है। 'शार्ट-हैड' की हिन्दी मे तब कोई चर्चा ही न थी।

सम्मेलन की अध्यक्षता

सन् १९४३ मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हरिद्वार मे आमत्रित हुआ। यह अधिवेशन पहले 'भैणी साहब' (पजाब) मे होने को था। सन् १९४२ के तूफान के कारण वहाँ न हो सका। फिर लाहौर मे करने का उद्योग हुआ पर वहाँ भी न हो सका। तब सम्मेलन की कार्य-समिति ने निश्चय किया कि प्रयाग मे ही अधिवेशन कर लिया जाए। सम्मेलन की 'स्थायी समिति' मे पहुँचकर मैने कार्य-समिति के निर्णय को रद्द करा दिया और हरिद्वार का निमन्त्रण देकर उसे स्वीकार करा लिया। हरिद्वार मे मेरे महन्त शान्तानन्द नाथ ने स्वागताध्यक्ष का पद ग्रहण किया और प० माखनलाल चतुर्वेदी की अध्यक्षता मे सम्मेलन का यह अधिवेशन धूमधाम से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर चतुर्वेदीजी चाँदी के सिक्को से तोले गए। वह सब रुपया सम्मेलन को एक विशेष प्रकाशन के लिए दिया गया—'दिवगत साहित्यिको की अप्रकाशित रचनाओ को प्रकाशित करते रहने के लिये।'

इसके अनन्तर सम्मेलन अतिथिशाला (प्रयाग) मे कितनी ही बार चतुर्वेदी जी से भेट हुई। सम्मेलन स्थायी समिति के प्राय प्रत्येक अधिवेशन पर वे पहुँचते थे। कई बार प्रस्तावो पर मैने उनसे अपना मतभेद भी प्रकट किया।.तर्क-सगत बात मान लेने मे वे देर नही लगाते थे।

तरुणाई के गौरी श्रृंग के चरणों में

० ०

गोपीकृष्ण गोपेश

हाँ, दादा के विषय मे कुछ लिखूँगा इस समय दो डायरिया मेरे सामने है — एक पर दादा के हस्ताक्षर है माखनलाल चतुर्वेदी २१ २ ४५। ऊपर मेरी लिखावट मे है 'दादा से भेटे, और अन्दर उनके कुछ अपने सस्मरण है—पहली जनवरी वाले पन्ने पर है, ऊपर ही—'जवानी की जरूरत का नाम प्रेम है।' साफ है कि बातचीत के बीच से उडा लिया गया यह टुकडा उन्ही का है। नीचे लिखा है

"दादा एक दिन शौचालय मे थे। मगर उनका रामपदारथ इससे अवगत न था। दादा लिफाफे के पीछे खाली हिस्सो पर कविताएँ लिखा करते थे सो, उसे झाड़ू-बहारू करते करते एक चिट मिल गई। यानी, ऐसा ही कवितावाला एक लिफाफा मिल गया उसे, उसने कविता देखी और कहा, "हमारे पडितजी भी ऐसे है कि कागद माँ कविता नही लिखते, खाली लिफाफा के पीछे लिखते है " पडित जी ने सब कुछ सुना और हँसते रहे।

उसके नीचे—

एक बार कमिश्नर का निमत्रण-पत्र लेकर एक अर्दली दादा के यहाँ आया। उसने इत्तला दी और देर होते देखकर बोला, " पडित ऐसा है कि बिना दो घटे लगाये बाहर निकलता ही नही।" पडित जी पर्दे के पीछे से सब कुछ सुनते और हँसते रहे।

फिर लिखा है

"गुनाह से तौबा करने वाले गुनाह करने के लिए ही तौबा करते है।"

"स्त्रियाँ सौ रूप मे पुरुष है। वे सदा ही अधिकारपूर्ण शब्दो मे बाते करती है। कभी नही कहती— मै जाऊँगी। कहती है हम जायेगे, हम खायेगे, आदि ॰ "

"स्त्री किसी कविता की प्रशसा करते समय पुरुष की इच्छा और सुरुचि का ध्यान रखती है, अर्थात् अपने भाव प्रकट नही कर पाती।"

"ईटो और पत्थरो के प्रति मनुष्य की ममता हो और वह मनुष्य को पूछा न करे, ऐसी कौन-सी ममता है? मै सौ सस्थाएँ जमा सकता हूं, और उखाड-कर फेक सकता हूँ। मेरा साहित्य-सम्मेलन से सम्बन्ध केवल टण्डन जी से सम्बन्ध है।"

"पूजा उस पदार्थ को कहते है जिसमे मीठा माधुर्य बाहर से नही मिलाना होता। अपने प्रत्येक प्रतिभापूर्ण अथवा स्नेहमय उन्माद को प्रभु के चरणो पर रखने को ललचा वे सीधे मेरे पास पहुंचते रहेगे। मेरी इच्छा रहती है कि प्रभु के पूजको की चरण धूलि के पास ही ढूँढने पर मैं मिल जाया करूँ।"

और, इन पक्तियो के साथ ही याद करने की कोशिश करता हूँ, तो बहुत सिर मारने पर भी खयाल नही आता कि मैंने 'दादा' के प्रथम दर्शन कब किये, जिसने मुझे मिलाया। शायद भैया साहब श्रद्धेय श्रीनारायण जी चतुर्वेदी ने, शायद 'स्वर्गीय' गुरुवर पडित अमरनाथ झा ने, शायद आदरणीय सनेही जी ने? हॉ, सन् '४३ के साहित्य-सम्मेलन के हरिद्वार अधिवेशन का ध्यान अवश्य ही है। उस समय की 'दादा' की आकृति आज भी ऑखो के सामने है दूधिया खद्दर की धोती, कालरवाला सोशलिस्टी कुर्ता, मुलायम मलीदा की बिना कालरवाली जैकेट, धवल कपूरी गॉधी टोपी और कधो पर तूश। दादा' तराजू से उतर रहे है'। रुपयो से तौले गये है रुपये 'सम्मेलन' को मिलने है 'सम्मेलन' के इस वर्ष तक के सभापति डाक्टर अमरनाथ झा अपनी सदाबहारी मुसकान के साथ हल्के से कहते है—"अरे बाबा तौलना था तो पारसाल अबोहर मे मुझे तौलते 'सम्मेलन' को कुछ मिलता। इस वर्ष माखनलालजी को तौला भला कितना रुपया मिलेगा 'सम्मेलन' को? फिर शाम को कवि सम्मेलन होता है सनेही जी अध्यक्षता करते है पता नही क्या गोलमाल होता है कि पीछे शोर-शराबा शुरू हो जाता है। मारपीट की खबर मिलती है सनेही जी मसन्द के सहारे बैठे है। शकर जी के दरबार से आवाज लगाते है। माइक के सामने बैठे कवि से कहते है "पढिये, आप पढिये" मगर, कैसे पढिये? किसको सुनाइये? कोई सुने भी तो? कि · इतने मे ही दादा अपनी कृश काया लेकर माइक के सामने आ खडे होते है। जनता शान्त हो जाती है और कवि सम्मेलन दो बजे तक चलता है ·

फिर सन् '४४—सम्मेलन का जयपुर अधिवेशन। दादा का वही रूप। दादा सभापतित्व बाबा गणेशदत्त को सौप रहे है। बाबा जी का अभिनन्दन किया जाता है। मगर भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी कहते है, "बाबाजी, आपने पजाब के धर्म पर शासन किया है आज तक, उसके हृदय पर नही ·अब हृदय की बारी है। अपनी ताकत तौल देखिये। इसके साथ ही एक अजीब हाबा-डाबा, पैन्डिमो नियम· मगर

'दादा' खडे होते है—मै अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आज तक के सभापति की हैसियत से आपको आज्ञा देता हू कि आप शान्त हो जाइये · और देखते-देखते हर ओर शान्ति व्याप्त हो जाती है

फिर, सन् तो अब ठीक याद नही शायद सन् '४५ गोरखपुर के सेंट ऐंड्रूज कालेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री राजनाथ पाडेय ने कवि सम्मेलन का आयोजन किया। अखिल भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन। प्रयाग से 'दादा' के साथ मै भी चला और 'बच्चन'[1] भी गोरखपुर पहुँचे। बडा स्वागत-सत्कार कवियो का माघ-मेला क्या, प्रयाग या हरिद्वार का कुम्भ स्वर्गीया सुभद्राकुमारी चौहान और तमाम दूसरे यशस्वी कविगण · पाडेजी प्रसन्न कि ऐसे स्वास्थ्य के बावजूद 'दादा' आ गये। बस अब तो सिकन्दर ने दुनिया जीत ली

दिन मे 'दादा' से एक सज्जन ने सुना कि यहाँ सगीत-सम्मेलन भी चल रहा है और श्री ओकारनाथ ठाकुर आये हुए है · इस समय उनका कार्यक्रम है, उन्होने प्रणाम भेजा है। 'दादा' हम सबसे कहते है—"चलो, बेटो पडितजी यहाँ है तो उनके दर्शन तो करने ही है।" हम सब रवाना होते है। पडाल मे पण्डितजी ललित का आलाप ले रहे है कि दादा दल-बल सहित पहुँचते है। ओकारनाथ जी देखते है और आलाप लेते-लेते ही कहते है कि "चतुर्वेदीजी के चरणो मे मेरे प्रणाम। पारखी चौकते है और उलटकर देखते है तो पीछे कुछ कमोशन नजर आता है। बीच मे ही श्री माखनलाल चतुर्वेदी—भारतीय आत्मा। जो नही पहचानते, वे भी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जैसे मूक प्रणाम भेजते है। फिर पण्डित ओकारनाथ जी जमकर गाते है जैसे कि दादा को स्वरो के सुमन चुन-चुनकर भेंट कर रहे हो। सगीतज्ञ बाद मे कहते है, ओकारनाथ के क्या कहने है! फिर कानो को हाथ लगाते है। मगर, आज तो पण्डितजी ने रस ही बरसा दिया। कोई अधिक रस-भीना व्यक्ति चलते-चलते कहता है कि अरे भाई 'राग रसोई पागडी कबौ कबौ बन जाये।'

कवि-सम्मेलन के क्या कहने! लगभग पन्द्रह वर्षो तक कवि-सम्मेलन कमाने के बाद भी ऐसे रससिक्त आयोजन का ध्यान नही पडता। उस समय के कवियो मे से तो कई आज है भी नही। अश्रुजी—'चीटियो की पात', फलक जी—'दतिया का कवि फलक कहाता हूँ'· दादा सबकी कविताओ पर आशीर्वाद बरसाते है सम्मेलन दो दिन तक चलता है।

गोपालसिंह नेपाली का, बेधडक बनारसी का और मेरा तिगड्डम—साँठ-गाँठ कि एक को बुलावा आये कही से तो बाकी दोनो को बुलवाने का जिम्मा उसी पर। रोजगार चलता रहा। इस घनिष्ठता का फल यह हुआ कि लम्बी चोटी

---

१ धर्मयुग के यशस्वी सपादक और हिन्दी के प्रतिभा-सपन्न साहित्य-शिल्पी डाक्टर धर्मवीर भारती का घर का नाम।

वाले बेधडक के पीछे मै जब देखिये, तब। और वे बेचारे कि देखो जी—हाँ·· कह दिया ··और, बस!

सो, गोरखपुर मे बेधडक जी के पट्टू के ओवरकोट की तरफ मेरा ध्यान जाता है। घुटने के छ इच नीचे तक झोलमझाल कि बिल्कुल झोल किस की···यह आज भी नही कहता · बस, तो दिमाग चलता है। दादा सुबह अपने बेटो और साथियो के साथ प्यार की बाते करते रहते है कि मैं भडभडाता हुआ पहुँचता हूँ—"दादा, सुना आपने···अभी-अभी मालूम हुआ कि कल बेधडक भटनी से गुजरे तो किसी सोते हुए सिपाही का ओवरकोट उठाकर गाडी पर चढ गये। वही विराज रहा है उनके बदन पर। यह हरकत कहाँ तक ठीक है?" दादा मेरा गम्भीर चेहरा देखते है तो जैसे कहते है कि हा, यह तो बहुत ही खराब बात है। इनने मे गोरखपुरी जाडे को, उसी ओवरकोट के माध्यम से, अपनी हास्यरसी रुबाइयाँ सुनाते बेधडक कमरे मे दाखिल दादा को जैसे सबूत मिल जाता है। कहते हैं, "बेधडक जी, आपने किसी सिपाही का ओवरकोट उडा दिया·· बहुत ही बेजा बात है।" बेधडक की सिट्टी-पट्टी गुम मैं दूसरे दरवाजे से बाहर·· पर बेधडक फिर सम्हालते है। दादा यह उसी बदमाश गोपेश की कारस्तानी है। कहाँ गया वह? और वे कमरेसे बाहर मेरी खोज मे·· दूसरी ओर बात साफ ·· और उस डाक बगले के उस कमरे की छतो को उडाने मे सचेष्ट खुले हुए ठहाके ·

फिर तो अनगिनत बार दर्शन किये दादा के—अनेक बार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की 'सत्यनारायण कुटीर' मे कि साथ मे दवाइयो का डिब्बा और जवानो से घिरे 'दादा'। स्पिरिट मे जवानो से भी ज्यादा जवान जवानी को बुढापे की चुनौती। शाम को भारती और जगदीश गुप्त और कई-कई लोगो की नई कविताएँ सुनने के बाद 'दादा' सामूहिक अनुरोध पर अपनी कविताएँ सुनाते—

वह टूटा जी जैसा तारा
कोई एक कहानी कहता,
झाँक उठा बेचारा
एक कहानी के दो खण्डो ने
जैसे विधि को धिक्कारा
और कहानी वाला बोला
—तीन हुआ जग सारा!

० ० ०

धरती पर मैं लेट रही हूँ,
वह मुझ पर लेटा है
विधि का कुछ अधिकार नही है।
यह मेरा बेटा है!···

इसके साथ ही ध्यान आ रहा है 'साहित्यकार ससद्' मे आयोजित एक वि शेष गोष्ठी का। जिज्जी यानी श्रद्धेया श्रीमती महादेवी वर्मा प्रस्तुत विषय पर अपने विचार प्रकट करती है (जरा आज के नये परिप्रेक्ष्य और गत्यवरोध जैसी आवाजो के बीच निम्न पक्तियो को देखिये)—

'गतिरोध को लेकर ही गति के विषय मे विवाद उठते है अर्थात् या तो चरणो मे शक्ति नही या दृष्टि कोई नई दिशा माँगती है—'

० ०

'काव्य ऐसा कमल है जो कभी मुरझाता नही · साहित्य जीवन का परिष्कार क्रम है···

० ०

'फूल बोलता नही, इसीलिए उसका महत्त्व नही है और शख बोलता है, इसलिए उसका महत्त्व है···कौन कहेगा ?'

'तुलसी के आँसुओ मे आग थी। और शिवाजी की तलवार मे पानी था।'

० ०

'आज जीवन से आगे के जीवन की प्रेरणा करे, उसमे बल होगा पर, कविता की प्लानिग नही हो सकती।'

'राजनीतिज्ञो के साथ खडे होकर हम अपनी ऊँचाई क्यो नापे ? आप किस वोट से प्रेमचन्द को हरा देगे ?'

और, जिज्जी के बाद ही 'दादा' मुखर हुए—'एक सपना···एक की गोद मे वीणा, एक की गोद मे बच्चा ·एक कान उमेठता है, एक खूटी, तो एक उपयोगी और एक दुरुपयोगी कैसे ? ··

'सारा जीवन गुलाब का पौधा है। कोई तोडता है, कोई उसका चित्र बनाता है, कोई उप पर कविता लिखता है, कोई उसकी कली की फुसफुसाहट पर आसावरी गाता है, और कोई गधा उसे आकर खा जाता है·· '

'काव्य का परिवार है· परिवार जियेगा तो काव्य जियेगा और परिवार मरेगा तो काव्य मरेगा। काव्य न इतिहास है, न भूगोल होने का दावा करता है। कवियो ने हजार बार कहा हमसे भूगोल वसूल न करो—हम उस माँ के काम [आते है जिसके बच्चे की धमनियो से हम कहते है। हम और किसी के काम नही आते। बरसात के पानी का एक पानी वह है जो खेतो मे जायेगा, एक वह है जो पिया जाएगा। उजले पानी के पार्सल कही से नही आये थे, जिसे हमने गदला कहा, वही कुछ दिनो बाद साफ और उजला हो गया समष्टिवाद के दिनो मे माँ का बच्चा मरेगा, उसे दुःख नही होगा ? व्यक्तिवाद यह है कि कवि आग लगने पर बाँसुरी छोड, बाल्टी लेकर दौडेगा···'

'हमारे अस्तित्व की सब से बडी चुनौती सिनेमा की भाषा है। हम पैसा देते है

और भाषा सुनते है ··'

'कला अगर माँ के पेट का बच्चा है तो गेहूँ न मिलने पर माँ कब तक बच्चे को चिपटा कर रखेगी ? मनुष्य को आनन्द आ गया है मरने-मारने मे···'

'मरना ही है···सिपाही बनते हो, मैदान मे मरो, सिपाही न बनो तो मौत से मरो भाग जाओ तो भूख से मरो, पकडे जाओ तो जेल मे मरो।'

'जिसका बोझ नही उठा, उन कृतियो को हमने मकान मे छोड दिया। हम कला को छोड देते है। कला पहले बलि देने की चीज है—पर कला ही मानवता को जीवित रख सकती है।'

मुसकराहट भावना की माँग है ·काव्य की माग है· भाई, लडते हो, जरा मुसकरा तो दो '

'सूर, तुलसी, कबीर, मीरा के चार खम्भो पर 'आज' जीवित है। हम भी ऐसे खम्भे बना दे और 'वाद' सूँघना छोड दे तो काम बन जाये।'

'पछी उडे पर शाम को घर लौट आया करे और थकान की गरमी से अपने पखो को गरमा दिया करे कि पीढी चलती जाये कृपया इतने ऊँचे न उडिये कि सूरज जुगनू दिखाई देने लगे· हम आप रेल-ट्रेन पर पडने वाले छोटे स्टेशन है। युग की गाडी हम-आपसे होकर आगे निकल जायेगी · इन्द्रधनुष के सब रग मिले तो इन्द्रधनुष हो।'

'हमारी पराजय के खिलाफ आज के साहित्यकार और कवि का विद्रोह होना चाहिए।'

'और, समझ मे नही आता कि उम्र की बर्फ के नीचे छिपी इस आग की रोशनी से हम सामने जगल का अँधेरा रास्ता पार क्यो नही करते ?''···इस ब्रर्फ बनाम आग ने हमारे युग को और हमे गुलामी के दौरे मे भी स्वाभिमान का बोध दिया है—''कहा है ··मैं शासित के स्टैंडर्ड से एक क्षण जीने की इच्छा नही करता—मै वेशभूषा से भारतीय, पर दिमाग से ब्रिटिश हूँ।'

पर, विविध प्रश्नो और अनेकानेक समस्याओ के इस युग मे भी कुछ कम नही था दादा के पास हम सब के लिए। उन्होने हमारी पीढी के मन के विद्रोह और आग को पास से देखा था, समझा था, दुलराया था। ईर्ष्या का तो प्रश्न ही कभी नही उठा है। वे वयोवृद्ध थे और वयोवृद्धो के साथ थे, वे जवान थे, और हम सभी जवानो के साथ थे। उनका बुढापा जवानी का गौरीशृ ग रहा !

और, तरुणाई के इसी गौरीशृग के चरणो मे मै अपने अनन्त प्रणाम भेजता हूँ।

बुढ़ापा जो सदा जवान बना रहा

◊ ◊

ब्रजकिशोर 'नारायण'

जमाने के जाम मे ऐसी अनेक सुराए छलछलाई है जिन्होने जवानियो को मदहोश किया है ! बेहोश किया है ! ! खामोश किया है ! ! !

मगर ऐसी सुधा किस घट से छलकी है जिसे चखकर झुर्रियो मे तनाव आ गया हो, झुकाव मे उठाव उभर आया हो, मौत को जिन्दगी मिल गई हो ।

प० माखनलाल चतुर्वेदी जिसे साहित्य जगत् ने प्रारम्भिक काल मे 'एक भारतीय आत्मा' के छद्म नाम से शीर्षस्थ किया था ऐसी ही सुधा के अक्षय स्रोत थे । जिनकी वाणी आजीवन षोडशी ही बनी रही और जिनकी वीणा से बहार ही बजती रही । जब वे वर्षो से बीमारी, वृद्धता और विवशता के बन्धन मे जकड दिए गए थे, फिर भी उनकी रचनाएँ वह अमृत उँडेल रही थी जिसे छूकर ही बुढापा तारुण्य मे परिवर्तित हो उठे ! ! लाचारी अभिमानी बन जाय ! ! !

यह मेरा उल्लेखनीय सौभाग्य है कि चतुर्वेदीजी से मेरा प्रथम परिचय परम आत्मीय भैया हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अबोहर मे कराया था । सभवत. १९४१ की बात है । अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन वही मना था । हिन्दी-हिन्दुस्तानी के झगडे को लेकर देशरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसाद जैसे लोकप्रिय नेता को डा० अमरनाथ झा ने पराजित कर दिया था । उस अवसर पर एक अखिल भारतीय कवि सम्मेलन भी हुआ था जिसके अध्यक्ष महाकवि निरालाजी थे । वही मुझे पहली बार इतनी विशाल भीड और इतने महान् सम्मेलन मे कविता पढ़ने का सुअवसर मिला । प्रेमी भैया ने मेरी प्रशसा चतुर्वेदीजी से की और उन्होने निरालजी से मेरी सिफारिश कर दी । फिर क्या था ! मुझे मौका मिल गया और मैंने वीररस की एक कविता 'फॉसी' सुना दी । निरालाजी ने कविता-पाठ के बाद मुझे पीछे नही जाने दिया । अपने पास ही बिठाकर मुझे आशीर्वाद देने लगे । यह घटना मेरे जीवन की एक अविस्मरणीय

स्मृति इसलिये है कि उस वक्त निरालाजी ने डेढ सौ कवियो मे से सिर्फ पचास कवियो से ही कविता पढवाने की आज्ञा दी थी। अगर श्रद्धेय चतुर्वेदीजी ने निरालाजी से मेरे लिए सिफारिश नही की होती तो वह सुयोग मुझे कैसे प्राप्त होता !

कवि सम्मेलन समाप्त हुआ और प्रेमी भैया को साथ लेकर जैसे चतुर्वेदीजी मडप से बाहर निकले वैसे ही उन्होने मुझे पुकारा—"नारायण, आओ चले।" उनकी इस अकल्पनीय कृपा का तो मैं ऐसा कायल हुआ कि आज तक उनकी महत्ता की मुहर मेरे साहित्यिक दस्तावेज पर उसी उभार से मौजूद है।

अबोहर मे तीन दिन रहकर और वहाँ से लाहौर लौटने पर तीन-चार दिन और गुजारकर उन्होने पजाब के साहित्य-सेवियो का हृदय जीत लिया। लाहौर के लाजपतराय हॉल मे जब उनका भाषण हुआ तो वहाँ के बडे-बडे अग्रेज़ी वक्ता और उर्दू दाँ दाँतो तले उँगली दबाकर रह गए। मेरे अभिन्न मित्र श्री अमरचन्द भाटिया, जो अग्रेजी दैनिक 'ट्रिब्यून' के सहकारी सम्पादक थे, मुझसे बोले, "यार तुम्हारी हिन्दी मे भी ऐसे तगडे स्पीकर है ऐसा खयाल तो मेरे फरिश्तो को भी नही था ! कमाल !! क्या भाषा ! क्या शैली ! क्या स्वरो का उतार-चढाव ! क्या लच्छेदार जुमले !! कैसे अमृत से सने ऊँचे विचार !!!"

मैंने भाटिया भाई को जब यह बताया कि चतुर्वेदी जी इतनी बडी हस्ती होने के बावजूद आज तक अपनी एक भी कविता-पुस्तक नही प्रकाशित करा सके तो वे माथा पकडकर बैठ गए। बोले, "तुम हिन्दी वाले अपनी काहिली से अपने महापुरुषो को भी ले डूबोगे ! यह तो कतई काबिले बर्दाश्त नही !"

भाटिया जी को इस घटना के एकाध वर्ष बाद ही जब चतुर्वेदी जी का प्रथम कविता-सग्रह मैने समर्पित किया तो वे उसे लेकर उछल पडे। बोले, "यह हुई एक बात। उनकी और चीजे भी छपवाओ। प्रकाशको को प्रस्ताव करके कहो कि कि उनके भाषणो का सग्रह भी छापे।"

इस तरह श्रद्धेय चतुर्वेदीजी ने अपनी लाहौर-यात्रा मे जो प्रभाव छोडा उसे वहाँ के विस्थापित मित्र आज भी जहाँ कही मिलते है बडे उल्लास और भावना के साथ याद करते है।

यह तो मेरी सौभाग्य कथा का अश है। दुर्भाग्य की कहानी यह है कि अबोहर अर्थात् सन् १९४१ के बाद फिर आदरणीय चतुर्वेदी जी से मिलने का सौभाग्य मेरे जीवन मे नही आया। कई बार कार्यक्रम बना और बिहार के साहित्यिक ससार के प्रतिनिधि मडल को लेकर तथा खडवा मे जाकर उनका अभिनन्दन रोग-शैया पर ही करने का निश्चय हुआ किन्तु कई अनिवार्य कारणो और विवशताओ के चलते मुराद पूरी नही हो पायी।

'पागल'-सम्प्रदाय के प्रवर्तक माखनलाल

० ०

कैप्टन रत्नाम्बरदत्त चन्दोला

आज से लगभग छियालीस वर्ष पूर्व, जिन दिनो जलियाँवाला बाग मे एक लोमहर्षक हत्याकाण्ड हुआ था मुझे अमृतसर जाने की सूझी। सन् १६१६ मे 'इण्डियन नेशनल काग्रेस' का अधिवेशन वही होने जा रहा था। मैं एक पत्रकार का प्रतिनिधि बनकर वहाँ पहुँचा। बडी भीड थी। सारे देश के सम्भ्रात व्यक्ति, काग्रेसी नेता वहाँ विद्यमान थे। अभी हाल ही मे 'डायरशाही' के जुल्मो की हद हो चुकी थी, इन्सानियत खोयी जा चुकी थी, पजाब के अनगिनत देशभक्त जिनमे क्या बच्चे-बूढे और क्या औरते, सब शामिल थे, लावारसी जानवरो की तरह बन्दूको और तोपो का निशाना बन चुके थे। अमर शहीदो के उस बाग मे हरियाली की जगह खून की लाली ने ले ली थी। वैसा दर्दनाक, पत्थर के दिल को भी हिला देनेवाला, अमानुषी हत्याकाण्ड शायद ही भारत के स्वातत्र्य सग्राम के इतिहास मे और कभी हुआ होगा। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस खून-खराबी के बावजूद भी, ब्रिटिश सरकार के उस अक्षम्य अपराध की कडी आलोचना और चुनौती के सदर्भ मे भी, हमारे दयावतार 'बापूजी' ने 'माटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिफॉर्मस' के सिलसिले मे एक 'धन्यवाद का सुझाव' कॉग्रेस की कार्यकारिणी समिति के आगे रखा था। इस सुझाव का विरोध करते हुए लोकमान्य तिलक ने कहा था—"स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। शहीदो के खून से लथपथ जमीन अभी तक गीली है। क्या इन कागज़ी-रूमालो से हमारे आँसू पोछे जा सकते है?" उस समय मेरी जेब मे जलियाँवाला बाग की लहू-सनी मिट्टी की एक पुडिया सुरक्षित थी। देश की खातिर अपनी जान पर खेल जाने वाले उन दीवाने खिलाडियो ने भारत की धरती पर अपने खून से 'आजादी का पैगाम' लिखा था। वह उस दिन ताजा था, आज अमिट है, अतीत के इतिहास मे स्वर्णाकित है। शोणित-तर्पण के उस धर्म-क्षेत्र से उठाकर मै जो रक्त-रजित रज लेकर आया था, उसका टीका न जाने कितने प्राणियो ने गर्व-

सहित अपने-अपने माथे पर लगाया होगा ? उस रज की कण-कण मे क्राति की चिनगारियाँ भरी थी, जिन्होने कालातर मे देश-भर मे आजादी की आग फैला दी। मेरा मन रग चुका था। मैंने राष्ट्रीय होली के नाम पर एक पद्य-रचना करनी चाही। मै उस समय स्वय अठारह वर्ष का था और स्वभावत 'मदन' नामक एक वीर बालक के आत्म-बलिदान की कहानी मेरे दिल को घायल कर चुकी थी। मुझसे न रहा गया, न सहा गया। मेरी आन्दोलित लेखनी ने स्वत: लिख दिया था

"उन्नीस सन् की छटवी अप्रैल याद होगी,
मारा गया था जिस दिन प्यारा मदन हमारा।"

बीच की पक्तियाँ मै भूल चुका हूँ, किन्तु अतिम दो पक्तियो की याद अभी तक ताजी है—

"खेलो 'मदन' सरीखी होली, ऐ नौनिहालो !
आजाद हो, गुलामी छोडो, ऐ हिन्दवालो !"

यह एक नौसिख की तुकबन्दी मात्र थी, जिसे सयुक्त-प्रात (उत्तर-प्रदेश) की तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओ ने खतरे से खाली न समझा और छापने से इनकार कर दिया। किन्तु मैने मन ही मन दृढ सकल्प कर लिया था कि इसे देश के किसी न किसी राष्ट्रीय पत्र मे अवश्य ही छपवाकर रहूँगा। एक सार्वजनिक पुस्तकालय मे निरतर खोज करने के बाद मेरी दृष्टि एक राष्ट्रीय साप्ताहिक पर पडी, जो जबलपुर से प्रकाशित होता था, और जिसका नाम था 'कर्मवीर'। मैंने साहस बटोरकर सपादक जी के नाम एक गिडगिडाती चिट्ठी लिखी और साथ मे भेज दी अपनी तुकबन्दी भी। मेरे आनन्द का पारावार न रहा जब मैने अपनी 'लोक-तिरस्कृत' रचना को 'कर्मवीर' के अक मे छपा देखा। वह मेरे साहित्यिक-जीवन की पहली जीत थी जिसने मुझे 'एक भारतीय आत्मा' को सदैव के लिए सौप दिया। यह इसी युग-पुरुष की प्रेरणा का फल था कि मैं उन दिनो 'सेना-विभाग' की सेवा करते हुए भी दिल से देश की स्वतत्रता का पुजारी बना रहा। चोरी-छिपे 'राष्ट्रीय गीत' लिखता रहा और अनेक कल्पित नामो से उन्हे छपवाता भी रहा। 'एक भारतीय आत्मा' ने सचमुच मेरे ऊपर जादू का-सा असर कर दिया था। हम दोनो एक-दूसरे से दूर थे सही, परतु हमारा हृदय एक-दूसरे के कितने समीप था—इसका पता तब चला जब मैं पहली बार अपने इस आराध्यदेव के सामने १६२५-२६ के 'वृन्दावन साहित्य-सम्मेलन' मे जा खडा हुआ। तब मै जीवन की पचीस सीढी चढ़ चुका था। वहाँ का मिलन कितना अपूर्व, कितना हृदयग्राही तथा कितना स्नेहसिक्त था—यह वर्णनातीत होते हुए भी, उसकी एक झलक मेरे उन शब्दो मे मिलती है, जो 'मधुकोष' की प्रस्तावना के रूप मे मैंने 'कुछ अपने विषय मे' २२ जुलाई, १६३३

को लिखे थे। उन शब्दो को ज्यो का त्यो यहाँ उद्धृत करना प्रासगिक होगा

"मै पागल-सम्प्रदाय का सदस्य हूँ। इस सम्प्रदाय मे 'एक भारतीय आत्मा' ने मुझे वृन्दावन साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर दीक्षित किया था। हम लोगो को तीन नियमो की त्रिवेणी मे स्नान करना पडता है एक तो अपनी जन्म-सिद्ध मौलिकता की रक्षा के लिए ससार के ख्यातनामा कवियो की कृतियो को न तो कण्ठस्थ करना और न उनकी छाप अपने मस्तिष्क पर इस स्थायी रूप से पडने देना कि ध्यानावस्थित होते ही दूसरो के मनोवेगो की सेना व्युत्पन्न-मति की स्वगत मौलिकता को कुचल डाले। दूसरे, अपनी सबसे प्यारी रचना को अपने मनोरजन के लिए अपने तक ही सीमित रहने देना—उसे प्रकाशित न करना, क्योकि एक बार जो रचना दूसरो के पास पहुँच जाती है वह एक प्रकार से विश्व की सम्पत्ति कहलाती है। उस पर स्वय रचयिता का ममत्व नही रह सकता। सुख-दु ख की एकात घडियो मे स्व-रचित गीत को गुनगुनाने से जिस अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती है वह अन्य साधनो के द्वारा सम्भव नही। तीसरे, पक्षियो के कलरव की भाँति कवि की आत्मा का गीत भी स्वाभाविक रीति से उसके भावुक हृदय से नि.सृत होना चाहिए। उसमे 'दिमागी कसरत' की जरूरत नही। अर्थात् कविता हृदय की उपज होनी चाहिए, मस्तिष्क की नही। सासारिक सुख-दु ख की अनुभूति के साथ जिस कविता मे लोक की सृष्टि होती है—वही वास्तव मे, आदर्श विश्वकवियो के विमुग्ध-विहार का उपयुक्त क्षेत्र होता है।"

वृन्दावन साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर मैने अपने 'पागल सरदार' के आदेशानुसार दो रचनाएँ सुनाई थी—एक थी 'उत्कठा' और दूसरी 'प्रतीक्षा'। इनको सार्थक करने के लिए मुझे पूरे इक्कीस वर्ष लगे। इस दीर्घ वियोग का प्रमुख कारण था मेरा बर्मा-प्रवास और सैनिक-जीवन, जिसके कारण मुझे रणभूमि पर एक चरण भी खोना पडा, और साहित्यिक-जीवन से मुख मोडना पडा। वन्दावन के बाद, मैं उन्हे १९४७ मे, बम्बई साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर मिला। मैंने उनके तथा स्वर्गीय भारत-रत्न पुरुषोत्तमदासजी टण्डन के साथ रहकर कवि-सम्मेलन मे भाग लिया, और 'अशोक-चक्र' नामक एक गीत भी गाया, जो कि मैंने भारत के 'स्वतत्रता-दिवस' पर रचा था। 'भारतीय आत्मा' ने मुझे 'सैनिक-कवि' के नाम से भरी सभा मे घोषित किया। इस पुनर्मिलन के उपरात मेरी कतिपय रचनाओ को 'कर्मवीर' के मुखपृष्ठ पर यदा-कदा स्थान मिलता रहा, और मेरी लेखनी ने फिर से तलवार का स्थान ले लिया। मेरे भावो का अवरुद्ध-स्रोत उमड पडा। मैने पूना से एक मासिक निकाला, जिसका नाम था 'निष्काम'। उन्होने खण्डवा से मुझे १ मार्च, १९५१ को एक छोटा-सा स्नेहानुरजित पत्र भेजा। वह यह था .

"प्यारे चन्दोला जी,

सस्नेह नमन ।

'निष्काम' के जन्म, उसकी प्रसव-वेदना और आपकी इस आयु के इस तारुण्य पर बधाई देता हूँ । मेरा 'पागल' मुझे इन छब्बीस वर्षों के बाद भी और सेना का पेशनर होने पर भी, अनन्त तारुण्य की तरह प्यारा और दुलारा है, उस पर, उसकी सिपहगरी पर, उसके साहित्य पर, मै गर्वित रहना चाहता हूँ ।

आपका,

माखनलाल चतुर्वेदी'

'निष्काम' तो निकला ही, किन्तु साथ ही उसके प्रवेशाक' मे मेरी पत्नी के निधन का दुःखद समाचार भी निकला । बिना बादलो की यह बिजली मेरे सिर पर टूट पडी । साहित्य-सेवा की जो दीवार मै चिनना चाहता था, वह अधूरी रह गई । १९५२ मे मुझे भारत के विकलाग सैनिको का प्रतिनिधित्व करने के लिए लन्दन जाना पडा । पश्चिमी-यात्रा समाप्त करके १९५३ मे भारत लौटा । अनेक योजनाओ मे हाथ डालता रहा, पर मनोनीत सफलता न बदी थी, न मिली । तथापि एक नवीन घटना ने हम दोनो बिछुडो हुओ को फिर से मिला दिया। उसी साल के दिसम्बर मास मे मुझे नागपुर साहित्य-सम्मेलन से बुलावा आया । शायद मैं इसे टाल भी देता, लेकिन जब मैंने सुना कि मेरे 'पागल-सरदार' वहाँ के कर्णधारो मे से एक है, तो फिर मै रुके न रुका। 'गीता-मन्दिर' मे उनका दर्शन पाकर कृतकृत्य हुआ । किन्तु उनसे घुल-मिलकर बाते करने का मौका हाथ से चूक गया । इस बात का साक्षी है स्वय उन्ही का वह प्यार भरा 'निजी' पत्र जो उन्होने १६ जनवरी १९५४ को मुझे खण्डवा पहुँचते ही लिखा था । वह था—

" प्यारे भाई चन्दोला जी,

सस्नेह नमन ।

भाई, उस दिन नागपुर मे इस तरह गायब कैसे हो गए कि फिर मिले ही नही । मैं जहाँ ठहरा था, यदि आप वहाँ आ जाते तो खूब निश्चिन्तता से बाते होती । या फिर जहाँ आप ठहरे थे वहाँ का मुझे कुछ पता दिया होता । मै लम्बे अरसे से चाहता था कि आपके बच्चो मे घुल-मिलकर बैठूँ, किन्तु ऐसा समय ही नही आ पाया । सच तो यह है कि १९२५-२६ के वृन्दावन सम्मेलन के पश्चात मेरा रत्नाम्बर तो मेरे पास कभी लौटा ही नही । हाँ, सन् १९४७ के दिसम्बर माह मे बम्बई मे चन्दोलाजी मिले थे, देश के लिए की हुई उनकी सेवाओ से पूर्ण, किन्तु मै तो उस नन्हे से रत्नाम्बर को ढूँढ रहा था, जाने कितने वर्षो से । सोचता था रत्नाम्बर होगे, उनकी नन्ही-सी वधूटी होगी, उसकी गोद मे नन्हे-मुन्ने बच्चे होगे । सोचा था बचपन के बीच मे पहुँचकर मेरा बुढापा कुछ क्षण को अपने बचपन को लौटा सकेगा । किन्तु वह विधाता ही कैसा

जो समाज मे सब कुछ अपना-सा हो जाने दे। आखिर मन की बात मन मे, शत-शत इच्छाओ की तरह रह गई। सत्याचरण भी तब मिले थे, जब वे प्रिंसिपल और राजनीतिज्ञ हो चुके थे। वृन्दावन तो जाने कहाँ, जाने कब, जाने कैसे विलीन हो गया सो हो गया। आपका पत्र पाकर कभी-कभी ऐसे ही जाग-सा उठता हूँ। पता नही मेरा इस तरह का अटपटापन आपको रुचता भी है या नही।

मैं आज ही, कई दिनो पश्चात् ग्वालियर से आया हूँ और इस समय रात मे आपका कृपा-पत्र और कविता पढ पाया हूँ।

आशा है आप प्रसन्न होगे। बच्चो को मेरे स्नेह भरे वात्सल्य। मेरी स्मरण-शक्ति अब पहले जैसी नही रही है।

आपका अपना—

माखनलाल चतुर्वेदी"

मै इस 'निजी' पत्र को अपनी मनोगत भावनाओ का साक्षी बनाने का लोभ सवरण न कर सका—यह मेरी धृष्टता है, जिसे मै शत-शत बार स्वीकार करता हूँ। किन्तु, साथ ही, मेरी धारणा है कि इससे 'भारतीय आत्मा' का आन्तरिक स्वरूप प्रकट होता है। उनके भीतर छिपी हुई लोक-कल्याण की भावना, सम-वेदना और सहृदयता का निरूपण होता है। यह एक निरा पत्र नही, उनके आन्त-रिक भावो का प्रतीक और मानवीयता का दर्पण है। उनका उपालम्भ—'वह विधाता ही कैसा जो समाज मे सब कुछ अपना-सा होने दे ?'—आज भी उतना ही सजीव है जितना तब था। किन्तु, उन्हे क्या मालूम कि उनका वह 'नन्हा-सा रत्नाम्बर' आज जीवन के बासठ वसन्त और पतझड देख चुकने पर भी, वही का वही है—उनका एक अकिंचन सेवक, एक पुराना भक्त। उपर्युक्त 'निजी-पत्र' के परिप्रेक्ष्य मे, मुझे अपना एक बहुत पुराना गीत, जो मैंने उनके ही प्रति सन् १९२७ मे लिखा था, आज भी मेरे मानस-पटल पर ज्यो का त्यो अकित है। वह है 'भक्त की भावना' :

"मैं हूँ दीन सुदामा, तुम हो माखनलाल सलोने,
किन्तु, न मेरे पास रहे अब, चावल के भी दाने।
क्या फिर भेट तुम्हारी लाऊँ, कैसे प्रीति जताऊँ।
डूबा हू उपकारो से, मैं कैसे शीश उठाऊँ ?
स्नेह-क्रीत हूँ, स्नेह-धनी से, कैसे दृष्टि मिलाऊँ ?
मै पागल, उन्माद तुम्ही हो, मैं ध्यानी, तुम ध्यान।
मै हूँ दोष, क्षमा तुम ही हो, भक्त-विभव भगवान।"

('मधुकोष' से)

माखनलाल चतुर्वेदी : यात्रा-पुरुष

०○

वीरेन्द्र मिश्र

शैशव दृष्टि से चिन्तन मनीषी को देख लेना ही यदि उसकी जीवन-प्रक्रिया और साहित्य-साधना को समझ लेना मान लिया जाता तो दादा को मै अपनी आठ वर्ष की अवस्था मे ही समझ लेता। वह न हुआ। सम्भव ही नही था। एक धुँधली स्मृति है सन् १६३६ के आसपास की। तब पहली बार मै खण्डवा आया था, अपने परिवार के साथ। भाई साहब प्र भागचन्द्र शर्मा के यहाँ हम ठहरे थे। तब वह 'कर्मवीर' मे आए ही थे। राष्ट्रीय गौरव-गरिमा और आन्दोलनो का जागरूक युग था। सोन कच्छ (उज्जैन) से चलकर खण्डवा भ्रमण करना मेरे लिए मानो राष्ट्र-दर्शन था। पहली बार दादा को देखा। लोग उन्हे घेरे रहते थे। मैने देखा अधिकतर राष्ट्रीय प्रसगो पर और अकसर साहित्यिक विषयो पर दादा के यहाँ चर्चा होती थी। 'कर्मवीर' प्रेरणा और कर्मठता का जैसे केन्द्र बना हुआ था। मुझे लगा कि पत्रकारिता के इस मशीन धडधडाते और लेखन-सम्पादन होते वातावरण मे, जिसे पूरी तरह समझ पाने की कोशिश करके भी समझ पाना मेरी अपनी समस्या थी, एक कशिश थी, एक त्रिदिश आकर्षण, जो आगे के अपने भावी साहित्यिक विकास के लिए मानो अनजाने ही भूमिका बनाए चल रहा था। उस क्षण का उपभोग ही जिसे मैं जी सका, भरपूर जी लेने की बढती हुई आतुरता का सेतुबन्ध था। उस वेला की अनिर्वचनीयता पकड पाने की मेरी दौड-धूप तब सार्थक होती दिखती है, जब मै तब के दादा से अब के दादा को जोडता हूँ। दादा वही है—जिये गए अनुभृत क्षण वे नही।

घटना की फिल्म रील रोशन करती है अनेक खण्ड चित्र। देखता हूँ—दिनानुदिन तरोताजा और प्रौढ होता हुआ एक मनस्वी ओज, एक तपोनिष्ठ वाणीपुत्र, एक सदाबहार निर्विकल्प सगीत, दूर-दूर तक 'उच्छल जलधि तरगा' जैसा हमारा यह निर्झर यान्त्रिक परम्परा की चट्टानो की भीड मे खोयी हुई कोई जड चट्टान नही, बल्कि चट्टान बनने का मोह त्यागकर, हर उम्र मे कोपल बनकर

लहलहा उठने का प्रवहमान युवा सकल्प है ।

साहित्य मे हँसमुख सृजेताओ की फूल बिखेरती भव्यता कोई अनहोनी बात नही । चुके हुए लोगो के पास जब कहने को कुछ नही रह जाता तो वे अधिक सामाजिक होने का दावा करते है और इस उपक्रम मे विविध साहित्येतर स्तरो के तहखानो मे उतरकर अन्तत. समाधिस्थ हो लेते है और दादा उतने ही हँसमुख, उतने ही स्पष्टवादी और ओजस्वी, लेकिन कुछ और भी । यही कुछ मूल वस्तु है । यह है हर पीढी मे युवा बने रहने की कोशिश । इस कोशिश को हमारी पीढी के कई सर्जक महापुरुषो ने जीना चाहा है । वे लिखते रहे है निरन्तर, लेकिन आधुनिकता से कटे हुए, अपनी पीढी और अपनी युगीन जड शैली से सटे हुए। ऐसे सर्जक आज भी है । उनका लेखन देखकर ऐसा लगता है कि वे लिखना बन्द कर दे तो अच्छा हो । परम्पराओ के धनी, पर आधुनिकता के प्रति पूर्ण चैतन्य हमारे यात्रा-पुरुष के बारे मे आम साहित्यिक पाठक-लेखक क्या कहता है ? वह कहता है कि पुरानी पीढी मे एकमात्र यही व्यक्ति था जो इस आयु से आकर भी सारी युग-धाराओ को चीरता नवलेखन की भीड मे स्मित स्थितप्रज्ञ, प्राचीनो का प्रतिनिधि, आधुनिक लेखक था । केवल समय का साथ देने भर के लिए नही, बल्कि समय-प्रवाह को मोडने वालो मे आगे रहने के लिए वह राष्ट्र और साहित्य के हर मोड पर लेखनी का वज्र सकल्प व्यक्त करता रहा । नए छन्द, नए शिल्प और आधुनिक अभिव्यक्ति को आत्मसात करना, जैसे उसका स्वभाव बन गया है । 'नई प्रवृत्तियो से अपने आचार्यत्व को खतरा मानने वालो से बहुत दूर, वह तुरन्त ही सहज भाव से नई शैली को न केवल प्रोत्साहित ही करता, उसको अपनी लेखनी से निसृत करता भी चलता । हर सृजन मे एक ओर आधुनिकता से पूर्ण सुसज्जित दृष्टि और दूसरी ओर परम्पराओ के बीच विराजमान उसकी अपनी शैली, अपनी छाप ।

खण्डवा मे स्वतन्त्रता के प्रथम वर्ष के अवसर पर आयोजित कवि सम्मेलन मे कवि रूप मे पहली बार मुझे दादा ने देखा था । वह 'नन्हे' को जानते थे । अब उन्होने देखा कि यह 'नन्हा' भी कवि है । जो आन्तरिकता, जो आत्मीयता तब से व्यक्त हुई तो आगे भी वह वैसी ही निश्छल और सहज बनी रही । उस कवि-सम्मेलन के बाद मचीय-लोकप्रियता की दिशा मे मेरी कविता की सम्भावनाओ पर उन्होने बार-बार इधर-उधर चर्चा की लेकिन उनके मन मे जो स्नेह था वह तब अधिक मुखर हो उठा, जब हिन्दी साहित्य सम्मेलन के बम्बई अधिवेशन (१९४८) के अवसर पर सामने लहराते समुद्र से प्रेरित होकर दादा ने मच-सचालन के पूर्व दिए गए अपने साहित्यिक भाषण मे, जन-समूह से उसे जोडने की चेष्टा की थी । सैकडो कवियो की भीड मे, मच पर उन्होने सानुराग मेरा नाम घोषित किया था और बीस पक्तियो के मेरे छोटे से गीत मे जब चार बार

जोर की करतल-ध्वनि हुई तो शायद वह ध्वनि से भी अधिक उस कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष दादा की प्रसन्नता और विजय की प्रतीक थी—मैंने देखा था।

उसके बाद अनेक बार खण्डवा के कवि सम्मेलनो मे मुझे जाना पडा। जब भी मै गया दादा ने नई रचनाएँ अवश्य सुनी। नए लोग क्या लिख रहे है यह जान लेने मे वह विलम्ब पसन्द नही करते थे। प्रतिष्ठित और लोकप्रिय कवियो को पढते या सुनते समय,सजग पाठक और जागरुक श्रोता के रूप मे वह एक साधारण जन जैसी उत्सुकता व्यक्त करते। यह बात उन लोगो के लिए अत्यन्त प्रेरणाप्रद और प्रभावपूर्ण सिद्ध होती है, जो इससे सम्बद्ध होते है।

खण्डवा के 'कर्मवीर' और 'आगामी कल' से मेरा निकट का सम्बन्ध रहा है। 'आगामी कल' मे सयुक्त सम्पादक के रूप मे चार-पाँच महीने के अपने कार्यकाल मे मैंने देखा कि इस नगर के सीमित जीवन मे वहाँ की शिक्षा सस्थाओ और वहाँ की सास्कृतिक गतिविधियो मे दादा की उपस्थिति क्या अर्थ रखती ? एक छोटी-सी जगह मे, जहाँ आधुनिक जीवन का प्रवेश विशेष नही हो पाया हो, दादा का सहारा एक बडी बात थी। उनका वह मकान और वह कमरा साहित्यिक तीर्थ की तरह सर्व-व्याप्त देवालय बना हुआ था।

दादा की कर्मठता, ओज, स्नेह और सहजता से साहित्य और राष्ट्र को जो कुछ भी मिला है, अनेक लोगो को पहले ही दे दी जाने वाली उपाधियो द्वारा विलम्ब से किया गया दादा का सम्मान उन्हे तोल नही सकता। मुट्ठी-भर हड्डियो का तोला जाना ही होता तो और बात थी।

मुश्किल यह है कि हमारी आज की राजनीति मे साहित्यिक अभिरुचि का आभास, राजनीति मे सत्ता प्राप्त करने वाले कुछ साहित्यिको के विशेष प्रयत्नो के बाद ही सम्भव हो पाता है। प्रेमचन्द, निराला, राहुल, रागेय राघव और मुक्ति-बोध के देश मे स्वतन्त्र देश की सत्तासीन राजनीति ने, स्वतन्त्र चेता, प्रबुद्ध और राष्ट्र के प्रति साहित्यिक योगदान देने वाले कर्मठ मनस्वियो के प्रति कभी-कभी जो सम्मान भाव व्यवहारत व्यक्त किया है, वह दया और अहसान की तरह व्यक्त किया है और अकसर ही विशिष्ट राजनीति के हानिरहित परिवेश मे। उनके स्वभाव और व्यवहार मे अन्य देशो के राजपुरुषो की तरह साहित्य के प्रति सम्मान-भावना या गम्भीर समझदारी रच-रस नही पायी है।

इस सन्दर्भ मे यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि दादा के साहित्यिक सम्मान के साथ केवल उनके बीस वर्ष पुराने साहित्यिक योगदान की ही चर्चा करना, उस अज्ञान का द्योतक है, जो पिछले बीस वर्ष मे प्रगति करने वाले हिन्दी साहित्य के प्रति उदासीन, आर्म-चेयर विश्वविद्यालयीन आलोचक वर्ग की अपनी नियति बना हुआ है। दु ख इसलिए है कि राजनीति और साहित्य के इन दोनो भूतपूर्व साहित्यिक अध्येता वर्गों की तुलना, मे दादा एकदम अलग, एकदम आधुनिक और

बिलकुल अपम्पराशील रहे है।

मै कहना चाहता हूँ कि पीढियो के सघर्ष और अस्तित्व-रक्षा के प्रसग-प्रयत्न मे हमे अपने वर्चस्वी साधको को भुला नही देना है। देशभक्ति का तकाजा कृष्णा, कावेरी, चम्बल, शिप्रा और झेलम, रावी की अनेक छलछलाती दिशाओ से आ रहा है। यदि उसे हिमालय और विन्ध्याचल की व्रज-निष्ठा बनकर फूटना है तो यह कार्य राजसत्ता के चँवरधारी तथा अवसरलाभी राजभक्त कवियो को देशभक्त कवियो मे बदलने से ही सम्भव होगा। आक्रमण करने वाली बर्बरता हो या शान्तिकालीन समृद्धि-वेला, साहित्यकार की निष्ठा और जागरूकता की वल्गा चिन्तको और मनीषियो के हाथ मे रहनी चाहिए। भेडो पर दिए जाने वाले आदेश और किए जाने वाले अहसान के विरुद्ध सघर्ष अनिवार्य है।

जब मैं दादा के अभिनन्दन मे शामिल होता हूँ, जब मै आकाशवाणी से (अपने कार्यकाल मे) उनकी कविताओ का सस्वर पाठ करता हूँ, जब मैं व्रज भाषा मे लिखित उनके मधुर गीत 'श्याम लोचन मन बस गयो री' का कोमल रिकार्ड सुनता हूँ, या जब मै टूटकर भी न झुकने की गरिमा से महिमा-मण्डित होताहूँ तब मै सोचता हूँ कि बौखलाए हुए लोगो की उत्तेजक गालियो से किसी राष्ट्र की रक्षा सम्भव है या अपने विश्वासो मे दृढ रहने वालो के सशक्त सुचिन्तित सकल्प की सारस्वत मनीषा से। हमारा दिव्य देही, चलता-फिरता देवदारु, यात्रा-पुरुष, दूसरी स्थिति के पक्ष मे था और नन्दनवन का यही वह सीमान्त धरातल है, जो विवादास्पद नही हो सकता, जब तक एक भी चेतनाशील प्रहरी जीवित है।

एक लघु संस्मरण

० ०

डा० उदयनारायण तिवारी

प० माखनलालजी चतुर्वेदी का दर्शन मैंने सन् १६२६ मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन, वृन्दावन मे किया था। उस अधिवेशन के सभापति हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्यकार श्री अमृतलाल चक्रवर्ती थे। चतुर्वेदीजी तब तरुण थे, किन्तु उस समय कवि के रूप मे वे प्रख्यात हो चुके थे और उनकी 'पुष्प की अभिलाषा' की निम्नलिखित पक्तिया ·

मुझे तोड लेना वनमाली,
उस पथ पर तुम देना फेक,
मातृभूमि पर शीश चढाने,
जिस पथ जाये वीर अनेक।

नवयुवको मे नवीन उत्साह का मन्त्र फूंक रही थी। उनकी ख्याति का कारण प्रताप प्रेस से प्रकाशित होने वाली मासिक 'प्रभा' भी थी जिसके वे कतिपय वर्षो तक सम्पादक रह चुके थे। राजनैतिक दृष्टि से वह आँधी-पानी का युग था। यद्यपि गाधीजी द्वारा परिचालित सन् १६२१ का आन्दोलन ठडा पड चुका था किन्तु फिर भी देश मे विदेशी सरकार के प्रति विक्षोभ और घृणा का वातावरण परिव्याप्त था। मुझे स्मरण है कि हिन्दी के प्राण बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन सम्मेलन के इस अधिवेशन मे सम्मिलित न हो सके थे। फिर भी स्व० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, स्व० प० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, अध्यापक रामरत्न, प० गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, ठाकुर गोपालशरण सिंह, स्वामी नारायणनन्द आदि विद्वानो एव हिन्दी-प्रेमियो के कारण सम्मेलन का यह अधिवेशन अत्यन्त सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ था। तरुण कवि एव राजनैतिक नेता के रूप मे प० माखनलाल चतुर्वेदी ने भी कई प्रस्तावो के समर्थन मे ओजस्वी भाषण दिया था। इसके बाद अबोहर, प्रयाग, दरभगा आदि स्थानो मे चतुर्वेदीजी से मिलने तथा उनके निकट आने का मुझे अनेक बार अवसर मिला। प्रयाग मे चतुर्वेदीजी प्रायः हिन्दी

साहित्य-सम्मेलन के अतिथि-भवन सत्यनारायण कुटीर मे ठहरते थे। उनके आगमन से प्रयाग के साहित्यिक वातावरण मे एक प्रकार की हलचल-सी मच जाती थी। उन्हे अनेक गोष्ठियो मे भाषण देने पडते थे। प्रयाग विश्वविद्यालय के छात्र तो उनके ओजस्वी भाषण से इतने अधिक प्रभावित थे कि उन्हे विश्वविद्यालय मे भाषण देने के लिए प्रत्येक अवसर पर बाध्य होना पडता था। उन दिनो स्व० डा० अमरनाथ झा प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। वे चतुर्वेदीजी के भाषण पर इतने अधिक मुग्ध थे कि प्राय समय निकालकर वे उसमे स्वय उपस्थित होते थे। जहाँ तक प्रयाग के साहित्यिको का सम्बन्ध था, चतुर्वेदीजी तो उनके अपने थे। सभी लोग उनसे मिलने तथा अपने घर ले जाने के लिए बराबर उत्सुक रहते थे। उन्हे भी साहित्यिक बन्धुओ के परिवार मे जाकर सुख ही मिलता था।

इधर जब से पण्डितजी अस्वस्थ हुए तब से वे प्रयाग न जा सके। आज से दो वर्ष पूर्व मैं उनसे मिलने तथा उनका दर्शन करने के लिए स्वय खडवा गया था और उनके वार्तालाप से सदा की भाँति प्रेरणा प्राप्त कर जबलपुर लौटा था।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के समक्ष हिन्दी-हिन्दुस्तानी को लेकर एक समय एक ऐसा विवाद छिडा था कि राजनीति एव साहित्य दोनो क्षेत्रो मे कार्य करने वालो के सम्मुख एक विकट समस्या उपस्थित हो गई थी। राष्ट्रपिता बापू हिन्दुस्तानी के हिमायती थे और हिन्दी के प्राण तथा राजनैतिक नेता बाबू पुरुषोत्तमदास टडन ने हिन्दी के पक्ष का समर्थन किया था। बापू का विरोध करना उस युग मे राजनैतिक क्षेत्र मे काम करने वालों के लिए सहज कार्य न था, किन्तु सत्य के आग्रह से टण्डनजी को बापू का विरोध करना पडा था। उस युग के अधिकाश नेता विवाद से पृथक् होकर एक प्रकार से उदासीन हो गये थे। बापू ने जिन लोगो को अलग बुलाकर उनका इस सम्बन्ध मे मतव्य जानना चाहा था उनमे से एक पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी भी थे। चतुर्वेदीजी ने स्पष्ट शब्दो मे उन दिनो टण्डनजी के मत का समर्थन किया था। यो मध्यप्रदेश के अन्य राजनैतिक नेता स्व० प० रविशंकर शुक्ल, सेठ गोविन्ददासजी एव वर्तमान मुख्यमत्री प० द्वारकाप्रसादजी मिश्र भी टण्डनजी के ही समर्थक थे।

हि० सा० सम्मेलन हरिद्वार-अधिवेशन के संस्मरण

० ०

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय

सभवत सन् १६४३ की बात है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का वार्षिक अधिवेशन हरिद्वार की पावन पुरी मे होने वाला था। इस सम्मेलन के मनोनीत सभापति थे प० माखनलाल चतुर्वेदी। हिन्दी कवियो के सिरमौर, खडवा के इस कर्मवीर के दर्शन के लिए मैं बहुत दिनो से लालायित था। परन्तु दर्शन का अभी तक कोई अवसर नही मिला था। इसी बीच मे प्रयाग से हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के मन्त्री का तार मेरे बडे भाई साहब (प्रोफेसरे बलदेव उपाध्याय) के नाम आया जिसमे उन्हे 'भारतीय दर्शन' नामक पुस्तक पर 'मगलाप्रसाद पारितोषिक' प्रदान करने की सूचना थी। इस समाचार ने हरिद्वार जाने के मेरे सकल्प को और भी अधिक बलवान बना दिया। एक तो हरिद्वार की पावन तथा निर्मल गगा मे स्नान का पुण्य, दूसरा 'भारतीय आत्मा' के दर्शन और तीसरा भाई साहब को पुरस्कार की प्राप्ति। इन तीनो का सयोग वास्तव मे अपूर्व था। इस स्वर्ण-अवसर को भला कौन खो सकता था? अतएव ग्रीष्म-काल की सनसनाती हुई लू की तनिक भी चिन्ता न करता हुआ मैं हरिद्वार के लिए चल पडा।

हरिद्वार का यह सम्मेलन अनेक दृष्टियो से अभूतपूर्व था। सबसे बडी बात यह थी कि यह सम्मेलन इस पावन पुरी—और सम्भवत पश्चिमी यू० पी०—मे पहली ही बार हो रहा था। दूसरे यह एक ऐसे व्यक्ति के द्वारा आमन्त्रित किया गया था जो साधु समाज के नेता थे। मेरा अभिप्राय महन्त शान्तानन्दनाथजी से है जो श्रवणनाथजी की गद्दी के मालिक थे। श्री शान्तानन्दनाथ उन महन्तों मे से नही थे जो भोग-विलास के बुरे मार्गो मे भक्तो के द्वारा दिये गये धन का अपव्यय करते है बल्कि उनका एक मात्र उद्देश्य अपनी गद्दी के धन को धर्म की उन्नति तथा साहित्य की सेवा मे खर्च करना था। महन्तजी का शरीर तो अवश्य

स्थूल था परन्तु उनकी बुद्धि बडी तीक्ष्ण थी। इन्ही महन्तजी के द्वारा सम्मेलन का समस्त आयोजन किया गया था।

सम्मेलन की दूसरी विशेषता थी—प० माखनलाल चतुर्वेदी का इसका सभापति होना। चतुर्वेदीजी ने अपने जीवन मे हिन्दी साहित्य की जो सेवा की थी वह किसी से छिपी हुई नही थी। आपने अपने लेखो तथा कविताओ के द्वारा देश-वासियो के हृदय मे राष्ट्रीय भावनाओ को ही नही भरा बल्कि राजनैतिक आन्दोलनो मे सक्रिय भाग लेकर कारावास की यन्त्रणा को भी सहन किया था। ऐसे कर्मठ व्यक्ति का सम्मेलन ने अभी तक कुछ भी सम्मान नही किया था। इस प्रकार हरिद्वार का यह सम्मेलन उस हिन्दी के तपस्वी का सम्मान कर रहा था जिसने अपने जीवन के रक्त से हिन्दी के बिरवे को सीचा था। फिर इस अधि-वेशन मे अनेक शोध सम्बन्धी योजनाओ पर भी विचार होने वाला था। इन्ही सब कारणो से हरिद्वार का यह सम्मेलन अधिक महत्त्वपूर्ण था।

जिस दिन सम्मेलन होने वाला था उस दिन सन्ध्या के समय महन्तजी ने यह निश्चय किया कि सम्मेलन मे सभापति का जुलूस निकालकर शहर भर मे घुमाया जाय। इस कार्य के लिए महन्त जी ने अनेक हाथियो का प्रबन्ध कर रखा था जिन पर सुन्दर हौदा तथा झूल पडा हुआ था। नियत समय पर चतुर्वेदीजी श्रवणनाथ ज्ञान मन्दिर पर आये जहाँ से जुलूस प्रारम्भ होने वाला था। सर्वप्रथम चतुर्वेदीजी के दर्शन का मुझे यही सौभाग्य प्राप्त हुआ। दुबला-पतला शरीर, गौर वर्ण, प्रसन्न मुखाकृति, कुछ बडी और घनी मूँछे, चमकदार आँखे, उन्नत ललाट, शरीर मे शुद्ध तथा श्वेत खादी की धोती और कुरता तथा सिर के ऊपर सफेद गाधी टोपी विराजमान थी। इन्हे देखने से पता चलता था कि इस व्यक्ति ने अपनी कचन-काया को देश-प्रेम की ज्वाला मे जलाकर 'विशुद्धि' को प्राप्त किया है। चतुर्वेदीजी के दर्शन करते ही श्रद्धा से मेरा मस्तक अवनत हो गया। इस प्रकार से बहुत दिनो की कामना पूरी हुई।

सुसज्जित हाथी पर चतुर्वेदी जी बैठाये गये। उनका सजा हुआ गज आगे-आगे चल रहा था और मैं भाई साहब के साथ दूसरे या तीसरे हाथी पर था। सारे नगर मे मनोनीत सभापति का जुलूस घुमाया गया। स्थान-स्थान पर लोगो ने चतुर्वेदीजी का स्वागत किया। यह जुलूस बडा ही शानदार था। महन्त शान्ता-नन्दजी ने इसे सजाने मे कुछ उठा नही रखा था। हरिद्वार के इतिहास मे शायद ही ऐसा जुलूस कभी निकला हो जिसमे इतने अधिक साहित्य-सेवियो ने भाग लिया हो।

उसी दिन रात्रि मे सम्मेलन के प्रारम्भिक समारोह का प्रबन्ध किया गया था। महन्तजी ने सभापति तथा सम्मानित प्रतिनिधियो के बैठने के लिए तख्तो

का प्रबन्ध किया था जिन पर तोसक तथा मसनद लगे हुए थे। शेष व्यक्तियो के लिए जमीन पर बैठने की व्यवस्था थी। स्वागताध्यक्ष के भाषण के पश्चात् चतुर्वेदीजी ने अपना अध्यक्षीय भाषण पढा। इन्होने अपने मन्द तथा मधुर स्वर मे जब अपना भाषण प्रारम्भ किया तब सभा मे सर्वत्र सन्नाटा छा गया। सभी लोग मन्त्रमुग्ध होकर भाषण सुनने लगे। चतुर्वेदीजी का अध्यक्ष पद से दिया गया यह भाषण बडा ही विद्वत्तापूर्ण था जिसकी सभी विद्वानो ने भूरि-भूरि प्रशसा की। हिन्दी साहित्य का सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हुए हिम-किरीटनी' के इस कवि ने अपने भाषण मे अनेक ऐसे सुझाव प्रस्तुत किए जो कि बहुमूल्य तथा उपयोगी थे।

यह लिखना मैं भूल ही गया कि इस सम्मेलन मे डा० अमरनाथ झा, डा० रामकुमार वर्मा, डा० उदयनारायण तिवारी, डा० आत्रेय, श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी आदि अनेक विद्वान उपस्थित थे। डा० अमरनाथ झा गत वर्ष अबोहर (पजाब) मे होने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति रह चुके थे और वे अपना कार्य-भार चतुर्वेदी को सौपने के लिए आये हुए थे।

सम्मेलन के प्रारम्भिक अधिवेशन के दूसरे दिन श्रवणनाथ ज्ञान-मन्दिर के विशाल हॉल मे—जो गगा के तट पर बना हुआ है—सभवत सम्मेलन की साहित्य परिषद् का अधिवेशन था जिसके सभापति थे हिन्दी के तपस्वी साहित्य-सेवी स्वर्गीय प० चन्द्रबली पाण्डेय। इस सभा मे भी चतुर्वेदीजी के दर्शन हुए। वे बडी शान्तिपूर्वक बैठे हुए थे। बीच-बीच मे अपनी धीर-गभीर मुद्रा मे किसी विवाद-ग्रस्त विषय पर अपने विचारो को प्रकट करते थे। उनके व्यक्तित्व मे सादगी भरी हुई थी और भाषण मे मधुरता। कोई भी व्यक्ति इनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। त्याग, तपस्या, बलिदान, देश-प्रेम और काव्य-कला का एकत्र समन्वय इनके व्यक्तित्व मे प्रतिबिम्बित हो रहा था।

साहित्य परिषद् का अधिवेशन समाप्त होने को ही था कि इसके पहले स्वामी शान्तानन्द नाथ सभा मे आए और अपनी गभीर मुद्रा मे समस्त प्रतिनिधियो को सम्बोधित कर कहने लगे कि "मै आप लोगो के सामने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव रखना चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि आप लोग सर्वसम्मति से इसका समर्थन करेगे।" प्रतिनिधियो मे कुछ देर के लिए सन्नाटा-सा छा गया कि यह कौन-सा प्रस्ताव महन्त जी उपस्थित करने जा रहे है जिसके लिए सबकी सम्मति चाहते है। फिर महन्तजी ने अपना प्रस्ताव उपस्थित करते हुए कहना प्रारम्भ किया, "चतुर्वेदीजी बहुत दुबले-पतले व्यक्ति है, इनका स्वास्थ्य ठीक नही रहता। अत इनके सुन्दर स्वास्थ्य की कामना के लिए तथा इनके चिर आयुष्य के लिए मैं चाहता हूँ कि इनका तुलादान चाँदी द्वारा गगा के इस पावन तट पर किया जाय।" इस प्रस्ताव को सुनते ही समस्त प्रतिनिधिगण प्रफुल्लित हो उठे। भला इस मगलमय कार्य मे किसका विरोध हो सकता था?

हिन्दी के इस कर्मठ तपस्वी की स्वास्थ्य की कामना कौन नही करता था ? अत सभी ने इस प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत किया। कुछ प्रतिनिधियो ने सम्भवत तुलादान के प्रकार तथा समय के सम्बन्ध मे कुछ सशोधन उपस्थित करना चाहा परन्तु महन्त जी ने उस सशोधन को पूरा बिना सुने ही जोरो से बोलना शुरू कर दिया, "नही, नही, मैं इस प्रस्ताव मे कोई सशोधन स्वीकार करना नही चाहता।" महन्तजी अपने स्थान पर अडिग थे, फिर किसकी हिम्मत जो इस पुण्य कार्य मे बाधा डाले ? सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास हो गया। तब शान्तानन्दजी ने यह घोषणा की कि "पतित पावनी गगा के इस पावन तट पर हमारे सभापति (चतुर्वेदीजी) का तुलादान कल प्रात काल रजत से किया जायेगा।"

इस प्रस्ताव के पास हो जाने के पश्चात् माखनलालजी ने अपनी सहज मुसकान के साथ कहा कि 'मैं महन्तजी को बहुत धन्यवाद देता हूँ कि मेरे स्वास्थ्य की मगल-कामना के लिए वे मेरे तुलादान का आयोजन कर रहे है। सुना है कालेजो तथा विश्वविद्यालयो मे उपस्थिति के सम्बन्ध मे 'प्राक्सी' (किसी छात्र के द्वारा अन्य किसी छात्र की उपस्थिति बोलना) की जाती है। यदि महन्तजी मुझे आज्ञा दे तो मैं तुलादान के सम्बन्ध मे डा० अमरनाथ झा—जो मेरे पास मे ही बैठे हुए है—के लिए प्राक्सी करना चाहता हूँ। मैं बहुत दुबला-पतला हूँ। अत मेरे तुलादान करने से सम्मेलन को भी उतना लाभ नही होगा जितना डा० झा के तुलादान करने से होगा।" चतुर्वेदी जी की इस बात को सुनते ही सभी लोग खिलखिलाकर हँसने लगे और डा० झा भी मुसकरा पडे। इस वक्तव्य से पता लगता है कि चतुर्वेदीजी कितने सरस तथा हास्यप्रिय व्यक्ति थे।

मैंने तुलादान के विषय मे सुन रखा था कि रोग या बाधा की शान्ति तथा स्वास्थ्य एव चिर जीवन की कामना के लिए तुलादान किया जाता है। मथुरा के विश्राम घाट पर किसी राजा ने स्वर्ण के द्वारा अपना तुलादान करवाया था, इसका उल्लेख भी पढा था परन्तु रजत और स्वर्ण के द्वारा तुलादान के दृश्य को देखने का अवसर अभी तक प्राप्त नही हुआ था। मैं बडी परेशानी मे था किस तराजू मे महन्तजी चतुर्वेदीजी को तोलेगे और चाँदी के इतने सिक्के कहाँ से आयेंगे क्योकि द्वितीय महायुद्ध चालू होने के कारण देश मे सिक्को तथा रेजगी (चिल्लर) की बडी कमी हो गई थी।

दूसरे दिन प्रात काल मैंने देखा कि श्रवणनाथ ज्ञान-मन्दिर के ठीक सामने गगा के तट पर एक बहुत बडा तराजू लाकर खडा किया गया था। प्रतिनिधियो तथा शहर के लोगो की बडी भीड जमा हो गई थी क्योकि हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के किसी सभापति के रजत से तुलादान करने का यह सर्वप्रथम सुअवसर होने के साथ ही साथ सम्भवत अन्तिम अवसर भी था। थोडी ही देर मे महन्तजी कई बडी-बडी थैलियो मे चाँदी के सिक्के लेकर उल्लासपूर्वक

आए। तराजू के एक पलडे पर आसन बिछाकर चतुर्वेदीजी को बिठाया गया और दूसरे पलडे पर स्वेत रजत के खण्ड हज़ारो की सख्या मे रखे गये। पण्डितो ने वेदमन्त्रो के द्वारा तुलादान का विधान प्रारम्भ किया। गगा के पवित्र तट पर यह दृश्य बडा ही हृदयहारी था। सभी प्रतिनिधि प्रसन्नतापूर्वक इस अभूतपूर्व दृश्य को देख रहे थे। पलडे के छोटे होने के कारण उस पर रखे गये सिक्के बार-बार नीचे गिर जाते थे मानो वे उस महान विभूति को तौलने मे अपनी असमर्थता को प्रकट कर रहे थे। इस पर महन्तजी ने क्रोधित होकर उन रुपयो को थैली मे भरकर पलडे पर चढा दिया। भारी होने से यह पलडा ज़मीन से छूने लगा और चतुर्वेदी का पलडा ऊँचा उठ गया। इस प्रकार तुलादान का यह कार्य समाप्त हुआ। परन्तु क्या चाँदी के कुछ हजार टुकडो के द्वारा (चतुर्वेदीजी लगभग चार हजार रुपये से तौले गये थे) इस महान भारतीय आत्मा को तौला जा सकता है ? नही, कदापि नही। उसका मूल्य तो हीरे और जवाहिरात की अनन्त राशि से भी कही अधिक है। क्या कुबेर के धन से उसके कार्यों का मूल्याकन किया जा सकता है ? इस सम्बन्ध मे भी नकारात्मक ही उत्तर देना पडेगा।

प० माखनलाल चतुर्वेदी के महान व्यक्तित्व मे चार बाते प्रधानतया परिलक्षित होती थी जिनका प्रभाव किसी भी व्यक्ति पर पड़े बिना नही रह सकता: (१) सरल स्वभाव, (२) सादा जीवन, (३) देश-प्रेम तथा (४) हिन्दी सेवा। इन गुणो को उनके जीवन की चतु सूत्री कहे तो कुछ अनुचित न होगा। चतुर्वेदीजी का स्वभाव बडा ही सरल था। स्वाभिमान की मात्रा प्रचुर परिमाण मे होने पर भी अहकार उन्हे छू तक नही गया था। हरिद्वार सम्मेलन के अवसर पर उनके सम्पर्क मे आने के कई सुअवसर मिले परन्तु कभी भी उनमे गर्व का लेश मात्र भी नही दिखाई दिया। सबसे मीठा बोलना और मधुर व्यवहार करना उनके जीवन का मानो मूल मन्त्र था। चतुर्वेदीजी सादा जीवन और उच्च विचार के ज्वलन्त उदाहरण थे। खद्दर की धोती, कुरता और टोपी यही इनकी वेशभूषा थी। खान-पान भी इनका बडा सादा था। ऐसा ज्ञात होता है कि सरल स्वभाव और सादे जीवन के ताने-बाने से इनके जीवन का निर्माण हुआ था।

यह कहना कि चतुर्वेदीजी के हृदय मे देश-प्रेम की मात्रा कूट-कूटकर भरी हुई थी, केवल पिष्ट-पेषण मात्र है। ये उन कवियों मे से नही थे जो किसी भव्य भवन मे सोफे के ऊपर बैठकर देश-प्रेम के गीत लिखा करते है, बल्कि परतत्रता के बन्धन से अपनी मातृभूमि को मुक्त करने के लिए इन्होने कारावास की कठोर यन्त्रणा भी सही। अपनी वाणी से, लेखनी से और शरीर से इन्होने मातृभूमि की सेवा की है। आज हिन्दी मे कौन-सा ऐसा कवि है जो त्याग और तपस्या मे इनकी समानता करने का साहस कर सके ? माखनलालजी ने हिन्दी साहित्य

की जो सेवा की उसका उचित मूल्याकन आने वाली पीढियाँ करेगी। हिन्दी साहित्य के इतिहासकार स्वर्णाक्षरो मे इनकी कृतियो का उल्लेख करेगे। राज-नीति के क्षेत्र मे सक्रिय भाग लेते हुए भी हिन्दी साहित्य की इतनी ठोस सेवा करना कुछ कम कठिन कार्य नही था।

कर्मवीर माखनलाल

◇ ◇

युधिष्ठिर भार्गव

आज से अर्ध शताब्दी पूर्व के क्षितिज पर दृष्टिपात करने पर मेरे स्मृतिपट पर अनायास ही एक क्षीण पर फिर भी तेजपूर्ण आकृति उभर आती है। दरअसल वह आकृति मानव की नही है, वह रूपरेखा मानवता के एक प्रतीक की है। उस आकृति के आसपास जो तेज व्याप्त है वह अलौकिक है। प्रकाश के उस केन्द्र बिन्दु से सौम्य किन्तु ओजस्वी चिन्तन, गहन किन्तु ज्वलन्त विचारो का जो प्रवाह जारी हुआ है वही 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की चिरन्तन प्रार्थना का उत्तर उन देशी राज्यो के वासियो के लिए था जो आज तो भारतीय गणराज्य के अविभाज्य अग है, किन्तु जो उन दिनो गुलामी की दोहरी जजीरो मे जकडे हुए थे। वह स्वरूप वह आकृति 'एक भारतीय आत्मा' की है जिनका परिचय वर्षो के अज्ञात अस्तित्व के बाद 'कर्मवीर' के सम्पादक प० माखनलाल चतुर्वेदी के रूप मे मिला।

मेरे पूज्य पिताजी प० नारायणप्रसाद उज्जैन स्थित माधव कालेज मे इक्कीस वर्ष तक हैडमास्टर थे। वे ग्वालियर राज्य के वेतन-भोगी अधिकारी अवश्य थे, पर बावजूद इसके उनके द्वारा राष्ट्रीय विचारो का निरन्तर प्रवाह उनके विद्यार्थियो को कृतार्थ करता रहता था। स्वर्गीय बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', स्व० सिद्धनाथ माधव (आगरकर) तथा श्री हरिभाऊ उपाध्याय उनके विद्यार्थियो मे से थे। वे एक भारतीय आत्मा के बडे भक्त थे। उज्जैन के विद्यार्थियो मे भारतीय आत्मा की प्रेरणादायक रचनाओ का व्यापक प्रचार पूज्य पिताजी द्वारा हुआ। उज्जैन स्थित तथा शासन द्वारा सहायता प्राप्त क्लब के वे सेक्रेटरी भी थे। क्लब मे 'कर्मवीर' मगवाया जाने लगा। जब ग्वालियर राज्य-शासन की तीखी आलोचनाएँ 'कर्मवीर' के पृष्ठो मे निकलती, जब मजलिसे आम जैसी तथाकथित प्रतिनिधि सस्थाओ की असलियत प्रकट की जाती तो राज्य के सम्बन्धित अधिकारी तिलमिला जाते। स्थानीय कलेक्टर ने (जिसे उस समय सूबा कहते थे) पूज्य पिताजी को सलाह दी कि वे 'कर्मवीर' साप्ताहिक पत्र को, जिसके उस समय

माखनलालजी सम्पादक थे, क्लब मे मँगवाना बन्द कर दे । आदेश का पालन तो हुआ पर उस सप्ताह के बाद 'कर्मवीर' उनके निजी व्यय से घर पर आने लगा और क्लब को हर सप्ताह भेट के रूप मे दिया जाने लगा ।

आज के सन्दर्भ मे जब स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद आजादी की मजिल पर हम अग्रसर हो रहे है, शायद इस घटना का कोई विशेष महत्त्व नही है । पर दोहरी गुलामी का समय आज का-सा नही था । ग्वालियर राज्य प्रगतिशील देशी राज्य था, फिर भी एकतत्रीय तो था ही, ब्रिटिश-परस्ती भी थी । उस राज्य के तथा मध्य भारत के अन्य देशी राज्यो की सीमा पर स्थित खडवा से प्रकाशित 'कर्मवीर' एक ऐसा केन्द्र था जिस पर देशी राज्य के सार्वजनिक कार्यकर्ताओ की नजर लगी रहती थी । 'कर्मवीर' द्वारा उनकी वाणी मुखरित होती थी, वही उनके दिल के फफोले फूटते थे, वही उनके जज्बात आग उगलते थे, वही उनको राहत की उम्मीद होती थी और वही आने वाले उषाकाल की लाली की वे कल्पना करते थे । साथ ही एक विचित्र बात यह थी कि 'कर्मवीर'-सम्पादक प० माखनलालजी चतुर्वेदी, नर्मदा की बीहडो मे छिपने वाला क्रान्तिकारी और अपनी कविता पक्तियो द्वारा अपूर्व ओज, तेज और उत्साह का सचार करने वाली 'एक भारतीय आत्मा' एक ही व्यक्ति के विविध रूप है, यह जानने मे तनिक देर लगी ।

माधव कालेज का वार्षिक उत्सव था । पूज्य पिताजी की प्रेरणा से रेसीटेशन के लिए 'एक भारतीय आत्मा' की पक्तियाँ चुनी गयी । स्वर मेरा था, शब्द माखनलालजी के थे और उत्साह शिरकत का था । आज उस बात को पचास वर्ष हो चुके पर शब्द याद है । स्मृति से ही लिख रहा हूँ । शब्द व ध्वनि वही है पर सौभाग्यवश देश की परिस्थिति बदल गई है

आज जगत की राज पुस्तिका मे भारत का नाम नही है ।
वर्तमान आविष्कारो मे हाय हमारा काम नही है ।
रोता है सब देश, देश मे दानो को भी दाम नही है ।
कहते हैं सब लोग यहाँ के लोगो मे कुछ राम नही है ।
नाम नही है, काम नही है, दाम नही है, राम नही है ?
तो फिर इन्हे प्राप्त करने तक हमको भी आराम नही है ।

और भी पद थे ।

'जीवन रण मे वीर पधारो मार्ग तुम्हारा मगलमय हो ।
गिरि पर चढना गिरकर बढना तुमसे सब विघ्नो को भय हो ।

स्कूल मे जलसे मे एक ब्रिटिश उच्चाधिकारी भी उपस्थित थे । उन्होने ग्वालियर राज्य-शासन को शिकायत भेजी कि आपकी शिक्षा सस्थाओ मे क्रातिकारी विचारो को प्रोत्साहन दिया जाता है । पिताजी से जवाब-तलब हुआ । उन्होने एक सीधा-सा रास्ता पकडा । 'एक भारतीय आत्मा' की कविता की नकल

भेजकर पूछा कि यह मार्गदर्शन किया जाय कि इस कविता का कौन-सा हिस्सा आक्षेपजनक है। आरोप लगाने वाले ब्रिटिश सज्जन सकपका गये। उन्होने उत्तर दिया

'The general effect and the atmosphere created was most objectionable and inflammable"

पिताजी को भविष्य मे अधिक सावधान रहने की चेतावनी मिली। चेतावनी इस प्रकार कार्य रूप मे परिणत हुई कि आगामी सत्र मे नौवी तथा दसवी कक्षा के प्रत्येक विद्यार्थी को 'एक भारतीय आत्मा' की विद्यार्थियो से सम्बन्ध रखने वाली दो लम्बी कविताएँ कठस्थ थी।

'एक भारतीय आत्मा' की काव्य-रचना का प्रभाव उस जमाने के होनहार बालको पर क्या पडता था इसका एक छोटा-सा किन्तु महत्त्वपूर्ण उदाहरण दिलचस्पी से खाली न होगा। चतुर्वेदीजी ने देश के पिछडेपन की चर्चा करते हुए एक पक्ति लिखी थी

"शुद्ध स्वदेशी पीताम्बर क्या माधव को पहिना न सकेंगे।"

उज्जैन के हमारे एक बालमित्र इस रचना से प्रभावित हुए। जन्माष्टमी को उनके घर पर बालकृष्ण की प्रतिमा रखकर झाकी सजाई गई तो उनका पूर्ण असहयोग, रोना-धोना जारी। समझौता तब हुआ जब भगवान कृष्ण की प्रतिमा को बजाय रेशमी पीताम्बर के पीले रग का सूती कपडा पहिनाया गया।

एक फूल की चाह

'चाह नही मै सुरबाला के गहनो मे गूँथा जाऊँ।'

इस पक्ति से प्रारभ होने वाले पद ने जाने-अनजाने अनेको को प्रेरणा दी। प्रयाग विश्वविद्यालय मे चतुर्वेदीजी द्वारा लिखित राष्ट्रीय कविता-पक्तियो का बडा प्रचार था। एक भावुक बगाली नवयुवक ने हम लोगो के सम्पर्क मे आकर माखनलालजी तथा नवीनजी के राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत काव्य का रसास्वादन किया। इत्तिफाक की बात है कि वह नवयुवक बाद मे एक षड्यन्त्र केस मे पकडा गया। उसे फासी की सजा हुई। उसका नाम आज भी पोशीदा ही रहेगा। पहला कारण तो यह कि उसकी यही इच्छा थी कि उसका बलिदान विज्ञापित न हो। दूसरा कारण यह कि उसका असली नाम हम लोगो से भी छिपा था शायद इसलिए कि अपने सम्पर्क द्वारा वह हम लोगो को फँसाना नही चाहता था।

उसके देहावसान के बाद जब सामान उसके परिवार को वापस लौटाया गया तो कुरते की जेब मे कागज के टुकडो पर काव्य-पक्तियाँ थी। एक तो थी 'एक फूल की चाह' और दूसरे पर थी निम्नलिखित पक्तियाँ

"हम सक्रान्ति काल के प्राणी
बदा नही सुख भोग
घर उजाड कर जेल बसाने
का है हमको रोग।"

उपर्युक्त पक्तियाँ शायद श्रद्धेय नवीनजी की है जिनसे हिन्दी का अक्षर-ज्ञान प्राप्त करने का गौरव मुझे है। इन पक्तियो ने एक भावनापूर्ण बगाली युवक के मन मे प्राणोत्सर्ग करने की उत्कट इच्छा जगा दी थी, उसको क्रान्ति की कठिन राह का पथिक बना दिया था।

दीपस्तम्भ

सूर्योदय के पूर्व की घडियो मे एक गहन अन्धकार आकाश मे व्याप्त रहता है। महात्मा गाधी का नेतृत्व आने के पहले ऐसी ही कुछ हालत भारत भाग्याकाश की भी थी। देशी राज्यो मे तो सामन्तशाही का कुहरा, राजनीतिक अन्धकार के अतिरिक्त था। राष्ट्रीय चेतना के सकेत मात्र पर दमनचक्र चल जाता था। जन-अधिकारो की बात करना गुनाह था, ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध आवाज़ उठाना कुफ्र था। ऐसे समय मे 'कर्मवीर' और उसके ओजस्वी सम्पादक एक दीपस्तम्भ के समान थे जो मध्यभारत और बुदेलखड के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ का मार्गदर्शन करते थे, उनकी पीडा को स्वर देते थे और उनकी चेतना को स्पन्दित करते थे। आज जब हम स्वतन्त्र भारत मे रहने के आदी हो गये है तब उस जमाने के सघर्ष, घुटन, अग्नि-परीक्षा और त्याग की बात कुछ अटपटी--सी लगती है। तब की व्यथा और साधना की कठिन कहानी भुक्तभोगी ही जान सकते है। माखनलालजी ने दमनचक्र का सामना ही नही किया पर जान-बूझकर उससे जूझे और उसको चुनौती दी। उनके क्रातिगीत नर्मदा तथा क्षिप्रा की घाटियो मे गूँज उठे। उनकी राजनीतिक हुँकार विंध्य, सतपुडा और अरावली की पर्वत-श्रेणियो से टकराकर एक प्रचण्ड जयघोष मे परिवर्तित हो गई।

एक समय था जब दादा मुझसे व्यक्तिगत रूप से नाराज थे। मैं विज्ञान का विद्यार्थी, ग्वालियर राज्य के मुख्य पत्र 'जयाजी प्रताप' के सम्पादक के पद पर मेरा आसीन हो जाना एक अनधिकार चेष्टा मानी गई। देशी राज्य की कथित पोल को खोल देने के लिये मैं अवसर ढूँढने लगा कि दादा से आमने-सामने दो-दो बाते करूँ। मौका मिला और उसका फायदा मैने पूरा उठाया। उदासीनता शीघ्र ही वात्सल्य मे परिवर्तित हो गई। तनी हुई भौहो का स्थान एक सहज, सरल मुसकराहट ने ले लिया। उनका ब्रह्मतेज फिर तो आशीर्वाद का द्योतक बना।

एक बात जरूर है। सरकारी पत्र के सम्पादक के नाते मैने ग्वालियर राज्य

की किसी सदिग्ध नीति का समर्थन जोरदार शब्दो मे किया। मुझको दादा का उलाहना मिला। ये पक्तियाँ भी थी

है यह बहार चन्द रोजा, है एक दिन इम्तहान का भी।
अमीर हम्माम गर्म कर ले गरीब का झोपडा जलाकर॥

कुछ ही वर्ष पहले एक नया रिश्ता स्थापित हुआ। मैं इन्दौर का कमिश्नर नियुक्त हुआ। माखनलालजी का निवास-स्थान खडवा था, इन्दौर सभाग मे। पहली बार जब कमिश्नर की हैसियत से खडवा गया तो तत्कालीन कलेक्टर से कहा कि माखनलालजी के यहाँ जाना है। वे कुछ हैरत मे पडे। उन्हे पुरानी पृष्ठ-भूमि क्या मालूम? उन्हे क्या पता कि ओकारेश्वर के ज्योति लिग के दर्शन के बाद मेरे लिए चतुर्वेदीजी के घर की तीर्थयात्रा आवश्यक हो गई थी। चतुर्वेदीजी के दर्शन हुए, साहित्यिक, सास्कृतिक, यहाँ तक कि शासकीय विषयो पर चर्चा हुई। नवयुवको की सही रहनुमाई तथा उनके जीवन से भ्रम और निराशा दूर करने पर दादा ने विशेष बल दिया। एक शरारतभरी मुसकराहट चेहरे पर लाकर चतुर्वेदीजी बोले, "मै भी तो नवयुवको की जमाअत का हूँ। इसीलिए इन बातो पर बल दे रहा हूँ।" इससे कौन इनकार कर सकता था? यदि शरीर और केश धोखा दे भी गये हो तो भी चतुर्वेदीजी की वाणी और लेखनी का प्रवाह तो चिर यौवन के निर्झर का सकेत देते ही थे, देते ही रहेगे।

इन्दौर सभाग मे रचनात्मक कार्य को प्रोत्साहन देने के विषय मे तथा प्रशासकीय कार्यो से सास्कृतिक और सामाजिक प्रगति का समन्वय करने के बारे मे माखनलालजी से मैने कई सकेत पाए, उन्हे यथाशक्ति कार्यरूप मे परिणत किया। माखनलालजी को इस बात का आभास भी नही हुआ कि मै एकलव्य की भाँति अनजाने ही उनसे दीक्षा ले रहा हूँ। एक कार्य तो मैंने उत्साहपूर्वक करना शुरू किया—आज भी कर रहा है, 'मिशनरी स्पिरिट' से और पिष्ट-पेषण का खतरा होते हुए भी। और वह यह कि देश की गुलामी के अन्धकारमय युग मे नवयुवको के लिये ओजस्वी और प्रेरणादायक काव्य-पक्तियो के रूप मे जो मशाल 'एक भारतीय आत्मा' ने जलाई थी, मुझे ऐसा लगा कि उसकी आवश्यकता आज भी है। अधेरा तो दूर हो गया पर कुहासा तो अब भी है ही। सुमन के शब्दो मे अब भी कहा जा सकता है, "जरा मशाल जलाना बडा अधेरा है"। जब भी मुझे मौका मिला, जहाँ भी मैने नवयुवको की जमाअतो का सबोधन किया, जिन-जिन अवसरोंपर दीक्षात भाषण दिये वहाँ-वहाँ और तब-तब मैंने चतुर्वेदीजी द्वारा प्रज्वलित मशाल की रोशनी श्रोताओ तक पहुँचाई। आज भी उनके स्फूर्तिदायक विचारो का प्रसार और प्रचार करने का मौका नही छोडता।

माँ भारती के इस वरद पुत्र की वाणी को तो अमरत्व मिल ही गया है।

देश की बलिवेदी पर माखनलाल चतुर्वेदी की प्रतिमा का पुष्प कभी नही मुरझायेगा। उनके द्वारा दी गई प्रेरणा का झरना कभी सूखेगा नही। नन्दनवन की चुनी हुई पुष्पमालाओ के साथ मुझ जैसे 'असाहित्यिक' व्यक्ति के दो अकिचन पुष्प प्रतीक रूप से पर भक्तिपूर्वक अर्पित है।

स्नेह वत्सल दादाजी

० ०

कुसुम सिनहा

हिन्दी जगत के वयोवृद्ध साहित्यकार के रूप मे दादाजी (पूज्य श्री माखनलाल चतुर्वेदी) को कौन नही जानता, किन्तु उनकी साहित्य-सृजन की शक्ति के मूल स्रोत भोले-भाले बच्चे थे यह कौन जानेगा। जीवन भर बन्धनो से दूर भागने वाले दादाजी बच्चो के हाथ से अपनी अँगुली नही छुडा सके। बच्चो की चचलता, ढिठाई, भोलेपन पर क्षण-क्षण न्योछावर होने वाले उनके मन ने एक पल के लिये भी उनसे विलग नही होना चाहिए।

न जाने कितनी ममता, कितना प्यार उनके प्राणो मे समाया है। अपने-पराये सभी बच्चे उन्हे घेरे रहे, उनकी आँखो के सामने रहे तो उनकी उत्फुल्लता का पारावार नही रहता था। बच्चे जैसे उनकी जीवनी-शक्ति थे। वे अक्सर कहा करते कि "बच्चो के बिना तो घर, घर ही नही रहता और जो व्यक्ति बच्चो को प्यार नही कर सकता, उनकी नित नई क्रीडाओ पर मुग्ध एव आनदित नही हो पाता, वह जीवन मे कभी भी वास्तविक आनन्द की प्राप्ति नही कर सकता।"

निमाडी की एक प्रसिद्ध कविता वे प्राय दुहराते, जिसका भाव है— एक स्त्री जिसकी गोद सूनी है, करुणाअनुभूति से भरकर कहती कि "मेरा आँगन सदा साफ-सुथरा पडा रहता है क्योकि कोई उसे गदा करने वाला ही नही है। मैं बर्तनो को जैसा रख देती हूँ, वे वैसे ही, उसी जगह रखे रहते है, कोई उन्हे उठाकर इधर-उधर करने वाला ही नही है। मै पानी का जो कलश सबेरे भरकर रखती हूँ, उसे कौन बखेरे ? मैं ये खिलौने बडे मन से खरीदकर लाई थी, पर बरसो से ज्यो-के त्यो रखे है क्योकि खेल-खेल मे कोई उन्हे तोडने वाला ही नही है। मेरे द्वार से खोमचे वाले आवाज लगाकर यो ही निकल जाते है, उन्हे हठ करके कौन रोके ? मेरी धोती सदा साफ ही रहती है, क्योकि धूल भरे हाथो से लिपट लिपटकर मेरी गोद चढ, कोई उसे मैला करने वाला ही नही है। मेरे घर की निस्तब्ध शाति मुझे खा जाती है, क्योंकि मेरा घर मीठी किलकारियो और निर्मल रुदन से अब

तक वचित है।"

यह कविता सुनाकर दादाजी का मन एक करुण अनुभूति से भीग-भीग उठता और वे कहते—"देखा, जिनके बच्चे नही होते वे बच्चो की उन्ही बाल-सुलभ शैतानियो के लिए तरसते है, जिनसे बहुत लोग खीजते रहते है।"

बच्चो के सुख-दुख, गुण-अवगुण, आवश्यकताएँ, लडाई-झगडे और मनोवृत्ति को जितना दादाजी का वत्सल मन जानता, उतना तो उसकी माँ भी नही समझ पाती। उनकी डाँट से सभी डरते, पर सबसे अधिक हठ, शैतानी भी उनके निकट ही करते। उदाहरण के लिये दादाजी को राग-रागनियाँ अधिक पसन्द है, पर बच्चो के हठ पर उनके कमरे मे फिल्मी गीत भी गूँजते रहते।

एक दौडकर आता है, "दादाजी, सिलोन लगा ले ?"

"नही रे।" उनका कडकदार उत्तर मिलता है।

"नही, दादाजी, अपनी पसन्द आयेगी" और आगे बढकर वह स्विच ऑन कर देता है और गीत आने लगता है। बस तभी बाहर से सभी दौडे आते है और गा-गाकर उछल कूद शुरू कर देते है, बस उनकी खुशियो के आगे दादाजी अपनी पसन्द भूल जाते। सब बच्चे रेडियो के गाने मे डूबे होते है और दादाजी बच्चो मे।

छोटी बेबी गोद मे लेटकर कहती है, "दादाजी, गाना सुनाये ?" 'हाँ' करते ही वह गाना शुरू कर देती है—"नदरी नदरी द्वारे द्वारे धूँ दू रे छवरिया।" दादाजी हँसकर कहते, "अरे-हाँ रे, वाह ! बेबी को तो बडा सुन्दर गाना आता है।"

दिन मे एक बार ही दादाजी भोजन करते, वह भी बहुत परहेजी। दो बजे जब खाने की मेज पर वे आते, तो सबेरे से दिये गये वचनो का स्मरण कराने बच्चे दौडे आते—"दादाजी, हम मट्ठा लेगे, दादाजी, हम भी। दादाजी, हमे भी।"

कोई कही भी खेल मे जुटा हो, पर उस समय सभी आकर दादाजी को घेर लेते, क्योकि खाने के बाद नित्य ही दादाजी अपना दही अपने हाथ से चीनी मिलाकर सबको बाटते। उस समय छोटे-बडे सभी हठ करते, झगडते। कोई पहले लेने के लिये, तो कोई अधिक लेने के लिए। उनकी यह हठ, यह लडाई दादाजी को सुख से भर देती। वे किसी को चिढाते, किसी को मनाते और हँसकर कहते, "यदि किसी दिन यह सब नही होता, तो बडा सूना-सूना लगता है।"

जून की कठिन गर्मी को शीतल फुहारो ने सुखद बना दिया था। रात को पानी गिरा था, सबेरे बच्चे सामने सडक पर पानी मे उछल-कूद कर रहे थे और दादाजी सुख से भरे उनकी क्रीडाएँ देख रहे थे कि आम वाले की पुकार सुनकर बच्चे दौडे आए—"दादाजी, आम खरीदिये !" वे जानते हैं कि वर्षा होने पर दादाजी आम खरीदते हैं।

आम वाला आया। दादाजी ने ढेर आम खरीदे और टोकरी मे भरकर

अलमारी के ऊपर ऊँचे पर रखवा दिये। बच्चो को ललचाने-खिजाने के विचार से बँटवारा नही किया। तभी काकाजी (दादाजी के छोटे भाई) के छोटे मुन्ने को खबर मिली, तो दौडा आया—

"दादाजी, आम खरीदे है!"

"हाँ, क्यो?

"देखे, दादाजी!"

"देखे क्या, वह रखे है, पर अभी नही, खाने के साथ मिलेगे।"

मुन्ना का मुँह सरस हुआ जा रहा था। बहुत भोला-सा मुँह बनाकर बोला, "दादाजी, चखकर देखे कि कैसे लिये है।" दादाजी उसकी भोली युक्ति पर ठठाकर हँस पडे, बोले—"चल रे, नटखट! देखो शैतान की बात कि यह चखकर हमे बतायेगा।" और बडी देर तक उनकी स्नेह भरी हँसी से कमरा गूँजता रहा।

अस्वस्थता तथा दुर्बलता मे बच्चो का शोरगुल सहना कितना कठिन होता है, पर दादाजी तो इसी मे आनन्द तथा स्फूर्ति प्राप्त करते। बच्चो की नटखट क्रीडाओ पर सीमाएँ बाँधने की, उनके विरोध की बात उनके सामने नही चल पाती। वे कहते है—"यही उमर है। इनके इस समय के भोले आनन्द को हम पीछे छोड आये है, क्या इसी से हमे अस्वाभाविक लगता है। यह सदा रहे, मैं तो यही कामना करता हूं।" फिर बोले—"एक बार एक घर मे ठहरा, तो वहाँ बडा अनुशासन, बच्चे सब मशीन की तरह सकेतो पर चलने वाले। मेरे मन मे बडी घुटन हुई। वहाँ थोडी देर ठहरना भी मेरे लिए कठिन हो गया।"

एक गर्मी की दोपहर मे मै और काकी[1] बैठे सिलाई-कढाई कर रहे थे और सरोज पुस्तक से एक सुन्दर-सी कहानी सुना रही थी, किन्तु बराबर के कमरे मे बच्चे बहुत शोर करके खेल रहे थे, जिससे हमारी तन्मयता मे बाधा पडती थी। उन्हे मना किया दूसरे कमरे मे जाने को कहा, प्यार से सभी तरह समझाया पर वे पूरे समय शोर मचाते रहे। हमारा सिर दुखने लगा और सबको बडी खीज आयी, पर काम समाप्त कर जब मै दादाजी के कमरे मे गई, तो वह बच्चो का वही खेल देख-देखकर मुसकरा रहे थे। बोले, 'आज तो बिलकुल भी नही सो पाया दोपहर मे।"

मैने कहा –'दादाजी, बहुत शोर किया इन सबने। माने ही नही। यहाँ से और कही जाने को कहा, तब भी नही गये।"

दादाजी आनन्दित होकर बोले—"हाँ, कभी-कभी बडी मस्ती पर आते है और तब किसी की नही सुनते।"

मेरी दिन भर की खीज मुख पर आ गई—"दादाजी, बच्चो को कहना तो मानना ही चाहिए। ये काकी की एक नही सुनते। वे कह रही थी कि वह डॉटती

१. चतुर्वेदीजी के अनुज की पत्नी

है, तो आप उन्ही पर खीजते है कि कैसी माँ है, जो बच्चो को देख ही नही सकती।"

मुसकराकर बोले—"हाँ, तेरे एक लडके को भी अपने पास रखकर ऐसे ही बिगाड दूँगा और तू कुछ कहेगी, तो ऐसे ही डाँट पडेगी तुझ पर भी।"

उनकी ओर विस्मय से मैने देखा, पर जाने कैसी अनुभूति से युक्त एक सलज मुसकान मेरे खीज भरे मुख पर छा गई।

दादाजी ख्ब हँस-हँसकर कहे जा रहे थे—"आज इसी शोर मे तो मैने दो मराठी कहानियाँ पढी और कविता लिख डाली है। साथ ही बीच-बीच मे इन पोरो (लडको) की फरमाइशे सुनी और झगडे निपटाये!"

कुछ दिन उनके निकट रहकर मैने यह अनुभव किया कि सचमुच दादाजी की जीवनी-शक्ति, सृजन-शक्ति सभी कुछ तो उनके नटखट लाडले बच्चे ही है।

तरुणों के दादा—नए बाग के माली

◇ ◇

राजेन्द्र अवस्थी

कल्पना कीजिए—आपके सामने एक दुबला-पतला और वृद्ध व्यक्ति बैठा है। बैठा इसलिए कि लगातार बीमारियो और ज़िन्दगी से सतत जूझते रहने के कारण उसका शरीर टूट चुका है, और अब खडे होने की शक्ति उसमे कम रह गई है। वह बहुत साधारण कपडे पहने है और मुख पर एक अरुण आभा है, जैसी पश्चिमी क्षितिज पर सायकाल अकसर दिखाई देती है। शरीर दुर्बल है। उसके बैठने-उठने मे कोई विशेषता नही है। लेकिन जब यही व्यक्ति बोलना शुरू करेगा तो आप दग रह जायेगे। उसमे आपको ज्ञान का सागर जैसी अगाध गरिमा के दर्शन होगे। वह तब एक साधारण विषय को असाधारण बना देगा और आपको अपनी धारणा बदलने के लिए बाध्य कर देगा। आप देखेंगे, पल भर मे यह व्यक्ति कितना असाधारण हो गया है। और यही थे हमारे-आपके चिरपरिचित 'एक भारतीय आत्मा' पडित माखनलाल चतुर्वेदी।

चतुर्वेदीजी का जीवन तलवार की धार पर चला और कॉटो की सेज पर पला। प्रारम्भिक कविताएँ लिखने के साथ ही राजतीति मे उन्होने प्रवेश किया। भारत के स्वाधीनता सग्राम मे चतुर्वेदीजी ने जो भूमिका निबाही है, वह कम से कम मध्यप्रदेश मे शायद ही किसी ने निबाही हो। एक ओर अपनी कलम के सहारे उन्होने युवको को देश-प्रेम के लिए प्रेरित किया तो दूसरी ओर स्वय मैदान मे भी कूद पडे और—

मुझे तोड लेना वनमाली,
उस पथ मे तुम देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढाने
जिस पथ जाये वीर अनेक॥

इस तरह के गीतो के साथ आपने अपना जीवन मातृभूमि को पराधीनता के बधनो से मुक्त करने के लिए लगा दिया। रामप्रसाद 'बिस्मिल', चन्द्रशेखर

आजाद, मदनमोहन मालवीय, गणेशशकर विद्यार्थी, लोकमान्य तिलक, सरदार पटेल, महात्मा गाँधी और हमारे राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद आदि जैसे प्रखर देशभक्तो के साथ भी चतुर्वेदीजी ने खुलकर काम किया। एक बागी के रूप मे न जाने कितने तरुणो का उन्होने नेतृत्व किया, उन्हे उकसाया-उठाया और उनके सोते मन को देश-प्रेम के लिए जागृत किया। राजनीति के क्षेत्र मे अनेक आन्दोलनो मे भाग लेते हुए भी साहित्य का सहारा चतुर्वेदीजी नही छोड सके। लेकिन तब उनका साहित्य किसी प्रेयसी के आँचल का अभिलाषी नही बना, उसने स्वाधीनता के ही गीत गाए और देश-प्रेम तथा देश-मुक्ति को ही अपना एकमात्र लक्ष्य माना। जब वह जेल मे बन्द कर दिए गए तब भी वहाँ उन्होने 'कोयल बोलो तो' जैसे गीतो का ही सृजन किया। आज यह पता लगाना कि चतुर्वेदीजी पहले साहित्यिक है या राजनोतिक, असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। किन्तु इस बात की तो कल्पना भी नही की जा सकती कि यदि चतुर्वेदीजी आज राजनीति मे रहते, तो उनकी स्थिति क्या होती ? वह कहाँ होते ? किस पद पर काम करते ? क्या काम करते ? किन्तु मूलरूप से साहित्यिक होने के नाते उनको राजनीति की उखाड-पछाड से घृणा हो गई और उसकी समस्त उपलब्धियो को ठुकराकर फिर उस जगत की ओर लौट आए जहाँ अखड आनन्द का साम्राज्य है, जहाँ एक अलौकिक शान्ति है, रस के अजस्र स्रोत मे, जहाँ गरल का नाम नही। राजनीति से निर्लिप्त होते समय ही सम्भवत. चतुर्वेदीजी ने लिखा होगा—

सखे बता दे कैसे गाऊँ
अमृत मौत का दाम न हो
जगे एशिया, हिले विश्व
औ' राजनीति का नाम न हो।

तरुण पीढी के दादा

दादा से अधिक मध्यप्रदेशी और कौन हो सकता था। खडवा जैसे छोटे से शहर की क्या बिसात ! लेकिन वहाँ धूनी रमाकर और चिमटा गाडकर दादा ने उसे सारे देश मे विख्यात कर दिया और तरुण पीढी का वह सबसे सबल केन्द्र बन गया। यही बैठकर दादा ने निष्पक्ष और निश्छल भाव से प्रत्येक तरुण साहित्यकार का मार्गदर्शन किया। जो उनके पास गया है, कभी खाली हाथ नही लौटा। दादा ने दोनो हाथो से उसकी झोली भरी। 'कर्मवीर' के सम्पादक के रूप मे तो आज के हिन्दी के अनेक साहित्यकारो को दादा ने ही बनाया और मैं यह कहूँ कि यदि दादा न होते या वह यह सब काम न करते तो मध्यप्रदेश का यह अँचल जो नर्मदा के सरस तट पर अवस्थित है, आज हिन्दी काव्य जगत् मे नीरस ही रह जाता। वास्तव मे आगे की पीढ़ी अपनी वरिष्ठ पीढ़ी से प्रोत्साहन

की ही तो कामना करती है। चतुर्वेदीजी ने उसमे कमी नही की। इसलिए मैं कहूँगा कि उनका काव्य उनके ग्रथों तक सीमित नही है, आज वह समस्त नर्मदा के तट पर मुखरित हो रहा है। उनके गीतो की आत्मा ही न जाने कितने स्वरो मे बोल रही है।

स्वाधीनता के बाद चतुर्वेदीजी की कविता ने एक नया मोड लिया है। शरीर से जैसे-जैसे वह वृद्ध होते जा रहे थे, उनके काव्य मे उतनी ही उमग और रस दृष्टिगोचर हो रहा था। अपने पिछले सृजन से वह जिस बिलकुल भिन्न दिशा की ओर गये उसकी उपेक्षा नही की जा सकती। मैने एक बार इस सम्बन्ध मे चतुर्वेदीजी को लिखा था। उसका उत्तर देते हुए उन्होने लिखा था कि—"नयी स्वतन्त्रता के पश्चात् अब एक नई भूख जागी है। उसका उत्तर देना तो पडेगा ही, कोई भी दे, मैं भी कुछ असफल प्रयास करके देखता हूँ।"

प्रयासो की इसी शृङ्खला का परिणाम है कि दादा सदा युग के साथ रहे। उन्होने समय को परखा और पहचाना और इसलिए उनके हर गीत मे उस पहचान और परख के स्वर है। यह एक बहुत बडी विशेषता है। नयेपन की चाह और प्यास का ही एक परिणाम यह है कि दादा ने हमेशा जानना चाहा है कि कौन क्या लिख रहा है और कैसा लिख रहा है। मेरा पहला उपन्यास 'सूरज किरण की छाँव' प्रकाशित होने वाला था। मैंने उसके कुछ अश दादा के पास भेजे तो उन्होने लिखा था—"आपकी लिखावट मे जिन ततुओ को आपने छू दिया है, प्रभु करे उन ततुओ के प्रति आप उत्तरोत्तर ईमानदार और सजग रह सके। नयी स्वतन्त्रता के पश्चात एक नयी भूख जागी है। उसका उत्तर आप दे रहे हैं, यही क्या कम है।"

मेरे जैसे नये लेखक के लिए दादा का यह पत्र कितने बडे प्रोत्साहन के रूप मे आया, कह नही सकता।

पिछली बार (शायद मई, १९६४) दादा से फिर मिला था। श्रीकान्त जोशी भी मेरे साथ थे। दादा बहुत अस्वस्थ और शिथिल थे। श्री जोशी ने उन्हे बताया कि मैं आया हूँ, तो उस अवस्था मे भी, उनके शरीर मे चुस्ती आ गई। उठने की कोशिश करते हुए दादा ने मुझे देखा और प्रसन्नता व्यक्त की। दादा को मेरी पिछली सारी भेंटे याद थी। एक बार ही दादा उन स्मृतियो को दुहरा गए। श्री जोशी ने बताया था कि दादा अब पढ नही पाते। लिखना तो बन्द ही है। पर वह तब भी पढते और लिखते है, कहाँ क्या छपता है, यह उन्हे पढकर वह बताया करते है। किसी परिचित व्यक्ति की कोई रचना होती है तो दादा उसे जरूर सुनते है और फिर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पत्र लिखवाते है। मुझे अचरज हुआ कि दादा को सारी साहित्यिक गतिविधियो की जानकारी है। स्वय न लिख सकने के बावजूद वह जो लिखते है, बँधा हुआ चला आता है, इधर पिछले

वर्षों मे दादा की जितनी कविताएँ छपी है, उन्होने बोलकर लिखवाई है और एक बार जो बोल दिया बस हो गया। उनकी वाणी मे सरस्वती का अगाध वरद हस्त है। छन्द, लय, गति और भावो मे बँधी कविता अपने आप निकलने लगे, प्राचीन लोग इसी को तो वाक्-सिद्धि कहते रहे है। दादा पचहत्तर वर्ष की आयु मे इस वर-दान से समृद्ध थे। वह सबो को अपने आशीर्वाद देते। उनके ये आशीर्वाद साक्षात् सरस्वती के बोल थे और उन दिव्य बोलो का परिणाम तरुण पीढी का बढता हुआ हौसला था। मध्यप्रदेश ने किसी समय दादा को गरजते और दहाडते सुना था, तो अब दादा के ही बोल अनेक मुखो मे घुलकर समूची नर्मदा घाटी मे गूँजते रहेगे। तब दादा अकेले बोलते थे, किन्तु अब उनके साथ सैकडो-हजारो स्वर रहेगे। मुझे जब भी दादा का स्मरण आता है, फिसेनी आजाद का यह शेर बरबस उतरने लगता है—

असर लुभाने का प्यारे तेरे बयान मे है,
किसी की आँख मे जादू तेरी जबान मे है।

दादा शरीर से टूट गये थे। आयु उन्हे खीचती जा रही थी। उनके साथ किसी का वश नही था, पर दादा न कभी अकेले रहे, न रहेगे, इसमे सन्देह नही है।

जो स्वयं साहित्य-देवता थे !

◇ ◇

गोपालप्रसाद व्यास

माखनलालजी गए—हिन्दी के राष्ट्रवादी कवियो का अतिम मुकुट भी भारत-माता के चरणो पर चढ गया। वह केवल साहित्य-देवता के लेखक ही नही, स्वय साहित्य-देवता थे। हिन्दी के निराले और प्राणवान कवि ही नही, कवि-कुल-गुरु भी थे। हिन्दी के शत-शत कवियो, लेखको और पत्रकारो ने उनसे परोक्ष मे ही नही, प्रकट भी प्रेरणा प्राप्त की थी। 'एक भारतीय आत्मा' उनका केवल कल्पित नाम ही न था, वरन् वह वास्तव मे भारत की आत्मा ही थे। वह आत्मा, जो उसकी गुलामी के लिए तडपी थी, उसके अभावो के लिए व्याकुल हुई थी और जो राष्ट्र की तरुणाई के लिए भावी शताब्दी तक आह्वान का शख निरन्तर फूकती रही थी।

भारतीय साहित्य की यह शख-ध्वनि राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के बलि-दान दिवस पर अपने प्राणो का अन्तिम निश्वास शहीदो के चरणो पर चढाकर सदा के लिए तिरोहित हो गई। उनकी अन्तिम चाह भी यही थी कि वह ऐसा फूल बने, जो शहीदो के कटकित मार्ग को कुसुम-कोमल बनाए और जिसे माला मे गूथकर शहीदो की चिता पर चढा दिया जाय। राष्ट्र के शहीद दिवस पर राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी की तिल-तिल कर होने वाली शहादत हिन्दी साहित्य के इतिहास का एक पावन अभिलेख बन गई है।

माखनलालजी मध्यप्रदेश के होशगाबाद जिले मे एक साधारण परिवार मे उत्पन्न हुए, साधारण-सी पढाई यानी नार्मल पास करके, एक साधारण दर्जे के शिक्षक बने। परन्तु 'प्रताप', 'प्रभा' और 'कर्मवीर' के सम्पादक के रूप में उन्होने राष्ट्र मे जो जन-जागरण किया, स्वय लिखकर और लिखवाकर हिन्दी के साहित्यकारो की जो नई पीढी पैदा की और पहले क्रान्तिकारियो के साथ तथा बाद में काग्रेस मे शामिल होकर देश मे राष्ट्रप्रेम की जो बलिदानी ज्वाला जाग्रत की, वह असाधारण ही नही अनुपमेय भी सिद्ध हुई।

साहित्यकारो के निर्माता

वह स्वय ही आगे नही बढे, उन्होने 'खूब लडी मर्दानी वह तो झाँसीवाली रानी थी' की लेखिका श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान को भी आगे बढाया। श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' को भी उन्होने मैदान मे उतारा। 'दैनिक हिन्दुस्तान' के भूतपूर्व सम्पादक श्री मुकुटबिहारी वर्मा ने भी पत्रकारिता का पहला पाठ चतुर्वेदीजी के 'कर्मवीर' मे ही पढा था। इतना ही क्यो, हिन्दी के अनेक यशस्वी साहित्य-जीवियो को न जाने उनके कब-कब और कैसे-कैसे वरदान प्राप्त हुए है।

मध्यप्रदेश के तो वे लगभग हर साहित्यकार के निर्माता ही थे, गुप्त जी के चिरगाँव की तरह चतुर्वेदीजी का खडवा भी साहित्यकारो का तीर्थ था। इसमे केवल हिन्दी के साहित्यकार ही नही, मराठी, उर्दू बगला और गुजराती आदि के साहित्यकार भी समोद अवगाहना किया करते थे।

माखनलालजी ने हिन्दी की तीन पीढियां जी द्विवेदी युग, छायावाद युग और नव-युग। इन तीनो मे वह युग-चेतना के साथ रहे। राष्ट्रवादिता यद्यपि उनके साहित्य की धुरी थी, मगर वह अपनी मूल साहित्य-धारा से कभी भी विच्छिन्न नही हुए। उनकी कविताओ की गीतात्मकता, उनमे निहित नैसर्गिक रहस्य-भावना और प्रेमाभिव्यक्ति इतनी सरस, इतनी प्राजल और इतनी सहज है कि वह पाठक को युगो तक अभिभूत करती रहेगी।

प्रकाशित साहित्य

माखनलाल जी की अब तक बारह-तेरह कृतिया प्रकाश मे आयी है जिनमे 'हिम-तरगिणी', 'हिम-किरीटिनी', 'कृष्णार्जुन-युद्ध', साहित्य देवता', 'माता', 'युग-चरण,' 'समर्पण,' 'वेणु लो गूँजे धरा,' 'समय के पाव' आदि मुख्य है। गद्य, पद्य, नाटक, कहानी सभी कुछ उन्होंने लिखा। जो लिखा, वह समादृत हुआ, प्रचलित हुआ और प्रेरणा बन गया। साहित्य अकादमी ने उन्हे पुरस्कृत किया, राजकीय अलंकरण के रूप में उन्हें 'पद्मभूषण' प्राप्त हुआ। वह राजसत्ता के दरवाजे पर कभी साहित्य की झोली लेकर नही गये। मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री एक दिन स्वयं दलबल सहित उनकी छोटी-सी कुटिया पर पहुँचे और खडवा नगरी ने अपने साहित्यकार का शासन द्वारा निराला अभिनन्दन देखा।

वाणी का सम्मोहन

माखनलाल जी काफी वर्षों से अशक्त चल रहे थे, न वह उठ पाते थे, न बैठ पाते थे, न सुन पाते थे, न बोल पाते थे। लेकिन एक समय था जब श्रोता उनकी वाणी सुनकर मत्रमुग्ध हो जाया करते थे। मैंने अनेक नेताओ और

साहित्यकारो के व्याख्यान सुने, परन्तु माखनलालजी के समान एक को नही पाया। उनके स्वर मे ललकार होती थी, भाषा मे साहित्य होता था, वाक्यो मे दृश्य उभरते थे और पद-पद पर नई-नई कल्पनाए, नई-नई उपमाए और नई-नई उत्प्रेक्षाए निखरती चलती थी। उनका गद्य, पद्य-जैसा होता था। भाषण काव्यपाठ होता था। वह बोलते नही थे, ऐसा लगता था मानो नाटक के सवाद लहर रहे हो। बोलते समय वाणी, स्वय उनकी वाणी पर आ विराजती थी। वह गले से नही, हृदय से बोला करते थे और भाषण मे आत्मा का रस उँडेला करते थे।

पिस्तौल गाधी जी को

सन् १९६३ मे भारत-चीन-सघर्ष के बाद मैं उनसे अन्तिम बार मिला था। मेरी बाह पकडने के लिए उन्होने हाथ उठाया, मगर हाथ कापने लगा। वही हाथ, जिसमे कभी कसकर पिस्तौल पकडी हुई होती थी, वही पिस्तौल जिसे स्वय गाधीजी ने उनसे माग लिया था। पिस्तौल फेककर माखनलालजी गाधी की गोपियो मे शामिल हो गये। जेल, हथकडियाँ, डण्डे, तनहाइयाँ, जब्ती और नीलामी—ब्रिटिश राज के सारे जुल्म माखनलालजी ने अपने सीने पर सहे, मगर कभी उफ न की। राष्ट्र को सब कुछ दिया, मगर कभी उसका प्रतिफल नही चाहा, नही तो वह कभी मध्यप्रदेश के शीर्षस्थ नेता थे, लगे रहते तो मन्त्री बनते, ससद सदस्य होते, और अपना घर बना लेते मगर वह सदा किराये के घर मे रहकर ही साहित्य-भवन का निर्माण करते रहे। साहित्य-साधना के लिए उन्होने राजपथ छोड दिया। नवीनजी जो न कर सके, वह माखनलालजी कर गए। राजनीति के मायाजाल से अपने को अलग कर लेना हँसी-खेल नही है।

सही मूल्यांकन

अन्य अनेक साहित्यकारो की तरह ही हिन्दी मे माखनलालजी का सही मूल्याकन नही हुआ। कुछ लोग उन्हे राजनैतिक साहित्यकार मानकर ही बच चले। कुछ लोगो ने उन्हे राष्ट्र-वार्ता कवि कहकर ही सन्तोष कर लिया। कुछ लोगो ने उनके गीतो की रहस्य-भूमि को चलते-चलते झाँका तो सही मगर उस पर ठहरकर विचार नही किया। उनके नाम और काम के साथ अनेक प्रवाद ही जोडे गये। गुटबन्दी की साहित्य-परम्परा ने कभी भी माखनलालजी के साहित्य का सही विश्लेषण नही किया। असल बात यह है कि माखनलालजी को अभी तक कोई सहृदय समालोचक प्राप्त नही हुआ है, जो उनके साहित्य को देखे, समझे, परखे और करीने से परोसे भी। उनका काफी साहित्य अभी अप्रकाशित ही है। यह 'प्रताप,' 'प्रभा' और 'कर्मवीर' की फाइलो मे पडा दीमको

का उदर पोषण कर रहा है। उनके निधन के बाद सैकडो साहित्यकारो, दर्जनो राजनीतिज्ञो के कठ मे उनके सस्मरण अकुला रहे होगे, वे अब कागज पर उतरने चाहिए।

माखनलालजी का समूचा साहित्य, जीवन और सस्मरण अब लिपिबद्ध हो जाना चाहिए। अब नही तो कभी नही। हम भले ही माखनलालजी की उपेक्षा करते रहे हो, साहित्य के इतिहास के पृष्ठ उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की अपेक्षा से आह्लादित है। माखनलालजी नीव के वह पत्थर थे जिस पर हिन्दी के भवन का एक उज्ज्वल कक्ष खडा हुआ है। हिन्दी के ही क्यो, वह हिन्द के स्वराज्यदाताओ मे से भी एक थे। ऐसे एक, जिनसे अनेक उत्पन्न हो जाया करते है।

समीक्षा खण्ड

(क) समग्र समीक्षा

वैदिक प्रतिभा के कवि

० ०

नददुलारे वाजपेयी

ईषत् पीताभ गौरवर्ण, प्रत्ययशील अन्वेषक आँखे, मननदीप्त माथा, मुसकान और हँसी की सधि-रेखा के द्योतक अधरोष्ठ, हल्की गझिन प्रेमचदी मूँछे, मझोला कद, श्वेत खादी का परिधान, मृदु किन्तु तेजस्वितापूर्ण वाणी—यह आकृति श्री माखनलाल चतुर्वेदी की थी जिसे मैंने प्राय बीस वर्ष पूर्व उन्ही के निवास-स्थान पर प्रथम बार देखा था। पहली ही झलक मे वे मुझे एक आर्य कवि लगे। राजनीति मे नेहरू, हिन्दी साहित्य मे 'प्रसाद' के रूप-रग की समीपता उनमे दिखाई दी थी।

अपने अध्ययनकाल मे अपने गुरु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कुछ पक्तियाँ जिनमे चतुर्वेदीजी के काव्य की विशेषता का उल्लेख था, मैंने पढी थी। कवि निराला का ईषत् व्यग्यात्मक लेख जिसमे उन्होने पथरीले ऊँचे टीले है रोज नही सीचे जाते, वे नागर न यहाँ आते है जो हैं बागीचे जाते' पर टिप्पणी की थी—मेरे ध्यान मे था। मैने अपनी प्रथम पुस्तक 'हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी' की भूमिका मे उनके सबध में कुछ पक्तियाँ लिखी थी जिन्हे मैं उनकी काव्य-शैली का सार-सक्षिप्त आकलन समझ रहा था। चतुर्वेदीजी की कुछ रचनाएँ जो तब तक पढ सका था मुझे प्रगीत की अपेक्षा मुक्तक के गुणो से समन्वित जान पडती थी। इन दोनों शब्दो के अर्थ मेरे सामने स्पष्ट थे। मुक्तक मे चमत्कार पक्ष की और प्रगीत मे तल्लीनता की प्रमुखता रहती है। यह मुझे ज्ञात था और मैं उनकी प्रसिद्ध 'चाह नहीं है सुरबाला के गहनो मे गूँथा जाऊँ' षट्पदी को प्रगीत की अपेक्षा मुक्तक ही मानने के पक्ष मे था। यही नही, 'प्रभा' पत्रिका मे राष्ट्रीय भावना से

समन्वित अधिकाश कविताएँ मुझे मुक्तक कोटि की ही प्रतीत होती थी ।

चतुर्वेदीजी से प्रथम बार मिलने के कुछ ही पहले मै काशी से सागर विश्वविद्यालय मे आ गया था और वहाँ आने पर चतुर्वेदीजी के काव्य के प्रति पूरे प्रदेश के साहित्यिको की उत्कट सम्मान-भावना का मुझे परिचय मिला था। इस प्रदेश मे श्री चतुर्वेदी न केवल प्रमुखतम कवि माने जाते थे, वरन् उनकी काव्य-शैली प्रातिमानिक मानी जाती थी और उसका अनुकरण करने मे लोग गर्व का अनुभव करते थे। उस समय मेरी पहली प्रतिक्रिया यह हुई थी कि चतुर्वेदीजी की यह प्रतिष्ठा प्रादेशिक है, इसलिए सपूर्ण हिन्दी काव्य की दृष्टि से एकागी और अतिरजित भी है। परन्तु कुछ ही समय पश्चात् मुझे यह प्रतीत हुआ कि चतुर्वेदीजी की काव्य-शैली अनोखी और अप्रतिम है तथा उसकी ओर आकर्षण होना आश्चर्य की बात नही।

उस समय तक की चतुर्वेदीजी की कविताओ मे देश के लिए मर मिटने की भावना ही सर्वप्रमुख थी और वह इतनी अकेली भावना थी जो मेरे विचार मे किसी महान कवि के लिए शोभनीय नही है। इस प्रकार शैली मे चमत्कारिता और भाव-क्षेत्र मे आत्मविलय का तत्त्व प्रमुख उपकरण के रूप मे मुझे अभिज्ञात होते थे। 'आ मेरे आराध्य खिला लूँ मै भी तुझे खिलौना-सा' जैसी पक्तियो मे रहस्यवाद का पुट था परन्तु उसमे गभीर रहस्यवादी ध्वनि न थी। जब मैं उनसे प्रथम बार मिला तब उनकी इन काव्य-सीमाओ का पूरा प्रत्यय लेकर मिला था।

इसके पश्चात् उनके व्यक्तित्व के कुछ तत्त्व मेरी दृष्टि मे आए जिन्होने एक दूसरे ही रूप मे मुझे प्रभावित किया। व्यवहार मे चतुर्वेदीजी इतने सुमनस्क है, अतिथियो और अभ्यागतो का मन रखने मे इतने प्रवीण और सहृदय है, एक बार की भेट के बाद सम्बन्ध को स्थायी बनाने की दिशा मे वे इतने सचेत और सक्रिय हैं, यह अभिज्ञता मुझे उसी समय हुई और वह निरतर पुष्ट भी होती गई। विश्वविद्यालयो के कार्य से जब कभी मै खडवा होकर बम्बई, पूना या अन्यत्र जाता था, कभी उन्हे सूचना देकर और कभी बिना सूचना दिये हुए, प्रतिबार वे फलो की एक डलिया स्टेशन पर भिजवा ही देते थे। मुझे स्मरण है, अधिकतर श्रीकान्त जोशी द्वारा वे यह कार्य सम्पन्न करते थे। मुझे ऐसे प्रत्येक अवसर पर आत्मग्लानि का अनुभव होता था जब मै उनसे बिना मिले ही यात्रा मे चला जाया करता था क्योंकि मुझे ज्ञात था कि उनका स्वास्थ्य शिथिल है और उनसे मिलकर जाना कर्तव्य के स्तर पर हो गया है। ऐसी असमर्थताएँ मेरे लिए नई नही थी, परन्तु चतुर्वेदीजी के व्यक्तित्व और व्यवहार के कारण मेरी यह असमर्थता मुझे बहुत खटकती थी।

यो तो चतुर्वेदीजी के सम्बन्ध मे अनेकानेक निबध प्रकाशित हुए है, उनकी जीवनी भी छप गई है, उन पर एक शोध-प्रबन्ध भी तैयार हो गया है,

परन्तु न जाने क्यो इस समस्त परिचय-साहित्य से मुझे सतोष नही हुआ। निबधो का साहित्यिक स्तर मुझे सदैव अतिसामान्य ज्ञात हुआ और जीवनी मे भी ऐसे उपकरणो की कमी है जो उनके व्यक्तित्व के साथ उनके काव्य और उनकी साहित्यिक रचनाओ को जोड सके। उनके सम्बन्ध मे जो शोध-प्रबन्ध लिखा गया है, उसमे उनको अद्यतन रचनाओ का आकलन और विवेचन नही किया जा सका है। यद्यपि यह प्रबन्ध मेरे निर्देशन मे ही प्रस्तुत हुआ है, परन्तु उसकी सीमाओ और अभावो से भी मै परिचित हूँ।

एक सामान्य परिवार मे जन्म लेकर, एक अधूरी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात्, सहसा राष्ट्रीय आन्दोलन मे प्रवेश करना और प्रादेशिक राष्ट्रीय मगठन के अध्यक्ष पद पर पहुँच जाने की प्रक्रिया अपने मे ही ऐसी घटना है जो गभीर विवेचन की अपेक्षा रखती है। फिर राजनीति और साहित्य के जो द्वन्द्व भारतीय परिस्थितियो मे विद्यमान थे, उनमे राजनीति का त्याग कर साहित्य की ओर पूरे मनोयोग से तत्पर हो जाना और आजीवन तत्पर रहना भी ऐसा तथ्य है जो हल्के विश्लेषण से व्याख्यायित नही हो सकता।

और अतत साहित्य-निर्माण की भूमि पर काव्य और गद्य का अपूर्व एकीकरण तथा दोनो मे ही निरन्तर प्रौढता के तत्त्वो का समावेश चतुर्वेदीजी की एक ऐसी विशेषता है जो उनके व्यक्तित्व से घनिष्ठ रूप मे सबद्ध है। इसका भी समग्र विवेचन और स्पष्टीकरण अपेक्षित है। समय और स्थान दोनो ही स्वल्प है, फिर भी मै इस निबन्ध मे इन्ही तीन प्रश्नो का अपने सामर्थ्य और अभिज्ञता के अनुसार आख्यान करना चाहूँगा।

प्रातिभ कवि

यह तो एक बहुमान्य तथ्य है कि समाज की निचली सीढियो के व्यक्ति ही आगे चलकर उन्नति करते है और उन्ही मे से अनेक देश और समाज का नेतृत्व भी करते है। इसका कारण ढूँढने बहुत दूर नही जाना है। अभावो और विपरीत परिस्थितियो मे सकल्प और साधना मुखरित होती है। सम्पन्नता विकास की अवरोधक होती है। इसलिए यदि चतुर्वेदीजी सामान्य परिवार मे जन्म लेकर सघर्ष की भूमियो मे चलते हुए राजनैतिक शिखरो पर पहुँचे तो इसमे चतुर्वेदीजी की विशेषता इतनी ही मानी जायेगी कि वे सघर्ष के मार्ग पर चलकर सामान्य ऊँचाइयो पर नही, एक बडी ऊंचाई पर पहुँच सके। परन्तु इस प्रश्न का क्या उत्तर दिया जायेगा कि अपनी सामाजिक और पारिवारिक स्थिति के कारण वे उच्च शिक्षा से भी वचित रहे और फिर भी अपने क्षेत्र मे, साहित्यिक क्षेत्र में, इतना आगे बढ सके। इसी प्रश्न का उत्तर हम यहाँ देना चाहते है।

कवि दो प्रकार के होते है—एक शिक्षा, पाडित्य और शास्त्रीय ज्ञान से

परिपुष्ट और दूसरे अनुभव-प्रवण, स्वभावसिद्ध और स्वनिर्मित। यह कहना कठिन होगा कि साहित्य के इतिहास मे इन दो धाराओ के कवियो मे से किसका समग्र महत्त्व अधिक है। परन्तु शास्त्रज्ञो ने 'प्रतिभा', 'अभ्यास' और 'व्युत्पत्ति' शब्दो द्वारा, इन दोनो प्रकार के कवियो की दो सरणियाँ तैयार करने का प्रयत्न किया है। 'प्रतिभा' शब्द के अन्तर्गत पुराने समय मे चाहे जो वस्तु आती हो, आज के युग मे सहज अनुभवो के विशाल क्षेत्र से अर्जित वह शक्ति आती है जिसे कल्पना कहते है। इसमे सहज ज्ञान, अतश्चेतन की निहित शक्तियो का उन्मेष आदि तत्त्व भी सन्निहित रहते है। अभ्यास और व्युत्पत्ति शब्दो के द्वारा शास्त्रज्ञो ने यद्यपि एक दूसरी धारा के कवियो का वैशिष्ट्य दिखाना चाहा है परन्तु वहाँ भी प्रतिभा के अभाव मे श्रेष्ठ काव्य का निर्माण सम्भव नही बताया गया।

चतुर्वेदीजी की प्रतिभा अपने प्रथम उन्मेष मे व्युत्पत्ति और अभ्यास से रहित रही है। ऐसी सर्जना शक्ति—जो काव्य-नियमो को न जानती है, न पहचानती है—ऐसी अलकृतियाँ जो पढी नही गयी है—ऐसी भाषा जो लिखी नही गयी है, सब-कुछ अनगढ, अव्यवस्थित और अपरिनिष्ठित, फिर भी जिसमे सहजज्ञान, सहज अनुभव और चेतना की गहराइयाँ प्रतिफलित हुई है।

यह चतुर्वेदीजी के साहित्यिक निर्माण की आरम्भिक स्थिति की एक सक्षिप्त रूपरेखा है। उनकी प्रारम्भिक कृतियो मे कल्पना की अनिर्धारित गतियाँ व्यवस्था की आपेक्षिक कमी, शब्दो के ऐसे लाक्षणिक प्रयोग जिनका अर्थ अपरिचित और अनधिगम्य रह गया है, चतुर्वेदीजी के आरभिक काव्य मे मिल जाते है। इसी अवस्था मे उनका गद्य भी कल्पना की अनोखी उडानो और भावचित्रो से समन्वित है जिसमे कथ्य की अपेक्षा कथन-शैली ही मुख्य हो गयी है।

यही नही, एक ही कल्पना प्रकारान्तर से अनेकश व्यवहृत हुई है। यही वह समय है जब चतुर्वेदीजी की काव्य-रचनाएँ प्रसाद के शब्दो मे कनेरी की-सी एक मीठी तान, भावना की एक ही दिशा—देश और राष्ट्र पर बलिदान हो जाने की—प्राप्त होती है, यद्यपि चतुर्वेदीजी की ध्वनि कनेरी (पक्षी) की मीठी ध्वनि नही है, वह काफी तीखी है और कही-कही चीख मे परिणत हो गई है।

ऊपर मैंने चतुर्वेदीजी के साथ होने वाली पहली भेट मे उन्हे आर्य-प्रतिभा के कवि की सज्ञा दी है। यद्यपि यह सज्ञा उनके बाह्य व्यक्तित्व और आकृति को लक्ष्य करके दी गई थी, परन्तु उनकी प्रकृति मे भी आर्य-कवि के लक्षण पाये जाते है। यहाँ भी उनकी आकृति और प्रकृति मे सामजस्य है। आकृति को देखकर आर्यत्व का भान तो सहज होता है, परन्तु आर्य-कवि की सज्ञा उनके उस कवि—व्यक्तित्व पर भी आधारित है जिसका परिचय मुझे उस समय तक मिल चुका था।

आर्य-कवि से मेरा आशय उस प्रकार के कवियो से है, जिनकी कविता का

एक स्वरूप वैदिक रचनाओ में पाया जाता है। उसके रचयिता ही आदिम आर्य थे। यो तो वेदो की ऋचाओ को अनेक दृष्टियो से देखा और व्याख्यायित किया जाता है, परन्तु काव्य-निर्मिति की जो शैली वहाँ दिखाई देती है वह जहाँ एक ओर प्रकृति और जीवन के प्रति महान आस्थाओ से समन्वित है, आत्माभि-व्यजकता, विस्मय की हल्की छाया से आवेष्टित एक अतिशय कमनीय शैली है, वहाँ दूसरी ओर वह किसी सुनिर्धारित छन्द-विधान और आकृति-योजना का सर्वत्र आभास नही देती। रचयिता अधिक स्वच्छन्द है और वे ज्ञान की बाते न कहकर अनुभव की बाते कहते है। आगे चलकर उपनिषदो मे ज्ञान-तत्त्व का समावेश हुआ, परन्तु वेदो का ज्ञान-तत्व अनुभव की भूमि पर खडा है। उसमे सुव्यवस्थित चितन के—शास्त्रीयता के—लक्षण नही मिलते। यहाँ मैं एक साहित्यिक के नाते ही 'वैदिक काव्य' पर अपना अभिमत दे रहा हूँ।

चतुर्वेदीजी की प्रारभिक कविताओ मे उन्ही तत्त्वो की विशेषता है जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है। एक अपर्याप्त अध्ययन का कवि अपने सहजात ज्ञान से इस प्रकार की काव्य-रचना ही कर सकता है। इसमे चतुर्वेदीजी की उदग्र भावनाएँ प्रतिबिम्बित है, उनकी अभिव्यजनाएँ हिन्दी काव्य की परम्परा के ज्ञान और अधिकार का परिचय नही देती। उनमे क्षेत्रीय और स्थानीय प्रयोगो की भरमार है।

तुम मन्द चलो
ध्वनि के खतरो-बिखरे-मग मे,
तुम मन्द चलो।
सूझो का पहन कलेवर-सा
विकलायी का कल जेवर-सा
घुल-घुल आँखो के पानी मे
फिर छलक-छलक बन छन्द चलो।

('हिमतरगिनी', पृष्ठ ३)

यहाँ 'ध्वनि के खतरो-बिखरे-मग' से कवि का आशय बात के फैल जाने के खतरे से है (जो प्रेमियो को इष्ट नही होता), परन्तु 'बात फैलने' के स्वाभाविक लक्षण 'ध्वनि के खतरो-बिखरे-मग मे' नही लाये जा सके है। 'सूझो का कलेवर' और 'विकलायी' का 'कल जेवर पहनकर' की पक्तियो मे कवि जिस तथ्य को रूपायित करने का प्रयत्न कर रहा है क्या वह पूरी तरह रूपायित हो सका है? आगे की पक्तियो मे इसी प्रकार की व्यजनाएं रूपो के माध्यम से की गई हैं। परन्तु उनमे सर्वत्र यही स्थिति दिखाई देती है। कवि शब्दो और रूपो के साथ सघर्ष तो कर रहा है, उन्हे अर्थ के प्रति निरतर प्रेरित कर रहा है, परन्तु इस सघर्ष मे अभी हार और जीत के संधिस्थल पर ही विद्यमान है। यही स्थिति कवि

की आरभिक कविताओ मे अन्यत्र भी देखी जाती हे जिन्हे उद्धृत कर लेख का कलेवर बढाना अभीष्ट नही। शब्द और अर्थ, साधन और साध्य की जिस समरसता की ओर हमारी दृष्टि है उसका आरम्भिक प्रयास 'हिम-तरगिनी' और 'हिमकिरीटनी' आदि पुस्तको मे देखा जाता है। इस भूमिका से आगे बढने पर दो प्रकार की सभावनाएँ किसी समीक्षक को हो सकती है—एक यह कि कवि अपनी आरभिक कविताओ को ही प्रतिमान बनाकर उन प्रयोगो मे ही रम जाय जिनका वह जानकार है। दूसरी सभावना यह होती है कि कवि उनसे ऊपर उठे और भाषा और अभिव्यक्ति के प्रशस्ततर क्षेत्रो मे प्रवेश करे। हम देखते है कवि अपने आगामी काव्य मे उन कच्चे प्रयोगो और कल्पनाओ तक ही सीमित नही रहा है, नई और सशक्त अभिव्यक्तियो को अपनाता है और उसने उसमे सफलता प्राप्त की है।

राजनीति और साहित्य

दूसरी विशेष वस्तु जिसे मैंने विवेचनीय बताया है—चतुर्वेदीजी के व्यक्तित्व की वे प्रवृत्तियाँ जो उन्हे उच्चतम राजनीतिक सभावनाओ और उत्थानो से खीचकर साहित्य और साहित्य-मात्र मे केन्द्रित करने मे समर्थ हुई। ऐसी परिस्थितियो मे लोग प्राय राजनीति की ओर मुड जाते है क्योकि भारतीय परिस्थिति मे वह क्षेत्र अधिक शक्तिमत्ता और सफलता का माना जाता है। नेतृत्व के सभी आकर्षण और लाभ इसमे समाहित रहते है जबकि दूसरी ओर साहित्यिक उत्कर्ष एक सीमित यश का आधार बन सकता है परन्तु उसमे इतनी व्याप्ति नही होती कि समस्त राष्ट्रीय परिवेश मे प्रसरित हो सके (विरल अपवादो को छोडकर)। राजनीति और साहित्य की इस द्वन्द्वात्मक स्थिति मे साहित्य को पार्श्ववर्ती बना दिया गया है। अतएव जो व्यक्ति राजनीति की सीढियो पर काफी ऊँचा उठ गया हो उसे उतरकर नये सिरे से अपेक्षाकृत अनाकर्षक क्षेत्र मे काम करना पडे ऐसा प्राय घटित नही होता।

इसीलिए दूसरा मार्ग समझौतावादियो का है जो अपने कार्य-कलाप, अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार, दोनो क्षेत्रो मे फैलाते रहते है। जो व्यक्ति इन दोनो भूमिकाओ पर पृथक् पृथक् अथवा सम्मिलित रूप से समान ख्याति और सफलता प्राप्त करते है वे बहुत थोडे होते है। प्राय यह देखा जाता है कि एक को दूसरे से गौण बनाकर चलना ही पडता है। राजनीति तो गौण बन नही पाती (क्योकि वह अधिक समर्थ सपत्नी है) और सारे समय अपनी ओर खीच रखना चाहती हैं। फलत अधिकाश स्थितियों में साहित्य-स्रष्टा को ही गौण बनना पडता है।

एक तीसरे प्रकार की स्थिति भी यत्र-तत्र देखी जाती है जिसमे साहित्य को

प्रमुखता देकर राजनीति के पथ पर अग्रसर होने के सपने देखे जाते है। ये सपने प्राय विफल होते है और उनकी विफलता समझ मे आने योग्य भी है। साहित्य का ससार दॉव-पेच का ससार नही है। वह सरल, निश्छल अभिव्यक्तियो का ससार है। उसके साथ दॉव-पेच खेलने की कल्पना करते ही साहित्यकार का पतन स्वाभाविक हो जाता है। भारतीय परिस्थितियो मे राजनीतिक रगमच दॉवपेचो, भले-बुरे सगठनो और साध्य-प्राप्ति के लिए साधनो की उपेक्षा करनेवाला क्षेत्र है और होता जा रहा है। वैसी स्थिति मे जो लोग साहित्य-सृजन के प्रति वफादार रहना चाहते है, उन्हे राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाओ से विरत रहना ही होगा। अधिक-से-अधिक राजनीति मे लोक-सेवा के यशोभाजन वे बन सकते है।

इन ऋज-कुटिल राजनीतिक-साहित्यिक परिस्थितियो मे चतुर्वेदीजी का चयन अनोखा ही रहा है। जब तक राजनीति भावनात्मक थी और साहित्य के समान वृत्तियो की अपेक्षा रखती थी, तब तक चतुर्वेदीजी दोनो का पल्ला पकडे रहे, परन्तु जब उन्होने इन दोनो मे खीचतान देखी और यह पाया कि दोनो की सहकारिता या सहचारिता सभव नही है, तब वे राजनीति से एकान्तत. विरत हो गये। दूसरे शब्दो मे वे उन समस्त सभावनाओ से परामुख हो गये जो राजनीति उन्हे दे सकती थी। उन्होने राजनीतिक सघर्ष का मार्ग छोड दिया और साहित्यिक साधना के मार्ग को अपनाया। राजनीति के क्षेत्र मे व्यावहारिकता और आदर्श को जिस अनुपात मे रखा जाता है उसे अपने लिए अशक्य और अनपेक्षित मान कर वे काव्य-साहित्य की रचना की भावनात्मक और आदर्शात्मक भूमि पर आकर स्थिर हो गये।

काव्य-विकास

उस समय के राजनीतिक और साहित्यिक स्थितियो के विकल्पो का सक्षिप्त उल्लेख करने के पश्चात् अब हम चतुर्वेदीजी के काव्य-विकास और साहित्यिक प्रगति के सम्बन्ध मे कुछ निवेदन करेगे। उनके आरम्भिक साहित्यिक विकास को मैने ऊपर वैदिक आर्य प्रतिभा के अनुरूप स्वछद, शास्त्रीय अनुशासनो से रहित और किसी सीमा तक अनगढ भी कहा है।

सामान्यत चतुर्वेदीजी के काव्य-विकास को हम तीन चरणो मे रखकर देख सकते हैं—प्रथम चरण राष्ट्रीयता की उद्दाम अभिव्यजनाओ का कहा जा सकता है। इस काल मे कवि के लेखन मे—गद्य मे हो या पद्य मे—वह सतुलन कम है जो उसकी आगामी रचनाओ मे स्पष्ट हो सका है। इस दृष्टि से भी ये प्राथमिक रचनाएँ अधिक उद्दाम है कि इनमे कवि के प्रथम यौवन-काल की एक बडी दुर्घटना—पत्नी का अवसान—इनके व्यक्तित्व को दूर तक प्रेरित करती रही है। आश्चर्य नही यदि उसकी आरभिक काव्य-रचना मे आवेग, भावनातिरेक और आत्म-

विसर्जन के तीखे भाव मिलते है। कवि के विकास का द्वितीय चरण राष्ट्रीय उन्नयन और आत्मोन्नयन की सम्मिलित भूमियो पर सस्थित है। राष्ट्रीयता और रहस्यवाद एक बडी ही सुन्दर और रगीन रेशमी डोर से बँधे हुए है। इस काल मे जहाँ एक ओर राष्ट्रीयता केवल आत्मविसर्जन तक सीमित नही रही है, वही दूसरी ओर रहस्यवाद किसी वैयक्तिक परिवेश मे घिरा न रहकर सार्वजनिक काव्य का विषय बन गया है। और तृतीय चरण मे कवि की वे प्रयोगात्मक रचनाएँ आती है, जिनमे वह समाज और राष्ट्र की विभिन्न क्षेत्रो की गतिविधियो पर हल्के व्यग्यात्मक सकेत देता रहता है। इस तृतीय स्थान को हम प्रयोगात्मक इसलिए भी कहते है कि इसमे किसी एक विचारधारा का प्राधान्य नही है वरन् बहुमुखी स्थितियाँ, दृश्य और वक्तव्य है। इनकी शैली भी आधुनिक प्रयोगशील कवियो की शैली के समीप पड जाती है, यद्यपि चतुर्वेदीजी आरम्भ से अन्त तक भाषा और शैली के क्षेत्र मे एक महान प्रयोक्ता ही कहे जा सकते है। उपर्युक्त तीनो विकास-भूमियो को अशत स्पष्ट करने के लिए कुछ उद्धरण अपेक्षित है।

प्रथम चरण—२० से ३५ तक

प्रथम चरण के सम्बन्ध मे कुछ बाते ऊपर कही गई है। इस कालावधि मे कवि एक ही प्रमुख रागिनी—बलिदान भावना—से अनुप्राणित रहा है और इस भावना को प्रगीत काव्य के गभीर स्तर पर नही ला सका है। मुक्तक काव्य-रूप से ही सघर्ष करता रहा है। मुक्तक और प्रगीत का मुख्य अन्तर हम ऊपर देख चुके है। मुक्तक अपेक्षाकृत स्थूल काव्य रूप होता है। प्रगीत उसी का द्रवित स्वरूप है। मुक्तक हमारी वृत्तियो को चमत्कार और अनुभूति के बीच भ्रमित करता रहता है जबकि प्रगीत अनुभूति-लोक का पूरा प्रन्यक्षीकरण करा देता है। ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर सभी रीति-काव्य और द्विवेदी-युग की हिन्दी कविता मुक्तक-बहुल है। हिन्दी का भक्ति-काव्य तथा पूर्ववर्ती वीरगाथाएँ या तो प्रबधात्मक है या विशुद्ध प्रगीतात्मक। भारतेन्दु युग मे प्रगीतो की शैली अशत अपनायी गई थी किन्तु द्विवेदी-युग की बौद्धिकता ने उसे सम्पूर्ण विकास का अवसर नही दिया। मेरी यह भी धारणा है कि द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त की जिन रचनाओ को 'प्रगीत' कहते है वे वास्तव मे प्रगीत नही है। वे या तो निबधात्मक है या मुक्तक कोटि की। गुप्तजी ने 'साकेत' के नवम सर्ग मे जिस प्रकार के प्रगीतो का निर्माण किया है उनमे से एक बहुचर्चित पद्य को लेकर हम देख सकते है—

मुझे फूल मत मारो
मैं अबला बाला वियोगिनी कुछ तो दया विचारो···

इस रचना मे कवि की आरंभिक भावना करुणा और आवेदन की है। परन्तु

कुछ ही आगे बढने पर वह आत्मविश्वास मे परिणत हो जाती है और अतत एक चुनौती का विज्ञापन करती है। इस प्रकार की भाव-सकरता प्रगीत-काव्य का श्रेष्ठ आधार नही वन सकती। इसमे भाव की वह समग्रता और एकात्म्य नही है जो प्रगीत का केन्द्रीय गुण होता है। अतएव इसे प्रगीत की कोटि मे रखना प्रगीत की बाह्य आकृति से परिचालित होना ही कहा जायगा। प्रगीत का अन्तरग तत्त्व इसमे विरलता से प्राप्त है।

द्विवेदी युग की इस सामान्य प्रवृत्ति से चतुर्वेदीजी का आरभिक काव्य अछूता नही रहा है। यद्यपि वे निरन्तर मुक्तक से प्रगीत की ओर गतिमान रहे है और अनेक अवरोधो को पार कर कुछ समय पश्चात् प्रगीत की वास्तविक भूमि मे पहुँच भी गये है।

चतुर्वेदीजी की अधिकाश आरम्भिक कृतियाँ 'हिम-तरगिनी' 'हिम-किरीटिनी' और 'माता' नामक काव्य सग्रहो मे प्रकाशित हुई है। हिम किरीटिनी' मे सन् १९१३ की कुछ रचनाएँ है, परन्तु अधिकतर सन् १९२४ से '३५ तक की रचनाएँ सगृहीत है। अपवादरूप कुछ प्रगीत सन् '४० के आसपास के भी है। 'हिम तरगिनी' मे सन '३० से '३६ तक की प्रतिनिधि रचनाएँ सगृहीत है यद्यपि इसमे भी कुछ पुरानी और कुछ नई रचनाओ का सन्निवेश किया गया है। 'माता' काव्य-सग्रह मे सन् '२१ और '२२ की कविताएँ अधिक सख्या मे हैं यद्यपि उनमे सन् '१६ से '४५ तक की कुछ रचनाएँ भी सम्मिलित की गई है। ये तीनो काव्य-पुस्तके मूलत सन् '२० से '३५ तक की रचनाओ का प्रतिनिधित्व करती है। इसी कालावधि को हम चतुर्वेदीजी का प्रथम काव्य-चरण मान सकते है। इसके पूर्व की रचनाएँ आरभिक अभ्यास है और इसके पश्चात् की सृष्टियाँ द्वितीय चरण के अन्तर्गत आती है।

इन पुस्तको से दो-एक उदाहरण देकर हम चतुर्वेदीजी की आरभिक काव्य-प्रवृत्तियो को प्रदर्शित करना चाहेगे:

टुकडो पर जीवन की श्वासे
कितनी सुदर दर है!
हूँ उन्मत्त, तलाश रहा हूँ,
कहाँ वधिक का घर है?
दमयन्ती के 'एक चीर' की--
माँग हुई बाज़ी पर,
देश-निकाला स्वर्ग बनेगा
तेरी नाराजी पर।

(हिम-किरीटिनी, पृ० २६)

इसी प्रकार 'मरण त्योहार,' विदा', आदि अनेक रचनाएँ कवि की आरभिक

बलिदान भावना की द्योतक है।

रागे है लाचारी मेरी,
ताने बान तुम्हारी मेरी,
इन रगीन मृतक खण्डो पर,
अमृत-रस ढुलका दो मालिक!

(हिम-तरगिनी, पृष्ठ ५३)

यहाँ कवि अपनी उत्सर्गोन्मुख काव्य-भावना के लिए ईश्वरीय वरदान की आकाक्षा करता है। यहाँ वह प्रलय और प्रणय की विरोधी सीमाओ को एक मे मिला देना चाहता है यद्यपि यह उसकी आरभिक कृतियो की तुलना मे एक अधिक प्रशस्त भावभूमि का सकेत है, फिर भी कवि अपनी सीमा मे अनुरक्त है और उसके लिए स्थायित्व की याचना करता है।

द्वितीय काव्य-चरण—सन् '३६ से '४७ तक

'युगचरण' और 'समर्पण' नामक काव्य पुस्तके कवि के द्वितीय काव्य-चरण की निदर्शक है। इनमे कवि अपने आवेगो को बहुत कुछ शमित कर चुका है। उसकी भावना अधिक गभीर और प्रशस्त हो गई है। यद्यपि उसकी मनस्विता और तेजस्विता उसके समस्त काव्य मे व्याप्त है परन्तु ये तत्त्व प्रवेगशून्य और प्रशान्त हो चले है। अभिनवगुप्त ने समस्त रसो के मूल मे जिस शात रस का निर्देश किया है, उसकी यथार्थता यहाँ देखी जा सकती है। अभिनवगुप्त का आशय यह है कि विभिन्न रसो की निष्पत्ति करने वाला कवि-व्यक्तित्व प्रशात भूमि पर सस्थित रहना चाहिए। वह अतिशय आत्म-केन्द्रित या वस्तु-केन्द्रित न होकर अपने व्यक्तित्व की तटस्थता से सचालित होगा। सभी श्रेष्ठ कवियो के काव्य-विकास मे यह मनोभूमि आती ही है, तभी वह श्रेष्ठ कवि की अभिधा के योग्य होता है। अभिनवगुप्त की यह उक्ति आधुनिक शब्दावली मे 'क्लासिक' और 'रोमाटिक' काव्य की अतिवादी भूमियो में समीपता लाने का सुझाव देती है।

जैसाकि ऊपर एक स्थान पर सकेत किया गया है चतुर्वेदीजी का यह काव्य-चरण राष्ट्रीयता और रहस्यवाद के मणि-काचन सयोग के लिए प्रयत्नशील है। राष्ट्रीयता भाव-क्षेत्र की वस्तु है और रहस्यवाद दार्शनिक और आध्यात्मिक चिन्तना का परिणाम है। भावना और कल्पना के साथ विचार और चिन्तना का यह समन्वय चतुर्वेदीजी की इस चरण की कविताओ को दीप्तिमान करता है। कुछ लोग अलौकिक के शब्द-जाल मे पडकर इन दोनो प्रवृत्तियो मे सामजस्य की सभावना नही देखते। परन्तु अधिकाश छायावादी काव्य इसी भूमि पर सस्थित है। इसलिए उक्त समीक्षको को इस उच्चतर समन्वय की ओर अधिक गहराई से दृष्टिपात करना चाहिए।

किन चरणो मे आज उन्हे रक्खूँ ?
किसका अपमान करूँ ?
किसकी ध्वनियो को दुहराऊँ
हृदय हलाहल-दान करूँ ?
आया हूँ मै नाथ, तुम्हारे कण्ठ कालिमा देने को !
और तुम्हारा वैभव लेकर गीत तुम्हारा होने को।
('समर्पण', पृ०२६)

इस रहस्योन्मुखी रचना मे कवि किसी परम शक्ति का गीत बन जाने की अभिलाषा रखता है। अपनी समस्त कालिमा उसे भेट कर निष्कलुष बन जाना चाहता है। इसी प्रकार 'आराधना की वेलि', 'उधार के सपने' आदि कविताएँ कवि की बदलती हुई मनोवृत्ति का स्पष्ट परिचय देती है।

तृतीय काव्य-चरण—स्वातत्र्योत्तर कविताएँ

कवि के काव्य-विकास का तृतीय चरण भारतीय परिवेश मे स्वातत्र्योत्तर चरण कहा जा सकता है। कवि की दो काव्य-पुस्तके 'वेणु लो गूँजे धरा' और 'बीजुरी काजल आँज रही' इस तृतीय उत्थान का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि प्रकृति-सौन्दर्य सबधी कवि की रचनाएँ उसकी आरभिक कृतियो मे भी बिखरी पडी है, परन्तु समाहित रूप मे 'बीजुरी काजल आज रही' विशुद्ध प्राकृतिक सौंदर्य का आलेखन करती है। इसकी प्राय सभी (६४) कविताओ मे प्रकृति के सौंदर्य और उल्लास की छटा चित्रित की गई है। इनकी विशेषता यह है कि प्रकृति के प्रति कवि कही भी अनास्था या निराशा, उग्रता या भीषणता की भावनाओ का प्रकाशन नही करता। सर्वत्र शान्त सौन्दर्य और सुव्यवस्था ही प्रकृति मे देखता है। यद्यपि इन प्रकृति-चित्रणो मे विराट और एकतान दृश्यो का आलेखन नही है किन्तु प्राकृतिक सौन्दर्य की सूक्ष्म और मनोरम चेतना सर्वत्र व्यक्त हुई है। प्रतीत होता है कि यह प्रकृति-काव्य भी कवि की उस सयमित और सौन्दर्यान्वेषिणी भावना का परिचायक है जो दीर्घकाल के सघर्ष के पश्चात् उसे उपलब्ध हुई है। कुछ पक्तियाँ उदाहरण के लिए प्रस्तुत है.

जो तरल करो से बाँध रहा बूँदे अपार
हिल रहा हवा के झोको पर जो बार-बार
जो खीच रसा के कीचड से रस-रूप-ज्वार
पत्तो, डालो, फूलो को बाँट रहा उदार
तब कौन कि जो उसकी लहरो को टोके
ऊँचे उठते हरिताभ तत्व को रोके !
('बीजुरी काजल आज रही', पृ० २१)

इन पक्तियो मे कवि ने जिस प्रकृति-चित्र का सकेत किया है उसमे अनिवार्यत एक आध्यात्मिक आभास भी स्वाभाविक रूप से समाहित हो गया है।

'वेणु लो गूँजे धरा' स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता का एक श्रेष्ठ सग्रह है। इसमे एक ओर जहाँ कवि सामयिक साहित्य, राजनीति, सामाजिक शैथिल्य और आर्थिक वैषम्यो के प्रति व्यग्यात्मक सकेत करता है वहाँ दूसरी ओर देश की सार्वत्रिक प्रगति और विकास के प्रति आस्थावान भी है। यही वह परिणति है जो प्राय पचास वर्षो के सतत अन्वेषण और अनुभव के पश्चात् कवि के काव्य-मुकुर मे प्रतिफलित हुई है। यह वह कविता है जो सच्चे अर्थो मे राष्ट्रीय कही जा सकती है तथा जिसका रचयिता राष्ट्र-कवि कहा जा सकता है

तेरे पर्वत शिखर कि नभ को भू के मौन इशारे,
तेरे वन जग उठे पवन से हरित इरादे प्यारे।
रामकृष्ण के लीलामय मे उठे बुद्ध की वाणी,
काबा से कैलाश तलक उभडी कविता कल्याणी।

(पृ० ७७)

इन पक्तियो को कवि की राष्ट्रीय भावना की परिणति कहा जा सकता है। इनमे भारतीय राष्ट्रीयता अपने सहज मानववाद को सबल दे रही है और इनका रचयिता सारे आवेशो को छोडकर सम्पूर्ण मानवतावादी भूमिका पर आ गया है।

गद्य-लेखन

चतुर्वेदी के काव्य के साथ उनके गद्य-लेखन मे भी समानान्तर परिवर्तन देखे जाते है। अन्तर यह है कि जहाँ काव्य मे वे अतिशय भावुकता से आगे बढकर भावना की सतुलित भूमियो पर पहुँच सके है वहाँ गद्य मे अतिशय आलकारिकता और रूपात्मकता से अग्रसर होकर वैचारिक समतल की ओर पहुंचे है। काव्य मे उन्हे जिन एकागी आवेगो से और जिन दुरूह अभिव्यजना से सघर्ष करते हुए अपना मार्ग प्रशस्त करना पडा है, अधिक भावनात्मक गहराइयो और विस्तार मे जाना पडा है, वहाँ गद्य मे अतिशय कल्पनात्मकता के स्थान पर भावो और विचारो का समन्वय करना पडा है। काव्य और गद्य के मूलभूत अन्तर को देखते हुए यह प्रक्रिया स्वाभाविक रही है और विकास की ये ही भूमियाँ दोनो क्षेत्रो मे देखी जाती है जो दोनो काव्य-रूपो का उन्नयन करती है। स्पष्ट है कि काव्य के उन्नयन का मार्ग गद्य के उन्नयन के मार्ग से भिन्न होगा। अतएव चतुर्वेदीजी के गद्य का विकासक्रम किसी प्रकार अस्वाभाविक या अनोखा नही कहा जा सकता। कुछ लोग ऐसे होगे जो उनके 'साहित्य देवता' के आरम्भिक गद्य को अधिक मनोरम मानते है परन्तु 'साहित्य देवता' मे प्रगल्भ कल्पनाओ की भरमार है परन्तु उसमें सर्वत्र एकतानता भी नहीं है और उस समस्त गद्य को पढ़कर कथनशैली का

सौन्दर्य ही हमारे सम्मुख रह जाता है, कथ्य की विशेषता और समग्रता हमारी दृष्टि मे नही आती।

'साहित्य देवता', 'अमीर इरादे, गरीब इरादे,' 'समय के पाँव' और 'चिंतक की लाचारी' इस क्रम से चतुर्वेदीजी के गद्यकी बदलती हुई रूपरेखा और आधार-सामग्री को समझने की आवश्यकता है। एक समय था जब गद्य और पद्य की सरणियाँ बहुत कुछ अभिन्न थी और केवल छन्द ही उनकी विभाजक रेखा था, परन्तु सभ्यता के विकास के साथ इन साहित्य-रूपो मे अन्तर पडता गया है और आज गद्य-साहित्य से हम अधिक स्पष्ट शैली और सुस्पष्ट विचारो की अपेक्षा रखते है। चतुर्वेदीजी के साहित्यिक विकास मे उनके गद्य-लेखन मे इसी विकास के आयाम प्राप्त होते है। स्थान-सकोच के कारण हम यहाँ उनके गद्य-लेखन के विविध रूपो का उद्धरण नही दे सकेगे। उद्धरण देना हमे आवश्यक भी प्रतीत नही होता।

चतुर्वेदीजी की अनेकानेक रचनाएं अप्रकाशित है, उनके सम्बन्ध मे हम यहाँ विचार नही कर सकेगे।

सराश और निष्कर्ष

अपेक्षाकृत इस छोटे निबन्ध मे एक बडे कवि के व्यक्तित्व और साहित्य-रचना के विकास-क्रम का उल्लेख केवल दिशा-इगित मात्र ही कहा जा सकेगा। हम देख सकते है कि चतुर्वेदीजी का जीवन और परिस्थितियाँ जिन अधूरे और अनियोजित साधनो को लेकर चली थी उनमे क्रमश सुनियोजन और समग्रता आती गई है। जिस प्रकार अपूर्णता से सापेक्षिक पूर्णता की ओर बढने का प्रयत्न उनके व्यक्तित्व-निर्माण का आधार रहा है उसी प्रकार साहित्यिक रचना भी एक सुनिश्चित क्रम-विकास, विस्तार और प्रौढता का परिचय देती है। यह समूचा विकास चतुर्वेदीजी के व्यक्तित्व की भाँति उनकी साहित्य-सृष्टि मे भी बहुत कुछ बेपहचान और सहज गति से आया है, इसलिए तीखे मोड और मार्ग-परिवर्तन न उनके व्यक्तित्व मे और न उनके साहित्यिक निर्माण मे ही दिखाई देते है। यह सहज उन्नयन अपने आप मे महत्त्वपूर्ण है।

साहित्य-रचना मे चतुर्वेदीजी के सम्मुख क्रमागत प्रतिमान नही के बराबर थे इसीलिये उन्हे अपना रास्ता आप ही बनाना और तय करना पडा है। इस प्रकार के सर्वथा मौलिक प्रयास मे विलक्षणताओ का होना आश्चर्यजनक नही बल्कि स्वाभाविक है। चतुर्वेदीजी की वर्ण्य-वस्तु तो छायावाद के अन्य कवियो की वर्ण्य-वस्तु के समीप है और उनसे मिलती-जुलती भी है। परन्तु उनकी अभि-व्यजना और वर्णन-शैली उनकी अपनी ही है। वे ही उसके स्रष्टा, विधायक और पुरस्कर्ता है। यह शैली ठेठ भाषा के प्रयोगो को अपनाने वाली, यत्रतत्र

उर्दू का स्पर्श करनेवाली बिम्बात्मक शैली कही जा सकती है। चतुर्वेदीजी का सारा काव्य-साहित्य कल्पना की उडानो से, प्रयोगो के अनोखेपन से आपूरित है। इतनी अधिक रूपकात्मकता और भाषा-प्रयोगो का बाहुल्य आधुनिक हिन्दी के किसी अन्य कवि मे नही मिलता। उनकी यह विशेषता जहाँ एक ओर उनके काव्य मे मौलिकता और ताजगी के गुणो को लाती है, वही दूसरी ओर ईषत् सभ्रम की भी सृष्टि करती रहती है।

छायावादी काव्य के आरम्भिक विकास चरण मे मैने प्रसाद, निराला और पत की बृहत् त्रयी का उल्लेख किया था। आज जब छायावाद की परिणत स्थिति के दूसरे छोर पर खडा होकर देखता हूँ तो माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और दिनकर– जिन्हे राष्ट्रीय भावना का कवि कहा जाता है— राष्ट्रीय काव्य की एक अन्य वृहत् त्रयी का निर्माण करते है। माखनलाल चतुर्वेदीजी को हम राष्ट्रीय काव्य की वृहत् त्रयी का शीर्ष कवि कह सकते है। इस सदर्भ मे, खण्डवा मे मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद् द्वारा आयोजित एक विशाल एव अविस्मरणीय 'माखनलाल सम्मान समारोह' मे १५ जनवरी, १९६५ को मैंने अपने विचारो को किंचित् अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति देते हुए जो वक्तव्य दिया था, वह इस प्रकार है

"उत्साह, देश-प्रेम, ओजस्विता और मनस्विता - ये चतुर्वेदीजी के काव्य की केन्द्रीय विशेषताएँ है। उनमे महान् उत्साह, महान् देश-प्रेम, ओजस्विता और विलक्षण मनस्विता है। अनेक कवि राष्ट्रीय साहित्य और काव्य के क्षेत्र मे आये और इस क्षेत्र को छोडकर चले गये किन्तु चतुर्वेदीजी ने अपने राष्ट्रीय और सास्कृतिक क्षेत्र को कभी न छोडा। जब अनेक कवि जीवन के प्रति निराशाओ को व्यक्त करने लगे थे, कुण्ठाओं को अभिव्यक्ति देने लगे थे तब भी चतुर्वेदीजी की मैंने एक भी रचना नही देखी जिसमे इस प्रकार के विकल्प आ गये हो। उन्होने करिश्मा दिखाया है। विश्व-साहित्य मे देश-प्रेम की रचनाओ का इतना बडा ठोस रूप कही दिखाई नही देता। मैंने जो कुछ देखा-सुना है, उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि इस तरह का राष्ट्रीय काव्य भारत की अपनी विशेषता है। और यदि भारतीय काव्य मे राष्ट्रीय कविता की एक कोटि बन गयी है, एक सम्प्रदाय बन गया है, तो उसका श्रेय चतुर्वेदीजी को ही है। भारत मे भी ऐसा कोई कवि नही जिसने देश को केन्द्र मे रखकर ऐसे विशाल राष्ट्रीय साहित्य का निर्माण किया हो। यहाँ राष्ट्रीयता से मेरा तात्पर्य सामयिक काव्य से नही, सास्कृतिक काव्य से है।

अन्त मे अपने इस लेख मे जो विवेचनात्मक सामग्री आ गई है और जिसके कारण कवि के अनेकानेक प्रशसको और श्रद्धालुओ की भावना पर जो चोट पहुँच सकती है (यद्यपि ऐसी कोई चोट पहुँचनी नही चाहिए) उसके निवारण के

लिए मैं कवि के प्रति उस श्लोक का उद्धरण दूंगा जिसे उसके लिए मैं अत्यधिक समीचीन मानता हूँ

> धन्यास्ते सुकृतिन रससिद्धा कवीश्वरा ।
> नास्ति येषा यश काये जरामरणजभयम् ॥

चिर-नूतन कवि माखनलाल चतुर्वेदी

◦ ◇

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

लोक-वद्य कवि के रूप मे पडित माखनलाल चतुर्वेदी ने हिन्दी साहित्य के सभी प्रेमी-पाठको के हृदय मे अपने लिए एक अक्षय स्थान बना लिया है। उन्ही के कारण खडवा हिन्दी साहित्य-प्रेमियो के लिए एक पवित्र तीर्थ-स्थान हो गया है। उनके साहित्यिक जीवन से मेरा भी साहित्यिक जीवन सम्बद्ध रहा है, फिर भी मैं उनके निकट सम्पर्क मे कभी नही आया। उसका सबसे बडा कारण यह है कि गुरुजन के प्रति छात्रो के हृदय मे श्रद्धा के साथ जो एक आतक का-सा भाव वना रहता है, वही भाव मेरे हृदय मे चतुर्वेदीजी के प्रति अभी तक है। मैने केवल दो बार उनके दर्शन किये हे। एक बार मैंने उनको जबलपुर मे देखा और दूसरी बार गोदिया मे, परन्तु उनके समीप बैठकर उनसे बातचीत करने का साहस मुझे नही हुआ। साहित्य जगत् मे एकान्त प्रेमी पाठक की तरह मै सदैव विचरण करता आया हूँ। सन् १९०३ से लेकर अभी तक मै हिन्दी साहित्य जगत् की अपनी यह तीर्थ-यात्रा बन्द नही कर सका हूँ। युग बदल गया है, साहित्य जगत् मे भी यथेष्ट परिवर्तन हो चुके है। मैं एक पाठक के रूप मे हिन्दी साहित्य की इस क्षिप्र गति को देखता आया हूँ। अपनी इस तीर्थ-यात्रा मे मुझे अभी तक वही कौतूहल होता है, वही विस्मय होता है, वही आतक होता है, जो छात्रावस्था मे हुआ करता था। मैं स्वय जराजीर्ण हो गया हूँ, लिख-पढ़ नही सकता, फिर भी जब किसी नए साहित्यकार की कोई नई कृति प्रकाशित होती है, तब उसे पढने के लिए व्यग्र हो जाता हूँ। मेरी अब एक अपनी रुचि हो गई है, यह सभव है कि वृद्धावस्था मे मेरी रुचि परिवर्तित हो। मै सचमुच वह काला कबल हूँ जिस पर अब दूसरा रग नही चढ सकता, फिर भी नई रचनाओ को पढता हूँ। कितनी नई रचनाओ से मुझे विरक्ति हो जाती है, पर कुछ से मुझे सतोष भी होता है। अपनी इस मन स्थिति मे जब मैं अपने अतीत साहित्यिक जीवन पर दृष्टि डालता हूँ तब मै स्वय अपने भावो से अभिभूत हो जाता हूँ। द्विवेदीजी का वह युग

चला गया। हम लोग उस युग के कितने ही श्रेष्ठ कवियो की रचनाओ को भूल गये है। राष्ट्रीय भावो के उद्बोधक त्रिशूलजी को भी हम लोग भूलते चले जा रहे है। अन्य कितने ही कवि विस्मृति के गर्त मे लीन हो गए हे। परन्तु सन् १९१२ मे जब मै अपनी एक कविता लेकर हिन्दी साहित्य-क्षेत्र मे प्रविष्ट हुआ, तब से लेकर आज तक जिस कवि की रचना-दीप्ति को काल की वह गति लुप्त न कर सकी वह माखनलालजी चतुर्वेदी ही है। चतुर्वेदीजी क्या द्विवेदी युग के कवि हें ? क्या वे छायावाद या रहस्यवाद युग के कवि हैं ? क्या वे वर्तमान प्रगतिवाद के कवि है ? यह कहना सचमुच कठिन है। जब मध्यप्रान्त की काव्यधारा की विवेचना करने के लिए 'नक्षत्र' का प्रकाशन हुआ तब ठाकुर लक्ष्मणसिह चौहान और मगलप्रसाद विश्वकर्माजी सधिकालीन धारा मे रखे गए और उनके बाद चतुर्वेदीजी को नवीन धारा मे रखा गया। इसमे सदेह नही कि यदि फिर ऐसा सग्रह किया जाए तो नवयुग के कवियो की रचनाओ मे चतुर्वेदीजो की रचनाएँ अग्रण्य हो जाएं। यह सच है कि नवीन कविता की जो शैली प्रवर्तित हो रही है उसके कारण वर्तमान युग के कितने ही कवि नवयुग की इस नव दीप्ति के कारण निष्प्रभ हो चुके है, परन्तु चतुर्वेदीजी की रचनाओ के प्रति अभी तक लोगो को उतना ही आग्रह हे जितना पहले था।

मै कह नही सकता कि चतुर्वेदीजो कब साहित्य के क्षेत्र मे प्रविष्ट हुए। जब सन् १९१३ से 'प्रभा' का प्रकाशन हुआ तब 'एक भारतीय आत्मा' के रूप मे चतुर्वेदीजी हिन्दी साहित्य मे अपना स्थान बना चुके थे। मैं उनसे 'प्रभा' के सपादक के रूप मे ही परिचित हुआ। उस समय मैं स्वय एक छात्र था। प्रभा' का प्रकाशन मेरे समान छात्र के लिए उस समय कितने अधिक गौरव की बात थी इसकी कल्पना आधुनिक युग के पाठक नही कर सकते। अब तो 'नवनीत' पत्रिका के कारण हिन्दी मे सचमुच रिव्यू ऑफ रिव्यूज की बात साधारण हो गई है परन्तु 'प्रभा' के प्रथम अक के प्रकाशन के बाद हम लोगो ने हिन्दी मे रिव्यू ऑफ रिव्यूज के रूप मे उसका स्वागत किया। उस समय 'सरस्वती' की बडी प्रतिष्ठा थी, फिर भी नवीनता के प्रति तरुणो मे जो एक व्यग्रता होती है उसके कारण हम लोगो ने 'प्रभा' के प्रकाशन मे एक नवयुग का आभास पाया। सपादक गण हम सब छात्रो के लिए विशेष गौरव के पात्र थे। उनके पास अपनी रचना भेजने मे भी मन मे एक भय होता था। मैंने भी डरते-डरते अपनी कुछ रचनाएँ भेजी, जब वे प्रकाशित हो गई तब मुझे बडा अजरज हुआ, क्योकि मेरे लिए आशातीत बात थी कि मेरे समान छात्रो की रचनाएँ भी 'प्रभा' मे स्थान पा सकती हे। अपने जीवन के उस प्रारभ काल मे चतुर्वेदीजी के सम्बन्ध मे जो एक विशेष गौरव की धारणा बना ली, वह सदैव बनी रही। सन् १९१० मे 'कर्मवीर' निकला, चतुर्वेदीजी उसके सपादक हुए। स्वर्गीय सप्रेजी चाहते थे कि मैं उसके सपादन विभाग मे एक

सहायक के रूप मे काम करूँ पर उसी समय मुझे स्वर्गीय द्विवेदीजी की कृपा से 'सरस्वती' मे काम करने का अवसर मिल गया और मैं राजनादगाव से इलाहाबाद चला गया। आज सोचता हूँ कि यदि मै 'कर्मवीर' मे काम करने के लिए चला गया होता तो कदाचित मेरे जीवन की गति ही परिवर्तित हो जाती। उन दिनो भारतवर्ष मे नव राजनैतिक चेतना प्रबुद्ध हो रही थी। सभी तरुणो के हृदय मे एक महत्वाकाक्षा होती है और आत्मविश्वास भी। राजनीति की अपेक्षा साहित्य की ओर मेरी विशेष प्रवृत्ति हो गई है। यही कारण है, कि मै साहित्य के क्षेत्र मे ही व्यस्त रहा, साहित्य के साथ-साथ मैं शिक्षा के भी क्षेत्र मे काम करता रहा। 'सरस्वती' मे काम करने के पहले मै स्कूल मास्टर ही था और सपादन-कार्य छोड देने के बाद मै फिर मास्टर ही हुआ। स्कूल मास्टर होने के कारण मुझे उनकी रचनाओ को समझाने का काम मिला। कविता मे रस लेना एक बात है पर छात्रो को एक-एक बात समझाना साधारण नही है। चतुर्वेदीजी की रचनाओ को समझाने और समझने के लिए मुझे तो यथेष्ट परिश्रम करना पडा। एक बार जब मै बम्बई गया था तब वहाँ मुझे उनकी एक कविता समझानी पडी। उस कविता की प्रारभिक पक्ति है —

किन घडियो मे तुमको झाँका
तुझे झाँकना पाप हुआ

मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार छात्रो को उसका अर्थ बताया। फिर नागपुर मे छात्रो की एक सभा मे मैंने उसी कविता का वही अर्थ बताया। तब पडित रामनारायण मिश्र ने कहा कि चतुर्वेदीजी ने उसका दूसरा अर्थ समझाया था मैंने कहा कि कवि कविता लिखता है और हम स्कूल मास्टर उसकी टीका करते है। यह बात सच है कि आधुनिक युग मे कितनी ऐसी नई कविताएँ है जिनको समझाना बहुत कठिन हो जाता है। चतुर्वेदीजी की गद्य रचनाओ मे भी पूर्णसिह जी की रचना-शैली की तरह एक विशेष कला की असाधारणता लक्षित होती है। पाठ्य पुस्तको मे जब उनके निबन्ध आते है तब उनकी एक-एक पक्ति कोसमझाना पडता है। यह बात नही है कि उनकी रचनाओ मे ऐसी दुरूहता है कि पाठक उनमे रस न पा सके। उनकी रचनाओ मे एक विशेष मधुरता है, एक विशेष रस है। उनकी कविता कला उन्ही की निम्नलिखित पक्तियो मे निहित है

भूमि से नभ तक हृदय की एक चिडिया डोलती है,
और वाणी के बिना ही लाख बाते बोलती है !
तारको से जूझती-सी
इन्द्र धनु से बूझती-सी
और श्याम पुतलियो से
श्याम नभ तक रूझती-सी

सूझ से कुछ होड लेती
थकन से कि मरोड लेती,
रुझ के नभयान को
रस दान करती, होड लेती,
पुतलियो मे ज्वार
जग पर छबि-सुधा सी ढोलती है ।।
भूमि से नभ तक, हृदय की एक चिडिया डोलती है ।।

चिरकाल तक गूँजने वाला स्वर

◇ ◇

मुकुटधर पाण्डेय

बीसवी शताब्दी के प्रथम चरण मे जिन मनीषियो के प्रयत्न से हिन्दी साहित्य के क्षितिज का विस्तार हुआ उनमे श्री माखनलाल चतुर्वेदी का नाम बडे आदर के साथ लिया जायेगा। हिन्दी काव्य को उन्होने एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया। उनका राष्ट्रीय स्वर अपना सानी नही रखता। हिन्दी कविता देवी का मन्दिर उससे चिरकाल तक गूँजता रहेगा। राष्ट्रीय स्वर ही नही उनकी रचनाओ के पद-पद पर चिरन्तन भावुकता भी पायी जाती है। प्रकृति-चित्रण की ओट मे उन्होने उदात्त भावो की व्यजना की है। इन भावो की अभिव्यक्ति उनकी अपनी चीज़ है। उसकी वक्रता का क्या कहना, वह वक्रोक्ति काव्य जीवितम् को चरितार्थ करती है। उनके वर्षा-गीत की ये पक्तियाँ उनकी कविताओ पर पूर्णतया लागू होती है -

"गरज मे पुरुषार्थ उठता,
बरस मे करुणा उतरती।"

वे स्वातन्त्र्य सग्राम के सेनानी थे और पहलू मे दिल भी रखते थे। उन्होने ललकारा भी और गाया भी। उनके ही शब्दो मे 'बलि और गीत युग की बीहड भूमि पर एक-दूसरे के पूरक पथी' थे।

वे रोम-रोम से कवि हैं। उनकी अपरोक्ष अनुभूतियाँ ही कलम की नोक से कागज पर उतरती है। 'तुम मिले प्राण मे रागिनी छा गई' जैसे गीतो मे हृदय के स्पन्दन का स्पष्ट अनुभव होता है।

गद्य के क्षेत्र मे तो आप एक शैलीकार ही है। भाषा पर उनके व्यक्तित्व की छाप पायी जाती है। वह वन्य निर्झरिणी की नाईं उछलती-कूदती प्रवाहित होती है, कही 'वेग समाकुला' तो कही 'स्तिमित गभीरा', कही 'कल निनादिनी', तो कही 'भैरव निस्वन'। आपके 'कृष्णार्जुन युद्ध' और 'साहित्य देवता' का हिन्दी गद्य-साहित्य मे एक विशिष्ट स्थान है।

चतुर्वेदीजी सन् १९१३ के लगभग खडवा से निकलने वाली 'प्रभा' के मचालक थे। मैं तब हाई स्कूल का छात्र था। स्कूल के वाचनालय मे 'प्रभा' आती थी। मैं छात्रावस्था मे ही उसमे कभी-कभी कुछ लिखता था। मैं तभी से उन्हे जानता था। स्वर्गीय पूज्याग्रज प० लोचनप्रसाद पाडेय से उनकी मित्रता थी। उनके प्रति मेरे हृदय मे आरभ से ही बडी श्रद्धा रही है। मै उन्हे अपना गुरुजन मानता हूँ।

उनके प्रथम दर्शन हुए सन् १९३५ के लगभग जब वे रायगढ पधारे। उनकी नागरिक अभ्यर्थना हुई थी। उस अवसर पर उन्होने बडा ही ओजस्वी भाषण दिया था। भाषण क्या था खासा गद्यकाव्य था। कवि, लेखक, सम्पादक और वक्ता चारो का आप मे दुर्लभ योग पाया जाता है। मुझे उनके श्रीमुख से कविता सुनने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन सन् १९३७ मे स्वनामधन्य स्व० राजेन्द्र बाबू की अध्यक्षता मे नागपुर मे हुआ था। उस अवसर पर स्व० नवीनजी की अध्यक्षता मे एक कवि सम्मेलन भी हुआ था। रात्रि की निस्तब्धता मे जब उन्होने अपनी, 'कोकिल बोलो तो' वाली कविता सुनाई, तब समाँ बँध गया। लोग मत्रमुग्ध-से बैठे सुनते रहे।

चतुर्वेदीजी हिन्दी के उन बहुत थोडे कवियो मे है जिन्होने राजनीति मे मक्रिय भाग लिया। वे मध्यप्रदेश के प्रमुख नेताओ मे गिने जाते थे। उन्होने अनेक बार कृष्ण मदिर की यात्रा की है। वे इसके लिए हमेशा तैयार रहते थे। १७ मई, १९३२ के एक पत्र मे उन्होने स्वर्गीय पूज्याग्रज को लिखा था, "मेरे बाहर रहने के दिन अब गिने-चुने ही है। आपके कृपा-पत्र को जो इस पत्र के उत्तर मे आते देख सकूँ तो ईश्वर की बडी कृपा। मेरे योग्य सेवा लिखिए। आशीर्वाद दीजिए कि अन्दर रहकर भी मुझसे कुछ-न-कुछ सेवा होती ही रहे।"

'कर्मवीर' द्वारा आपने जनता की जो सेवा की उसका मूल्याकन नही किया जा सकता। राजाओ पर 'कर्मवीर' का आतक-सा छाया रहता था। अनेक देशी राज्यो मे उस पर प्रतिबध लगा था। उनके सामने अनेक प्रलोभन आए पर उन्होने उन्हे पैरो से ठुकरा दिया। ऐसी थी उनकी तपस्या, ऐसा था उनका त्याग।

अमृत सिंचन करने वाले धन्वंतरि

◦ ◦

उदयशंकर भट्ट

हिन्दी के अक्षर -बीज को भारतीय भूमि मे सन्तो की वाणी ने रोपा। शृगारी कवियो ने उसको अकुरित किया, प्रमुख उन्नायको, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रभृति देशभक्तो, कला-उपासको ने उसे सीचा और स्नेह बरसाया। आधुनिक काल के हिन्दी के वरदपुत्रो स्व० मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी जैसे व्यक्तियो ने अपने अद्भुत तप, अटूट लगन, गहरी और व्यापक प्रतिभा से उसको पल्लवित-पुष्पित किया। इस काल के व्यक्तियो ने साहित्य-साधना के साथ देश के उत्थान के लिए स्वतन्त्रता-सग्राम मे जेल-यात्राएँ की, दासता की पीडा को चुनौती देते हुए अपने ओज को स्वच्छ और आचरण को अभिनन्दनीय बनाए रखा। शारीरिक कष्ट के साथ-साथ मानसिक रूप से काव्य-साधना को अपने जीवन का चरमलक्ष्य और चिन्तन को देश का अग्रदूत बनाया।

चतुर्वेदीजी हिन्दी की उन्ही वरेण्य विभूतियो मे से है जिन्होने हिन्दी साहित्य की नीव मे शक्ति, प्रौढता की ईट और अपने समग्र-जीवन का स्नेह-सीमेट लगाया है। एक तरह से वे खडीबोली काव्य के आधार-स्तम्भ है। भारतेन्दु बाबू के काव्य ने राष्ट्रीयता, देश-प्रेम और छलछलाते काव्य-सौन्दर्य का शखनाद किया, गुप्तजी के साकेत', 'यशोधरा', 'भारत-भारती' ने उनको सर्वांग सुन्दर बनाया और राष्ट्रीयता का कवच पहनाकर हमारे इस कविर्मनीषी ने उससे सम्पूर्ण भारतीयता को प्राणवान् कर दिया। दूसरे शब्दो मे कहूँ तो माखनलालजी ने ही राष्ट्रीयता को साहित्यिकता का परिधान पहनाकर उसे शुद्ध काव्य के सिहासन पर प्रतिष्ठित किया। अक्षर की उपासना करके उस परम्परा के काव्य को सही शब्दो मे अक्षर और अमर बना दिया। उसमे रहस्यमयता, भाव-निगूढता के साथ-साथ, काव्य-सौन्दर्य, रसवैदग्ध्य, रहस्यवादी वस्तु, शिल्प और भाव से अपने काव्य को चमत्कृत किया। शैली को प्राण दिये। जीवन की अन्तर्वर्ती शक्ति से काव्य मे भक्ति, स्नेह, उदारता, निराला बाँकापन और उक्ति-वैचित्र्य से उसे

पुष्ट और अनुप्राणित किया। सामयिकता को समुचित उत्तेजना देने एव काव्य-मर्मज्ञो को आनन्द-विभोर कर देने के कारण चतुर्वेदीजी का काव्य दोनो दृष्टियो से सशक्त और सम्पन्न है। उसमे एकागिता का अभाव है। उनके काव्य ने स्वतन्त्रता-सग्राम की भूमिका तैयार करते हुए सहस्रो नवयुवको मे बलिदान की भावना जगाई। उनमे अदम्य आत्मविश्वास भरा। सन्देही मे दृढ-सकल्प, दुर्बल मे साहस और हीनता मे सुमेरु को छूनेवाला विश्वास उत्पन्न किया। स्वय अविजित सेनानी रहकर काव्य के द्वारा राष्ट्र का नेतृत्व करते रहे। भीष्म की तरह अपने विश्वासो पर अडिग, अपने ध्येय और अपनी निष्ठा के प्रति सच्चे रहे। यदि मै यह कहूँ कि काव्य मे उन्होने वास्तविकता, ध्येय के प्रति निष्ठा और उद्देश्य की अनवरत साधना करते हुए हमारे साहित्य को उज्ज्वल और चमत्कृत किया, राष्ट्रीयता के नाटक मे सूत्रधार बनकर उसका सचालन किया तो अत्युक्ति न होगी। वे प्राय शरीर से निर्बल रहे पर अपने प्राणो की शक्ति फूंककर उसे ओजस्वी और सबल बनाया। अपनी प्रतिभा से ऊर्जस्वित् किया। वे हमारे रुग्ण और प्रसुप्त विश्वासो मे जीवन का अमृत-सिचन करने वाले धन्वतरि है। ऐसे कवि का सम्मान हमारी मातृभाषा का सम्मान है। हिन्दी के सम्पूर्ण साहित्यिको का सम्मान है। वे हमारे काव्य-गुरु है। मुझे विश्वास है हिन्दी-काव्य को उन्होने जो दिशा दी है, जो अभिनव मोड दिया है, उससे हिन्दी-काव्य निरन्तर समृद्ध और युग-युगो तक आलोकित होता रहेगा। प्रखर वक्ता, ओजस्वी पत्रकार, कला के अनन्य उपासक माखनलालजी के चरणो मे मेरा शतश प्रणाम।

याता यान्ति च यातारो, लोका शोकाधिका भुवि।
काव्यसम्बन्धिनी कीर्ति स्थायिनी निरपायिनी॥

—इस पृथ्वी पर बहुत से लोग शोक और आकाक्षाएँ लेकर चले गये, जा भी रहे है, आगे भी जायेगे किन्तु अमर काव्य का यश स्थायी और अनश्वर है।

अमर वाणी के कवि

◇ ◇

डा० रामविलास शर्मा

आदरणीय साहित्यकार माखनलालजी चतुर्वेदी गद्य और पद्य, दोनो मे कवि है। जिसने भी एक बार मच से बोलते हुए उन्हे सुना होगा, वह उनकी भाषण-कला पर मुग्ध हुए बिना न रहा होगा। मैने उनका भाषण किसी साहित्यिक समारोह मे सुना था—सभवत जयपुर मे। मुझ पर उसका जादू का-सा असर हुआ। मैने इस प्रकार गद्य का प्रयोग करते हुए किसी वक्ता को देखा ही न था। मुझे पहली बार मालूम हुआ कि कोई भाषणकर्ता हिन्दी भाषा का व्यवहार इतनी सफलता से कर सकता है। आशु कविता करना आसान है, माखनलालजी का-सा गद्य बोलना कठिन है।

उनकी वाणी मे ओज था, ओज के साथ माधुर्य था। वह भावो मे डूबे हुए थे लेकिन विचारो की ठोस जमीन से दूर उठे हुए नही थे। उनकी शैली चमत्कारपूर्ण थी लेकिन कही यह न मालूम होता था कि उन्होने प्रयास करके चमत्कारो का सग्रह किया है। सब कुछ सुगठित, कलापूर्ण, साथ ही स्वत. स्फूर्त और भावपूर्ण।

उनके भाषण सुनने का अवसर बहुत बार नही मिला। जब-तब पत्रो मे उनके ओजस्वी लेख पढकर सन्तोष कर लेता हूँ।

माखनलालजी की रचनाओ मे उदात्त राष्ट्रीय भावना है, साथ ही छायावादी काव्य की भावसुषमा है। वास्तव मे राष्ट्रीय भावधारा और छायावादी काव्य को अलग करना असगत है। एक राष्ट्रीय भावधारा वह है जिसके प्रतिनिधि मैथिलीशरणजी गुप्त है। कुछ लोग इसे हिन्दी की एकमात्र राष्ट्रीय काव्यधारा मानते है। इस धारा का ऐतिहासिक महत्त्व है। जन-जागरण मे उसकी भूमिका अविस्मरणीय है। किन्तु यह काव्यधारा उन युवको को अधिक प्रेरणा नही दे सकी जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद से उग्र सघर्ष करने के पक्ष मे थे, जो राष्ट्रीय नेतृत्व के ढुल-मुलपन से असन्तुष्ट थे। इन लोगो को दूसरी काव्यधारा से प्रेरणा मिली जिसके प्रतिनिधि माखनलालजी हैं।

इस दूसरी राष्ट्रीय काव्यधारा मे क्रान्तिकारी उत्साह, त्याग और बलिदान की भावना, सघर्ष की उत्कठा और जनता की विजय मे अखड आत्मविश्वास है। माखनलालजी के काव्य ने साधारण पाठको को ही नही, तरुण क्रान्तिकारियो को भी प्रभावित किया है। साम्राज्यवादी दमन से निडर होकर सघर्ष करने वाली नौजवानो की एक पूरी पीढी माखनलालजी की कविताएँ गुनगुनाती हुई अपने अनुशासन और आत्मबल को दृढ कर चुकी है। ऐसी सफलता बिरले ही कवियो को मिलती है।

माखनलालजी राजनीतिक कवि है किन्तु उनकी कविता राजनीति का प्रचार नही है। राजनीति अनुभूति बनकर उनकी कविता मे प्रकट हुई है। राजनीति के अलावा मानव हृदय को स्पर्श करने वाले विविध भावो की व्यजना भी उनके काव्य मे है। ये भाव सूक्ष्म है, लाक्षणिक ढग से व्यजित हुए है, अभिनव प्रतीको और उपमानो से सजाये गये है। छायावादी काव्य-शैली की प्राय. सभी विशेषताएँ चतुर्वेदीजी की रचनाओ मे विद्यमान है।

प्रसादजी, निरालाजी आदि छायावाद के प्रमुख कवि भी राष्ट्रीय भावधारा के रचनाकार थे। वे राष्ट्रीय नेतृत्व से हर जगह सन्तुष्ट नही थे। उनका—विशेष रूप से निरालाजी का—झुकाव समाजवाद की ओर था। इन कवियो ने राष्ट्रीयता को नया अर्थ दिया, उसे उच्च वर्गों तक सीमित न रखकर जनसाधारण की वस्तु बनाया। माखनलालजी का यह युगान्तरकारी महत्त्व है कि उन्होंने उग्र राष्ट्रीय चेतना के साथ अपने काव्य मे सूक्ष्म सौन्दर्य-बोध, आत्मविभोर गेयता और मोहक चित्रमयता को स्थान दिया।

वह काव्य मे खडीबोली को प्रतिष्ठित करने वाले साहित्यकारो मे है। जिस समय उन्होने लिखना आरभ किया था, उस समय खडीबोली-ब्रजभाषा विवाद जोरो पर था। अपनी प्रतिभा से उन्होने सिद्ध कर दिया कि आधुनिक हिन्दी मे श्रेष्ठ काव्य रचा जा सकता है।

उनका सारा जीवन देश और साहित्य की सेवा मे बीता है। वृद्धावस्था मे शरीर जर्जर होने पर भी उनका मन उमगो से भरा रहा। वह शब्दश. अपनी अन्तिम साँसे हिन्दी की सेवा मे अर्पित करते रहे।

उनकी वाणी अमर है। उनकी कीर्ति अमर है।

बलिपंथी का भावलोक : 'मोम दीप मेरा'

◇ ◇

डा० शिवप्रसाद सिह

जब भी माखनलालजी की रचनाओ को पढा है, चाहे वे पद्यबद्ध हो या गद्यबद्ध, बार-बार यह प्रश्न उठता रहा है कि यदि इस पूरे साहित्यकार व्यक्तित्व को किसी एक प्रतीक मे बाँधना हो तो वह कौन-सा प्रतीक होगा ! उनकी रचनाओ मे उनके सम्पूर्ण भावलोक को स्पष्ट करने वाले अनेक प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं, किन्तु मुझे 'मोम दीप' अपनी अद्‌भुत सच्चाई और अनावृत रोशनी के कारण हमेशा आकृष्ट करता रहा है। 'मोम दीप' यद्यपि जीवन के रस का पुजीभूत घन विग्रह है, किन्तु बेबस है, उसके सम्पूर्ण अस्तित्व की बस एक ही अभीप्सा है—सूरज। सूरज को प्राप्त करने की साधना मे वह निरन्तर जल रहा है

> सूझ का साथी, मोम दीप मेरा,
> कितना बेबस है यह,
> जीवन का रस है यह,
> छन छन पल पल, बल बल
> छू रहा सबेरा।
> अपना अस्तित्व भूल
> सूरज को टेरा।
> मोम दीप मेरा ॥

यह बेबसी किसी भी प्रकार की निराशा या पराजय की सूचक नही है, क्योकि यह मिटना जानता है। बलिपंथी कभी निराश नही होता। वह अपनी प्रकाश-यात्रा पर ज्योतिर्मय की अभीप्सा मे, दूसरे के पथ को आलोकित करते हुए निछावर हो जाता है। अपने अन्ततम की सम्पूर्ण ममता को दलित द्राक्षा की तरह निचोडकर वह दूसरो के लिए अर्पित कर देता है। किन्तु समर्पण ही उसका ध्येय नही, वह अग्नि भी है, अंगार भी। वह यज्ञ ज्वार है, प्रलयकर की शक्ति का साक्षी है।

यह गरीब, यह लघु-लघु
प्राणो पर यह उदार,
बिन्दु-बिन्दु
आग-आग
प्राण-प्राण
यज्ञ ज्वार,
पीढियाँ प्रकाश-पथिक
जग-रथ-गति चेरा,
मोम दीप मेरा।

माखनलालजी का सम्पूर्ण व्यक्तित्वर्ण इस कविता मे जैसे साकार हो गया है। उनका निरन्तर सघर्षरत, अन्याय के विरुद्ध जूझता हुआ निष्कप आत्मिक बल तथा साथ ही साधारण उष्णता से ही विगलित होने वाला नवनीत-कोमल हृदय जैसे इस कविता मे सायुज्य पा गया है।

पुनर्जागरण के ठीक बाद हिन्दी काव्य मे जिस नई चेतना का स्वर मुखर हुआ, वह नि सन्देह क्रान्तिमुखी राष्ट्रीयता का ही प्रस्फुटन था। हिन्दी का वह युग राष्ट्रीय उद्‌बोधन और 'तन-मन-प्राण अर्पण' करने के इच्छुक स्वतन्त्रता सग्राम के सेनानियो की शहादत का अद्‌भुत साक्ष्य उपस्थित करता है। मैथिलीशरणजी, माखनलालजी, नवीन आदि इस चेतना के अग्रणी ध्वज-वाहक थे। राष्ट्रीय चेतना का यह आन्दोलन व्यापक रूप से नाना आयामो मे अभिव्यक्ति पा रहा था। उस समय की कोई पत्रिका उठाकर देखा जाए, उसका प्रत्येक पृष्ठ राष्ट्र-व्यापी विद्रोह-भावना का प्रमाण अवश्य देगा।

राष्ट्रीय चेतना के इन सारस्वत पुत्रो मे शायद ही किसी का व्यक्तित्व माखनलालजी की तरह ऐसा विविध पहलू वाला और अनेकोन्मुखी दिखाई पडे। इस तरह कवि, पत्रकार, विद्रोही, सत्याग्रही, भक्त, वैष्णव, निबन्धकार, नाटक-कार, चिन्तक, शैलीकार—वे क्या नही है?

हिन्दी काव्य के विद्यार्थी को माखनलालजी की कविताएँ पढकर सहसा आश्चर्यचकित रह जाना पडता है। कही ज्वालामुखी की तरह धधकता हुआ अन्तर्मन है, जो विषमता की समूची अग्नि सीने मे दबाये फूटने के लिये मचल रहा है तो कही विराट् पौरुष की हुकार और करुणा की अजीब दर्दभरी मनुहार। वे जब आक्रोश से उद्दीप्त होते है तो प्रलयकर का रूप धारण कर लेते है, किन्तु दूसरे ही क्षण वे अपनी कातरता से विह्वल होकर मनमोहन की टेर लगाने लगते है।

चतुर्वेदीजी के व्यक्तित्व मे सक्रमणकालीन भारतीय समाज की सारी विरोधी जैसी प्रतीत होने वाली विशेषताओ का सम्पुजन दिखाई पडता है।

इनकी रचनाओ को प्रकाशन की दृष्टि से इस क्रम मे रखा जा सकता है— 'कृष्णार्जुन युद्ध' (१६१८ ई०), 'हिम-किरीटिनी' (१६४२ ई०), 'साहित्य देवता' (१६४२ ई०), 'हिम-तरगिनी' (१६४६ ई०, साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत), 'माता' (१६५२ ई०)', 'युगचरण', 'समर्पण' और 'वेणु लो गूँजे धरा', 'बीजुरी काजल आँज रही' उनके अन्य काव्य-सग्रह है। 'कला का अनुवाद' उनकी कहानियो का सग्रह है। परवर्ती निबन्धो का एक सग्रह 'अमीर इरादे, गरीब इरादे' नाम से छपा है। इधर दो सग्रह और आये है। 'समय के पाँव' और 'चिन्तक की लाचारी।'

कवि के क्रमिक विकास को दृष्टि मे रखकर हम माखनलालजी चतुर्वेदी की रचनाओ को दो श्रेणियो मे रख सकते है – आरम्भिक काव्य, यानी १६२० ई० से पहले की रचनाएँ और परिणत काव्य, यानी १६२० ई० से आज तक की काव्य-सृष्टि। उनकी रचनाओ की प्रवृत्तियाँ प्राय स्पष्ट और मिश्रित है। राष्ट्रीयता उनके काव्य का कलेवर है तो भक्ति और रहस्यात्मक प्रेम उनकी रचनाओ की आत्मा। आरम्भिक रचनाओ मे भी प्रवृत्तियाँ स्पष्टतया परिलक्षित होती है। 'प्रभा' के प्रवेशाक मे प्रकाशित उनकी कविता 'नीति निवेदन' शायद उनके मन की तात्कालिक स्थिति का पूरा परिचय देती है। कवि 'श्रेष्ठता सोपान-गामी उदार छात्र वृन्द' से एक आत्मनिवेदन करता है। उन्हे पूर्वजो का स्मरण दिलाकर रत्नगर्भा मातृभूमि की रकता पर तरस खाने को कहता है। उसी प्रकार 'प्रभा' (भाग १, सख्या ६) मे प्रकाशित 'प्रेम' शीर्षक कविताओ मे उन्होंने सबमे प्रेम व्याप्त हो, इसके लिए सन्देश दिया है क्योकि इस प्रेम के बिना 'बेडा पार' होने वाला नही है। माखनलालजी की राष्ट्रीय कविताओ मे आदर्श की थोथी उडाने नही है। उन्होने खुद राष्ट्रीय सग्राम मे अपना सब कुछ बलिदान किया है। इसी कारण उनके स्वरो मे 'बलिपथी' की सच्चाई, निर्भीकता और कष्टो के झेलने की अदम्य लालसा की झकार है। यह सच है कि उनकी रचनाओ मे कही-कही 'हिन्दू राष्ट्रीयता' का स्वर ज्यादा प्रबल हो उठा है[1], किन्तु हम इसे साम्प्रदायिकता नही कह सकते क्योकि दूसरे सम्प्रदाय के अहित की आकाक्षा इनमे रचमात्र भी दिखाई न पडेगी। १८५७ के राष्ट्रीय सग्राम के विफल होने के बाद राजनीतिक विरोध का मार्ग अवरुद्ध हो गया, उस समय जनचेतना सुधारवादी आन्दोलनों के भीतर से प्रवाहित होने लगी। परिणामत जातीय उद्बोधन और धार्मिक सुधारो का एक दौर चल पडा। तत्कालीन हिन्दू राष्ट्रीयता इसी की देन थी। 'विजयदशमी' और 'प्रवासी भारतीय वृन्द' ('प्रभा', भाग २, सख्या ७) अथवा हिन्दुओ का 'रणगीत', 'मजु माधुरीवृत्त' (भाग २, सख्या ८) ऐसी ही रचनाएँ

१ लेखक के इस मत से सम्पादक सहमत नहीं है।

है। उन्होने सामयिक राजनीतिक विषयो को भी दृष्टि मे रखकर रचनाएँ की और ऐसे जलते प्रश्नों को काव्य का विषय भी बनाया।

आरभिक रचनाओ मे भक्तिपरक अथवा आध्यात्मिक विचार-प्रेरित कविताओ का भी काफी महत्त्वपूर्ण स्थानहै। यह सही है कि इन रचनाओ मे उस तरह की सूक्ष्मता अथवा आध्यात्मिक रहस्य का अतीन्द्रिय स्पर्श नही है, जैसा छायावादी कवियो मे है अथवा कवि की परिणत काव्य-श्रेणीगत आनेवाली कुछेक रचनाओ मे है। भक्ति का रूप यहाँ काफी स्वस्थ है, किन्तु साथ ही स्थूल भी। कारण शायद यह रहा कि इनमे कवि की निजी व्यक्तिगत अनुभूतियो का उतना योग नही है, जितना एक व्यापक नैतिक धरातल का, जिसे हम 'समूह प्रार्थना कोटि' का काव्य कह सकते है। इसमे स्तुति या स्तोत्र शैली की झलक भी मिल जाती है। जैसा पहले ही कहा गया, कवि के ऊपर वैष्णव परम्परा का घना प्रभाव दिखाई पडता है। भक्तिपरक कविताओ को किसी विशेष सम्प्रदाय के अन्तर्गत रखकर देखना ठीक न होगा, क्योकि इन कविताओ मे किसी सम्प्रदायगत मान्यता का निर्वाह नही किया गया है। इनमे वैष्णव, निर्गुण, सूफी सभी तरह की विचार-धाराओ का समन्वय-सा दिखाई पडता है। कही प्रणय निवेदन है, तो कही समर्पण, कही उलाहना, तो कही देश-प्रेम के तकाजे के कारण स्वाधीनता-प्राप्ति का वरदान भी माँगा गया है। 'रामनवमी' जैसी रचनाओ मे देश-प्रेम और भगवत्-प्रेम को समान धरातल पर उतारने का प्रयत्न स्पष्ट है।

परिणत काव्य-सृष्टि मे उपर्युक्त मुख्य प्रवृत्तियो का और भी अधिक विकास दिखाई पडता है। क्षोभ, उच्छवास के स्थान पर पीडा को सहने और उसे एक मार्मिक अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न दिखाई पडता है।

'कैदी और कोकिला' के पीछे जो राष्ट्रीयता का रूप है, वह आरभिक अभिधात्मक काव्य-कृतियो से स्पष्ट ही भिन्न है। इसी प्रकार झरना और आँसू' मे भावो की गहराई और अनुभूतियो की प्रामाणिकता का स्वर प्रबल है, किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नही है कि इस दौरान मे उन्होने उद्‌बोधन काव्य लिखा ही नही। 'युग-तरुण' से 'प्रवेश', 'सेनानी' आदि रचनाएँ उद्‌बोधन काव्य के अतर्गत ही रखी जायेगी। उन्होने राजनीतिक घटनाओ को दृष्टि मे रखकर श्रद्धाजलिमूलक काव्य भी लिखा। 'सतोष', 'नटोरियस वीर', 'बधन सुख' आदि मे गणेशशकर विद्यार्थी की मधुर स्मृतियाँ है तो राष्ट्रीय झडे की भेट मे हरदेवनारायणसिंह के प्रति श्रद्धा का निवेदन। परवर्ती काव्य मे आध्यात्मिक रहस्य की धारा स्तुति और प्रार्थना के आध्यात्मिक धरातल से उतरकर सूक्ष्म रहस्य और भक्ति की अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक भूमि पर बहती दिखाई पडती है। छायावादी व्यक्तित्व मे विराट् की भावना का परिपाक है, तो आध्यात्मिक रहस्य की धारा मे किसी अज्ञात असीम प्रियतम के साथ ससीम आत्मा का

प्रणय निवेदन। प्रकृति और आध्यात्मिक रहस्य का यह नया आलोक छायावादी कवि की जीवन-दृष्टि का आधार है। माखनलालजी की रचनाओ मे भी यह आलोक है, किन्तु इसका रूप थोडा भिन्न है। भिन्न इस अर्थ मे कि वे 'श्याम या कृष्ण' की जिस रूप-माधुरी से आकृष्ट थे उसको सुरक्षित रखते हुए रहस्य के इस क्षेत्र मे प्रवेश करना चाहते है। अव्यक्त लोक मे भी उन्हे बाँसुरी भूल नही पाती। इसी कारण माखनलालजी की कविताओ मे छायावादी रहस्य भावना का सगुण मधुरा भक्ति के साथ एक अजीब समन्वय दिखाई पडता है। उनका ईश्वर (निराकार) इतना निराकार नही है कि उसे वे नाना नाम-रूप देकर उपलब्ध न कर सके। 'वे खुदी को मिटाकर खुदा देखते है।' इसी कारण उनकी रचनाओ मे छायावादी वैयक्तिकता का एकान्तिक स्वर तीव्र नही सुनाई पडता। रवीन्द्रनाथ की रहस्यवादी भावना का प्रभाव उन पर स्पष्ट है।

'चला तू अपने मन को छोड, पा गया मुझमे तब आकार' अथवा 'अरे अशेष शेष की गोदी', 'या मेरे मै ही मे तो उदार तेरी अपनी है छुपी हार' आदि कृतियो मे अज्ञात के प्रति निवेदन का स्वर स्पष्ट है। किन्तु राधा के मुरलीधर को अपना नटवर कहने मे वे नही हिचकते। उनका मन जैसे सगुण रूप मे ज्यादा रमा है अथवा छायावादी शैली अपनाने पर भी वे आनन्द को व्यक्त करते समय 'नटवर' के प्रेम-आतक से अपने को मुक्त नही कर सके है।

छायावादी काव्य मे प्रकृति एक अभिनव जीवन्त रूप मे चित्रित की गई है। माखनलालजी की कविताओ मे प्रकृति-चित्रण का भी एक विशेष महत्त्व है। मध्य-प्रदेश की धरती का उनके मन मे एक विशेष आकर्षण है। यह सही है कि कवि को प्रकृति के रूप आकृष्ट करते है किन्तु उसका मन दूसरी समस्याओ मे इतना उलझा है कि उसे प्रकृति मे रमने का अवकाश नही है। इस कारण प्रकृति उनके काव्य मे उद्दीपन मात्र बनकर ही रह गई है। चाहे राष्ट्रीय अध पतन से उत्पन्न ग्लानि मे शस्य श्यामला भूमि की दुरवस्था को सोचते समय चाहे बन्दीखाने के सीकचो से जन्मभूमि को याद करते समय, छायावादी कवियो की तरह प्रकृति मे सब कुछ खोजने का इन्हे अवकाश ही न था। 'हिम-तरगिनी' माखनलाल चतुर्वेदी की सुप्रसिद्ध कविता कृति है। १९४७ ई० मे प्रथम सस्करण प्रकाशित हुआ और १९५२ मे भारती भडार, प्रयाग से दूसरा सस्करण। लेखक ने पुस्तक के आरभ मे 'दो शब्द' के अन्तर्गत लिखा है—'मेरे निकट तो ये (रचनाएँ) परम सत्य है। आज भी वे क्षण, वे उतार-चढाव, वे आँसू, वे उल्लास, जीवित चरण मेरे निकट खडे-से है। ये ही क्षण थे, जब मै युग से हाथ जोडकर कहता था, 'कभी-कभी मुझे अपना भी रहने दो'। सच ही सग्रह मे लेखक कही युग के सामने खडा है तो कही अपनी अनुभूतियो की एकाग्रता मे पूरी तरह 'अपना बनकर' उपस्थित है। इस सग्रह की कविताओ के कवि को अपने कृतित्व पर पूरा भरोसा है, इसलिए आत्म-

प्रचारक काव्यो द्वारा अधिकृत धर्मशाला से वह यह कहकर लौट जाना चाहता है· 'इस धर्मशाला के द्वार पर बिस्तर-पेटी लादे खडे रहने वाले कवि मित्रो, इसमे जगह नही है। जो सूझो की गगा सिर पर लिए थे, वे लोक-श्रद्धा के देव-मदिरो मे तो पहुँच गए किन्तु इस धर्मशाला के द्वार पर उन्हे उपेक्षित, प्रताडित और वायु-भक्षी रहने का ही वरदान मिला' (दो शब्द, पृ० ५)। अपनी इन रचनाओ के बारे मे कवि कहता है, पूजागीत कहे जाने की उम्मीदवार इन तुकबदियो की भी यही दुर्गति हुई है। ये गीत पूजा रहे नही, प्रेम बने नही, अत यह निर्माल्य शिखर की ऊँचाई से भागते हुए 'निम्नगा' हो गए और 'हिम-तरगिनी' नाम पा गए।' (दो शब्द, पृ०६)

इस सग्रह मे कवि की कुल पचपन कविताएँ सगृहीत है। 'जो न बन पाई तुम्हारे, 'बोल राजा स्वर अटूटे,' 'है प्रशान्त तूफान हिए मे,' 'मै नही बोली कि वे बोला किए' आदि गीत छायावादी रचना-प्रक्रिया की अनमोल उपलब्धि है। इन गीतो मे न सिर्फ कवि के हृदय का ऐकान्तिक दर्द एक विश्व-जनीन भूमि पर प्रस्तुत किया गया है, बल्कि उसमे छायावादी प्रतीको के माध्यम से 'ससीम और असीम' के बीच के सपर्को को बडी सूक्ष्मता के साथ चित्रित भी किया गया है। ऐसे रहस्य-धर्मी गीतो मे भी माखनलाल चतुर्वेदी का कवि अपने अभिव्यक्ति-कौशल और सहज प्रणय-निवेदन मे छायावादी कवियो से स्पष्ट अलग खडा दिखाई देता है। इस विशिष्ट व्यक्तित्व का कारण है, दर्द की वह वैयक्तिक अनुभूति और उसके बीच से फूटने वाली रहस्यमयता जो छायावाद के किसी भी कवि को प्राप्त नही है।

कुछ कविताएँ 'पूजा के गीत' के रूप मे लिखी गई है। उनमे माखनलालजी के वशीधर है, उनकी बासुरी की माधुरी है और मनुहार है और कही-कही 'उर्दू इश्क' की शैली मे निठुराई पर उलाहने भी है, कही समसामयिक सामाजिक स्थिति की अभद्रताएँ है जिनकी ओर 'मालिक' और 'राजा' (कृष्ण) का ध्यान आकृष्ट कराया गया है, जैसे 'गो-गण सँभाले नही जाते' (गीत ७), 'उडने दे घनश्याम गगन मे' (गीत १३), 'जिस ओर देखूँ बस अडी हो तेरी सूरत सामने' (गीत १४), 'तू ही है बहकते हुओ का इशारा' (गीत ५३), 'महलो पर कुटियों को वारो' (गीत ३६), 'तू ही क्या समदर्शी भगवान' (गीत ३१) आदि 'जब तुमने यह धर्म पठाया' (गीत १५) प्रणय और मजहब (दिखावा) के तारतम्य को भली-भाति व्यक्त करता है।

इन गीतो मे कुछ एकदम वैयक्तिक भाव-चेतना के भी गीत है जिन्हे हम चाहे तो शोकगीत कह सकते है। ऐसे गीतो मे कवि के हृदय की घनीभूत पीडा निर्व्याज ढग से शब्दो मे पिघलकर बरस उठी है। 'भाई छेड़ो नहीं मुझे खुलकर रोने दो···' गीत इस तरह के गीतो का प्रतिनिधि है। दिसम्बर, १९१४ ई० मे

अपनी पत्नी के स्वर्गवास पर कवि ने यह गीत लिखा, जो हिन्दी के बहुत थोडे शोकगीतो मे से एक कहा जा सकता है—'पूजा के पुष्प गिरे जाते है नीचे, यह आँसू का स्रोत आज किसके पद सीचे'। वे तुम्हारे बोल' कविता भी इसी तरह की है।

इस सग्रह मे कवि का न तो बलिपथी वाला रूप सामने आता है और न राष्ट्रीय सघर्ष के अग्रदूत वाला। कारण शायद यह है कि इस सग्रह की अधिकाश कविताएँ वैयक्तिक मानसिक स्थिति को प्रकट करने की समानधर्मिता के कारण सकलित की गयी है। इनक कविताओ मे सर्वत्र कोई अदृश्य निष्ठुर प्रिय अन्तर्हित है, इसीलिये कवि 'मत उकसा मेरे मनमोहन कि मै जगत हित कुछ लिख डालूँ, तू है मेरा जगत कि जग मे और कौन-सा जग मै पा लूँ• ' कहकर अपने प्रिय की सर्वत्र-व्यापिनी अस्तिमयता मे अपने को डुबो देना चाहता है। इस सग्रह मे निसन्देह कवि की काव्य-चेतना उद्‌बोधन गीतो की स्थूलता से हटकर एक सूक्ष्म मानसिक धरातल पर आसीन प्रतीत होती है।

भाषा और शैली की दृष्टि से माखनलालजी पर यह आरोप किया जाता है कि उनकी भाषा बडी बेडौल है। उसमे कही-कही व्याकरण की अवहेलना की गयी है। कही अर्थ निकालने के लिए दूरान्वय करना पडता है, कही भाषा मे कठोर सस्कृत शब्द है तो कही बुन्देलखण्डी के ग्राम्य प्रयोग, किन्तु भाषा-शैली के ये सारे दोष सिर्फ एक बात की सूचना देते है कि कवि ने अपनी अभिव्यक्ति को इतना महत्त्वपूर्ण समझा है कि उसे नियमो मे हमेशा आबद्ध रखना उन्हे स्वीकार नही हुआ है। भाषा-शिल्प के प्रति माखनलालजी बहुत सचेष्ट रहे है। उनके प्रयोग सामान्य स्वीकरण भले ही न पाएँ, उनकी मौलिकता मे सन्देह नही किया जा सकता।

गद्य रचनाओ मे 'कृष्णार्जुन युद्ध' और 'साहित्य देवता' का विशेष महत्त्व है। 'कृष्णार्जुन युद्ध' अपने समय की बहुत लोकप्रिय रचना रही है। पारसी नाटक कम्पनियो ने जिस तरह से हमारी सस्कृति को विकृत करने का प्रयत्न किया, वह किसी प्रबुद्ध पाठक से छिपा नही है। 'कृष्णार्जुन युद्ध' शायद ऐसे नाट्य-प्रदर्शनो का मुँहतोड जवाब था। गन्धर्व चित्रसेन अपने प्रमादजन्य कुकृत्य के कारण कृष्ण के क्रोध का पात्र बना। कृष्ण ने दूसरी सन्ध्या तक क्षमा न माँगने पर उसके वध की प्रतिज्ञा की। नारद को चित्रसेन का अपराध छोटा लगा, दण्ड भारी। उन्होने प्रयत्नपूर्वक सुभद्रा के माध्यम से अर्जुन द्वारा चित्रसेन की रक्षा का प्रण करा लिया। अर्जुन और कृष्ण के युद्ध से सृष्टि का विनाश आया जान ब्रह्मा आदि ने दौड-धूप करके शान्ति-स्थापना की। इस पौराणिक नाटक को भारतीय नाट्य-परम्परा के अनुसार उपस्थित किया गया है। यह अभिनेयता की दृष्टि से काफी सुलझी हुई रचना कही जा सकती है। 'साहित्य देवता' माखनलालजी के साहित्यिक भाव-प्रधान और व्याख्यात्मक निबन्धो का सकलन है जो १९४३ ई० में प्रकाशित हुआ। 'साहित्य देवता' मे कवि के दो प्रकार के निबन्ध

सकलित है—एक वे, जो काव्योन्मुखी है, यानी गद्य-काव्य की श्रेणी मे आते है, दूसरे वे जो विचार-प्रधान या विवेचनात्मक है। 'गीताजलि' के प्रचार के साथ ही साथ गद्य-काव्य लिखने की भी प्रेरणा उठी। हिन्दी मे रायकृष्ण दास और वियोगी हरि जैसे गद्यकाव्य लेखकोकी कोटि मे हम माखनलालजी को भी आसानी से स्थान दे सकते है। गद्य-काव्य दो प्रकार के होने है। रामचन्द्र शुक्ल ने 'शेष स्मृतियाँ' की भूमिका मे उन्हे तरग शैली और धारा शैली कहना पसन्द किया है। धारा शैली के निबन्ध पूर्णत भावात्मक होते हे और लेखक उनमे शुरू से अन्त तक अपनी भावनाओ को काव्यात्मक मजुलता के माध्यम से व्यक्त करता है, जबकि तरग शैली मे विचार-सरणि के बीच-बीच मे उच्छ्वसित काव्यात्मक गद्य-खण्डो का समावेश होता चला है। ऐसे स्थलो पर कवि की रचना मे बुद्धि के स्थान पर हृदय के सवेगो की प्रधानता होती है। इन दोनो शैलियो मे भाव-पक्ष की प्रधानता होती है तथा अभिव्यक्ति मे काव्यात्मक कलातत्त्व की। 'साहित्य देवता' मे 'असहाय' 'आशिक', 'तुम आने वाले हो', 'श्यामघन', 'साहित्य देवता', 'मुक्ति भरत जहॉ पानी', 'जनता', 'शास्त्रक्रिया' आदि निबन्ध इसी कोटि मे रखे जा सकते है जबकि 'अगुलियो की गिनती की पीढी,' 'बैठे-बैठे का पागलपन,' 'सवाददाता' आदि निबन्ध वैचारिक कोटि मे परिगृहीत किये जा सकते है।

इधर उनके निबन्धो के दो सकलन 'अमीर इरादे गरीब इरादे' (१९६०) तथा 'समय के पाव' (१९६२) और भाषणो का एक सकलन 'चिन्तक की लाचारी' (१९६५) प्रकाश मे आये है। मुझे यह हमेशा लगता रहा है कि माखन-लालजी का मानस ललित निबन्धो मे ज्यादा सही और मुक्त ढग से अभिव्यक्ति पाता रहा है। माखनलालजी निर्व्याज रूप से अन्तर्मुखी प्रतिभा के साहित्यकार है। इन निबन्धो मे, उनकी निर्बन्धता मे उनके चित्त की सभी भाव-स्थितियाँ अपना अकन छोड गई है। "लगता है, 'अमीर इरादे गरीब इरादे' मे मैं अपनी असफलताएँ लिख गया हूँ"—ऐसा कथन केवल तटस्थता से जन्म लेता है जिसे साहित्यकार अपनी सम्पूर्ण साधना से दुखो के भीतर अर्जित करता है। सूरज की किरणो के गट्ठे बना-बनाकर प्रकृति को जमीन पर फेकते रोज देखता हूँ किन्तु यह भी देखता हूँ कि रात को किरणो के पैरो के कोई निशान बाकी नही रहते। हम मानवो को जीवन-रूपी बरफ की चट्टानो पर जाने क्या-क्या लिख डालने का मोह हो जाता है। हम नही जानते कि देखते-देखते यह लिखावट अपने इरादो समेत पानी मे मिल जायेगी।"

इस सग्रह मे शुरू के आठ-दस निबन्ध कला और साहित्य की व्यक्तिगत व्याख्याएँ प्रस्तुत करते है। शेष निबन्ध सामाजिक विषयो पर ललित शैली मे आबद्ध है।

इन तीनो ही सकलनो मे 'समय के पाँव' कई दृष्टियो से सर्वाधिक महत्त्व-

पूर्ण है। यह सस्मरण साहित्य को माखनलालजी की अनुपम देन है। हमारे इस नियतिवादी देश मे, समय जिसका मूल अर्थ सम्यक् गमन या गति होता है, घडी बनकर रह गया है। घडी शब्द मे अपनी बेबसी और निर्ममता का भाव प्रधान रूप से व्यक्त होता रहता है—कुघडी, सुघडी, अन्तिम घडी आदि। पश्चिमी सभ्यता के 'वाच' शब्द मे जैसे फिर भी एक प्रयत्न तो है कि इस कभी न रुकने वाली गति पर पहरा दे, ध्यान दे, नजर रखे। समय की गति वही पहचान सकता है जो इतना श्रद्धालु हो कि हर अच्छी-बुरी घडी के रहस्य को पहचान सके, पर उसकी श्रद्धा कभी भी आँखो को आँसुओ से भरे नही। नही तो गीली आँखो को धोखा देकर समय निकल जाता है और हम उस पर वाच नही कर पाते। 'समय के पाँव' निबधो के सूक्ष्म कलेवर मे समय के पाँव थमकर रह गए है, क्योकि उनकी गति को निहारती आँखो मे श्रद्धा-विरक्ति, जीवन-मृत्यु, शान्ति-क्रान्ति, प्रेम-त्याग आदि परस्पर-विरोधी भावो के सम्मिश्रण से उत्पन्न ऐसी चुम्बकीय शक्ति है कि 'वाच' के योग्य कोई भी महत्त्वपूर्ण घडी यहाँ से बचकर निकल नही सकी है।

सभी निबध वैयक्तिक सस्मरण हे, कुछ राजनीतिक व्यक्तियो पर, जैसे तिलक, गाधी, सुभाष, विनोबा, पटेल, मोतीलाल नेहरू, भगतसिह आदि पर जो राजनय के शिखर थे। इनके जीवन की छाया-छबियो को माखनलालजी ने वीर-पूजा के ओजमय शब्द-रग मे नही, व्यक्तिगत निकटता की ममत्त्वपूर्ण रेखाओ मे अकित किया है। उनकी शैली मे स्पन्दन, जिन्दादिली और उष्णता है। यह आज के नये से नये लेखक के लिए ईर्ष्या की वस्तु हो सकती है। पर सचमुच के अनुकरण करने वालो से कहूँगा कि बडा खतरनाक है यह पथ क्योकि उस पर उन जैसा बलिपथी ही चल सका।

इस सग्रह का दूसरा बडा आकर्षण है मैथिलीशरण, शुक्लजी, प्रसाद, पन्त, प्रेमचन्द, सुभद्राकुमारी चौहान तथा रवि बाबू पर लिखे सस्मरण। इन सस्मरणो को पढते हुए बार-बार लगता है कि अपने समसामयिक लेखको पर कलम उठाते समय माखनलालजी कभी भी अमर्ष, असूया, कृत्रिमता या दुरावट से आक्रान्त नही हुए है। लेखकीय ममत्व का यह रूप नितान्त दुर्लभ है। उर्दू के लेखको मे कभी इस प्रकार की निकटता और अहेतुक उच्छल बन्धुता दिखी थी, पर हिन्दी मे तो यह अरसे से 'आउट आफ मार्केट' है ही।

'चिन्तक की लाचारी' के भाषणो मे चिन्तक भी है, और उसकी लाचारी भी। अनेक समसामयिक महत्त्व के विषयो पर ये भाषण दिए गए थे। इनमे उनके क्रान्तिकारी विचारो का अनेक सदर्भो मे नियोजन और स्पष्टीकरण है। उन्हे इनकी भाषा और शैली पर खुद भी सतोष नही है।

"जिस गद्य को आप मेरे भाषणो मे देखेंगे उसमे महत्त्व का कुछ भी नही है।"

किन्तु इसे सचमुच की आत्मस्वीकृति नही मानना चाहिए क्योकि इन भाषणो मे उनके समसामयिक जीवन के अनेक साक्ष्य वर्तमान है।

माखनलालजी की गद्य-शैली काफी प्रौढ और अभिव्यजनात्मक है। चित्र-मयता-पूर्ण अथवा बिम्ब प्रस्तुत करनेवाली भाषा उनकी अपनी निर्मित है, यथा —"मेरा और मेरे विश्व के हरियालेपन का उतना ही सबध होता है, जितना नर्मदा के तट पर हरसिंगार की वृक्ष-राशि मे लगे टेलीग्राफ के खम्भे का।" (सा० दे०, पृ० ६)। लेखक की गद्य-शैली की दूसरी विशेषता गद्य मे अन्तर तुकात की है। अन्तर तुकान्त के प्रयोग की शैली आरभिक रचनाओ 'रानी केतकी की कहानी' आदि मे स्पष्टत परिलक्षित होती है। इसके मूल मे कुछ विद्वान् फारसी शैली का प्रभाव ढूँढते है। उर्दू की मुहावरेदानी, लाक्षणिकता, व्यग्योक्तियाँ और मनोरम सूक्तियो के सटीक प्रयोगो के कारण माखनलालजी की भाषा अत्यन्त स्फूर्तिमय और जीवन्त दिखाई पडती है। नये फैशन के प्रति व्यग्य-आक्रोश व्यक्त करते समय उनकी भाषा बहुत पैनी हो जाती है। देशी शब्दो और कहा-वतो का प्रयोग तो माखनलालजी की अपनी विशेषता है ही। ये प्रयोग धरती की सोधी गन्ध से ओत-प्रोत है।

इस सक्षिप्त विवरण को माखनलालजी के भावलोक का सरसरी रेखाचित्र ही समझना चाहिए । माखनलालजी का कृतित्व काफी विस्तृत और गहरे विश्लेषण की अपेक्षा रखता है। कई दृष्टियो से यह भावलोक सामान्य छायावादी लेखको से भिन्न रहा है, उनके भीतर युग-चेतना अविकृत ढग से अपना प्रभाव छोड गई है। माखनलालजी के कृतित्व को सही ढग से समझने का अर्थ है अपनी पुरानी पीढी के अवदान को उसके सही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे समझना और मुझे विश्वास है, यह निबन्ध इस दिशा मे प्रयत्नशील अनुसधित्सु जनो के लिए एक हल्की प्रेरणा का कार्य अवश्य करेगा। इत्यलम्।

प्रेम और वात्सल्य के अजस्र कवि

◇ ◇

शान्तिप्रिय द्विवेदी

पूज्यचरण श्रद्धेय प० माखनलाल चतुर्वेदी, जिन्हे नयी पीढी आदर और ममता से 'दादा' कहती है, यथानाम तथा गुण है। अपने प्रेमल स्वभाव मे वे सचमुच माखनलाल है। उनका हृदय नवनीत के समान कोमल और समर्पणशील है। वह प्रेम मे भी द्रवित है और देशभक्ति मे भी द्रवित है।

चतुर्वेदीजी को साहित्यिक और सास्कृतिक प्रेरणा मध्ययुग के प्रेम और भक्ति-काव्य से मिली है। उनमे साम्प्रदायिक सकीर्णता नही है, इसीलिए उर्दू काव्य की मधुर भावना भी उन्होने अगीकार कर ली है। तभी तो उन्होने कहा है—"पुतली की नौका पर लाई मै दिलदार उतार।" किन्तु अपनी सभी प्राचीन प्रेरणाओ का रुख-मुख उन्होने अपने युग की देश-सेवा की ओर मोड़ दिया, गीतकाव्य मे गीता के पौरुष को मिला दिया।

उन्हे राष्ट्रीय कवि के रूप मे सार्वजनिक सम्मान मिला है, किन्तु देशभक्ति उनके जीवन-दर्शन का केवल एक पक्ष विशेष है। उनका मूलभूत दर्शन जीवन के प्रति आकर्षण है। स्वस्थ तारुण्य के वे उपासक है। उनकी उपासना मे केवल सौदर्य नही, तारुण्य से उद्‌भूत शौर्य भी है। ओजस्वी तारुण्य ही त्याग और बलिदान कर सकता है, उसी के पावन पथ मे चतुर्वेदीजी शृ गार, आध्यात्म और ऐश्वर्य को कितना तुच्छ कर देते है, यह 'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक उनकी कविता मे देखा जा सकता है। उनकी उपासना मे सौदर्य शिवत्व की ओर है।

देश के स्वतन्त्रता-संग्राम मे स्वय चतुर्वेदीजी भी कई बार कारावास भोग चुके हैं। कहाँ कारावास का कठोर जीवन, कहाँ उनका कोमल हृदय। किन्तु वहाँ की कठोरता मे भी उनका कवि-हृदय शुष्क नही हो सका। वहाँ भी उन्होने कहा था—"तुमको आया जानकर वायु मे बाँहे फैलाता हूँ।" कारावास मे भी यह प्रेम की विह्वलता क्या विरोधाभास है? नही। 'कैदी और कोकिला' शीर्षक कविता देखने से ज्ञात हो जाता है कि देश केवल भूगोल नही है, वह तो सवेदन-

शील रागात्मक जीवन का मर्मस्थल है। उसी की रक्षा के लिए निर्मम और नृशस अत्याचारियो का प्रत्याख्यान किया जाता है। ऐसी देशभक्ति मे सकीर्ण राष्ट्रीयता नही, विश्व-प्रेम है, क्योकि सामाजिक स्तर पर रागात्मक जीवन सर्वत्र एक-सा ही है, जो उसे चल-विचल करता है वह चाहे स्वदेशी हो या विदेशी उसका विरोध किया जाता है।

जीवन की सरसता से विरक्ति देशभक्ति नही है। गीता और रामायण मे भी सघर्ष लोक-जीवन को रसस-सुखद बनाने के लिए ही है। चतुर्वेदीजी ने युग के अन्धकार मे 'मधुराई को दफना' नही दिया। जीवन की रसात्मकता के लिए उन्होने मधुराई को अवसाद-विषाद के वातावरण मे भी उज्जीवित रखा। जर्जरित वृद्धावस्था मे भी उन्होने ऐसी सरस कविताएँ लिखी, जैसी पहले नही लिखी। उनके समकालीन अन्य कीर्तिमान कवि जबकि तन-मन से सचमुच वृद्ध हो गए, चतुर्वेदीजी कभी वृद्ध नही हुए। वे आयु से परे रहे, चिरतरुण, अजस्र तारुण्य के कवि। जीवन की रसात्मक अभिव्यक्तियो मे उनका एक अपना दृष्टि-बिन्दु है, निजी प्रेम-दर्शन है, इसीलिए जीवन और काव्य मे उनका व्यक्तित्व बेजोड है। उनके बाद भी जब कभी उन्हे स्मरण किया जायगा तब उनके नाम से ही मधुरता एव स्निग्धता का उन्मेष हो जायगा।

'दादा' को उनके वात्सल्यभाजन 'मा' भी कहते है। यह उनके नाम का केवल सक्षिप्तीकरण नही है, उनके माया-ममतापूर्ण मातृस्वभाव का द्योतक भी है। अपनी एक कविता मे अपने आपको इसी रूप मे उपस्थित करते हुए उन्होने कहा है, "अरे मुझको कहते है माता।"

दादा का मातृ-परिवार विश्व-विशाल है। जहाँ-जहाँ नव-जीवन अकुरित हो रहा है, वहाँ-वहाँ दादा का वात्सल्य अमृत बनकर स्नेह-सिंचन कर देना चाहता है। उस विशाल परिवार के एक कौटुम्बिक प्राणी के रूप मे मैं भी उनके चरणो मे प्रणत हूँ।

---

१. सन् १९६५ में लिखित विशेष लेख।

कला एवं साहित्य सम्बन्धी मान्यताएँ

◇ ◇

डा० रामचन्द्र तिवारी

पं० माखनलाल चतुर्वेदी का तपोनिष्ठ व्यक्तित्व सच्चे अर्थों मे 'एक भारतीय आत्मा' की सज्ञा को सार्थकता प्रदान करने वाला है। आपकी आत्मा एक भारतीय साधक की आत्मा है। उसका निर्माण भारतीय सस्कृति के उपादानो से हुआ है, इसीलिए वह अपराजेय एव अनश्वर है। वह सत्य के अन्वेषण मे, सौंदर्य के दर्शन मे तथा शिवत्व के विधान मे निरन्तर लीन रहने वाली गतिशील चेतना का पर्याय बन गई है। चतुर्वेदीजी के व्यक्तित्व मे लोकमान्य तिलक की कर्म-वीरता, गणेशशकर विद्यार्थी की दृढता तथा महात्मा गाधी की मृदुता एव उदा-रता का सामजस्य लक्षित होता है। यही कारण है कि चतुर्वेदीजी को मात्र एक साहित्यकार के रूप मे कल्पित करके देखने मे उनके साथ पूर्ण न्याय नही हो पाता। साहित्यकार के रूप मे वे जितना व्यक्त हुए है, ऐसा लगता है कि उससे बहुत अधिक अव्यक्त रह गए है। उनकी विराट कल्पना, उनकी अटूट निष्ठा, उनकी अथक सेवा तथा उनकी अनवरत यात्रा का बहुत थोडा अश ही उनके साहित्य मे व्यक्त हो सका है। उनकी साहित्य एव कला सम्बन्धी मान्यताएँ उनके सभावित व्यक्तित्व की विराटता की ओर सकेत अवश्य करती है। यहाँ हम सक्षेप मे उनकी कला एवं साहित्य सम्बन्धी मान्यताओ का रेखाकन प्रस्तुत करना चाहेगे।

प्रेरणा

चतुर्वेदीजी की दृष्टि मे कला की मूल प्रेरणा जीवन है। जीवन के सघर्षों से वह रस ग्रहण करती है। जीवन के कटक-पथ से दूर हो जाने पर वह निष्प्राण हो जाती है। जिस दिन कलाकार सघर्षों मे बढ़ते हुए युग-जीवन को अपने निश्वासो मे नही बाँध पाता उसी दिन उसकी कला-चेतना की काल-रात्रि हुआ करती है। जीवन से विमुख होना कलाकार की सबसे बड़ी पराजय है। 'जीवन के मरण

बिन्दुओ से काव्य की रक्षा' शीर्षक अपनी रेडियो वार्ता मे चतुर्वेदीजी ने उपर्युक्त मान्यता को इस प्रकार व्यक्त किया है—"हमारा सबसे बडा विद्रोह यह है कि हम कला को जीवन से विमुख नही होने देना चाहते। यह नही हो सकता कि जीवन जलता रहें और कला बासुरी बजाती रहे।" इस कथन मे यह ध्वनि भी निकलती है कि कला बॉसुरी भी बजा सकती है बशर्ते कि उस समय जीवन मुसकरा रहा हो। तात्पर्य यह कि परिस्थिति के अनुसार कला के स्वरूप मे परिवर्तन सभावित है, यदि जीवन सुख-सुविधामय है, देश आत्मनिर्भर और निश्चिन्त है, समाज व्यवस्थित एव भीति-रहित है तो 'कला' अपना उद्देश्य आप बनकर मनोरजन एव मन परिष्कार कर सकती है, किन्तु जिस समय देश विदेशियो से पादाहत हो, जीवन अभावग्रस्त हो, समाज सत्रस्त एव अव्यवस्थित हो उस समय 'कला' को युवको के पौरुष और तरुणाई की उष्मा बनकर तपना चाहिए।

परिभाषा

चतुर्वेदीजी ने साहित्य की परिभाषा व्यापक दृष्टि से की है। उसके अनुसार "जगत् के ऋषियो ने लोक-जीवन मे फेर-फार करने के लिए जो कुछ कहा, वाणी के द्वारा, वही वाणी सगृहीत होकर साहित्य कहलाई।"[1] इस प्रकार आपके अनुसार साहित्य ऋषि-वाणी का पर्याय है। ऋषियो की वाणी बौद्धिक चिन्तन एव प्रत्यक्षानुभूति का परिणाम है। पडितो एव आचार्यो का शास्त्र-ज्ञान तथा सन्तो एव भक्तो का अनुभव-ज्ञान दोनो ही की मूल प्रेरणा ऋषियो की तप पूत वाणी है। साहित्य की परिभाषा सपूर्ण भारतीय वाड्मय को समन्वित कर लेती है, उसे एक उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित करती है। उसके प्रति विश्वास एव आस्था जागृत करती है तथा उसे परम्परा से सम्बद्ध कर देती है।

उद्देश्य

चतुर्वेदीजी साहित्य और कला की सोद्देश्यता स्वीकार करते हैं और उसे कोटि-कोटि के स्वप्नो को साकार करने का माध्यम मानते हैं। साहित्य देवता के स्वरूप का मानसिक रेखाकन करते हुए वे कहते है, "हम लिखे वह जो कोटि-कोटि नरमुण्डो के स्वप्नो का जागरण हो सके और उतरते हुए आदर्श, चढते हुए पौरुष, उमडते हुए उद्योग और समर्पित होती हुई सेवा के पथ मे अपना साहित्य बनकर ठहर सके। वह राहगीरो के समय काटने का कुल्हाडा मात्र न हो, किन्तु समय का पथ-प्रदर्शक राहगीर भी हो सके।"[2] चतुर्वेदीजी का सस्कार साहित्य

---

१. अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन, १९४३ ई० के अध्यक्ष पद से दिया गया भाषण।

२. वही।

का सम्बन्ध महलो से नही जोड पाता । वे उसे महलो का सहारक मानते है। उनकी दृष्टि मे साहित्य का दिव्य ज्ञान झोपडियो से ही उठकर समग्र विश्व मे छा जाता है । वे अपने साहित्य देवता को सबोधित कर कहते है—"शिव सहार करते है कौन जाने, किन्तु मेरे सखा तुम जरूर महलो के सहारक हो । झोपडियो से ही तुम्हारा दिव्य गान उठता है ।" (साहित्य देवता) चतुर्वेदीजी ने सच्चे भारतीय सस्कार को वाणी देते हुए उपर्युक्त बात कही है । वेदो का ज्ञान झोप-डियो की ही देन है, वाल्मीकि और व्यास की प्रतिभा का प्रकाश भी झोपडियो से ही विकीर्ण हुआ था । झोपडी त्याग और तपस्या का प्रतीक है । महलो मे विकसित होने वाले साहित्य की अधोगति का प्रमाण ढूँढने के लिए हमे सुदूर अतीत मे न जाना होगा । भारतेन्दु ने उसकी अधोगति को देखा था और उसे बचाने के लिए अपनी अट्टालिका मे ही आग लगा दी थी ।

मानदण्ड

साहित्य और कला की महत्ता का आधार क्या हो ? उसकी श्रेष्ठता की कसौटी का निर्धारण कैसे किया जाय ? उसके मूल्याकन का मानदण्ड क्या हो ? ये प्रश्न साहित्य के सदर्भ मे बराबर उठते रहते है । जीवन और मृत्यु, मुसकराहट और बेचैनी कला के सीमान्त बिन्दु है, इन बिन्दुओ को सवेदना और सहृदयता की रेखा से जोड देने की क्षमता ही कला के मूल्याकन का आधार बन सकती है, 'साहित्य देवता' मे चतुर्वेदीजी ने इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहा है, "कला-कार की कूँची से चित्रित कलाकृति को समझने के लिए आवश्यकता है ऐसे कवित्व की जो मुसकराहट और बेचैनी को समझ सकता है, जो जीवन और मृत्यु को समझ सकता है, क्योकि कलाकार की अगुलियो की असफल खिलवाडो तक मे एक मनुहार, एक अपील, एक वेदना, एक झॉकी और एक बेबसी होती है ।" ('साहित्य देवता') कला की परख का आधार ज्ञान नही, नैतिकता नही, पाडित्य नही, पोथी और पुराण नही, शास्त्र और स्मृति नही, वेद और वेदाग नही, सच-मुच मनुष्य की सवेदना-शक्ति एव सहृदयता ही हो सकती है । कला की चोट हृदय पर पडती है । वह मर्म को ही स्पर्श करती है । सवेदना को ही जगाती है। इसलिए उसकी भाषा ये ही समझ सकते है ।

व्याप्ति

साहित्य के सीमा-बिन्दुओ की परिगणना सम्भव नही, वह अनन्त आकाश का विस्तार और अतल सागर की गहराई से मापा नही जा सकता । अनेक अगस्त्यो की उदरस्थली भी उसके रस को नि शेष नही कर सकती । मानव की अनन्त काल से चलने वाली जययात्रा उसके इतिहास के एक अध्याय की भी

सामग्री नही दे सकती। इसीलिए चतुर्वेदीजी ने उसे अनेक नामो और गुणो से अभिहित किया है तथा उसे आकार देने मे अपनी असमर्थता की बार बार घोषणा की है। वे उसे 'मानव हृदय के मुग्ध सस्कार', 'अनन्त जाग्रत आत्माओ के स्वप्न', 'वेदनाओ के विकास के सग्रहालय', 'देवत्व को मानवत्व की चुनौती', 'विश्व का विकसित पुरुपार्थ' आदि अनेक सज्ञाओ मे सबोधित करते हुए, अनन्त पुरुष, की उपाधि दे डालते हे। साहित्य सचमुच अनन्त पुरुप हे,यथार्थ और आदर्श, भौतिक और आध्यात्मिक, अन्त और बाह्य, लौकिक और अलौकिक, सीमा और असीम, गोचर और अगोचर, भावात्मक और अभावात्मक, सापेक्ष और निरपेक्ष, स्पष्ट और रहस्यमय, आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ, नानात्व और एकत्व, सत्य के ये सभी रूप साहित्य की सीमा मे समा जाते हैं। मानव की भाव और विचार-परिधि को सीमित नही किया जा सकता। उसकी कल्पनाशीलता को एक निश्चित दायरे मे आबद्ध नही किया जा सकता। इसलिए मानव की इन शक्तियो के आधार पर सृजित साहित्य को आकार की परिधि मे बाँधा भी नही जा सकता। चतुर्वेदीजी का स्रष्टा कलाकार हेरान होकर कहता है, "कौन-सा आकार दूँ ? मानव हृदय के मुग्ध सस्कार जो हो ! चित्र खीचने की सुध कहाँ से लाऊँ ? तुम अनन्त जाग्रत आत्माओ के ऊचे और गहरे—पर स्वप्न जो हो तुम कल्पनाओ के मन्दिर मे बिजली की व्यापक चकाचौध जो हो तुम वाणी के सरोवर मे अन्तरात्मा के निवासी की जगमगाहट हो। लहरो से परे, पर लहरो मे खेलते हुए।" (साहित्य देवता)

आशावादिता

आशावादिता जीवित साहित्य का लक्षण है। चतुर्वेदीजी के स्वर मे निरतर आशा की अनुगूँज झकृत हुई है। वे साहित्य देवता की मनोनुकूल मूर्ति अकित करने के लिए आवश्यक उपादानो के अभाव मे चिरकाल तक प्रतीक्षा करते रहने की बात करते है। प्रकारान्तर से वे आशावादिता को साहित्य का नित्य गुण मानते है। उनकी प्रसिद्ध कविता 'कैदी और कोकिला' मे उनकी आशावादिता स्पष्ट झलकती है। उन्हे विश्वास है कि कोकिला का करुण स्वर लोह सीखचो के कठोर पाशो को तोडने मे समर्थ होगा, निद्रित लाशो मे चेतना का सचार करेगा और सारे ससार को उलट-पुलटकर स्वतन्त्र जीवन-व्यवस्था को जन्म देगा।

साहित्य-देवता का स्वरूप पूर्ण भारत राष्ट्र की परिकल्पना

चतुर्वेदीजी के हृदय मे राष्ट्र-प्रेम की भावना इतनी तीव्र, गहन, व्यापक एव आवेगमयी रही है कि साहित्य-देवता की परिकल्पना करते हुए वे भारत राष्ट्र का मानस साक्षात्कार करने लगे है। नि सन्देह परतन्त्र भारत के कवि के लिए

स्वतन्त्र एव पूर्ण भारत राष्ट्र की कल्पना ही उसके साहित्यिक व्यक्तित्व की अतिम परिणति हो सकती थी। चतुर्वेदीजी के मानस मे उभरने वाली साहित्य-देवता की तसवीर देखिए—

"आज तो उदास, पराजित और भविष्य की वेदनाओ की गठरी सिर पर लादे बाग मे उन कलियो के आने की उम्मीद मे ठहरता हूँ, जिसके कोमल अन्त-स्तल को छेदकर, उस समय जब तुम नगाधिराज का मुकट पहने दोनो स्कन्धो से आने वाले सदेशो पर मस्तक डुला रहे होगे, नर्मदा और ताप्ती की करधनी पहने विन्ध्य को विश्व नापने का पैमाना बना रहे होगे, कृष्णा और कावेरी की कोर वाला नीलाम्बर पहने विजयनगर का सदेश पुण्य-प्रदेश से गुजर कर सह्याद्रि और अरावली को सेनानी बना मेवाड मे ज्वाला जगाते हुए देहली से पेशावर और भूटान चीरकर अपनी चिर कल्याणमयी वाणी से विश्व को न्यौता पहुँचा रहे होगे और हवा-पानी की बेडियाँ तोडने का निश्चय कर हिन्द महासागर से अपने चरण धुलवा रहे होगे · " (साहित्य देवता)

कवि जिस उम्मीद मे, भविष्य के भारत की जिस मूर्ति को कल्पना मे सँजो-कर, जीवन का भार ढो रहा था, स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भी उसकी वह कल्पना साकार नही हुई। अपने साहित्य देवता को खडित बाहु देखकर उस पर जो बीती होगी उसे हम सोच भी नही सकते। अन्त मे हम उसी स्वर मे कहना चाहेगे कि "देवता, तुम्हारी मूर्ति पूर्ण होगी बस, रग भरने योग्य अरुणिमा प्रस्तुत हो रही है।"

सूरज-से बेदाग

◇ ○

गिरिजाकुमार माथुर

विन्ध्य प्रान्तर के लाल पठारो का प्रशस्त धीरज, पथरीली धरती का स्थैर्य, दुर्धर्ष चट्टानो का प्रतिध्वनित विद्रोह स्वर, सनसनाते जगलो का उद्दाम सगीत, बीहड मैदानो का बलिदानी अस्वीकार, मालवे की धरा-गन्ध का सलोनापन, चचल, बलखाती नदियो की मिठास, कमल और कुई से आच्छादित तालाबो की निर्मलता, निमाड के खेनो की ताजगी, पाताल पानी-सी गहनता और सगमरमर के पहाडो से धाराधार झरती नर्मदा की भावभीनी अभगता—यह सब यदि साथ मिलकर देह धारण कर ले तो एक अनूठे व्यक्तित्व की रूपरेखा बन जायगी।

· और वह व्यक्तित्व माखनलालजी का होगा। वह जो एक, प्रकेवल, अकेले ही ऐसे व्यक्ति है—क्रान्ति मे समिधा बनकर, अपने को निरतर होम करके, पीढियो पर छाप डालकर भी युग के पार्श्व मे चलते रहे हैं। युग का आन्दोलन, कोलाहल, मथन, उथल-पुथल, बलिदान, उत्सर्ग यही सब उनके आत्मीय रहे। समुद्र मे जब तूफान उठा था तो बीच खडी चट्टान की तरह उन्होने उसके ज्वार-कुण्डल ही पहने थे, जब तूफान स्वर्ण-कुण्डल लेकर शान्त तट पर चला गया तब भी वह चट्टान की तरह जल मे अकेले ही खडे रहे, क्योकि उन्होने ज्वार-कुण्डल ही जाने थे। वही उनके आत्मीय थे। जब सत्य की अभिव्यक्ति कठिन थी और इतिहास के मौन को स्वर देना सकटमय था, जब भावना के हरहराते प्रपात बन्दी थे और माध्यम-पथ अवरुद्ध थे तब उन्होने विद्रोह को शब्द दिए, प्रपातो पर जडे हुए पाषाण खड सरकाए, और जब धारा वेग से बह निकली तो वही उन्होने अपनी उपलब्धि मानी। अन्य उपलब्धियो को अस्वीकार कर दिया, धारा चलती-चली गई। अनेक ने अपने घट भरे, सिंहद्वारो पर स्थापित किए, लेकिन वह धारा के साथ-साथ तट पर चलते रहे···असपृक्त, निर्मोही।

रवि ठाकुर की पक्ति की तरह -

"जदि तोर डाक शुने केऊ ना आशे
तबे एकला चलो रे।"

कैसी थी वह पुकार ? किस चीज की पुकार थी ? तीस वर्ष पहले अपनी ताजी आँखो से उन्हे मैने देखा था। फिर चार-पाँच बार भेट, और बस। मै अपने कर्मपथ पर दूर चला आया। उसके बाद दूर ही से उन्हे समझते रहने की कोशिश करता रहा हूँ इन तीस वर्षो मे। क्योकि अन्तर-ध्वनियो का आत्मा से मिला अदृश्य तार कभी नही टूटा। समझता रहा हू कि उनकी पुकार सत्य की पुकार रही है, निष्ठा की, प्रखर चरित्र की, ईमान की, शरणागत न होने की,समझौता न करने की, अन्याय के समक्ष न झुकने की—किसी भी मूल्य पर दीपक की दीप्ति पर काजल न आने देने की। तट की निर्मल रेत ज्यादा अच्छी है यदि मोती पाने के लिए सीपी को चुराना पडे, कीचड मे लथपथ होकर कमल से केसर छीन लाने के बदले अपनी क्यारी का सामान्य सूरजमुखी ही अच्छा है। बृहत्तर स्वीकृति के लिए यदि मिथ्या का सहारा लेना पडे और अनेक विकृत सूत्रो का सचालन करना पडे तो उससे अनाम रह जाना श्रेयस्कर है, आत्मा पर दाग लगने का क्षण न आए, आभाति वेला चाहे सूनी, अछूती रह जाय

सूरज से बेदाग चाद से रहे अछूती मगल वेला,
खेला करे वही प्राणो पर जो हर छन प्राणो पर खेला।

निष्ठा की यही आन्तरिक उद्दीप्त मूर्ति उनके प्राणो पर खेलती रही है, यह प्राणा का खेल है। बिरले ही यह खेल सकते है, क्योकि इसमे उत्सर्ग ही उत्सर्ग है। निरन्तर आत्मदान, अपने कर्म का, शक्ति का, कृतित्व का, स्नेह का, अपने चरम क्षणो का। मन से चढावा चढा दिया गया, उसे प्रसाद रूप मे वापिस पाने की आकाक्षा भी नही जन्मती, अगार पर जो गन्ध-क्षण रख दिया गया है वह जलकर केवल सुगन्ध ही फैलाता है, अपनी गन्ध वापिस कब लेता है। जो वेणु धरा को केवल स्वर से आप्लावित करने के लिए ही हाथ मे ली जाती है वह अपनी मीठी प्रतिध्वनियो को वापिस कब माँगती है ! यही चरम उत्सर्ग है उन तन्मय क्षणो का जो तीव्रता से जिए गए हैं। स्टीफीन ज्विग ने लिखा है

"Immortality does not lie in morality or immorality There, intensity is all"

यही अमरत्व का पथ है। माखनलालजी इस पथ पर एक कदम आगे बढे रहे है। जिए हुए क्षणो की तीव्रता ही नही, पावनता भी और उनका उत्सर्ग भी युग के लिए, आदर्श के लिए, नई पीढियो के लिए।

मैं यह कैसे भूल सकता हूँ कि तीस वर्ष पूर्व नई प्रतिभाओ की अभिव्यक्ति का प्रथम मच 'कर्मवीर' बना था, जहाँ से न केवल मेरी कविताएँ सर्वप्रथम प्रकाश मे आयी थी बल्कि अनेक उदीयमानो की भी जिनका आज हिन्दी मे विशिष्ट स्थान बन चुका है। एक पूरी पीढी इस ज्योति-केन्द्र के आसपास एकत्र रही थी ·· बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान, रमाशकर शुक्ल 'हृदय', प्रभागचद

शर्मा, भवानी तिवारी प्रभाकर माचवे, गजानन मुक्तिबोध, वीरेन्द्र जैन, भवानी मिश्र, शिवमगलसिंह सुमन, धर्मवीर भारती। यही नही राष्ट्रीय-सास्कृतिक उन्मेष के प्रेरणा-स्रोत के रूप म माखनलालजी का प्रभाव-वृत्त सुदूर क्षेत्रो तक था बिहार मे दिनकरजी, रामवृक्ष बेनीपुरी, उत्तरप्रदेश मे मोहनलाल द्विवेदी, और राष्ट्रीय धारा के अन्य रचनाकारोतक। इस पीढी मे वे प्रतिभाएँ भी थी जिन्होने बाद मे नई प्रवृत्ति की काव्य धारा का समारम्भ किया था। कालान्तर मे भगिमाओ के अनेक परिवर्तनो के बाद भी उन्होने अपने और नई पीढी के बीच कभी कोई व्यवधान नही माना। जैसा कि अकसर अग्रजो और अनुजो के बीच साहित्य मे हो जाता है और हिन्दी मे भी सप्रति है। नूतन आलोक को निर्बाध आने देने के लिए वे क्षितिज की तरह खुले रहे। उनका स्नेह-दान अक्षुण्ण रहा। शायद यही कारण है कि जब उनकी समस्त पीढी कृतिकार के रूप मे या तो बुझ गई या अपनी पुनरावृत्ति को ही अपना विकास समझती रही तब भी वह बीजुरी की उँगलियो से भाव-बिम्बो के आकाश की आँखो मे अब तक ताजी काजल रेखाएँ आँजते रहे है। नई पीढी माखनलालजी के स्नेहदान और उत्सर्ग के प्रति प्रणत है। उन्होने निष्ठा की जो वेणु उसे दी है, उसका शब्द मन्द नही होने पायेगा। यह वेणु लिए हुए वह बढती जायेगी और हर आने वाली पीढी के हाथ मे उसे सौपकर माखनलालजी के शब्दो मे कहेगी

वेणु लो, गूँजे धरा।

विद्रोह, संघर्ष और शालीनता की प्रतिमूर्ति

◇ ◇

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

वह बात करते है तो जीवनशास्त्र हमारे कानो मे पडता है ।

वह भाषण देते है तो साहित्यिक निबध हाथ आते है।

वह निबन्ध लिखते है तो कविता की सरल धारा हमे आप्लावित करती है।

वह कविता लिखते है तो तरुणाई का तूफान उठ आता है।

और ये बाते भाषण, निबन्ध और कविता अपने बाह्य और अन्तर मे निराली होती है। इस प्रकार बातचीत, भाषण, निबन्ध, कविता और जीवनशैली इन पाँचो मे वह एक-साथ शैलीकार है। उनके व्यक्तित्व मे मात्र यही बात होती, तो वह अपने राष्ट्र के विशिष्ट व्यक्ति माने जाते, पर यही बात तो नही है।

एक पीढी मे चमककर जीना बडी बात है, पर उनके व्यक्तित्व की चमक चार पीढियो मे माला मे सूत्र की तरह पिरोई हुई है। इसे समझकर ही हम उनके व्यक्तित्व के अपवाद की विशिष्टता को समझ सकते है।

चिरनूतन और नितनूतन

उन्होने १६०३ मे लिखना शुरू किया और १६०६ मे उनकी पहली कविता कानपुर के 'रसिक मित्र' मे छपी। ब्रजभाषा मे भजनो की सरिता तैरकर, वह खडीबोली की कविता मे आए और अपनी शक्ति के कारण यशस्वी हुए। उनकी शक्ति के शखनाद मे आरम्भ से ही वीणा के स्वर भी समाए हुए थे। तब भी कविता वर्णन और विवरण से जकडी हुई थी। इस जकडन मे सबसे पहले सुकुमारता के वे सलोने स्वर उन्ही के छन्दो मे फूटे, जिन्होने कुछ और आगे चलकर छायावाद का रूप ग्रहण किया और छायावाद के आदिकवि का यश उन्हे मिला।

जब बाहर कुछ नही होता, तो आदमी अपने अन्त.करण के रस मे जीने लगता है। समाज की ऐसी ही परिस्थितियो मे एक काल मे भक्तिवाद जन्मा था

तो दूसरे काल मे छायावाद जन्मा। उसका नेतृत्व करते हुए भी—वीणा के स्वरो मे रसलीन होकर भी वह युग का शख बजाते रहे और पूरी शक्ति के साथ राष्ट्रीय कविता के नेताओ मे भी अग्रणीय रहे।

राष्ट्र के मानस ने अपनी गति की दिशा खोजनी आरम्भ की, तो हमारे साहित्य मे प्रगतिवाद का जन्म हुआ, एक बाढ की तरह। इसमे बहुत से उपवन डूब गये और बहुत से कीकर गुलाब बन बैठे, पर वह अपनी जगह रहकर भी बाढ की वन्दना ले पाए। उस दिन इलाहाबाद मे प्रगतिवादी साहित्यकारो की सभा मे वह बोले तो श्री राहुल साकृत्यायन ने कहा, "हमने तो आज जाना कि हमारे आप सेनापति है।" इसके उत्तर मे जब उन्होने कहा कि मैं तो तीस-पैंतीस साल से यही कह रहा हूँ तो बहुत से नेताओ को अपना मुह शीशे मे देखना पडा।

बाढ उतरी तो किनारो की उर्वर भूमि मे नई कविता की ही धारा लहराई। बहुत-से वीणा रख चिमटा बजाने लगे, पर उन्होने मिजराब बदलकर उसे अपने मे ले लिया और आज वह ज्यो-के-त्यो अपनी जगह रहकर भी नई धारा के नेताओ मे अग्रणी है। इस प्रकार वह चार पीढियो मे बराबर ताजे रहे, समय का प्रवाह उन्हे नही पछाड पाया और आज भी उनकी कलम अपनी पूरी तेजस्विता मे है। वह चिरनूतन है, तो नितनूतन भी।

कई व्यक्तित्वो का सगम

पूज्य माखनलालजी चतुर्वेदी का व्यक्तित्व कई व्यक्तित्वो का सगम है। उन्ही के शब्दो मे—"मुझ पर व्यक्तित्व की दृष्टि से रामतीर्थ का, जीवन की दृष्टि से ईसा का और सस्कारो की दृष्टि से वैष्णव परम्परा का प्रभाव पडा है।" उनका सारा जीवन विद्रोह का सघर्ष का और शालीनता का जीवन रहा है। उनके सघर्ष का आरम्भ उस दिन हुआ, जब काशी मे गगा के तट पर श्री देउसकर ने उनके एक हाथ मे गीता और दूसरे मे पिस्तौल देकर उन्हे क्रान्ति की दीक्षा दी। गोले और गोलियो से वह वर्षो खेलते रहे। इस खेल मे उनका साथी था एक सुन्दर नवयुवक। उसके द्वारा पार्टी-नियमो का भग हुआ, तो नेता ने उसे समाप्त करने का काम इन्हे सौपा। एक तरफ प्यार, एक तरफ कर्तव्य, कर्तव्य जीता और इन्होने अपना काम पूरा किया। पर अब प्यार विद्रोह था। अपनी पिस्तौल इन्होने नेता को सौंपी और घर चले आए।

नई पीढी के नवयुवको को वह जो खुले हाथो अपना प्यार लुटा पाए, उसका मनोवैज्ञानिक रहस्य इसी घटना मे है। अपने उस साथी को मूक मानसिक श्रद्धाजलि देते-देते ही तो वह हमारी पीढी के दादा हो गए है। इसके बाद का उनका जीवन गाधीजी के याद्धा का जीवन है। इस युद्ध मे उन्होने अपने जीवन के सर्वोत्तम वर्ष ही नही लगाए, अपना स्वास्थ्य भी समर्पित कर दिया और आज

औषधि, इच्छा-शक्ति और जीवन की नियमितता के सहारे ही वह जी रहे है।

और वह वैष्णव सस्कार ? वह अपने कमरे मे बैठे चाहे पढते होते, चाहे किसी बडे-से-बडे आदमी से बाते करते होते, मा का स्वर सुनाई पडता कि वह उठकर दौड पडते और इस तरह आरती लेते कि लगता कि वह सात साल के अबोध शिशु है। आरती लेकर वह माँ को प्रणाम करते और इस तरह अपने बिस्तरे पर लौटते कि जैसे अभी गगोत्री से लौटे है। अब मा नही है और उनके जीवन का यह बहुत बडा सुख समाप्त हो गया है। उनकी पत्नी को मरे युग बीत गए। पहले प्रति दिन शाम को वह पैदल उनकी समाधि तक जाया करते थे, फिर ताँगे मे जाने लगे थे, पर अब धडकन रोग के कारण यह भी सभव नही रहा। अब तो उनका कमरा-बरामदा ही उनका ससार है। किसी दिन उन्होने ठीक ही तो गाया था

मै पहला पत्थर मन्दिर का,
अनजाना पथ जान रहा हूँ,
गड़ूँ नीव मे, अपने कन्धो पर
मन्दिर अनुमान रहा हूँ।

स्पष्ट दृष्टि और स्पष्ट अभिव्यक्ति

उनके साहित्यिक जीवन की सबसे बडी बात क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर देना सुगम नही है, पर मेरी दृष्टि मे उनकी स्पष्ट दृष्टि और उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति ही उनकी सबसे बडी विशेषता है। वह उलझते नही है और धुआँ हो या अँधड, उनकी दृष्टि सदा अपने लक्ष्य पर रहती है। भय से उनका परिचय नही है और प्रलोभन की मेनका उनके द्वार पर कभी सफल नही हुई।

अपना भी अधिकार उन्होने कभी नही मागा और अधिकार के अपहरण की घडियो मे भी वह यो शान्त रहे कि जैसे डाकू ही उसका सच्चा अधिकारी हो। कष्टो और अभावो ने सदा उनका शोषण ही किया, पर यह शोषण ही उनके व्यक्तित्व को पोषण देकर निखारता रहा—"मैं हूँ एक सिपाही, बलि है मेरा अतिम साध्य।"

राजनीति उनके जीवन की राष्ट्रीय मजबूरी रही तो साहित्य उनका आत्मीय, पर साहित्य को उन्होने कभी सस्ते बाटो नही तोला। उन्ही के शब्दो मे—"जीवन का कार्य साहित्य बनाना और गा-बजाकर जिन्दगी बिताना मुझे कभी स्वीकार नही था। मैं कला और सृजन का सदैव हामी, प्राणो के मूल्य भी, किन्तु जो वैषम्य मैंने आसपास की दृष्टियो मे देखा, भोगा और चुपचाप स्वीकार किया, वह बहुत ही कडवा था। मैंने तालियाँ सुनी, सिर हिलते देखे, किन्तु मुझे लगा जैसे मानव का मूल्य कूतनेवालो का टोटा पड गया हो। पहचान, प्रभुता

और पुरानापन विकता, बलि और मूझ दोनो ही साथ रहकर दण्ड पाते रहते। जब बलि का मूल्य यह था, तब मुझे अपनी तुकवन्दियाँ जाने कैसी-सी उपेक्षा के योग्य लगती रहती। कला-यात्रा बोझीली और बलि-यात्रा साहित्य मे क्षणजीवी मालूम होती रहती।''

साहित्यकार को उनकी पुचकार सदा मिली है पर उनकी ललकार भी कभी अवरुद्ध नही हुई। इस ललकार मे उनकी जीवन-दृष्टि से बहुत सुन्दर चित्र उभरे है

''क्या इंजीनियर, राजनीतिज्ञ और मनोवैज्ञानिक का सामना हम इसी बात से कर ले जाएँगे कि हमारे कलाकार लचीली भावनाओ, रसीली कविताओ और विकार की मक्खियो से भिनकती रचनाओं को लेकर साहित्य-सृजन करते रहे ? सूझ के धनी साहित्यिक ने पशु और पत्तियाँ खाते हुए और पत्ते पहने हुए मानव-प्राणी को अपनी सूझो से अपना भाग्य-निर्माण करने के लिए आत्मावलम्बी बनाया। क्या आज का साहित्यिक यह कहना चाहता है कि मेरी गढी हुई दुनिया ही कुछ ऐसी बेतरतीब बन गई है कि इसका बोझ अब मुझ से नही सँभलता, और कोई आकर अब इस काम को सँभाले ?

''आज के साहित्यिक चिंतक पर जिम्मेदारी है कि पुरुषार्थ को दोनो हाथो मे लेकर जीने का खतरा और मरने का स्वाद अपनी पीढी मे बोए। यह पुरुषार्थ शस्त्रधारी से नही हो सकता। यह तो कलम के धनियो के करने का काम है, वही इसे करे।

''यदि समाज की उथल-पुथल को व्यक्त न कर सकने वाली ध्वनि हमारी वाणी मे आए, तो हम यह जान रहे कि उसकी उम्र अधिक नही है। इसलिए हम समाज के कोलाहल से क्षणभर अलग रहकर सोचने और लिखने का समय माँग ले, किन्तु हम समाज से दूर भागकर एकान्त का मरण खोजने का नाटक न करे।''[1]

---

१ ७२वीं वर्षगाठ पर लिखा गया लेख।

चिरतारुण्य के प्रतीक

० ०

डा० केशनीप्रसाद चौरसिया

कविता एक प्रकार की सवेगात्मक अभिव्यक्ति है। आदिमयुग मे जब गुफा-मानव ने बहुरगी प्रकृति की ओर विस्मयाकुल दृष्टि से निहारा होगा, मेघो के गर्जन-तर्जन और करकापात से सिहर गया होगा, उस समय विभिन्न मन स्थितियो मे उसने जो सहज सवेगात्मक उद्गार प्रकट किये होगे— ध्वनियो के, छबियो के, उन्ही का क्रमिक विकसित रूप आज की ललित कलाएँ है। साहित्य समाज के आइने मे अपनी छवि निहारता है। जैसे-जैसे जनसख्या का घनत्व बढता जाता है, यात्रिकता और तीव्रता बढती जाती है, तदजन्य सघर्ष और सत्रास भयावह होता जाता है, वैसे-वैसे हम भावना का छोर छोडकर तर्कसम्मत बुद्धि की ओर बढते जाते है। जाहिर है, ऐसी हालत मे हम कविता को न जीकर गद्य को ढोने लगने है। कविता के मर जाने की बात महज फतवा नही है अपितु युग-मथन से उद्भूत सच्चाई का तीखा हलाहल है जिसे नजरअन्दाज नही किया जा सकता। उसे पीकर-पचाकर उसके स्वाद को व्याख्यायित करना ही पडेगा। आज कविता की भाषा बोलना, 'कवियाना' एक प्रकार का बचकानापन समझा जाने लगा है। युग की त्रासदी को झेलने के लिए अब कविता चुकी-चुकी-सी लगती है। 'लोकायतन' ऐसे विपुल आयतन वाले महाकाव्यो को पढने-गुनने का धीरज हाइकू को हाँकने वाले आज के लघु मानवो मे कहाँ ? बेशक उसे टुकडो मे, पक्तियो मे चखा जा सकता है। अगर दिनकरजी से शब्द उधार लूँ तो यही कहना पडेगा कि लम्बी कविताओ, खासकर प्रबन्ध कविताओ का भविष्य धूमिल दिखाई देता है। चुस्ती, हल्कापन, फुर्ती। औरते स्लीवलेस, राजे-महाराजे बुशर्ट मे, तामझाम म्यूजियम मे। आगे के कवि उपदेश न बघारेगे। कविता से पैगम्बरी विदा हो जायेगी। कविता आत्म-ज्ञान के लिए, मनोवैज्ञानिक व्यूहो को भेदने के लिए और अपने आपको चीरने के लिए लिखी जाएगी।

प्रस्तुत परिक्षेत्र मे जब हम दादा की चिरनूतन सरचना पर विचार करते हैं

तो निस्सकोच यही कहना पडता है कि वे अपने युग के अद्वितीय प्रतिभा-सम्पन्न कवि है। उनकी कविता (युगवाणी) चुस्त, फुर्तीली और वक्त की तेज रफ्तार के साथ कदम-ब-कदम चलती रही है, अपने से पीछे आनेवालो को भी छोडती, धकियाती, राह बनाती। जहाँ इनके समकालीन कवि-पुंगव भोडी तुकबन्दी करते हुए चुकने की स्थिति मे आकर कभी-कभी हास्यास्पद लगने लगते, वहाँ दादा का सदाबहारी कवि आँच और ओस की अग्निमा-आर्द्रता लिए निरन्तर आगे की ओर बढता जाता। उनका कवि इतिवृत्तात्मक-युगीन लीक-पिटी सकुचित सीमाओ से निकलकर नई कविता तक की मजिल को थपथपाता हुआ चिरतारुण्य का जागरूक प्रहरी रहा है। ताज्जुब है, साहित्य का यह सिपहसालार अपने स्याही के शृ गार मे, कथ्य और तथ्य के प्रयोगो मे इतनी तरुणाई, आँधी और आँच कहाँ से ले आता है ? सचमुच उनके पद-चिह्नो पर चल रही आज की पीढी के लिए यह एक चुनौती है। इस चुनौती को न्योतने के पूर्व दादा ही की शरण मे जाने से निबाह है।

याद नही दादा ने कभी कही अपने वर्चस्वित भाषण मे कला को व्याख्यायित करते हुए कहा था कि, "जो उन्मेष बनकर आये और इतिहास बनकर चली जाए वही सच्ची कला है।" 'आधुनिक कवि' (भाग ६) की भूमिका से दुहराने की अनुमति चाहूँगा, "कविता मेरा न उद्रेक है, न उत्साह, वह तो मेरे जीवन की लाचारी रही है।" चतुर्वेदीजी का सपूर्ण काव्य वस्तुत जीवन-काव्य है। जीवन को उन्मद साँसो की धोकनी से जोतकर जो उन्होने खून-पसीना बोया, वैसी निर्बाध फसल लहलहाई भी। कीच-कादी को उलीचकर उन्होने साधना का रक्त-कमल उगाया है। उनकी अनबुझ प्यास और सर्वग्रासी भूख स्वय को अगत्या कविता मे ही व्यक्त कर पाती है।

"कवि के जीवन मे कुछ क्षण तो ऐसे होते है जब वह अपने नेह निधान के चरणो मे अपने को समर्पित कर देता है लगता है कि सामर्थ्य, सीमा, महत्वाकाक्षा, निराशा और आवश्यकता इनको भावो की अजुली मे सजोकर जब भी मैंने अभिमत के चरणो पर रखना चाहा और उसमे जिस तरह कँपकँपी आयी उसी कँपकँपी को लिख डालने का यह प्रयास मात्र है।" (आधुनिक कवि ६, भूमिका)

इतिहास की कुछ अजीब-सी स्वीकृतियाँ इस प्रतिभा के साथ गुथी हुई हैं। फूल-सी कोमल कलाई पिस्तौल, वशी की मूर्च्छना मरोर विद्रोह के बोल, वैष्णवी शुचिता (साध्यपूर्ति के लिए) साधन रूप मे बैरिस्टर साहब की नमकीन रखैल पर धुआँधार चुम्बनो की बिछलती बौछार वाली बेहूदा हरकत।

सोलह साल की अगडाती उम्र मे प्रतिभा की बड़ी दईमारी, लजीली पखुरी चिटखी :

"श्याम लोचन मन बस गये री,
मधुर बैन कर सैन नैन सो,
छीन लीन मन चपल ऐन सो,
कछु न सुहावत सुधि न रैन सो,
जब हरि हँस गए री ।"

यो माखनलाल अपनी ढीठ लरिकाई मे अनेक बेतुकी तुकबन्दियाँ रचकर अपनी पीठ मजबूत बना चुके थे। प्रभाती के स्थान पर दो बैलो को उठाकर जगल मे चरने-विचरने की छूट कितनी स्वच्छन्द और सास्कारिक है

उठो मेरे दोनो बैल, भोर भयो प्यारे,
जगल मे चरो घास, अब तो छोडो घर की आस,
भोर भयो प्यारे।

उन्तीस साल की खेलने-खाने वाली उमर मे सगिनी का चिर-बिछोह सहना पडा। अगूरी क्षणो मे हलाहल आ जाने की रोमाचक यन्त्रणा। 'तरुणाई के प्रथम चरण मे जोडी टूट गई'। वह गन्ध बनकर साँसो मे और छन्द बनकर उच्छ्वासो मे रच-पच गई। 'यौवन के तुतलाते वैभव सध्या लूट गई'। यादो की डोली पर खेली सारी उमर अलवेली साधे इस आकस्मिक प्रहार से चूर-चूर हो गयी। हिंदी के हक मे यह अच्छा हुग्रा। देह की दीवारे टूटने पर वह 'जोडी' मन-प्राण से और भी अधिक जुड गई, अन्तरग बन गई। ऊँचे पर उठती अभिनवता की आग ठण्डी न पडकर भीतर-भीतर तपती रही, धुँधवाती रही। अनेक मधुर गीत इसके साक्षी है

दूबे हँसी, महावर हँस दी, हँसी क्यारियाँ कलियाँ चटकी,
हे जग-दर्पण मधुर समर्पण, याद भुला दे घूँघट पट की।

जब से बने, प्राण के बन्धन, छूट गये गठ-बन्धन रानी,
लिखने से पहले बन बैठी, मैं ही उनकी प्रथम कहानी,
लोग कहे आँखे बहती हैं, उन्हे आँख मे भरती हूँ सखि।

याद ही करता रहा यह लाल टीका, बन चला जजाल यह इतिहास जी का।
पुष्प पुतली पर प्रणयिनी चुन न पाई, साँस और उसाँस के पट बुन न पाई।

बेच न दो विश्वास-साँस को, उस मुस्कान अधेली पर।
मेहँदी से तस्वीर खीच ली किसकी मधुर हथेली पर ?

'बलिशाला ही हो मधुशाला' की उन्मद परिकल्पना के उद्घोषक चतुर्वेदीजी की विस्फोटक कविताओ मे प्राय. चाहे वैष्णवी आस्था से अल्पनायित 'कुज कटीरे, जमुना तीरे' वाली गीत की कोमल कडियाँ हो, चाहे शूली पर चढा मधुर

यौवन-फूल, समापन की प्रक्रिया समर्पण-पर्व मे होती है ।

'मातृ-वन्धन मुक्ति का जिस दिन मने त्यौहार, जबकि जनपथ लाल हो, हो किसी की तलवार, आएगा सिर काटने उस दिवस मालाकार। यह मधुर बलि हो विजय का मोल, मानिनी तब तक हृदय मत खोल' विरोधाभास की बलिहारी आर्द्र-सजल-सवेदनशीलता उनचास पवन प्रवेगाविल उन्मद विद्रोह तुलनीय, तौलनीय ·

तरु बेलो की बाँहे मरोड, उनका फूला जी तोड-तोड,
तुझ पर वारुँ तब मेरे जी से, तेरे जी की जुडे जोड
मेरे कोमल, किस कीमत पर यह कर्कशता किससे होगी ?

भूखड बिछा आकाश ओढ, नयनोदक ले, मोदक प्रहार,
ब्रह्माण्ड हथेली पर उछाल अपने जीवन-धन को निहार।

द्वार बलि का खोल, चल भूडोल कर दे, एक हिमगिरि एक सिर का मोल कर दे,
मसलकर, अपने इरादो सी उठाकर, दो हथेली है कि पृथ्वी गोल कर दे ?
खून है या है नसो मे क्षुद्र पानी, जाँचकर, तू सीस दे-देकर जवानी।

कवि के साहसिक सैलानीपन की प्रस्तुत प्रतिवद्धता नई पीढी की 'गीता' है

जिसके रवि ऊगे जेलो मे, सध्या होवे वीराने मे
उसके कानो से क्यो कहने आते हो ? यह घर तेरा है ?

प्रहारक, बाण हो कि हो बात, चीज क्या आर-पार जो न हो ?
दान क्या, भिखमगो के स्वर्ग, प्राण तक तू उदार जो न हो ?
लौह-बधन, कि वार पर वार, मधुर स्वर क्यो ? सितार जो न हो ?
रखे लज्जा क्यो सन्त, कपास पेरकर तार-तार जो न हो ?
अरे हो जाय रुधिर बेस्वाद लाडला मरण-ज्वार जो न हो ?

'साहित्य देवता'

"मै तुम्हारी तस्वीर खीचना चाहता हूँ परन्तु भूल मत जाना कि मेरी तस्वीर खीचते-खीचते तुम्हारी भी एक तसवीर खिचती चली आ रही है। मेरे मास्टर, मै यह पहले देख लेना चाहता हूँ कि मेरे भावी जीवन को किस तरह चित्रित कर तुमने अपनी जेब मे रख छोडा है।"

मैं तो इस बाग की रसा मे रस लाने के लिए, अपनी हड्डियो की खाद दे दूँगा, इस बाग के दाडिम मे दर्द का-सा स्वाद उत्पन्न करने के लिए, युग की अरुणिमा तक की खाद दूँगा। श्यामघन ! तुम्हारे बरसने के पहले मै हरियाली की अमरता और मस्ती के खिलाफ परम्परा से चिपककर, पतन के विद्रोह के

खिलाफ विद्रोह पर झुकी हुई सब डालियो को एक-एक कर काट डालूँगा।

वाणी की स्वच्छन्दता मे जितना कठोर मरण है स्याही और कागज के भय मे अनन्तकाल को वेध सकने वाली उतनी ही महान् अमरता है। वे धन्य है जिनकी बोली हवा पर से भी, अमर रहने को कागजो पर उतर आती है, किन्तु जबान की स्वच्छन्दता पतन का ठीका नही है। जबान से उतरना ही वह चाहिए, जिसे यदि युग कागज पर उतार दे तो वह अमर हो उठे।" सम्भवत 'साहित्य देवता' नही-नही, साहित्य के इस सिपहसालार के व्यक्तित्व-कृतित्व-निरूपण मे इससे अधिक ईमानदारी से अतिरिक्त नही कहा जा सकता। यदि कहा जायेगा तो वह अति-रिक्त होगा।

चलते-चलते इस छवि-गधी ध्वनियो के जादूगर के टटके प्रयोगो का भी जायजा लेना मुनासिब होगा। 'भारतीय आत्मा' के बडे जानमारू दईमार सम्बोधन होते है— प्यारे, राजा, मालिक, मेरे मास्टर, भगवन, बालम, निगोडे। गज-भर की छाती चाहिए थी मध्ययुगीन युगबोध मे पली सचेतना के बीच ऐसे प्रयोग करने के लिए। बारीक व्यग्य के इस चित्रकार ने जो नई जमीन तोडी, अछूते आयाम उद्घाटित किये (भले ही सतही सौदर्यबोध के दिग्मूढ दिग्नाग विमूढ विद्रूप करे।) उनके कारण दादा का त्रिकालातीत व्यक्तित्व इतिहास को रौंदता हुआ सदा यशस्वी रहेगा।

(ख) काव्य-समीक्षा

राष्ट्रीय काव्यप्रवाह में 'एक भारतीय आत्मा'

◇ ◇

आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र

राष्ट्रीय काव्यप्रवाह सामयिक उन्मेष होने के कारण काव्य के शाश्वत स्वरूप के अंतर्गत नही आता, ऐसी कुछ मनीषियो की धारणा है। यदि ऐसा ही माना जाए तो फिर किसी विशेष से सबद्ध रचना काव्य की अभिधा न प्राप्त करेगी। शिवाजी या राणाप्रताप को विषय बनाकर लिखी रचना काव्यपदवाच्य न होगी। राम-कृष्ण की लीला का वर्णन काव्य न हो सकेगा इसलिए सामयिक उन्मेष होने से कोई काव्यकृति काव्य न कही जा सके, ऐसा नही है। उसमे व्यजित भाव सर्वजनसामान्य है, शाश्वत है या नही, यही देखना चाहिए। काव्य मे जो वर्णना होगी वह विशेष की ही होगी, व्यक्ति की ही होगी। जब किसी व्यक्ति या विशेष की वर्णना प्रत्यक्ष नही प्रतीत होती तब भी वह विशेष की ही होती है। नायिकाभेद लिखनेवाले नायिका की वर्णना करते हैं तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि कोई विशेष यहाँ नही है। पर वहाँ भी वैसा नही होता। वर्णयिता जिस वर्ण्य को बौद्ध रूप मे रखता है वह उसकी प्रेयसी हो सकती है, कोई दृष्ट महिला हो सकती है। अत्युक्त और कल्पना द्वारा अतिशयता रहने पर भी मूल कोई दृष्ट या विशेष ही होता है। यही स्थिति ग्राहक या पाठक या श्रोता या दर्शक की भी समझिए। वह भी ग्रहण करता है किसी पूर्व दृष्ट को बौद्ध रूप मे रखकर ही। व्यक्ति या विशेष के बिना काव्य का काम नही सरता। इसलिए सामयिक या विशेष की वर्णना काव्य के लिए कथमपि बाधक नही है।

स्थायी साहित्य और सामयिक साहित्य भेद तभी मान्य हो सकता है जब किसी सामयिक साहित्य मे जीवन की सर्वसामान्य भावधारा की अभिव्यक्ति न हो। इसलिए देखना यह चाहिए कि राष्ट्रीय काव्य-प्रवाह के रूप मे जो रचना रची गई उसमे सर्वसामान्य भावधारा है या नही। राष्ट्रीय काव्य-प्रवाह मे मुख्य

रूप से तीन प्रकार की रचनाएँ हैं। एक प्रकार की रचना तो वह है जिसमे भारत या भारतमाता की पराधीनता दूर करने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध उत्साह का प्रदर्शन रहता है। दूसरे प्रकार की रचना वह है जिसमे कवि या पात्र पराधीनता मे मिलनेवाले क्लेश के साथ अपनी समानुभूति व्यक्त करता है। तीसरे प्रकार की रचना वह है जो भारत के वैभव की स्मृति दिलाती है और उसकी स्तुति के रूप मे होती है। इन तीनो प्रकार की कृतियो मे जो बीज रूप मे भाव रहता है वह प्रीति या भक्ति का है। कवि के अत करण मे भारत, भारतमाता, भारतीय जनता के प्रति प्रीति और श्रद्धा रहती है। उनके प्रति भक्ति होती है। सारी अभिव्यक्ति देशभक्ति की होती है। भक्ति की प्रेरणा उपास्य की सेवा की ओर पहले प्रवृत्त होती है। श्रद्धासवलित प्रीति या भक्ति की तृप्ति बिना सेवा के नही होती। तुलसीदास ने ठीक ही कहा है कि—

सेवक सेव्य भाव बिन भव न तरिय उरगारि।

उत्साह, करुणा, प्रीति या भक्ति सर्वसामान्य और शाश्वत भाव है। इसलिए स्थायी वृत्तियो से सपृक्त होने के कारण राष्ट्रीय काव्यप्रवाह सामयिक होने पर भी काव्य के उच्च आदर्श से सर्वथा सयुक्त है और उसके श्रेष्ठ काव्य माने जाने मे कभी कोई बाधा नही है।

हिन्दी साहित्य की दीर्घकालीन परपरा मे आरभिक काव्य वीरकाव्य के रूप मे दिखाई देता है। पर आरभिक काव्य दरबारी ही कहा जा सकता है। जो जिसके दरबार मे रहता था वह उसी का प्रशस्तिकाव्य लिखता था। व्यक्ति विशेष यदि उदात्त गुणो से युक्त न हो तो उस काव्य मे वह विशेषता नही आती जो उसके स्थायी महत्त्व की रक्षा करे। पृथ्वीराज के विषय का ख्यातवृत्त उनके उदात्त गुणो का आख्यान करता है। पर जयचद्र का वृत्त वैसा उदात्त प्रसिद्ध नही है। इसलिए दोनो को आलबन मानकर लिखे गए काव्य मे अतर पड जाता है। पृथ्वीराज का प्रयास व्यक्तिगत होकर भी भारतीय महत्त्व का है। भले ही उसका अत शोभनीय न हुआ हो। आधुनिक राष्ट्रीय भावना से प्रेरित उत्साह उस युग मे भले ही न हुआ हो, पर राष्ट्रीय महत्त्व की किरणे वहाँ भी दिखाई देती है। मध्यकाल मे आकर आरभ मे भक्ति का उन्मेष दिखाई देता है। भक्ति के इस उन्मेष मे भी राष्ट्रीय प्रवाह दृग्गोचर होता है। भारतीय परपरा मे स्वधर्म, स्वभाषा और स्वदेश का माहात्म्य और उसके सरक्षण का भाव सदा से है। इसके लिए भारत आदान-प्रदान भी करता आया है। सपूर्ण भारत की राजनीतिक एकता चाहे जब से हुई हो, पर भाषागत एकता पाणिनि के समय से, धार्मिक एकता आद्य शकराचार्य के समय से अवश्य है। मध्यकालीन भक्ति का आदोलन देशव्यापी था और उसका एक उद्देश्य यह भी था कि भारत मे रहनेवाली ऊँची-नीची या देशी-विदेशी जातियाँ एकता के रूप मे बँधी रहे। भक्ति ने अपना द्वार

सबके लिए उन्मुक्त कर रखा था। यदि कोई विदेशी जाति उसमे प्रवेश नही कर सकी, छिटपुट व्यक्तिगत प्रवेश मात्र हुआ तो यह भक्ति का नही जाति विशेष के दुराग्रह के ही कारण हुआ। राजनीतिक राष्ट्रीयता और धार्मिक एव साहित्यिक राष्ट्रीयता का स्वरूप भिन्न होता है। बाह्य राष्ट्रीयता के स्थान पर वहाँ आभ्यतर राष्ट्रीयता का प्रयास रहता है। यहाँ भक्तिविहित राष्ट्रीयता के तत्त्वो का सधान प्रयोजनीय नही है, पर इतना तो अवश्य कहना पडता है कि भक्ति का सगुणवाद उसके लिए पूर्णतया प्रयत्नशील रहा है। श्री वल्लभाचार्य ने ब्रह्म की सगुण सत्ता को ही पारमार्थिक घोषित करते समय सामयिक आवश्यकता की ओर भी अपनी दृष्टि रखी थी यह निश्चित-सा लगता है। भारतीय परपरा ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनो रूप सकारती आयी है और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनो मार्ग विहित माने हैं। जब कोई निर्गुण मात्र को पारमार्थिक कहने लगा तो निर्गुण का खडन कर सगुण के मडन मे भक्ति का आदोलन लग गया। इस प्रकार हिंदी साहित्य का पूर्व मध्यकालीन भक्तिप्रवाह आतरिक राष्ट्रीय एकता का ही प्रवाह था।

यही स्थिति उत्तर-मध्यकालीन शृगारकाल या रीतिकाल की भी है। वह भक्ति से पृथक् होकर शुद्ध साहित्यिक स्तर पर वही प्रयास करने मे लगा। इतिहास से स्पष्ट है कि सभी प्रकार के प्रणेताओ ने उसमे योग दिया। सभी प्रकार की जातियो के जन उसकी रचना मे सलग्न दिखाई देते है। यह समझना कि शृगारकाल मे भौतिक राष्ट्रीयता की ओर कवियो की दृष्टि नही थी सत्य का अपलाप होगा। भौतिक राष्ट्रीयता के बदले वहाँ मानसिक राष्ट्रीयता का प्रयत्न हो रहा था। आधुनिक काल मे भौतिक राष्ट्रीयता का स्वर भी धीरे-धीरे साहित्यिक उद्योग के माध्यम से प्रबल होने लगा। आरभ मे यह स्वर निहित रूप मे चल रहा था। पर देशभक्ति के आदोलन के बल पकडने पर वह स्वर अनिहित या प्रत्यक्ष सुनाई पडने लगा। राष्ट्रीयता के स्वर का निनाद भी दो प्रकार का था। साहित्यिक शब्दावली मे कहे तो कह सकते हैं कि एक स्वर व्यजनावदी था और दूसरा अभिधावादी। कुछ कवि राष्ट्रीयता की चर्चा व्यजना मे करते थे। प्राचीन भारतीय आख्यानो मे वे आधुनिक राष्ट्रीयता का रग चढाकर जनता के सामने रखते थे, जैसे जयशकर प्रसाद ने अपने नाटको, कहानियों आदि मे किया है। उस युग मे प्रत्यक्ष राष्ट्रीयता की चर्चा करना विदेशी शासन के कारण कठिन था। इसी से कुछ साहित्य-प्रणेता व्यजनावाद के सहारे आगे बढे। इन्हें चाहे तो उदार दल के साथ रख सकते है। दूसरा दल ऐसा था जो प्रत्यक्ष राष्ट्रीयता का उद्घोष करता था। इसे चाहें तो अग्रगामी या उग्रदल कह सकते हैं। पडित माखनलाल चतुर्वेदी इसी उग्र दल के राष्ट्रीय प्रवाह के साहित्यिक कर्त्ता हैं। यद्यपि उनकी रचनाएँ विविध प्रकार की हैं तथापि सबसे अधिक और वेगपूर्ण

रचनाए उन्होने प्रत्यक्ष राष्ट्रीय प्रवाह की की है। कहना चाहे तो यह भी कह सकते है कि इस प्रवाह के अग्रणी या साहित्यिक नेता रहे है चतुर्वेदीजी। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी-साहित्य की राष्ट्रीय धारा के वे अग्रणी हैं और उनका इस दृष्टि से हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय राष्ट्रीय जीवन के उन्नयन के हेतु उनके प्रयत्न के रूप अनेकविध है। फिर भी काव्य के द्वारा जनता की मानसिक चेतना उत्तेजित करने मे उन्होने जो कार्य किया वह किसी प्रकार उनके द्वारा किए गए अन्य प्रयत्नो से लघुतर नही है। उन्होने अपना जो उपनाम रखा है वह अक्षरश. सार्थक है। वे एक भारतीय आत्मा के रूप मे विविध क्षेत्रो मे सामयिक आवश्यकता और प्रेरणा से अवतीर्ण होते रहे है। उनकी काव्यगत सवेदना ही अधिक वेगवती, बलवती और उद्बोधनमयी है इसमे किसी प्रकार का सदेह नही है । उनकी यह कविप्रतिभा हिन्दी साहित्य के इतिहास मे सर्वदा प्रतिष्ठा और पूजा पाती रहेगी, यह भी निर्भ्रान्त रूप मे सत्य है। देश के स्वतत्र होने मे अन्य शक्तियो के साथ काव्यगत शक्ति का पूरा योग रहा है। यदि इसका पूरा योग न रहता तो इतनी शीघ्रता स्वतत्र होने मे कदापि न होती।

काव्य-गुरु का ऋण[1]

० ०

डा० प्रभाकर माचवे

परम आदरणीय, हिन्दी के विख्यात राष्ट्रीय कवि प० माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' ने जीवन की सितहत्तरवी सीढी पर अपना डगमगाता चरण रखा है। इस अवसर पर मुझसे अधिक सुधी और विद्वान् उनकी कविता, राष्ट्रीयता, गद्यकाव्य, वक्तृत्व शैली, पत्रकारिता, रेखाचित्र कला आदि पर बहुत कुछ लिखेगे। पर मैं सोच रहा हूँ कि वह लिखूँ, जो मेरा अपना अनुभव हो, (जो प्रभाव और उपकार उनका मुझ पर हुआ) और शायद यह लिखते समय, यदि मैं गलती नही करता तो स्वर्गीय विनयकुमार और स्वर्गीय ग० मा० मुक्तिबोध, वीरेन्द्रकुमार जैन और भवानीप्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती और जगदीश गुप्त आदि की हमारी पीढी की भावनाएँ भी व्यक्त कर रहा हूँ। हम लोगो से पहले की पीढ़ी मे स्वर्गीय बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और स्वर्गीया सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारीसिंह 'दिनकर' और हरिकृष्ण 'प्रेमी', शिवमगलसिंह 'सुमन' और 'अंचल' आदि ने जो राष्ट्रीयता की भावना से रगी ओजस्वी-तेजस्वी कविताएँ लिखी और इस तरह राष्ट्रीयता और रोमाटिकता का अद्भुत घोल हिन्दी भाषी जनता को एक दशक तक पिलाया, उन सब पर माखनलालजी का ही प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव रहा।

जब माखनलालजी ने राष्ट्रीय कविताएँ लिखनी शुरू की—'एक फूल की चाह' सन् १९२२ की रचना है, तब देश मे गाधीजी का राजनैतिक क्षितिज पर अवतरण हो चुका था, जलियाँवाला बाग के जख्म देश की छाती पर गहरे थे। तिलक और गाधी के दो मार्गों—'बाबगोल्याचे तत्वज्ञान' (तिलक का एक सम्पादकीय अग्रलेख) और गाधी के अहिंसक अप्रतिकार की दो परस्पर-विरोधी विचारधाराओ के बीच मे सघर्ष था। माखनलालजी के बाल्यकाल से जान

---

१. ७७वी वर्षगाठ पर लिखित।

पडता है कि वे सशस्त्र क्रातिकारियो के भक्त नही तो कम से कम उन्हे आदर से देखने वाले थे—उनकी असिधारा-व्रती बलिदानी वृत्ति से उन्होने 'तरुणाई के मरणज्वार' की प्रेरणा और वाणी पायी। पर सन् '२० के सत्याग्रह के बाद, और उससे भी अधिक सन् '३० और '४०-'४२ के आन्दोलनो के बाद माखनलालजी गाधी और विनोबा के अनुयायी हो गये। यह जो सवेदनशील राष्ट्रीय विचार-धारा के कवि की बहिर्मुखी क्राति से अन्तर्जगत की ओर की मौन साधना वाली यात्रा थी, इसी मे पहला आकर्षण हमारी प्रगतिशील पीढी (जो बाद मे प्रयोग-शील भी हो गई) को लगा। उनकी कविता मे जो त्रिविध अन्तर्धाराएँ या त्रयर्थी गुम्फन था (ट्रिपल आताद्र) वह कम से कम मेरे लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण था।

एक ओर वे प्राचीन भारतीय 'मिथ' से प्रेरणा ग्रहण करते थे, जिसमे 'कृष्णमदिर' जैसे शब्द और प्रतीक या 'एशिया की गूजरिया', 'मोहन' जैसे शब्द एक विशेष अर्थ से विद्युन्मय हो उठते थे। यहाँ वे 'निग्रो-क्लासीसिज्म' (नव्य-प्रतीकवाद) के निकट थे।

दूसरी ओर वे समकालीन राजनीति की बाते बहुत सहज ढग से कह जाते, चाहे वह तिलक की गिरफ्तारी हो, चाहे विनोबा की पदयात्रा या चीन का सीमा प्रदेशो पर नग्न आक्रमण। यहा वे 'कोकिल, बोलो तो' जैसी कविताएँ या अन्यत्र जेल-जीवन की यातनाओ को सीधे लिखते थे, 'बाँधो, सडको, निर्माणो··· कारखानो' वाली योजनाओ की वास्तविकता का उल्लेख करते जाते थे। यानी वे आँख मूँदे हुए अतीत के गौरवगान करने वाले 'हिमाद्रि तुग-शृग' जैसे प्रासादिक छायावादी मात्र नही थे, वे स्पष्ट, खुली आँखो से देश-दशा को देखते जाते थे। यहाँ वे प्रगतिवाद से करीब थे।

और यह देखकर भी वे सिर्फ 'भारत-दुर्दशा' या 'भारत-भारती' की इति-वृत्तात्मक अभिधा तक सीमित नही थे। वे बात को सीधे नही कहते थे, लपेटकर व्यंजना से ही अनुभूति को 'कवितामय' बनाकर कहते थे। उसमे एक विलक्षण वैयक्तिकता की, अकेलेपन की, वेदना की, एक प्रकार के अतृप्त प्रणयातुरता की उत्कट गध मिली हुई थी जो कि उनकी कविता को अशरीरी रावीद्रिक-पतोन्मुख छायावाद से अलग करती थी—और जो भाषा के नये प्रयोगो के कारण आधु-निकताबोध के निकट जान पडती थी।

माखनलालजी ने न जाने कितने वर्षों पहले लिखा :

मसल कर, अपने,
इरादो सी उठाकर,
दो हथेली है कि,
पृथ्वी गोल कर दे।

और हमने सन् '४०-'४१ मे आडेन की स्पेनी युद्ध के समय की प्रगतिवादी कविता पढी

दि सैण्ड्स ऑफ हिस्टरी
आर प्लास्टिसीन इन माई हैण्ड्स।

हमे सहसा इन दो आत्म-सकल्प-प्रधान उक्तियो मे एक जबर्दस्त अपनापा मिला।

वह समय था गत महायुद्ध का, जब हमारी पीढी—यानी छायावाद और नकली प्रगतिवादी नारावाद से सघर्ष करने वाली काव्य-सत्य की अन्वेषी पीढी—कोरी सीमित राष्ट्रीयता से सतुष्ट नही थी। 'एशिया' शब्द तब अर्थपूर्ण हो उठा था—दिनकर ने अबीसीनिया के युद्ध पर 'मेघ-रध्र मे बजी रागिनी' लिखी थी, अली सरदार जाफरी ने 'एशिया जाग उठा' लिखा था। माखनलालजी की रचना मे, हिन्दी की राष्ट्रीय कविता मे, पहली बार[1] 'एशिया' शब्द आया, जो सन् '५४ की नीचे दी हुई रचना से लगाकर चीन के आक्रमण के बाद की रचना तक बराबर गूँजता रहा

दंग करती सी मृदग बजे, कि वशी रध्र बोले
नृत्य मग्ना एशिया की गोपियाँ, स्वच्छन्द डोले,
अमित मधु आकर्षणो का ज्वार हरि वशी बजावे,
स्वर भरे कश्मीर उसमे, भैरवी नेपाल गावे,
मोह ले मन को हमारे नेह का गाधार प्रहरी,
और लका से हमारी सिंधु-सी हो प्रीत गहरी,
आज ब्रह्मा के स्वरो मे, एशिया के द्वार हर्षित,
मित्र के उल्लास हर्षित, शत्रु के सहार हर्षित।

(मरण-ज्वार, पृ० ६४)

मैं समझता हूँ कि मेरे मन को माखनलालजी की कविता का जो पहला गुण सबसे अधिक आर्कषित करता था, वह उसकी वक्तृतामयता थी, सूत्र-शैली थी, किसी बात को इतने सचोट और मार्मिक ढग से सक्षेप मे कह देने की विशेषता थी। रात के समय ज्योत्स्ना निभृत रात्रि मे जो वशी मादक आकर्षण पैदा करती है, वह सवेरे रण के डके की चोट बन सकती है—यह बात उनके व्याख्यानो मे सुनी थी, वही उनकी कविता मे गुथी हुई है। यह जो एक ही वाद्य का दुहरा उपयोग है—माधुर्य और ओज दोनो गुणो के क्षेत्र मे—यह काव्य प्रत्यचा का द्वैती 'गुण' था, जो एक ओर 'श्रुतियों' तक खीचा जाता था, दूसरी ओर वह 'स्मृति'

---

१ माखनलालजी ने 'एशिया' शब्द का प्रयोग सबसे पहले सन् १९२५ मे किया था (देखिये पृष्ठ १२१, ऊपर से १४वी पक्ति)

बनकर युग-युग को बेधता चला जाता था। यही उनकी कविता का एक स्थायी स्वर है, जो सहसा विस्मृत नही हो सकता। 'श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त' यह छन्द-मय सकल्प था, जिसमे बार-बार 'जीवन-दान' की भाषा बोली जाती थी। वह मत्र-पूत और हरी समिधा से अग्नि-साक्ष्य के 'होता' के मुख से निकला आदि-श्लोक था। और जो हुत था वह ऋत् भी था।

धृति और गति के इस सगम मे हम, उस समय के विश्वविद्यालयो से शेली-ब्राउनिंग, रवीद्र-माधव-जूलियन, कलामे-गालिब पढकर निकले हुए तरुणो को माखनलालजी की कविता मे एक अद्भुत नया स्वाद मिला।

मुझे उनकी सूक्तियो से हमेशा आस्कर वाइल्ड की याद आती रहती। दोनो के गद्य मे विलक्षण साम्य है, यद्यपि यह कल्पना भी नही की जा सकती कि माखनलालजी ने वाइल्ड को उन आरभिक दिनो मे पढा हो—तब वह भारत मे उपलब्ध ही नही था। उसके सपूर्ण ग्रथ बहुत बाद मे यहाँ आये। मराठी के नाटककार गडकरी (गोविन्दाग्रज) को जरूर माखनलालजी ने पढा था, उनकी 'वाग्वैजयती' नामक कविता-पोथी उनके पुस्तक-सग्रह मे मैने चौबीस वर्ष पहले देखी है। सन् '३४ मे जब पहली बार हमने खण्डवा मे माखनलालजी के दर्शन किये, तब 'कर्मवीर' मे रामवृक्ष बेनीपुरी और बाद मे हरिकृष्ण प्रेमी' उनके सहकारी थे। दोनो के गद्य और पद्य पर माखनलालजी की अद्भुत छाया थी।

एक बात जो मुझे अभी तक नही भूलती, और जिसका उस वक्त बहुत बुरा लगता था, गुस्सा जान पडता था (पर आज वह इतनी दूरी पर आकर एक निश्चित वरदान लगता है)—वह थी माखनलालजी का स्वय की, और उन्ही के परिणामस्वरूप बाद मे बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' मे भी, प्रकाशन से बचने की वृत्ति। और इसके लिए अपने प्रिय शिष्यो को अल्प-प्रशसा से फूलकर कुप्पा न होने की सलाह और प्रताड़ना। मुझे याद आता है, नये-नये छन्द रचना के जोश मे तब बीस बरस की ही उम्र मे हमने न जाने कितने खडकाव्य और लम्बी कविताएँ सजा-सजाकर, रगीन कागजो पर, सुन्दर अक्षरो मे रच डाले थे, वे निरी तुक-बन्दियाँ थी—और माखनलालजी की प्रेरणा से हमने उन्हे कभी छपाया नही बल्कि नष्ट भी कर डाला। यह बहुत अच्छा हुआ—क्योकि वस्तुत वे कविताएँ नहीं थी, वे शब्द-शक्ति पर अधिकार प्राप्त करने के व्यायाम या अभ्यास मात्र थे। आज जब नये-नये तरुणो मे 'काता और ले भागा' वाली वृत्ति देखता हूँ, रात को लिखा और सबेरे अपने आपको या मित्रो द्वारा महाकवि घोषित करवाने का यत्न किया, ऐसा 'मदयशप्रार्थित्व' देखता हूँ, तो मन मे लगता है, काश इन सब नौजवानो को एक माखनलाल मिला होता। पर इसका अर्थ यह नही था कि वे कठोर अनुशासक थे और प्रोत्साहन नही देते थे।

उलटे; दूसरा जो उनका बहुत गहरा प्रभाव मेरे मन पर पड़ा—वह उनका

दिया हुआ अमित वात्सल्य है। 'कर्मवीर' साप्ताहिक की सन् '३४ से सन् '४७ की फाइल साक्षी है कि मेरी कितनी ऊलजलूल कविताएँ, कई लेख-समालोचनाएँ, रेखाचित्र-कहानियाँ आदि उसमे छपी। उसमे की एक कविता तीन वर्ष पूर्व जब 'तेल की पकौडियाँ' नामक सग्रह मे मैंने पुनर्मुद्रित की तो हमारे कई मित्र समझे कि 'वाह, बडी आधुनिकता-बोध युक्त रचना है'। यह सब चीज़े बीस-पचीस साल पहले हमने अपनी तोतली बोली मे लिखी थी, और यह माखनलालजी जैसे सपादक के साहस और भविष्यदर्शित्व का ही प्रतिफलन था कि तब वे छप सकी। वे मुक्त छद मे होती थी, बेहद 'अन-रोमाटिक' होती थी—सक्षेप मे काफी साहसिक प्रयोगशीलता लिए हुए थी।

तीसरा प्रभाव जो मेरे मन पर उनकी रचनाओ से पडा वह 'गीत' की झूठी चिकनी-चाशनीभरी आहो, भरी प्रदर्शनप्रियता से बचने का था। माखनलालजी अपनी कविता सीधे-सादे सहज सभाषण जैसे लहज़े मे 'पढते' थे, 'गाते' नही थे। इस बात ने मुझ जैसे 'गलाहीन' व्यक्ति को बहुत धीरज बँधाया। माखनलालजी ऐसे कवियो को मजाक मे 'गलाकार' कहते थे—'कलाकार' की तुलना मे। यह फिर उस समय की लोकप्रिय धारा से कटकर, दूर, एकान्तसेवन करने की सच्चे कवि की वृत्ति का द्योतन करने वाली बात थी। इधर आजकल जैसे 'नीरज' ज। 'बजते' है, उन दिनो 'बच्चन' की 'मधुशाला' का बोल-बाला था। शब्दो के अनु-रणनमय गुजन मात्र से अर्थ की भारती प्रसन्न नही होती थी—इसका तब भी अनुभव था, अब तो और अधिक होने लगा है। हममे से कई कवियो को 'बौद्धिक' कहकर दुत्कारा गया, उपेक्षित किया गया। भवानी मिश्र ने तो सहज सभाषण शैली को अति तक पहुचा दिया। पर माखनलालजी ने कविता को 'स्पीच हाइटेन्ड बाई इमोशन' वाली सेसिल डे लिवीस की व्याख्या को हमारे लिए सार्थक बना दिया।

इधर एक दशक बीत गया—'दादा' के दर्शन नही हुए, न उनसे पत्र-व्यवहार हुआ। अन्तिम पत्र जो मिला था वह सन् '५५ के करीब का था जब साहित्य अकादमी ने उनकी 'हिम-तरगिनी' को स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ हिन्दी ग्रथ के नाते पुरस्कार दिया था। अब जवाहरलालजी नही रहे, और इस-लिए घटना का ऐतिहासिक महत्त्व हो गया है। वे साहित्य अकादमी के अध्यक्ष थे, और उस बार कार्यकारिणी सभा मे पुरस्कार निर्णय की बात आयी थी तो सर्वश्री बनारसीदास चतुर्वेदी, जैनेन्द्रकुमार और दिनकर मे किसी एक पुस्तक पर ऐकमत्य नही हो पा रहा था। जवाहरलालजी बिगड़कर बोले, "तुम हिन्दी वाले हमेशा आपस मे लडा करते हो! यहाँ बाहर गैलरी मे जाओ, दस मिनट के अन्दर एक किताब और लेखक का नाम तै करके मुझे बताओ। यह क्या बात हुई कि साहित्य अकादमी का पहला इनाम है, और किसी हिन्दी किताब को न मिले।"

दस मिनट बाद मे सदस्यगण लौटे तो माखनलालजी की 'हिमतरगिनी' का नाम था। पहले पुरस्कार का समारोह नही हुआ था, पुरस्कार लेखको को भेज दिये गये थे। जिस दिन यह पुरस्कार भेजा गया, मैने माखनलालजी को व्यक्तिगत पत्र भेजा था। बाद मे वे हिन्दी परामर्शदात्री समिति मे कई वर्षो तक थे। पर स्वास्थ्य अच्छा न होने से वे दिल्ली न आ सके।

एक अन्तिम बात, जिसकी ओर सकेत, 'एक भारतीय आत्मा' नामक मेरी 'व्यक्ति और वाङ्मय' पुस्तक के निबन्ध मे, और गत वर्ष 'ज्ञानपीठ पत्रिका' मे 'समय के पॉव' की आलोचना मे मै दे चुका हूँ, वह माखनलालजी द्वारा हमारी पीढी को सिखाई हुई 'राष्ट्रीयता' की व्याख्या के सम्बन्ध मे है। यह व्याख्या उन्होने कही शब्दो मे फार्मूले की तरह लिखकर नही दी। वह उनकी कविता मे अनुस्यूत है। मैने भारत की सभी भाषाओ के राष्ट्रीय कवियो की रचनाएँ मूल मे या अनुवाद मे पढी है, और उनमे मुझे माखनलालजी की कविता एक विशिष्ट दृप्त मुद्रा लिये खडी दिखाई देती है—तेजस्विनी और फिर भी विनीता। असमिया के अम्बिकागिरि राय चौधुरी की राष्ट्रीय कविता बहुत कुछ मैथिलीशरणजी की तरह है, सीधी-सादी, घटनाश्रित, प्रतिक्रियाएँ गद्य मे न कहकर जैसे पद्यबद्ध हो गईं। ऐसी बात बगला के नवीनचन्द्र सेन (१८४७-१९०९), दिलीपकुमार राय, सत्येन्द्रनाथ दत्त या नजरुल इस्लाम के बारे मे नही कही जा सकती—वहाँ उच्छ्वास अधिक है, गीत की ऊष्मा है, उत्कटता चीख का रूप ले लेती है। यह रग बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कुछ राष्ट्रीय रचनाओ मे है। गुप्तजी और नवीनजी की इस ठडी और गर्म राष्ट्रीयतावाली दो छोरो की रचनाओ के सिलसिले मे, तुलनात्मक दृष्टि से भारत की अन्य भाषाओ की राष्ट्रीय रचनाएँ रखी जा सकती है, वे फिर नर्मद (१८३३-८६) की हो या 'सुन्दरम्' (गुजराती) की, 'केशवसुत' (१८६६-१९०५) की हो या वि० दा० सावरकर (मराठी) की, गुरजाद अप्पाराव की हो या दाशरथी (तेलुगु) की या भाई वीरसिंह की हो या बाबा बलवन्त (पजाबी) की, राधानाथ राय (१८४८-१९०८) की हो या गोपबन्धु दास की। अपवाद रूप मे दो नाम है, तमिल के सुब्रह्मण्य भारती और मलयालम के वल्लत्तोल। इन कवियो मे भारती ने योगी अरविन्द के प्रभाव मे प्राचीन अध्यात्म को देश की पराधीनता से मुक्ति के लिए 'आवश्यक परा-शक्ति' की पूजा बॉधी—उनकी रचनाओ मे द्वयर्थी योजना मिलती है। 'चक्रगाथा' और 'मरियमु मग्दलिनु' के कवि वल्लत्तोल मे (मुझे उनके सम्पर्क मे आने का कई बार सौभाग्य मिला) अध्यात्म और राष्ट्रीयता के साथ-साथ प्रगतिशीलता का भी अद्भुत सयोग हुआ था। उनकी रचनाओ मे और माखन-लालजी चतुर्वेदी की रचनाओ मे बहुत साम्य है, जो तुलनात्मक भारतीय साहित्य का विद्यार्थी भावी काल मे अवश्य खोज निकालेगा। सु० भारती और

गुप्तजी पर तो किसी ने शोध-प्रबंध हिन्दी मे लिख डाला है ऐसा मैंने सुना है। माखनलालजी पर कोई शोधप्रबध प्रकाशित रूप मे मेरे देखने मे नही आया, यह सुना है कि कई छात्र शोधकार्य कर रहे है अवश्य। उर्दू के कवि पडित ब्रजनारायण चकबस्त (१८८२-१९२६) के यहाँ भी माखनलालजी वाली द्विविधता और वक्रोक्ति-चमत्कार है। इकबाल (१८७३-१९३६) का नाम मै जान-बूझकर नही ले रहा हूँ, चूँकि उनकी 'राष्ट्रीयता' (?) भिन्न प्रकार की थी, उसकी जडे प्रजातिवाद मे थी। और यहाँ वह विषय विचारणीय नही है। 'खुदी को कर बुलद इतना कि अपने को खुदा समझे' (इकबाल) के बिलकुल उलटे 'एक भारतीय आत्मा' की विनोबा पर पक्तियाँ है।

मैं उन्हे अपना काव्य-गुरु मानता हूँ। इसलिए नही कि मेरी पहली हिन्दी कविता 'कर्मवीर' मे १९३४ मे उन्होने छापी, इसलिए नही कि खडवा के तुलसी जयती वाले कवि सम्मेलन मे सन् १९३६ मे कविता पढने पर उन्होंने मेरा उत्साह बढाया, इसलिए नही कि वे मुझे अपने साथ सन् '३४ मे दिल्ली के हिन्दी साहित्य सम्मेलन और सन् '३५ मे इलाहाबाद के हिन्दुस्तानी एकेडेमी के जलसे मे ले गये और बडे-बडे साहित्यिको से—मसलन प्रेमचन्द से, महादेवी से या टडनजी से पहली बार मिलवाया, इसलिए नही कि सन् '३४ की बम्बई काग्रेस के अवसर पर राजेन्द्रप्रसाद के भाषण का अग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद रातोरात बैठकर मुझसे करवाया (देखिये रामवृक्ष बेनीपुरी की 'गेहूँ और गुलाब'), इसलिए नही कि उन्होने 'कुरुक्षेत्र' और 'कृष्णायन' की मेरी उस उम्र मे इतनी उग्र और स्पष्टवादी समालोचनाएँ 'कर्मवीर' मे छापी, इसलिए नही कि नागपुर रेडियो पर जब मैं था, तब मैंने स्वर्गीय बाबूराव विष्णु पराडकरजी और उनकी एक बातचीत करीब एक घटे रिकार्ड कराई, तब दो वृद्ध पत्रकारो के निजी जीवन पर चुटकियाँ और कहकहे (जो रिकार्ड नही किये गये) जो हुए उनमे मुझे समभागी होने का सौभाग्य मिला, इसलिए नही कि जाने दीजिए, कई व्यक्तिगत बाते याद आती है, जिन्हे लिखने का यह अवसर नही। पर इसलिए कि हमारे मिट्टी के लौंदे की तरह आकारहीन सवेदनामय किशोर मन को उन्ही की उँगलियो से आकार मिला—हिन्दी की आजन्म सेवा करने का जो व्रत मैंने लिया वह उन्ही की सहानुभूति और सम-वेदनापूर्ण प्रोत्साहन के कारण। प्रेमचन्दजी ने 'हस' मे कहानी न छापी होती (१९३५) या मराठी के बारे मे लिखने को न कहा होता, जैनेन्द्रकुमार ने अपने निबन्ध-सग्रह की भूमिका लिखने को न कहा होता (१९३७), निराला ने 'माधुरी' मे लेख न छापा होता (१९३७), महादेवी ने 'चाँद' मे हमारी 'अश्रुमती गौतम' कहानी न छापी होती (१९३७) और 'अज्ञेय' ने 'विशाल-भारत' मे मेरी दो इम्प्रेशनिस्ट कविताएँ (१९३८) न छापी होती—तो आज हम कहाँ के होते! क्या ये पक्तियाँ लिखने का हमे अधिकार होता? क्या 'नयी

कविता' के अक ७ मे मुझे विशेष कवि के नाते डा० जगदीश गुप्त छापते या धर्मवीर भारती 'धर्मयुग' मे कविताएँ छापते ? लगता है कि माखनलालजी ने हिन्दी मे एक पीढी की पीढी नयी प्रतिभाओ को सँवार-सँभालकर पैदा की—एक कुशल माली का काम किया, तराशा भी, खाद भी दिया, सराहा भी। इस ऋण से आजीवन उऋण होने का कोई उपाय नही है। घट कुम्भकार से अपने आकार के बारे मे किस भाषा मे कहे ? क्योकि उसकी भाषा उसका आकार मात्र है।

अतः इस अवसर पर मैं उन्हे इस अन्तर से, देश और काल के इस व्यवधान और दूरी से केवल विनत प्रणाम करता हूँ। हिन्दी ने उनके लिए जब समय था, तब जो करना चाहिए था तब नही किया, यह बात मन मे अखरती है। ऐसा हिन्दी मे क्यो होता है इस पर हमे विचार करना चाहिए। मेरी शिकायत है हिन्दी के प्रकाशको-सम्पादको-आचार्यों और सस्था-ध्वजा-धुरीणो से कि सन् १९०८ से लिखने वाले व्यक्ति का पहला कविता-सग्रह क्यो सन् १९४२ मे छपता है ? क्यो अभी भी उनकी पूरी ग्रथावली उपलब्ध नही है, जिसमे कालक्रमानुसार सब रचनाएँ छपे ? क्यो हम राह देखते रहते है कि स्मृति नष्ट हो जाने के बाद राहुल साकृत्यायन को पद्मविभूषण दे और कैसर से अल्पायु मे अतिश्रम से मर जाने के बाद अहिन्दी-भाषी तमिल लेखक रागेय राघव को मरणोपरान्त तीन वर्ष बाद गाधी-पुरस्कार देने की बात सोचे ? साहित्य का क्षेत्र 'पाछल बुद्धी बाणियो' और अवसरवादी राजनीतिबाजी के हाथ मे कब तक यो पडा रहने दिया जायगा ? यही बात बार-बार माखनलालजी का स्मरण मन मे आते ही उठती है कि और सब तो छोड दे यह अकिंचन, अल्पमति मुरीद अपने उस्ताद के लिए कुछ न कर सका, इस पश्चात्ताप से मन भर उठता है।

'एक भारतीय आत्मा का केन्द्रीय स्वर:'
क्रान्तिमुखी वैष्णवता

o o

डा० जगदीश गुप्त

सास्कृतिक स्तर पर हिन्दी साहित्य के विशेष सदर्भ मे भारतवर्ष की आत्मा की खोज 'एक भारतीय आत्मा' के साहित्य के माध्यम से विशेष सफलता के साथ की जा सकती है, ऐसी मेरी धारणा है।

यदि किसी विशिष्ट सवेदनशील व्यक्तित्व मे पूर्व परम्परा के किसी जीवन्त स्रोत ने वास्तव मे नवीन रूप ग्रहण किया है तो उसी इकाई के सहारे उस स्रोत तक पहुँचा जा सकता है और उसके समग्र स्वरूप की सही व्याख्या की जा सकती है।

बिन्दु से प्रारम्भ होकर सत्य की खोज सिन्धु तक ले जाती है, परन्तु इस शब्द-युग्म से सत्य की अभिव्यक्ति जिस दार्शनिक पीठिका मे की जाती रही है आज उसकी सार्थकता बहुत कुछ विलुप्त हो चुकी है। अभेद के स्थान पर यह भेद-अभेद की प्रक्रिया अधिक महत्त्वपूर्ण हो गयी है। आधुनिक युग की जिज्ञासा अभेद को वही तक स्वीकार कर पाती है जहाँ तक व्यक्तित्व का आत्यन्तिक विलयन न हो, क्योकि पहले मूल्य का आधार वह था जिसमे विलयन काम्य माना जाता था, पर अब मूल्य-बोध उसमे केन्द्रित हो गया है जिसकी निजी स्थिति ही ऐसी है कि सर्वथा विलीन होने पर अपना अर्थ खो देती है। 'जैहै बनि बिगरी न बारिधिता बारिधि की, बूंदता बिलैहै बूंद बिबस बिचारी की' विशिष्ट व्यक्तित्व की यह कामना मध्यकाल की वैष्णव भक्ति मे चरम रसात्मकता के साथ निरूपित की जा चुकी है। यह विचित्र सत्य है, किन्तु विवशता और बेचारगी साथ लगी रही।

व्यक्तित्व की अब धारणा बेबसी और बेचारेपन से मुक्त होकर मानव के गौरव और स्वाभिमान के रूप मे सारी विषमताओ के बावजूद अपने को स्थापित करना चाहती है। यह वर्तमान युग का एक प्रखर सत्य है। इस स्थिति तक पहुँचने मे जो लम्बी यात्रा तय की गयी है और जिनके द्वारा की गयी है उनमे माखनलाल

चतुर्वेदी का अनेकमुखी कृतित्व अविस्मरणीय कहा जाएगा।

उनमे वैष्णवता राष्ट्रीयता के साथ एकात्म दिखायी देती है और परलोकोन्मुखी न होकर लोकाभिमुख, सक्रिय, प्रेरक और वरेण्य प्रतीत होती है। केवल पुराने के प्रति अवसादपूर्ण मोह या उसके पुनरुत्थान का भाव न होकर नये के प्रति एक आवेग, एक उन्मेष और ऐसी झलक भी दिखायी देती है जो त्याग एव बलिदान की भाषा मे क्रान्तिकारी की भूमिका प्रस्तुत करती है।

वैष्णव भावना और रसमय आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि की यह लौकिक यथार्थपरक परिणति अपने पीछे एक गहरा विचार-सघर्ष, एक शृखलित घटनापूर्ण इतिहास छिपाये है। माखनलालजी के व्यक्तित्व और उसके माध्यम से उनके युग को समझने के लिए अनिवार्य है कि उस सघर्ष तथा उस इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए। उनके 'समय के पॉव' देखे जाएँ।

'इडियन हिस्ट्री काग्रेस' का सत्ताइसवॉ अधिवेशन। सन् '६५ और अधिवेशन दोनो का अन्तिम दिन। विशेष आयोजित पुस्तक-प्रदर्शनी मेरे हाथो मे कुछ देर के लिये एक नव प्रकाशित पुस्तक दे देती है 'इडियन नेशनलिज्म एण्ड हिन्दू सोशल रिफार्म'। लेखक चार्ल्स एच० हेमस्थ[1] के दिये सकेतो पर मैं पृष्ठ पलटता हूँ। मन मे न जाने कब से एक प्रश्न अटका हुआ है, उदारवादी वैष्णवता की परिणति क्रान्तिकारी राष्ट्रीयता मे कैसे सभव हुई ?

उन्नीसवी शती का द्वितीयार्ध १८६७ ई०। केशवचन्द्र सेन के प्रभाव से बगाली ब्रह्मसमाज के समानान्तर बम्बई मे प्रार्थना-समाज की स्थापना और उसका भारत के पश्चिमी और दक्षिणी भाग मे व्यापक प्रचार। ब्रह्मसमाज से एक विशेष अन्तर करते हुए यानी ईसाई प्रभाव से हिन्दू परम्परा और सस्कारो को सर्वथा नकारे बिना सुधार द्वारा विकास की प्रवृत्ति का प्रदर्शन। बगाल मे नव-वैष्णव-आन्दोलन, १८८० के आस-पास और उसका उडीसा से लेकर तेलुगुभाषी प्रदेश तक व्यापक प्रभाव। १६०० मे भारतधर्म महामडल की स्थापना जिसे १६१० तक बहुसख्यक हिन्दुओ द्वारा मान्यता-प्राप्ति। दोनो के बीच १८६७ मे अमरावती मे आयोजित एक बहस, एक गहरा वैचारिक द्वन्द्व। एक ओर रानाडे, दूसरी ओर लाजपतराय। रानाडे पूछते हैं—"रिवाइवल किसका ? अधविश्वासो का, कर्मकाण्ड का, या सती-प्रथा का ?" लालाजी वैसी ही दृढता और व्यग्यमयता से उलटकर प्रश्न करते है—"अनुकरण किसका ? फ्रेच शराबो का, अग्रेजी तौर-तरीको का या अमरीकी स्वेच्छाचारिता का ?" 'प्रार्थना-समाज' के आमने-सामने 'आर्य-समाज'। वैष्णव के विपरीत वैदिकता। हिन्दुत्व का हृदय-पक्ष बुद्धि-पक्ष का प्रतिद्वन्द्वी या कि दोनो का एक अनुपात दूसरे अनुपात की

1 Charles H Heimsath

शक्ति-परीक्षा के लिए तत्पर।

विवेकानन्द—भारतीय आत्म-गौरव की एक नयी आध्यात्मिक खोज,

एनी बेसेन्ट—विश्व-व्यापी स्तर पर एक जीवन्त धार्मिक उदारता,

थियोसोफी—और भी न जाने कितने चिन्तक, कितना अन्वेषण, कितनी उपलब्धि इसी प्रभा-मडल मे तिलक, मालवीय और गाधी का आविर्भाव और तीनो का अन्तर्तम वैष्णव सस्कारो से विनिर्मित। तीनो राष्ट्रीयता के रूप-शिल्पी। गीता मे भक्ति और कर्म का अद्भुत योग और वही राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य सघर्ष की प्रधान प्रेरणा। चतुर्वेदीजी पर तीनो का गहरा और प्रत्यक्ष प्रभाव। तुकाराम, नरसी, चण्डीदास और विद्यापति के साथ सूर-तुलसी भी। वश-परम्परा-पूज्य हितहरिवश सर्वोपरि। घर मे वैष्णव-पदो की गूंज, बाहर वैष्णव चिन्तन की अनुगूंज।

इलाहाबाद मे १९११ मे चार प्रमुख वैष्णव-धर्मों की एक महती सभा। वैष्णवता के कल्याणकारी रूप के प्रति आस्था का विकास। बाहर से आये इस्लाम और ईसाईमत का बौद्धिक उत्तर स्वदेशाभिमान के साथ आर्य समाज ने दिया। भावात्मक उत्तर वैष्णवधर्म ने। 'नाहिन रह्यो मन मे ठौर, नन्द नन्दन अछत कैसे आनिये उर और।' जो उत्तर सूर ने अकबर को दिया वही इस देश की राष्ट्रीय चेतना ने शासक की धार्मिक उत्कृष्टता के सस्कार से युक्त ईसाई प्रभुता को दिया। आस्था तोडने के हर प्रयत्न के आडे आस्था जोडने वाली वह उदार वैष्णवता आयी जो 'वैष्णवजन तो तेणे कहिए' के रूप मे शताब्दियो से एक प्रतिमान बनी। मध्यकाल तक भारतीय आत्मा या तो इसी स्वर मे अपने को व्यक्त कर पायी या रामराज्य के आदर्श रूप मे। गाधी ने हरिजन और रामराज्य दोनो को पुनर्प्रतिष्ठित किया गीता की साक्षी देकर। 'एक भारतीय आत्मा' ने इस सब को अपने मे आत्मसात कर लिया। उसे वह वैयक्तिक सघर्ष भी विपथ नही कर सका जिसने 'बौद्धिकता बनाम राष्ट्रीयता' का नितान्त बौद्धिक रूप ग्रहण कर लिया था। वैष्णव आस्था ने बुद्धि को राष्ट्रीयता से सम्बन्ध बनाये रखने के उपक्रम मे अपने को परिवर्तित कर लिया और युग की बौद्धिकता ने उसको उदारता पर आधारित 'सुधार' के स्थान पर उन्मेष से अनुप्रेरित क्रान्ति का रूप दे दिया।

जिस आन्तरिक जीवन-दृष्टि ने, शक्ति ने, वैष्णव धर्म को मध्यकालीन कर्म-काण्ड, जाति-भेद, वर्णभेद आदि से ऊपर उठकर जीवन्त प्रेम को लौकिक और आध्यात्मिक दोनो स्तरो पर सर्वोपरि मूल्य के रूप मे प्रतिष्ठित करने का साहस दिया, 'मोक्ष' के औपनिषदिक आदर्श के ऊपर भक्ति को मान्यता देने की क्रान्ति-कारी शक्ति दी, उसी ने उसे युगानुरूप राष्ट्रीयता मे परिणत हो जाने की प्रेरणा प्रदान की। विवशता की स्थिति मे सशस्त्र विद्रोह का मार्ग अपनाकर क्रान्ति करने

के समर्थन मे तरुणो को भी उन्होने अछूते पुष्पो की तरह प्रभु के चरणो मे अर्पित माना और उनकी हिंसा को अहिंसा का कलक मिटाने वाली वरेण्य शक्ति के रूप मे ग्रहण किया और अवसर आने पर स्वय भी उसमे सम्मिलित हुए। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य को इसी पृष्ठभूमि मे समझा जा सकता है।

उनकी 'हिमकिरीटिनी' के रूप मे भारतमाता की कल्पना, जो काव्यात्मक एव मौलिक है, के पीछे भी कुछ इतिहास-छाया गतिमान दीखती है। राष्ट्रीयता ने ही बकिमचन्द्र के उपन्यासो मे दुर्गा के प्रचलित रूप के साथ मातृभूमि की भावना जोड दी। यह कदाचित् सर्वप्रथम बगाल मे ही सभव हुआ क्योकि वहाँ परम शक्तिरूपा दुर्गा को मातारूपा मे पूजने की सर्वाधिक सजीव परपरा मिलती है तथा भूमि के प्रति माता का भाव 'माता भूमि'' के साक्ष्य के अनुसार वैदिक काल तक विस्तृत माना जा सकता है। चतुर्वेदीजी ने भारतमाता के रूप को इसी परपरा मे अपनी कल्पना के द्वारा आमूल परिवर्तित करके इतना आकर्षक बना दिया कि वह उनके काव्य की ही नही, भाषणो तक की चरम परिणति बन सका। छायावादी कवियो मे निराला ने 'भारति जय विजय करे' वाले प्रसिद्ध गीत मे भारत-माता का अन्तर्भाव सरस्वती मे कर दिया है, और पत ने उसे 'ग्रामवासिनी' कहकर उसके राहु-ग्रसित रूप को उभारने की चेष्टा की है। निश्चय ही भारतमाता को जो रूप चतुर्वेदीजी ने दिया है वह अधिक लोकग्राह्य सिद्ध हुआ। इसका कारण यही है कि पत और निराला द्वारा रूपायित भारत की मातृकल्पना के पीछे वैष्णव भावना निहित नही थी जबकि माखनलालजी की कल्पना मे उसका पूरा समावेश मिलता है। पत और निराला ने राष्ट्रीयता तक अपने को सीमित नही किया पर 'एक भारतीय आत्मा' राष्ट्रीयता की सजीव मूर्ति दिखाई देते है। अन्तर्राष्ट्रीयता से उनका विरोध नही है, परन्तु राष्ट्रीयता और उससे सम्बद्ध यथार्थ चेतना को उन्होने, छायावादी कवियो से कही अधिक भावुक होकर प्राथमिकता अवश्य दी है। सीमा से अधिक वह उनकी शक्ति प्रतीत होती है।

जो महापुरुषवादी विचारधारा उनके साहित्य मे आद्यन्त अनुस्यूत है और जिसकी विशेष प्रकट अभिव्यक्ति 'समय के पाँव' के संस्मरण-लेखो मे हुई है उसके स्वरूप का सम्यक् विश्लेषण करने पर ज्ञात हो जाता है कि वह भी अन्तत उसी वैष्णव परपरा की मुख्य विशेषता अवतारवाद की ही युगानुरूप नव परिणति है जिस पर देशी-विदेशी कतिपय अन्य प्रभाव भी माने जा सकते है। रामनवमी पर लिखी हुई उनकी कविताएँ (माता, पृ० १० तथा २२) अवतार-वाद की ही पृष्ठभूमि से राम मे पुन पधारने की वह कातर पुकार की गई है जो त्रेता से ही आरभ हो गई थी। राम के पुन प्रकट न होने के ही कारण कवि की 'हुकार', 'चीत्कार' बन बैठी। 'हिमकिरीटिनी' की 'सिपाही' शीर्षक कविता में देश के सैनिक को रामराज्य स्थापित करने के लिए भूमडल पर त्रेता खीच

लाने को कहा गया है। राम के पतित पावन रूप पर विशेष बल दिया गया है। वैष्णव भक्ति की इस विशेषता का अत्यन्त समर्थ स्वरूप भागवत मे उपलब्ध होता है जो मध्यकाल के भक्ति साहित्य की, अखिल भारतीय स्तर पर, प्रधान प्रेरक कही जा सकती है। भागवत के इस रिक्थ को सबसे अधिक सफलता के साथ 'मानस' मे तुलसी ने अवतरित किया है और गाधीजी ने सभवत उनसे 'रामराज्य' ही नही 'हरिजन' शब्द भी ग्रहण किया है, भले ही उन्होने युग-सदर्भ, नैतिक शासन और अछूतोद्धार की भावना के अनुरूप इनको नया अर्थ देते हुए नव सस्कार कर दिया हो। चतुर्वेदीजी ने गाधीजी और उनके साहित्य के अतिरिक्त उक्त ग्रन्थो से सीधे प्रेरणा ग्रहण की है तथा कविरूप मे निजि दृष्टि का विकास किया है। राम और कृष्ण के व्यक्तित्व मे उन्होने वैसा ही अभेद माना है जैसा मानसकार और भागवतकार को तथा उनके पूरे युग को अभीष्ट था। राम को आदर्श चरितनायक मानने वाले गाधीजी का 'मोहन' का श्लेषार्थ से कृष्ण रूप मे ग्रहण किया जाना इसकी स्वाभाविक परिणति कहा जा सकता है। जजीर पहने कृष्ण को रिझाना, जालिम के माँगने पर खुशी से सिर चढाना और 'भारत के सत पर' मोहन के मत पर' 'जीवन का व्रत' निबाहते हुए चलना (माता, पृ० ५४, 'प्रवेश' शीर्षक कविता) सब कुछ एक ही शृखला मे निबद्ध है, एव एक ही प्रतिमान की तरह मान्य दिखाई देता है। जेल मे प्रवेश पा जाने के बाद भी यह भाव प्रवाह मद-प्राण नही हुआ। वहाँ के कष्ट, अपमान, हिंसा और क्रूरता सभी के विरुद्ध आस्था की एक अटूट चट्टान की तरह वैष्णव आस्था और उससे प्रेरित कृष्णार्पित जीवन खडित तथा शुष्क नही हुआ। उसमे न आत्महत्या का भाव आया और न पलायन की प्रवृत्ति जो आज के युग मे कुत्सित विदेशी प्रभाव से पल्लवित होती दिखाई दे रही है, 'चरण समझते हुए सीखचो पर मैं शीश झुकाता हूँ' की भावना १९२१ मे बिलासपुर जेल मे लिखी गई 'पूरी नही सुनोगे तान' शीर्षक उपालभ भरी कविता मे व्यक्त हुई है और 'समर्पण' नामक सग्रह मे पुनः यही भावना उसी जेल के वातावरण मे इससे भी सशक्त रूप मे, छद के अन्तिम चरण मे प्रकट हुई है

सीखचो मे घूमता हूँ, चरणो को चूमता हूँ
सोचता हूँ मेरे इष्टदेव पास बैठे हो

नितान्त आधुनिक युग मे उनकी यह अभिव्यक्ति भी पुरानी और अतिशय भावुकतापूर्ण कही जाएगी। पर जिस समय वे लिख रहे थे, यही सत्य थी और इसी के द्वारा पिछले युग से आगे जाने का मार्ग खोजा जा रहा था। कारागार मे जन्म लेने वाले कृष्ण, कारागार वासी को सब कुछ सहकर अपने लक्ष्य पर अडिग रहने की प्रेरणा देते रहे। 'कैदी और कोकिला' कविता द्रष्टव्य है। कृष्ण-भक्ति ने नितान्त नयी राजनैतिक स्थिति मे भी अपनी जीवन्त अभिव्यक्ति का मार्ग खोज ही लिया,

जिसका 'प्रभु' जेल मे पैदा हुआ हो उसे जेल जाने मे संकोच और भय क्यो हो, यह तर्क कोरी भावुकता ही नही वास्तविकता की कसौटी पर भी खरा उतरा।

बलिपथी से 'हिम-किरीटिनी' का कवि कहता है

मत व्यर्थ पुकारे शूल-शूल
कह फूल-फूल, सह फूल-फूल,
हरि को ही-तल मे बन्द किए,
केहरि से कह नख हूल हूल।
भूखंड बिछा, आकाश ओढ,
नयनोदक ले, मोदक प्रहार,
ब्रह्माड हथेली पर उछाल,
अपने जीवन धन को निहार।

उसमे जो जीवन-दृष्टि है वह इतनी गहरी है कि अपने आराध्य के मन्दिर की ध्वजा के स्थान पर वह नीव का पत्थर बनकर अपने कधो पर पूरे देवालय का भार वहन करना श्रेयस्कर समझता है

मैं पहला पत्थर मन्दिर का,
अनजाना पथ जान रहा हूँ,
गड़ूँ नीव मे, अपने कधो पर,
मदिर अनुमान रहा हूँ।

स्वार्थ-भावना आत्म-प्रदर्शन का मार्ग अपनाती है और त्याग-वृत्ति आत्मदान का पथ ग्रहण करती है। एक मे हल्कापन है और दूसरे मे गुरुता। भारतीय सस्कृति मेरी दृष्टि से इसी बिन्दु पर अपने को सबसे सशक्त रूप मे व्यक्त करती है और 'एक भारतीय आत्मा' का काव्य उससे पूरी तरह सम्पृक्त दिखाई देता है। 'वनमाली' सबोधन के साथ बिलासपुर जेल मे लिखी गई उनकी सुविख्यात कविता 'पुष्प की अभिलाषा' न केवल माखनलाल चतुर्वेदी के बलिदानी वैष्णव व्यक्तित्व की निष्ठा को प्रकट करती है वरन् उस युग के सम्पूर्ण राष्ट्रीय सघर्ष की चेतना को भी ध्वनित करती है (युगचरण, पृ० ३१)। जयदेव के धीर समीरे यमुना तीरे की स्मृति दिलाने वाली उनकी 'कुज कुटीरे यमुना तीरे' (हिम-किरीटिनी) शीर्षक कविता मथुरा से खडवा जाते हुए लिखी गई है। यह सत्य मुझे प्रतीकात्मक लगता है। मथुरा की सारी रसमयता एक खडवावासी कृष्ण-भक्त चौबे परिवार मे जन्मे कवि के माध्यम से राष्ट्र को अर्पित हो गयी, 'रत्नाम्बर परिधान' जो इस कविता के पहले ही पद्य मे आया है 'मातृभूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की' से समाप्त होने वाली राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की कविता की 'नीलाम्बर परिधान' से आरम्भ होने वाली पक्ति का ध्यान करा जाता है। यह कविता भी उसी तरह भारतभूमि के स्वरूप को आराध्य के

रूप मे प्रस्तुत करते हुए 'नील सिंधु जल-धौत चरण' पर चढकर खो जाने की कामना के साथ समाप्त होती है। मेरी आँखो मे, वर्षो से रोग-शैया पर पडे हुए इस राष्ट्र-समर्पित कवि का चित्र उभर आता है। मन से तो वह कभी का मातृ-भूमि पर अर्पित हो चुका था और निरन्तर उसने अपना व्रत निबाहा, किन्तु अब लगता है वह तन से भी उसकी धूल मे मिल जाना चाहता है, जहाँ से हम खोजने पर भी उसे नही पा सकेंगे।

पुनश्च

उन्ही के स्वर मे उनके प्रति मै भी कहना चाहता हूँ

उठा दो वे चारो कर कज,
समय को लो छिगुनी पर तान,
और मै करने को चल पडूँ,
तुम्हारी मधुर मूर्ति का ध्यान।

माखनलालजी का बलिदानवाद

◇ ○

डा० कमलाकान्त पाठक

दादा पडित माखनलाल चतुर्वेदी की कविता मात्र भावोच्छ्वास या प्रवृत्ति विशेष का अनुवर्तन नही है। उसका अपना पृथक् व्यक्तित्व है। उसे कभी राष्ट्रीय मनोभावना की कविता कहा गया, कभी छायावादी प्रवृत्ति की कविता माना गया और कभी वैष्णव सस्कारो की रचना समझा गया। वस्तुत वह बीसवी शताब्दी की सवेदनाशील भारतीय चेतना की अभिव्यक्ति है। चतुर्वेदीजी प्रखर सवेदनशीलता के कवि हैं। उनकी भावधारा प्रेम, प्रकृति, समाज, राष्ट्रीयता, वैष्णव भावना और रहस्य-जिज्ञासा सबधी विषयो से सपृक्त होती है। पर उसे अव्यवस्थित और विशृखल नही कहा जा सकता। उसमे एकसूत्रता विद्यमान है। कवि का जीवन-दर्शन उसकी भावधारा को एकान्वित रखता है। यह जीवन-दर्शन नाना विषयो से सम्बद्ध होने के कारण स्थूल दृष्टि से वैविध्यपूर्ण ज्ञात होगा, पर कवि का बलिदानवाद या बलि-दर्शन उसे सशक्त आन्तरिक सगति प्रदान करता है।

बलि-दर्शन या बलिदानवाद क्या है ? बलिदानवाद का कोई अपना सुनिश्चित मतवाद नही है। वह अपने लक्ष्य, उद्देश्य या आदर्श के रूप मे कुर्बानी करने की अटूट निष्ठा का विवेक है। साधना की पूर्णता सिद्धि कहलाती है और साधना मे जीवन की मन, वचन और कर्म सबधी सभी क्रियाए एक ही लक्ष्य की ओर उन्मुख होती हैं। इसी भाँति बलि-दर्शन मे किसी महत् साध्य की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया जाता है। इसके अनिवार्य तत्त्व है आदर्श निष्ठा, अपनी कार्य-प्रवृत्ति मे अटूट आस्था, साध्य सबधी अखड विश्वास और भावातिरेक। युद्ध मे जैसे सिपाही लडना और मरना ही जानता है, उसे इधर तर्क-वितर्कों से कोई प्रयोजन नही होता, वैसी ही स्थिति बलिपथी की समझनी चाहिए।

बलिदानी प्रवृत्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था असाधारण होती है। गहरी भावुकता के अभाव मे कोई भी व्यक्ति अपना बलिदान चढाने को तैयार नही हो

पाता। भयजन्य बलिदान मे स्वार्थरक्षा का प्रयत्न होता है, जिसके उदाहरण धार्मिक अधविश्वास के रूप मे पाए जाते है। स्वार्थभावना जितनी न्यून होगी, उसी अनुपात मे बलिदान की भावना महान् होगी। सच्चे बलिदान के लिए स्वार्थ-त्याग अपरिहार्य होता है। अपने व्यक्तित्व को जितना अधिक विस्तृत और अमकीर्ण बनाया जा सकता है, बलिदान का प्रयोजन उतना ही लोक-मगल का विधायक होता है। जो व्यापक हित के लिए अपने व्यक्तिगत राग-द्वेष का विसर्जन या सुख-दुख का परित्याग कर देते है, वे महापुरुष माने जाते है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति या उसकी रक्षा के लिए की गई कुर्बानी बलिदान ही है। चतुर्वेदीजी की भाव-स्थिति बहुत कुछ इसी प्रकार की है। अस्तु, उत्कृष्ट कोटि का बलिदान भयजन्य नही होता, प्रेम-जन्य होता है, स्वार्थ के लिए नही होता, परार्थ के लिए होता है।

भय और लोभ मानव हृदय को सकुचित करने वाले भाव-सवेग है। पर प्रेम और त्याग उसे विराट् मानवता की भाव-चेतना से स्पन्दित रखते है। आशय यह है कि वास्तविक बलिदान इष्ट-प्राप्ति के लिए किया गया आत्मोत्सर्ग है, अनिष्ट-निवारण के लिए की गई हिंसा नही। बलिदान आत्महनन नही है, आत्मोपलब्धि है। जीवन की असफलताओ से विवश होकर जो आत्महत्या करता है वह बलिदान नही माना जा सकता, पर किसी प्राणी की रक्षा करते हुए हो जाने वाला देहपात बलिदान कहलाता है। जीवन को यज्ञ मानते हुए इसी लिए शहीदो या बलिदानियो को हुतात्मा समझा जाता है। मै समझता हूँ कि बलिदानी प्रवृत्ति चारित्रिक औदात्य के लिए होती है और वह अधीरता की परिचायक नही होती क्योकि अधीरता का प्रेरक तत्त्व स्वार्थपरता है।

बलिदानी प्रवृत्ति विशिष्ट मन स्थिति का परिणाम होती है। विसर्जनशील मनोवृत्ति के अभाव मे बलिदान की भावना का उन्मेष तक नही हो पाता। ग्रहणशील मनोवृत्ति से अपने तोष के लिए जो दूसरो की हत्या की जाती है, वह बलिदान नही है। आत्मत्याग की फुलवारी मे ही बलिदान के फूल खिलते है। जिस बलिपथी की भावचेतना जितनी तीव्र होगी और अनुभूति-प्रक्रिया जितनी गहरी, उसका बलिदान भी उतना ही अधिक हृदयस्पर्शी होगा। चतुर्वेदीजी के काव्य मे भावसकुलता ही नही है, भावातिरेक भी है। बलिदान का मूलाधार यही है। इसके वैचारिक और क्रियात्मक पक्ष भी हैं। कार्य-व्यापार के अन्तर्गत इष्ट-सिद्धि के लिए की गई सभी मानसिक या ऐन्द्रिक क्रियाएँ सम्मिलित हैं। इसे इष्ट-लाभ का साधन पक्ष समझना चाहिए, पर यहाँ इष्ट का अर्थ वैयक्तिक हानि-लाभ या सुख-दु.ख नही है, क्योकि बलिदानी अपने सुख के लिए दूसरो को दुख नही देता बल्कि वह दूसरो के सुख के लिए अपने को अर्पित कर देता है। दुख को स्वेच्छया स्वीकार करना महद् उद्देश्य से प्रेरित होने के कारण सतोषप्रद होता

है, कष्टप्रद नही। यही कारण है कि चतुर्वेदीजी की कविता मे 'नाश' त्योहार बन जाता है, 'मरण' ज्वार कहलाता है और बलिपथ सुन्दर जान पडता है। अतएव बलिदानवाद दु खवाद या निराशावाद से अनुस्यूत नही है, बल्कि वह प्रचण्ड आशावाद का परिणाम है। यदि कार्य-सिद्धि मे सशय बना रहेगा तो आत्मोत्सर्ग की तत्परता नही दिखाई पडेगी। कही-कही ऐसे उदाहरण मिलते है कि जहाँ पराजय का निश्चय होते हुए भी हमारे वीरो ने जूझ जाना श्रेयस्कर समझा है। पर उस बलिदान का लक्ष्य विजयी होना न होकर क्षात्र धर्म का पालन करना रहा है। स्वतन्त्रता के हमारे अहिंसक युद्ध मे कई देशभक्त शहीद हुए भी है। वे बलिपथ पर इसलिए नही चले थे कि उन्हे स्वतन्त्र हो आने की आशा नही थी, बल्कि उन्होने कुर्बानी इसलिए दी थी कि प्रत्येक बलिदान देश को स्वतन्त्रता की दिशा मे आगे बढा रहा था। बलिपथी को अपना लक्ष्य इतना प्रिय होता है कि उसके अभाव मे उसे अपनी प्रत्येक साँस बोझिल अनुभव होती है। विरह मे जैसी भावाकुलता प्रेमियो के मन मे पायी जाती है, वैसी ही छट-पटाहट बलिपथी भी अनुभव करता है। चतुर्वेदीजी इसी बलिपथ के कवि है। कहना न होगा कि इस प्रवृत्ति के वे एकमात्र कवि है।

बलिदानवाद की दार्शनिक स्थिति किसी क्रमगत विचारसरणि को लिए हुए नही है। जिस भाँति मानवतावाद सामाजिक हित सबधी विचारधारा को अपनाता है और विविध सन्दर्भो मे उसकी कई परिणतियाँ होती हैं, उसी भाँति बलिदानवाद एक उन्मुक्त जीवन-दर्शन है। अलग-अलग सन्दर्भो मे इसके भी अलग-अलग रूप दिखाई पडते है। निश्चय ही यह व्यापक हित के लिए किए गये स्वात्म-बलिदान का दर्शन है। इसका मूल स्रोत मानवतावाद ही है, पर मानवहित के लिए यहाँ उत्सर्ग की भावना बलवती है और मानवतावाद मे लोकहित की प्रवृत्ति प्रधान होती है। मूल वस्तु एक ही है पर मानवतावाद मे साध्य पक्ष पर बल दिया जाता है और बलिदानवाद मे साधक का पक्ष प्रधान हो उठता है। साधन पक्ष के कार्यक्षेत्र मे दोनो एक रूप हो जाते है।

बलिदानवाद उच्चस्तरीय आदर्श-निष्ठा का परिणाम है। वह आदर्श की सम्प्राप्ति के लिए जीवन के यथार्थ को अपने बलिदानी आदर्श मे बदल देना चाहता है। आदर्शवाद के अभाव मे बलिदानवाद का अस्तित्व ही ढह जाता है। इसके भी अपने विधि-निषेध हैं, जो विवेक-सम्मत होते है। इसके विधि-पक्ष मे प्रेम और त्याग, करुणा और बलिदान, दृढता और कष्ट-सहन, अहिंसा और सदाचार आदि की परिगणना की जाएगी। इसके निषेध पक्ष मे साधन की अपवित्रता और सुविधा, स्वार्थपरता और हिंसा, अनैतिकता और लक्ष्यहीनता, कपट और दुराचार आदि गिने जाएँगे। चतुर्वेदीजी के बलिदानवाद के अन्तर्गत क्रान्ति-कारियों की नि स्ववृत्ति और गाँधी-दर्शन का सात्विक ओज दोनो ही समन्वित हो

गए है, जिन्हे उनकी राष्ट्रीय चेतना अपूर्व रूपछटा दे सकी है। इस प्रकार बलिदानवाद के अन्तर्गत आदर्श मानवतावाद के तत्त्व गाधी-दर्शन से ओत-प्रोत होकर क्रान्तिकारी राष्ट्रीय चेतना के रूप मे प्रतिफलित होते है। ये बलिदानवाद के उपस्कारक दर्शन हैं। आशय यह है कि बलिदानवाद दार्शनिक परिपाटी नही है, वह विशिष्ट जीवन-दृष्टि है, उन्मुक्त और भाव-सवलित। प्रत्येक सन्दर्भ मे उसका रूप और प्रकार परिवर्तित हो सकता है, पर प्राणार्पणा की प्रवृत्ति उसमे अनवरत रूप मे विद्यमान रहती है। वह विवेकसम्मत अनुभूत दर्शन है, जिसमे त्याग की पराकाष्ठा चरितार्थ होती है। भारतीय सस्कृति त्यागपूर्ण जीवनादर्श को काम्य समझती आयी है, अतएव चतुर्वेदीजी का बलिदानवाद इस शती की राष्ट्रीय और सास्कृतिक चेतना का ही मनोज्ञ परिणाम है। औरो के सुख के लिए अपने सुख का परित्याग करना वस्तुत मानव जीवन का अवदात्त रूप है और उत्कृष्ट मूल्य भी।

इस बलिदानवादी जीवन-दृष्टि की परम्परा क्या है और उसका स्रोत कहाँ है? बलिदान विषयक विचारणा का उद्गम अध्यात्मवाद मे खोजा जा सकता है। आत्मा की खोज मे तभी सफलता प्राप्त होती है, जब लौकिक चेतना नि शेष हो जाय। आत्मद्रष्टा वहाँ जागता है जहाँ ससार सोता है और जहाँ ससार जागता है वहाँ वह सोता है। आशय यह है कि जगत् की सत्ता जब तक सत्य जान पडती है तब तक आत्मा का दर्शन या साक्षात्कार नही होता। अपने जागतिक अस्तित्व का बलिदान कर दिया जाय तो आत्मा अपने आप मे सुस्थिर दिखाई पडती है। मनुष्य का नाम-रूप भेद-बुद्धि पैदा करती है और आत्मा का अपार्थिव रूप-अभेद का बोध कराता है। अतएव एकता की प्रतीति के लिए अनेकता की असत्यता पर विश्वास आवश्यक होता है। इस प्रकार आत्म-सिद्धि के लिए संसार की असारता का बोध आवश्यक होता है। ममत्व का बलिदान कर दिया जाए तो सत्य की सप्राप्ति हो जाती है। जिस प्रकार ममत्व का विनाश सत्य को सुलभ कर देता है, उसी प्रकार उद्देश्य विशेष के लिए किया गया बलिदान अभीष्ट सिद्धि मे सहायक होता है। त्याग का सर्वोच्च्य रूप होता है बलिदान। अतएव बलिदानवाद का मूल स्रोत है अध्यात्मवाद की साधन-प्रक्रिया।

विषय और भाव के विभेद के कारण बलिदान के रूप और प्रकार भिन्न-भिन्न है। अध्यात्म-साधना मे वह ममत्व का नाश है और दाम्पत्य प्रेम के क्षेत्र मे वह सहमरण की प्रवृत्ति है। स्वधर्म की रक्षा के लिए समाज मे नाना प्रकार के बलिदान होते ही रहे हैं। क्षात्र धर्म की रक्षा के लिए मध्ययुग मे अनेक युद्ध लडे गए। बलिदानी सच्चा वीर होता है। वह मृत्यु के मुख मे सोत्साह और सहर्ष पैठता है। उसका साहस और धैर्य अतुलनीय होता है। बलिदान की भावना सदैव वीरत्व-व्यजक होती है। यह अलग बात है कि यह वीरत्व युद्धक्षेत्र में ही न

दिखाई पडकर धर्म, कर्म, दान और दया के क्षेत्र मे दिखाई पडे अथवा प्रेमोपासना या ज्ञानयोग के क्षेत्र मे ।

हमारा सन्यास मार्ग सासारिक अस्तित्व का निषेध या बलिदान करने की भावना पर सस्थित है। ज्ञानियो और योगियो ने माया के समस्त प्रसार से अपने को मुक्त रखने का प्रयास किया है। उन्होने जहाँ कचन और कामिनी के परित्याग की बात कही है, वहाँ अहकार का विनाश भी आवश्यक माना है। बलिदान की परम्परा को व्यापक परिवेश मे समझने के लिये हिन्दी के मध्ययुगीन काव्य के कुछ उदहरण द्रष्टव्य है। सत कबीर का कथन है

"आपा मेट्याँ हरि मिले, हरि मेट्या सब जाई।
अकथ कहाणी प्रेम की, कहया न को पत्ययाई।।

और अपनी प्रखर शैली मे निर्देश किया है

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाहि।
सीस उतारे हाथ करि, सौ पैठे घर माहि।।

यहाँ कबीर अहकार-जन्य भेद-बुद्धि का बलिदान करने की बात बलपूर्वक कहते है। प्रेम की पीर के सूफी कवि जायसी की लौकिक चारित्र्य सृष्टि नागमती इसी प्रकार की त्याग-भावना को अभिव्यक्त करती है। यह लौकिक प्रेम का क्षेत्र है, माधुर्योपासना का नही। यथा :

यह तन जारौ छार के, कहो कि पवन उडाव।
मकु तेहि मारग उडि परै, कत धरै जहँ पाव।।

चतुर्वेदीजी की 'पुष्प की अभिलाषा' मे इसी प्रकार की उत्कट बलिदान-भावना व्यजित हुई है

मुझे तोड लेना वनमाली, उस पथ मे देना तुम फेक।
मातृभूमि पर शीश चढाने जिस पथ जाए वीर अनेक।

भक्ति के क्षेत्र मे प्रपत्ति का विधान है और वहाँ एकनिष्ठता, प्रेम-व्रत और शरणागति को अनिवार्य माना गया है। तुलसीदास ने अपने प्रेम का आदर्श चातक को माना है और उसके प्रेम-व्रत का ही नही उसकी आन का भी महत्त्व विज्ञापित किया है। बलिदानी या बलिपथी के जीवन मे ऐसी ही आन का विशेष महत्त्व रहता है। सूर की गोपियो का सम्पूर्ण आत्मसमर्पण, मीरा का तैल-धारावत् प्रेम और तुलसी की दास्य-भक्ति इष्ट को सर्वोपरि मान लेने के उदाहरण हैं। बलिपथी भी अपने सकल्पित अभीष्ट का एकमात्र अस्तित्व स्वीकार करता है और उसके लिए भक्तिमार्गियो की भाँति वह सर्वस्व त्याग करने के लिये तत्पर रहता है। आशय यह है कि बलिदान की भावना अध्यात्म-साधना, भक्ति भावना और प्रेम के क्षेत्र मे निरन्तर सक्रिय रहती आयी है। लौकिक और आध्यात्मिक सभी क्षेत्रो मे, त्याग और बलिदान की भावना श्रेयस्कर समझी जाती है।

बलिदान की प्रवृत्ति आदर्शवाद के क्षेत्र की वस्तु है। जीवन के किसी भी क्षेत्र मे किसी भी विषय और तत्सम्बन्धी मनोभावना से सबधित होकर वह सक्रिय हो सकती है। अवश्य ही लौकिक या आध्यात्मिक प्रेम के क्षेत्र मे इसका विशेष प्रसाद दृष्टिगत होता है। चतुर्वेदीजी ने इसी परम्परागत भावधारा को देशभक्ति की प्रवृत्ति के साथ सगृहीत करके एक नया काव्यास्वाद उत्पन्न किया है। उन्होने भारतीय वीरत्व के आदर्श और आत्महारा प्रेम की सर्वस्व समर्पण की प्रवृत्ति को नए सन्दर्भ मे एक साथ ग्रहण किया है। उन्होने गुरु-भक्ति को नेता सम्बन्धी वीरपूजा की भावना मे पर्यवसित कर लिया है। इस प्रकार चतुर्वेदीजी वीर काव्य, लौकिक प्रेम काव्य और भक्ति काव्य, तीनो का अपने बलिदानवाद मे समाहार कर सके है। यहाँ बलिदान के तत्त्वो की परम्परा के परिप्रेक्ष्य मे चतुर्वेदीजी के अभिनव जीवन-दर्शन को समझने का प्रयास हुआ है।

बलिदान की प्रवृत्ति असाधारण मन स्थिति का परिणाम है। इसके अन्तर्गत प्रेम की उत्कटता और उत्साह की अनवरुद्ध त्वरा सम्मिश्रित होती है। उत्साहभरा प्रेम या प्रेमोत्साह बलिदान वृत्ति का विधायक होता है। शास्त्रीय दृष्टि से यह वीर और शृगार रस का एकान्वय है। वीरपुष्ट शृगार रस की अभिव्यजना भारतीय प्रबन्ध-काव्यो मे होती रही है, जिसकी यह अभिनव परिणति है। बलिपथी का प्रेम और वीरत्व उसे प्रेम वीर बना देता है। सूत्र रूप मे चतुर्वेदी-जी का बलिपथी कलाकार प्रेम वीर का व्यक्तित्व लिए हुए है। इसी कारण उनके भाव सवेग सर्वत्र सरल और आकुलता-भरे दिखाई पडते है। वीरत्व की प्रवृत्ति उन्हे विलक्षण जीवनोत्साह से अनुप्राणित रखती है। उनकी कविता मे इसी कारण ताजगी या सद्यता मौजूद है। उनकी हर रचना सद्य प्रस्फुटित लाल गुलाब की तरह है, जिसमे समर्पणशील उत्साह की लालिमा ही नही, प्रेम की कोमलता और शबनम की पवित्रता भी है। कवि का प्रेमोत्साह नित्य नई वस्तुस्थिति के प्रति आकर्षित होता है और वह बासी नही पड पाता। चतुर्वेदीजी ने पिछले साठ वर्षों मे प्रत्येक नए वर्तमान से प्रेरणा ग्रहण की है और वे उसका ललक के साथ स्वागत कर सके है। पर उन्होने किसी भी क्षण अपने बलिदानी जीवन-दर्शन का परित्याग नही किया। अतएव वे लगातार विकासशील होते हुए और नित्य नवीन विषयवस्तु को स्वीकार करते हुए भी अपने मूल दर्शन से कही पृथक् नही हुए। चतुर्वेदीजी के कवि-व्यक्तित्व का यह अन्त' सगठन महान कवियो की श्रेणी मे उनका स्थान निर्धारित करता है। भावुकता का अतिरेक और नैरतर्य उन्हें नवीनता के साथ सम्बद्ध रखता है। उनकी बलिदान की प्रवृत्ति का स्रोत यही भावातिरेक है। इसी के कारण वे एक ओर अन्तर्मुख प्रवृत्ति के कवि बन जाते हैं और दूसरी ओर न अपनी अभिव्यक्ति को सवारने की चिन्ता करते है और न अपनी कल्पनाछवियो को अनावरित करने का यत्न। परिणामतः उनका काव्य

साकेतिक, गूढ और मार्मिक बन जाता है। उनकी कविता पढकर या सुनकर हमारा ध्यान अर्थ, शब्द, छन्द या अलकार पर नही जाता, ऐसा जान पडता है कि वह सगीत की ध्वनि तरग की भाँति भाव विशेष की सचेतन गूँज हो, जो मनोवेश को अभिभूत कर रही है।

यह निवेदन किया गया है कि बलिदान की प्रवृत्ति सामान्य मनः स्थिति का औसत अनुभव नही है। यह विशिष्ट भाव दशा है, जिसे भावयोग की समकक्ष वस्तु समझना चाहिए। इस प्रवृत्ति को देखकर हमारे यथार्थवादी विचारको, समाजशास्त्रियो एव मनोविश्लेषको को विस्मय ही हो सकता है, पर इसका प्रभाव भी अचूक होता है। बलिदानवादी कविता न केवल स्वार्थपरता का निवारण करती है, बल्कि वह स्फूर्तिप्रद एव प्राणोदयकारिणी भी होती है। चतुर्वेदीजी की कविता ही प्रेरणादायिनी नही है वरन् उनका व्यक्तित्व भी हमारे राष्ट्रीय, साहित्यिक और सामाजिक जीवन मे प्रेरकशक्ति सिद्ध हो सका है। चतुर्वेदीजी की कविता का मेरुदड यही बलिदानवाद है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए चतुर्वेदीजी ने प्रगति काव्य-शिल्प को अपनाया है। वे प्रबन्ध कवि नही, गीति कवि है। उनकी काव्य-कला वस्तुनिष्ठ नही है, आत्माभिव्यजक है। राष्ट्रीय सास्कृतिक धारा के कवियो से उनकी काव्य-कला इस कारण पृथक् जान पडती है कि वह वस्तुनिष्ठ रचनाकार्य नही है। मैथिलीशरणजी प्रबन्ध कवि है और नवीनजी तथा दिनकर-जी की राष्ट्रीय कविता उनकी अपनी प्रेमगीतियो की मनोदशा से पृथक् भावभूमि की सृष्टि है। चतुर्वेदीजी के काव्य मे व्यक्तिगत प्रेम और राष्ट्रीय चेतना की प्रवृत्ति एक-दूसरे मे घुल-मिल गई है। अपनी विषयवस्तु के कारण फिर भी चतुर्वेदीजी राष्ट्रीय कवि ही है। इसी भाँति प्रगीत काव्य-शिल्प को अपनाते हुए भी वे छायावादियो की भाँति वैयक्तिक सीमाओ के कवि नही रह पाए। राष्ट्रीय कवि होते हुए भी वे स्वच्छन्द प्रवृत्तियो के कवि हैं, नैतिक मर्यादाओ के कवि नही। हमारे यहाँ चतुर्वेदीजी की कविताओ को कभी छायावाद के खाते मे डालकर देखा-परखा गया है और कभी राष्ट्रीय सास्कृतिक धारा के खाते मे उनका मूल्याकन हुआ है। वस्तुत वे दोनो धाराओ के सयोजक बिन्दु है। पौराणिक रूपक दे तो उन्हे गाधी युग की त्रिवेणी कह सकेगे। उत्थानशील राष्ट्र की युग-चेतना चतुर्वेदीजी के काव्य मे आत्मभिव्यजना का सौंदर्य-शिल्प लिए हुए है।

इस बलिदानवाद की चतुर्वेदीजी के काव्य मे विषयवस्तु तथा भावस्थिति के पृथक्-पृथक् सन्दर्भों मे जैसी अभिव्यक्ति हुई है, उसका धारावाहिक विवरण उपस्थित किया जाना उपादेय जान पडता है। चतुर्वेदीजी की दृष्टि मे साहित्य-चिन्तक का यह उत्तरदायित्व है कि वह "पुरुषार्थ को दोनो हाथो मे लेकर जीने का खतरा और मरने का स्वाद अपनी पीढी मे बोए।" वे समझते हैं कि साहित्य-

कार अपने लिए न जिए, दीन-दुखियो के लिए, भूखे प्यासे-गरीबो के लिए क्रान्ति मचा दे। वे कवि को मूलत विद्रोही मानते है, जो रूढियो का अनुकरण नही करता, बल्कि अपना मार्ग आप बनाता है। सुख, प्रेम और कर्तव्य, प्रणय, प्रलय तथा त्याग और बलिदान को साहित्यकार एक साथ अपनी कलम की नोक पर रख देता है। इन्हे वह प्रकट ही नही करता, बल्कि अपने जीवन मे जीता भी है। उनका यह आत्म-परिचय इस प्रसग मे विशेषत द्रष्टव्य है

सूली का पथ ही सीखा हूँ,
सुविधा सदा बचाता आया।
मै बलि-पथ का अगारा हूँ,
जीवन ज्वाल जलाता आया।

तथा

एक फूँक मेरा अभिमत है,
फूँक चलूँ जिससे नभ जल थल।
मैं तो हूँ बलिधारा पथी,
फेक चुका कब का गगाजल।

वे अपने बलिदान को राष्ट्र के स्वातन्त्र्य मदिर की नीव का पत्थर मानते है और कहते है कि, "मरण और सपनो मे होती है मेरे घर होडा-होडी।" इस मन - स्थिति का निर्माण परतन्त्रता के वातावरण मे हुआ है। सिपाही, विद्रोही, देश-भक्त और प्रेमी के रूप मे वे इसी बलिदान की अभ्यर्थना करते है। उन्हे नाश का त्योहार सर्वाधिक प्रिय है और वे "शूल के अमरत्व पर बलि फूल के मैंने चढाए" के सम्बन्ध मे कभी आगा-पीछा नही सोचते। उनकी 'बलिपथी से' शीर्षक षट्-पदी हथेली पर ब्रह्माड को उछालते चलने की प्रेरणा देती है। जवानी को वे 'मरण का त्योहार' मानते हैं और स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर शीश चढाने को उसकी कृतकार्यता समझते हैं। 'मरण ज्वार' मे उनकी इतनी प्रबल आस्था है कि वे प्रहार-रहित बलिदान से प्राप्त जीत या हार को स्वीकार ही नहीं करना चाहते। 'हिम-तरगिनी' और 'माता' मे उन्होने राष्ट्रीय कार्यकर्ता की कतिपय अनुभूतियो को बलिदानवादी दृष्टिकोण से अभिव्यक्त भी किया है।

कला को बलि ही नही, वे बल भी मानते हैं, क्योकि उनके लिए वह 'सकटो की शत-शत तहो के बीच उत्थान के अतिरिक्त और पतन के प्रारम्भ के बीच की झीनी रेखा की तरह उल्लासमयी सुकोमलता का आविष्कार है।' तभी उनका बलिदानी दर्शन उसी भाँति स्वतन्त्र भारत मे भी सक्रिय दिखाई पडता है जिस भाँति वह स्वतन्त्रता की उपलब्धि के पूर्व सचेष्ट था। अब कश्मीर 'मधुर बलि प्राण पूजा' को माँगता है। वे कृषि, दारिद्र्य और काले बाजार को विस्मृत या नजर-अन्दाज नही कर पाते। उन्हे प्राण का शृगार वहाँ दिखाई पडता है, जहाँ

काल की झकार होती है। उन्हे चढाए हुए मस्तक काली के नूपुर-नाद या बलि के प्रसाद जान पडते है। सीमा-सकट को लक्ष्य कर वे कहते है :

"देश के सूच्यग्र पर कुर्बान हो उठती जवानी,
देश की मुस्कान पर बलिदान राजा और रानी।"

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को लक्षित करके वे 'रचो बलि-पथ सुहाने' का सदेश देते है, अन्यथा विश्व की हाट मे हमारे प्राण तक बिक जाएँगे। स्वतन्त्र देश को कर्तव्य-बोध कराते हुए उनका कवि कहता है

"तीस करोड धडो पर गर्वित उठे तने ये सिर,
तुम सकेत करो कि हथेली पर शत-शत हाजिर।"

और स्वतन्त्रता की सुरक्षा के लिए उसका निर्देश है .

"मिले रक्त से रक्त मने अपना त्योहार सलौना,
भरा रहे अपनी बलि से माँ की पूजा का दोना।"

चतुर्वेदीजी के लिए बलिदान निर्माण की भूमिका है। वे बाँधो और कार-खानो के निर्माण मे लगे हुए देश से पूछते है

"पूछ रही खेतो मे आजादी की यही घडी है,
क्या पूरे हो गए तुम्हारे प्राण-दान सकल्प ?"

२६ जनवरी उनकी दृष्टि मे 'बलिदान काव्य का वह मधुर छन्द है जिसमे स्वतन्त्रता साकार हुई है। उनके बलिपथ मे हृदय की विवशता कोई व्यवधान उपस्थित नही कर पाती। वे समझते है कि युग-नारी के हाथ मे प्रलय-गीत और युग-पुरुष के हाथ मे मातृभूमि के गौरव की लालिमा है। बलिदान की भावना को वे मरण-ज्वार कहते है, जिसके अभाव मे रक्त बेस्वाद अर्थात् पानी हो जाता है। इसलिए वे सकल्प और समर्पण को महत्त्व देते है, सफलता और सिद्धि को नही। यथा :

"सिद्धि दासिया पीछे-पीछे, चले समर्पण आगे-आगे।"

वे बचाव या विश्राम को मृत्यु का अवमूल्यन समझते हैं। स्वतन्त्रता का जो सिपाही बलिदान को अपना अतिम साध्य मानता है उसका यह स्वरूप है

"सिर पर प्रलय, नेत्र मे मस्ती, मुट्ठी मे मन चाही,
लक्ष्य मात्र मेरा प्रियतम है, मैं हूँ एक सिपाही।"

चीन द्वारा भारतीय सीमाओ के अतिक्रमण की घटनाएँ कवि की अन्तश्चेतना मे उथल-पुथल मचा देती हैं और वह वृद्ध, रुग्ण किन्तु चिरतरुण कवि पुन आग उगलने लगता है। वह प्रण से मतवाले बलिपथी को यह कहकर उद्बुद्ध करता है कि सीमा सिरवालो को खोज रही है। चतुर्वेदीजी बलिपथी की जीवन-धारा मे रक्त प्रवाहित करते रहने की अनवरत आवश्यकता का अनुभव करते हैं और प्रस्तुत युद्ध मे बल और बलि की उभय धाराओ का सगम कराना चाहते है। यह

अन्तर द्रष्टव्य है कि जहाँ हमारी स्वतन्त्रता की लडाई अहिंसक थी, बल के साथ बलिदान का सघर्ष था वहाँ अब स्वतत्रता की सुरक्षा के लिए बल और बलिदान दोनो की एक साथ आवश्यकता है। इस सन्दर्भ मे लिखी गई उनकी 'चलो सजाओ सैन्य' रचना आवेशकारी सशक्त उद्बोधन है

"बूढो की क्या बात
युगो की तरुणाई के दिन आए हैं"

यह स्वानुभूति उन्हे यह कहने को विवश करती है

"गगा माँग रही है मस्तक
जमुना माँग रही है सपने,
आज जवानी स्वय टटोले,
सिर हथेलियाँ, अपने-अपने।"

और उनका यह सदेश है

"चलो सजाओ सैन्य,
समय की भरपाई के दिन आए है।
आज प्राण देने के,
युग की तरुणाई के दिन आए हैं।"

इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि चतुर्वेदीजी की अकुठित बलिदान-भावना परतन्त्रता और स्वतन्त्रता के तथा जन-कल्याण और सीमा-सुरक्षा के विविध घटना-प्रसगो या वस्तुस्थितियो मे समान रूप से प्रखर, समुन्नत और अनाविल रही है। उन्होने समझौते को महत्त्व न देकर सकल्प, कर्त्तव्य और त्याग को श्रेयस्कर समझा है।

प्रेम और बलिदान के मध्य कवि को प्रणय की अपेक्षा प्रलय ही काम्य है, यथा

"प्रणय-पथ मिलने लगे अब प्रलय-पथ से दौड,
सूलियो पर ऊगने मे युग लगाए होड।।"

और उसने, 'युग और तुम' के विषय मे लिखा है

"तुम कहते हो बलि से पहले अपना हृदय टटोलो।
युग कहता है क्रान्ति-प्राण! पहले बधन तो खोलो।।"

वह जानता है कि बिना प्रेम के बलिदान झूठा पड जाता है। यथा

"प्रणय से मीठी मधुर जब बेडियाँ झकार उठी।
सूलियो ने माँग भरकर कहा जी मे प्यार घोलो।।"

उसकी दृष्टि मे रोटियो का राग गाने वाले प्राणो को बचाकर अपने पूर्वजो के गीतो को झुठलाते हैं। वे बिस्तर की लाश है, बलिपथी नही। 'उधार के सपने' का राजा राष्ट्र का नेता ही है, जिसकी एक-एक बोली पर सौ-सौ सिर न्योछावर

होते है। उसे कवि 'युग-पुरुष' के रूप मे 'कृति की नव आशा', 'यशोविभूति', 'प्रेरणा की अभिलाषा' और 'युग की अमर साँस' मानता है जिसकी 'तान की मरोर' पर

"शीश की लहर उठे, फसल की, एक शीश दे,
पीढियाँ बरस उठे, हजार शीश-शीश ले ॥"

कर्तव्य पथ से डिगानेवाली अश्रुभरी आँखो को देखकर कवि कहता है

"बलि होने मे, वज्र हृदय हो,
करती लख खीचातानी ।
राष्ट्रदेवि! करने आई हो,
क्या मुझको पानी-पानी।"

कवि को दाम्पत्य जीवन मे भी बलि-प्रवृत्ति ही प्रेयस जान पडती है। 'मै नही बोली कि वे बोला किए' मै वह कहता है :

"समय सूली-सा टँगा था,
बोल खूँटी से लगे थे।
मरण का त्योहार-सा था सखि,
भाग जीवन-धन जगे थे ॥"

विवाह को कवि सर्वस्व का दान मानता है क्योकि बेटी की बिदा को उसने आत्मसमर्पण ही कहा है। कवि ने अपने समग्र व्यक्तित्व को इन पक्तियो मे अभिव्यक्त किया है

"उनके सपने हरियाता, मेरी सूझो का पानी
मुझसे बलि-पंथ हरा है, मुझ पर दुनिया दीवानी ॥"

इसीलिए सूली पर चढना उसका जीवनोत्सव है, मौत की बेला को वह त्योहार मानता है और उसकी बेला प्रलयकर होती है। व्यावहारिक जीवन का मार्ग भूल जाने पर ही बलि के फूलो को खिलाने वाला उसका अभिनव स्वप्न सुस्पष्ट होता है।

कवि प्रकृति सम्बन्धी कविताओ मे भी इसी प्रवृत्ति को अपनाता है। यथा—

"पहाडो की किस्मत मे बलिदान लिखकर,
नदी बह पडी थी जकडकर, बिलखकर
गरम रक्त था, पीढियाँ जग रही थी
कि बाजी खुले प्राण की लग रही थी।"

अन्यत्र उसने कहा है कि मनुष्य सिर चढाने मे संकोच करता है पर वृक्ष फूलो को फेंक देते हैं। आत्मसमर्पण मे मानवीय विश्वास की न्यूनता ही इसका कारण है जो बौनी प्रभुता या अर्पण की चुप्पी से पैदा होती है। कवि की दृष्टि मे प्रतिभा सुविधा का मार्ग नही अपनाती, इस कारण कृतिमय जीवन उत्सर्गशील होता है।

पचमढी के 'बिग फाल' को देखकर उसे झरने के बलि-व्यापार की अनुभूति होती है। यथा

"ठडा रक्त स्नेह, वसुधा पर बहा उठे हो पानी,
तुम बलिदान-पंथ के यात्री, यह धारा कल्याणी।
किसकी चरण धूलि हो, किस पर बरस बरस छाए हो,
कौन बुलावा आया है, दौडे से क्यो धाए हो ?"

कवि ने अपने बलिदानवाद की दार्शनिक भूमिका इस प्रकार स्पष्ट की है·

"उसकी ही रचना को उसको ही दान करे,
स्वर मे सगीत रहे, कृति मे बलिदान भरे।
उठना ही दर्शन का दर्शन अभिराम रहे,
गिर पडना, गति का, हँस उठो यो प्रणाम रहे।"

चतुर्वेदीजी का बलिदानवाद मात्र उनकी रचना-प्रवृत्ति नही है बल्कि उनका समग्र जीवन-दर्शन है। मैं किसके लिए लिखता हूँ, प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होने कहा है, "शृगार की परम सुकोमलता और आकर्षणशीलता जब मेरी आस्थाओ को गुदगुदा उठती है तब मै उसे कभी देश पर और कभी देव पर और कभी मानव पर और कभी प्रभु पर चढाने का मोह सवरण नही कर सकता। किन्तु जिस तरह गुलाम अपने लिए आजादी नही चाहता, उसी प्रकार अपने प्रभु के सम्मुख खडा होकर शब्दो पर अनेक प्रकार के आरोप करके भी मैं समर्पण के क्षेत्र मे शब्दो, ग्रथो, प्रेरणाओ, काव्यो मे भाषा अथवा कृति के साथ किसी प्रकार की दुर्गन्ध न तो पैदा करना चाहता हूँ, न उसे सह ही सकता हूँ।" कवि का अभिप्रेन यही है कि वह शृगार का या देशभक्ति का ही कवि नही है, वह समर्पण का कलाकार है या बलिदानवादी कवि है। वह एक तरफ विश्व के प्रलयकर परिवर्तनो और दूसरी तरफ व्यक्ति विशेष के मनोन्मेषो को एक-दूसरे का पूरक समझता है, परस्पर-विरोधी व्यापार नही। उसका कथन है, "एक कवि के रक्त की पहचान और सिर का दान माँगती है और दूसरी वस्तु मे समा सकने के कोमलतर क्षणो मे उच्चतर समर्पण का सबूत चाहती है। एक कवि का निश्चय है और दूसरी कवि की अनुभूति बनकर रहना चाहती है। इनमे विषमता कहाँ है !" कवि का यह वक्तव्य डा० नगेन्द्र के इस कथन की पुष्टि करता है· "प० माखनलाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्व मे मधुर कवि और ओजस्वी सैनिक एक आलिगनपाश मे आबद्ध है, उनमे भावुक नारी और कर्मशील पुरुष का सयोग है।"

चतुर्वेदीजी की कविता को राष्ट्रीय काव्य, प्रेम काव्य, रहस्यवादी काव्य, प्रकृति प्रेममूलक काव्य, भक्ति-काव्य, व्यग्य-काव्य, वात्सल्य सम्बन्धी रचनाएँ और प्रगति तथा प्रयोग विषयक काव्य के रूप मे वर्गीकृत किया जाता है। वस्तुत यह काव्य-विषयो या रचना-प्रवृत्तियो को लक्ष्य मे रखकर किया गया विभाजन

है। इसे काव्याध्ययन का उपक्रम समझना चाहिए, कवि के अतरग सौन्दर्य को समझने का प्रयास नही। कवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी भावुक प्रेमी है और अनन्य देशभक्त। वे अन्तर्मुख कवि है और बहिर्मुख जीवन-द्रष्टा। वे भगवत् भक्त है और प्रकृति-प्रेमी कवि। वे रहस्योन्मुख जिज्ञासु है और राष्ट्रीय जीवन के क्रान्ति-विधायक। वे योद्धा, प्रेमी और भक्त एक साथ है। उन्हे दाम्पत्य जीवन और बाल-क्रीडाओ मे जितनी आसक्ति है, उतना ही उनका ईश्वर की आराधना मे अनुराग है। इस विषय-वैविध्य के मूल मे कवि का भावनाशील प्रेमी व्यक्तित्व सस्थित है। वह अन्तर्मुखी वृत्ति का कलाकार है जिसमे बाह्य और आभ्यतर जीवन तथा विषय-वस्तु की विविधता न केवल एकसूत्रता मे आबद्ध हो जाती है, वरन् वह एक ही भावधारा की अभेदमयी सत्ता को अभिव्यक्त भी करती है। भावस्थिति के अभेद के कारण उपर्युक्त बाहरी विभेद महत्त्वशून्य हो जाते है। किसी कवि को समझने के लिए स्थूल वर्गीकरण की अपेक्षा उसके सूक्ष्म भाव-सवेगो का परिज्ञान पर्याप्त होता है। आशय यह है कि चतुर्वेदीजी प्रेम नामक मनोवृत्ति के अन्तर्गत कवि है। इस प्रेम को उन्होने अतिशय विशद बना लिया है और उसे आन्तरिक विवशता की कसौटी पर परखा है। इसी प्रेम को उन्होने एक नई अर्थदीप्ति दी है। उनके प्रेम-दर्शन को ही उनका बलि-दर्शन या बलिदानवाद कहा जा सकता है। इसे सर्वस्व-समर्पण, प्राणार्पण, बलिदान या आत्मोत्सर्ग का पर्यायवाची समझना चाहिए। प्रेम की उत्कटता कवि को साहसी बना देती है। वह अपने सकल्पित इष्ट पर न्योछावर हो जाने मे अपनी कृतकार्यता या अस्तित्व की सार्थकता मानता है। इसीलिए चतुर्वेदीजी का कवि-व्यक्तित्व प्रेम-वीर के आदर्श को चरितार्थता प्रदान करता है। उनका वीरत्व प्रेम का मुँह नही जोहता, वरन् उनका प्रेम वीरत्व का अनुसरण करता है। अभिप्राय यह है कि उनकी भावधारा जीवन-दर्शन अथवा आदर्श-निष्ठा की अनुगामिनी है। इसी आधार पर उनके सामाजिक व्यग्यो और नए काव्य-प्रयोगो को नई कविता की यथार्थतावादी परिणतियो से पृथक् किया जा सकता है। अपनी तीव्र भावुकता और अनन्य सकल्पनिष्ठा तथा समग्र रूप मे प्रेम-वीर का कवि व्यक्तित्व सुस्थिर रख पाने के कारण वे हिन्दी साहित्य के अद्वितीय कवि सिद्ध होते हैं। उन्होने जीवन के कडुवे और मीठे हर क्षण को प्यार किया है। अपनी स्वल्प जानकारी के आधार पर मैं कहूँगा कि स्वदेश या विदेश की किसी भी भाषा मे मुझे इस प्रवृत्ति और बलिदानवादी दर्शन का ऐसा कवि नही दिखाई पडा, जिसकी तुलना चतुर्वेदीजी से निर्भ्रान्त होकर की जा सके। आशय यह है कि चतुर्वेदीजी नई भावधारा, नए जीवन-दर्शन और अभिनव युग-बोध के बेमिसाल कवि हैं। उनकी अभिव्यक्ति-भगिमा का चारुत्व भी अपरम्परित है इसीलिए उनका रचना-शिल्प अभिनव है, जिसे छायावादी काव्य शैली की पीठिका तैयार करने का ऐतिहासिक महत्त्व सम्प्राप्त है। वे आधुनिक

प्रगीत-पद्धति के प्रमुख प्रवर्तक और उन्नायक हैं, पर उन्होने साँसो और सूझो को महत्त्व दिया है अर्थात् अनुभूति और कल्पना को साधा है, अतएव उनकी अभिव्यजना शैली छायावादी रचना-प्रक्रिया से भिन्न प्रतीत होती है। उसका गठन और सप्रेषण पृथक् कोटि क्रम की वस्तु है। वह आवेदन-निवेदन का काव्य है, मात्र आत्माभिव्यजना की कला नही। मै समझता हूँ कि कवि की बलिदानी प्रवृत्ति और भावुक मन स्थिति उसके कलाकार की इस अद्वितीयता के विधायक तत्त्व हैं। राष्ट्रीय कार्यक्रमो मे आकठ डूबे रहने के कारण वे छायावादी काव्यकला के अभिव्यजना कौशल की उपादेयता के सम्बन्ध मे सशक ही रहे है। वे ड्राइग-रूम के कवि न होकर अपने युग की सामाजिक चेतना के आत्मजयी कवि हैं। उनकी कविता की सटीक व्याख्या इस उद्धरण मे उपलब्ध होती है

"मैं बलि का गान सुनाती हूँ,
प्रभु के पथ की बनकर फकीर,
माँ पर हँस-हँस बलि होने मे,
खिच हरी रहे मेरी लकीर।

चतुर्वेदीजी के इस बलिदानवाद का अन्दाज नया है, पर वजन सर्वथा अतुलनीय है। वे हिन्दी के एकमात्र 'मरजिया' कवि हैं।

दादा : एक राष्ट्रीय कवि

◇ ◇

रामाधार शर्मा

दादा, प० माखनलाल चतुर्वेदी, एक राष्ट्रीय कवि है। उनके काव्य का परिचय देने के पूर्व राष्ट्रीय काव्य की विशेषताओ से अवगत होना आवश्यक है। राष्ट्रीय काव्य क्या है ? राष्ट्रीय काव्य की प्रथम और प्रमुख विशेषता कवि की देश-प्रेम की भावना है। यह इस सम्पूर्ण काव्य का केन्द्रीय ज्योति-भवन (सेण्ट्रल पावर हाउस) है। यह केन्द्र जितना शक्तिशाली होता है, काव्य-भूमि भी उतनी ही अधिक दूरी तक तीव्र और एकरस प्रकाश से आलोकित हुआ करती है। केन्द्र यदि दुर्बल हुआ तो प्रकाश अधिक दूर तक नही जाता, वह क्रमश मन्द होने लगता है और अन्त मे कवि को किसी दूसरे केन्द्र की खोज करनी पडती है। राष्ट्रीय काव्य की सूक्ष्म या आन्तरिक प्रेरणा देश-प्रेम की अत्यन्त पवित्र भावना है। यह इस काव्य की नीव है, जिस पर समस्त काव्य-निर्माण आधारित होता है। यही-सूक्ष्म भावना कवि को वह राष्ट्रीय दृष्टि देती है, जिसे पाकर कवि अनायास 'हिम किरीटिनी' की ऊँचाइयो को छू लेता है और उसकी कविता कोटि-कोटि कठो की सहज वाणी बन जाती है। व्यक्ति के समष्टि तक पहुँचने की इतनी सुगम विधि दूसरी नही है, साधारणीकरण की इतनी सहज प्रक्रिया और कही नही दिखलायी पडती। राष्ट्रीय काव्य के मूल मे देश-प्रेम की सूक्ष्म भावना स्थायी तत्त्व के रूप मे निहित रहती है। यह स्थायी तत्त्व वह निकष है, जिस पर किसी काव्य के राष्ट्रीय होने या न होने की परीक्षा की जा सकती है। मूल और मुख्य वस्तु यही है।

राष्ट्रीय काव्य की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता उसकी सामयिक प्रेरणा का है। यहाँ हमे यह स्पष्ट समझ लेना होगा कि उपर्युक्त सूक्ष्म प्रेरणा के बिना, एक अन्तर्निहित अटूट देश-प्रेम की भावना के अभाव मे, सामयिक प्रेरणा एक बाह्य वस्तु मात्र होगी, जिससे किसी परिस्थिति विशेष की सूचना ही मिलती है। दूसरी ओर सूक्ष्म और अत्यन्त आन्तरिक देश-प्रेम की भावना ही राष्ट्रीय

काव्य के लिए अलम् नही है, सामयिक सस्पर्श भी उसके लिए आवश्यक है। सूक्ष्म और सामयिक का सुन्दर समन्वय ही राष्ट्रीय काव्य को व्यक्तित्व प्रदान करता है।

सामान्य रूप से हम जिसे राष्ट्रीय काव्य कहते हैं, उसके तीन सोपान दृष्टिगत होते है। राष्ट्रीय काव्य का प्रथम सोपान वह है, जिसमे तीव्र देश-प्रेम की भावना और तीव्र सामयिक प्रेरणा समन्वित हो जाती हैं, दूसरा सोपान वह है, जिसमे एक अन्तर्निहित देश-प्रेम की भावना सदैव विद्यमान रहती है, परन्तु सामयिक प्रेरणा तीव्र नही होती और अन्तिम तृतीय सोपान वह है, जिसमे देश-प्रेम की भावना उतनी तीव्र और स्थायी नही होती, परन्तु सामयिक प्रेरणा बडी तीव्र शैली मे व्यक्त होती है। इस तीसरी श्रेणी की कविता मे देश-प्रेम सचारी के रूप मे रहा करता है। विशेष दृष्टि से ये श्रेणिया राष्ट्रीय काव्य, सास्कृतिक काव्य एव सामयिक या सामाजिक काव्य के नाम से अभिहित की जा सकती हैं। काव्य की यह उज्ज्वल परम्परा है। इसका प्रत्येक कवि देश प्रेमी होता है। यह दूसरी बात है कि उसकी भावना तीव्र या मद हो सकती है, उसका रूप व्यक्त या अव्यक्त हो सकता है। इस परम्परा के समस्त कवि हमारी अभ्यर्थना के अधिकारी हैं।

कुछ लोगो ने इस राष्ट्रीय परम्परा से भिन्न या विरुद्ध भी कुछ काव्य-रचना की है। व्यक्तिगत सुख-दु ख को लेकर चलने वाले कवि काव्य की उदात्त भूमियो मे कम पहुँचते हैं। उनके काव्य का सम्प्रेषण इस बात पर निर्भर करता है कि उनकी वैयक्तिक अनुभूति मे सामाजिक बनने की कितनी क्षमता है। यह क्षमता जितनी अधिक होगी काव्य भी उतना ही अधिक रस-भूमि के समीप होगा। यह वैयक्तिक अनुभूतियो का काव्य उन मन शास्त्र को आधार मानकर चलने वाले व्यक्तिवादियो की रचनाओ से भिन्न है, जो कवि नही है। ये दोनो वर्ग राष्ट्रीय परम्पराओ के प्रति एक उदासीनता लेकर चलते हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी है, जिनकी श्रद्धा-भक्ति के आधार देश के बाहर रहे हैं। यह राष्ट्र-द्रोहियो की श्रेणी है। राष्ट्रीय काव्य का यही वर्गीकरण सम्पूर्ण साहित्य के लिए भी स्वीकार किया जा सकता है।

राष्ट्रीय काव्य मे सामयिकता आवश्यक है। इसकी सामयिकता से आशय यह है कि यह काव्य देश की समसामयिक परिस्थितियो के प्रति अत्यधिक जागरूक और सवेदनशील होता है। देश के भूत, भविष्य और वर्तमान मे वह, मुख्यत वर्तमान से सम्बन्ध रखता है। राष्ट्रीय काव्य का कवि अतीत का गौरव-गायक भी होता है, भविष्यद्रष्टा भी बनता है, परन्तु उसकी दृष्टि वर्तमान पर ही केन्द्रित होती है। उसकी प्रेरणा का स्रोत बहुत समीप और प्रत्यक्ष रहता है। वे राष्ट्रीय परिस्थितियाँ उसे भी प्रभावित करती हैं जिनका जन जन से सम्बन्ध

है और जो लोक-हृदय को आन्दोलित करती है। इसलिए ऐसा काव्य व्यापक रूप से ग्रहण किया जाता है। ऐसे काव्य के ग्रहण की भूमिका पहले ही तैयार हो जाती है।

राष्ट्रीय काव्य समष्टि-आकाक्षा का काव्य कहा गया है। उसमे राज्य-नीति नही, लोक-नीति प्रतिबिम्बित होती है। राष्ट्रीय काव्य का कवि अभय भाव से जनता की आशा-आकाक्षाओ को, हर्ष-विषाद को, गति-प्रगति को वाणी का सुन्दर परिधान पहनाता है। वह राष्ट्र की प्रबुद्ध लोक-वाणी बनता है।

यहाँ एक प्रश्न पूछा जा सकता है। क्या राष्ट्रीय काव्य सामयिक और एक-देशीय वस्तु है? क्या उसका प्रभाव-क्षेत्र देश-काल की सीमाओ से आबद्ध है और क्या उसमे काव्य के सार्वभौम एव शाश्वत उपकरणो की कमी होती है? दूसरे शब्दो मे क्या राष्ट्रीय काव्य रस-भूमि की वस्तु नही है? इन प्रश्नो का उत्तर यही हो सकता है कि राष्ट्रीय काव्य ही रस-काव्य होता है। रस राष्ट्रीय भूमि की ही वस्तु है। देश और काल की सीमाओ मे आबद्ध होते हुए भी, वह सार्वभौम और शाश्वत वस्तु है। अन्य काव्यो की अपेक्षा राष्ट्रीय काव्य की प्रेरणा-भूमि अधिक सशक्त और उदात्त होती है, उसका प्रभाव (अपील) अधिक व्यापक और गहरा होता है। राष्ट्रीय काव्य विराट की अनुभूति का काव्य है, शक्ति और सामर्थ्य की वाणी है। जिस सूक्ष्म आन्तरिक प्रेरणा पर राष्ट्रीय काव्य की नीव रखी जाती है, वह सभ्यता के अनेक अवरोधो के उपरान्त भी, एक सार्वजनीन सत्य है। दूसरी बात यह कि राष्ट्रीय कवि सामयिक उपकरणो से सीधी प्रेरणा ग्रहण कर, उसे अपनी कल्पना के द्वारा, अधिक समर्थ और अमर-सुन्दर रूप देता है। यह प्रक्रिया कठिन है, यह अजन बिरलो को ही मिलता है। राष्ट्रीय कवि देश की मिट्टी को श्रद्धा-भक्ति से पूर्ण हो, अपने हाथो मे लेता है और भाव-भीने स्पर्शों से उसे एक ऐसी सुन्दर मूर्ति मे परिणत कर देता है, जिस पर कोई भी मनुष्य मुग्ध हुए बिना नही रह सकता। मूर्ति मे मिट्टी का आधार प्रत्यक्ष है, परन्तु अब वह मिट्टी नही, मूर्ति बन गई है। जो लोग इस मूर्तिकला मे पारगत नही है, उनके काव्य के सम्बन्ध मे ही उपर्युक्त प्रश्न उठाए जा सकते है।

राष्ट्रीय काव्य मे तीव्र भावपरक अभिव्यक्ति (इमोशनल एक्सप्रेशन) अन्य काव्यो की अपेक्षा अधिक आवश्यक है, जिससे सप्रेषण तरल एव सरल हो जाता है। बुद्धिपरक अभिव्यक्ति का मार्ग अपनाने पर काव्य मे जडता और जटिलता आ जाती है और प्रभाव क्षीण होने लगता है।

दादा एक राष्ट्रीय कवि है। उनके काव्य की सर्वप्रथम और प्रमुख विशेषता यह है कि देश-प्रेम की एक प्रबल भावना उनके काव्य मे सर्वत्र व्याप्त है। यह सूक्ष्म आन्तरिक प्रेरणा उनके काव्य का प्राण तत्त्व कही जा सकती है। यदि शास्त्रीय शब्दावली का प्रयोग करें, तो कहना होगा कि देश-प्रेम उनके काव्य का स्थायी भाव

है। यह आलोक-केन्द्र अमद और अटूट है। इसकी शक्ति पर कही शका नही की जा सकती। हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा के अन्तर्गत कतिपय ऐसे नाम भी स्वीकार किए गए है, जिनके काव्य का स्थायी भाव देश-प्रेम नही कहा जा सकता। देश-प्रेम उनके काव्य मे सचारी बनकर ही आ सका है। अधिकतर देखा गया है कि ऐसे कवि कभी-कभी विशेषकर राष्ट्रीय सकट के अवसरो पर, बडी आवेशपूर्ण शैली मे अपने देश-प्रेम का परिचय देते है। शेष समय मे वे मुख्य रूप से शृगार की रचनाओ मे सलग्न रहते है, बौद्धिक कृतियाँ प्रस्तुत करते हैं या फिर मनोरजन की दृष्टि से लिखे गए छोटे-मोटे प्रयोग करने लगते है। हिन्दी मे ऐसे कवियो की एक बडी सख्या है। ये सब समय की गगा के घाट पर स्नान करने वाले लोग है, परन्तु उसकी लहरो मे तैरते हुए, उसे रत्नाकर तक ले जाने वाला तो कोई एक भगीरथ ही हुआ है। किसी स्थायी प्रेरणा के अभाव मे अनेक कवि सामयिक प्रतिक्रिया की ही सूचना दे पाते है। वे वर्तमान की ज्वाला को शब्दो मे बाँधते है। दादा राष्ट्रीय ज्योति के कवि है, ज्वाला के नही। उनका काव्य सहज ओज का काव्य है, आकस्मिक आवेश की असयत वाणी नही है। चीन और पाक के भारत पर आक्रमण के अवसरो पर अनेक कवियो ने साहित्यिक सयम से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया, परन्तु दादा का अखड ओज आद्यत शालीनता की भारतीय मुद्रा से चिह्नित है।

दादा के काव्य की नीव बहुत गहरी है। स्वदेश-प्रेम की स्थायी भावना का तीव्र अटूट अत -प्रवाह उनके काव्य को सामयिक आवेग के कवियो से भिन्न और उदात्त भूमिका पर प्रतिष्ठित करता है। दूसरी बात यह कि दादा का काव्य, समय के प्रभाव की दृष्टि से अन्य किसी भी कवि से भारी पडता है। समय के प्रति इतनी सजग और सवेदनशील दृष्टि अन्यत्र दुर्लभ है। राष्ट्रीय जीवन की कोई भी महत्त्वपूर्ण घटना उनसे अनकित नही जा सकी। उनका काव्य राष्ट्रीय जीवन का भावात्मक इतिहास है। दादा के काव्य मे सामयिकता का गुण, विशेष प्रत्यक्ष प्रेरणा, बहुत बडी मात्रा मे विद्यमान है। उनकी कविताओ का सम्बन्ध राष्ट्र के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो, घटनाओ या परिस्थितियो से है या उस आराध्य से है जो देश से अभिन्न है। दादा की अधिकाश कविताओ के साथ उनकी रचना-तिथि और स्थान भी दिए गए हैं। इनसे उनके काव्य को समझने मे बडी सहायता मिलती है। यहाँ कुछ लोग यह प्रश्न पूछ सकते हैं कि यदि दादा का काव्य इतना अधिक सामयिक गुण से पूर्ण है, तो उसे हम शाश्वत काव्य की सज्ञा कैसे दे सकते हैं। यह प्रश्न स्वाभाविक है। सम्भवत कुछ लोगो को शका हो सकती है कि काव्य का सामयिक होना उसका दोष है। परन्तु बात ऐसी नही है। समय के जल और देश की मिट्टी के बिना किसने मूर्ति बनाई है? सामयिकता काव्य का दोष नही, उसका प्रथम गुण-धर्म है। इसी सामग्री से काव्य का सौन्दर्यपूर्ण भवन बनाया

जा सकता है। दादा के पास काव्य की इस सामग्री का अक्षय भाडार है। समय के प्रवाह की गद्गद् गीली मिट्टी लेकर अमर-सुन्दर मूर्ति बनाने की कला निश्चय ही बडी कठिन क्रिया है जिसके सरल होने की भ्रान्ति ने कई के हाथ मिट्टी भरे कर दिये हैं, पर जिसे दादा ने सिद्ध कर लिया है। इस प्रकार दादा के काव्य की नीव (सूक्ष्म देश-प्रेम की भावना) बडी गहरी है, काव्य-सामग्री (सामयिक प्रभाव) की उनके पास प्रचुरता है और निर्माण-कला मे उन्हे सिद्धि प्राप्त है। यहाँ दादा के काव्य के कुछ उद्धरण देना आवश्यक है

१ तुम रवि-किरणो से खेल,
जगत् को रोज जगाने वाली,
कोकिल बोलो तो ?
क्यो अर्द्ध रात्रि मे विश्व
जगाने आई हो ? मतवाली,
कोकिल बोलो तो ?
दूबो के आँसू धोती रवि-किरनो पर,
मोती बिखराती विन्ध्या के झरनो पर,
ऊँचे उठने के व्रतधारी इस वन पर,
ब्रह्माड कँपाती इस उद्दड पवन पर,
तेरे मीठे गीतो का पूरा लेखा
मैंने प्रकाश मे लिखा सजीला देखा।
तब सर्वनाश करती क्यो हो,
तुम, जाने या बे जाने,
कोकिल बोलो तो ?
क्यो तमोपत्र पर विवश हुई
लिखने चमकीली ताने ?
कोकिल बोलो तो !
('कैदी और कोकिला', हिम-किरीटिनी,
सेण्ट्रल जेल, जबलपुर, सन् १९३०)

२ युग तुम मे, तुम युग मे कैसे झाँक रहे हो बोलो ?
उथल-पुथल तब हो कि समय मे जब तुम जीवन घोलो।
तुम कहते हो बलि से पहले अपना हृदय टटोलो,
युग कहता है क्रान्ति-प्राण ! पहिले बन्धन तो खोलो।

— — —

है तेरा विश्वास गरीबों का धन, अमर कहानी—
तो है तेरा श्वास, क्रान्ति की प्रलय-लहर मस्तानी।

कंठ भले हो कोटि-कोटि, तेरा स्वर उनमे गूँजा
हथकडियो को पहन राष्ट्र ने पढी क्रान्ति की पूजा।
('युग और तुम', समर्पण,
गाधी जयती के लिए, सन् १९३५)

३ वाणि वीणा और वेणी की, त्रिवेणी धार बोले,
नृत्य बोले, गीत बोले, मूर्ति बोले प्यार बोले,
आज हिमगिरि की पुकारो, सिन्धु सौ-सौ बार बोले,
आज गगा की लहर मे प्रलय का व्यापार बोले।

० ०

दंग करती-सी मृदंग बजे, कि वशी-रध्र बोले,
नृत्य-मग्ना एशिया की गोपियाँ, स्वच्छन्द डोले।
अमित मधु-आकर्षणो का ज्वार हरि, वशी बजावे,
स्वर भरे कश्मीर उसमे, भैरवी नेपाल गावे।
मोह ले मन को हमारे नेह का गाधार प्रहरी,
और लका से हमारी सिन्धु-सी हो प्रीत गहरी।
आज ब्रह्मा के स्वरो मे, एशिया के द्वार हर्षित,
मित्र के उल्लास हर्षित, शत्रु के सहार हर्षित।
तीन बाजू से घिरा, यह तरल पारावार हर्षित,
आज दिल्ली के स्वरो ईमान का ससार हर्षित।
('प्राण का शृगार', युगचरण,
जनतन्त्र दिवस, सन् १९५४)

ऊपर तीन उद्धरण दिए गए हैं। पहला उद्धरण विशेष परिस्थिति से सबध रखता है, दूसरे मे व्यक्ति उद्दिष्ट है और तीसरे मे तिथि का महत्त्व है। परन्तु यह द्रष्टव्य है कि तीनो उद्धरणो मे काव्य विशेष की भूमि से दूर पहुँच गया है। जबलपुर सेण्ट्रल जेल की बन्दिनी आत्म कोकिल के स्वर के साथ सूर्य किरणो मे, विन्ध्य के झरनो मे और वनो मे तथा आँधियो मे कितनी स्वच्छन्द घूमती है और सूर के जहाज के पछी के समान पुन पूर्व स्थान पर पहुँच गई है। 'युग और तुम' कविता मे युगपुरुष महात्मा गांधी की अभ्यर्थना की गई है। परन्तु उद्धृत काव्याश किसी भी युगपुरुष की वन्दना के बोल हो सकते है। 'प्राण का शृगार' कविता जनतन्त्र-दिवस पर लिखी गई है। परन्तु उसमे जिस हर्ष की व्यजना है, वह किसी एक दिन, किसी एक वर्ष और किसी एक व्यक्ति की वस्तु नही है। उसमे तो कवि ने सपूर्ण राष्ट्र के चिरन्तन उल्लास को वाणी दी है। छोटी-सी प्रेरणा को लेकर दादा बहुत दूर और ऊपर पहुच जाते हैं। यह कला हिन्दी के बहुत कम कवियों के पास है। यहाँ वे सामयिक रहते हुए भी समयातीत हो जाते हैं। ऐसे प्रसंगो मे

दादा प्राय नाम आदि के स्थूल विवरणो को छोड देते है या आवश्यक होने पर उनके सकेत मात्र देते है और सूक्ष्म तात्त्विक भूमि पर विचार करने लगते है।

दादा के काव्य की ऊँचाई का एक और रहस्य है। उनका सपूर्ण काव्य आध्यात्मिक स्तर पर प्रतिष्ठित है। आसेतु हिमाचल फैले हुए इस विराट् देश मे उन्होने अपने आराध्य की भावना की है इसलिए उनकी कृतियाँ पवित्र पूजा के गीत बन गई है

हो मुकुट हिमालय पहनाता, सागर जिसके पद धुलवाता,
यह बधा बेडियो मे मन्दिर, मसजिद, गुरुद्वारा मेरा है।
—हिम-किरीटिनी

'वेणु लो गूँजे धरा' सग्रह मे भी आराध्य बलि के फूलो से ही प्रसन्न हुआ है

प्राण कौन से स्वप्न दिख गए
जो बलि के फूलो खिलते हो।

देश-प्रेम की भावना को आध्यात्मिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने का श्रेय दादा को है। आध्यात्मिक राष्ट्रवाद उनकी हिन्दी मे विशेष मौलिक वस्तु है और इस क्षेत्र मे वे अकेले हैं। दादा की आध्यात्मिकता परपरागत है और शरीर तथा मन से परे एक चिरन्तन चिन्मय वस्तु है। इसी परम्परागत आध्यात्मिकता से दादा का काव्य दृढतापूर्वक बँधा हुआ है। भारतीय जीवन और काव्य की परम्परा मुख्यत अध्यात्ममुखी रही है और जो कवि इस परम्परा के जितना निकट रहा है उसे भारतीय जीवन ने उतने अधिक श्रद्धा के पुष्प अर्पित किए है। आधुनिक काव्य मे सर्वाधिक तेजस्वी आध्यात्मिक ज्योति दादा के काव्य मे दिखलाई पडती है। हमे दादा के काव्य का मूल्याकन इस दृष्टि से भी करना होगा। हम अपने समय के इतने समीप हैं कि हमे उसका सम्यक् बोध नही हो सकता और दूसरी बात यह है कि आत्म-प्रचार के अगणित नगाडो की अभ्रभेदी आवाजो के बीच रेवातट के शान्त परन्तु सशक्त वेणु-स्वर बहुत कम सुनाई पडे। परन्तु एक शताब्दी उपरान्त यह स्थिति नही रहेगी। ऐतिहासिक बोध से सम्पन्न आनेवाली पीढियाँ दादा को भिन्न दृष्टि से देखेंगी। आज यह बहुत स्पष्ट दिखलाई पड रहा है कि भारत की शक्ति-साधना के साथ ही उसकी मूल आध्यात्मिक चेतना भी बलवान बनेगी। अध्यात्म हमारे राष्ट्र का केन्द्र है, हमारी साधनाओ की राजधानी है। इसका महत्त्व हमे आज नही तो कल समझना ही होगा। हमारी आगामी पीढियाँ यह देखेंगी कि कौन हमारे इस केन्द्र के पास है और अपना है तथा कौन इससे दूर दूसरे केन्द्र के समीप पहुँच गया है और पराया बन गया है। इस दृष्टि से दादा के काव्य का मूल्य और भी अधिक बढ जाता है। यदि दादा का काव्य केवल सामयिक प्रतिक्रिया व्यक्त करता तो वे देश के बहिरग शरीर के कवि

होते, यदि दादा का काव्य देश-प्रेम की सूक्ष्म भावना पर ही आधारित होता तो वे देश के अतरग प्राण या हृदय के कवि होते, परन्तु दादा तो देश की आत्मा के कवि है, 'एक भारतीय आत्मा' है और उन्होने आत्मभूमि पर काव्य-रचना की है। दादा का काव्य आध्यात्मिक स्तर की वस्तु है, पूर्व मध्ययुग के उपरान्त इतनी सशक्त और सुन्दर आध्यात्मिक अभिव्यक्ति हिन्दी मे दूसरी नही दिखलाई पडती। हमारा ध्यान हिन्दी के इस ऐतिहासिक तथ्य की ओर जाना अत्यन्त आवश्यक है कि प्राचीन पद साहित्य का दादा के पूजा-गीतो के रूप मे पुन अवतार हुआ है। हिन्दी के अनेक आधुनिक कवि इस दृष्टि से दादा के कम-कक्ष लगेगे।

एक ओर तो दादा कोटि-कोटि भारतीयो के साथ अपने हृदय का तादात्म्य स्थापित करते है और साथ ही उसी भारतीय जन-गण मे अपने आराध्य (विस्तृत, विराट, श्याम-सलौने) की भावना कर उसके चरणो मे समर्पित भी है। उनके काव्य की यह दुहरी भूमिका एक ऐसे प्रगाढ रस की सृष्टि करती है, जो हिन्दी मे अन्यत्र दुर्लभ है। व्यष्टि के समष्टि तक पहुँचने की यह प्रणाली आज अपने आप मे अकेली है। रस काव्य को दादा ने नई दीप्ति दी है, नई शक्ति दी है।

दादा का काव्य शासन का अनुगामी और अनुगायक कभी नही रहा। भारतीय जनता की आशा-आकाक्षा, हर्ष-शोक, सकल्प-विकल्प आदि उनके काव्य मे व्यक्त होते है। स्वतन्त्रता के पूर्व वे एक विद्रोही सैनिक थे और स्वतन्त्रता के उपरान्त वे एक समीक्षक की स्थिति मे है। दादा से राजनीति नही, जननीति मुखरित हुई है, वे राज-कवि नहीं, विराट भारतीय जन-गण के कवि हैं। उनका काव्याधार जनततात्रिक है।

ऊपर कहा जा चुका है कि राष्ट्रीय काव्य मे तीव्र भावपरक अभिव्यक्ति (इमोशनल एक्सप्रेशन) अधिक आवश्यक है। जिन कवियो ने राष्ट्रीय काव्य मे बुद्धिपरक अभिव्यक्ति का मार्ग अपनाया है, उनकी रचनाएँ अभीप्सित प्रभाव की सृष्टि नही कर सकी हैं। ५ अगस्त, सन् १९६५ को भारत पर पाकिस्तान ने आक्रमण किया। इस सदर्भ को लेकर पुन हिन्दी के कवियो ने राष्ट्रीय कविताए लिखी। परन्तु अधिकाश कविताएँ बुद्धि-प्रसूत है और प्रयत्नपूर्वक लिखी गई है। कुछ उदाहरण यहाँ दिए जा रहे है

१ सिपाही देश का कलक धो रहा है।
जो बीज जम कर,
सदियो मे कई बार सूखे है,
उन्हे फिर से बो रहा है।
बम के धडाको से ईश्वर ही नही चौकता,
आदमी भी घबराकर जाग उठता है।
इतिहास जानता है कि क्या हो रहा है?

२ हथियारो नही, मर्दो के गीत गाओ।
अरे गाओ, अगर स्वर समर्थ है।
क्योकि मर्द नही, तो हथियार लूले है,
मर्दानगी नही, तो लोहा व्यर्थ है।
विमान सेबर हो या नैट,
कोई ज्यादा फर्क नही पडता है।
लडाई तो मर्दानगी की चीज़ है,
हथियार भी मर्दों के इशारो पर लडता है।

३ इस सब से क्या,
उस सबसे क्या, किसी सब से क्या,
जब कि अकेलेपन मे
एक व्याप्त मामूलीपन का स्पन्दन है
और वह व्याप्त मामूलीपन एक सेतु है
जिसमे हम सब
हर अकेली रात के अधेरे मे
एक सम्बन्ध और सामर्थ्य और गौरव के सूत्र मे बँधते है—
हम, हम, हम, हम भारतवासी ?

ऊपर तीन उद्धरण दिए गए हैं। पहले उद्धरण मे सभवत दो बाते बहुत ही सीधी शैली मे कही गई है कि हमारे सिपाही देश के कलक को धो रहे है और यह भयकर युद्ध मनुष्य के साथ ही ईश्वर को भी चौका देने वाला है (यद्यपि इसमे ईश्वर के बाद आदमी के आने से अतिशयोक्ति प्रभावहीन हो गई है)। इसमे विचार-सूत्र सीधे सरल रूप मे रख दिए गए हैं, परन्तु हृदय का वेग कही सयुक्त नही हो सका है। दूसरा उद्धरण युद्ध के तथ्यो पर आधारित है। यह अब सर्व विदित है कि भारत-पाक युद्ध मे भारतीय वीरो ने अपने साहस और शौर्य के बल पर अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को दिए गए सेबरजैट विमानो और पैटन टैंको के धुर्रे उडा दिए थे। इसी तथ्य को उक्त उद्धरण मे कुछ सामान्य रूप देकर, एक विचार के रूप मे प्रस्तुत किया गया है कि लडाई हथियारो से नही मर्दानगी से जीती जाती है। यहाँ द्रष्टव्य है कि बाह्य तथ्यो के आधार पर निष्कर्ष निकालने वाली यह प्रक्रिया मूलत बौद्धिक है। ये दोनो कविताएँ सरल, परन्तु वेग-रहित हैं। तीसरा उद्धरण जटिल और वेग-रहित काव्याभास का उदाहरण है। इन तीनो उद्धरणों मे उत्तरोत्तर बौद्धिक प्रक्रिया बढती गई है और उसी अनुपात मे काव्य-प्रभाव का भी ह्रास हुआ है।

राष्ट्रीय काव्य की प्रतिनिधि शैली हिन्दी के कतिपय नए कवियो मे व्यक्त हो रही है। उपर्युक्त बौद्धिक काव्य से उसकी भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए

कुछ उदाहरण देना आवश्यक है

१. मशाल थामना—

मोरचा बिखर न जाय
गिर न जाय काल सन्तरी
उसे सम्हालना
मशाल थामना
कृष्ण है स्वदेश आज और काश्मीर बसरी
उसे सम्हालना
मशाल थामना।

२ आज अपना देश पूरा लाम पर है,
जो जहाँ भी है, वतन के काम पर है।
हल लिए है हाथ भामाशाह मेरे
प्रतापो ने बर्फ पर साका किया है,
लहू देने का महूरत आ गया है
दूध जिसने भी कि इस माँ का पिया है।

३ पुरुषार्थ—

क्षमा के लिए बने हुए हाथ
लेते है शस्त्र
व्यापक क्षमा के लिए
चारो तरफ अनसुना कोलाहल है,
और मुझे सूझते नही हैं शब्द
घबराये हुए लोगो की उपमा के लिए।

पहला उद्धरण एक गीत है जिसमे सशक्त उद्बोधन निहित है। कवि की चिन्ता कृष्ण और उनकी वशी के रूपक मे पवित्र होकर, तीव्र गति से, सगीत के स्वरो के साथ, प्रत्येक बार कल्पना के नव-नव वस्त्र पहनकर अग्रसर होती है। दूसरी कविता का सहज ओज ऐतिहासिक सदर्भों तथा राष्ट्रीय उपलब्धियो के सहारे विकसित हुआ है। देश-प्रेम के लिए कवि ने जैसे ओज और आवेग का गरुड-वाहन उपस्थित कर दिया है। तीसरी कविता अपनी उदात्त परिणति, (शत्रु-पक्ष की अनुपमेय घबराहट द्वारा) भारतीय पुरुषार्थ की व्यजना एव गम्भीर आत्म-विश्वास के कारण उल्लेखनीय बन गई है। राष्ट्रीय काव्य की भावपरक शैली की त्रिविध भगिमाएँ ऊपर दी गई है। इन कविताओ की शैली सरल और तरल है।

दादा का काव्य भावपरक अभिव्यक्ति का आदर्श प्रतिष्ठित करता है। वास्तव मे दादा के काव्य की केन्द्रीय शक्ति उनकी भावना ही है। काव्य का मूल

और मुख्य तत्त्व भी यही है और यह उनके काव्य मे साद्यत समरस रहा है। इसीलिए उनके काव्य मे सहज वेग का कही अभाव नही है। जिन कवियो के काव्य मे मूल शक्ति बुद्धि होती है, उनके सपूर्ण काव्य और काव्य-प्रक्रिया का शासन बुद्धि द्वारा ही होता है। उन्हे हम नियत्रित-भावना के कवि कह सकते है। युवावस्था की शक्ति के साथ बुद्धि की प्रखरता और प्रकाश उनके काव्य मे व्यक्त होते है। परन्तु अवस्था के अधिक हो जाने पर बुद्धि की शक्ति क्षीण होने लगती है। कुछ कवि अपनी काव्य-कला का केन्द्र कल्पना को बनाते है। कल्पना द्विमुखी है, उसका एक मुख हृदय की ओर है और दूसरा मुख मस्तिष्क की ओर। जिन कवियो की कल्पना मस्तिष्क-मुखी होती है, आगे चलकर उनका काव्य विचार-प्रधान बन जाता है और कल्पना की रमणीयता कम होने लगती है। दादा के काव्य का केन्द्र भावना है और यह स्वतत्र तथा समरस रही है। यह उनके काव्य की मूल शक्ति है। अवस्था के विकास के साथ ही मनुष्य की भावना विस्तृत, विशुद्ध और तीव्र हो जाती है। दादा का काव्य इस बात का प्रमाण है। उनका काव्य-क्षितिज विस्तृत हुआ है, उनकी भावना पवित्रता की ऊँचाइयो तक पहुँच गई है और भाव-तीव्रता भी, एक विशेष सयम की मुद्रा लेकर, व्यक्त हुई है। सन् १९६२ मे चीन के भारत पर आक्रमण के समय दादा ने देश की तरुणाई को एक बार फिर अपने सहज स्वर मे ललकारा

बूढो की क्या बात युगो की तरुणाई के दिन आये है,
चट्टानो, खन्दको, पहाडो की खाई के दिन आये है।
गगा माँग रही है मस्तक, जमना माँग रही है सपने,
आज जवानी स्वय टटोले सिर हथेलियाँ अपने-अपने।
कितने दिन से वृक्ष दे रहे सकेतो झुक आई डाली,
कितने दिन से खड़ा अकेला अपने बागो का यह माली।
चलो सजाओ सैन्य, समय की भरपाई के दिन आये हैं,
आज प्राण देने के, युग की तरुणाई के दिन आये हैं।

—मरण-ज्वार

बलिदान का त्योहार मिल जाने की प्रसन्नता गीत के स्वरो मे फूट पडी है। इस गीत मे दादा का सपूर्ण ओज, एक निर्विकार शान्त मे पर्यवसित हो गया है। गीत की यह उदात्त भूमिका स्वाभाविक है, अधिक सशक्त और सयत भी है, साथ ही अभिव्यक्ति सीधी और सरल है। पूरा गीत एक मार्मिक प्रभाव उत्पन्न करता है।

देश-प्रेम की एक अटूट आन्तरिक भावना दादा के वक्तव्य का मूल और मुख्य उपकरण है। इस भूमि पर समय के चरण-चिह्न बहुत गहरे अकित हुए है, जिन्हे वे अपनी भाव-भीनी कलम से सुन्दर कला का रूप देते रहे। दादा भारतीय राष्ट्र के अनन्य उपासक थे। वे हमारे राष्ट्रीय कवि थे।

बाँकी भंगिमा के गीत-कवि

० ०

डॉ० रवीन्द्र भ्रमर

सूरज की दिशा अकेली होती है। वह अपने पथ का अकेला पथिक होता है, लेकिन जिस दिशा-पथ से होकर उसका रथ गुजरता है उसकी दीप्ति के क्या कहने ? अकेली दिशा और अकेले पथ का पथिक अपनी प्रतिभा से सबको प्रकाशमय कर देता है। सहस्र करो से प्रकाश, प्रेरणा और शक्ति का दान करते चलना उस अकेले बिरले का ही काम है। चतुर्वेदीजी के गीतकार-व्यक्तित्व पर विचार करते समय कुछ इसी प्रकार की अनुभूति होती है। वे अपने ढंग के अकेले गीत-कवि रहे है। इस क्षेत्र मे उन्होने किसी का अनुकरण नही किया है। लेकिन अपनी विलक्षण प्रतिभा से उन्होने हमारी पीढी के अनेक कवियो को प्रेरित और प्रभावित किया है। अपने इस कथ्य को हम भाषा की अतिशयोक्ति न समझे, कोरी श्रद्धाजलि का उपचार भी नही है यह। हिन्दी की 'आधुनिक' कविता के परिप्रेक्ष्य मे यह एक सहज आलोचना अथवा तटस्थ मूल्याकन का प्रश्न है। छायावाद युग मे 'प्रसाद' और 'निराला' ने गीत काव्य को अपूर्व उत्कर्ष प्रदान किया था। उत्तर-छायावाद युग मे उस परम्परा का प्रसार चतुर्वेदीजी के कृतित्व मे दिखाई पडा। यहाँ परम्परा के प्रसार की बात केवल उत्कर्ष की दृष्टि से कही जा रही है। रचना-प्रकृति की दृष्टि से चतुर्वेदीजी का अपना एक खास रग है, एक निराली अदा है जो 'प्रसाद' और 'निराला' से भिन्न है।

चतुर्वेदीजी कालयापित व्यक्तित्व के कवि है। आधुनिक कविता के विकास-इतिहास की दृष्टि से उन्होने इस शताब्दी के आज तक के प्रवाह को अपनी काव्य साधना मे सिया है—'ज्यो-ज्यो भीजै कामर, त्यो-त्यो गरुई होय'। काव्य-प्रवाह के साथ-साथ उनकी अनुभूतियो मे अधिकाधिक गाम्भीर्य और अभिव्यक्ति मे बाँकापन आता गया है। इस तरह, काव्य-रचना की उनकी प्रतिभा निरन्तर ऊर्ध्वमुखी रही है, उनकी पहली गीत-रचना (पद) १९०४ ई० की बतलाई

जाती है जिसमे उनकी प्रतिभा का बीज रूप सहज द्रष्टव्य है

श्याम लोचन मन बस गए री।
मधुर बैन कर नैन सैन सो,
छीन लीन मन चपल ऐन सो,
कछु न सुहावत, सुधि न रैन सो,
जब हरि हँस गए री।
श्याम लोचन मन बस गए री।
अति कारे, प्यारे, अनियारे,
कजरारे नहिं जात निहारे,
उरग समान दो अलके सवारे
मम हिय डस गए री।
श्याम लोचन मन बस गए री।

इस रचना का ठाठ मध्ययुगीन वैष्णव कवियो की पद-शैली जैसा है। वैष्णव भावना चतुर्वेदीजी को पारिवारिक सम्पदा के रूप मे प्राप्त हुई थी। इनका परिवार श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय का अनुयायी था। घर मे वैष्णव कवियो के ललित पदो का गायन बराबर होता रहता था। चतुर्वेदीजी को भक्त कवियो की अनेक मनोहर रचनाएँ बाल्यकाल से ही कठस्थ हो गई थी। यही कारण है इनके गीतो मे यत्र-तत्र श्रद्धा, विश्वासपूर्ण भक्ति-भावना एव आत्म-समर्पणयुक्त अनुराग-राग की झकार सुनाई पडती है। कई स्थलो पर तो ये एक आधुनिक भक्त कवि जान पडते हैं। भाषा बदल गई है, छन्द बदल गए है, भाषाभिव्यक्ति की पद्धतियो ने नवयुग का नया पथ ग्रहण किया है, किन्तु उन रचनाओ के मूल मे विद्यापति, सूरदास एव मीराबाई की परम्परा की अनुगूँज सुनाई पडती है। यह प्रवृत्ति कभी-कभी किसी एक रचना के किसी एक छन्द, चित्र अथवा बिम्ब मे भी रूपायित हुई है। एक उदाहरण लीजिए

'तुम न हुए घर मेरे,
विफल हुए पर मेरे।
तुम कब आए ? और यह कि आषाढ आ गया,
बाढो मे बहता गदलापन गाढ आ गया,
धरती यो शृगार किये है जैसे बस अब बोल उठेगी,
हवा, अध बनकर, कोने-कोने क्यो आज टटोल उठेगी,
शिथिल पडे स्वर मेरे।
तुम न हुए घर मेरे।

उपर्युक्त रचना लौकिक प्रेम के वियोग पक्ष की तड़प को एक सात्विक

भूमिका प्रदान करती है। प्रिय-बिछोह की वेदना का अनुभव करने वाला प्रेमी मन भावुक भक्त की अध्यात्म साधना के बहुत निकट आ गया है।

कुछ कृतियो मे चतुर्वेदीजी रहस्यवादी मुद्रा के गीत-कवि के रूप मे सम्मुख आते है। सगुण-साकार की अनुभूतियो से जुडी हुई भक्ति-भावना निर्गुण-निराकार की वीथियो मे अन्तर्मुखी हो जाती है और फिर अरूप-रूप की ऐसी छवि उभरती है जो सर्वव्यापिनी है।

मधुर तुम्हारा चित्र बन गया।
कुछ नीले, कुछ श्वेत गगन पर,
हरे-हरे घन श्यामल पन पर,
द्रुत असीम उद्दण्ड पवन पर,
चुम्बन आज पवित्र बन गया।
मधुर तुम्हारा चित्र बन गया।

किन्तु, चतुर्वेदीजी मुख्यत सगुणोपासना ही के गायक हैं। राधाकृष्ण अथवा वशी और वृन्दावन के सगुण प्रतीको को वे बहुधा भूल नही पाते। 'सपूरन' के साथ 'अपूरन' के झूला झूलने का एक गीत लीजिए

सपूरन के सग अपूरन झूला झूले री,
दिन तो दिन, कलमुही साझ भी अब तो फूले री!

टेक की इन पक्तियो के माध्यम से कुछ रहस्यवादी व्यजना करने की चेष्टा की गई है किन्तु बीच के 'बन्द' अरूप से रूप की ओर मुड गए है

रुठन मे, पुतली पर जी की जूठन डोले री,
अनमोली साधो मे मुरली मोहन बोले री,
करतालन मे बध्यो न रसिया, वह लालन मे दीख्यो,
भागूँ कहाँ कलेजो कालिन्दी मे हूले री।

उपर्युक्त उदाहरणो से एक और बात स्पष्ट होगी कि चतुर्वेदीजी प्रेम-रस के गीत-कवि है। उस रस को श्रृगार या सयोग-वियोग की शास्त्रीय शब्दावली द्वारा ठीक प्रकार से नही व्यक्त किया जा सकता। जो बात प्रेम-रस से बनती है, श्रृगार कहने से उसकी व्यजना दूर-दूर तक नही होती। श्रृगारक रचनाएँ एक फैशन के रूप मे भी हो सकती है। अधिकाश कवियो ने सयोग-वियोग वर्णन की पारपरिक रूढियो के आधार पर निर्जीव या निष्प्राण प्रतीत होने वाली प्रेम रचनाएँ ही की है। चतुर्वेदीजी के यहाँ यह बात नही है। वे साक्षात् प्रेम-मूर्ति जान पडते हैं। उनके गीतो मे प्रेम की सच्ची अनुभूतियो का सहज प्रसाद दिखाई पडता है। जो कुछ जीवन मे प्रत्यक्ष रूप से भोगा गया है, मन-प्राण पर जिसके सुख-दु.ख की अमिट छाप लगी है, उसी कुछ को पूरी ईमानदारी के साथ व्यक्त कर देने की चेष्टा सर्वत्र विद्यमान है। चतुर्वेदीजी कुल छब्बीस वर्ष के ही थे जब उनकी पत्नी

श्रीमती ग्यारसीबाई परलोक सिधारी। असमय मे घटित इस हृदय-विदारक घटना ने चतुर्वेदीजी के भावुक मन और सघर्षशील जीवन पर बडी गहरी छाप छोडी है। यही कारण है कि उनके गीतो मे दु ख और पीडा के स्वर की प्रधानता है। जोडी बिछुड जाने की वेदना से आपूरित एक छोटा-सा किन्तु मार्मिक गीत लीजिए

तरुणाई के प्रथभ चरण मे जोडी टूट गई,
फूली हुई रात को रानी प्रात रूठ गई।
गध बनी, साँसो भर आई,
छन्द बनी फूलो पर छाई,
बन आनन्द धूलि पर बिखरी,
यौवन के तुतलाते वैभव, सध्या लूट गई,
फूलो भरी रात की रानी सहसा रूठ गई।
मुसुको भरी मनोरम बेली,
यादो की डालो पर खेली,
गिरी सभी साधे अलबेली,
ऊँचे पर उठती अभिनवता पथ मे छूट गई।
फूली हुई रात की रानी कैसे रूठ गई?

इस प्रकार के प्रेम-गीतो के माध्यम से ध्वनित होने वाली सात्विक वेदना मन को सहज ही छू लेती है। इन गीतो मे द्रवित करने की क्षमता है। इनमे छायावादी गीतो जैसी अबूझता अथवा अस्पष्टता नही है। प्रणय की पवित्रता इन मे है और शायद इसीलिए इनमे कही-कही अध्यात्म की गन्ध मिलती है, किन्तु प्रणय को गोपनीय और अलौकिक बना देने की प्रवृत्ति इनमे नही है। चतुर्वेदीजी इस धरती और इस जीवन के गीतकार है। इनकी रचनाओ मे मिट्टी की सोधी गन्ध और जीवन की प्रबल ऊष्मा है।

मिट्टी की सोधी गन्ध और जीवन की ऊष्मा को सहज स्वाभाविक रूप मे व्यक्त करने की दृष्टि से चतुर्वेदीजी की गीत-कृतियाँ विशेष मूल्य और महत्त्व रखती है। इसका एक प्रधान कारण यह है कि उनमे लोक-जीवन का स्पन्दन सुनाई पडता हैं। जहाँ-तहाँ व्यवहृत लोकगीतो की-सी भाषा-शैली उन रचनाओ को ताजगी और मिठास प्रदान करती है। उन्हे देखने-पढने से ऐसा लगता है कि चतुर्वेदीजी ने आँचलिक जन-जीवन का साक्षात्कार किया है जिसके कारण उनके गीतकार व्यक्तित्व से जन-मन की राग-चेतना गहरे तक उतर गई है। उन्होने लोक-भाषा से जो ठेठ ग्रामीण शब्द जहाँ-तहाँ लिए है उन से उनके गीतो में कुछ खुरदुरापन दिखलाई पडता है, किन्तु वही खुरदुरापन उनकी रचनाओ मे अकृतिम सौंदर्य का भी निमित्त बना है। कुछ रचनाएँ लोकगीतों की प्रचलित लय

अथवा धुनो के आधार पर लिखी गई है। चतुर्वेदीजी के कृतित्व मे इस प्रकार के गीतो की गेयता एव गीतात्मकता देखने योग्य है। भाषा और छन्द काव्य-रचना के नितान्त बाह्य विधान माने जाते है। अन्तर्विधान का सम्बन्ध भाव-चेतना और उसकी अभिव्यक्ति से जुडा हुआ है। इस दिशा मे भी चतुर्वेदीजी ने लोकगीतो की-सी गमक पैदा करने की चेष्टा की है। उनकी जिन रचनाओ मे यह प्रवृत्ति प्रतिफलित हुई है वे ताजगी और मार्मिकता की दृष्टि से बेजोड बन गई है। उदाहरण के लिए एक वर्षा-गीत की ये पक्तियाँ द्रष्टव्य है

बदरिया थम-थमकर झर री
सागर पर मत मरे अभागिन
गागर को भर री।
एक-एक, दो-दो बूँदो मे,
बँधा सिन्धु का मेला,
सहस-सहस बन विहँस उठा है
यह बूँदो का रेला,
तू खोने से नही बावरी,
पाने से डर री।
बदरिया थम-थम कर झर री।

प्रस्तुत गीत की अन्तर्वर्ती चेतना और लयात्मकता लोकगीत जैसी है। शब्दो के सचयन से लेकर अनुभूति और कल्पना के प्रसार तक लोकगीतो का कलात्मक स्पर्श है। एक अन्य उदाहरण लीजिए जिसमे लोकगीत से लिए गए बिम्ब की दृष्टि से 'नयन का बगला' और 'सावन की झर' जैसे प्रयोग उल्लेख्य है। रचना का सगीत भी लोक-कण्ठ का प्रवाह लिए हुए है -

आज नयन के बगले मे,
सकेत पाहुने आए री, सखि!
दोनो कारागृह पुतली के,
सावन की झर लाए री, सखि!

एक बात स्पष्ट स्वरो मे कही जा सकती है कि माखनलालजी कोमल भावनाओ और सुकुमार अनुभूतियो के कवि है। पौरुष और विद्रोह और देश-प्रेम के भी वे अत्यन्त समर्थ कवि है किन्तु गीतकार के रूप मे वे सुकुमारता और कोमलता के धनी है। प्रेम की पीडा, उसे भोगने की दृष्टि से वैष्णव साधको मी तल्लीनता और उसकी अभिव्यक्ति के सदर्भ मे लोकगीतो जैसी सहजता और मिठास आदि स्थितियाँ कुल मिलाकर उनके गीत-कवि के सौकुमार्य को ध्वनित करती है। सुकुमारता का सम्बन्ध सौंदर्य से है। अतएव चतुर्वेदीजी सौदर्य के गीत-कवि है। प्रस्तुत सदर्भ मे, हमे उनकी गीत-रचनाओ मे एक और बात दिखाई पड़ती है.

जिसके कारण सुन्दरता और सुकुमारता ने उनका वरण किया है। उन्होने अपनी अधिकाश अनुभूतियो का निवेदन स्त्री रूप मे किया है। अपने आप को उन्होने नारी के रूप मे प्रस्तुत किया है और अपने प्रियतम को पुरुष रूप मे लेकर चले है। बहुत-सी रचनाएँ विपरीत को व्यक्त करती है, किन्तु जिन रचनाओ मे स्थिति की अनुकूलता है अर्थात् नारी हृदय की अभिव्यक्ति हुई है उनके माध्यम से चतुर्वेदीजी के गीत-कवि की सुकुमारता और सुन्दरता को आँका जा सकता है। हमारी विनम्र धारणा है कि नारी के हृदय के रूप मे लिखी गई चतुर्वेदीजी की गीत-कृतियाँ अपेक्षाकृत अधिक मार्मिक और सरस बन पडी है। हमारा एक अनुमान भी है। चतुर्वेदीजी के प्रणय गीतो मे नारी हृदय के नैवेद्य के रूप मे लिखे गए गीतो की सख्या अधिक होगी। जो हो इस प्रकार की रचनाओ मे चतुर्वेदीजी की आत्मा अधिक रमी है।

मै अपने से डरती हूँ, सखि!
पल पर पल चढते जाते है
पद आहट बिन, री चुपचाप
बिना बुलाये आते है दिन,
मास, बरस ये अपने आप,
पर मै नित्य उतरती हूँ, सखि!
मैं अपने से डरती हूँ, सखि!

उपर्युक्त उद्धरण मे अनुभूति की सुकुमारता द्रष्टव्य है। जैसी सुकुमार अनुभूतियाँ है, वैसी ही सहज सुन्दर उनकी अभिव्यक्ति हुई है। नारी हृदय के नैवेद्य के रूप मे रचना और भी मनोहर हो उठी है।

गीतकार के रूप मे चतुर्वेदीजी के विशिष्ट व्यक्तित्व का एक प्रधान कारण उनकी भाषा-शैली है। उन्होने अधिकाश मे बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। बीच मे लोक-कण्ठ द्वारा ग्रामीण देशी शब्दो की छौक है। उनकी भाषा मे कही-कही अनगढ प्रान्तीय प्रयोग भी मिलते है जिस पर मुहावरो का मुलम्मा अलग से चढाया गया है। छन्द के प्रवाह अथवा भावो की कसावट की दृष्टि से उन्होने जहाँ-तहाँ कारक चिह्नो का प्रयोग नही किया है और क्रिया पदो के व्यवहार मे कुछ छूट ले ली है। व्याकरण और भाषा के परिनिष्ठित रूप की दृष्टि से इस प्रकार के प्रयोग वर्जना के विषय समझे जाते है किन्तु चतुर्वेदीजी के कृतित्व मे इन प्रयोगो के कारण एक प्रकार का बाँकापन आ गया है। उनकी भाषा-शैली भी उनके व्यक्तित्व को एक विशिष्टता प्रदान करती है।

द्विवेदी युग से लेकर आज तक, माखनलालजी आधुनिक हिन्दी कविता के साक्षी कवि रहे। इस अवधि मे कम से कम पचास वर्षो तक उन्होने सक्रिय रूप से काव्य साधना की है, लेकिन वे कभी पुराने नही पडे है। उन्होने देश-प्रेम की

अनुभूतियो को वाणी दी है, पौरुष का गान किया है, विरह-मिलन के चित्र उरेहे है और इन सभी विषयो की रचना करते समय उनकी ताजगी बराबर बनी रही है। गीत-कवि के रूप मे तो वे अद्वितीय और अनन्य सिद्ध हुए है। उनके प्रणय-गीतो मे उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता सर्वाधिक मात्रा मे प्रस्फुटित हुई है। प्राकृतिक सौदर्य के सदर्भ मे भी उनके कुछ गीत आधुनिक हिन्दी काव्य मे अद्वितीय माने जाते है। भावगत तल्लीनता, अनुभूतिगत ईमानदारी, भाषा-शैली विषयक सहजता और अभिव्यक्ति विषयक ताजगी एव सुन्दरता की दृष्टि से उनकी ये कृतियाँ सहृदय-जनो को बराबर आन्दोलित करती रहेगी।

राष्ट्र दैवत् का आराधक

◇ ◇

डा० सुधीन्द्र

जिस समय से इस राष्ट्र की मुक्ति का महायज्ञ चला है, तब से नर्मदा के प्रदेश मे बैठा 'एक भारतीय आत्मा' भारती की वीणा पर अपने हृदय की भक्ति के स्वरो मे 'हिमकिरीटिनी' की अर्चना के गान गाता रहा है। वह गायक साधक है माखनलाल चतुर्वेदी।

'एक भारतीय आत्मा' नाम मे उनकी आत्मा की आभा उद्भासित होती है और उनका जीवन इन पक्तियो मे मुखरित है

मुझे तोड लेना वनमाली !
उस पथ मे देना तुम फेक।
मातृभूमि पर शीश चढाने
जिस पथ जावे वीर अनेक।

राष्ट्र-दैवत् का वह आराधक है, राष्ट्र-मदिर का वह पुजारी है। राष्ट्र-सग्राम का वह सैनिक है। इस युग के भारत के भाग्य-विधाता गाधी के चरणो मे वह प्रणत है, गणेशशकर जैसे महाप्राण व्यक्तित्व के निकट उसने साधना की दीक्षा ली है और वह भारत के हृदय मे बैठा भारत के स्पदन को अपनी बाँसुरी का स्वर बनाता रहता है। उसकी राष्ट्रीय कविता मे भक्ति का, आराधना का इतना गहरा पुट है कि यदि हिमकिरीटिनी किसी दिव्य-शक्ति का और भारत किसी ईश्वरावतार का नाम हो तो उसे नि सकोच एक भक्त-कवि कह सकते है। भक्ति हृदय की रागात्मक वृत्ति की पुजीभूत प्रतिमा ही तो है। वह भक्ति किसी अलक्ष्य ईश्वर की न होकर एक सजीव साक्षात् देवता राष्ट्र के प्रति है। हृदय से निकली उसकी प्रत्येक कविता हिमकिरीटिनी का नैवेद्य हो जाती है। 'त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'।

तुलसी के लिए जिस प्रकार 'सियाराममय सब जग जानी' था उसी प्रकार ससार हिमकिरीटिनीमय है। तुलसी के लिए जो राम थे वही 'एक भारतीय

आत्मा' के लिए हिमकिरीटिनी भारत-माता है।

हाय राष्ट्र-मदिर मे जाकर
तुमने पत्थर का प्रभु खोजा।

'एक भारतीय आत्मा' की कविताएँ कवि और राष्ट्र की जीवन-कथा के सस्मरण है

वीर-पूजा मे उसका हृदय उच्छ्वसित हो उठा

'देह ?'—प्रिय यहाँ कहाँ परवाह
टँगे शूली पर चर्मक्षेत्र,
'गेह ?'—छोटा-सा हो तो कहूं
विश्व का प्यारा धर्मक्षेत्र।

गाधीजी की आत्मा की विजय का इगित देखिए

फिसलते काल-करो से शस्त्र,
कराली कर लेती मुँह बन्द।

गाधी भारत-द्रौपदी का चीर बढाने वाले कृष्ण हो जाते हैं

द्रौपदी भारत-माँ का चीर
बढाने दौडे यह महाराज,
मान ले, तो पहनाने लगूँ
मोरपखो का प्यारा ताज।

और

उधर वे दु शासन के बन्धु
युद्ध-भिक्षा की झोली हाथ,
इधर ये धर्मबन्धु नय-सिन्धु
शस्त्र लो, कहते हैं—'दो साथ।'

से तो कृष्ण के यहाँ महाभारत युद्ध के पहले दु शासन-बन्धु (दुर्योधन) और धर्म-बन्धु (अर्जुन) के सहायता माँगने की स्मृति सजग हो जाती है। और यह आधुनिक कृष्ण कहता है

'पलट जाय चाहे ससार,
न लूँगा इन हाथो हथियार।
'प्यार ?'- –उन हथकडियो से और
कृष्ण के जन्मस्थल से पार।
हार कधो पर चुभती हुई
अनोखी जजीरे है हार।

(नि शस्त्र सेनानी)

'एक भारतीय आत्मा' की कविता मे राष्ट्रीय भक्ति के ये प्रतीक मिलते है

१	'दु शासन' के भाई	अग्रेज जाति
२	'धर्म' के भाई	भारतीय नेता
३	महाभारत	महासमर
४	कौरव-पाण्डव	दो पक्ष
५	शस्त्र न लेने की प्रतीज्ञा	अहिंसा नीति (नि शस्त्र-नीति)
६	कृष्ण (मोहन)	गाधी (मोहनदास)
७	कारागार (जन्म-स्थान)	कृष्ण-मन्दिर

इस प्रकार एक राष्ट्रीय प्रतीकवाद इनकी कविताओ मे मिलता है। कर्मवीर गाधी के भारतीय भूमि पर पदार्पण करते ही असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह द्वारा राष्ट्रीय जीवन मे क्रान्ति हुई थी।

शस्त्र के स्थान पर गाधी ने जनता के हाथ मे नैतिक आत्मिक अस्त्र दिया। जेल और हथकडी-बेडी का मार्ग स्वाधीनता का मार्ग हुआ। रक्तदान लेने के बदले उन्होने रक्तदान देने का धर्म राष्ट्रीय योद्धा के आगे प्रतिष्ठित किया। राष्ट्र की, बलिवेदी को अपने मस्तक से सजा देने की दीक्षा 'सत्याग्रह' ने दी। हिन्दी कवि ने इसका मगलाचरण गाया और प्रशस्तियाँ वीणा पर छेडी। कठ-कठ से बलि-पथ के गीत मुखरित हुए। बलिदान की भावना ने सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति पायी। 'एक भारतीय आत्मा' की पुष्प की अभिलाषा कविता मे

चाह नही मैं सुरबाला के गहनो मे गूँथा जाऊँ।
चाह नही प्रेमी माला मे बिंध प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नही सम्राटो के शव पर हे हरि, डाला जाऊँ।
चाह नही देवो के सिर पर चढूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड लेना बनमाली ! उस पथ मे देना तुम फेक।
मातृभूमि पर शीश चढाने, जिस पथ जावे वीर अनेक ।।

श्रद्धा के किस पावन मुहूर्त मे मानस की इस मुक्ता का जन्म हुआ था कि जब राष्ट्र-भारती की माला मे यह गुँथा तो इसकी अनुकृति और प्रतिकृति मे असख्य मुक्ता लाये गये, परन्तु वह अब भी इन सब मुक्ताओ मे सुमेरु ही है।

कारागार ऐसे बलिपथी के लिए कृष्ण-मदिर था, हथकडी माला थी, राष्ट्र-नेता के सकेत पर सुरपुर भी हेय और रौरव भी प्रिय था, पृथ्वी उसकी शैया थी, आकाश उसका आच्छादन।

कागो का सुन कर्तव्य-राग-कोकिल-कलरव को भूल-भूल,
सुरपुर ठुकरा, आराध्य कहे तो चल रौरव के कूल-कूल,

भूखड बिछा, आकाश ओढ, नयनोदक ले, मोदक प्रहार,
ब्रह्माड हथेली पर उछाल, अपने जीवन-धन को निहार।
('बलिपथी से', हिमकिरीटिनी)

उस युग मे समग्र भारत एक कारागार था। इसकी अभिव्यक्ति कितनी सुन्दर है

जिसके रवि ऊगे जेलो मे,
सन्ध्या होवे वीराने मे
उसके कानो मे क्यो कहने
आते हो ? यह घर मेरा है ?
क्या कहा, कि यह घर मेरा है ?

उसकी आँख मातृभूमि से नक्षत्रो तक रेखा खीचती है। दमन की यातना उसे साधना है, बलिदान उसकी आत्मा का ओज है और उसकी कल्पना आराधिका है .

मैं बलि का गान सुनाती हूँ
प्रभु के पथ की बन कर फकीर।

वह बलि-धारा-पथी है, कष्टो के उपकरण से 'मरण त्यौहार' मनाता है :

मातृभूमि-हित के कष्टो का राज्य पुन पाऊँ सविवेक,
सिहासन मिलने के पहले क्या यह करती हो अभिषेक ?
आता है स्वातन्त्र्य-देवता उसके चरण धुलाने मे,
सिखा रही हो साथी होऊँ, अविरल अश्रु बहाने मे।
(आँसू, हिमकिरीटिनी)

राष्ट्र-देवता 'हिमकिरीटिनी' की उपासना मे वह अपने हृदय का रक्त, प्राणो का अर्घ्य चढाता है ·

'हिमकिरीटिनी' ने मगाए है सखी तब प्राण।

वह कृष्ण का आराधक है, परन्तु कृष्ण तो राष्ट्र के प्राणो मे एकाकार हो गया है। उनके हृदय मे बसा वृन्दावन उनके चर्म-चक्षु के आगे 'हिमकिरीटिनी' का शृगार धारण करके आता है और तब उनकी समस्त आराधना और उपासना कारावास और सूली की तपस्या तथा मरण की साधना बन जाती है।

रुधिर हो जाय अरे बेस्वाद,
लाडला मरण-ज्वार जो न हो ?

इस युग-देवता गाधी ने राष्ट्र को जो सबसे बडी देन अहिसक वीरता बलिदान की दी है, वही इस योद्धा और क्रान्तिकारी भक्त और प्रेमी कवि के जीवन का सम्बल है। वही उसका नैवेद्य है।

जब सिपाही उठे, सेनानी उठे ललकार,
मातृबन्धन मुक्ति का जिस दिन मने त्योहार,
जबकि जन-पथ लाल हो, हो किसी की तलवार,
आयगा सिर कटाने उस दिवस मालाकार।
(हिमकिरीटिनी)

वह राष्ट्र की स्वाधीनता मे सग्राम का एक सैनिक है, जो कहता है

बोल अरे सेनापति मेरे मन की घुण्डी खोल,
जल-थल-नभ हिल-डुल जाने दे, तू किंचित् मत डोल।
दे हथियार या कि मत दे तू पर तू कर हुकार,
ज्ञातो को मत अज्ञातो को तू इस बार पुकार।
धीरज, रोग, प्रतीक्षा, चिन्ता, सपने बने तबाही,
कह 'तैयार' द्वार खुलने दे, मैं हूँ एक सिपाही।

उनकी कविताएँ राष्ट्रीय प्रगति की पगध्वनिया है, जिनमे 'मुँह बन्दी', 'भारत-रक्षा', 'रौलट बिल' और 'जलियाँवाला बाग' है

मै 'मुँह-बदी' का हार लिए
'मत लिखो' कठिन ककण धारे
'भारत रक्षा' के शूलो की
पाँवो मे बेडी झनकारे।
'हथियार न लो' की हथकडियाँ,
'रौलट' का हिय मे घाव लिये,
डायर से अपने लाल कटा,
कहती थी आँचल लाल किये।

वर्ड्सवर्थ ने कहा है, कविता प्राणमय मनोवेगो की सहज स्फुरित अभिव्यक्ति है।

कविता की यही अभिव्यक्ति 'एक भारतीय आत्मा' की भी है

माखनलाल की कविता मे अनुभूति की वास्तविकता है। उसके पग शून्य मे नही, मिट्टी की धरती पर है। इसीलिए उसमे प्रभविष्णुता है। दमन की ज्वाला मे कवि ने वेदना की अनुभूति पायी है, परतन्त्र देश की यातना मे कवि ने व्यथा की निर्झरिणी खोजी है। इसलिए माखनलाल की कविता मे रस मे डुबाने की क्षमता-ममता है।

स्वाधीनता सग्राम के रूप मे कवि ने कृष्ण मंदिर की यात्राएँ की है। १९३० के सत्याग्रह के समय लिखी गई उनकी 'कैदी और कोकिला' कविता मे कारावास

मूर्तिमान हो गया है

बन्दी सोते है, है घर-घर श्वासो का,
दिन के दुख का रोना है निश्वासो का,
अथवा स्वर है लोहे के दरवाजो का,
बूटो का, या सन्त्री की आवाजो का,
या गिननेवाले करते हाहाकार।
गिनती करते है—एक, दो, तीन, चार।
मेरे आँसू की भरी उभय जब प्याली,
बेसुरा, मधुर, क्यो गाने आई आली ?
क्या हुई बावली ? अर्द्ध रात्रि को चीखी, कोकिल बोलो तो !
किस दावानल की ज्वालाएँ है दीखी ? कोकिल बोलो तो !

कवि के हृदय की ज्वाला अश्रुसिक्त होकर कैदी की इस आर्तवाणी मे घुल गई है

क्या ? —देख न सकती जजीरो का गहना ?
हथकडियाँ क्यो ? यह ब्रिटिश राज का पहना,
कोल्हू का चर्रक-चूँ ? जीवन की तान,
गिट्टी पर लिक्खे अँगुलियो ने गान ?
हूँ मोट खीचता लगा पेट पर जूआ,
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड का कूआ।
दिन मे करुणा क्यो जगे, रुलानेवाली ?
इसलिए रात मे गजब ढा रही आली !
इस शान्त समय मे, अन्धकार को बेध,
रो रही क्यो हो ? कोकिल बोलो तो !
चुपचाप, मधुर विद्रोह-बीज इस भाँति,
बो रही क्यों हो ? कोकिल बोलो तो !

'युग का आकर्षण अपने परमत्व से अस्तित्व का पतन है।' प्रश्नोपनिषद् की इस उक्ति की आलोचना मे कवि ने कहा है

'यह यदि कवि के युग-मोह पर नुक्ताचीनी है, तो अवतारवाद पर इसे कडवी आलोचना कहना पडेगा। किन्तु युग का गायक, युग के परिवर्तनो को आँखे मद-कर अपनी कला को पुरुषार्थमयी नही रख सकता।'

('हिमकिरीटिनी' की भूमिका)

वैष्णव-भक्त और राष्ट्र-सेवी की अनुभूतियाँ 'एक भारतीय आत्मा' मे एकाकार हुई है। कवि-हृदय राष्ट्र-दैवत् के चरणो मे समर्पित है। राष्ट्र और भगवान 'एक भारतीय आत्मा' के लिए एक ही वस्तु के दो नाम

उठा दो वे चारो कर-कज देश को लो छिगुनी पर तान,
और मैं करने को चल पडूँ तुम्हारी युगल-मूर्त्ति का ध्यान।
लोकमान्य तिलक मे उन्होने 'वसुधा के मोहन' का रूप देखा है
दुखियो के जीवन लौट पडो, मेरे घन-गर्जन लौट पडो।
जसुदा के मोहन लौट पडो, सितकालीमर्दन लौट पडो।

अगणित कसो ने सम्मुख सहसा श्रीकृष्ण खडा पाया।[1]

हाँ, उस छलिया की, साँवलिया की, टेर लगे, धीरे-धीरे गाते-गाते भी वे नही भूलते कि—

तरु-लता सीखचे, शिला-खड दीवार,
गहरी सरिता है, बन्द यहाँ का द्वार,
बोले मयूर जजीर उठी झनकार,
चीते की बोली, पहरे का होशियार।
मै आज कहाँ हू, जान रहा हूँ बैठ यहाँ धीरे-धीरे।

सारा भारत राष्ट्र उनके लिए कस का बदी है। इसलिए उसके हृदय की रस धारा कालिन्दी है। काले अन्तस्तल से छूटी कालिन्दी की धार। उनकी आत्मा आराध्य के प्राणो पर लहराने वाली नर्मदा है

जिस दिन रत्नाकर की लहरे, उनके चरन भिगोने आये,
जिस दिन शैल-शिखरियाँ उनको रजत-मुकुट पहनाने आये,
लोग कहे, मै चढ न सकूगी, बोझीली, प्रण करती हूँ सखि।
बनी नर्मदा मैं उनके प्राणो पर नित्य लहरती हू सखि।
मै अपने से डरती हूँ सखि।

इसी भक्ति और अध्यात्म की भावना से आलोचको ने उन्हे रहस्यवादी कहा है परन्तु माखनलालजी जीवन के सभी उपकरणो को लेकर कविता की राह से अध्यात्म की ओर जाते है। वे शरीर से योद्धा, हृदय से प्रेमी, आत्मा से विह्वल भक्त और विचारो से क्रान्तिकारी है। उनके भीतर के कवि, योद्धा, विचारक, प्रेमी और भक्त सब-के-सब एक ही लक्ष्य की ओर चलते है और साधना की आग मे पिघल सभी कवि हो जाते है। जीवन की गौ को दुहकर अपनी साधना की आँच मे उसे तपाकर वक्रोक्ति का जामन देकर उसे उन्होने भावना की मथानी मे मथा है और उनकी अभिव्यक्ति, उनकी कविता, माखन जैसी कोमल, मधुर और पवित्र हो गई है।

---

१ तिलक (हिमकिरीटिनी)

बायरन, भारती और माखनलाल चतुर्वेदी

◇ ◇

शचीरानी गुर्टू

किसी भी कृतिकार की नैसर्गिक स्वयम्भू वृत्तियाँ व्यष्टि की इकाइयो से परे जब चरमोत्कर्षपूर्ण विराट् की साधना मे प्रवृत्त होती है तभी उन इकाइयो मे सार्वभौमिकता आती है अर्थात् शेष के सदर्भ मे अशेष की अवतारणा द्वारा व्यापक पैमाने पर विश्व-विकास की परम्परा कायम होती है। आतरिक सस्कार उमगकर कलात्मक पूर्णता के भीतर जब एक समग्र पूर्णता, जिसे आत्मिक पूर्णता का ऐश्वर्य या प्रकाश वैभव कह सकते है, बहिर्मुखी कार्यशक्ति को अतर्मुखी जीवनदृष्टि मे केन्द्रित कर उसके सुभग सयोग द्वारा अतर्भूत चेतना को मुक्त रूप मे प्रवाहित करते है तो कवि की प्राणवत प्रतिभा सर्वथा नये रूप मे उभरकर सामने आती है।

उक्त तीनो महाकवियो—बायरन, सुब्रह्मण्यम भारती और माखनलाल चतुर्वेदी ने साहित्य की मानवतावादी परम्परा को आगे बढाते हुए नये मतवादो की प्रस्थापन की। उन्होने जिस साहित्य की नीव रखी वह जनवादी विचारो एव नई समाज-व्यवस्था के निर्माण की प्रेरणा से ओतप्रोत था। वे बाह्य निसर्ग को अतर्विश्व से पृथक् केवल छाया-प्रकाश की चचल सृष्टि के रूप मे न आँककर अपनी बेधक दृष्टि से विश्वविधायिनी शक्ति के रूप मे उसकी समग्रता मे ही अधिक पैठने के लिए चेष्टाशील रहे। चतुर्वेदीजी ने कवि के दायित्व पर अपना अभिमत प्रकट करते हुए लिखा, "लोक-जीवन की उथल-पुथल और राग-रोष को अगर समय की बैलगाडी मे से कवि नही उठा सका तो केवल महासागरो पर लिखकर और गिरि-शिखरो के गुण गाकर क्या होगा ?"

सचमुच, विडम्बनाओ को लेकर न तो कोई कवि अपनी विशिष्टता के प्रति आस्थावान हो सकता है और न ही उसमे उन्मुक्त विश्वासो की नई सभावनाओ को अधिक जागरूक और प्रशस्त बनाने की प्रेरणा उत्पन्न हो सकती है। उसकी कल्पकता जब स्वाभावत विचारकता मे परिणत होती है तो इसका अर्थ है कि उसका 'स्व' विकसित होकर लोक-हित की भावना मे मूर्त होता है। अपने

एकागी एव सकीर्ण प्रयोजनो को विराट् मे विस्तार देना एक साधना है। इस एक ध्रुव पर टिककर ही विकासोन्मुख प्रवृत्तियाँ 'सत्य शिव' को ग्रहण करने के लिए अपने निजी कोण का निर्माण करती है। सबल अनुभूतियाँ साहित्य का प्राण है। अनुभूति कोष का आपूर्ण कलश ही जब 'निज' की परिधि मे परायापन मिटा कर सबको अपने आप मे समेट लेता है तब उच्चतर परिणतियो मे 'अह' का उद्घोष नही वरन् उसके व्यापक 'अह' मे आत्मसात् समूची मानवता के ऊर्जस्वित स्वर स्पन्दित होते है, दूसरे शब्दो मे 'व्यक्ति' नही वरन् व्यष्टि मे समाहित समष्टि मुखर हो उठती है।

व्यक्तित्व की यह दृढता ही कवि के जीवन-दर्शन का सबल प्रमाण है। जीवन के प्रति इतनी दृढ एव अटूट आस्था गतानुगतिकता की लीक छोडकर सर्वथा नये पथो की ओर अभियान कर सकने का साहस प्रदान करती है। चतुर्वेदीजी के शब्दो मे "वह समय के पदनिक्षेपो से बचकर नही चलेगी। वह युग का, वस्तुस्थिति का सामना करेगी और उसे अमरता प्राप्त करने की अवस्था तक ऊँचा उठा देगी।" एक अन्य स्थल पर वे लिखते है, "दृष्टि का काम बाहर को देखना भी है और भीतर को भी। जब वह बाहर को देखती है, तब मनोभावनाओ के ऐसे चित्रण कलम पर आ जाते है जिन्हे समय के द्वारा शीघ्र पोछा नही जा सकता यदि मनोभावनाओ की सतह ऐसी हो जिसमे अगणितो का उल्लास और उनकी भावना प्रतिबिम्बित हो उठी हो और जिनकी कहानी अपने अवतरण मे, दुहराहटो के दाग से बची रह सकी हो। यही कारण है कि नेत्र से दीखनेवाली दुनिया, आँख मूँद लेने के बाद भी दीखती है और सूझती रहती है, इसीलिए वह समय के हाथो मिटाये नही मिटती। इसलिए, समय के निशानो वाली वस्तु समय बदलते ही अपना अस्तित्व खोने लगती है और समय का नियत्रण करने वाली, समय से परे की वस्तु विश्व मे क्लासिक या सस्कृत के नाम से पुकारी जाती रही है। युग का लेखक न तो खुली आँखो से देखकर उलट-पुलट होते जगत् पर रक्तदान करने से चूक सकता है, न मुँदी आँखो की दुनिया मे महामहिम मानव की कोमलतर और प्रखरतर मनोभावनाओ की पहुँच तक जाने से ही रुक सकता है।"

जो युग को ललकारते है, सामयिकता को चुनौती देने की क्षमता रखते है, साथ ही भीतर पैठकर मनोभावनाओ को उद्वेलित करते है, उन्ही की सूझ, उन्ही की मौलिक प्रतिभा, उन्ही की जिजीविषा बहुजन जिजीविषा के उदात्त रूप मे प्रकट होकर मानवतावाद की कसौटी बनती है। इस सदर्भ मे जो सूक्ष्म अतर्दृष्टि और मूलभूत तत्त्वो की समझ अपेक्षित होती है उसी के आख्याता के रूप मे चतुर्वेदीजी ने निम्न उद्गार प्रकट किये

"सूझ तो समय के तीन टुकडो के अत करण मे से गुजरकर उन्हे छेदता हुआ, नित्य नवीनता के साथ बढता जानेवाला मानवता का वह डोरा है जिस पर

सम्पूर्ण विश्व के जड-चेतन का भान ठहरा हुआ है। इसलिए सूझ के स्वामी एक युग बनाते है, दूसरे युग का पालन करते है और तीसरे युग को उखाडकर फेकते जाते है। सूझ मानो मस्तिष्क के मौसम का सकेत, हृदय के हाथ-पॉव का दिशा-दर्शन और पथ-सचालन है। सूझ विकास की सॉस, विवेककी धडकन और अस्तित्व का सवेदनशील परम कौशल है। जब सूझ खुली आँखो युग के शस्त्रो पर जग चढते देखती है तब युगध्वस मे से वह मानव का 'प्रलयकर' और 'शकर' भाव ढूँढ निकालती है और उस दिशा मे युग की वाणी बन जाती है। जब सूझ मानव-मनोभावनाओ के नये डोरे और अस्तित्व पर कामना, अनुभूति और समर्पण के कसीदे काढने लगती है, तब लोग युग-युगो तक रक्षा करने के लिए, अपनी यादो की तहो मे, अत करण के पदो मे और विकास की अमर अगुलियो की उन खिल-वाडो मे छुपाकर रखते है, जिन्हे उन्होने समय के बीते सिरे के रूप मे इतिहास नाम भले ही दिया हो, किन्तु जिस मनोभाव, जिस दुख, जिस अनुभूति, जिस कल्पना को, मानव समझता है कि भावोके युगोको उकसाने, दुलराने और दिशा-दर्शन मे काम आती रहेगी।

"सॉस और सूझ जिस तरह एक-दूसरे के विद्रोही नही, उसी तरह एक तरफ विश्व के प्रलयकर और कोमल परिवर्तन तथा युग का निर्माण तथा दूसरी तरफ हृदयोन्मेष तथा विश्व के विकास के वैभवशाली कौशल दोनो मे कही विद्रोह नही दीख पडता। क्योकि एक कवि के रक्त की पहचान और सिर का दान मागती है, और दूसरी वस्तु के समा सकने के कोमलतर क्षणो के उच्चतम समर्पण का सबूत चाहती हूँ। एक कवि का निश्चय और दूसरी कविता की अनुभूति बनकर रहना चाहती है। इसमे विषमता कहॉ ? क्षण-क्षण बदलने का स्थायी स्वभाव रखने वाले, सम्मुख के जगत् मे, और उसकी परिस्थितियो मे, कवि चाहे जैसे विद्रोह और सघर्ष उपस्थित कर दे, किन्तु हृदय और मस्तक की ऑखो पर प्रतिबिम्बित होते प्रकट और अप्रकट कौशल मे आपस का विद्रोह कैसा ?"

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि मागल्य द्रष्टा, शब्द-शिल्पी सत्य शिव सुन्दरम् के उपासक और साहित्य के नवोन्मेष के कवि का सम्बन्ध निरन्तर कल्पनालोक के साथ होने पर भी धरती के साथ जुडा है। साहित्य की सम्पूर्ण उपलब्धि और चिन्तन-विवेचन मे भले ही भाषान्तर प्रकट हुए हो किन्तु हर कवि मनीषी के सृजन मे एक सुसगत जीवन अनुस्यूत रहता है।

चतुर्वेदीजी की प्रतिभा का पौरुष भी ऐसी ही एकोन्मुख भावना का परिणाम है। उनके बहुकार्य व्यापृत जीवन मे यह आत्म-बल अनन्य भगवद्-भक्ति से ही उत्प्रेरित हुआ था

कौन गा उठा ! अरे !
कर क्यो ये पुतलियॉ अधीर।

इसी कैद के बन्दी है
वे श्यासल-गौर शरीर !
पलको की चिक पर
हृत्तल के छूट रहे फव्वारे
निश्वासे पखे झलती है
उनसे मत गुजारे
यह व्याधि मेरी समाधि है,
यही राग है त्याग,
क्रूर तान के तीखे शर,
मत छेदे मेरे भाग ।
काले अन्तस्तल से छूटी
कालिन्दी की धार
पुतली की नौका पर लायी
मै दिलदार उतार ।
बादबान तानी पलको ने,
हा ! यह क्या व्यापार ?
कैसे ढूँढू हृदय-सिन्धु मे,
छूट पडी पतवार !
भूली जाती हूँ अपने को
प्यारे, मत कर शोर
भाग नही, गह लेने दे,
अपने अम्बर का छोर ।

एक अन्य पद मे—

अमर अविनाशी, नयन, मन के समर्पण !
कब मिलोगे, साँस की पहिचान की मीठी कुरेदन ?

चतुर्वेदीजी के पिता पडित नन्दलाल चतुर्वेदी परम वैष्णव थे, सूर और तुलसी मे उनकी दृढ आस्था थी, अतएव इसी का प्रभाव इनके जीवन पर पडा। भारती की भाँति इनके जीवन का अधिकाश भाग भी सम्पादन-कार्य करते बीता। सन् १९१३ मे जब 'प्रभा' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तो उसके सम्पादकीय विभाग मे ये काम करते रहे। कानपुर के 'प्रताप' का भी इन्होने कुछ अर्से तक सफल सम्पादन किया। सन् १९१९ मे प० विष्णुदत्त शुक्ल और माधवराव सप्रे की प्रेरणा से इन्होने जबलपुर से 'कर्मवीर' साप्ताहिक पत्र निकाला जिसने साहित्यिक और राजनीतिक क्षेत्र मे धूम मचा दी। एक निर्भीक और कर्मठ पत्रकार के रूप मे इनमे क्रमश: विचार-स्वातन्त्र्य, बौद्धिक प्रखरता और क्रान्ति-

चेतना का उन्मेष हुआ। लोकमान्य तिलक, महात्मा गाधी, सरदार पटेल, गणेश-शकर विद्यार्थी, जमनालाल बजाज आदि के सम्पर्क से इनमे दिनोदिन स्वावलम्बन और आत्माभिमान का भाव दृढ होता गया और सन् १९२१ मे ये सक्रिय रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन मे कूद पडे और इन्हे कितनी ही बार जेल जाना पडा। इस तरुण कवि के अतर मे सघर्ष का ज्वालामुखी धधक रहा था। वह भावुक गीतकार नही, वरन् एक सच्चा सिपाही था

सिर पर प्रलय, नेत्र मे मस्ती,
मुट्ठी मे मन चाही
लक्ष्य मात्र मेरा प्रियतम है,
मैं हूँ एक सिपाही।

उस समय उन्होने अपनी सशक्त लेखनी से बदूक का काम किया। अपने तत्कालीन प्रतिक्रियाओ के मर्मभेदी कशाघातो से उन्होने वीरत्व और उदात्त भावनाओ की सृष्टि की। 'मरण त्योहार', 'जवानी', 'हिमकिरीटिनी', 'सिपाही', 'विद्रोही', 'पुष्प की अभिलाषा' आदि कितनी ही कविताएँ राष्ट्र-प्रेम की सापेक्षता के सदर्भ मे विरची गईं। यहाँ तक कि 'कोकिल बोलो तो' जैसी कविता द्वारा निरीह पक्षिणी के स्वरो मे क्रान्ति का आह्वान किया गया

इन लोह-सीखचो की कठोर पाशो मे,
क्या भर दोगी ? बोलो निद्रित लाशो मे ?
क्या ? घुस जायेगा रुदन
तुम्हारा नि श्वासो के द्वारा,
कोकिल बोलो तो !
और सबेरे हो जायेगा
उलट-पुलट जग सारा,
कोकिल बोलो तो !

'हृदय की चिडिया' बडी ही अद्भुत है, वह अपनी उडान द्वारा भूमि से नभ तक को नाप लेती है और प्राण के डोरो पर चढी प्रतिपल पख फटकारती है

खीझ मे यह लाल होती
ठोकरो मे काल होती,
द्वेष की डोरो चढी यह,
एक फुत्कृत व्याल होती,
अमित डोरे छोडती है,
अमित बधन तोडती है,
लक्ष्य से प्रतिपल मचलकर
अमर नाता जोडती है

जो गिरे इसके करो से,
वे गिरे अस्तित्व खोकर,
जो चढे इसके सहारे,
चढ गये आकाश के सर।

इनकी विद्रोही आत्मा समय के गत्यात्मक वेग से मानो मचल उठी है। इसके जादू-भरे प्राणो की ऊष्मा जैसे भारतीय आत्मा मे जाग उठी है .

आज जागा, कोटि कण्ठो का
बटोही मान लेकर,
ढूँढने आ गई बन्धन मुक्ति-पथ
पहचान लेकर ।

मनीषी, स्थितप्रज्ञ, कर्मठ सेनानी, देशभक्त, अदम्य प्रेरणा और प्राणोत्सर्ग का धनी, जिन्दगी के थपेडो को सहता असमाप्त लम्बी पगडडी पर सुदृढ कदमो से चलते रहने वाला चिर यायावर जो सच्चे मानो मे युग-पुरुष है, जिसकी वज्र लेखनी युगीन धाराओ मे मोड उपस्थित करने की क्षमता रखती है और जो अपने उद्दाम ओज से समय की दूरियो को नापने के लिए स्थिर गति से सदा अग्रसर है

तू युग की हुकार,
अमर जीवन की वाणी
तेरी साँसे अमर हो उठे,
युग 'कल्याणी ।
तेरा पहरेदार, विन्ध्य का दक्षिण उत्तर,
तेरी ही गर्जना, नर्मदा का कोमल स्वर,
तेरी जीवित साँस आज तुलसी की भाषा,
तेरा पौरुष सतत अमर जीवन की आशा।
जाग-जाग उठ तपी
तुझे जग का आमत्रण,
विभु दे तुझको उठा,
सौप कर अमृत के कण।
उठ ओ युग की अमर साँस, कृति की नव आशा,
उठ ओ यशोविभूति, प्रेरणा की अभिलाषा.
तेरी आँखो सजे विश्व की सीमा-रेखा
अँगुलियो पर रहे, जगत् की गति का लेखा।

समय की चट्टान के बोझ से ये टूटना नही चाहते, उसे अपने ऊँचे सीने से ओटते हुए ?

'मत दबा समय की चट्टानो के नीचे'

जीवन की धूप-छाँह मे अदम्य आकाक्षाओ की डाली लिये यह युगपुरुप किमी से हार मानने वाला नही है—

दु ख पुरुषार्थी की करवट है, सुख श्रम की परिणति का घर है
धूप-छाँह से कैसा झगडा कभी इधर है, कभी उधर है।

समय की गति के साथ इनकी काव्यधारा मे कितने ही मोड उपस्थित हुए। अद्‌भुत अभिव्यजना नई दृष्टि और शिल्प-सौष्ठव ने इनकी जागरूक चेतना को बडे ही व्यापक और उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित किया। प्रेम, शृगार और रहस्य भावनाओ से प्रेरित, प्राकृतिक सौन्दर्य, भक्ति और दार्शनिकता का पुट लिये इनकी कितनी ही कविताएँ सिरजी गई। कही मस्ती, अल्हडपन और भावावेश, कही प्रेम और विरह की गहरी मसोस, कही दैन्य और मूक समर्पण, पर साथ ही प्रबल पुरुषार्थ और ओजस्वी मनस्विता—इस प्रकार एक व्यापक परिप्रेक्ष्य मे अनेक दृष्टिभगियो से इन्होने विविध प्रसगो पर लिखा। पत्नी की मृत्यु के बाद सर्वप्रथम इनकी एक कृति 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक सन् १९१४ मे प्रकाशित हुई। सन् १९४२ मे 'हिमकिरीटिनी', 'और सन् १९४३ मे 'साहित्य देवता' कविता सकलन निकला। तत्पश्चात् 'हिमतरगिनी', 'माता', 'समर्पण', 'वेणु लो गूँजे धरा' आदि इनके अनेक महत्त्वपूर्ण कविता-सकलन प्रकाशित हुए। जीवन से असम्पृक्त, राग, विराग से परे, निर्मोही, निर्लेप, निरभिमान, समस्त झझटझमेलो से दूर, परम्परा का धनी फिर भी परम्पराविच्छन्न, पुरातनता का हामी फिर भी आधुनिकता की ताजी हवा मे साँस लेने वाला नित नूतन उत्साही, जिसने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा की दीप्ति से विगत अर्द्धशती से साहित्य के विभिन्न क्षेत्रो को आलोकित किया। समय-रूपी साँप की फुंकार ने जिसे कभी त्रस्त न किया।

"फुंकरण कर, रे समय के साँप,
कुंडली मत मार, अपने आप
इस सुनहरी दृष्टि से हर बार,
कर चुका—मैं झुक सकूँ—इनकार।
मैं करूँ वरदान सा अभिशाप
फुकरण कर, रे समय के साँप।

क्या, हुआ हिम के शिखर, ऊँचे हुए, ऊँचे उठे
चमकते है, बस, चमक है अमर, कैसे दिन कटे,
और नीचे देखती है अलकनन्दा देख,
उस हरित अभिमान की, अभिमानिनी स्मृति-रेख,
डग बढाकर, मग बनाकर, यह तरल सन्देश,
ऊगती हरितावली पर, प्राणमय लिख लेख।

यो भारतीय वाङ्मय का यह मूक साधक हर प्रसग और हर परिस्थिति मे अडिग, अचल रहकर साहित्य भण्डार की श्रीवृद्धि करता रहा। कवि के शब्दो मे— "घटनाए कभी चाह, कभी कष्ट, कभी उत्तरदायित्व और कभी महज आकर्षण बनकर इस तरह डॉवाडोल करती आयी है कि डॉवाडोल होना मानो मीठा-सा स्वभाव-धर्म बन गया। इतिहास, तर्क, राजनीति, समाज, घटनाचक्र, निर्णय, असन्तोष, आग्रह, लाचारी आदि जीवन की हर कमी जब-जब दूख उठी है, कह उठी है—'मै सत्य हूं, तू असत्य है', उस समय दीख पडनेवाले और दूख उठने वाले प्रकृति, परिस्थिति और तिथि के लिए मानो ठहरना ही नही जानते। मानो जीवन लाचारी है और सबको सिर पर लेकर चलना उस लाचारी का अभिशाप है। कभी-कभी कुछ ऐसा-सा दीख पडता है जो बहुत सुन्दर, मोहक, शक्ति-वर्धक होता है किन्तु यह जानना कठिन होता है कि वह क्या है। कितनी ही पुरानी, कितनी ही दूर की, कही बीती हुई घटना पास आकर इस तरह ठोकर खाती है मानो घटना और जीवन का सम्बन्ध किसी पुराण-पुरुष ने बहुत निकट का गढ दिया हो!" सचमुच जीवन मे न जाने कितने आघात, कितनी चोटे, कितनी ठोकरे खानी पडी है पर इनका स्वयगत सघर्षशील कर्मठ व्यक्तित्व कभी परास्त न हुआ, कभी विजडित न हुआ और अमर लेखनी बिना रुके अविश्रान्त गति से चलती रही

कलम चल पडी, और आज लिखने बैठी है युग का जीवन,
विहँस अमरता आ बैठी त्योहार मनाने मेरे ऑगन,
पानी-सा कोमल जीवन
बादल-सा बलशाली हो आया,
भू पर मेरी तरुणाई का
हँस-हँसकर अमरत्व सजाया।
जगत ललक कर दौडा मेरी
अँगुलियो पर चक्कर खाने,
मेरी साँसो, समय आ गया,
युग-प्रभु का अभिमान सजाने।
अमर-अमर कह, झर-झर झरते, बादल ने अभिषेक सजाया,
अमर हो पडी साधे, अमर, अमर जीवन का रस चढ आया।

बायरन-भारती-चतुर्वेदी

बायरन, सुब्रह्मण्यम भारती और माखनलाल चतुर्वेदी तीनो ही अपनी व्यक्तिवादी परिधि मे पृथक् विशेषताएँ रखते है, किन्तु तीनो ही क्रान्तिचेतना से अनुप्राणित उस स्वच्छद भाव-प्रवाह के प्रवर्तक है जो मौलिक चिन्तक और जाग-

रूक साहित्य-स्रष्टा के रूप मे अपने युग मे अप्रितम है। तीनो ने काल्पनिक कुहासे को चीरकर अपने युग मे एक नये ढग की जनसम्मत प्रेषणीयता सृष्ट की। उनमे शृगारिक कवियो की-सी दीक्षागम्य प्रतीक-सज्जा नही थी। किसी खास तरह के विषयो का बधन भी इनके समक्ष नही था। उस काल की सक्रमणशील काव्य-शैलियो—कोमल-कान्त पदावली, अतिशय आलकारिकता, उक्ति-चमत्कार और कृत्रिम भाव-आरोपण का आकर्षण भी उनके लिए कुछ मानी न रखता था, बल्कि उनकी सीधी-सच्ची जिज्ञासा का परिपाक उनकी निर्व्याज्य काव्य-शैली की विशेषता थी।

रोमाटिक काव्यधारा के बहाव मे न बहकर बायरन ने सर्वप्रथम सामान्य जीवन-खण्डो को जोडकर 'चाइल्ड हैरोल्ड' जैसे जीते सबल मानव-चरित्र का सम्पूर्ण भास कराया। ज्योही उसने मानव मन के रहस्यो मे झाँककर देखा उसने युगीन अभिव्यक्ति का रूप-विधान बदल दिया। मानव-मन कितने ही विरोधाभासो और असगतियो का सम्पुजन है। विचार और कर्म की विभिन्न प्रक्रियाओ से जुडे होने के कारण चरित्रगत एकसूत्रता भी विशृखल हो जाती है। अतएव विभिन्न स्तरो और खडो को लेकर ही किसी चरित्र का निर्माण मनोवैज्ञानिक कसौटी पर खरा उतर सकता है। कहना न होगा अवचेतनीय काव्यानुभूति और अद्भत जीवनानुभूतिके बीच सामाजि क बोध और चेतन मन के नियत्रण के तत्त्वो को सश्लिष्ट कर बायरन ने अपने काव्य मे तथ्य और कल्पना का अद्भुत सम्मिश्रण किया।

बायरन मूलत क्रान्तिचेता है। शब्द और अर्थ के रूपात्मक विधान मे वह सम्पूर्ण भावेन व्यक्ति स्वातन्त्र्य का उद्घोष करता आया है, लगता है विरोधी तत्त्वो से उसका समझौता नही हो सकता, वह इस प्रकार चुनौती देता हुआ सामने आ खडा होता है मानो उसने किसी गभीर जीवन-सत्य को पा लिया है। उसकी कविता मे युवा कल्पना के फल सुशोभित है जो अतीत और आगत के अत सघर्ष मे उसके काव्य की श्रीवृद्धि करते है।

इसके विपरीत सुब्रह्मण्यम भारती और माखनलाल चतुर्वेदी जैसे तप पूत साधको मे जो विद्रोह या क्रान्तिचेतना है वह उन्हे एक प्रगाढ परितोष और आत्मिक विस्तार प्रदान करती है। वह अतर को चीरकरसाहित्य मे उद्देश्योन्मुखता की ओर अनुप्रेरित करने वाली है अर्थात् विधेयात्मक और लोकाश्रित होने से अधिक प्रेरणाप्रद है। दोनो मे आत्मप्रणति का प्रसादन पूरा उतर सका है, उनका निर्व्याज काव्य मानव-आस्था का प्रणयमान अकित करके हृदय उच्छ्वसित कर देता है, आँखे अश्रुकलिल कर देता है और विश्लेष की कातरता मे प्रगाढतर प्रीति पगा देता है।

निर्विवाद है कि तीनो महाकवियो मे दुर्निवार भाव-स्फीति है। तीनो ही

अपने निर्माण से यह सिद्ध करते है कि रूपाकारो और अर्थों की ऐसी कोई नियति नही है जिसका सतरण करके कोई नव्य अभिप्राय व्यक्त न किया जा सके। युग-युग और देशकाल की मूल स्थापनाएँ और मान्यताएँ भले ही भिन्न हो, किन्तु जनवाद के अग्रदूत के रूप मे जो उनकी प्रतिष्ठा और मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखते है वे नये मानवीय प्रतिमानो को विकसित करते हुए इतिहास को मनो-वाछित दिशा मे मोड देने की क्षमता रखते है।

चतुर्वेदीजी के काव्य में प्रतीक-योजना

○ ○

डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी

चतुर्वेदीजी के काव्य मे विषय-वस्तु को सम्प्रेषित करने के लिए प्रतीक-विधान का आश्रय लिया गया है। यहाँ हम प्रतीक की परिभाषा, उसके धर्म और उपादेयता पर विचार ले। वास्तव मे प्रतीक का अर्थ या तात्पर्य है हमारी इन्द्रियो के सम्मुख ऐसी वस्तुओ का प्रस्तुतीकरण, जो अन्य वस्तुओ और भावो का द्योतन कर सके। प्रतीको द्वारा अप्रस्तुत वस्तुओ का बोध या परिज्ञान कराया जाता है। प्रतीको द्वारा ऐसी वस्तुओ को हमारी इन्द्रियो के सम्मुख रखा जाता है, जो अन्य वस्तुओ या अन्यार्थो का बोध करा सके। प्रतीक-विधान के अन्तर्गत दो बाते विशेष ज्ञातव्य है—एक तो विविध अनुभूतियो के बीच चुनाव करने की प्रक्रिया का ज्ञान और दूसरे, इन अनुभूतियो की साकेतिक शक्ति का बोध। ऐसे अनुभव-खण्डो मे से प्रतीको को ग्रहण किया जाना चाहिए, जो अभिप्रेत अर्थ और वस्तु को सवेद्य बना सके। क्योकि प्रतीको के दो प्रमुख कार्य है—एक तो अनुभव-खण्डो को सुव्यवस्थित करने का, और दूसरा उनके सम्प्रेषण का। यहाँ हम बिम्ब और प्रतीक के अन्तर को स्पष्ट कर दे। बिम्ब और प्रतीक का एक प्रमुख अन्तर यह है कि बिम्ब मे वस्तु के निश्चित स्वरूप का सकेत रहता है और प्रतीक मे अनिश्चित स्थिति की प्रधानता रहती है। बिम्बवाद मे कठोर स्पष्टता का आग्रह अधिक प्रबल होता है। यह आग्रह प्रतीकवाद की अस्पष्टता और रहस्य वृत्ति के प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न हुआ है। वास्तव मे बिम्बविधान के अन्तर्गत मूर्तीकरण और चित्रात्मकता की जो प्रवृत्ति उपलब्ध होती है, उसका प्रतीकवाद मे अभाव रहता है—प्रतीक किसी भाव, विचार या वस्तु का पूर्ण चित्रांकन न कर मात्र साकेतिक अभिव्यक्ति करता है। प्रतीक की इस दृष्टि से स्वतत्र स्थिति होती है—वह सक्षिप्त और पूर्ण होता है जबकि बिम्ब विवरणपूर्ण तथा उपमेय को स्पष्ट करने के लिए होता है।

चतुर्वेदीजी के काव्य मे प्रतीक-विधान मिलता है, प्रतीकवाद नही। अर्थात्

उन्होने भावो के सकेतार्थ, प्रतीको का प्रयोग तो किया है, परन्तु उनके काव्य मे फ्रेंच प्रतीकवादी धारा अनुपलब्ध है। प्रतीकवादियो, जेरार्ड द नरवल, एडगर एलन पो, बोद्लेयर, रिम्बो या मलार्मे की भॉति चतुर्वेदीजी के काव्य मे धूमिलता और अस्पष्टता का आग्रह नही मिलता। प्रतीकवादियो की-सी असामाजिकता एव पलायनवादी प्रवृत्ति का भी चतुर्वेदीजी के काव्य मे अभाव है। वे जीवन से पलायन करने वाले नही, उसे आलिगन करने वाले कवि है। प्रतीकवादियो की भॉति चतुर्वेदीजी के काव्य मे जीवन की वास्तविकता को नकारने की प्रवृत्ति नही है। चतुर्वेदीजी का काव्य निषेध पर आधृत नही, वे तो जीवन की स्वीकृति के कवि है। साथ ही साथ उन्होने फ्रेंच प्रतीकवादियो, विलियर या पॉल वेलरी की भॉति एक्सेल या तेस्त जैसे घोर असामाजिक व्यक्तिवादी, पलायनवादी चरित्र-नायको की सृष्टि भी नही की। इसलिए हम कह सकते है कि उनके काव्य मे प्रतीको का प्रयोग तो किया गया है, परन्तु किसी भी स्थिति मे उनकी काव्य-प्रवृत्ति को फ्रेंच प्रतीकवादियो के निकट नही रखा जा सकता।

चतुर्वेदीजी के काव्य मे प्रयुक्त प्रतीको को हम पॉच कोटियो मे विभाजित कर सकते है :

१ अतीत सस्कृति के प्रतीक
२ ईसाई धर्म के प्रतीक
३ आध्यात्मिक प्रतीक
४ ऐतिहासिक प्रतीक
५ प्रकृति प्रतीक

अतीत सस्कृति के प्रतीक

इस कोटि के प्रतीको को हम तीन श्रेणियो मे विभाजित कर सकते है

(अ) रामायण पर आधृत प्रतीक
(ब) महाभारतयुगीन प्रतीक
(इ) इतर पौराणिक प्रतीक

(अ) रामायण पर आधृत प्रतीक चतुर्वेदीजी की कविता प्रमुख रूप से राष्ट्रीयता के उन्मेष की कविता कही जा सकती है। उनकी रचनाओ का प्रमुख प्रतिपाद्य ही राष्ट्रीयता है। राष्ट्रीय भावना का प्रकटीकरण दो रूपो मे उनके काव्य मे हुआ है—एक तो पराधीन भारत मे स्वाधीनता की चेतना जगाने के रूप मे और दूसरे, स्वतत्र भारत की विभिन्न समस्याओ की अभिव्यक्ति के रूप मे। चतुर्वेदीजी ने सास्कृतिक प्रतीको के प्रयोग द्वारा, एक प्रकार से राष्ट्रीयता और सस्कृति के सम्बन्ध को सुदृढ किया है। जब तक समाज का अपनी सस्कृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित नही होता, तब तक राष्ट्रीयता

की भावनाएँ उसमे पनप ही नही सकती। इसीलिए चतुर्वेदीजी ने अपने काव्यार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए रामायणयुगीन सस्कृति से विभिन्न प्रतीक चुने। उनके काव्य की एक और विशेषता यह कही जा सकती है कि उन्होंने भक्ति और राष्ट्रीयता की भावनाओ की समुचित अभिव्यक्ति की। उनके काव्य मे भक्ति और देश-प्रेम एक-दूसरे के पूरक बन गये। इसीलिए जब कवि भगवान् के अवतरण की कामना प्रकट करता है, तो उसके पीछे भावना सक्रिय रहती है, देशोद्धार की। कवि ब्रिटिश शासको के अत्याचारो से ऊबकर ही भगवान् राम से पुन. अवतरित होने का निवेदन करता है :

पधारो, एक बार फिर सुने
धनुष की वह अद्भुत टकार
पधारो मेघनाद दब जाय
हो पडे जहाँ कठिन हुकार।

इस उद्धरण मे मेघनाद प्रतीक है, अत्याचारी ब्रिटिश शासको का।

कवि का ऐसा विश्वास है कि देश मे अज्ञान-ध्वान्त छाने के कारण ही राष्ट्रीय चेतना उद्दीप्त नही हो रही। कवि इस अज्ञान के प्रसार का कारण देश मे सुयोग्य मनीषियो का अभाव ही स्वीकार करता है। इसी भावार्थ के प्रकाशन हेतु कवि ने वशिष्ठ को प्रतीकार्थ प्रयुक्त किया है :

कहाँ देश मे है वशिष्ठ
जो तुझको ज्ञान बताये ?
किये गये नि शस्त्र किसे
कौशिक रण-कला सिखाये ?

कवि भारत मे पनप रही फूट और वैर की भावनाओ से भी क्षुब्ध हुआ है। जिस देश मे राष्ट्रीय और सास्कृतिक ऐक्य का अभाव हो, वह कैसे समृद्धिशाली बन सकता है ? कवि देश के अनैक्य पर विचार करते-करते राम-युग तक पहुँच जाता है, जहाँ उसे कैकेयी की दूषित मनोवृत्ति गृह-कलह के लिए उत्तरदायिनी लगती है। इस समसामयिक जीवन-स्थिति के प्रकाशनार्थ कवि ने कैकेयी को प्रतीकार्थ प्रयुक्त किया है

किन्तु कैकयी कलह मचा है
राष्ट्र, नगर, घर-घर मे।

(ब) महाभारतयुगीन प्रतीक · चतुर्वेदीजी ने महाभारत की कथा पर आधारित प्रतीको का प्रयोग भी अपने काव्य मे किया है। कवि की नीति स्वराष्ट्र सुरक्षा की तो है, परन्तु आक्रामक बनकर अशान्ति और रक्तपात फैलाने का वह विरोधी भी है क्योकि उसकी आँखो के सामने बार-बार उस महाभारत का चित्र नाच उठता है, जिसमे मानव का भीषण सहार हुआ। कवि महाभारत

युगीन नर-सहार की पुनरावृत्ति का आकाँक्षी नही है, और इसीलिए बार-बार ऐसी परिस्थितियो से बचने का सदेश देता है, जो मानव को भीषण युद्ध की ओर अग्रसर करती जा रही है। कवि महाभारत को प्रतीकार्थ प्रयुक्त करता है।

आज कोई विश्व-दैत्य तुम्हे चुनौती दे
औ' महाभारत न हो पाये सखे, सुकुमार
बलवती अक्षौहिणियाँ विश्व-नाश करे
'शस्त्र मैं लूँगा नही' की कर सको हुकार।

चतुर्वेदीजी वैसे तो युद्ध-विरोधी है, परन्तु देश को सुरक्षा उन्हे वीरत्व की भावनाओ को जगाने की प्रेरणा भी देती है। कवि जब देशवासियो को सुरक्षार्थ, वीरता का बाना धारण करने का निमत्रण देता है, तो अर्जुन से अधिक सशक्त प्रेरणादायक चरित्र उसे नही मिल पाता। अर्जुन वैसे तो युद्धाकाक्षी ही नही थे, परन्तु अपने अस्तित्व की सुरक्षा से प्रेरित होकर उन्होने कौरवो के विरुद्ध भीषण युद्ध किया। कवि को भारतवासियो मे आत्म-सुरक्षार्थ युद्ध-भावना के उन्मेष के लिये अर्जुन का व्यक्तित्व ही सर्वाधिक सशक्त लगा और इसीलिए उसने अर्जुन को वीरता और युद्ध का प्रतीक मान लिया।

उठो, भुजाओ मे अर्जुन का रक्त खौलने दो ए मानी।

वैसे तो दुर्योधन की उक्ति के कारण ही महाभारत का युद्ध हुआ था, परन्तु चतुर्वेदीजी ने इसे एक विशिष्ट सदर्भ मे प्रयुक्त कर लिया। कवि राष्ट्रीयता के प्रवाह मे बहकर देश की किंचित् भूमि का अश भी शत्रु के हाथ मे नही जाने देना चाहता—भूमि-सुरक्षा की इस भावना के उन्मेषार्थ चतुर्वेदीजी ने दुर्योधन की दृढ प्रतिज्ञा को ही उपयुक्त समझा और इसी कारण उसके कथन को प्रतीकार्थ प्रयुक्त भी कर लिया।

देश के शूच्यग्र पर कुरबान हो उठती जवानी।

(इ) इतर पौराणिक प्रतीक रामायण और महाभारत की कथाओ पर आधृत प्रतीको अतिरिक्त भी चतुर्वेदीजी ने अन्य पौराणिक प्रतीको का प्रयोग किया है। इस कोटि के प्रतीको को दो अवान्तर श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है

(क) कृष्ण-जीवन से सम्बन्धित प्रतीक
(ख) शकर-पार्वती से सम्बन्धित प्रतीक

(क) कृष्ण जीवन से सम्बन्धित प्रतीक चतुर्वेदीजी ने कृष्ण के जीवन की विभिन्न लीलाओ को भी प्रतीकार्थ प्रयुक्त किया है। विशेष रूप से कृष्ण-गोपियो की लीला और असुर-सहार की ओर ही कवि का ध्यान अधिक आकर्षित हुआ है। चतुर्वेदीजी की राष्ट्रीयता अतर्राष्ट्रीयता की विरोधिनी नही; वे एक ओर तो भारत की स्वाधीनता के गायक है और दूसरी ओर सम्पूर्ण एशिया के राष्ट्रो की मुक्ति के पक्षधर भी। इसीलिए अनेक स्थलो पर

एशिया के नव जागरण और राष्ट्रो की स्वाधीनता का स्वर भी उनके काव्य मे मुखर हुआ है। उन्होने स्वाधीनता और स्वच्छन्दता का प्रतीक गोपियो को माना है

दग करतो-सी मृदग बजे कि बशी रध्र बोले,
नृत्य मग्ना एशिया की गोपियाँ स्वच्छन्द डोले

आज यमुना के स्वरो फिर वेणु बोली
एशिया की गोपियो ने वेणि खोली।

कृष्ण ने अनेक असुरो का सहार भी किया था। उनके जीवन के इस महत्त्व-पूर्ण अश को भी चतुर्वेदीजी ने प्रतीकार्थ प्रयुक्त कर लिया। कवि चतुर्वेदी का ध्यान गोआ की समस्या की ओर भी गया। गोआ भारत से अलग रहकर अपनी स्वतत्र सत्ता बनाये रखना चाहता है तथा उसकी इस स्वतत्रता के पक्षधर अन्य राष्ट्र भी है। गोआ की समस्या कवि के लिये एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। मैं यहाँ पर कह दू कि चतुर्वेदीजी उन कवियो मे से नही है, जो केवल मनोरजनार्थ ही काव्य रचना करते है। उनकी कविता राष्ट्र-जीवन के लिए समर्पित उनकी बलवती आकाक्षा का ही प्रतिफल कही जा सकती है। राष्ट्र-जीवन से असम्बद्ध केवल शिल्पाश्रय लेनेवाली काव्य-रचनाएँ उन्होने नही की। उनकी काव्य-रचनाएँ सोद्देश्य है, निरुद्देश्य नही। गोआ की समस्या के प्रस्तुतीकरण के लिए उन्होने बाणासुर के प्रतीक का प्रयोग किया है

देख बाणासुर दिखाता है अनोखा दर्प
और उसके साथ अतर्राष्ट्र के सौ सर्प।

(ख) **शकर-पार्वती से सम्बन्धित प्रतीक** जैसा कि कहा जा चुका है चतुर्वेदीजी की रचनाएँ राष्ट्रीयता की भावनाओ से ही प्रेरित है। उनकी राष्ट्रीय विचार-धारा के सवाहक केवल पुरुष ही नही नारी भी है। अर्थात् वीर काव्य-पुरुषो की सर्जना के साथ ही साथ उन्होने वीरागनाओ की सृष्टि भी अपने काव्य मे की है. पुरुष के साथ-साथ उनकी नारी-सृष्टि ने भी स्वाधीनता - सग्राम मे सहयोग दिया है और देने की दृढ प्रतिज्ञा भी की है, क्योकि पौराणिक सस्कृति मे भी शकर के साथ ही साथ पार्वती, दुर्गा और काली जैसी नारियो का भी कम महत्त्व नही। पति के साथ ही साथ नारी भी उसकी सहयोगिनी-शक्ति बनकर स्वतत्रता-सग्राम मे अपनी आहुति देने के लिए कटिबद्ध है। पुरुष के साथ-साथ नारी की वीरत्व भावना को भी चतुर्वेदीजी ने पार्वती, दुर्गा और काली के प्रतीको द्वारा प्रकाशित किया है। पुरुष के प्रतीक है शकर तथा नारी की प्रतीक हैं दुर्गा और काली।

मेरे प्रणय और प्राणो के
ओ सिंदूर रक्तिमा लाली !
तुम कैसे प्रलयकर, शकर, जो
मै रहूं न दुर्गा, काली ?

चतुर्वेदीजी का विश्वास है कि भारतवासियो मे सहनशीलता है और साथ ही साथ प्रतिरोध की अडिग शक्ति भी। अपनी भूमि की रक्षा हेतु वे शकर की भाँति प्रलयकर है। पार्वती, पृथ्वी की प्रतीक है और शकर, शत्रुओ के सहारक।

पार्वती हे धरा, पर वे पार्वती के वर नही है,
कौन कहता है कि वे अभिशाप मे शकर नही है।

ईसाई धर्म के प्रतीक

चतुर्वेदीजी ने अपने काव्य मे ईसाई धर्म के प्रतीको का भी प्रयोग किया है। यह कवि की उदार मनोवृत्ति का परिचायक है। चतुर्वेदीजी उन कवियो मे से है, जो भावाभिव्यक्ति के लिए सशक्त माध्यम खोजते है, चाहे वह किसी भी क्षेत्र से क्यो न हो। उनकी दृष्टि एक अन्वेषी की है, यद्यपि वे अज्ञेय की भाँति अटपटे साधनो की खोज को ही अन्वेषी का धर्म नही मानते। उनकी सबसे बडी विशेषता यह है कि वे शिल्प का प्रयोग विचार को सशक्त अभिव्यक्ति देने के लिए करते है। वे एक ऐसे कवि है जिनके लिए शिल्प साधन है, साध्य नही। वे देश के लिए बलिदान की भावनाओ को जगाने वाले कवि है। उनकी राष्ट्रीय भावना मे समर्पण और बलि की कामनाओ को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। समर्पण और बलि की भावनाओ के लिए उन्होने ईसा और शूली का प्रतीकार्थ प्रयोग किया है। ईसा, बलि देने वाले व्यक्ति के प्रतीक है और शूली बलि की भावनाओ की।

तू सेवक है, सेवाव्रत है,
तेरा जरा कुसूर नही।
शूली—वह ईसा की शोभा,
वह विजयी दिन दूर नही।

आध्यात्मिक प्रतीक

कबीर की भाँति चतुर्वेदीजी ने आध्यात्मिक प्रतीको का प्रयोग भी किया है। इसका कारण यह है कि उनकी रचनाओ मे रहस्य-प्रतीतियो की भी प्रचुरता है। वे राष्ट्रीय कवि होने के साथ ही साथ रहस्यवादी कवि भी है। उनके काव्य मे राष्ट्रीयता ओर रहस्यवाद का परिणय प्रस्तुत किया गया है। विरहिणी जब प्रियतम के वियोग मे अत्यधिक व्याकुल हो जाती है, तो उसे सासारिक जीवन के प्रति ऊब और खीझ हो उठती है। वह नैहर छोडकर अपने प्रिय के घर जाने के लिए

व्यग्र हो उठती है। इसी भावाभिव्यक्ति के लिए माखनलालजी ने नैहर और मोहन को प्रतीकार्थ प्रयुक्त किया है। नैहर प्रतीक है ससार का और मोहन आध्यात्मिक प्रिय का।

जी मे यौवन, विरह विकम्पन, बिन्दु-बिन्दु मे अर्पण,
नैहर मे कब तक दिन बीते आ ले जाने मोहन।

ऐतिहासिक प्रतीक

सुप्रसिद्ध पाश्चात्य कवि-समीक्षक टी० एस० इलियट ने किसी भी महान् रचनाकार के लिए ऐतिहासक परिज्ञान को अत्यन्त आवश्यक माना है। चतुर्वेदी-जी की कविता ऐतिहासिक बोध की कविता है, वे इतिहास की घटनाओ एव पात्रो पर गहन मनन करने के बाद उन्हे सम्प्रेषण का साधन बना लेते है और शायद इसीलिए ऐतिहासिक पात्रो को उन्होने प्रतीकार्थ प्रयुक्त भी किया है। कवि अन्याय, अत्याचार और शोषण के विरुद्ध है। उसे अत्याचार की बढती हुई जीभ को देखकर क्षोभ होता है। इसी क्षोभ-प्रकाशन के लिए वह जार को प्रयुक्त करता है।

नाम गाधी का कि ढब हम जार से सीखे।

प्रकृति-प्रतीक

चतुर्वेदीजी ने अन्य छायावादियो की भाँति प्रकृति-प्रतीको का प्रयोग भी किया है। विशेषता यह है कि उनकी प्रकृति भी राष्ट्रीयता के रग मे रँगी हुई है राष्ट्रीय भावनाओ के उन्मेषार्थ ही उन्होने प्रकृति-प्रतीको का अधिक प्रयोग किया है। प्रकृति किसी न किसी राष्ट्रीय आदर्श के प्रस्तुतीकरण की साधन बनकर ही चतुर्वेदीजी के काव्य मे अधिक आयी है। न तो उनका प्रकृति-वर्णन द्विवेदीयुगीन कवियो की भाँति इतिवृत्तात्मक है न छायावादियो की भाँति केवल भावात्मक, वरन् वे तो प्रकृति को राष्ट्रीय चेतना की सवाहिका भी मानते है। नयी पीढी के मन मे राष्ट्रीयता की जो भावनाएँ पनप रही है, वे नन्ही-नन्ही कलियो के प्रतीको द्वारा अभिव्यक्त की गई है।

और ये उठते सिपाही, और ये अनजान कलियाँ,
रह सका इतिहास जीवित, ले इन्ही की अमर बलियाँ।

इसी प्रकार नयी पीढी के मन मे जो विद्रोहाग्नि निरन्तर सुलगती रहती है, उसका प्रकाशन भी कलिका के प्रतीक द्वारा किया जाता है —कलिका को प्रतीकार्थ प्रयुक्त करना नयी पीढी के प्रति कवि की आस्था और प्रीति का द्योतक भी है। कवि का ऐसा विश्वास है कि नयी पीढी द्वारा ही राष्ट्र का कल्याण अधिक

हो सकेगा। कवि की नयी पीढी विद्रोहपूर्ण भी है, यद्यपि यह विद्रोह आज की नयी पीढी के कवियो की भाँति कुण्ठाजन्य नही है।

पल्लवो के बीच से,
कलिका उठी क्यों सिर उठाये ?
क्यो उदार विनाश-बेला,
के भ्रमर ने गीत गाये ?

यहाँ पर कलिका, विद्रोहमयी नयी पीढी की प्रतीक है। साथ ही साथ चतुर्वेदीजी ने 'भ्रमर गीत' की परम्परा से कुछ अलग हटने की प्रकृति का परिचय भी दिया है—न तो सूर-काव्य के भ्रमर की भाँति उनका भ्रमर आध्यात्मिक मसीहा है, न रीतिकालीन कवियो के अली की भाँति कली से बिंधने वाला और न छायावादी प्रसाद के मधुप की भाँति जीवन की क्षणभगुरता को गुनगुनाने वाला। चतुर्वेदीजी का भ्रमर, उस समाज का प्रतीक है जो राष्ट्र-मुक्ति-हेतु क्रान्ति के गीत गा रहा है।

इस प्रकार चतुर्वेदीजी के काव्य के प्रतीक-विधान का महत्त्व उसकी उस प्रकृति के कारण है जो स्वय को साध्य न मानकर साधन स्वीकार करती है, प्रतीको का प्रयोग इसमे किसी विशिष्ट दृष्टिकोण, जीवन-दर्शन और गभीर प्रश्नो के सकेतार्थ किया गया है। इस दृष्टि से चतुर्वेदीजी के प्रतीक विधान का फेच प्रतीकवाद से दो ध्रुवो का अन्तर है। फेच प्रतीकवादियो ने एक ओर तो जीवन के बृहत् प्रश्नो से पलायन करने की चेष्टा की और दूसरी ओर प्रतीको को साधन के रूप मे ग्रहण न कर साध्य माना, समाज के नैतिक और सास्कृतिक प्रश्नो से असम्पृक्त रहने के लिए उन्होने प्रतीकवाद का आश्रय लिया। मलार्मे के काव्य के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे प्रतीको और भाषा-प्रयोगो को साध्य मानते थे, जीवन की किसी गभीर समस्या को अभिव्यक्ति देने वाले साधनो के रूप मे नही। चतुर्वेदीजी के काव्य की प्रतीकवादी प्रकृति जीवन के विभिन्न पक्षो या क्षेत्रो की साकेतिक अभिव्यक्ति करना चाहती है। उनके काव्य मे प्रतीको का प्रयोग एक अन्य स्वस्थ प्रकृति का परिचय भी देता है और वह है सस्कृति के विविध पक्षो—पुराण, इतिहास आदि से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की। अतीत सस्कृति के प्रतीको को नये अर्थ, नये सदर्भ मे प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति वास्तव मे उस चेतना की परिचायक कही जा सकती है, जिसे इलियट ने 'ऐतिहासिक बोध' के नाम से अभिहित किया है। ऐतिहासिक परिज्ञान मे अतीत और वर्तमान दोनो ही समाविष्ट रहते है। परम्परा और समकालीन युग-चेतना एक साथ ही इसमे सूत्र-बद्ध रहती है। अतीत सस्कृति के परिज्ञान पर आधारित प्रतीक परपरा के प्रति सजगता के परिचायक कहे जा सकते है। इन प्रतीको का नये सदर्भ,

नयी भावदशा और नयी विचार-स्थिति के सकेतार्थ प्रयोग वर्तमान और सम-कालीन युग की आवश्यकता को ग्रहण करने की चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। अतएव हम कह सकते है कि चतुर्वेदीजी व्यक्ति-मेधा और परम्परा, दोनो के ही कवि रहे।

भेरी, वीणा और वशी की स्वर-लहरी में राष्ट्रीय जागरण के अमर गायक

◇ ○

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

हिन्दी कविता मे राष्ट्रीय-भावना का जयघोष करने वाले कवियो मे श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से विख्यात है। आपने द्विवेदी-युग से कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु उस युग मे आपकी विशेष ख्याति नही हुई। यथार्थ मे सन् १९२१-२२ के असहयोग आन्दोलन के समय ही आपकी राष्ट्रीय भावना को मुखरित होने का सुयोग मिला और उसी प्रेरणा ने आपको प्रेम और रहस्य के साथ राष्ट्रीय भावनाओ से आप्यायित कर दिया। चतुर्वेदीजी ने एक भावुक कवि-हृदय पाया है। प्रेम और सौन्दर्य के मार्मिक चित्र अकित करने की आपकी अपनी सरस शैली है। छायावादी कवियो की सूक्ष्म-शैली को उसी परिधान मे आपने स्वीकार नही किया। जिस युग मे प्रसाद निराला और पन्त अपनी कविता मे काव्य-शिल्प की बारीकियाँ प्रस्तुत कर रहे थे, उसी समय एक भारतीय आत्मा, काव्य-शिल्प के मनोरम उपकरणो से देश की स्थिति और परतत्रता से मुक्ति की कामना के गीत लिख रहा था। हिन्दी मे राष्ट्रीय भावना का आन्दोलनो की पृष्ठभूमि मे यदि किसी कवि ने चित्रण किया है तो आप ही उनमे सर्वप्रथम कहे जा सकते है। आश्चर्य यह है कि आपके राष्ट्र-प्रेम की भावना विद्रोह की सीमा तक पहुँची किन्तु आपने अपने हृदय की अन्य कोमल भावनाओ को उस विद्रोह मे विलीन नही होने दिया।

'एक भारतीय आत्मा' के नाम से जिस समय कविता के क्षेत्र मे आपने पदन्यास किया उस समय एक उत्साही युवक का हृदय आपके भीतर बडे वेग से उद्वेलित हो रहा था। महात्मा गाधी ने अफ्रीका मे अपने सत्याग्रह का पहला प्रयोग किया था और उसकी कहानी भारतवासियो को एक ओर उत्साह और शक्ति से भर रही थी तो दूसरी ओर विस्मय एव कुतूहल का भी उनमे अभाव

नही था। उस समय पत्रकारिता के क्षेत्र मे लोकमान्य तिलक का सिक्का जमा हुआ था। हिन्दी के मराठी लेखको मे माधवराव सप्रे तिलकजी के समर्थक थे और राष्ट्रीयता की प्रबल प्रेरणा से लेख लिखते रहते थे। एक भारतीय आत्मा' नाम स्वीकार करके लिखने मे सप्रेजी का चतुर्वेदीजी पर गहरा प्रभाव पडा और उन्ही ने आपको राष्ट्रीय कल्याण के लिए जीवन उत्सर्ग करने की प्रेरणा दी।

राजनीति के लिए जीवन उत्सर्ग कर देने के बाद, 'भारतीय आत्मा' ने पीछे मुडकर कभी यह नही देखा कि जीवन मे वैभव-विलास का आनन्द क्या है। 'मरण त्योहार' को स्वीकार करने वाले कवि के लिए देश की बलिदेवी पर बलि हो जाना ही शेष रह गया। इस भाव को कवि ने अपनी प्रसिद्ध लघु कविता 'फूल की चाह' मे व्यक्त किया है

चाह नही मैं सुरबाला के गहनो मे गूँथा जाऊँ,
चाह नही प्रेमी-माला मे बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नही सम्राटो के शव पर हे हरि डाला जाऊ,
चाह नही देवो के सिर पर चढू भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड लेना वनमाली, उस पथ मे तुम देना फेक,
मातृभूमि पर शीश चढाने जिस पथ जावे वीर अनेक ॥

इस कविता की आत्मा बलिदान के वस्तुओ से निर्मित हुई है। कवि की भावी साधना का इसमे इगित है, उसकी स्पृहा का मूर्तिमान रूप पाठक के मन मे उतर आता है। उत्सर्ग-भावना का मनोरम चित्र खडा करने की इस कविता मे अद्भुत क्षमता है। हिन्दी मे यह कविता पर्याप्त प्रसिद्ध भी हुई।

'फूल की चाह' के समान कवि ने 'पर्वत की अभिलाषा' शीर्षक कविता मे इसी प्रकार के आत्मोत्सर्ग की आकाक्षा प्रकट की है। पर्वत के द्वारा जिस अप्रस्तुत का सुन्दर विधान हुआ है वह अन्योक्ति का सुन्दर निदर्शन है

तू चाहे मुझको हरि, सोने का मढा सुमेरु बनाना मत,
तू चाहे मेरी गोद खोद कर मणि-माणिक प्रकटाना मत,
तू मिट जाने तक भी मुझमे से ज्वालाएँ बरसाना मत,
लावण्य-लाडिली वन-देवी का लीला-क्षेत्र बनाना मत,
जगती-तल का मल धोने को
भू हरी-भरी कर देने को
गगा-जमुनाएँ बहा सकूँ
यह देना, देर लगाना मत।

राष्ट्रीयता की भावना का विकास हिन्दी कविता मे भारतेन्दु-युग से आरम्भ हुआ। उस युग की राष्ट्रीय-भावना का आधार अतीत गौरव का वर्णन तथा देश-प्रेम तक ही सीमित था। परतत्रता के प्रति विद्रोह का स्वर प्रखर नही हुआ था।

पराधीनता-जन्य कष्टो का अनुभव करते हुए भी कवि भारती ने उसे मुखरित नहीं किया था। बीसवी शती के प्रारम्भ मे राष्ट्रीयता की भावना ने इस देश मे करवट ली और देश की एकता तथा विदेशी शासन की सत्ता दोनो को देशवासियो ने समझा। महात्मा गाधी ने अग्रेजो के प्रति अहिंसात्मक प्रतिरोध का शान्तिमय उपाय खोज निकाला और उसका दक्षिण अफ्रीका मे बडी सफलता के साथ प्रयोग किया। भारतवासियो को उस प्रयोग ने मानसिक बल प्रदान किया और देश मे उत्सास एव साहस की नई लहर दौड गई। इसी अवसर पर माखनलालजी कविता के क्षेत्र मे अवतरित हुए। सन् १६१४ मे जब गाधी दक्षिण अफ्रीका मे अपना सत्याग्रह-सग्राम चला रहे थे, चतुर्वेदीजी ने 'हृदय' शीर्षक लम्बी कविता लिखी, जिसमे गाधीजी के प्रति अपनी श्रद्धा-भावना को कवि ने व्यक्त किया है

वीर-सा, गम्भीर-सा यह है खडा,
धीर होकर यो अडा मैदान मे,
देखता हूँ मैं जिसे तन-दान मे,
जन-दान मे, सानद जीवन-दान मे।

क्यो पडी परतन्त्रता की बेडियाँ ?
दासता की हाय हथकडियाॅ पडी।
न्याय के 'मुँह बन्द' फाॅसी के लिए,
कठ पर जजीर की लडियाँ पडी।

इसी समय आपने राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति के लिए कई कविताएँ लिखी। उनमे सत्याग्रह और अहिसा की भावना का पक्ष ही प्रधान है। सत्य के आग्रह को गाधीजी ने जिस दृढता के साथ ग्रहण किया था, भावुक कवि 'एक भारतीय आत्मा' ने भी उसे उतनी ही आस्था और दृढता से पकडा। कदाचित् इस देश मे अहिंसात्मक प्रतिशोध का यह दौर नया था और विश्व की आँखे खोलने वाला था। सामाजिक वैषम्य जिसमे अमीरी और गरीबी की भेदक दीवारे खडी है, कवि की दृष्टि से ओझल नही था। कवि यह समझ रहा था कि देशोत्थान के लिए सामाजिक वैषम्य को हटाना होगा। दरिद्रता का आचल पकडकर राष्ट्रोत्थान के पथ पर बढने मे ही कल्याण है :

महलो पर कुटियों को वारो
पकवानो पर दूध-दही
राजपथो पर कुँजे वारो,
मचो पर गोलोक मही,
छीनूँगी निधि नही किसी
सौभागिनि, पुण्य प्रमोदा की,

लाल, वारना नही कही तू
गोद गरीब यशोदा की ।

राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत कविताओं मे 'वीर-पूजा', 'बन्धन सुख', 'नि शस्त्र सेनानी', 'बलिपन्थी से' आदि इस कोटि की रचनाएँ है जिनका आधार अहिंसामूलक आन्दोलन है। इन कविताओ पर गाधीजी की विचारधारा का गहरा प्रभाव है । हिन्दी कविता मे गाधीवादी विचारधारा का सबसे अधिक और प्रबल समर्थन माखनलालजी ने ही किया है। जिम प्रकार उपन्यास-साहित्य मे प्रेमचन्द की रचनाएँ गाधीवाद से परिपूर्ण है वैसे ही माखनलालजी की कविताएँ भी। 'बन्धन सुख' कविता के द्वारा कवि ने सत्याग्रह की अहिंसामूलक भावना का बडी समर्थ शैली मे वर्णन किया है। यह कविता गणेशशकर विद्यार्थी की गिरफ्तारी पर लिखी गई थी

आत्म-देव ! प्यारी हथकडियाँ
और बेडियाँ दे परितोष,
उतनी ही आदरणीया है,
जितना वह जय-जय का घोष।
तू सेवक है, सेवाव्रत है,
तेरा जरा कुसूर नही,
'शूली—वह ईसा की शोभा,
वह विजयी दिन दूर नही ।

नि शस्त्र सेनानी' कविता मे भी कवि ने इसी भाव का प्रबल समर्थन किया है। महात्मा गाधी ही इस कविता मे चित्रित हुए है

'प्यार !'—उन हथकडियो मे और
कृष्ण के जन्मस्थल से प्यार !
'हार !'—कन्धो पर चुभती हुई
अनोखी जजीरे है हार ।

इन कविताओ के अतिरिक्त ब्रिटिश साम्राज्य मे भारतीय जनता को जिस अत्याचार और दमन का सामना करना पड रहा था उसका जीता-जागता चित्र चतुर्वेदीजी की अनेक कविताओ मे अकित हुआ है। कवि ने अनेक बार स्वय अग्रेजी हुकूमत के समय जेल की विषम यातनाएँ सही है। उसने कोरी कल्पना से इस यातना का वर्णन नही किया बल्कि स्वानुभूति का पूर्ण योग होने से कविता की वर्ण्यवस्तु बडे ही जीवन्त रूप मे शब्दो मे साकार हुई है। 'मरण त्योहार', 'कैदी और कोकिला', सिपाही 'सिपाहिनी', 'जलियाँवाला बाग', 'जवानी' शीर्षक कविताओ के पढते ही मन मे राष्ट्रप्रेम की ऐसी उमग पैदा होती है, कि उस पर कोई भी स्वाभिमान की भावना वाला युवक बलिदान हो सकता है। वीर-रस के स्थायी

भाव उत्साह का जैसा परिपाक इन कविताओ मे है, दिनकर को छोडकर, किसी अन्य कवि मे दिखाई नही देता। कुछ कविताएँ तो दृश्य और वस्तु विधान के माध्यम से भावोद्दीपन करती है और कुछ अनुभूति के अकन द्वारा मन को आन्दोलित करने वाली है। किन्तु दोनो प्रकार की कविताओ का मूल उद्देश्य एक ही है, वह है राष्ट्र-प्रेम को जागृत कर पाठक को उत्साहपूर्ण बलिदान की भावना से परिपूर्ण करना। दृश्य और वस्तु-वर्णन द्वारा उत्साह की सृष्टि करने वाली ओजस्वी कविताओ मे हम 'जवानी', 'सिपाही', 'सिपाहिनी' आदि को स्थान देते है। कवि सिपाहिनी की मनोभावना का वर्णन इस प्रकार करता है—

चूडियाँ बहुत हुई कलाइयो पर
प्यारे, भुजदड सजा दो।
तीर कमानो से सिगार दो,
जरा जिरह बखतर पहना दो॥

'जवानी' का वर्णन करते हुए कवि ने सुन्दर अप्रस्तुत योजना से चित्राकन किया है। जवानी का उभार आने पर पत्थर मे से दूब फूट निकलती है, शाखा मे फूल और फल निकल आते है। ससार मे जवानी पर शासन नही होता, वह तो स्वय दूसरो पर शासन करने आती है। वीर-रस की निष्पत्ति का इस कविता मे सुन्दरतम स्वरूप आँका जा सकता है

वह कली के गर्भ से, फल-
रूप मे, अरमान आया।
देख तो मीठा इरादा, किस
तरह, सिर तान आया।
डालियो ने भूमि रुख लटका
दिये फल, देख-आली।
मस्तको को दे रही
सकेत कैसे, वृक्ष डाली।
फल दिये? या सिर दिये? तरु की कहानी—
गूँथकर युग मे, बताती चल जवानी।

इस कविता मे जवानी का विश्लेषण करते हुए कवि ने उसे बलिदान का प्रतीक, मरण की चुनौती, इरादो की मशाल आदि कहकर इतना दुर्धर्ष रूप दे दिया है कि पाठक की शिराओ मे रक्त की गति कविता-पाठ के साथ बढती जाता है :

जवानी के लिए यह पृथ्वी क्या है—
धरा? यह तरबूज है दो फाँक कर दे।

ब्रिटिश-शासन की दमन नीति के विरुद्ध कवि ने अपने भाव व्यक्त करते

समय जिस शैली का प्रयोग किया है वह निर्भीकता की पराकाष्ठा है। 'कैदी और कोकिला' शीर्षक कविता कवि की निर्भीकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। कविता मे एक ओर कारावास का भयावह चित्र है और दूसरी ओर ब्रिटिश शासको की अन्याय-अत्याचारपूर्ण नीति का सशक्त भाषा मे उद्घाटन। डाकू, चोरो, बटमारो के डेरे मे बन्द कवि आधा पेट भोजन खाकर विवशता के साथ बन्दी का जीवन व्यतीत कर रहा है। जीवन पर नाना प्रकार के कठोर नियत्रण है। शासन क्या है मानो तम का गहरा प्रभाव ही देश पर छाया हुआ है। सन्तरी की पहरेकी आवाज़ और बन्दियो की श्वास की घर-घर ध्वनि के सिवा कैदखाने की काली दीवारो के घेरे मे कुछ सुनाई नही दे रहा है। ऐसे समय कोकिल की तान सुनकर कवि का मानस प्रश्नो से आन्दोलित हो उठता है

क्या ?—देख न सकती जजीरो का गहना ?
हथकडियाँ क्यो ? यह ब्रिटिश राज्य का पहना,
कोल्हू का चर्रक चूँ ?—जीवन की तान,
मिट्टी पर अँगुलियो ने लिक्खे गान ?
हूँ मोट खीचता लगा पेट पर जूआ
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड का कूआ।

राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक होने पर भी आपकी कविता मे सौन्दर्य और प्रेम की मार्मिक व्यजना दृष्टिगत होती है। कवि की पदावली तो सर्वत्र ही प्रेम की ध्वनि देने वाली है किन्तु जिन कविताओ मे प्रेम और सौन्दर्य चित्रण को ही कवि ने वर्ण्य विषय बनाया है, वहाँ कवि का मर्म हमे मिलता है। प्रेमानुभूति के चित्रण मे कवि कोरी कल्पना को ग्रहण करके नही चला है, अनुभूति ही उसकी अभिव्यक्ति का आधार है। जीवन की वास्तविक अनुभूति का सम्बल लेकर चलने वाले कल्पना की रमणीयता से भले ही वचित रह जाएँ किन्तु जीवन की यथार्थता का उनके पास अभाव नही होता। फलत उनकी कविता प्राणवान होती है और भावनाओ के मूर्तविधान की क्षमताएँ उसमे अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती है। चतुर्वेदीजी अपनी सौन्दर्य एव प्रेम सम्बन्धी कविताओ मे भावुक रहे हैं। कवि का अन्तर्जगत प्रेम की आभा से दीप्त हो रहा है, अत उसे ससार की प्रत्येक वस्तु मे सौन्दर्य और प्रेम व्याप्त हुआ दीखता है। कवि उस प्रेम का पुजारी है जो स्व-सुख का उत्सर्ग करके बलिदान भावना से ज्योतित होता है :

वे तुम्हारे बोल !
वह तुम्हारा प्यार, चुम्बन, वह तुम्हारा स्नेह-सिहरन।
वे अनमोल मोती
वे रजत-क्षण !
वे तुम्हारे आँसुओ के बिन्दु, वे लोने सरोवर।

अपनी पत्नी के स्वर्गवास पर कवि ने जिस मार्मिक प्रेमानुभूति का वर्णन किया है वह वियोग की सुन्दर झाँकी प्रस्तुत करता है ·

पूजा के ये पुष्प गिरे जाते है नीचे,
यह आँसू का स्रोत आज किसके पद सीचे,
दिखलाती क्षणमात्र, न आती प्यारी प्रतिमा,
यह दुखिया किस भाँति, उसे भूतल पर खीचे।

'आँसू' शीर्षक कविता मे प्रेम की मार्मिक व्यजना हुई है। 'वृक्ष और वल्लरी' शीर्षक कविता भाषा, भाव, शैली—सभी दृष्टियो से एक स्वच्छ और सुन्दर कविता है। इसमे सौन्दर्य और प्रेम दोनो का सुन्दर शैली मे निर्वाह हुआ है

वृक्ष, वल्लरि के गले मत मिल, कि सर चढ जायगी यह,
और तेरी मित भुजाओ पर अमित हो छायगी यह।
हरी-सी, मनभरी-सी, मत-जान रुख लख, राह लख तू,
मधुर तेरे पुष्प-दल हो, कटु स्वफल लटकायगी यह।

सक्षेप मे, चतुर्वेदीजी हिन्दी कविता मे राष्ट्रीय भावनाओ के अमर गायक कवि है। उनकी काव्य-सम्पदा भाव और भाषा दोनो दृष्टि से विपुल है। उनकी शैली सर्वथा मौलिक और नूतन है। वे किसी लीक के पुजारी नही है, यही उनकी विशेषता है। व्याकरण, पिंगल और अलकार के बधनो को उन्होने कभी स्वीकार नही किया। बलिदान की भावना जो जीवन मे थी वही काव्य मे भी प्रतिफलित हुई। ये गद्य और पद्य मे बडा भेद नही मानते। उनकी भाषा व्याख्यान, भाषण, पुस्तक, कविता सब मे एक-सी चलती है। ओज उनका सम्बल है, माधुर्य से उन्हे प्रेम है। हाँ, प्रसाद गुण का उनके पास प्राय अभाव रहता है।[1] चतुर्वेदीजी की राष्ट्रीय कविताओ का अभी तक समुचित मूल्याकन नही हुआ। जिस दिन भारतीय अहिसात्मक आन्दोलन का सम्पूर्ण इतिहास लिखा जाएगा, निश्चय ही माखनलाल चतुर्वेदी की राष्ट्रीय कविता का उसमे अपना विशिष्ट स्थान होगा।

सम्पादक इस मत से सहमत नही है। उनकी बहुत थोडी-सी कविताओ पर यह आरोप लगाया जा सकता है, विशेषकर इसलिए कि उक्त कविताओ के प्रतीक या तो नये ढंग से उपस्थित किये गये है या फिर उनकी पृष्ठभूमि का पाठक को स्पष्ट परिचय नही है।

माखनलालजी का प्रगतिशील दृष्टिकोण

० ०

रामेश्वर शुक्ल 'अचल'

प्रगतिशील शब्द का व्यवहार और अर्थ तो हिन्दी मे मन् १६३६ मे प्रारम्भ हुआ हे, जब अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक मघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ मे हुआ। उसके लगभग बीस वर्ष पहले प० माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी कविता मे प्रगति की अविनाशी साँस फूंक चुके थे। उस समय लिखी जाने वाली मैथिलीशरण जी गुप्त की कविता मे और सब कुछ था पर वह मर्मवेदना और अन्तरर्ज्वाला नही थी जो ऊँची और आघातकारिणी कविता की पहली शर्त है। उसमे विदग्ध हृदय की प्रेरणा नही वरन् उपदेश वृत्ति और इतिवृत्तात्मकता थी। इसीलिए प्रेमी पाठको का मन उससे भरता न था। नवयुग के प्रखर प्रकाश मे जागरण की करवट लेती हुई तरुणाई कविता मे बलिदान की दीपशिखा और कर्म की गतिमयी व्याकुलता माँगती थी। देश को त्याग, तप, आहुति और शीशदान का जयघोष सुनाने वाले आत्म-सताप से उद्दीप्त बोलो की आवश्यकता थी। कविता को द्विवेदी कालीन रीतिबद्धता और गतानुगति से बाहर निकालकर जीवन की ताजगी और नवल स्फूर्ति की किरणो के बीच लाना था। हिन्दी कविता मे चारो ओर एक घुटा-घुटापन-सा फैला था और उस युग के समस्त कवियो के प्रति पूरी-पूरी श्रद्धा होते हुए भी साहित्य की ईमानदारी के नाते मैं कहूँगा कि कविता मे जैसे प्राण न थे। उगते राष्ट्र को जिस रसमयी शक्ति और ओजस्विता की आकाक्षा थी वह माखनलाल चतुर्वेदी ने उसे प्रदान की। हिन्दी कविता को नए भाव, नई भाषा, नई शैली, नया प्रवाह, नया जीवन-दर्शन, नयी सामाजिक दृष्टि सभी तो उनमे मिली। उनकी 'एक फूल की अभिलाषा' ने देश के यौवन के फूलो और कलिकाओ के मनो मे स्वतन्त्रता के लिए कष्ट-सहन और प्राणदान की प्रबल पुकार पैदा कर दी

मुझे तोड लेना बनमाली! उस पथ मे तुम देना फेक,
मातृभूमि पर शीश चढाने जिस पथ जावें वीर अनेक।

अथवा

बिगुल बज गया, चल पडी सैन्य, धरा भी होने लगी अधीर
खाइयाँ खोदी रिपु ने हाय, पार हो कैसे सैनिक वीर
पूर दे इनको मेरे शूर शरीरो से दे दिए शरीर
इधर यो सेनापति ने कहा, उधर बिछ गए सहस्रो वीर
समय पर किया शत्रु का नाश देश ने आहा पाया त्राण
शेष वीरो ने छेडी तान—धन्य, बलिदान! धन्य बलिदान!!

बलिदान का गौरव और दर्प जगाने वाली ऐसी भावनाओ ने जागरण के उस बलियुग मे देश को कितनी आत्म-दीप्ति और आत्मा का भीतरी ठहराव प्रदान किया होगा इसका ठीक-ठीक आकलन अभी नही हो पाया है। स्वतन्त्र भारत का कोई भावी इतिहासकार और समाजशास्त्री इसका मूल्याकन करेगा, पर देश के किशोर-किशोरियो ने उनकी कविताओ को पढ-पढकर देश के स्वाधीनता सग्राम मे सर्वस्व समर्पण की दीक्षा पायी। जीवन का सिपाहियाना सौन्दर्य उनकी आँखो के सामने मडराने लगा।

मुझे भूलने मे सुख पाती, जग की काली स्याही,
साधो दूर, कठिन सौदा है, मै हूँ एक सिपाही।

अथवा

बोल अरे सेनापति मेरे मन की घुडी खोल,
जल-थल-नभ हिल-डूल जाने दे तू किचित् मत डोल,
दे हथियार या कि मत दे तू, पर तू कर हुकार,
ज्ञातो को मत अज्ञातो को तू इस बार पुकार
धीरज रोग, प्रतीक्षा चिन्ता, सपने बने तबाही,
कह 'तैयार'? द्वार खुलने दे, मै हूँ एक सिपाही!

राष्ट्र-मदिर की पूजा, राष्ट्र-देवता की आराधना का प्रबल आग्रह और आत्मोत्सर्ग का अपरिमेय बल उनकी कविता मे कूट-कूटकर भरा है। सत्यवती के से अनन्त यौवन का आवेग और उसका रहस्य देखिये .

भोजन है उल्लास जहाँ आँखो का पानी पानी
वहाँ काल के हाथो लूटी जाती नही जवानी

देश को उस समय ऐसे ही आत्म-विश्वास भरे बोलो की जरूरत थी। दमन के बूटो तले रौदे गये देश को दृढता, स्थिरता और ध्येय की एकाग्रता का पाठ पढाने वाले इस प्राणवान् कवि ने परतन्त्रता की यातना को हँस-हँसकर झेला, झेलकर हँसा। 'कैदी और कोकिला' मे उसने कहा है—

तुझे मिली हरियाली डाली,
मुझे नसीब कोठरी काली!

तेरा नभ भर मे सचार
मेरा दस फुट का ससार !
तेरे गीतो उठती वाह
रोना भी हे मुझे गुनाह !

क्या हुई बावली ? अर्द्ध रात्रि को चीखी, कोकिल बोलो तो,
किस दावानल की ज्वालाएँ है दीखी कोकिल बोलो तो !

अनात्म की ऐसी वैष्णव स्वर-लहरी, आजादी की ऐसी लगन, योद्धा मन की ऐसी विह्वल भक्ति, निष्ठा और विचारो की क्रान्ति माखनलालजी ने हिन्दी कविताओ को दी है। कबीर के समय से चली आ रही प्रगति की परपरा को उन्होने बल दिया, आत्मा का ओज दिया।

माखनलालजी की प्रगतिशीलता पर कुछ चर्चा करने के बजाय मै उनकी कविताओ के उद्धरण देकर उनका रस लेने लगा। अपने किसी भी प्रिय कवि पर लिखते समय इस प्रकार चेष्टा कर बैठना कवि-हृदय प्रेमी-पाठक के लिए क्षम्य है। कहना मै यह चाहूँगा कि साहित्यिक प्रगति कोई निरपेक्ष और अपने मे ही पूर्ण सैद्धान्तिक तथ्य नही। प्रगति एक ऐतिहासिक क्रिया है और देश-काल सापेक्ष सत्य है। साथ ही केवल सामाजिक क्रान्ति और वैषम्य-विरोध की वर्ग-चेतना उत्पन्न करने वाली कविता ही प्रगतिशील नही है, यद्यपि वह भी प्रगतिशील होती है और एक नूतन राष्ट्रीयता और जनसस्कृति के निर्माण की प्रेरणा प्रदान करती है पर भावना के नए मूल्य प्रदान करने वाली नैतिकता के प्राणो का प्रकाश विकीर्ण करने वाली और अनात्म की ज्योति जगाने वाली कविता भी प्रगतिशील कही जायेगी। जीवन को इस प्रकार खड-खड कर नही देखा जा सकता। वैज्ञानिक विश्लेषण और अनुशीलन के प्रति पूरी-पूरी आस्था रखते हुए भी मै कहूँगा कि जीवन का वैसा रासायनिक विश्लेषण साहित्य के क्षेत्र मे सभव नही। माखनलाल जी की कविता मे प्रगतिशीलता की छानबीन करते समय उस युग की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति देखनी होगी। साथ ही जिन व्यापक मानवीय और सवेदनात्मक मूल्यो की स्थापना कवि ने अपनी कविता मे की है उन्हे भी समझना होगा। कविता के रूप मे जो नए-नए प्रयोग कवि ने किए है वे भी उनकी प्रगतिशीलता के अन्तर्गत माने जायेगे। द्विवेदीकालीन नीतिवादी प्रतीको के स्थान पर माखनलालजी ने बलिदानवादी और रोमासवादी प्रतीक प्रदान किए है। मेरे कहने का यह अर्थ नही कि बलिदान का जीवन-दर्शन उनकी कविता मे वाद बनकर आया है। कोई भी काव्य-दर्शन जब वाद बनकर कविता मे आता है तब वह उसके सौन्दर्य मे साधक न होकर बाधक होता है। उसे तो आत्मा का विश्वास और जीवन-व्यापी प्रसरणशील सस्कार बनकर आना चाहिए। माखनलालजी ने हिन्दी काव्य को देशपूजा-वादी प्रतीक देकर व्यजना का एक नया मार्ग खोल दिया।

आराध्य के प्राणो पर लहराने वाली जीवन की नर्मदा का रूप देखिए और इसके भीतर राष्ट्र-अर्चना की व्यापक व्यजना भी

जिस दिन रत्नाकर की लहरे उनके चरण भिगोने आये,
जिस दिन शैलशिखरियाँ उनको रजत मुकुट पहनाने आये
लोग कहे मै चढ न सकूँगी बोझीली प्रण करती हूँ सखि,
मै बनी नर्मदा उनके प्राणो पर नित्य लहराती हूँ सखि।

जिस प्रकार प्रसादजी ने हिन्दी को आनन्दवादी प्रतीक दिए, उसी प्रकार माखनलालजी ने बलि और आत्मार्पणवादी। इसीलिए उनकी गणना हिन्दी के प्रवर्त्तक कवियो मे होती है। जब हिन्दी के छायावादी कवि स्वप्नो के हाथीदाँत वाले मीनारो मे कल्पना की पुष्प-शैयाएँ बिछा रहे थे और जीवन की वास्तविकताओ से पलायन कर अपना ही ससार अलग बसा रहे थे, उस समय माखनलाल जी अपनी कविता मे कारागार के हृदय का ही नही समस्त भारत की यथार्थता का चित्र खीचते हुए पराधीनता की कुरूपता को सामने ला रहे थे :

जीने को देते नही पेट भर खाना
मरने भी देते नही तडप रह जाना,
जीवन पर अब दिन-रात कडा पहरा है
शासन है या तम का प्रभाव गहरा है

यह अनुभूति की वास्तविकता, जिसके पैर शून्य मे नही मिट्टी की धरती पर है, कैसी प्रभविष्णु है .

बदी सोते है, है घर-घर स्वासो का
दिन के दुख का रोना है निश्वासो का
अथवा स्वर है लोहे के दरवाजो का
बूटो का या सत्री की आवाजो का।

कितनी सजीव, बोलती हुई यथार्थता है जिसके भीतर कवि का जाग्रत विवेक है :

मातृभूमि हित के कष्टो का राज्य पुन पाऊँ सविवेक
सिंहासन मिलने के पहले क्या यह करती हो अभिषेक ?

जिस समय देश के यौवन आत्मोत्सर्ग, विद्रोह और इन्कलाब के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि सैकडो क्रान्तिकारी जेलो मे राजबन्दियो के साथ न होने वाले मानवोचित व्यवहार की माँग के लिए अखड अनशन कर रहे थे, जिस महान यज्ञ से अमर शहीद यतीन्द्रनाथ दास का हडकपी बलिदान हुआ था, उस अवसर पर लिखी गई कवि की 'मरण त्योहार' कविता देखिए। मानवता का यह महान मर्सिया लिखने वाले कवि की जलन और बेचैनी का अहसास कीजिए जिसने सम्पूर्ण राष्ट्र को 'जम्बुकेश' कहकर उसकी पराजित दास-मनोवृत्ति के लिए उसे फटकारा है

जानती है जोर घर की वायु का
जानती है समय, अपनी आयु का
जानती बाजार दर अपनी अहो
जानती है, वृष्टि के दिन, मत कहो
जानती है—सब सबल के साथ है
किन्तु रवि के भी हजारों हाथ है
बे-कलेजे ही, कठिन 'तम' लाद कर
अब श्मशानो को स्वय आबाद कर!
एक से लग एक, हम जलती रहे
और बलि-बहने बढे, फलती रहे
सूर्य की किरने कभी तो आयँगी
जलन की घडियाँ उन्हे ले आयँगी
जम्बुकेश! चलो जहाँ महार है
वन्य पशुओं का लगा बाजार है
आज सारी रात कूकेंगे वहाँ,
मोम-दीपो का मरण-त्योहार है।

प्राणो की बलि लगाने वाले देश के यौवन के फूलो की यह कुर्बानी हमारे राष्ट्रीय सघर्ष के इतिहास के सबसे गौरवमय परिच्छेदो मे से एक है। मैं उन दिनो मैट्रिक का छात्र था। अभी कल की-सी बात लगती है जब 'युवक' मे पडितजी की यह कविता निकली थी। लगता था आकाश से आग बरस रही है, पर हिन्दी के छायावादी कवियो ने जैसे इस या ऐसी अन्य महान् घटनाओ की ओर कभी कोई लगाव या खिंचाव अनुभव ही नही किया। भक्ति-दर्शन हिन्दी के लिये नया नहीं है, पर यह बिलकुल नये प्रकार का भक्ति-दर्शन है। यह एक जीवित-जाग्रत राष्ट्र के प्रति भक्ति का अर्चन है जिसकी ओर कवि जीवन के सभी उपकरणो को लेकर कविता की राह से आता है। यही नही, उनकी प्रेमधारा और स्नेह-सज्जा भी इसी मे डूबी हुई है। वीणा की मनुहार क्या है

कान खीच ले पर न फेक गोदी से मुझे उठाकर
कर जालिम अपनी मनमानी पर जी से लिपटाकर
मुझ पर उतर, ऊग तारो पर, बोकर निज तरुणाई
पथ पावे युग की रवि-किरणे मेरी देख ललाई

या वेदना-गीत से उनका अनुरोध देखिए

आह गा उठे हेमाचल पर तेरी हुई पुकार
बनने दे तेरी कराह को परसों की हुकार
और जवानी को चलने दे बलि के मीठे द्वार

सागर के धुलते चरणो से उठे प्रश्न इस बार
अन्तस्तल से अतल वितल को क्यो न बेध जाते हो
अजी वेदना गीत गगन को क्यो न छेद जाते हो
उस दिन जिस दिन महानाश की धमकी सुन पाते हो
कपन के तागे मे गूँथे-से क्यो लहराते हो ?

माखनलालजी ने कविता के रूप या फार्म मे जो परिवर्तन किया है, भाषा मे जो लोच और मिठास भरी है, कविता का जो नया टेकनीक दिया है---उसके विषय मे अधिक लिखने की आवश्यकता नही, वह ऊपर के अवतरणो से स्पष्ट हो जाता है। एक बात इस सम्बन्ध मे अवश्य कह देने की है। कलाकार की जो लाक्षणिक वक्रता और अर्थ-गौरव का गुण होता है उसे कवि ने शरू से ही साथ रखा है। जिन विषयो और अनुभूतियो का वर्णन करने मे अन्य कवि सस्ते हो गये है और कही-कही उनकी कविता दूषित गद्य मात्र बनकर रह गई है वही पडितजी की कविताएँ कला की दीप्ति और वैदग्ध्य से जगमगा रही है। इतना जरूर लगता है कि यह उक्ति-लाघव, यह लाक्षणिक या व्यजनात्मक वक्रता और चमत्कार यदि कम होता तो अच्छा था। कवि ने जहाँ सीधी-सादी शैली अपनायी है, वहाँ भी विचित्र रस और अनुभूति की गहरी आत्मीयता है

मार डालना किन्तु सामने जरा खडे रह लेने दो
अपनी बीती श्रीचरणो मे कुछ भी तो कह लेने दो।

जहाँ कला की उच्चतर सौदर्य भूमि है वहाँ का कहना ही क्या है, जैसे कला स्वय अपने प्राणो के दल खोलकर उन पर बलिहार हो रही हो

तुम बढते ही चले मृदुलतर जीवन की घडियाँ भूले
काठ छेदने लगे सहसदल की नव पखुडियाँ भूले
मन्द पवन सदेश दे रहा हृदय-कली पथ हेर रही
उडो मधुप नन्दन की दिशि मे ज्वालाएँ घर घेर रही
तरुण तपस्वी आ तेरा कुटिया मे नव स्वागत होगा
दोषी तेरे चरणो पर फिर मेरा मस्तक नत होगा।

उस युग मे लिखी जाने वाली मैथिलीशरणजी गुप्त या अन्य किसी कवि की कविता से उपर्युक्त छन्द की तुलना करने पर उस क्रान्तिकारी परिवर्तन का पता लग जायगा जो कवि ने काव्य, भाषा और अभिव्यक्ति प्रणाली मे किया है। अन्तस्थ या Content की बात आगे होगी, अभी तो रूप और बाह्य विन्यास की बात की जा रही है। क्रान्तिकारी कवि दोनो मे नवीनता लाते है। पडितजी ने यही किया है। उनकी भाषा और भाव-प्रतिपादन मौलिक है।

माखनलालजी की प्रगतिशीलता अस्वाभाविक और बाह्य आयोजित नही है जैसे आज के अनेक तथाकथित प्रगतिवादी कवियो की है। छायावादी कवि को

जिन दोषो ने घेर रखा है—जीवन से पलायन, असामाजिकता और कल्पना की कोरी उडान, उनमे अन्तिम को छोडकर माखनलालजी मे कोई नही है। जहा उनमे कल्पना की कोरी उडान है, वहाँ भाव-पक्ष की कमजोरी है। यह भी सत्य है कि रूप को नवीनता और चपलता प्रदान करके भी उन्हे शिल्प-विषयक श्रेय नही दिया जा सकता, पर इससे ऊँची बाते उनकी कविता मे है। उनकी कविता मे वातावरण का यथार्थ रेखाकन है और वस्तुस्थिति के प्रभाव-विस्तार को लेकर दृश्यपट अकित किया गया है। राष्ट्रीय जीवन की यथार्थ धडकने उसमे ज्यो-की-त्यो उतर आयी है। ऊपर से देखने पर उनकी अनुभूतियाँ सामजस्य-विहीन (unintegrated imotions) ज्ञात होती है और व्यर्थ का भावाडबर लगता है, पर ध्यान से देखने पर उनके मूल मे वही व्यापक असन्तोष और विद्रोह मिलता है जो साहित्य की जीवन और राष्ट्रीय वास्तविकता के प्रति वफादारी का द्योतक है। जिस समय अन्य राष्ट्रीयतावादी कवि या छायावादी कवि अपनी सच्ची और गहरी अनुभूतियो को व्यक्त न करके प्रचलित विचारो की मात्र पुनरावृत्ति कर रहे थे, उस समय चतुर्वेदीजी देश के यथार्थ जीवन को देखने और समझने का सम्पूर्ण दृष्टिकोण उपस्थित कर रहे थे। भले ही जीवन की परिस्थितियो का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अन्वेषण और अध्ययन शिल्प सतुलित सौष्ठव के साथ न मिले पर उसमे एक व्यापक रसात्मक आवेग है जो देश मे एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक फैल जाने की शक्ति रखता है। मेरा विश्वास है कि ऊँची-से-ऊँची सामयिकता, सामाजिकता और प्रगतिशीलता, आदर्शो की बडी-से-बडी स्वप्न-योजना रस के माध्यम ही से साकार और सप्राण होती है, वरना पत की पुनरावृत्ति और गद्यात्मकता से भरी प्रगतिवादी कहलाने वाली दर्जनो कविताओ का काव्यत्व आज सदिग्ध न माना जाता। आगे चलकर सारा प्रचारात्मक काव्य निरर्थक हो जाता है। काव्य के प्रति ईमानदारी और राष्ट्रीय जीवन के सामयिक सघर्षो के प्रति सच्ची जागरुकता को मै प्रगतिशीलता मानता हूँ। कवि के रूप की एक सपूर्णता या अखिलरूपता भी रहा करती है जो उसे एक निश्चित दृष्टिकोण प्रदान करती है। माखनलालजी ने अपनी कविता मे जिन विचारो, मान्यताओ और आदर्शो को प्रतिष्ठित किया है उनके पीछे यही निश्चित दृष्टिकोण है जो जीवन के समस्त क्रियाकलापो को परखता चलता है। उनके द्वारा सृजित वातावरण जीवन से बिलकुल लगा हुआ, सटा हुआ होता है। अपने प्रति यही सच्चाई, अपनी आत्मा के रहस्य को खोलने का यही निष्कपट प्रयास माखनलालजी की प्रगतिशीलता है।

माखनलालजी की कविताओ मे एक काव्यगत अन्त सगीत है जो अपने आप उठता है, उनके शब्दो का चयन ध्वनि के विशेष वातावरण को लेकर चलता है, शब्दो के साथ भाव और उन शब्दो से उत्पन्न ध्वनि जैसे एक-दूसरे के पूरक हो जाते है :

बाल सखाओ के हृदयो ने प्राणो का पोषण छोडा ।
वशी की ध्वनि रुकी, कान्ह ने प्यारा वृन्दावन छोडा ।

शैली का ऐसा परिष्कृत रूप जिसमे केवल राजनीति को ही प्रधानता न दी गई हो, फिर भी जिससे उग्र राष्ट्रीय चेतना की प्रभा फूटी पडती हो, माखनलालजी मे मिलता है। राष्ट्र के प्रति अशेष आत्मार्पण और एकोपासना का सत्य उनमे है जो कडी-कडी, छन्द-छन्द मे बोलता है । उन्होने कुछ 'प्रचार के उद्देश्य मे नारावादिता का आश्रय लेकर कोरी रस्म नही निभाई है जैसे आजकल के बहुत से प्रयोगवादी कवि नये कहे जाने और चमत्कार की चौध उत्पन्न करने मे प्रलोभी बोझिल दुरूहता, अत्यधिक पद्यानुलेखन, गद्यात्मकता और ऊहा तथा भौंडे हास्यास्पद प्रयोगो से हिन्दी कविता को दूषित कर रहे है। दूसरी ओर प्रगतिशील कहे जाने वाले कुछ कवि केवल चारण-काव्य की रचना कर रहे है । जिस युग मे माखनलालजी ने कविता शुरू की थी उस समय भी पिछडी प्रवृत्तियो के प्रति प्रतिक्रियाएँ चल रही थी। साहित्य का वह सधि-युग था। पर माखनलालजी ने परिपाटीगत काव्य-भावना से मुक्त होकर अपने लिए नये मार्ग निकाले। स्वार्जित अनुभूति और स्वानुभूत जीवन-दर्शन को लेकर उन्होने कला-शिल्प पर ही अपने को केन्द्रित नही कर दिया। काव्य-वस्तु और अभिव्यक्ति-प्रकार के बीच एक सुखद सामजस्य स्थापित कर उन्होने भावो का ऐसा तीव्र धारा-प्रवाह दिया जो कविता को वर्ण-वर्ण के रगो और रूपो से भरता चला गया ।

'एक भारतीय आत्मा' का काव्य : पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता

◇ ◇

डॉ० रामरतन भटनागर

समय आ गया है कि हम पिछले युग के श्रेष्ठ कवियो का नया मूल्याकन प्रस्तुत करे और उन्हे वादो की आग मे तपाकर उनका खरा-खोटा सोना परखने की परिपाटी छोड दे। भाषा और भाव के विकास की आतरिक प्रक्रियाओ एव एकान्वितियो के अध्ययन से हम अपने नवजागरणमूलक विकासोन्मुख राष्ट्र की सास्कृतिक चेतना से परिचित हो सकते है पश्चिम के आरोपो और ऊहात्मक व्याख्याओ से नही। पिछले पैंतीस वर्षो मे छायावादी काव्यधारा के नाम पर जिस आधुनिक काव्यचेतना का अध्ययन हुआ है उसके उन्नायको के प्रति हम तभी न्यायशील हो सकेगे जब हम उन्हे उपयुक्त पीठिका मे रखे और पूर्वाग्रहो से मुक्त होकर उनका सम्यक् मूल्याकन करे। छायावाद को पश्चिमी स्वच्छदतावाद के समक्ष रखकर हमने उसमे विदेशीपन की ही स्थापना की है और मध्ययुग की महान वैचारिक क्रातियो से अपना अपरिचय प्रकट किया है। साथ ही हम अपनी नवोदित राष्ट्रीय चेतना के प्रति भी न्याय नही कर सके है। यह बात इसी से प्रकट हो जाती है कि हम सतो-सूफियो और वैष्णव भक्तो की परम्परा को आधुनिक काव्यचेतना का अग बनते नही देख सके है और मध्यवर्ग के उस सास्कृतिक अवचेतन की ओर से दृष्टि बचा गये हैं जो नए पर्यायो से जुडकर आज भी भारतीय जीवन का महान सत्य बना हुआ है। खडीबोली की अर्द्धशताब्दी को भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और छायावाद युग मे बाँटकर हमने भाषा, शैली और काव्यगुणो के नैसर्गिक विकास की उपेक्षा की है। यही नही, 'एक भारतीय आत्मा' श्री माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे श्रेष्ठ कवियो को हमने हाशिये पर डाल दिया है। प्रसाद, निराला और पत की वृहद्त्रयी अथवा महादेवी को जोडकर चतुष्ट्यी बना कर हम खड़ीबोली काव्य के सर्वांगीण विकास के प्रति अन्याय ही करते है। क्या

राष्ट्रीय कवियो का काव्य एकदम सीमाती है अथवा उसमे नए काव्य-सस्कारो की कमी है ? क्या उसकी सोद्देश्यता प्रथित छायावादी कवियो की निरुद्देश्य यात्रा से कम प्राणवान है ?

एक बडा प्रश्न आधुनिक काव्य मे अध्यात्म की स्वीकृति का है। छायावाद के आलोचक इस काव्यधारा को अध्यात्म की छूट ही नही देना चाहते। वह उसे रहस्यवाद का अनिर्दिष्ट नाम देकर विवेकशील अथवा आधुनिक बनाना चाहते है। काव्य मे रहस्यवाद को लेकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के समय से एक अखाडा ही जम गया है। परन्तु जो तथाकथित रहस्यवाद, अध्यात्मसाधना का सर्वोच्च सोपान है और जिसके पीछे वेदात की सर्वात्मवादी और अद्वैती विचारधारा है उसे किसी भी पश्चिमी नाम से टाला नही जा सकता। सतो और मर्मियो के साहित्य मे उच्चतम आध्यात्मिक साधना का दैदीप्यमान प्रकाश ही नही है, सामाजिक और नैतिक भूमिकाओ का भी सर्वश्रेष्ठ आत्मसात है। मध्ययुग के तथाकथित रहस्यवादी उस युग के प्रचण्ड विद्रोही, उत्कृष्ट मानववादी और सर्वतत्रस्वतत्र महापुरुष थे। वे युग की विद्रोही क्रातिचेतना के प्रतीक थे। प्रश्न उनका महान् अस्त्र था। प्रेम की साधना ही उनके लिए जीवन्मुक्ति की साधना थी। वैष्णव भक्तो ने भी इसी प्रेम- साधना को भागवत के रूपको और राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक प्रतीको के रूप मे अपनी आकाक्षा का विषय बनाया। अठारहवी शताब्दी की ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियो, रूढिवाद तथा राजनीतिक शिथिलता के बीच मे भी उर्दू काव्य के भीतर से यह प्रेम-साधना पल्लवित रही और सहस्र सवेदनशील व्यक्तियो को उदारता,सहिष्णुता तथा सदाशयता का सदेश देती रही। मध्य वर्ग ने इसे परम्परा से प्राप्त किया परन्तु नई काव्य भाषा – खडीबोली—मे उन्होने उसे नई साधना से भी पुष्ट किया। 'एक भारतीय आत्मा' और प्रसाद के काव्य मे पूर्व परपराओ का यह प्रसार स्पष्टत मध्यवर्ग की सास्कृतिक नियति का-सा सूचक है। चतुर्वेदी-जी जब कहते है

अरे अशेष, शेष की गोदी तेरा बने बिछौना-सा
आ मेरे आराध्य, खिला लूँ मै भी तुझे खिलौना-सा।

अथवा प्रसाद गाते है

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ, इसमे क्या है धरा, सुनो।
मानस जलधि रहे चिर चुम्बित, मेरे क्षितिज, उदार बनो।

अथवा

प्रियतम, अब इस जले जगत को वृदावन बन जाने दो।

तो उनके शब्दो मे हमे मध्ययुग के वैष्णव कवियो की प्रतिध्वनियाँ ही सुनाई पडती हैं। इसी प्रकार साकी, प्याला, मदिरा और मादकता के उपमान नई काव्य-परम्परा को सूफी चेतना के साथ ही जोडते है। युग-प्रवर्तन के साथ काव्य मे नए प्रतीको का

भी उदय होता है परन्तु पुराने प्रतीकों और उपमानों मे नए अर्थ भरकर परम्परा को पुनर्जीवित भी किया जाता है। यदि हम यह समझ ले कि गाधीजी की क्रान्तिकारिता मध्ययुग के सत और वैष्णव भक्त की क्रान्तिकारिता से भिन्न वस्तु नही थी यद्यपि उसका क्षेत्र धर्म और समाज के साथ राजनीति भी था तो हम छायावादी काव्य के अतरसूत्रो को अच्छी तरह पहचान सकेंगे, क्योकि वह आध्यात्मिक राष्ट्रवाद अथवा गाधीवाद की प्रेरणा से ओतप्रोत ही नही था उसकी समस्त भूमिका आध्यात्मिक और उद्देशीय थी। अध्यात्मवाद का यह स्वर्ण-सूत्र छायावाद के सभी कवियो को जोडता है यद्यपि उसकी श्रेष्ठतम काव्यात्मक अभिव्यक्ति नव्य वेदात के आधार पर निराला मे और सर्वोत्तम वाद की पीठिका पर महादेवी मे होती है। परन्तु कबीर, जायसी, नानक और सूर जैसे साधको की अनेक प्रतिध्वनिया श्री माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के काव्य मे ही आ गई है। उन्हे बेदेखा नही किया जा सकता।

राष्ट्रीयता को आध्यात्मिकता से पुष्ट कर श्री माखनलाल चतुर्वेदी काव्य का एक नया सस्करण तैयार करते है। प्रेमचद की तरह वह भी गाधीवादी युगचेतना के प्रतिनिधि कलाकार हैं यद्यपि उन्होने लोकमान्य तिलक जैसे उग्र राजनीतिज्ञ की तेजस्विता को भी अपनी वाणी मे गुफित कर लिया है। सत्याग्रही सैनिक की समस्त मनोभूमिकाओ और असहयोग आन्दोलन तथा गाधीजी के द्वारा सचालित सभी प्रवृत्तियो का बडा मार्मिक और सूक्ष्म चित्रण उनके काव्य मे हुआ है। एक प्रकार से उनके काव्य को राजनीतिक काव्य कहा जा सकता है। बदिशवादी और स्वच्छदतावादी भूमिकाओ का बडा सुन्दर समन्वय उनके काव्य मे मिलता है और आध्यात्मिकता के समावेश से उसमे आत्मोत्सर्ग, विनयशीलता तथा आतरिक तप के अनेक सद्गुण आ गये है। मध्ययुग के कबीर जैसे फक्कड साधक और सूर जैसे विनयी भक्त की भावभूमियो को एक साथ आत्मसात कर 'एक भारतीय आत्मा' का काव्य अत्यन्त आकर्षक और विलक्षण बन गया है।

मध्ययुग के काव्य मे धर्मवीरता का आदर्श पल्लवित हुआ है। कबीर और तुलसी मे इस उदात्त सामयिक चेतना के दो रूप सामने आते है। आधुनिक युग के स्वातत्र्य युद्ध मे देशभक्ति के आधार पर वीरता का एक नया आदर्श स्थापित हुआ है। अहिंसा को हमने अपनी देशभक्ति का प्रधान साधन बनाया और असहयोगी सत्याग्रही नए सैनिक के रूप मे सामने आया। बलिदान और कष्टसहन के साथ दया, क्षमा, निर्वैरता और लोकसग्रह की भावना का समावेश कर राष्ट्रीय क्रियाशीलता और जातीय ऊर्जा को काव्य के भीतर से नया ओज देकर श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने जीवन और जगत् के प्रति हम मे नई स्पृहा को जन्म दिया और राष्ट्रीय काव्य की नीव डाली। पूर्व युगो की धर्मवीरता को राजनीतिक मुक्ति का साधन बनाकर सास्कृतिक और आध्यात्मिक राष्ट्रीयता का जो पुटपाक अरविन्द घोष,

लोकमान्य तिलक और महात्मा गाधी की चेतना मे तैयार हुआ था उसे साहित्य की सर्वमुखी प्रेरणा बनाने का श्रेय उन्हे ही मिलेगा। उनका ऊर्जस्वी, भाव-प्रवण, अलमस्त, प्रेमी और बलिदानी व्यक्तित्व ही उनके काव्य मे ढल गया है। निमित्त-भेद से वह अपने सपूर्ण साहित्य मे एक रस है। काव्य की पीठिका पर श्री माखनलाल चतुर्वेदी का साहित्य एकदम स्वदेशी है। उसमे न बगला काव्य का प्रभाव लक्षित है, न अग्रेजी काव्य का। उसकी परम्परा उर्दू और हिन्दी काव्य-धाराओ से ही जुडती है। छायावादी कवियो मे निराला बगला के काव्य और पत अग्रेजी रोमाटिको से अनुप्राणित है। और हमने इन्ही को अपनी दृष्टि मे रखकर इस काव्यधारा को स्वच्छदतावाद की विशेषताओ से मण्डित किया है। परन्तु छ कवियो मे से यदि दो का मुख बाहर की ओर है तो सम्पूर्ण काव्यधारा को हम विदेशी भूमिका नही दे सकते। खडीबोली काव्य की विकासात्मक रूपरेखा मे श्री माखनलाल चतुर्वेदी का काव्य सीमात अथवा सधिरेखा का काव्य होने के कारण महत्त्वपूर्ण रहेगा। उसमे युग के एक अत्यन्त सवेदनशील, सस्कारी, सस्कृतिनिष्ठ और सक्रिय व्यक्तित्व का प्रकाशन है। राजनीति को अध्यात्म की बगल मे बैठा-कर राष्ट्र-देवता को प्रियतम की भगिमाएँ देने का श्रेय उन्हे ही मिलेगा। ऐसा अकुठित, सम्मोहनशील और मधुर कवि-व्यक्तित्व किसी सत या सूफी का ही हो सकता था। राष्ट्रप्रेम को मनोमयता तथा उत्सर्गशीलता का रूप देकर सूली को प्रियतम की सेज बनाने के लिए जिस अतिरिक्त भावसवेदन और मादक तथा अनगढ भाषा की आवश्यकता है वह चतुर्वेदीजी के काव्य मे प्रचुरता से मिलेगी। यह भावोन्माद उनके अल्हडपन का सूचक है जो उनकी पक्तियो के बीच मे दरारे डालकर उनके काव्य को कठिन परन्तु सूक्तिप्रधान बना देता है। खड्ग की तीक्ष्ण धार की तरह चमचमाती हुई पक्तियाँ हमे भुलाए नही भूलती।

'एक भारतीय आत्मा' प्रेम के क्षेत्र मे रीझ और खीज के कवि है तो राष्ट्रीय भावना के क्षेत्र मे भी ये दोनो वृत्तियाँ उनके काव्य मे कम नही मिलेगी। परन्तु राष्ट्रीय कविता मे इसके साथ ओज, आत्मविश्वास, आस्था और बलिदान का तेज इस प्रकार घुल जाता है कि हम मुग्ध हो जाते है। सुब्रह्मण्य भारती की तरह उनके राष्ट्रीय काव्य मे विचारो और भावो की एकान्विति और भविष्य के सपनो की चित्र बेला भले ही न हो, बलिदान और कष्ट-सहन की भावना वैसी ही है। गाधी-युग के साहस, तप और दर्प को उनका काव्य बडी मात्रा मे प्रकट करता है। जिन दिनो खडीबोली मे गभीर वेदना तथा प्रचण्ड भावोद्दीप्ति सहने की शक्ति नही थी उन दिनो जिस कवि ने भाषा और भाव के बीच की खाई पाटकर गीतो को टेकरियो पर चढाया और साँसो के तारो पर हृदय की अन्यतम और मधुरतम बात कही, वह हमारी काव्य-भापा के इतिहास मे निश्चय ही कीर्तिमान रहेगा। युगपुरुष गाधी कवि की गौरव-गीता के केन्द्रीय व्यक्तित्व हैं परन्तु उनके

माध्यम से कवि ने जन-शक्ति का ही आह्वान किया है और उसी की जयगाथा गायी है। भारतीय स्वातत्र्य की सपूर्ण जययात्रा को ही इस कवि ने वाणी नही दी, स्वातत्र्योत्तर भारत के अधिनायकों और नेताओ को भी चुनौती दी है। विदेशी अग्रेजी सत्ता के साथ चीनी आक्राताओं को भी इस प्रचण्ड चिरयुवक विद्रोही की ललकार सुननी पडी है। यह राष्ट्रोद्बोधन अभी भी मौन नही है। साठ वर्षो की भाषा, शैली, छद और भाव की सवार अपने आप मे इतिहास नही तो और क्या है।

चतुर्वेदीजी के काव्य मे बौद्धिकता का आग्रह भले न हो, उसमे एक विशेष प्रकार की सूझ-बूझ और कल्पनाप्रवणता मिलती है जो विचारो और भावनाओं के भीतर बडी-बडी दरारे डाल देती है और हमे सीमोल्लघन का आह्वान देती है। ध्वनिकाव्य के अनेक श्रेष्ठ उपकरण उनके काव्य मे है। उनकी वक्रोक्तियाँ बेजोड कही जा सकती है। उन्हे पढकर डाने, क्राशा और डायलन टाम्स की याद आ जाती है। चमत्कार की ओर यह आग्रह उन्हे छायावाद के अन्य कवियो से भिन्न और विशिष्ट बना देता है और कइयो की राय मे उनसे इनकी पटरी ठीक नही बैठती, परन्तु मध्ययुग के रीति-कवियो तथा समकालीन उर्दू कवियो मे यह चीज़ पर्याप्त मात्रा मे थी। यहाँ भी कवि परपरा को प्रयोगो का आधार बनाकर काव्य मे नई प्राण-प्रतिष्ठा कर रहा है। नए बौद्धिको और प्रयोगवादी कवियो का चतुर्वेदीजी के काव्य के प्रति आकर्षण इस प्रयोगशीलता, अनगढता, भाषात्मक सूक्ष्मता और ध्वन्यात्मकता के कारण ही है। वे कवियो के कवि रहे है और उनका यह नेतृत्व छायावाद युग की समाप्ति के साथ नि शेष नही हो गया है। काव्य-चेतना के अप्रत्याशित, अनायासिक तथा अवचेतनीय क्षेत्रो को रचना मे उभारकर कवि किस प्रकार भाषा और शैली के बधनो से मुक्त होकर अपने उन्मुक्त व्यक्तित्व की छाप कृति को देता है, इसका प्रमाण ही एक भारतीय आत्मा का काव्य है। यह 'एक भारतीय आत्मा' निस्सन्देह पिछली अर्द्धशताब्दी की भारतीय आत्मा का काव्य और कृतित्व मे प्रतिनिधित्व करती है। क्रियात्मक राजनीति, पत्रकारिता, अभिभाषण, निबध और लेख की लीक एक ओर है तो काव्य की अबोध साधना की लीक दूसरी ओर। परन्तु दोनो भूमिकाओ को एक सूत्र मे बाँधने वाला कवि-व्यक्तित्व विशुद्ध भारतीय आत्मा है जो सत, मर्मी और भक्त के भीतर से युगधर्म, राष्ट्रीयता को विद्युल्लेखा की तरह उभारती है और पूर्वोदय के हिरण्यगर्भी क्षितिजो पर नए जीवन का आलेख अकित करती है। श्री माखनलाल चतुर्वेदी से गजानन माधव मुक्तिबोध तक मध्यप्रदेश का प्रदेश खडी बोली के काव्य की सजीवता और क्रियमाणता को जिन दिशाओ मे बढाने मे समर्थ हुआ है वे एक स्वतत्र जीवन-चेतना और सशक्त-परपरा की सूचक है जिसका अध्ययन हमारे काव्य-विकास की अनेक ग्रुत्थियाँ सुलझा सकेगा।

उनके कृतित्व के प्रति मेरे विचार

० ०

केदारनाथ अग्रवाल

मैं चतुर्वेदीजी को अपने लडकपन से जानता हूँ। छोटा था। कविता से मोह था। उनकी कविताएँ निकलती थी। जहाँ भी छपती थी उन्हे चाव से पढता था। भावुक था इसलिये भाव-विभोर हो जाता था। प्रभाव पर प्रभाव मेरे हृदय पर पडते रहे और मै उनका होता चला गया। मेरा-उनका साक्षात्कार नही हुआ। यह मेरा दुर्भाग्य है। किन्तु इससे किसी प्रकार का कोई अन्तर मुझमे नही पडा। इस दुर्भाग्य के बावजूद भी मैं उनका और उनके कृतित्व का आदर करता चला आ रहा हूँ।

मेरा एक दोस्त था। गुलाब प्रसन्न 'शाखाल'। वह तब जबलपुर मे था। मैं भी वहाँ था। दोनो कविता-प्रेमी थे। एक साल के बाद मैं इलाहाबाद चला गया। वह वही रहा। मै बी० ए० मे था। शायद यह १९३२-३३ सन् की बात होगी। मेरी एक कविता 'माधुरी' मे छपी थी। मेरे दोस्त ने मुझे लिखा था कि चतुर्वेदीजी को वह कविता पसद आयी है। मेरे लिये बडी बात थी। बहुत खुश हुआ था। फिर तब से आज तक मेरे उस दोस्त का मुझे कुछ पता नही चला। लेकिन मैं कह सकता हूँ कि मेरे उस दोस्त का भी बहुत कुछ योग है जो मैं चतुर्वेदीजी के कृतित्व और व्यक्तित्व की महत्ता स्वीकार करता हूँ।

चतुर्वेदीजी की एक कविता 'कैदी और कोकिल' प्रकाशित हुई। बहुत वर्ष हो गए। उस कविता की मुझ पर जो प्रतिक्रिया हुई थी वह आज तक उसी प्रकार बनी है। बहुत-बहुत असर पडा है। तब से मैं चतुर्वेदीजी की कलम का कायल हो गया हूँ। यदि मैं कहूँ कि वह कविता धरती और स्वर्ग दोनो का नैसर्गिक स्वर थी तो कोई अत्युक्ति न होगी। मैं डूब गया था मनुष्य के हृदय मे, देवताओ के अन्तस् मे। बहुत जानदार, ताजी और उदात्त कृति थी वह।

मैंने उनकी अन्यान्य रचनाएँ भी पढी। उन्होने भी मुझे अभिभूत किया।

सबसे बड़ी विशेषता उनकी रचनाओ की यह है कि वे साँचे मे ढाली नही

जाती और न तराशी जाती है। वे अपने सहज स्वभाव में सितार के तार-सी बजने लगती है। बजाने वाला सामने नहीं आता और न कविताओं को आरोपित करता है। मेरी समझ में जो यह सहज स्वाभाविकता का गुण है वही सच्ची कविता का लक्षण है। इस गुण को चतुर्वेदीजी अपने व्यक्तित्व में दबाते नहीं—उनका अपना कलाकार उसे नचाता नहीं—न उसको सकटग्रस्त स्थिति में डालता है। मैं कला की महत्ता जानता हूँ। उसका कायल भी हूँ। पर कला कविता के सहज रूप को पीछे कर दे और स्वय आगे आ जाये—मैं इसको कवि और उसके कृतित्व की बहुत बडी कमजोरी समझता हूँ। यही वजह है कि जिसके पास आदमी का निश्छल हृदय है और जो जीवत है वह कभी कविता में कला को प्रथम स्थान न देगा। चतुर्वेदीजी इसलिये सराहनीय है कि उन्होने अपने मनुष्य हृदय को और उसकी जीवित गति को बरकरार रखा है और युग और यथार्थ से प्रभावित होते रहे।

वह वयोवृद्ध है। पुरानी पीढी के है। लेकिन कविताओं में नवीन स्फूर्ति के कवि है। उनकी कविताएँ स्पर्श करती है जैसे बयार। इद्रिय-बोध उनमे भरा मिलता है। वे मनुष्य की कविताएँ है—मनुष्य के लिये लिखी गई है और मनुष्य उनसे प्रभावित होते है।

न जाने मुझे क्यो उनकी कविताओ मे वही हृदय की व्यजना मिलती है जो लोक-गीतो मे मिलती है। लोकगीत इस लोक के आदिम स्वभाव के सस्कार के सस्करण है जो गाँव-घर मे गूँजते रहे है और इस मशीनी युग मे भी गूँजते रहेगे। उन गीतो मे सुख-दु ख दोनो ही अपनी अभिव्यक्ति पाते है। न सुख को यक्ष बनाया जाता है, न दुख को दानव। मुझे दोनो ही बडे प्रिय लगते हैं। यह सच है कि चतुर्वेदीजी की कविताएँ उनके रग-रूप और चाल-चलन से भिन्न है लेकिन शिल्प और शैली, भाषा और छन्द, योजना और विस्तार और युग का यथार्थ उन कविताओ का जन्मजात सस्कार नही हर पाते—नही हर पाते। कल्पनाएँ, उपमाएं और छद सब के सब उस जन्मजात सस्कार की सुरक्षा मे अग्रसर रहते है, न कि उदासीन—

मैं समझता हूँ कि चतुर्वेदीजी का व्यक्तित्व भी अवश्य उनकी कविताओ के अनुरूप होगा। मैंने उनकी तसवीरे देखी है। 'धर्मयुग' मे भी हाल मे आयी हैं वे तसवीरे। उनका रूप उनके कवित्व को पूरी तरह व्यक्त करता है। वह तो मान-सरोवर के हस है जिसका अपना अतुलनीय सौन्दर्य होता है। मोर कितना भी रग-बिरगा हो और कैसा ही नाचे वह हस का सौन्दर्य और स्वभाव नही पा सकता। वह प्रकृति-प्रदत्त है।

'साहित्य देवता' मे उनका गद्य भी देख चुका हूँ। कवित्व और विवेक का शकर-पार्वती जैसा मेल-मिलाप है उनके गद्य मे। न वहाँ रेलगाड़ी चलती

है कि धुआ दे रही हो और बोझा ढोये जा रही हो, न वहाँ लट्ठ चलता है कि सिर टूट जाये और खून-खच्चर हो जाये। गद्य और पद्य मे बडा मेल है। मै उनके गद्य का भी कायल हूँ।

मैं नही जानता कि उन्हे राजनीति ने काव्य मे किस तरह प्रभावित किया है और किस हद तक वह काव्य से कतरा गये है। यह कहना भी बडा कठिन है। उन्हे राजनीति मे दिलचस्पी न होती तो वह और कितने बडे कृतिकार होते, इसका अनुमान करना असभव है। न ऐसा अनुमान हो सकता है।

अन्त मे मैं उनके व्यक्तित्व और कृतित्व दोनो की सराहना करता हूँ और यह आशा करता हूँ कि उनकी रचनाओ को घर-घर मे पहुँचाने की योजना बने और सस्ते सस्करण सुलभ हो, अन्यथा इस आत्म-प्रचार के युग मे यह आशका है कि कही उनका कृतित्व, कुछ साल बाद नीचे न दब जाय और आने वाले लोग उसका आस्वाद न ले पाये और हमारे युग के महाकृती का कोई महत्त्व न समझ सके।

'एक भारतीय आत्मा' का काव्य-जगत्

० ०

दिनकर सोनवलकर

श्री माखनलाल चतुर्वेदी का काव्य-सृजन समूचे आधुनिक हिन्दी साहित्य मे अलग दिखाई देता है। काव्य के भीतर व्यक्तित्व की यह विशिष्टता और व्यक्तित्व की साधना के साथ-साथ रचना की प्रौढता की उपलब्धि हिन्दी कविता मे क्वचित् ही दीख पडती है।

उपनिषद् की उक्ति है—"कवि क्रान्तदर्शी होता है।" यह कथन चतुर्वेदीजी के काव्य-सृजन को समझने की कुजी है। बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि ऋषियो की यह सूक्ति उनकी कविताओ द्वारा सार्थक हुई है। इसका सबसे सहज प्रमाण है उनका उपनाम 'एक भारतीय आत्मा'। हिन्दी के श्रेष्ठ कवियो के उपनामो मे यह उपनाम सर्वाधिक व्यजनापूर्ण है। इसमे स्वत को अलग स्थापित करने की लालसा नही है, और न ही अपने निरालेपन की घोषणा है। फिर भी, यह अपनी साधारणता मे भी असाधारण है। इसमे एक ओर सामान्य होने का विनय है, दूसरी ओर भारतवर्ष की समूची सास्कृतिक विरासत की रक्षा करने का सकल्प है और सबके ऊपर है आत्मा की अमरता तथा आस्तिकता का अभिमान। इसी विनम्रता, सकल्प एव स्वाभिमान के बल पर वे हिन्दी के पहले और श्रेष्ठ राष्ट्रीय कवि बन सके है।

वे ड्राइग-रूम मे बैठकर क्रान्ति का शख फूंकने वाले कवि नही हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन की अग्रिम पक्ति मे खडे होकर सब कुछ न्योछावर कर देने वाले अलमस्त गायक है। स्वतत्रता सग्राम मे अपना सब कुछ उन्होने खो दिया और जब लोग अपनी शहादत के चेक भुनाने के लिए नकली प्रमाण-पत्र लेकर सामने आने लगे तब माखनलालजी चुपचाप अपने साहित्य-कुटीर मे लौट आए। सच पूछा जाए तो प्रतिदान की आकाक्षा उनके मन मे कभी नही रही। प्रारभ से ही उनकी अभिलाषा "उस पथ मे फेक दिए जाने की रही जिस पथ से मातृभूमि पर शीश चढाने वाले वीर जाते हो"। १८ फरवरी, १९२२ की यह अभिलाषा १९६३

मे भी ज्यो-की-त्यो है और "बूढो की क्या बात, युगो की तरुणाई के दिन आए है" जैसी अमर घोषणाओ मे प्रकट होती है।

लेकिन भारतीयता के प्रति यह जागरूकता उन्हे किन्ही सकुचित राष्ट्रीय सीमाओ मे कैद नही करती, उनकी उद्‌बोधन कविताएँ सामयिकता से बहुत ऊपर है। समस्त मानवता के सेवक वे बनना चाहते है मगर अपना स्वत्व खोकर नही। राष्ट्रीय गौरव को बेचकर अन्तर्राष्ट्रीयता की चर्चा करना उन्हे स्वीकार नही।

उनका काव्य-व्यक्तित्व द्विवेदी-युग से लेकर आधुनिक काल तक अपने चरण बढाता आया है। सचमुच वे युग के चरण ही है जो अपने परिवेश तथा दायित्व के प्रति हमेशा सजग रहे। उनकी लेखनी ने हिम किरीटिनी का वैभव गाया है, समर्पण का सगीत सुनाया है, अपने वेणुनाद से धरा को गुजाया है और हलके हाथो बीजुरी की आँखो मे काजल भी आँजा है।

द्विवेदी युग की राष्ट्रीय एव सामाजिक पुनरुत्थान की समस्त प्रवृत्तियाँ उनमे देखी जा सकती है मगर गद्यात्मकता और उपदेशात्मकता के दोष उनमें नही है। छायावाद का प्राकृतिक-सर्वात्मवाद तथा सौन्दर्य की सूक्ष्म अभिव्यजना भी उनमे है, मगर समाज के प्रति अपने कर्तव्य से बचने की पलायनवादी मनोवृत्ति कही नही। प्रगतिवाद का क्रान्तिकारी स्वर और शोषितो के प्रति सच्ची सहानुभूति भी उनमे है, किन्तु भारतीय मिट्टी को भूलकर रूस की लाल सेना के गुण उन्होने कभी नही गाए, और न ही बाद को चीन के लिए प्रशस्तियाँ (अथवा गालियाँ) लिखी। इधर नवकाव्य की नई प्रतीक-योजना भी उनके प्रकृति गीतो मे बिखरी पडी है, मगर व्यक्तिवादी कुठाओ की विकृति उसे दूषित नही कर पायी।

यह है साहित्य देवता की विराट् यात्रा जिसमे कही थकान के चिह्न नही, स्वत. को दोहराने की विवशता नही, अ-काव्यात्मक मुद्राएँ धारण करने का मिथ्या दभ नही। इस प्राणवान् रचनाशीलता का उत्स आखिर कहाँ है ? कभी न सूखनेवाला रस का यह निर्झर आखिर किस चट्टान से निकलता है ?

वह चट्टान है कर्मठता की, जिसके निर्माण मे स्व० माधवराव सप्रे का स्पर्श है और व्यक्तित्व की इस साधना मे तिलक, गणेशशकर विद्यार्थी, गाधी, विनोबा और रवीन्द्र के जीवन-दर्शन का निचोड है। इस चट्टान ने जीवन के कठोर से कठोर अनुभवो के आघात सहे है लेकिन अकेली कर्मठता से रस की सिद्धि नही होती। इसलिए यह निर्झर समर्पण का सगीत लेकर बहता है · एक पागलपन, उद्दाम आवेग, निष्ठावान् प्रणय। फिर यह अनेक रगो मे प्रकट होता है जैसे सूरज की किरण पडते ही झरने का जल सात रगो मे चमकने लगता है। यह सब कुछ लुटा देने की मस्ती, कुछ पाने के लिए नही। मात्र अहेतुक आनद कभी अन्तर के 'राजा' को रिझाने के लिए, कभी आराध्य के चरणो पर, कभी बलिवेदी पर। सूर का सगीत, तुलसी का विनय, कबीर का फक्कडपन और मीरा की तन्मयता

यहाँ अलग-अलग रूप धारण करके आते है अछूते उपमानो मे, मौलिक उद्भावनाओ मे।

प्रत्येक कवि का अपना एक मानसिक जगत् होता है जहा से वह अपने प्रतीक, बिम्ब, चित्र, उपमाएँ आदि लाया करता है। यह काव्य-विश्व उसका स्थायी कोष होता है। न जाने क्यो मुझे बार-बार यह लगता रहा है कि माखन-लालजी के काव्य-व्यक्तित्व मे कृष्ण-चरित्र समाया हुआ है। उनके काव्य मे कृष्ण और उनके चरित्र के विभिन्न रूप तथा उपकरण बार-बार उभरते है। इसका यह अर्थ कदापि नही लेना चाहिए कि उनमे किसी प्रकार की पौराणिकता या पुरानापन मिलता है। कृष्ण से सबधित व्यक्ति, वस्तुएँ, स्थान सभी को एक नूतन अर्थ-गरिमा से समन्वित करने की यह कला माखनलालजी की अपनी विशेषता है। उनकी किस रचना मे माधव, वनमाली, श्याम, वृन्दावन, वेणु, गोपी, राधा, यमुना, कुज जैसे शब्द कौन-सा नया सकेत लेकर प्रकट हो जाएंगे, यह कहना बहुत मुश्किल है। उदाहरण लीजिए—

मोहन के स्वर, मोहन के व्रत, मोहन का वृन्दावन जागे
सिद्धि दासियाँ पीछे-पीछे, चले समर्पण आगे-आगे।

०

दग करती-सी मृदग बजे, कि वशी रन्ध्र बोले
नृत्य-मग्ना एशिया की गोपियाँ स्वच्छन्द डोले।

०

यही कही उस माधव का अलगोजा बोल रहा है रानी।
राधा के पैरो की पायल, यही कह रही रामकहानी।

०

नष्ट होने दो सखे, सहार के सौ काम
वेणु लो, गूँजे धरा, मेरे सलोने श्याम।

०

पखो पर रक्षित मेरा साँझ सबेरा
मेरे माधव का रूप श्याम-घन तेरा।

०

उपनिषदो का अमर काव्य
राधा से खेल रहा, बच्चा है
यह असत्य कितना सच्चा है।

०

अर्ध रात्रि पिछले दरवाजे, यह बरसन
बिजली मे भी दीख न पडते श्याम बदन।

वीणा के स्वर, वशी की ध्वनि, यमुना के तट
मानव के गुनाह का बस इतना-सा लेखा।

गगन ने किस ग्वालिनी की दूध की मटकिया पाली,
कौन-सा था कान्ह री, जिसने कि हँस-हँस फोड डाली।

०

चतुर्वेदीजी के काव्य मे जो दूसरा प्रतीक बार-बार आता है, वह है हिमालय का। 'एक भारतीय आत्मा' को अपने हिमगिरि पर बडा गर्व है, उसके सौन्दर्य पर वह मुग्ध है और हिमालय पर किया गया आघात कवि को इतना पीडित करता है मानो किसी ने उसके सिर पर चोट की हो, उसकी प्रतिष्ठा को चुनौती दी हो। सस्कृत-काव्य हिमालय के उल्लेखो से भरा पडा है, पर हिन्दी कवियो मे इतनी आत्मीयता और व्याकुलता से हिमालय का उल्लेख शायद माखनलालजी ने ही किया है। मै नही जानता इसका कारण उनके कौन से व्यक्तिगत अनुभवो मे छिपा है। यदि उन्हे 'हिमालय का कवि' भी (ही) कहा जाए तो अत्युक्ति नही होगी। उनकी प्रारभिक रचनाओ से लेकर आज तक हिमालय उनके काव्य मे व्याप्त है। उनका कवि-मन हिमालय के गौरव, उसकी भव्यता, उसके अलौकिक सौन्दर्य और भारतीय राष्ट्र मे हिमालय के महत्त्व से ओत-प्रोत है। हिमालय से इतनी दूर रहकर उससे इतनी गहरी आत्मीयता का अनुभव करना साहित्य क्षेत्र का एक आश्चर्य ही कहलाएगा। हिन्दी के बडे-बडे कवियो को हिमालय की सुध तभी आयी जब चीन ने हम पर आक्रमण किया। माखनलालजी के काव्य मे हिमालय, सामयिक कृत्रिम लेखन की आवश्यकता नही, प्रेरणा का शाश्वत केन्द्र है।

हिमालय ही नहीं, काश्मीर भी उनकी कविताओ मे बहुत पहले से अपनी समस्त सुषमा के साथ विराजमान है। 'कवि क्रान्तदर्शी होता है' इस उक्ति की सार्थकता ऐसे उदाहरणो से स्पष्ट होती है। आगे आनेवाली घटनाओ को भी अपनी अन्तर्दृष्टि से देख लेने वाले ही चिन्तक की उपाधि पाते है।

सन् १९५० मे लिखी गई ये पक्तियाँ—

"जय काश्मीर हमारा बल हो
चरण चले, ईमान अचल हो"

अगस्त, १९६५ मे कितनी अर्थवान् बन जाती है? और ये स्वाभिमान भरी चुनौतियाँ—

हिमालय जब पुकारे, शीश बो दे
सहस्रो मे हमारा सिर पिरो दे।

क्या मै उसको माफ करूँगा जो मेरी चोटी से खेले
जो मेरी सभ्यता, सस्कृति, उदयगान को पीछे ठेले ?

०

तू न बकरियो-सा 'मै मै' कर, बो दे निज तरुणाई
हिमशैलो, पर्वतशिखरो ने तुझको टेर लगाई।

०

मृत्यु की कीमत चुकाएँगे सखे, मय सूद
दृष्टि पर हिमशैल हो, हर साँस मे बारूद।

वे लोग देखे जो 'कॉफी हाउसो' मे बैठकर युगबोध तथा साहित्यकार के दायित्व पर बहस करते है और वादों-विवादो का दलदल मचाते है। ऐसा किताबी सृजन सचमुच क्षणजीवी ही होता है। उसमे न तो प्रेरणा ही है न प्रभाव। ऐसे शब्दो का क्या अर्थ जिसका सम्बन्ध जन-जीवन से और अपनी मातृभूमि से न हो ?

माखनलालजी के काव्य की तीसरी आधारभूमि है उनकी जिजीविषा और इस धरती से, जीवन से उनका तादात्म्य। प्रकृति के रूप रग जैसे उन्हे पागल कर देते है, जीवन का सघर्ष उन्हे अपनी तरफ बुलाता है और श्रम-भावना ही उनकी आराधना बन जाती है। समस्त प्रकृति मे उन्हे एक ही उद्देश्य दिखाई देता है—स्वय को मिटा देने का। बीज मिटकर ही वृक्ष बनता है, पानी जब नीचे गिरता है तभी फल-फूल ऊपर उठ पाते है। फल उनके लिए मस्तक है, पत्ते तलवार है, प्रकृति रणक्षेत्र है, व्यक्ति एक पुष्प जिसे कही न कही समर्पित होना ही है। समर्पण का लक्ष्य कोई भी हो, उसे पूरी मस्ती से, बहादुरी से पूरा किया जाना चाहिए, बिना किसी शिकायत या शिकवे के, बिना फल की आसक्ति के। समर्पण का सकल्प ही व्यक्ति के जीवन को सार्थकता प्रदान करता है।

यही जिजीविषा पारिवारिक जीवन मे बच्चो के प्रति वात्सल्य मे प्रकट होती है—कभी सहयोगियो की स्मृति मे करुणा बनकर फूटती है, कभी बेटी की विदा जैसा शोक-गीत रचती है।

जीवन की जितनी भी अभिव्यक्तियाँ है, सब उन्हे प्रिय है। वे हरएक भाव-दशा मे रमते है लेकिन इन सब के बीच भी एक अद्भुत तटस्थता उनमे बराबर बनी रहती है। कर्मों के बीच से अकर्म की ओर जाने की जिस साधना का उल्लेख गीता मे मिलता है, बहुत कुछ वैसा ही।

कृष्ण का जीवन भी तो ऐसा ही अनासक्त था—रासरग, विरह-मान, ऐश्वर्य-विलास, युद्ध-शान्ति के बीच, जीवन के विराट् महाभारत के सूत्रधार होते हुए भी अनासक्त। कवि के आराध्य भी तो वही है। वह उपासक ही क्या जो अपने

आराध्य से कुछ न सीखे ? कवि के गुरुवर का नाम 'माधव' होना भी एक विचित्र सयोग है।

माधव मात्र के प्रति सहज प्रेम उनमे है और जो श्रम करता है, वह उनके लिए सबसे बडा कलाकार है। श्रम की प्रतिष्ठा उनकी रचनाओ मे बार-बार मिलती है और इसे मैं उनकी प्रगतिशीलता कहता हूँ।

यह क्रियाशीलता चारो ओर व्याप्त है। प्रत्येक अणु गतिशील है, अपने उद्देश्य को पाने के लिए व्याकुल है। और यह उद्देश्य है अपने को मिटा देना एक बृहत्तर समष्टि के लिए।

रागात्मकता के विविध माध्यम शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गध उन्हे बेहद आकर्षित करते है। प्रकृति के रगमच पर ऋतुओ का दृश्य-परिवर्तन निरन्तर चलता रहता है और जीवन का शाश्वत क्रम सतत प्रेरणा देता है। इस तरह वे प्रकृति-मार्गी है, कर्मयोगी है, स्वाभिमान के साथ जीना जानते है। स्वाभिमान और अहकार का भेद हर क्षण ध्यान मे रहना चाहिए। स्वाभिमान एक अनिवार्य गुण है जिसके अभाव मे कोई व्यक्ति या राष्ट्र जीवित नही रह सकता। अहकार एक दुर्गुण है जो मानव के बीच दीवारे खडी करता है। स्वाभिमान अस्तित्व की अनिवार्य शर्त है, ठीक उसी तरह जैसे सतत जागरूकता स्वतन्त्रता की। Eternal uigilance is the price of leberty यह सतत जागरूकता ही तो युग-बोध बनती है। आज की साहित्यिक चर्चाओ मे अकसर प्रतिबद्धता का प्रश्न उठाया जाता है। प्रतिबद्धता किसके प्रति ? 'एक भारतीय आत्मा' का सीधा उत्तर है राष्ट्र की स्वाधीनता के प्रति ! मानव मात्र के प्रति !! कलाकार की ईमानदार, सृजनात्मक प्रेरणा के प्रति !!!

(१) पूजा से कहो
कि सेवा के चरणो पर ही
आनन्द कि श्रम के
स्नेह भरे वरणो पर ही।

(२) चिर नवीन, चिर तरुण जगत की
मौलिकता पल पल पहिचानो
तब जीवन की प्रणय-प्रलय-गति
कितना स्वाद लिए है जानो।

(३) ऊब उठे श्रम करते-करते
ऐसे प्रज्ञाहीन मिलेगे
साँसों के लेते ऊबेगे
ऐसे साहस क्षीण मिलेगे।

(४) बौर उठे हैं आम गगन पर
लो अब कोई इन-सा बौरे ?

(५) नित आँखमिचौनी खेल रहा, जग अमर तरुण है, वृद्ध नहीं
इच्छाएँ क्षण कुंठिता नहीं, लीलाएं क्षण आबद्ध नहीं।

(६) वे अमृत कैसे पाएंगे
जो विषघट अपना न सकेंगे ?

(७) दुःख पुरुषार्थी की करवट है,
सुख श्रम की परिणति का घर है।

इस प्रकार साहित्य देवता की यह विराट् यात्रा अथक चल रही है। उसने जीवन को समझा है, सार्थक किया है क्योंकि उसे मृत्यु का भय नहीं है। हिन्दी में प्रकृति, प्रणय और राष्ट्रीय काव्य को अलग-अलग, असम्बद्ध देखने की पाठ्य-पुस्तकीय आदत पड़ गई है। चतुर्वेदीजी के काव्य में ये तीनों एकसाथ एक-दूसरे से होड़ करते दिखाई देते हैं। उनकी राष्ट्रीयता सीधी उद्बोधनात्मक शैली में कभी व्यक्त नहीं होती। वह प्रणय की गहरी आसक्ति में डूबकर प्रकृति के माध्यम से अपना चमत्कार दिखाती है। प्रेम की बात करते-करते वे किस क्षण सिर सौंपने की शर्त लगा देंगे यह कहना कठिन है ? (और क्या सचमुच सर्वस्व दिये बिना प्रेम किया जा सकता है ?) और फिर तुरन्त प्रकृति का एक चित्र खींचकर कहेंगे, 'देखो, ऐसे हँस-हँसकर खुद को मिटाया जा सकता है।'

प्रियतम को रिझाने के लिए वे खुद को लुटाते हैं, पर दीन-हीन बनकर नहीं। वहाँ भी उनका स्वाभिमान जागृत रहता है। सम्भवतः उनका लक्ष्य 'प्रिय-रूप' हो जाना नहीं, प्रिय के साथ साथ रहना है। प्रियतम का आसन कितने ही ऊंचे पर हो, उन्हें अपनी निचाई पर विश्वास है।

ऊँचाई यों फिसल पड़ी है
नीचाई के प्यार में
क्या आकाश उतर आया है
दूबों के दरबार में ?

माखनलालजी जितने प्राणवान् कवि हैं उतने ही गहरे विचारक हैं। उनके समीक्षा-सूत्र सूक्तियों की तरह अपने में विराट् अर्थ छिपाए रहते हैं। ये सूत्र अध्ययन के निष्कर्ष नहीं, अनुभव की सिद्धियाँ हैं। उनकी समीक्षा और उनका सृजन एक-दूसरे के पूरक हैं। व्यक्तित्व और कृतित्व का कोई अन्तर्विरोध यहाँ नहीं है। इसी सामंजस्य के कारण वे साहित्य-सेवियों की एक समूची पीढ़ी का निर्माण कर सके हैं। रचनाकारों (कवि, लेखकों, पत्रकार, सम्पादक) की एक पूरी पंक्ति खड़ी कर देना संघर्ष के इस युग में कितना कठिन है, यह वही जान सकते हैं जो हिन्दी-लेखकों में व्याप्त नये-पुराने के संघर्ष तथा दलबन्दी से परिचित हैं।

चतुर्वेदीजी की यह देन उतने ही ऐतिहासिक महत्त्व की है, जितना स्वय उनका लेखन।

इन सबके बावजूद, 'एक भारतीय आत्मा' स्वतः को शून्यवत् मानकर ही चलते रहे और अपनी कविताओ को सदैव 'तुकबन्दियाँ' कहकर सम्बोधित करते रहे।

विनम्रता, स्वाभिमान और सकल्प,
जीवन, सृजन और कर्म,
प्रणय, प्रलय और पुरुषार्थ,

इन तीनो को एक साथ लेकर चलने वाले सिपाही का नाम था—

'एक भारतीय आत्मा'

चतुर्वेदीजी की काव्य-देन : एक दृष्टिपात

० ०

डॉ० रामेश्वरलाल खडेलवाल 'तरुण'

किसी भी साहित्यकार की जीवन-उपलब्धि को सम्मुख पाकर और उससे प्रभावित होकर भावक समीक्षक के मन मे, साहित्य-तात्त्विक या ऐतिहासिक सदर्भो मे, उसके सम्यक् मूल्याकन और स्थान निर्धारण की प्राय एक अनिवार्य प्रवृत्ति होती है, जो स्वनिर्मित धारणा को साधार और अतिरिक्त रूप से प्रामाणिक होते देखने की जिज्ञासा-तृप्ति की दृष्टि से स्वाभाविक ही है। समीक्षा-व्यापार के तीन प्रमुख अगो—भावन, विश्लेषण व मूल्याकन—मे मूल्याकन का स्थान शीर्षस्थ है, इस नाते उसके अभाव मे समीक्षा-व्यापार पूरी तरह सम्पन्न नही कहा जा सकता। यो भी, किसी देश की साहित्यिक-सास्कृतिक धारा की समृद्धि व अखण्ड प्रवाह की दृष्टि से मूल्याकन का कार्य एक अनिवार्य आवश्यकता है, अन्यथा सग्राह्य एव त्याज्य की विवेक-हानि से उपलब्धियो के आकलन व व्यवस्थापन की प्रक्रिया मे अराजकता ही व्याप्त हो जाय। शुद्ध सृजन की भूमि पर प्रत्येक छोटी-बडी उपलब्धि किसी-न-किसी तर्क से अवश्य ही महत्त्वपूर्ण ठहराई जा सकती है, पर समीक्षा की यथार्थ कठोर भूमि पर तो कदाचित् ऐतिहासिक पूर्वापर एव तात्त्विक उच्चावच के विचार से मुक्ति सभव नही चाहे उक्त विचार का तत्र अत्यन्त ही सूक्ष्म एव जटिल क्यो न हो। किसी भी कर्तृत्व का वस्तून्मुख व विभ्रति मूल्याकन साहित्य की प्रगति व सुस्वास्थ्य की दृष्टि से एक अनिवार्य आवश्यकता ही है।

पर मूल्याकन मे प्रवृत्त समीक्षक की सीमाएँ भी बडी स्पष्ट एव सुनिर्दिष्ट है। विशेषत जब साहित्यकार हमारी आँखो से बिलकुल सटा हुआ हो तो उसे उसकी समग्रता मे देख पाना सरल कार्य नही है। आँखो की रचना और प्रकृति ही कुछ ऐसी है—आँखे चाहे बाह्य हो या आन्तरिक और फिर वैज्ञानिकता का तकाजा यह बना ही रहता है कि हम वस्तु को उसके 'स्व' thing-in-itself मे देखे; और इस रूप मे तो साहित्यकार तभी देखा जा सकता है जब वह भी हमारी बोध-वृत्ति के लिए स्थिर सुस्पष्ट होकर सुलभ हो— हमारी श्रद्धा, रति-विरति, स्नेह-समर्पण-भावना आदि

उसे तरगायित आघातित न कर रही हो और हम भी अनाविलता एव समशीतोष्ण भाव से सयत-सतुलित रहकर उसे देख सकने की अनुकूल स्थिति मे हो। दूसरे, आलोच्य कवि या साहित्यकार समस्त कृतियो का मार्मिक या तलस्पर्शी—सरसरा नही—अध्ययन-मनन किये बिना और उसके गूढ आशयो, मन्तव्यो व मूल प्रेरणाओ को साक्षात्कृत किये बिना ऐतिहासिक और तात्त्विक दोनो ही प्रकार का मूल्याकन—और विशेषत जहाँ तुलनाएँ एव कीर्तिमान-स्थापन निहित हो—शुद्ध न्याय की दृष्टि से, एक खतरे का काम है। साहित्य के अखण्ड ऐतिहासिक प्रवाह मे जहाँ सभी विभूतियाँ अपने-अपने स्थान पर और अपने-अपने ढग से अपने युग एव परिवेश की सहज व ठीक उपज है, किस प्रतिभा को आगे और किसे पीछे ठहराया जाय, और किन सिद्धान्तो एव आधारो पर ? ऐसी ही कठिनाई तात्त्विक निकष वाले मूल्याकन मे भी है। अपने युग तक के उपलब्ध साहित्यतात्त्विक उत्कर्ष का सभी सजग या युगबोध सम्पन्न कवि या साहित्यकार उपयोग करते है, फिर केशव और 'प्रसाद' की तुलना कैसे करे और घाट-बाढ का निर्धारण किन आधारो पर हो ? वास्तविक बात यह है कि राई-रत्ती की नाप-तोल और अनेक प्रकार की जोड-बाकियाँ लगाकर ही किसी प्रतिभा का वास्तविक स्थान-निर्धारण सभव है। पर यह कार्य है कितना तरल ! फिर मूल्याकन के चरम मानदण्ड क्या है ? वे तो चिर निर्माणाधीन है। विवादातीत मानदण्ड तैयार हो चुके नही जान पडते। यह भी आवश्यक नही कि किसी साहित्यकार के सभी साहित्यावयवो को समान व्यायाम दिया गया हो। विशेष रुचि एवं सस्कार के कारण कुछ अवयव तो खिल-कर पुष्ट हो जाते है और शेष अर्धपुष्ट व उपेक्षितप्राय ही रह जाते है। तुलना के समय विभिन्न कार्य-साधक अवयवो की तुलना कैसे की जाय ? यदि समग्र प्रभाव को ही आधार बनाया जाय तो उसके विचार मे वैयक्तिक तत्त्व का प्राधान्य हो जाने का अथवा प्रभावाभिव्यजक समीक्षा के उपकरणो के न्यूनाधिक परिमाण मे अवाछित रूप से प्रविष्ट हो जाने का भय बना रहता है। एक अन्य स्थिति भी कल्पित की जा सकती है। प्रचार के वैध-अवैध साधनो से सम्पन्न साहित्यकार सिर पर चढकर बोलता है, और प्रचार के साधनो से वचित या असम्पृक्त साहित्यकार उपेक्षितप्राय ही रह जाता है। अपवाद भी हो सकते है। और फिर ठडा किन्तु मूलत प्राणवान् मुद्रित शब्द और मच पर स्वर के स्वर्णिम-ज्योति-रथो पर दौडता, किन्तु मूलत निष्प्रभ शब्द क्या दोनो मति-भ्रम नही उत्पन्न कर देते ? तात्पर्य यह कि मूल्याकन का कार्य अनेक बीहड बाधाओ से युक्त है, किन्तु है वह आवश्यक भी।

तात्त्विक भूमि पर मूल्याकन की सीमाओ के स्वरूप व प्रकृति से परिचित हो चुकने पर अब अपेक्षाकृत कुछ आश्वस्त भाव से और हमारी अपनी निजी मर्यादाओ के साथ, युगकवि प० माखनलालजी चतुर्वेदी के सृजन पर सामान्य रूप

से विचार किया जा सकता है। चतुर्वेदीजी भारतीय स्वाधीनता सग्राम के मध्याह्न युग के तुमुल सघर्षो के बीच निर्मित होनेवाले हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य स्त्रष्टाओ मे से है, अत इनकी काव्य-वाणी सघर्ष, विद्रोह, क्रान्ति और चुनौती के उपकरणो से सघटित है। वे उस काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि है जिसे हम हिन्दी-काव्य की राष्ट्रीयता धारा के नाम से अभिहित करते है। पर ध्यान देने की बात यह है कि वे समग्र दृष्टि से देखने पर कोरमकोर राष्ट्रीय कवि ही नही है। प्राय राष्ट्रीयता की भावना अन्तर्राष्ट्रीयता या व्यापक मानवीयता की भावना से कट कर भाव-विचार की उन संकीर्ण गलियो मे फंस जाती है जहा खुली धूप और ताजी हवा बहुत कम रूप मे किसी भी व्यक्तित्व के निर्माण एव सास्कृतिक उन्नयन के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है, क्योकि उक्त ठोस माध्यम अथवा आधार के बिना विश्व व्यापकता के आदर्श की बात कोरी हवाई या काल्पनिक मात्र ही जान पडेगी। मानवतावाद अथवा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की दुहाई देकर राष्ट्रीयता का अवमूल्यन करना सदा उचित नही क्योकि जैसा कि सकेतित किया जा चुका है, राष्ट्रीयता आत्म-प्रचार का एक महत्त्वपूर्ण साधन या सोपान है। विशेष भौगोलिक परिवेश मे स्थित व मौलिक रुचियो व विशिष्ट जीवन-पद्धतियो से युक्त किसी देश-जाति के दर्पण मे प्रतिबिम्बित अन्तर्राष्ट्रीयता ही राष्ट्रीयता कही जा सकती है। ऐसी राष्ट्रीयता गौरवशालिनी होती है और उसके माध्यम से अपने को और जातीय जीवन को अभिव्यक्त करके कवि जो कुछ हमे प्रदान करता है वह वाणी की अनमोल उपज है। चतुर्वेदीजी की काव्य वाणी का अचूक प्रभाव राष्ट्रीयता की उनकी उच्च धारणा मे ही निहित है।

राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति प्राय सघर्ष, चुनौती, ललकार, हुकार एव क्राति की सनद्दी या टकसाली भावनाओ के आवेगपूर्ण एव अमिधात्मक तथ्य-कथन, पद्य-भाषण या विवृत्ति तक ही अपनी गतिविधि दिखाकर रह जाती है। किन्तु जब वह अस्तित्व के गहरे उत्सो से उच्छलित होकर मानव-मन की शाश्वत भाव-विभूति से मण्डित होकर और जीवन की विशद पट-भूमिका पर प्रकट होती है तो वह असाधारण रूप से गभीर हो उठती है और उसमे केवल समय सेवा की सिद्धि ही न रहकर सर्वोच्च काव्य की सभावनाएँ सचित हो जाती हैं। चतुर्वेदीजी ने निश्चय ही सामयिक युग की पीडा व विवशता का अत्यन्त विशद व प्रभावशाली चित्रण किया है, पर अपने मूल रूप मे वे जीवन के एव मानव अनुभूतियो के ही कवि है। केवल राष्ट्रीय कवियो की सूची मे उनका नाम रखना उनके वास्तविक गौरव एव श्रेय को सीमित करना है। उनके युग-व्यापी प्रभाव का रहस्य कदाचित् उक्त तथ्य मे ही निहित है।

चतुर्वेदीजी के काव्य मे प्रकृति ने महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया है। प्रकृति की भावनामयी सत्ता मे डूबकर उन्होने गहन प्रेरणाएँ प्राप्त एव आत्मसात् की है

जिनसे उनके स्वर मे शक्ति और सौदर्य की बडी प्राणवान् एव मिठासपूर्ण कुल्याएँ फूटी है, और जिनसे उन्होने मानव जीवन की विषमताओ एव विद्रूपताओ को वर्णित करते हुए मानव के मूल एव स्वस्थ रूप को उद्घाटित किया है

प्राय राष्ट्रीय कवि तात्कालिक उद्देश्य की सिद्धि राजनीतिक बधन-मुक्ति के आग्रह से शोषक-शोषित के बीच के व्यवहारो की तथ्यात्मक विवृत्ति तक ही सीमित रह जाते है पर चतुर्वेदी जी ने कवि-पद का गौरव समझते हुए, अन्य कवियो की तरह ही, अपने कवि-कर्म मे प्रकृति, जो मानव एव उसके जीवन के रूपायन मे लक्षित-अलक्षित रूप से, एक अनिवार्य प्रेरिका शक्ति है, को भी, यह समझकर कि प्रकृति और मानव एक सर्वथा अविभाज्य सत्ता है, सच्चा साक्षी बनाकर अपने विषय-फलक को अधिक विशद और अपने राष्ट्रीय कवि-रूप को अधिक प्रकृत और गभीर बना दिया है।

एक अन्य बिन्दु पर भी प्रकृति विषयक विचार हो सकता है। सभवत कवि ने प्रकृति का फोटोग्राफिक अथवा यथातथ्य चित्रण कही नही किया है, यह ठडा-ठडा कार्य शातिकाल के अवकाश-प्राप्त कवियो के लिए ही प्राय छूटा रहता है। विप्लव और भूचाल के युग मे इस प्रकार के कार्य के लिए कवियो मे इतना धैर्य कहाँ ? युग की गति को देखते हुए प्रकृति से उद्दीपन का काम लिया जाना ही स्वाभाविक था। यो, प्रकृति-चिन्ता की सैद्धान्तिक भूमि पर भी, और मनोविज्ञान के तथ्यो के प्रकाश मे भी, काव्य मे प्रकृति का उद्दीपन के रूप मे प्रयोग ही अधिक काम्य व स्वाभाविक है। काव्य एव चित्रकला के क्षेत्र है भी भिन्न। शृगार के क्षेत्र मे प्रकृति का उद्दीपन के रूप मे ग्रहण करने की बात तो आचार्यो द्वारा सुप्रतिष्ठित ही है, पर राष्ट्रीय कविता मे प्रकृति का मौलिक प्रयोग जिस भावुकता एव कल्पना-कौशल के साथ कवि द्वारा किया गया है, वह निश्चय ही आकर्षक है।

काली-पीली झझाओ और भीम प्रकम्पनो के प्रालेय राष्ट्रीय जीवन के बीच भी चतुर्वेदीजी प्रकृति के माध्यम से आध्यात्मिक उडाने भरने का औसान रख सके है, और रहस्यात्मक झपकियाँ ले सके है, यह कम श्रेय की बात नही। यह उनके अन्तर्जीवन के अवधान एव तलवर्ती प्रशातता के विशेष एव अत्यन्त विरल गुण का परिचायक है।

यह देखकर आश्चर्य होता है कि चतुर्वेदीजी किस सफाई के साथ और अनायास ही प्राय. अपने जीवन के अन्तराल मे पडने वाले सब काव्य-युगो—द्विवेदी युग, छायावाद युग, प्रगतिवाद युग और प्रयोगवाद युग के साथ-साथ सहज-स्निग्ध भाव से रहते चले आये है। द्विवेदी युग के पौराणिकता-प्रेम ने उन्हे अनेक विशिष्ट एव सशक्त पौराणिक प्रतीको की ओर नवीन प्रभाव-सिद्धि के लिए आकृष्ट किये रखा और उस युग की जातीय उद्धार की भावना उनमे सजगभाव से अनवरत बनी रही। छायावाद युग की स्वच्छन्दता-वृत्ति, सौदर्य-पूजा और रहस्याकुलता उनके

परवर्ती काव्य मे विशेप व्यजन हे। प्रगतिवाद युग की प्रमुख देन हैं—दृष्टिकोण की प्रगतिशीलता, जो अपने पूर्ण स्वस्थ रूपो मे उनके काव्य में आद्यन्त देखी जा सकती है। शैली और शिल्प के प्रयोग का उत्साह भी उनमे कम नही है। भाषा और छन्द के न जाने कितने प्रयोग उन्होंने किये हे, अपने विवक्षितार्थ को सटीक साँचे मे ढालने की कवि-सुलभ छटपटाहट से वाणी की कितनी भगिमाओं के द्वार-द्वार वे भटके है, यह शब्द-भडार के विविध साधन-स्रोतो की उनकी यात्राओ, सज्ञा-क्रियादि, शब्द-प्रयोगो, मुहारो की बदिशो एव भावों की विविध झाइयो को पैदा करने की अन्य अनेक निजी आविष्कृतियो से देखा जा सकता है। प्रयोग एव शैलियाँ, चलती फैशनो के अध-अनुकरण मे ऊपर से गोद चिपकाई या पिन से नत्थी नही की गई है; वे व्यक्तित्व की मौलिकता के वैशिष्ट्य-सूत्र मे सुग्रथित है, लेखक की चेतना से उनका मिट्टी एव पुष्प का-सा रक्त-प्राणो का सम्बन्ध है।

व्यजनाओ का अपार वैभव उनके काव्य मे सर्वत्र लक्षित होता है, पर उनकी अभिधा भी कम मार्मिक नही। सहृदयो के लिए सादगी में भी एक निराला आकर्षण होता है। अवश्य ही कई बार वे काव्य मे पहेली-बुझौवल की-सी स्थिति उत्पन्न कर स्थूल चमत्कार की अरोचक सृष्टि भी कर डालते है, पर जव वे साँसो मे मिठास लिये प्रत्यूष-समीरण-से सहज-सहज आते है तो हम अनायास खिले बिना नही रह पाते।

कवि का मनोविधान मूलत एक रोमाटिक कवि का मनोविधान है। इस दृष्टि से वे छायावादियो के बहुत निकट है। उनमे भव्य एव उदात्त के प्रति भी एक गहरा आकर्षण है। गौरवपूर्ण प्राचीन एव सास्कृतिक विभूतियो के स्मरण से जब कभी उनका भाव उदात्त हो जाता है या जब वे विराट् की झाँकी खोल बैठते हैं, तब उनका रस-बुझा आस्थावान स्वर अपनी सुधीरता-मजुलता से प्राणो पर जादू-सा डाल देता है, और एक अलक्षित एव गहरी कर्म-प्रेरणा निरानन्द पार्थिव जीवन मे एक अवर्ण्य स्वाद घोल देती है।

सब कुछ मिलाकर चतुर्वेदी जी आधुनिक हिन्दी के एक महिमाशाली साहित्यकार थे, जिनकी वाणी मे हमारे पराधीनता-युग की दशनकारी पीडा, मूक घुटन और करुण बेबसी की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई। सकल्प, क्रान्ति, बलिदान, सघर्ष और चुनौती की भावनाओ से छलकती उनकी दीर्घ वाग्धारा ने राष्ट्र की नसो मे स्फूर्ति और प्रेरणाओ के लाल वसन्त खिलाये है। जागरण की भेरी बजाकर उन्होने राष्ट्र के सोये प्राणो को जगाया; इसके लिए हिन्दी साहित्य और भारत-राष्ट्र उनका चिरऋणी रहेगा। उन्होने जीवन के सर्वोच्च मूल्यों की पुनर्स्थापना एव पुष्टि की है। जीवन एव प्रकृति के गहन सौदर्य से उनका काव्य प्रस्फुटित हुआ, अत वह अनमोल जीवनानुभूतियो के रस से समृद्ध रहा। सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि और आत्मपीड़न के छन्ने मे छन्ना उनका परिनिष्ठित कला-चिन्तन हमारी एक

बहुमूल्य निधि है। भक्ति, ज्ञान और कर्म की समन्वित चिन्तन-भूमि पर ही उनका जीवन-दर्शन पल्लवित-पुष्पित हुआ, जो उनके साहित्य का पुष्ट आधार रहा। उन्होने एक दीर्घ युग तक — लगभग आधी शताब्दी तक—प्रयोग-परम्पराओ के द्वारा अभिव्यक्ति को सवारा-सजाया। वे आजीवन अपनी प्राण-धारा प्रवाहित करते रहे, अपनी कान्तिमयी किरणो से जरा के मेघो की छाती फाडकर अपने आत्मा की ज्वलन्तता का निर्घोष करते रहे है।

उनके नेत्रो ने ऐश्वर्यमयी प्रकृति से जो रस एव सौदर्य पान किया है, उनके प्राणो ने जगत्प्राण पवन से जो एक अबूझ पोषण प्राप्त किया है, उनके कर्ण-कुहरो ने नाना स्वर-लहरियो वाला जो सगीत आत्मसात् किया है, उसे उन्होने एक पवित्र थाती समझकर अपनी सूक्ष्म मनीषा की चिन्तना और आत्मा के रस के साथ चक्रवृद्धि ब्याज के साथ अपने मौलिक सृजन के रूप मे देश, काल और विश्व को ऋण-शोधन की भावना से आभारपूर्वक पुन लौटा दिया है। उनका जीवन देश की माटी एव मानव के प्राणो के काम आया।

'एक भारतीय आत्मा' और 'नवीन' के राष्ट्रीय काव्य का तुलनात्मक अनुशीलन

◇ ◇

कृष्णकुमार मिश्र

एक भारतीय आत्मा' और 'नवीन' अपनी उपलब्धियो की विशिष्टता मे स्वच्छदतावादी काव्य-उत्थान के अन्तर्गत एक नई प्रवृत्ति का प्रवर्तन करते है। उन्होने राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य सग्राम के क्रियमाण पार्श्वों को अपने काव्य मे अत्यत आत्मीय और ओजस्वी भाव-सस्पर्श दिया है। सक्षेप मे, वे स्वच्छदतावादी काव्यान्दोलन की राष्ट्रीय सास्कृतिक भाव-धारा के शलाका-पुरुष है। सदर्भ और प्रवृत्ति की कतिपय समानताओ के उपरात भी, प्रकृत सवेदना की भिन्नता उनके राष्ट्रीय काव्य को अदर से कई स्तरो पर भिन्न भी बना देती है। ऐसी स्थिति मे इस बात की आवश्यकता है कि इन दोनो रचनाकारो के राष्ट्रीय काव्य की प्रकृति का अनुसधान इनकी मौलिक अर्थवत्ता को केन्द्र मे रखकर किया जाय। इस प्रक्रिया मे पाये जाने वाले समान और असमान प्रत्ययो को एक तुलनात्मक सदर्भ देते हुए समग्र व्यक्तित्व का मूल्याकन किया जाय।

इस विवेचन का आरभ हम इन कवियो के व्यक्तित्व मे निहित समान जीवन और सकल्प-सूत्रो से करेगे। इन दोनो का जन्म सामान्य मध्यवर्ग के परिवारो मे हुआ था। इन परिवारो के सदस्य जीविका की खोज मे भयाना और बाबई मे आकर बस गये थे। वे मूलत कर्मठ और उद्योगी थे। अधिक पढे-लिखे न होने पर भी जीवन के प्रति उनमे आस्था थी, और अपनी सतति को पढा-लिखाकर वे उन्हे ऊँची भूमियो मे देखने के आकाक्षी थे। उनकी दुनिया छोटी और साधन सीमित थे पर उनका विश्वास बडा और हृदय विशाल था। ऐसे परिवार से सम्बद्ध होने के कारण समान रूप से ये कवि सस्कारी हुए।

किन्तु, व्यक्ति के सस्कार आकस्मिक नही होते। उनके पीछे परिस्थिति का ही नही, एक परम्परा का भी प्रभाव होता है। कभी परिस्थिति परम्परा का और

कभी परम्परा परिस्थिति का अतिक्रमण करती हुई जीवन को एक विशेष दिशा मे सक्रिय बनाने का यत्न भी करती है। ऐसी स्थिति मे व्यक्ति की अतरग निष्ठा निर्णायक तत्त्व बनकर परिस्थितियो से उद्‌भावित विकल्पो को हटाती हुई अभिव्यक्त होती है। उपर्युक्त परिवारो को धार्मिक भूमि पर वैष्णव सस्कार प्राप्त थे। कठिन-से-कठिन परिस्थिति मे भी वे इन सस्कारो की रक्षा करते थे।

'एक भारतीय आत्मा' और 'नवीन' पर उनके पारिवारिक जीवन की गहरी छाप रही। पूजा-अर्चा से लेकर सुलाने वाली लोरियो मे कृष्ण और राधा के मधुर और मार्मिक सबधो की कथा का सगीत उनके प्राणो को सदैव उद्वेलित करता रहा, अनुभूति के स्तर पर वैष्णवी दया-भावना, विश्व-प्रेम और एक रूपमयी सत्ता के प्रति प्रणति के भाव को क्रिया की भूमि पर अनुवादित होते हुए उन्होने अत्यत समीप से देखा। आगे चलकर अनुभव की निरतर विकासमयी स्थितियो मे उनके आरम्भिक सस्कार साम्प्रदायिक तत्त्वो का परित्याग करते हुए मानवीय आदर्शो की अधिक विस्तृत व्यजना मे सहायक हुए।

सस्कारपूत उनका जीवन राष्ट्र की वर्तमान स्थिति के प्रति उन्हे सजग और सचेष्ट बनाता। स्वाधीनता की आकुल आकाक्षा उनके व्यक्तित्व का क्रियमाण अग बन जाती। स्वाधीन चेतना के सम्प्रसारण के लिए दोनो ने पत्रो को माध्यम आत्मा बनाया। 'प्रभा', 'प्रताप' और 'कर्मवीर' के द्वारा 'एक भारतीय आत्मा' और 'नवीन' ने पराधीन राष्ट्र की विह्वल किन्तु मौन भावना को शब्द देते हुए क्रान्ति की एक नई प्रेरणा का सचार किया। इस दिशा मे उन्हे स्व० गणेशशकर 'विद्यार्थी' से अमित सहयोग और सहानुभूति मिली। उन्होने अपने आदर्शो की लक्ष्यनिष्ठ छाया मे इनके नये उन्मेष को दृष्टि और दिशा दी। एक नव-निर्माण के लिए आग्रहशील तरुणो का निर्माण किया।

सन् १९२० मे महात्मा गाधी द्वारा प्रवर्तित सत्याग्रह आन्दोलन के द्वारा इन कवियो की सक्रिय चेतना को एक विराट् भूमि उपलब्ध हुई। इस आन्दोलन मे न केवल इन्होने भाग लिया प्रत्युत दूसरो को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित भी किया। इसके फलस्वरूप समय-समय पर इन्हे कारावास भी मिला। इतना ही नही, विदेशी सत्ता द्वारा दी गई यातनाओ के वे सदैव केन्द्र रहे। राजनीतिक सदर्भ मे वे काग्रेस के क्रियाशील सदस्य थे। आजीवन इस सस्था की केन्द्रीय गतिविधियो मे भाग लिया। भिन्न-भिन्न पदो पर पूरी निष्ठा से कार्य किया। माखनलालजी ने "राजनीति जब-तक मजहब रही तब तक उसे स्वीकार किया, जब वह व्यवसाय बन गई तब उसे छोड दिया"। नवीनजी भी जीवन के अतिम वर्षों मे राजनीति के व्यावहारिक पक्षो से हटकर मानवीय मूल्यो के तात्त्विक विश्लेषण मे सलग्न हो गए थे। कदाचित् इसीलिए डॉ० रामविलास शर्मा ने एक व्यक्तिगत पत्र मे मुझे यह लिखा है कि "ये कवि काग्रेसी राष्ट्रीयता के क्षेत्र मे व्यवहार-

बुद्धि से हीन थे अत वे न मत्री बन पाये, न राज्यपाल।"

सस्कार और परिवेश की एकरूपता 'एक भारतीय आत्मा' और 'नवीन' के काव्य के रचनात्मक पक्षो को समान आधार देती है। पराधीनता का तीव्र बोध इनके युग-बोध का पर्याय बन जाता है। अग्रेजी शासन के बहुमुखी अन्याचार और देश के सास्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक पक्षो पर पटने हुए उनके प्रभाव, इनकी सर्जनात्मक चेतना को उद्वेलित करते है। देश को विभिन्न धरातलों पर पराधीन वनाने वाली समस्याएँ तात्कालिक और सतही ही नही थी उनका मबध अधिक गहरे स्तर पर मानवीय मूल्यो के विघटन के साथ था। सबसे पहले राजनीतिक भूमि पर विदेशी साम्राज्यवाद को समाप्त करने की आवश्यकता थी। इस दिशा मे सघर्षरत राष्ट्र से स्वय को आबद्ध करने हुए इन कवियो ने काव्य के माध्यम से अपने आपको तथा अपने माध्यम से सम्पूर्ण युग को उद्घाटित किया। इनके कर्म से सम्बद्ध निर्माण का लक्ष्य कल्याण और भावना से सम्बद्ध सृजन का लक्ष्य आनद था। चूँकि ये दोनो आपेक्षिक रूप से एक-दूसरे के साथ सक्रिय थे अत इनका आनद भी कल्याणपरक ही रहा। इस प्रकार इन दोनों कवियो का भाव-पक्ष, कर्म-पक्ष से अभिन्न रूप से जुडा हु आ है।

इन दोनो कवियो ने महात्मा गाधी के जीवन और दर्शन से सुनिश्चित आदर्श ग्रहण किये। कहा जा सकता है कि जिस प्रकार शैव दर्शन ने प्रसाद, अद्वैतवाद ने निराला और भविष्योन्मुख आदर्शवाद ने पत के काव्य को बौद्धिक प्रतिष्ठा दी है, ठीक उसी प्रकार माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की रचनाओ को समान रूप से यह प्रतिष्ठा 'गाधी-दर्शन' से मिली। सत्य और अहिंसा के आदर्शो मे अपने जीवन को समर्पित करते हुए उन्होने जहाँ एक ओर अपने जीवन को एक प्रशस्त गरिमा दी वहाँ दूसरी ओर अपने काव्य को भी मूल्यो का काव्य बनाया। चतुर्वेदीजी के काव्य मे प्रसार पाती हुई समर्पण की प्रवृत्ति 'गाधी-दर्शन' का ही अधिक केन्द्रित और भावात्मक रूप है। यह अपनी स्थिति मे उनके काव्य को आध्यात्मिक आभा से मडित करती है। नवीन जी के काव्य मे स्वतन्त्रता और समानता का आग्रह व्याप्ति पाता गया। उससे उनके काव्य मे एक औदात्य की सृष्टि हुई। व्यक्तिगत रूप से गाधीजी के व्यक्तित्व को केन्द्र बनाकर भी इन कवियो ने कुछ प्रगीतो का निर्माण किया। आस्था की विशिष्टता राग-सबधो को भी विशिष्ट बना देती है। भारत माँ की वन्दना करते हुए समान रूप से इन दोनो ने उसके ओजस्वी और निरन्तर सघर्षरत रूप का स्मरण किया है। उसमे निहित विविधता मे एकता का सकेत किया है इन रचनाओ मे उसका चित्र कही निराश और कही आश्वस्त, कही मथर और कही सगतिक है। मूलत. वह सौदर्यमूलक न होकर सघर्षपूर्ण है।

'एक भारतीय आत्मा' और 'नवीन' का स्वातन्त्र्योत्तर काव्य अधिक प्रत्यक्ष

और परिबद्ध जीवन से मुक्त होता हुआ अपने परिनिष्ठित आदर्शो को एक व्यापक सास्कृतिक भूमि मे उपस्थित करता है। निरतर विकसनशील जीवनानुभूति के कारण इनके काव्य का भाव-पक्ष उत्तरोत्तर समृद्ध होता हुआ अधिक विस्तृत और गभीर आशयो की सृष्टि मे समर्थ हुआ है। इनके आरभिक सस्कार वैष्णवी थे। इनकी प्रयोगकालीन रचनाओ मे इन सस्कारो की स्पष्ट छाप है। किसी भी मत के सस्कार चाहे वे कितने भी उदार क्यो न हो, व्यक्ति को एक सीमा अवश्य ही देते है। कदाचित् इसीलिए रचनाकार की शक्ति इस सीमा को भेदकर आगे जाने का यत्न करती है। ये कवि इस परिधि को पार कर, इनकी कुछ उपलब्धियो के साथ, राष्ट्रीय जीवन से सम्बद्ध हो गये। भावात्मक स्तर पर इस नई प्रतिबद्धता ने उन्हे अधिक फैले सदर्भ पर प्रतिष्ठित किया। किन्तु प्रतिबद्धता भी अन्तत सीमा ही है। देश और काल की सीमा, परिवेश और पदार्थ की सीमा इसके साथ है। अवश्य ही यह सीमा व्यक्ति को एक व्यक्तित्व भी देती है, पर यह व्यक्तित्व भी नई भूमियो की उपलब्धि मे ही आलोकवान् होता है। इस प्रकार की सीमा का विवेक स्वय विवेक को उस सीमा से अधिक व्यापक बना देता है। प्रत्येक सजग रचनाकार को यह देखना पडता है कि इतिहास की सीढियो मे क्रमागत रूप से घटित होते हुए व्यापार स्वय स्वतत्र और निरपेक्ष न होकर एक सम्पूर्ण मानवीय नियति के सार्थक अश है। यह विवेक रचनाकार को एक ओर तो युग की सही चेतना से अवगत कराता तथा दूसरी ओर उसे दृश्यमयी प्रतिबद्धता से प्रतिक्षण मुक्त भी करता है, ये दोनो रचनाकार अपनी ऐसी ही विवेकी दृष्टि के कारण सार्थक विकास की भूमियो तक पहुँचने मे सफल हुए है। माखनलाल चतुर्वेदी का काव्य एक दार्शनिक पारिणति प्राप्त कर प्रकृति और मानव के चिर नवीन सबधो की व्याख्या करता है। राग के आकर्षणो को आत्म-समर्पण का आदर्श सदर्भ देता है। एक प्रतीकात्मक व्यजना के साथ सृष्टि के अनत व्यापारो मे एक परम प्रेममय सत्य का साक्षात्कार करता है। 'नवीन' का दार्शनिक काव्य व्यक्ति के द्वैतात्मक व्यक्तित्व मे निहित भाव और कर्म के अतराय को समाप्त करने का आग्रह करता है। स्वतन्त्रता और समानता के सम्यक् प्रसार मे विश्व-मानव की मुक्ति का दर्शन करता है।

माखनलाल चतुर्वेदी और 'नवीन' ने अपनी वैयक्तिक चेतना के पार्श्व मे ही जीवन और जगत् के विभिन्न व्यापारो को भोगा, परखा और विश्लेषित किया। इस चेतना से नि:सृत भावात्मक उन्मेष उनकी रचनाओ को गति ही नही, आकृति भी देता है। वह उन्हे विद्रोह की एक सीमा तक ले जाकर निर्माण के विशेष उपकरण सौपता है। इसके माध्यम से वे स्वय को ही विशिष्ट नही बनाते, प्रत्युत दूसरो को भी विशिष्ट दृष्टि से देखते है। यह चेतना उन्हे राष्ट्रीय चेतना के अतिरिक्त वैयक्तिक मिलन-विरह के आकर्षणो तक खीच ले गई है। अवश्य ही इस प्रक्रिया मे भी प्रधान रूप से उन्होने युग-पीडा को ही अपनी पीडा मे परिवर्तित करने की

चेष्टा की, अपनी पीडा को युग पर लादने का यत्न नही किया। यह प्रवृत्ति जहाँ एक ओर इन कवियो को स्वच्छदतावादी काव्यान्दोलन का अग बनाती है, वहाँ दूसरी ओर इनके व्यक्तित्व को उस आन्दोलन से कुछ भिन्न और विशिष्ट दिशा भी देती है। ये कवि इसीलिए सम्पूर्ण स्वच्छदतावादी काव्यान्दोलन का नही उसकी राष्ट्रीय और सास्कृतिक भाव-धारा का नेतृत्व करते है। इनके द्वारा स्वच्छदता वादी काव्य मे एक नई काव्य-प्रवृत्ति का निर्माण हुआ है।

इन कवियो की आत्माभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम प्रगीत है। वैयक्तिक चेतना की अशेष और अव्याहत सक्रियता के आधार पर प्रगीत निर्मित होते है। भावना का अविरल प्रवाह इनके आन्तरिक और बाह्य पक्षो को विशेष प्रकृति और आकृति देता है। 'प्रभा' के इन दो कवियो की आरभिक रचनाओ से आधुनिक हिन्दी-काव्य मे एक नई प्रगीत शैली का प्रवर्तन होता है। राजनीतिक और सामाजिक, ऐतिहासिक और सास्कृतिक इतिवृत्तो तथा जागतिक व्यापारो की अधिक प्रत्यक्ष भूमियो से अपने काव्य को अलग करते हुए इन कवियो ने भावात्मक उद्रेक और उसके प्रकृत सम्प्रसारण को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उनकी वैयक्तिक चेतना वह सर्जक केन्द्र है, जहाँ से विविध प्रतिक्रियाएँ और प्रभाव प्रवृत्तियो मे रूपान्तरित होकर एक अर्थ भरा व्यक्तित्व पाते है।

इन दोनो कवियो की अनुभूति और अभिव्यक्ति मे एक द्वन्द्वात्मक आधार स्पष्ट दिखाई देता है। काव्य मे भाव को रूप और रूप को भाव देने की रचनात्मक प्रक्रिया के लिए एक बौद्धिक सजगता की आवश्यकता होती है। शब्द-चयन, अलकार-विधान, छद-नियोजन आदि मे यह सजगता ही क्रियमाण रहती है। शब्द तो मानस जगत् के मध्य क्रियाशील प्रतीक है। अत प्रयोक्ता उनका चयन करते समय भोक्ता के मानस पर पडने वाले प्रभावोत्पादक गुण की उपेक्षा नही कर सकता। अलकार भावो के उत्कर्ष-विधायक उपकरण है, अत कवि को सदैव यह ध्यान रखना पडता है कि वह जिन अलकारो का प्रयोग कर रहा है, वे कहाँ तक अनुभूतियो को सम्यक् और सार्थक रूप देने मे सहायक है। छद-विधान मे भी भावो के आरोह-अवरोह के लिए एक अनुरूप विवेक की आवश्यकता होती है। इन दोनो कवियो मे रचना के धरातल पर इस आवश्यक बौद्धिक सजगता का अभाव है। उनकी भावना इतनी विह्वल है कि वह, इस अभाव के कारण, प्रकाशन की भूमिका पर अपने शब्द-ससार का अतिक्रमण कर जाती है। कला सस्कार की अनुपस्थिति समस्त रूपायन के भावात्मक समारोह को अनगढ बना देती है। उन्हे सज्जित करने की अतिरिक्त चेष्टा भी प्राय. एक प्रकार की अस्वाभाविकता की सृष्टि करती है।

उपर्युक्त द्वन्द्वात्मक आधार के कारण ही इन कवियो के प्रगीतो मे सक्रिय कल्पना, एकतान और समग्र न होकर खण्ड-खण्ड भाव छवियो के साथ है। उसका

विन्यास सगतिक न होकर, आवृत्तिमूलक है। इन प्रगीतो मे प्रस्तुत चित्र वस्तुमुखी न होकर भाव-प्रवण है। इन कवियो के काव्य मे कल्पना विविध भावो को सयोजित तो करती है पर इस सयोजन की प्रक्रिया मे उन्हे आवश्यक प्रसारगामी रूप नही दे पाती। कुछ प्रगीत ऐसे भी है जिनमे उसकी क्रियाशीलता आरभिक पदो मे ही समाप्त हो गई है, कदाचित् इसीलिए शेष अश इतिवृत्तात्मक हो गए है।

'एक भारतीय आत्मा' और 'नवीन' की भाषा शास्त्रीय न होकर प्रचलित भाषा के अधिक समीप है। इन्होने बोल-चाल की भाषा मे अपने उपदेशात्मक और उद्‌बोधन काव्य का निर्माण किया है। इनके परवर्ती काव्य की भाषा भी लोक-व्यवहार के निकट है। इनकी रचनाओ मे स्थानीय प्रयोग प्रचुर मिलते है। इनका शब्द-चयन प्राजल न होता हुआ भी सहज प्रयोगो की परिचित सीमा मे एक अनुरंजनकरी प्रभाव की सृष्टि करता है। शब्दानुशासन की कमी इन दोनो मे समान रूप से उपलब्ध होती है। समग्र रूप मे इनकी भाषा मे एक ओज और प्रवाहमयता है जो अभी तक अनुकरण को ललकारती है। अज्ञेय के शब्दो मे "परवर्ती काव्यान्दोलनो मे ठेठ बोली और देहाती मुहावरे के बारे मे जो कौतूहल और प्रयोग-तत्परता लक्षित होती है, उसे इन बुजुर्गों के उदाहरण से प्रेरणा न मिली हो यह असभव है।"

अब तक हमने काव्य-परिवेश, प्रत्यय और उससे सम्बद्ध सक्रियता के आधार पर माखनलाल चतुर्वेदी और 'नवीन' की राष्ट्रीय रचनाओ मे निहित समान भाव-सूत्रो का आकलन किया है। भाव-सूत्रो की समानता के उपरात भी हमे यह स्मरण रखना चाहिए कि इनके रचियता दो भिन्न व्यक्ति है। प्रत्येक व्यक्ति और रचनाकार की चेतना की प्रकृति समरूप नही होती, विविध प्रवृत्तियो और प्रभावो के अन्वयन और एकसासीकरण की प्रक्रिया समान नही होती। चेतना की प्रकृत भिन्नता प्रत्येक व्यक्ति और रचनाकार को एक विशिष्ट व्यक्तित्व देती है। सामान्य एकरूपता के उपरात भी रचनाकार की अनुभूति, चिंतन, विचार, सकल्प, कल्पना आदि क्रियाओ मे चेतना की मौलिक प्रकृति उभरकर सामने आती है। चेतना के इस सम्प्रसारण को ही मैं प्रतिभा का प्रसार मानता हूँ। वह मौलिक होती है, उसका निर्माण नही, परिष्कार किया जा सकता है, सक्षेप मे वह रचनाकार की एकात सम्पत्ति है। एकात और वैयक्तिक होने के कारण उसकी विशिष्टता स्वयसिद्ध है।

'एक भारतीय आत्मा' और 'नवीन' के व्यक्तित्व मे सस्कार और सकल्प की कतिपय समानताओ के उपरात भी एक प्रमुख अतर है। 'नवीन' का व्यक्तित्व माखनलाल चतुर्वेदी के व्यक्तित्व की अपेक्षा अधिक परुष और स्वच्छद है। चतुर्वेदी-जी का व्यक्तित्व अधिक भावुक तथा कोमल कहा जा सकता है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दो मे " 'एक भारतीय आत्मा' के व्यक्तित्व मे मधुर कवि और ओजस्वी सैनिक

एक आलिंगन-पाश मे आबद्ध है। उसमे भावुक नारी और कर्मशील पुरुष का सयोग है।'' 'नवीन' या 'दिनकर' की भाँति ये एक पौरुषमय ही व्यक्तित्व की दो पृथक अवस्थाएँ नही है। यहा तक एक ही व्यक्तित्व मे दोनो तत्त्व मिल गए है और उनमे प्राय एक ही क्षण मे व्यक्त हो उठने है। यह भिन्नता दोनो के काव्य को अदर से भिन्न बनाती है।

'नवीन' के आरभिक काव्य की भावनाओ मे एक प्रकार की ध्वसोत्सुक (Nihilistic) प्रवृत्ति के दर्शन होते है, उनका 'विप्लव गायन' इसका प्रतीक है। यह प्रवृत्ति उन्हे आरभ मे एक निषेधमूलक दृष्टि की ओर ले गई है। एक भारतीय आत्मा' मे निर्माण की आकुल आकाक्षा आरभ से साथ रही है। कदाचित् इसीलिए उनकी दृष्टि मे विधेयात्मक उदारता के लिए सदैव स्थान रहा है।

चतुर्वेदीजी के काव्य के वस्तुपक्ष का आधार-फलक 'नवीन' की अपेक्षा अधिक वैविध्यपूर्ण है। उसमे राष्ट्रीय जीवन के साम्प्रतिक पक्षो के साथ कतिपय चिरतन आदर्शो की व्यजना हुई है। शृगारिक अनुभूतियो के अतिरिक्त प्रकृति की नवीन भाव-छवियाँ उद्घाटित हुई है। उनके प्रकृति काव्य मे प्रवृत्ति के अनेक रूप-चित्रो के साथ कवि की भावात्मक उपलब्धि का जीवत अकन तो है ही, साथ ही सम्पूर्ण दृश्यमयी सत्ता को एक दार्शनिक आलोक मे प्रस्तुत करने की चेष्टा भी है। भक्ति के साथ क्रमश जुडती हुई राष्ट्रीय भावना के स्वर उनकी रचनाओ मे साफ-साफ सुनाई पडते है। 'नवीन' के काव्य का वस्तुपक्ष त्रिकोणात्मक है—उसके एक पार्श्व मे राष्ट्रीय चेतना, दूसरे मे शृगारिक अनुभूति और तीसरे मे अधिक व्यापक मानवतावादी आदर्श उपस्थित है।

शर्माजी की ऐतिहासिक चेतना इतिवृत्तो को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाती है। अतीत के शौर्य और पराक्रम, एकत्व और निष्ठा को उन्होने प्रतीक-पुरुषो के माध्यम से व्यक्त किया है। उनकी यह प्रवृत्ति उन्हे प्रबधात्मक रचनाओ के निर्माण मे सलग्न करती है। अवश्य ही इस उपक्रम मे युग-जीवन के नए आदर्शों की छाया भी देखी जा सकती है। चतुर्वेदीजी ने समर्पण की केन्द्रीय भावना मे अपनी अव्यक्त ऐतिहासिक चेतना को प्रकाशित किया है। शर्माजी की ऐतिहासिक चेतना उनके काव्य को एक निश्चित परिणति की ओर ले जाती है तथा चतुर्वेदीजी की चेतना उसे परिणति देती है। उनका सारा काव्य इतिहास की स्थूल आवृत्ति और ऐतिहासिकता के अतिरिक्त बोझ से मुक्त है।

चतुर्वेदीजी की ऋजु भावुकता के साथ उनकी कुछ रचनाओ मे एक विचित्र सकुलता मिलती है। व्यक्त आलम्बन के अभाव मे एक प्रकार की अस्पष्टता इनमे व्याप्त पायी गई है। शर्माजी का काव्य इस दृष्टि से अधिक साफ है। उसके सभी उपकरण आकृतिवान् और स्पष्ट है। वे चतुर्वेदीजी की रचनाओ की तरह अपने आस्वादन के लिए पाठक से अतिरिक्त परिश्रम की माँग नही करते। ये दोनो

कवि भावुक है और इनकी भावुकता आवेगमयी है। चतुर्वेदीजी की भावुकता लम्बे प्रगीतो मे रहस्यात्मक होकर अपने आवेग को आच्छादित कर लेती है। इसके विपरीत शर्माजी की भावुकता रचना मे साद्यन्त आवेगो के साथ रहती है।

शर्माजी के स्वातन्त्र्योत्तर काव्य मे वैचारिक आग्रह विकास पाते गए है, उसमे प्रकृत-काव्य-सवेदना के स्थान पर चितनात्मक सभार अधिक है। काव्य मे चितन का महत्त्व कम नही है, उसके बिना तो वह मात्र भावात्मक उद्गार ही बन जायेगा। इस महत्त्व के उपरात भी दर्शन के चिन्तन और काव्य के चिन्तन मे अतर है, काव्य मे वह रचयिता की अनुभूति का अग बनकर आता है। अनुभूति उसे एक रचनात्मक आधार देती हुई सम्प्रेषण के योग्य बनाती है। इस प्रकार दर्शन नही, अनुभूत दर्शन काव्योपयोगी होता है, शर्माजी के दार्शनिक विचार अनुभूत न होकर उनके दार्शनिक अध्ययन के परिणाम है, उनमे ग्रहण की तात्कालिकता स्पष्ट दिखाई देती है। सक्षेप मे, कवि अपने चिन्तन को पूरी तरह से आत्मसात् नही कर पाया है, उसे अपने व्यक्तित्व का अग नही बना सका है। अवश्य ही यह चिन्तन अधिक प्रशस्त सास्कृतिक मूल्यो पर आधारित है, किन्तु मूल्यानुप्राणित होना एक बात है, उसका काव्यात्मक समाहार बिलकुल दूसरी बात। 'एक भारतीय आत्मा' का काव्य स्वतन्त्रता के उपरात अधिक विस्तृत भावभूमियो को ग्रहण करता हुआ भी कलात्मक मूल्यो के साथ है। किसी एक दर्शन से स्वय को न जोडकर कवि अपनी अनुभूति की परिणतियो को ही एक दार्शनिक मूल्य दे देता है, उसकी प्रकृत-काव्य-सवेदना नि शेष न होकर आज भी अपनी सृजनात्मक स्फूर्ति के माध्यम से नई भाव-प्रतिमा को गढने मे सलग्न है।

इन दोनो कवियो ने शृ गारिक रचनाओ का प्रणयन भी किया है। चतुर्वेदीजी की शृगारिक रचनाएँ प्राय ऊहात्मक और रहस्यमूलक है, भावो की केन्द्रीय अन्विति का अभाव, विजानीय उपकरणो को प्रश्रय देता हुआ रचना को अस्पष्ट भी बना देता है। उनकी कई रचनाओ मे राष्ट्रीय भावनाओ और शृगारिक अनुभूतियो का मिश्रण भी मिलता है। इस दृष्टि से शर्माजी की शृगारिक रचनाएँ अधिक पार्थिव और आकृतिमयी है। उनमे एक परिव्याप्त लालसा का उद्दाम मानसिक प्रवेश बहुत स्पष्ट है।

'एक भारतीय आत्मा' की अभिव्यक्ति का माध्यम प्रगीत है, किन्तु बालकृष्ण शर्मा ने अपने आत्म-प्रकाशन के लिए प्रगीतो के साथ प्रबधात्मक रचनाओ का भी निर्माण किया है। पौराणिक और आधुनिक इतिवृत्तो को ग्रहण करते हुए वे अनुभूति और चितन को अधिक विस्तार मे सयोजित और समीक्षित करने मे समर्थ हो सके है। इतिवृत्तात्मक उपचार का यह आकर्षण उनके प्रगीतो मे भी बहुत बार सक्रिय हो उठा है। चतुर्वेदीजी की भावमयता प्रबध-काव्य का निर्माण नही कर सकती। वे अपनी सीमा को समझते हुए प्रगीत-काव्य तक ही परिसीमित रहे।

इन दोनो ने प्रचुर मात्रा मे प्रगीतो का निर्माण किया है। भावुकता इन दोनो के प्रगीतो मे है, किन्तु 'नवीन' की पूर्ववर्ती रचनाओ मे उसका विकास उद्वेलन की भूमिका पर हुआ है। कदाचित् इसीलिए उनके आरभिक प्रगीतो की कुछ पक्तिया असम्बद्ध ही नही, अर्थशून्य भी हो गई है। चतुर्वेदीजी की भावुकता का विकास समाधान की भूमि पर हुआ है। इसलिए समग्र रूप मे उनके प्रगीत 'नवीन' की तरह आवेगवान न होकर अधिक सौम्य और प्रशात है।

चतुर्वेदीजी के प्रगीतो के कल्पना-चित्र सूक्तियो के कारण अधिक आकर्षक और चमत्कारपूर्ण है। आचार्य वाजपेयी के शब्दो मे उनके मुक्तको का निर्माण और तैयारी टकसाली उर्दू कवियो की-सी है। उनकी सूक्तियो मे उपदेशात्मकता कारण नही है, भावना का अतिरेक ही कारण है। इसलिए उनके मुक्तको मे प्रगीतात्मक सौष्ठव भी रहता है, जो साधारणत सूक्ति-प्रिय कवियो मे नही देखा जाता। 'नवीन' की भावना और कल्पना के मध्य उच्चकोटि का सामजस्य थोडी ही रचनाओ मे मिलता है। उनकी कल्पना भावो के प्रवेग का साथ नही दे पाती, वह प्राय पिछड जाती है। उनके परवर्ती प्रगीतो मे उसका योग नही के बराबर है। सहज द्रवित सवेदना के स्थान पर चिंतन का अनवरत आग्रह इसका प्रधान कारण है।

भाषा की दृष्टि से शर्माजी सिद्धान्तत शुद्धिवादी है। वे यह भी मानते है कि हिन्दी के शब्द-भडार मे सस्कृत-व्युत्पन्न शब्दो को छोडकर दूसरे शब्द नही होने चाहिएँ। किन्तु, व्यवहार मे वे किसी शब्द को उपयोगी पाने पर उसके मूल के सस्कार के परिशोध की चिंता नही करते। चतुर्वेदीजी की भाषा एक प्रकार से लोक-भाषा के निकट है। उसकी प्रकृति एकरूप न होकर असम है। अपनी असम गति मे भी वह ओजमयी और प्रवाहयुक्त है। 'नवीन'जी की प्रकृति सामासिक शब्दावली के विधान की ओर अधिक है। चतुर्वेदीजी की रचनाओ मे सामासिक शब्दो का प्राय अभाव है।

अब तक हमने माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के राष्ट्रीय काव्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति की भिन्न-भिन्न भूमिकाओ मे स्थित समान-असमान प्रत्ययो और प्रवृत्तियो का आकलन-विश्लेषण किया है। तुलनात्मक अनुशीलन की प्रत्यक्ष प्रक्रिया के माध्यम से अब हम उनके सम्पूर्ण राष्ट्रीय काव्य के सबध मे कतिपय सुनिश्चत निष्कर्षो की उपलब्धि कर सकते है।

हमारी दृष्टि मे चतुर्वेदीजो चिर-मनस्विता के उद्गायक रहे है। उनके काव्य का युग-बोध साम्प्रतिक जीवन-व्यापारो से सम्बद्ध होता हुआ भी जीवन के कुछ आधारभूत मूल्यो की सहज स्वीकृति के कारण परिस्थितियो के ऊपर सकल्पो को प्रतिष्ठित करता है। उनकी रचनाओ मे, आदर्शो की दृष्टि से स्वच्छदतावाद के कुछ कवियो मे प्राय. पाये जाने वाले विकल्पो का सर्वथा अभाव है।

आत्म-विसर्जन की केन्द्रीय भावना की परिक्रमा करते हुए उनके प्रगीत एक आध्यात्मिक आलोक की मृष्टि मे समर्थ हुए है। इन सभी प्रक्रियाओ और उपलब्धियो के मध्य उनकी वैयक्तिक चेतना नि शेष नही होती, प्रत्युत वह क्रमश एक सास्कृतिक धरातल प्राप्त कर लेती है।

'नवीन' जी परिस्थितियो के बदलते स्वरूप को अपनी राष्ट्रीय रचनाओ का आधार बनाते है। कदाचित् इसीलिए उनके राष्ट्रीय काव्य का विकास उद्वेलन और प्रक्षोभ की भूमि पर हुआ है। उनकी पूर्ववर्ती रचनाओ मे अग्रेजी कवि बायरन की तरह एक परुष और ध्वसोत्सुक स्वर साफ-साफ सुनाई पडते है। कवि के युग-बोध का केन्द्रीय आधार साम्प्रतिक जीवन की विविध प्रतिक्रियाएँ है। चतुर्वेदीजी अपने अर्जित सकल्पो के द्वारा परिस्थितियो को एक निर्माणपरक भूमियो मे ढालते और 'नवीन' जी उनकी प्रतिक्रियाओ मे स्वय को आबद्ध कर लेते है। उनका परवर्ती दार्शनिक काव्य भी उद्वेलन के प्रभाव से अछूता नही है। उसमे भी एक अशात व्यक्तित्व की उद्विग्न आत्मा शाति और समाधान के लिए भटकती दिखाई देती है। कदाचित् इसीलिए वे कभी विनोबा भावे, कभी उपनिषद्, कभी गीता और कभी गाधी की ओर आकर्षित होते है। इस उपक्रम मे मनुष्य की स्वतन्त्रता और समानता के प्रति उनकी निश्छल निष्ठा भी व्यक्त हुई है। एक मानवतावादी आदर्श और आग्रह उनके साथ है। सक्षेप मे उनके परवर्ती काव्य मे अनेक दार्शनिक शिखर तो है, वे निर्माण का सतत् सकेत भी करते है, किन्तु उनमे किसी एक के साथ भी रचयिता के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विलयन नही हुआ है।

अभिव्यक्ति की भूमिका पर चतुर्वेदीजी के राष्ट्रीय काव्य मे सूक्तियो का प्रबल आकर्षण मिलता है। इसी आधार पर समीक्षको ने उन्हे उर्दू काव्य-शैली का प्रतिनिधि माना है। उनके प्रगीतो को भावुकता गति देती है। कभी कभी अत्यत सकुल स्थिति मे वह उनके काव्य को रहस्यमय और अस्पष्ट भी बना देती है। इतना ही नही, वह प्रेरणा और प्रकाशन के स्तर पर एक द्वन्द्व की सृष्टि भी करती है। इस द्वन्द्व मे कवि का सम्पूर्ण शब्द-ससार पिछड जाता है। ऐसी स्थिति मे भी वह अपनी असाधारण जीवन-निष्ठा और विकल्प-विरहित आदर्शो के द्वारा एक सार्थक प्रभाव की उद्भावना मे समर्थ हो सका है। नवीन प्रगीतो मे दार्शनिक व्यजना के साथ प्रतीक-निर्माण मे भी उसे पर्याप्त सफलता मिली है।

शर्माजी के प्रगीत चतुर्वेदीजी की अपेक्षा अधिक आलकारिक है। अलकार-योजना के सदर्भ मे वे पौराणिक रूपको और प्रतीको का प्राय प्रयोग करते है। वे भी चतुर्वेदीजी की तरह भावुक है, किन्तु उनकी भावुकता अधिक स्पष्ट शब्दो और बिम्बो मे प्रकट हुई है। कदाचित् इसीलिए उनके प्रगीत चतुर्वेदीजी की तरह

रहस्यात्मक वातावरण की सृष्टि नही करते। उनके परवर्ती दार्शनिक काव्य मे बौद्धिक विश्लेषण की प्रवृत्ति बढती गई है और काव्य का सहज प्रवेश क्षीण होना गया है। निश्चित ही इसीलिए कलात्मक उपकरण भी कम होते गए है।

समग्र रूप मे चतुर्वेदीजी का काव्य-व्यक्तित्व 'नवीन' की अपेक्षा अधिक प्रौढ और समृद्ध है। उसमे उत्कर्ष का कारण अपनी केन्द्रीय अनुभूति मे मव कुछ पचाकर निरतर विकसित होते हुए एक समग्र व्यक्तित्व मे परिणत हो सकने की क्षमता है। इसलिए उनका राष्ट्रीय काव्य समरस और सौम्य है। 'नवीन' का काव्य-व्यक्तित्व अधिक परुष और स्वच्छद है। उसका विकास भावात्मक आवेगो की भूमिका पर हुआ है। राष्ट्रीय गतिविधियो के साथ वह प्रतिक्रियात्मक स्तर पर सम्बद्ध है।

उपरिलिखित भिन्नता के उपरात भी हमारे ये दो कवि स्वच्छदतावादी काव्यान्दोलन की राष्ट्रीय-सास्कृतिक धारा का नेतृत्व करते है। वैयक्तिक चेतना के माध्यम से अपने वैष्णवी सस्कारो को, राष्ट्रीय जीवन को सास्कृतिक तथा मानवतावादी आधार देने की अनवरत चेष्टा इन्होने की है। मूलत इनकी राष्ट्रीय चेतना स्वतन्त्रता, समानता और बधुत्व के बृहत्तर प्रजातात्रिक जीवन-मूल्यो का निरन्तर उद्घोष करती हुई हमे निर्माण के प्रशस्त और आलोकित क्षितिज प्रदान करती रहेगी।

भारतीय राष्ट्रवाद और माखनलाल चतुर्वेदी

◇ ◇

डॉ० बद्रीप्रसाद पचोली

विद्वानो ने प० माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य मे रहस्यवादी भावना से मिश्रित राष्ट्रीय भावना को खोजने का कार्य किया है। मैने इस निबन्ध मे दिव्य राष्ट्रीयता की प्रतिष्ठा करने वाली परम्परागत प्रतीकात्मक शैली के आधार पर 'चतुर्वेदी-काव्य' मे व्याप्त राष्ट्रवादी विचारो का अध्ययन करने का प्रयास किया है।

'वय राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिता'[1] अर्थात् हम जागरूक रहकर राष्ट्र के आदर्श नागरिक बने यह कामना भारतीयो मे वैदिक काल से ही पायी जाती है। यद्यपि ससार के किसी भी देश मे ऐसे व्यक्ति कम ही होगे जो अपने राष्ट्र की भूमि, परम्परा, सस्कृति आदि से प्यार न करते हो, परन्तु भारतीयो के लिए राष्ट्र और राष्ट्रीयता शब्द विशिष्ट मनोऽवस्थिति के प्रेरक व परिचायक रहे है। भारतीय इस ससार को देव का काव्य मानते है[2] और इसके रचयिता को कवि।[3] आत्मा और परमात्मा की एकता मे विश्वास रखने के कारण भारत के इस जातीय दृष्टि-कोण के अनुसार भारतीय कवि स्वभाव के होते हैं और उनका राष्ट्र के प्रति दृष्टिकोण कवि का दृष्टिकोण माना जा सकता है। सामान्य भारतीय भी अपनी भारतभूमि को सात पवित्र पुरियो, सात कुल-पर्वतो और सात परमपावनी नदियो वाली दिव्य भूमि के रूप मे जानता है। विष्णु के चरण-चिह्नो से चिह्नित, शिवधामो और शक्तिपीठो से सगठित इस भूमि के रूप मे वह स्वीकार करता है। श्रेष्ठ कर्म भारत मे यज्ञ कहे जाते है[4] और इस प्रकार यह सम्पूर्ण देश यज्ञवेदी

१. यजुर्वेद ६ २३

२ देवस्य पश्य काव्य न ममार कदाचन।

३ कवि पुराणमनुशासितारम्। गीता ८ ६

४. यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। शतपथ ब्राह्मण १.५ ४.५

है। यज्ञवेदी पर श्रद्धा और सत्य का समन्वय होता है[1] तथा देवशक्तियो के सान्निध्य मे दिव्य भावनाओ का प्रसार होता है। भारतीयो के जीवन का उद्देश्य, चाहे वे वैदिक, जैन और बौद्ध किसी भी परम्परा मे विश्वास करने वाले हो, श्रद्धा और सत्य का समन्वय करके देवत्व को प्राप्त करना है। भारत के उन्नत भाल को देखकर कवि उसे पृथ्वी का मानदण्ड तथा देवात्मा मानने के लिए विवश हो जाता है,[2] पुण्यसलिला भागीरथी को कुलदेवता के रूप मे राम प्रणाम करते हैं,[3] उज्जयिनी मे छाया हुआ मेघ नीलकठ की छवि से समानता रखने के कारण महाकाल के गुणो के द्वारा अभिवाद्य बन जाता है और मध्याकालीन पूजा मे नगाडे का स्थान अपनी गर्जना द्वारा ग्रहण कर लेता है,[4] सागर विष्णुपत्नी लक्ष्मी का पिता है। इस प्रकार भारत के पर्वत, नदियाँ, नगर, सागर, मेघ आदि देवत्व के अधिष्ठान है। इस दिव्य राष्ट्रीयता के भाव को स्वीकारने वाले भावुक कविगण साधारण लोगो से आगे बढकर जीवन और साहित्य का उद्देश्य भारत जैसे राष्ट्र और उसके प्रति जनमानस मे पनपने वाली राष्ट्रीयता को घोषित कर दे तो उनकी यह घोषणा हमारी परम्परा द्वारा समर्थित ही मानी जायेगी। हिन्दी साहित्य मे महाकवि माखनलाल चतुर्वेदी का प्रवेश इसी उद्घोष के साथ हुआ है। भारत की परम्परागत दिव्य राष्ट्रीयता उनकी काव्य-साधना का मूलाधार है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से राष्ट्रीयता व्यक्ति के मन की स्व से परम की ओर चलने वाली यात्रा के लिए सचित पाथेय है। इस यात्रा मे पडने वाले स्थान है, परिवार ग्राम, जिला, प्रान्त, राज्य, राष्ट्र, विश्व आदि। राष्ट्रीयता मानव को विश्वबन्धुत्व की ओर अग्रसर करके परम की प्राप्ति मे सहायक बनती है। जब तक वह ऐसा करने मे समर्थ नही होती तब तक उसे महाकवि रवीन्द्र के शब्दो मे अति भोजन की यूथचारिता (Gregariousness of Gluttony) मात्र कहा जा सकता है। आधुनिक विश्व मे इसी रूप मे राष्ट्रीयता का विकास हुआ है। डा० राधाकृष्णन् ने अपने 'रिलीजन एण्ड सोसाइटी' नामक ग्रन्थ मे ऐसी राष्ट्रीयता के विषय मे ही लिखा है कि राष्ट्रीयता मनुष्य की मूल-प्रवृत्ति नही है। यह अर्जित, कृत्रिम आवेग मात्र है। हमारे कवि राष्ट्रीयता के भारतीय आदर्श को ही स्वीकार करते है, जिसके अनुसार देश-प्रेम का अर्थ अन्य देशो से घृणा करना नही

---

१ श्रद्धा पत्नी सत्य यजमान श्रद्धा सत्य तदित्युत्तम मिथुनम्।
ऐतरेय ब्राह्मण ३२ १०

२ कुमार सभवम् १ १

३ उत्तररामचरितम्, प्रथमाक

४ मेघदूत, पूर्वमेघ ३६·३७

हैं। राष्ट्राराधन उनके मत मे पूजा है जो मिलकर की जाती है तथा जिसमे वैर-भाव को कोई स्थान नही है—

पूजा का स्वर तो स्वैर नही होता है,
पूजा के घर तो वैर नही होता है।

'अर्चन्ननु स्वराज्यम्'[१] का स्वर ऋग्वेद मे ही सुनाई पड जाता है जहाँ राष्ट्र का आधार त्याग माना गया जान पडता है।[२] ब्राह्मण ग्रन्थो के अनुसार स्वराज्य एक विशेष यज्ञ का नाम है जिसे गौसव भी कहा जाता है।[३] इसमे परमेष्ठी-प्रजापति विष्णु की आराधना की जाती है। ऋग्वेद के अनुसार नैष्ठिक व्रती स्वराज्य-सिद्धि को प्राप्त होता है—अदब्धस्य व्रतस्य स्वराज[४]। गौसव मे बृहत् व रथन्तर साम की साधना करनी होती है। ऐतरेय आरण्यक के अनुसार वाक् रथन्तर है और प्राण बृहत्।[५] जैमिनीय ब्राह्मण के अनुसार गौ रथन्तर है, अश्व बृहत्।[६] गोमेध और अश्वमेध इस प्रकार स्वराज्य के अग माने गए है। इनका सम्बन्ध राष्ट्र शब्द की दो निरुक्तियो से भली प्रकार स्थापित हो जाता है। यह शब्द रा दाने अथवा राज् दीप्तौ धातु से ष्ट्रन् प्रत्यय लगने से व्युत्पन्न हुआ है। कर्म अपत्य या विद्या की ज्योति[७] से दीप्तिमान् होकर स्वराज्य प्राप्त करने का उपाय अश्वमेघ है। राष्ट्र को अश्वमेध कहने का यही कारण ज्ञात होता है।[८] गोमेध का नाम गौसत्र भी है जिसे आत्मदक्षिण कहा जाता है—आत्मदक्षिण वा एतद्यत्सत्रम्।[९] इस यज्ञ मे सम्पूर्णतया अपनी आहुति देनी पडती है। स्वार्पण-पूर्वक कर्म मे लग जाना ही राष्ट्र-निर्माण की पहली शर्त है। भूमिसूक्त मे सत्य, बृहत्, उग्र, दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ ये सात राष्ट्र को धारण करने वाले तत्त्व माने गए है।[१०] स्वराज्य के लिए किए जाने वाले दोनो यज्ञो मे प्रज्ञा एव बल की उपलब्धि साधक का ध्येय होता है। प्रज्ञा का तात्कालिक फल स्वार्पण या आत्म-

---

१. ऋग्वेद १ ८०
२. राष्ट्रीयता, लोकजीवन और भारतीय साहित्य जनभारती वर्ष ११, अक ३-४
३. तैत्तिरीय ब्राह्मण २ ८ ६, ताण्ड्य महाब्राह्मण १६ १३ १
४. ऋग्वेद ७·६६ ६
५. ऐतरेय आरण्यक ३ १ ६
६. गोरेव रथन्तर अश्वो बृहत्, जैमिनीय ब्राह्मण १ ३३३, २ ३४
७ महाभारत, सभापर्व ७२.५
८ राष्ट्र वा अश्वमेघ। शतपथ ब्राह्मण १३ १ ६ ३
९ ताण्ड्य महाब्राह्मण ४ ९ १८
१०. अथर्ववेद १२ १:१

निवेदन तथा बल का राजमान् होना है, स्वराज्य-सिद्धि मे दोनो ही उपयोगी हैं।

मानव-व्यवहार छन्दोबद्ध होता है। छन्द मर्यादा, परिधि या आयतन का नाम है। शरीर मे मन, प्राण और पच ज्ञानेन्द्रियाँ—ये सात छन्द है। एक सीमा तक ही इनकी गति होती है। उस सीमित गति के कारण ही जीव ससीम चैतन्य कहा जाता है। मानव जीवन का उद्देश्य है असीम चैतन्य को अनुभव का विषय बनाकर उससे तादात्म्य स्थापित करना, असीम मे अपने को मिला देना। असीम की ओर जाने के लिए छन्दो की सीमा का विस्तार करना आवश्यक है। स्व का इस प्रकार का तनन या विस्तार ही स्वतन्त्रता है। स्वच्छन्दता का मार्ग इन्द्रियो को बहिर्मुखी बनाये रखता है जबकि स्वतन्त्रता का मार्ग उनको अन्तर्मुखी बनाकर उनकी क्षमता का विस्तार करता है। स्वतन्त्रता का पूर्ण रूप ही स्वराज्य है।[1] इसी स्वाराज्य या स्वराज्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नरत रहने की आकाक्षा ऋग्वेद मे प्रकट की गई है—स्वराज्ये यतेमहि।[2]

माखनलाल चतुर्वेदी पर भारत के राष्ट्रीयता सम्बन्धी इन विचारो का सस्कारगत प्रभाव पडा है। उनका राष्ट्र पूर्णत्व की प्रतिमा है जिसे उन्होने कृष्ण के रूप मे स्वीकार किया है। कृष्ण विष्णु के अवतार माने जाते हैं। अतः कृष्णोपासना भी स्वाराज्य यज्ञ का ही परवर्ती रूप माना जाता है। श्याम रग चतुर्वेदीजी के अनुसार पूर्णत्व का सूचक है। उनका कहना है कि पानी अधिक हुआ कि नीला दिखा, हवा घनी हुई कि नीली दिखी, आकाश घना हुआ कि नीला दिखा। यह हमारा दृष्टिदोष है, कहना कठिन है, किन्तु ऊपर की हर उठान को लोगो ने श्यामसुन्दर नाम ही दिया है। मेरे निकट तो श्यामसुन्दर मीठा, आकर्षणशील परमसत्य है।[3] उनके इस कथन से यह व्यजित होता है कि राम और कृष्ण की श्यामवर्णता उनकी पूर्णता अथवा तदुद्दिष्ट उठान की सूचक है और मातृभूमि की शस्यश्यामलता राष्ट्र की पूर्णता या पूर्णता की ओर गति की सूचना देती है। राष्ट्र का उठान उसके निवासियो के उठान मे निहित है।

मातृभूमि है उसकी जिसको उठ जीना आता है
दहनभूमि है उसकी जो क्षण-क्षण गिरता जाता है

अपने श्यामसुन्दर का रूप उन्होने 'युगपुरुष' नामक कविता मे उपस्थित किया है जिसमे भारत-रूपी युगपुरुष का हिमालय रजतमुकुट है, सिन्धु-इरावती वैभव-घट हैं, गगा-यमुना उर-हार है, नर्मदा कमरबन्द है और कृष्णा-कावेरी

---

१ वैदिक स्वाराज्य-साधना पचौली, विश्वज्योति १४ ८

२ ऋग्वेद ५·६६ ६

३ वेणु लो गूँजे धरा, भूमिका

उसकी तीक्ष्ण तलवार है। भारत भूमि को उन्होने अपनी आराधना का मन्दिर भी कहा है।

हो मुकुट हिमालय पहनाता, सागर जिसके पद धुलवाता,
यह बँधा बेडियो मे मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा मेरा है।

उनका 'एक भारतीय आत्मा' नाम उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालता है। डा० सुधीन्द्र के अनुसार वैष्णव भक्त और राष्ट्र-सेवी की अनुभूतियाँ 'एक भारतीय आत्मा' मे एकाकार हुई है, राष्ट्र और भगवान् उनके लिए अभिन्न है

उठा दो वे चारो कर कज देश को लो छिगुनी पर तान
और मैं करने को चल पडूँ तुम्हारी युगल मूर्ति का ध्यान।

'हिमकिरीटिनी' मे उन्होने सम्पूर्ण भारत को एक कारागार के रूप मे स्वीकार किया है जिससे छुडाने के लिए कभी देश के यौवन को पुकारा है, कभी युगपुरुष को पुकारा है, कभी युगपुरुष को जगाया है, कभी मोहनरूपी मोहनदास गाधी को जनता का नेतृत्व करने के लिए आहूत किया है। स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के लिए शक्ति-साधना का यही स्वरूप उस समय के लिए उपयुक्त था। कवि की उस समय की आकाक्षा इन पक्तियो मे देखी जा सकती है

·प्रथम भारत है हृदय दुलारा देश
मेरे मरने-जीने का धन प्यारा पूज्य हमारा देश।
फिर शासन अपनो ही का हो अपने लिए किया जावे
हृदय बढाकर प्राण बढाकर, उसे अवश्य लिया जावे,
इसके बाद विदेशी शासन हो चाहे जगदीश्वर का
वह स्वराज्य कहला न सकेगा, हो अपना अपने घर का।

यहाँ कवि की उस आकाक्षा का भी परिचय मिल जाता है जिसके कारण उसे बलिपथ का पथिक या बलिपन्थी कहा जाता रहा है। 'एक भारतीय आत्मा' ने अपने गीतो का प्रेरणास्रोत ही बलिदान की भावना को माना है। उसका कहना है कि 'बलि और गीत, युग की बीहड भूमि पर एक-दूसरे के पूरक पन्थी है। एक ओर तो कवि स्वय बलिपथ पर चलकर जेल मे, पेट पर जुआ लगाकर ब्रिटिश अकड का कूआ खाली करने मे लग गया था और दूसरी ओर कविता मे इस प्रकार के भाव प्रकट करता हुआ समस्त भारत को जगाने के लिए स्वर-सधान कर रहा था

द्वार बलि का खोल चल भूडोल कर दे
एक हिमगिरि एक सिर का मोल कर दे।
चढा दे स्वातन्त्र्य प्रभु पर अमर पानी
विश्व माने तू जवानी है जवानी।

० ०

मातृभूमि के चरणो मे यह सचित बलिदान हमारा

० ०

वीर, भक्त, बलिपन्थी बनकर विश्व-विजय पर बढना।

० ०

जब बलि रक्त बिन्दु निधि माँगे, पीछे पलक, शीश कर आगे,
सौ-सौ युग अगुली पर जागे, चुम्बन सूली को अनुरागे।

बलिदान की भावना ने सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति पायी है 'पुष्प की अभिलाषा' नामक कविता मे, जिस कविता ने राष्ट्र की बलिवेदी को अपने मस्तको से सजा देने की प्रेरणा सत्याग्रहियो को दी है

चाह नही मैं सुरबाला के गहनो मे गूँथा जाऊँ,
चाह नही प्रेमी-माला मे बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नही सम्राटो के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नही देवो के सिर पर चढू़ँ, भाग्य पर इठलाऊँ,
मुझे तोड लेना बनमाली! उस पथ मे देना तुम फेक।
मातृभूमि पर शीश चढाने जिस पथ जावे वीर अनेक।

बलिपथी कारागार को कृष्ण-मदिर, हथकडी को माता, पृथ्वी को शैया और आकाश को आच्छादन मानकर अपने नेता के सकेत पर सुरपुर तक को ठुकराकर राष्ट्राराधन मे स्वय को लीन कर देने के लिए पूरी तरह तत्पर हो रहे थे और कवि इसके लिए उन्हे प्रेरणा दे रहा था

कागो का सुन कर्तव्य-राग, कोकिल-कलरव को भूल-भूल
सुरपुर ठुकरा, आराध्य कहे तो चल रौरव के कूल-कूल,
भूखड बिछा, आकाश ओढ, नयनोदक ले, मोदक प्रहार,
ब्रह्माण्ड हथेली पर उछाल, अपने जीवन-धन को निहार।

उस समय विदेशी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करके आत्मबलिदान करना ही एकमात्र ध्येय था जीवन का

मिट जाने मे सीखा है जग मे हरियाना,
मेरी हरियाली दुनिया है, मिट्टी मे मिल जाना
विद्रोही हैं हम, शस्य श्यामलता के जीवन-धन हैं।

स्वार्पण राष्ट्र का आधार है, इस परम्परागत सिद्धान्त की झलक चतुर्वेदीजी के इस कथन मे मिल जाती है

"सरस्वती मयूर पर, विष्णु साँप की गोद मे सागर की लहरो पर, शिव बर्फीले हिमालय पर भले रहे पर मेरा ब्रह्मत्व तो दाता के द्वार पर खडा रहेगा।"

यहाँ ब्रह्मत्व का तात्पर्य राष्ट्रीयता तथा दाता का तात्पर्य बलिपथी ही ज्ञात होता है। तरुणाई का बलिपथी बन जाना युग-परिवर्तन के लिए बहुत कुछ मूल्य

रखता है। भारत के लिए इसका परिणाम है स्वतन्त्रता

नये रक्त ने जूनी तलवारो की याद भुला डाली,
तब भारत के चरणो जग ने, निर्मल आजादी डाली।

कवि ने अपनी सामर्थ्य को इन शब्दो मे सही ही आँका है

फिरगी से बढकर रगीन थे हम,
फकत प्राण देने के शौकीन थे हम।

स्वतन्त्रता के प्रथम प्रभात मे ही कवि ने अनुभव किया कि सारे भारतीय काश्मीर से कन्याकुमारी तक एक है, उन्हे क्षुद्र स्वार्थ या कोई अन्य बात अलग नही कर सकती, मातृभूमि अपनी छत्तीस कोटि सन्तानो के साथ साभिमान गति कर रही है

केरल से काश्मीर तलक हम है, हम भाई-भाई है,
कावेरी कृष्णा कि नर्मदा गगा यमुना सिन्धु रहे
हमे न तोड सकेगा कोई, हम मा जाये बन्धु रहे।
चरण-चरण चल पडी मातृभू वरण-वरण सन्तान लिए
हैं छत्तीस करोड कि उनका अमित उचित अभिमान लिए।

कवि ने पाया कि उसका सर्वस्व प्राप्त हो गया है। उसके आत्मसमर्पण को सफलता मिली है। अब वह अपूर्व, परमशक्ति रूप, अमर और श्रमसधेय राष्ट्र को भक्तिपूर्वक पुन आत्मसमर्पण करने के लिए तत्पर हो जाता है :

तुम अनहोने, मै बौने हाथो का उठाव,
तुम परमशक्ति, मै भक्तिभावना भरा चाव।
तुम अमर कि मैं बस सहस बार चढता क्षण हूँ,
तुम श्रम-विधान, मैं नित नव आत्म-समर्पण हूँ।

कवि ने इस बात को भी नही भुलाया है कि राष्ट्र-निर्माण के लिए भी सर्व-स्वार्पण करने वाले लोगो की उतनी ही आवश्यकता है जितनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए थी। इसीलिए उसने राष्ट्र के इस आह्वान की ओर सकेत किया है

शीश माँगती धरा, शीश माँगता गगन।

परन्तु 'एक भारतीय आत्मा' इस बात को अनुभव किए बिना नही रहे कि राष्ट्र का वैसा स्वरूप अभी बनना बाकी है जैसा दिव्य भावनाओ से उपेत उनकी कल्पनाभूमि मे परम्परागत सस्कारो से अवतरित हो चुका है। उनकी जीवन की प्रथम कविता की पक्ति है 'श्याम लोचन मन बस गयो री'। यह लोचन और मन मे बस जाने वाली श्यामल प्रतिमा थी दिव्य राष्ट्र की। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद की उनकी आकाक्षा इन पक्तियो मे व्यक्त हुई है ·

शीश की लहर उठे फसल कि एक शीश दे,
पीढियाँ बरस उठे हजार शीश शीश ले।

भारतीय नीलिमा, जगे कि टूट टूट बन्द,
स्वप्न सत्य हो, बहार गा उठे अमन्द छन्द।

स्वार्पण के बाद जाग्रत होने वाली नीलिमा—प्रत्येक क्षेत्र मे वृद्धि-समृद्धि से युक्त राष्ट्र है हमारे कवि का अभीष्ट। अभी स्वाधीनता के रूप मे जिस नीलिमा के दर्शन हुए हैं वह तो घनश्याम की अनुहार करने वाले बादलो की नीलिमा है। यद्यपि कवि को इतना सतोष है कि किसी न किसी रूप मे उस नीलिमा के दर्शन तो हुए ·

मधुर बादल और बादल और बादल आ रहे है
० ०
तुम नही आए न आवो छबि तुम्हारी ला रहे हैं।

किन्तु उसे दुख भी कम नही है कि वह छला गया है

आकर चले गए
क्षण बार-बार होकर उदार, कब किनने छले गये।

साँस से जिसकी चिर पहचान है तथा जिसके न मिलने से हृदय मे कटुता मात्र रह गई है उस परमशक्ति से मिलने के लिए हमारा कवि व्यग्र है

कब मिलोगे सास की पहचान की कड़ुवी कुरेदन।

पहले कवि ने यह समझा था कि आजादी के बाद आयी हुईभु खमरी, भ्रष्टाचार आदि की समस्याएँ क्षणिक है। निरन्तर चलती हुई श्रम-साधना की परिणति सुख मे होगी

दु ख पुरुषार्थी की करवट है, सुख श्रम की परिणति का घर है,
धूप छाँह से कैसा झगडा, कभी इधर है, कभी उधर है।

परन्तु कई वर्षो ('वेणु लो गूँजे धरा' का प्रकाशन १९६० मे हुआ है) बाद कवि ने अनुभव कर लिया कि उनकी कल्पना के राष्ट्र के तो दूर तक दर्शन नही हो रहे हैं.

अजलि के फूल गिर जाते है, आए आवेश फिरे जाते है,
चरण ध्वनि पास दूर कही नही।

१९६४ मे प्रकाशित 'बीजुरी काजल आँज रही' काव्य मे ऋतुवर्णन के व्याज से कवि ने इसी बात की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि दिव्य राष्ट्र-निर्माण अभी तक नही हो पाया है। कवि ने भूमिका मे इसे प्रकृति-पूजा से सम्बद्ध माना है, परन्तु कवि इस ओर सकेत किए बिना नही रह सका कि प्रकृति और पुरुष मे अलगाव हो गया है जो कि नही होना चाहिए। कवि का कहना है कि "जब हिमालय पर मस्तक देना होता है तब हम पुरुष का स्मरण करते हैं और हिमालय पर विचरण करते समय प्रकृति की सामर्थ्य का ज्ञान हुए बिना नही रहता।"

यहाँ इस सकेत को समझना कठिन है कि हिमालय पर विचरण करके हमने प्रकृति (जनता) की सामर्थ्य को अनुभव कर लिया है। प्रजातन्त्र मे विश्वास

इसी का परिणाम है, परन्तु अभी तक हमने हिमालय पर शीश चढाकर परम-पुरुष—श्यामसुन्दर को स्मरण नही किया है। स्वार्पण मे जब तक पूर्णता नही आती तब तक श्यामसुन्दर के दर्शन कैसे हो सकते है। कवि ने यह स्वीकार किया है कि उसका प्रकृति-चित्रण प्रतीकात्मकता लिए हुए है। उसने तो 'समस्त मानव-मेदिनी को न जाने किन-किन नामो से पुकारा है और उसे (राष्ट्ररूपी श्यामसुन्दर को) उन-उन रूपो मे उपस्थित पाया है।'

इस कविता-सग्रह मे स्वाधीन भारत का स्वागत कवि ने ऋतुवर्णन के व्याज से किया है। वर्षा अपनी श्याम बादलो की छटा के कारण श्यामसुन्दर से घनिष्ठ समानता रखती है इसलिए सबसे अधिक वर्णन वर्षाऋतु का है।

वर्षाऋतु मे गगन की रानी के बीजुरी छुप-छुपकर काजल आँजती है, सागर की छोरियाँ लहरे फुदकती है, इठलाती है, विन्ध्या ने अनन्त ठिठोली करते हुए धरा पर सुन्दरता की नवगाँठ खोली है, महत्त्वाकाक्षाओ के समान उठी हुई सारस की पक्तियाँ भूमि के द्वारा क्षितिज के द्वार पर टाँकी हुई वन्दनवार के समान हिलती रहती है, रगो का गहरा इन्द्रधनुष कमानी के समान विवश झुक आया है, शीतल सध्याएँ है, प्रभात मधुर है, गिरि-शिखरो के ज्वार उगे हुए वर्षा का शृगार कर रहे है और बादल उदार हो गए है। कवि ने अनुभव किया है

अन्तर का सौन्दर्य भर उठा इस निहाल से अम्बर मे,
नन्दन की प्रभुता भर आई मेरे इस नन्हे घर मे।

वर्षा ने किसको आनन्दित नही किया !

तीर्थ, तपोवन, गिरि वन प्यारा, गगा-जमुना बहती धारा,
जीवन, जन, श्रम, सुविधा, बेली, भू से शैल-शीश तक फैली।

वर्षा की सुरम्य उषा मे अपने राष्ट्र को निर्मित करने की प्रेरणा देती हुई आज़ादी आ गई :

क्षितिज जब मेहदी लगाकर उठी घोल गुलाल
और जब भगने लगे सब यामिनी के व्याल,
तब किसी ने किरण के कानो किया कुछ शोर
दौड आई, पख खोले दौड आई भौर,
प्राणवानो को प्रणय ने दे दिया सदेश,
यह तुम्हारी प्राण-गरिमा, यह तुम्हारा देश।

परन्तु कवि ने यह अनुभव कर लिया कि वर्षा का यह आमोद ही पर्याप्त नही है। आज़ादी के प्रारम्भिक वर्षों मे हम आनन्द ही मनाते रहे, और स्वाधीनता का आनन्द सच्चे राष्ट्र के प्रारूप के ही दर्शन करा सका। कवि को लगा कि आनन्ददायिनी वर्षा की वायु कुजबिहारी की एजेण्ट बन गई है :

लगता है एजेण्ट बन गया अब तो कुजबिहारी का

आत्मविस्मृति से जगाने के लिए शरद् का आगमन हुआ—

इस कुहरे की शाल ओढकर, दिन का सूरज राजकुवर यह
आया जग की आँख खोलने।

शरद् की सम्पत्ति है निर्मल चन्द्र और उसकी अनाविल चन्द्रिका। कवि चिंतित है कि गगन से भूमि तक फैलने वाली चाँदनी के दर्शन नही हो रहे है·

मगन गगन से भूमि तलक यह आज चाँदनी कहाँ गई।

चाँदनी के खो जाने का कारण कवि ने यह बताया है कि नकद या उधार ले-लेकर चन्दा अपनी किरणे व्यर्थ-व्यर्थ ही बाँट रहा है :

गगन देश पर मगन हुए-से चन्दा राजा राज रहे,
कितनी किरणे बेच रहे है नकद मिले कि उधार मिले।

यहाँ स्पष्ट ही नकद लेकर राष्ट्रीय सम्मान को बेचने वाली राजनीतिक पार्टियो तथा विदेशो से उधार लेकर जनमानस को दिवालिया बनाने की सरकारी नीति पर चुभता हुआ व्यग्य किया गया है। स्वार्थों की होड मे राष्ट्रीय एकता भी खतरे मे पड गई है। पहले विभेद गौण थे, एकता प्रधान थी अब एकता गौण हो गई है, विभेद स्पष्ट होते जा रहे है

गन्ध एक है किन्तु रूप है लाल, हरे, नारगी, पीले।

ऐसा क्यो हुआ ? कवि का कहना है कि इसका कारण वर्षा ही है। स्वाधीनता-प्राप्ति की प्रथम आनन्दावस्था (वर्षा) मे हमने आनन्द के मारे अन्धे होकर कर्तव्य को नही पहचाना। इसी कारण सारे मार्ग अवरुद्ध हो गए, जीवन मार्ग भ्रष्ट हो गया, सारा उत्साह धीरे-धीरे ठडा पड गया

पथ-पथ पानी मे डूबे, सृष्टि आज गुमराह हो गई।
ठडक के हाथो किरनो की, आगी आज तबाह हो गई।

शरद् के जगाए न जागने पर पतझड आया—युद्ध का निमन्त्रण उत्तरी सीमाओ से—

पत्ते खडक उठे, वसुधा मे राग बदलता कोई,
फूलो की गधे किसने स्वर की माला मे पोई,
देखे राह हिमालय, नदियाँ उतर-उतर बल खाती,
सकट मे है पिता, पुत्रियाँ वसुधा को समझाती।

चीन के सामने हमको मुँह की खानी पडी। इससे निराश होने की आवश्यकता नही है। सपनो की दुनिया मे रहना छोडकर हमे पुन· उठकर अपनी प्राणवत्ता का परिचय देना चाहिए.

इस बानिक पर हँस न उठो, इस झुक जाने पर रोना कैसा ?
सपनो की गीली जमीन पर आसन मारे बसना कैसा ?

नन्हे जीवन मे बसती है उठने के घमड की भाषा,
उठन-चढन, विरहन से हँसती प्राणो की कोमल परिभाषा।

तथा

जो ऊगेगा सो फूलेगा वही फलेगा रानी।
सध्याएँ कह रही, प्रात नित सुनता नई कहानी।

अब कठोर श्रम द्वारा राष्ट्र का निर्माण करने की आवश्यकता है। श्रम के पुरोहित कृषक के स्वरूप को कवि ने प्रस्तुत किया है, जो जवानी का प्रियतम है, ऐतिहासिक राम और कृष्ण से अभिन्न है, रस और राग से उदासीन है, अपने स्वरूप को समझ लिया है तथा कला और कल्पना के द्वारा यह अभिनन्दनीय है :

सिर पर पाग, आग हाथ मे, रख पानी का घडा
जवानी, देख कि प्रियतम खडा।
श्रम तेरे मदिर का एक पुजारी कितना बडा ?
सरजू उसे राम कहती है, यमुना घनश्याम कहती है,
ग्रामीणो की टोली, पागल इसको राम-राम कहती है,
कला, कल्पना से कह इस पर बन्दनवारे चढा।

ऐसे श्रममदिर के पुजारी सारे देशवासी बन जाएँ, सब आग और पानी से खेलते हुए अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए तत्पर हो जाएँ तो कवि की कल्पना का भारत बन सकता है जिसे कवि ने चिर-सुगन्ध तरु कहा है। पतझड के बाद अब तो वसन्त का आगमन होना है। कही सच्चे स्वार्पण के बिना वह भी व्यर्थ न जाये, यही देखना है।

यह मलय-पवन है और यह मिट्टी। दोनो ही निर्मात्री है

यह मलय और यह माटी बस क्या कहने ?
निर्मात्री दोनो है आपस मे बहने,
इनकी गोदो ही मे कलियाँ बसती है
खिलती है, मुझको वे हाजिर मिलती है,
गूँजो मे भर-भर अर्पण अतल-वितल मे
मैं रख-रख आता उनके चरणकमल मे।

कलियाँ जिसमे खिले वही भूमि कवि का ईश्वर है, वही उसका घर है—

कलियो का आँचल ही मेरा ईश्वर है, मधुगन्धो हिलता-डुलता प्रभु-मदिर है,
जग के इस सिकुडे पाप-पुण्य से ऊपर, गूँजे निर्माण किया करती मेरा घर।

श्याम रूप इस राष्ट्र को प्रणाम करता हुआ कवि कहता है ·

उस वरणहीन को वेद-गान, उस चरणहीन को सौ प्रणाम,
उस वृन्दावन पर बाग-बाग, उस वशीवट को तान-तान,

हिमनग से अमलकुमारी तक शोभित मेरी यह पचवटी,
जिसके सिर हिम का मुकुट लसित जिसके अगो गगा लिपटी।
इसकी गणना छत्तीस कोटी इसकी अविदित महिमा विशाल,
मेरी जननी का दिव्य भाल, सेवा करता है अमर काल।

यहाँ पर कवि राष्ट्र मे हिमकिरीटनी के बाद पुन मातृत्व की प्रतिष्ठा करने जान पडते है। अन्यत्र साहित्य मे प्रतिष्ठित दुर्गा के विषय मे 'एक भारतीय आत्मा' ने कहा है कि "दुर्गा जमीन, झाडियाँ, नदियो, सरोवरो, टीलो, टेकडियो, खेतो, खलिहानो यानी राष्ट्र को सिंहासन बनाती है, सस्कृति के गहने पहनती है, उथल-पुथल का राजदण्ड धारण करती है, मुकुट को ठुकराकर किसी जाति के सकल्पो का, गरीबो के बगीचे मे उगे हुए फूलो का हार अपने जूडे मे बाँधती है और समस्त राष्ट्र के निवासियो की आत्मा का वस्त्र पहनकर क्रियाशीलता के साथ बैठ जाती है।"

भले ही कुछ स्थानो पर कवि ने राष्ट्र को दुर्गा के रूप मे देखा हो परन्तु कवि ने अपने आराध्यदेव के रूप मे तो श्यामसुन्दर को ही माना है। कोई समय तो ऐसा आयेगा ही जब भारत कवि की कल्पना का दिव्य राष्ट्र बनेगा। तब सारी ऋतुएँ उसका शृगार करने लगेगी। जो वर्षा केवल श्यामता होने के कारण ही मोहक ज्ञात होती है वह श्यामलता भूमि को विविध रगो भरा मुकुट पहनायेगी :

जब पानी नीचे को आए, ऊपर को उठ छाये तरुवर
काले घन काली जमीन पर उतर-उतर बरसे गर्जन कर,
उस दिन इन्द्र-धनुष से कहना उठकर घेरा-सा घिर आए
हरी-भरी मखमली भूमि को रगो भरा मुकुट पहनाए।

इसके लिए राष्ट्र के प्रति पूर्ण-समर्पण की आवश्यकता है। प्रकाश के देवता स्वातन्त्र्य का आगमन भी बलि की देन है और राष्ट्र की समृद्धि भी बलिदान द्वारा ही सम्भव है। कवि का कहना है कि बौद्धिकता का आश्रय लेकर कला-पथी, बलिदान और साधारणता का मार्ग छोडकर जब भी ऊँचे पर चढा वह कैलाशवासी हो गया।

कला का उद्देश्य ही बलिदान के लिए प्रेरित करना है। अभी तक तो

गीता के गायक ने चुप छलिया का भेख लिया,
यादो की नीली बगिया मे हँसते देख लिया।

कवि के इन शब्दो से स्पष्ट है कि श्यामरूप राष्ट्र की झलक मात्र मिली है। आगे उसने वशी उठाकर पृथ्वी गुँजा देने के लिए श्याम का आह्वान किया है :

वेणु लो गूँजे धरा मेरे सलोने श्याम।

यह श्याम भारतीय गणतन्त्र ही है जो आक्रान्त होने पर प्राणो की बाजी लगाने को और वैसे शस्त्र नही उठाने के लिए कृत-सकल्प है

क्षुधित फरण पर क्रुधित फरिण की नृत्य कर गरणतन्त्र
सर्जना के तन्त्र ले, मधुर-अर्चना के मन्त्र ।
आज कोई विश्व-दैत्य तुमको चुनौती दे
औ' महाभारत न हो पाए सखे, सुकुमार ?
बलवती अक्षौहिरिणयाँ विश्वनाश करे
'शस्त्र मैं लूँगा नही' की कर सको हुँकार।
किन्तु प्रण की, प्राण की बाजी जगे उस दिन
हो कि इस भू-भाग पर ही जिस किसी का वार।

अब इस गरणतन्त्र को सबल और दिव्यता से उपेत बनाने का समय आ गया है जिसका मार्ग कवि के शब्दो मे इस प्रकार है :

स्वर मे सगीत रहे, कृति मे बलिदान भरे।
उठना ही दर्शन का दर्शन अभिराम रहे,
'गिर पडना' गति का हँस उठो यो प्रणाम रहे।

आत्म-बलिदान करके स्वराज्य-सिद्धि का मार्ग भारत मे परम्परा से ज्ञात रहा है। शील द्वारा अपने व्यक्तित्व को ऊपर उठाकर उस व्यक्तित्व को राष्ट्र मे समर्पित कर देने की 'इद न मम' की यज्ञीय भावना को लेकर 'एक भारतीय आत्मा' ने जिस जीवित, जागृत राष्ट्र के निर्माण की प्रेरणा दी है उसे अपनाकर जीवन का परम सत्य पा लेना ही हम समस्त राष्ट्रवासियो का कर्तव्य है। विगत-युग के आदर्श समाप्त होकर इस सत्य को जीवन मे प्रतिष्ठित कर रहे है और नवयुग का प्रभात जागरण का राग सुना रहा है

भैरवी का समय है यह गीत पछी गा रहे है
भानु का आना सितारे डूबकर समझा रहे है।

यह उठकर राष्ट्र को सर्वस्व अर्पित कर देने का अवसर है।

सम्पूर्ण जीवन के क्रान्तिद्रष्टा रचनाकार

० ०

श्रीकान्त जोशी

सघर्ष मघर्ष सघर्ष—माखनलालजी ने जन्म की पहली साँस के साथ सघर्ष की जिस काँटेदार वल्लरी से अपने शरीर को लिपटा हुआ पाया था वह उनकी आखिरी साँस तक उन्हे जकडे रही। जीवन का ऐसा कोई बिन्दु नही था जहाँ से उन्हे चुभन न मिली। परिवार, राजनीति, साहित्य, समाज और पत्रकारिता के अनेक दायरो मे वे घूमते रहे किन्तु किसी भी दायरे ने उन्हे सुख-शैया न दी। आजीवन अस्वस्थ शरीर को लेकर आजीवन चुभते हुए दायरो मे घूमते रहना ही उनकी नियति थी। आश्चर्य होता है कि विरोध, अस्वीकृति और तिरस्कार के विषैले परिवेश को पूरी तरह वरण करते रहने पर भी माखनलालजी का व्यक्तित्व प्रतिक्रियावादी क्यो नही हुआ तथा उनका साहित्य विध्वसात्मक होने की जगह विराट् रचनात्मकता को कैसे अगीकार करता रहा? माखनलालजी का सच्चा मूल्याकन इसी प्रश्न के सही-सही उत्तरो मे छिपा हुआ है।

माखनलालजी का काव्य सदा ही से विशालतर, मानवीय, उदात्त और उर्वर भूमि पर प्रतिष्ठित रहा है। उनकी प्रारम्भ की कविताएँ भी एक वैश्विक धरातल की ओर सकेत करती रही हैं। मनुष्य सदा ही से उनकी कविता का नायक रहा और समय के साथ-साथ जब उनकी कविता भी विकास की ऊर्ध्वगति पर सचरणशील हुई तो प्रकारान्तर से वह उनके मनुष्य ही की ऊर्ध्वयात्रा को सिद्ध करती रही।

यह ऊर्ध्वयात्रा एक सहज निष्कपट कला-पुरुष की यात्रा थी। एक ऐसे व्यक्ति की यात्रा जिसने सदा ही यह माना कि "जीवन तो सपूर्ण ही स्वीकार करना होता है, उसकी किश्ते नही होती।" (साहित्य देवता) "जीवन को किश्तों मे बाँटना सत्य के टुकडे करने के समान है, अधूरापन है, भाग जाना है, अपने को अस्वीकार करना है।" (सन्' ५६ मे व्यक्तिगत चर्चा)

माखनलालजी ने जीवन को सदा ही सम्पूर्ण रूप मे स्वीकार करना उचित समझा। यह बहुत कठिन मान्यता थी और अपनी इस मान्यता का मूल्य चुकाने मे उन्होने कभी आगा-पीछा न किया।

यही मान्यता थी कि उन्होने राष्ट्रीय काव्य का सृजन किसी आरोपित कार्य के रूप मे नही किया। यही मान्यता थी कि कविता के साथ उन्हे राष्ट्रीय-मुक्ति-आन्दोलन मे अपना कन्धा भी लगा देना अनिवार्य प्रतीत हुआ। यही मान्यता थी कि उनका काव्य राष्ट्रीय मुक्ति-सघर्ष को वाणी देता हुआ भी अपनी मानवीय ऊँचाई और वैश्विक भूमि से कभी भी पृथक् नही हुआ और यही मान्यता थी कि उन्हे कभी राष्ट्र अन्तर्राष्ट्र का विलोम प्रतीत नही हुआ। यही मान्यता थी कि राष्ट्र अपनी जगह रहा, कारागार अपनी जगह रहे, देह की अस्वस्थता और पारिवारिक सकट अपनी जगह रहे, किन्तु माखनलालजी को तरुणाई के प्रेम-भरे गीत गाने से कोई न रोक सका, प्रकृति की अभ्यर्थना मे वे किसी से पीछे न रहे और अपने पूजा-गीतो को विज्ञान के उद्दण्ड क्षणो मे भी वे बेदाग बनाए रख सके।

माखनलालजी-जैसा आदमी बहुत अज़ीबो-गरीब किस्म का आदमी होता है। उसे प्यार करना आसान नही होता और बरदाश्त करना और भी कठिन होता है। हम सभी जीवन को किश्तो मे जीते है, ऐसे समय जीवन के प्रति सम्पूर्ण दृष्टि रखने वाला व्यक्ति या तो अपने खतरनाक खेल मे हमे भी साथ ले डूबेगा या हमे पीछे छोडकर हमसे मीलो आगे चला जाएगा। ऐसे आदमी से निबटने का एक ही तरीका है और वह यह कि उसे छोड दिया जाए, उससे दूर रहा जाए और मौका मिले तो उसके खिलाफ आत्म-रक्षित षड्यन्त्र किए जाएँ, उसके 'बहुत कुछ' को 'न कुछ' घोषित किया जाए और अपने सहज बहुमत से उसे अल्पमत बनाकर उसकी सस्कारशीलता और मानवीयता का शोषण किया जाए। माखनलालजी के साथ यही किया गया।

उनके दमकते हुए व्यक्तित्व पर तत्कालीन समीक्षा की कायरता ने कुछ धूल यह कहते हुए फेकी कि "वे तो सैनिक कवि है और सैनिक को जो कीर्ति उसके सैनिकत्व से मिल जाती है वह पर्याप्त होती है, जरूरी नही है कि उसके कवि का भी अलग से सम्मान किया जाए।" उपर्युक्त विचार हिन्दी के एक धुरन्धर समीक्षक के है जिन्होने आगे जाकर विश्वविद्यालयीन धरातल पर ऊँचा नाम कमाया और अपनी इस विचारणा को अनेक वर्षो तक पल्लवित रखा।

आज सब जानते है कि माखनलालजी काव्य-पुरुष ही थे, एक ओर वे अपने अभिमत के आगे समर्पित उदात्त भाव-गीतो के स्रष्टा वेणु-पुरुष थे तो दूसरी ओर जन-जन को रोम-रोम से विसर्जित साहित्य-देवता थे। सैनिकत्व का उन्होने सकटकालीन धर्म समझकर वरण किया था। देश की आबहवा से बचना उनकी

शान के विरुद्ध था। उनसे पराधीनता के उस बीहड युग मे पलायन-पथ स्वीकार करते नही बना। बन भी नही सकता था, क्योकि 'जीवन की किश्ते नही हो सकती' यह बात वे अपने रक्त मे अनुभव करते थे। कवि या साहित्यकार कोई किश्त नही है कि बचाकर अलग रखी जा सके। माखनलालजी भी कलम ही लेकर चले थे किन्तु आगे जाकर उन्हे अनुभव हुआ कि जब तक भारत पराधीन है तब तक कलम लेकर चलना ही पर्याप्त नही है, उससे भी बढकर बात है कलम होने के लिए तैयार रहना, कलम होने के लिए समर्पित रहना। आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व उन्होने श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को लिख भेजा था

विवश बाँसुरी से कहता हूँ
हियतल हूक मचा दे तू
और सबेरे रण-डका बन
कस कर चोट लगा दे तू।

अपने विख्यात् ग्रन्थ 'साहित्य देवता' मे माखनलालजी ने मनुष्य की सार्थकता उसके कोमल और परुष दोनो ही रूपो मे स्वीकार की है। यदि वह कोमल ही का गायक रह जाता है तो फिर एक तो किश्त मे बँट जाता है, दूसरे आवाज देते हुए पुरुषार्थ को अनसुना करते हुए 'मनुष्यत्व' की बलि चढाता है और तीसरे वह अपने कायरतापूर्ण आचरण को सुन्दर और महान् कहने का आत्म-छल व्यक्त करने लगता है। उन्होने लिखा है, "थरथराते हुए, यदि कही दूर जगल मे आग सुलगती दीखी। वह लाल-पीला-सा प्रकाश, और बिना रास्ते की प्रतीक्षा किए चल पडा मानव उसी ओर। उसने लम्बाई से मुडना, ऊँचाई से चढना जाना, जब राह मे नदी या पहाड मिल गया। फिर साँप-शेर, काँटे, खदक—सब तो पुरुष के पथ मे—जिसमे पुरुषार्थ निकला। उस दूर दीखने वाली आग मे, फिर उस बीहड मार्ग मे, फिर शीत की आधी रात के समय, एक किरात-वृद्धा की झोपडी के आँगन मे हाथ सेकने के लिए अगारो के मिलने मे—एक-एक मे कितना काव्य!" (साहित्य देवता)

उपर्युक्त उद्धरण (और ऐसे उद्धरण अगणित हैं) मे माखनलालजी की शुद्ध काव्य-दृष्टि स्पष्ट है। समग्र जीवन ही उनके काव्य-पुरुष का सनातन लक्ष्य रहा है। उन्होने अपने समकालीनो को जीवन की इसी समग्रता से किनाराकशी करते हुए देखा था। वे बहुत क्षुब्ध हुए थे। उन्होने लिखा—"हमारा काव्य न जाने क्या हो गया? अब हम कविता-पक्ति मे यदि तलवार का नाम लाते हैं तो हमारे मरे और सुकोमल हाथ, हिलती कमर और घुँघराले लटकते बाल मानो हमसे आगे कहने दौडते हैं—'डरना मत मुए, यह तसवीर की तलवार है।"

(साहित्य देवता)

बेशक उस ज्वालायुग का साहित्यकार ऐसा ही नपुसक हो गया था।[१] गर्म उबलते हुए वर्तमान का सामना करने की आब उसमे न थी। वह या तो अतीत मे भागने लगा था या कल्पना-लोक मे। अपने विद्रोही समाज की चर्चा न करना उसे श्रेयस्कर प्रतीत होता था और वह मानवतावाद और विश्व-मैत्री की उच्चारणा अपनी कायरता को छुपाने के लिए अनिवार्य मानने लगा था। किसी ऐसी बात को जो शासक को नाराज़ कर दे, जो कारागार की यातनाएँ भोगने को विवश करे, जो हथकडियो की झकार सुनवाए, जो कल्पना-लोको से झटक-कर जमीन की गर्म रेत पर ला फेंके उस जमाने के साहित्य के एक बहुत लम्बे चौडे दायरे ने वर्जित अकथ्य और अश्रव्य मानने मे अपनी सुरक्षा समझी।

पर प्रश्न था कि वह अपनी कायरता को व्यक्त होने से कैसे रोके? बौद्धिक ऐयाशी ने सहारा दिया और वह चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा—"हम मानवता-वादी है, विश्व-मैत्री के गायक है, प्रकृति मे परमात्मा को देखने वाले है।" इसके बाद उसने कुछ और हिम्मत की तो और वह अतीत को पुकारने लगा। जागरण को आह्वान देने लगा, गरीबी के खिलाफ विद्रोही स्वर अलापने लगा मजा यह कि उसे समीक्षक भी मिल गए। इन निरापद साहित्यकारो की चर्चा करना उस युग के समीक्षको को निरापद कर्म प्रतीत हुआ। उन्होने नकाबपोशो के नकाबो की प्रशसा शुरू कर दी। उधर हिन्दी विषय के रूप मे विश्वविद्यालयो मे पढायी भी जाने लगी। निरापद साहित्यकारो और समीक्षको की बन आयी। विश्वविद्यालयो मे इनकी कविता की पुस्तक और उनकी समीक्षा की पुस्तक दोनो ही पाठ्यक्रम मे स्थान पाने लगी। क्या ठाट थे! ब्रिटिश जेल से बचे सो अलग, मानवतावादी साहित्यकार कहलाए सो अलग, पाठ्य-पुस्तको के रूप मे पढाये जाने लगे सो अलग और लक्ष्मी का छूम छननन नाच होने लगा सो अलग, और माखनलालजी? वह तो सैनिक साहित्यकार है, एक सैनिक के रूप मे यश प्राप्त कर चुके हैं, उन्हे साहित्यकार के रूप मे यश प्राप्त करने का क्या हक है? हिन्दी साहित्य मे पिछले अनेक दशको से चले आनेवाला यह भयानक षड्यत्र आजादी के बाद भी बरसो चलता रहा है और आज भी नही चल रहा ऐसा कहा नही जा सकता।

नि सन्देह यह झूठा षड्यत्र था। माखनलालजी का 'साहित्य देवता' ही नही, माखनलालजी की सैकडो कविताएँ इस षड्यत्र के विरुद्ध गवाही देने को आज भी उपस्थित है। काव्य की मूल-भूमि से माखनलालजी सदा ही सन्नद्ध रहे, उससे अलग होना उनके लिए सम्भव ही नही था। सन् १९२२ मे बिलासपुर जेल से छूटने के पूर्व माखनलालजी ने दो कविताएँ लिखी थी—'पुष्प की अभिलाषा'

---

१. यह दूसरी बात है कि आज़ादी के बाद वही साहित्यकार जवाहरलालजी की अभ्यर्थना मे जुट गया मानो वह आज़ादी के बाद पैदा हुआ हो।

और 'पर्वत की अभिलाषा'। 'पुष्प की अभिलाषा' कविता मे सभी परिचित है। 'पर्वत की अभिलाषा' कविता इस प्रकार है

तू चाहे हरि, मुझको सोने का मढा सुमेरू बनाना मत
तू चाहे मेरी गोद खोद कर मणि-माणिक प्रकटाना मत
तू मिट जाने तक भी मुझमे से ज्वालाएँ बरसाना मत
लावण्य-लाडिली वन-देवी का लीला-क्षेत्र बनाना मत
जगती-तल का मल धोने
भू हरी-हरी कर देने को,
गगा-जमनाएँ बहा सकूं
यह देना, देर लगाना मत

इस कविता का टटकापन आज भी ज्यो-का-त्यो कायम है। किन्तु मैं चाहता हूँ कि इन आसान पक्तियो पर तनिक और गम्भीर होकर विचार किया जाए। सन् १९२१ मे मखनलालजी को राजद्रोह के अपराध मे सजा मिली थी। वे बिलासपुर जेल मे रखे गये थे। उन दिनो की जेल और उसके कष्टो की आज तो कल्पना भी नही की जा सकती जिसमे माखनलालजी को तो सॉलीटरी जेल मे भी रहना पडा था। इसी जेलयात्रा मे माखनलालजी का स्वास्थ्य सदा-सदा के लिए खराब हो गया था। प्रश्न यह है कि ऐसे कठोर और अत्याचारी वातावरण मे भी माखनलालजी ये पक्तियाँ कैसे लिख सके .

जगती-तल का मल धोने
भू हरी-हरी कर देने को,
गगा-जमनाएँ बहा सकूं
यह देना, देर लगाना मत
तू चाहे हरि, मुझको
सोने का मढा सुमेरू बनाना मत।

जिस व्यक्ति की आत्मा शुद्ध काव्यात्मा हो वही ऐसी वैश्विक-चेतना से युक्त पक्तियाँ ऐसे विरोधी वातावरण मे लिख सकता है। कोई सैनिक यदि बहादुर होता तो भडक उठता, कायर होता तो दुम दबा लेता, ग्लानिमय होता तो आत्महत्या कर लेता। माखनलालजी शुद्ध कवि थे। इसीलिए कविता की प्रकृति-भूमि का वरण करने मे उन्हे कही कोई असुविधा नही हुई। राष्ट्रवाद उनके लिए अन्तर्राष्ट्र का विलोम नही था। राष्ट्रीय उत्कर्ष की चेतना ही उनके लिए अन्तर्राष्ट्रीय उत्कर्ष की चेतना थी या कहे कि जो चेतना अन्तर्राष्ट्रीय उत्कर्ष की विरोधिनी है वह मानवीय भूमिका पर राष्ट्रीय उत्कर्ष की भी विरोधिनी है ऐसी उनकी मान्यता थी। इस चेतना को मृत्यु-पर्यन्त वे अगीकार किए रहे। 'आजाद राष्ट्र ही आजाद राष्ट्रो का सम्मान कर सकता है' यह वे

भली-भाँति जानते थे। जो लोग अन्तर्राष्ट्रीयतावादी होने का दम भरते थे और राष्ट्रवादी होने मे नाक-भौ सिकोडते थे उनसे माखनलालजी का स्पष्ट मतभेद था। सन् १९४३ मे अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन मे अध्यक्ष पद से दिए गये अपने विचारोत्तेजक भाषण मे उन्होने कहा था

"साहित्य की दो धाराएँ है—मानता हूँ। एक नाश-नाशक धारा, दूसरी सृजनशील धारा। अपने कायर जीवन को हम यही कहकर तो सम्मानित रखते आए हैं कि सृजनशील युद्धशील न हो। किन्तु क्षेत्र भले ही भिन्न हो, सघर्ष उसी हद तक सृजन का आवश्यक अग है।"

माखनलालजी का दृढ विश्वास था कि सघर्ष की भूमि छोडकर साहित्य की भूमि सुरक्षित नही रखी जा सकती। उनके काव्य मे पायी जाने वाली विराट् समर्पणशीलता उनकी सघर्ष-चेतना का ही प्रकृत परिणाम है।

यही कारण था कि श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रेरणा से जब माखनलाजली ने कुछ साहित्यकारो के साथ २२ दिसम्बर, १९३२ को शान्ति-निकेतन मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर से भेट की तो उनसे उन्होने केवल एक ही प्रश्न पूछा —"हम सैनिको के लिये आपका क्या सदेश है?" रवीन्द्रनाथ ने उत्तर देते हुए कहा था—"मेरा श्री निकेतन ही आपके प्रश्न का उत्तर है ब्रिटिश शासन मेरे प्रति बहुत अन्यायशील रहा है क्योकि अपने विचारो को स्पष्ट अभिव्यक्ति देते रहने पर भी उसने मुझे कभी जेल नही भेजा है।"

रवीन्द्र का उत्तर माखनलालजी के दृष्टिकोण की सात्त्विक विजय का प्रतीक है। वे बडी कुशलता से माखनलालजी के सकेत को समझ गये थे। निश्चय ही माखनलालजो ने इस प्रश्न के द्वारा यही पूछना चाहा था कि हे विश्व-कवि, तुम्हारी विश्व-मैत्री के साथ हमारी जेल-यात्राओ मे कोई सामजस्य है अथवा नही है? और जब टैगोर कहते है कि "उन्हे जेल नही भेजकर अन्याय किया जा रहा है," तो वे माखनलालजी को एक बहुत बडा सर्टिफिकेट प्रदान करते हैं।

समय के साथ माखनलालजी की आवाज़ ही सही आवाज मानी जाने लगी। पराधीनता से मुक्त होने के बाद यह अच्छी तरह समझा जाने लगा कि आजाद राष्ट्र की भूमि वही है जो पराधीन भारत मे माखनलालजी की भूमि थी। सच यह है कि माखनलालजी ने अपने-आपको कभी पराधीन अनुभव नही किया था, वह स्वतन्त्र होना या न होना अपनी ही आत्मा का धर्म मानते थे। (ठीक वैसे ही जैसे हिन्दी का राष्ट्रभाषा होना या न होना वह भारत सरकार का उत्तरदायित्व नही मानते थे।) माखनलालजी की देह जितनी कमजोर और अस्वस्थ थी उतनी ही तेजस्विनी और सशक्त उनकी आत्मा थी। इसी से वे कहते थे

मरण और सपनो मे होती है
मेरे घर होडा-होड़ी

किसकी यह मरजी नामरजी
किसकी यह कौडी दो कौडी

और यही कारण था कि अपना अस्तित्व इस विराट् कैनवेस पर वे आजीवन अकित करते रहे

देह ? प्रिय यहाँ कहाँ परवाह
टँगे शूली पर चर्म-क्षेत्र
गेह ? छोटा-सा हो तो कहूँ
विश्व का प्यारा धर्म-क्षेत्र

अथवा

है नील चदोवा तना कि झूमर झालर उसमे चमक रहे
क्यो घर की याद दिलाते हो जब सारा रैन बसेरा है
जब चाँद मुझे नहलाता है, सूरज रोशनी पिन्हाता है
क्यो दीपक लेकर कहते हो,
यह तेरा है, यह मेरा है ?
क्या कहा कि यह घर मेरा है ?

माखनलाल चतुर्वेदी का काव्य-वैभव

◇ ◇

बैजनाथसिह 'विनोद'

श्री माखनलाल चतुर्वेदी को राष्ट्रीय भावधारा का प्रमुख कवि कहा जाता है। किन्तु, यह राष्ट्रीय भावधारा क्या है—इस प्रश्न का उत्तर दिए बिना आगे नही बढा जा सकता।

भारतीय इतिहास मे सन् १८५७ का सिपाही-विद्रोह एक महत्त्वपूर्ण सीमा है। इस विद्रोह के बाद ही भारतवर्ष मे औद्योगिक विकास की सम्भावनाएँ हो सकी, राजनीतिक दृष्टि से देश एक सूत्र मे बध सका और राष्ट्रीय भावना का जन्म हुआ। उक्त विद्रोह हमारी राष्ट्रीय चेतना का परिणाम नही था। वहाँ से हमारी राष्ट्रीय चेतना का आरम्भ होता है।

हमारी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति सन् १८८५ से शुरू होती है। इसी समय काग्रेस का जन्म हुआ, इसी के आसपास क्रान्तिकारी आन्दोलन का सगठन हुआ। १९०३ से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' का सपादन अपने हाथ मे लिया। उस समय उनकी एक कविता 'सरस्वती' मे छपी, जिसकी दो पक्तियाँ इस प्रकार हैं :

स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार कीजे,
विनय इतना हमारा मान लीजे।
शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो,
न जाओ पास, उससे दूर भागो॥

श्री श्रीधर पाठक ने देश-वन्दना की। और भी कवियो ने राष्ट्रीय भावना-पूर्ण कविताएँ लिखी। किन्तु, इन सब पर किसी राजनीतिक मत का प्रभाव नही था और बिना राजनीतिक मत के राष्ट्रीय भावना दृढ नही हो सकती। यही कारण है कि अनेक विचारको को इन सब कवियो मे दृढ राष्ट्रीय भावना का उन्मेष नजर नही आता।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्रीय भावना के कवि है। सन् १९०५

के बगभग-आन्दोलन के वह एक नायक भी थे। उनमें राजनीतिक विचारधारा का भी परिपाक था। हिन्दी मे ऐसे सर्वप्रथम कवि, जिनका राजनीति मे सीधा सम्बन्ध भी हो, और जो कवि भी हो, इस काल मे श्री माखनलाल चतुर्वेदी हैं। चतुर्वेदीजी स्वर्गीय श्री माधवराव सप्रे को अपना राजनीतिक गुरु मानते हैं। सप्रेजी लोकमान्य तिलक के शिष्य थे। उन्होने 'गीतारहस्य' का हिन्दी अनुवाद भी किया था। जिन दिनो सप्रे जी नागपुर मे 'हिन्दी केसरी' निकाल रहे थे, उन दिनो चतुर्वेदीजी एक मामूली स्कूल में मास्टर थे। सप्रेजी ने 'हिन्दी केसरी' मे स्वदेशी आन्दोलन और बायकाट पर एक लेख-प्रतियोगिता का आह्वान किया। इसमे चतुर्वेदीजी सर्वप्रथम आए। यह घटना सम्भवत १९०९-१० की है। इससे सिद्ध होता है कि चतुर्वेदीजी तिलक स्कूल के राजनीतिज्ञ हैं। तिलक, हिंसा-अहिंसा के विवाद मे न पडते हुए, किसी भी साधन से पूर्ण स्वराज्य पाने के पक्षपाती थे। चतुर्वेदीजी की श्रद्धा भी क्रान्तिकारियो का अभिनन्दन करती है। अतः स्पष्ट है कि श्री माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी के सर्वप्रथम ऐसे राष्ट्रीय कवि हैं, जिनका राजनीति से सीधा सम्पर्क था और जिन्होने आत्मानुभूति की प्रेरणा से राष्ट्रीय कविताओ का गान किया है।

राष्ट्रीयता समष्टिमूलक भाव है, अत' राष्ट्रीय कविता मे व्यक्तिनिष्ठता नही होती। समस्त देशवासियो के प्रति निष्ठा के कारण राष्ट्रीय कविता अपने आप मे समष्टिपरक बन जाती है। देश के प्रति प्रेम के कारण देश की सस्कृति के प्रति अनुराग का भाव पैदा होता है। देशप्रेम का अर्थ होता है देशवासियो की सेवा, उनके हित और सुख के लिए अपने को उत्सर्ग करना। इसके दो छोर होते हैं—राष्ट्रीय शक्ति के विकास का उद्योग और विदेशी शत्रु-शक्ति के विनाश का प्रयत्न। इन दोनो के लिए उत्साह की अनिवार्य आवश्यकता होती है। अतः समष्टिमूलक, निर्माण और विनाश के लिए प्रस्तुत, राजनीतिपरक उत्साह राष्ट्रीय कविता की जान है।

भारतीय राष्ट्रीयता के मूल मे ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज और लोकमान्य तिलक की चिताधारा का प्रमुख हाथ है। अत. भारतीय सस्कृति की इसमे प्रधानता है। राष्ट्रीयता प्राचीन के प्रति गहरी आस्था के बिना टिक ही नही सकती। अतः, प्राचीन लोकनायको का गौरव-गान, अपनी सस्कृति के प्रति अभिमान राष्ट्रीय भाव के आवश्यक अग-सचारी हैं।

कविता के मूल ही मे राग है। बिना राग के चाहे वह विराग का ही राग हो, कविता का निर्माण असम्भव है। राष्ट्रीय कविता का अर्थ है देश के प्रति रागात्मक सम्बन्ध को दृढ़ करने वाली प्रेरक और सक्रामक भावना। भाव रूप लेना चाहेगा ही। अत' राष्ट्रीय कविता मे देश का मानवीकरण भी हो जाता है—जैसे भारतमाता। राष्ट्रीय कविता एक नूतन भावधारा है। अत' इसमे नए-नए प्रतीको

का निर्माण होता है। अलकारो मे नए-नए रंग चमकते है। इस प्रकार राष्ट्रीय कविता का मूल भाव उत्साह अपने अनुकुल नए-नए रूपको की सृष्टि करता है। किन्तु, राष्ट्रीयता के साथ सक्रिय राजनीति का योग होने पर ही अनुभूति की शक्ति कविता मे पैदा होती है। देश-सेवा के प्रति अडिग उत्साह के लिए श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने जैसा रूप-विधान किया है, जैसी लाक्षणिक और साकेतिक व्यजना की है—'दो हथेली है कि पृथ्वी गोल कर दे'—वह अपने ढग की अनोखी भी है और अपूर्व भी। मजा तो यह है कि उन भावो के आवेदन को भावुको ने उसी अपूर्व भाव से लिया भी है। उदाहरण के लिए 'पुष्प की अभिलाषा' नामक कविता को ले सकते है। मैंने काकोरी के वीरो के मुख से भी इस कविता को सुना है और सरदार भगतसिंह को भी इसे गुनगुनाते सुना है वह कविता यह है

चाह नही, मैं सुर-बाला के गहनो मे गूँथा जाऊँ।
चाह नही, प्रेमी-माला मे बिंध प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नही, सम्राटो के शव पर, हे हरि, डाला जाऊँ।
चाह नही, देवो के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड लेना, बनमाली, उस पथ मे तू देना फेक,
मातृभूमि पर शीश चढाने जिस पथ जावे वीर अनेक।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओ और छायावादी कविताओ मे बहुत अन्तर पाया जाता है। छायावादी कविताओ मे किसी सीमा तक व्यक्तिनिष्ठ अतर्मुखता है। चतुर्वेदीजी का आराध्य देश है, अत. व्यक्तिनिष्ठता मे उद्भूत अतर्मुखता तो उनमे नही है किन्तु देश के प्रति रति-भावना वैसी ही है। उनकी यह रति (प्रेम)-भावना उपासना की भूमि पर है। वह मातृभूमि के उपासक और उसके अनन्य प्रेमी भी है। इसलिए, उनकी पदावली तत्सम-प्रधान नही है। वह व्यावहारिक है। चतुर्वेदीजी छायावादियो के नजदीक हैं। उनकी कविताओ मे इतिवृत्तात्मकता बहुत कम है, व्यग्य और व्यजना बहुत है। इसलिए श्री माखनलाल चतुर्वेदी को छायावाद की राष्ट्रीय भावधारा का कवि कहा जा सकता है। अपने देश-प्रेम को उन्होने श्रृगार की भगिमा के द्वारा भी अभिव्यक्ति प्रदान की है, पर उसमे वासना का अत्यन्त अभाव है। अत किसी निश्चित शास्त्रीय रस के अतर्गत इसका समावेश नही किया जा सकता।

उत्साह स्थायी भाव होने के कारण चतुर्वेदीजी की बहुत-सी कविताओ मे वीर-रस की अपूर्व व्यजना होती है। अपनी इष्ट-सिद्धि के प्रति श्रृगारी अभिव्यक्ति के कारण उनकी कुछ कविताओ मे श्रृगार का पुट भी है। किन्त, इन सबसे अलग ऐसी भी कविताएँ चतुर्वेदीजी की है, जिनमे एक साथ श्रृगार और वीर-रस का धूप-छाही ताना-बाना बुन दिया गया है। 'कैदी और कोकिला',

'मरण-त्योहार', 'सिपाही', 'विद्रोही', 'नाश का त्योहार' आदि कविताएं वीर-रस से ओत-प्रोत हैं।

अरिमुडो का दान, रक्त-तर्पण-भर का अभिमान।
लडने तक महमान, एक पूंजी है तीर-कमान।
मुझे भूलने मे सुख पाती, जग की काली स्याही।
बधन दूर, कठिन सौदा है, मै हूँ एक सिपाही।

उसे अपनी एकमात्र पूंजी तीर-कमान पर भरोसा है और वह जानता है कि जमाना उसे भूल जायगा, फिर भी उसे अपने कर्तव्य के प्रति आस्था है। यही नही, उसकी दृढता वहाँ गजब की हो जाती है, जहाँ वह किसी भी दशा मे पराजय स्वीकार करने को तैयार नही है। वह अकडकर कहता है

उथल-पुथल-सी करे जहाँ तक वायु, बनी दीवानी।
और जहाँ तक वार कर सके सीधा नभ का पानी।
जहाँ तलक सूरज की किरनें जला सकें मनमानी।
जहाँ भूमि हो ऋतु की निर्दयता की अकथ कहानी।
वहाँ लखो अपना लहराना, हरियाना, मुसकाना।
विद्रोही सीखे विनाश पर नित सौभाग्य बसाना।
ग्रह झुकते, तारागण झुकते, सब झुकते जिस ओर।
विद्रोही—हम, अजमाते उस भू पर अपना जोर।

चतुर्वेदीजी की शृगार गीत-शैली देखकर यह धारणा बनती है कि कवि अतस् से भावुक शृंगारी कवि है और उसने अपने लौकिक प्रेम को राष्ट्रप्रेम की ओर उसी प्रकार मोड दिया है, जैसे महादेवीजी ने अपने प्रेम को पारलौकिक भूमि की ओर। चतुर्वेदीजी की कुछ कविताओं मे कृष्णभक्त कवियो की परम्परा का प्रभाव भी दिखाई पड जाता है। पर, न तो यह युग भक्ति का है और न चतुर्वेदी-जी मध्यकालीन भक्त हैं। उनकी कविताओ मे जहाँ कही भी मोहन, कृष्ण अथवा बनमाली शब्द आया है, वह सब राष्ट्र-देवता के प्रतीक के रूप मे है। लोकमान्य और महात्मा गाधी के लिए भी उन्होने इन प्रतीको का प्रयोग किया है। आँसू पर अनेक लोगो ने कविताएँ की हैं। किन्तु, चतुर्वेदीजी का 'आँसू' भी राष्ट्रीय है—वह भी राष्ट्र के लिए ही है

कहती हो क्या, आर्य-भूमि की श्री गोपाल लाज राखे ?
तब तक दम मत लो, जब तक हैं मेरी अश्रु-भरी आँखे ?

० ०

श्री स्वतत्रता की वेदी पर प्राण-पुष्ट होकर निश्चल,
देख, चढा, पूजा-हित लायी नयनों की गगा का जल ?

० ०

कच्ची मिट्टी का पुतला हूँ, दे दो नयनो की जलधार,
पक बनाती हो ? करती हो क्या माँ का मन्दिर तैयार ?

अपने प्रिय के लिए आत्मसमर्पण की अपूर्व भावना चतुर्वेदीजी की प्रेम-व्यजक कविताओ मे है। अपनी आत्मा पर कलिका का आरोप कर के कवि ने 'हिमकिरीटिनी' नामक कविता मे आत्मसमर्पण की अपूर्व व्यजना की है। इसमे एक ओर अदम्य उत्साह और दूसरी ओर प्रेम के पवित्र वातावरण की झाँकी है

जब सिपाही उठे, सेनानी उठे ललकार,
मातृ-बंधन-मुक्ति का जिस दिन मने त्यौहार,
जबकि जनपथ लाल हो, हो किसी की तलवार,
आएगा सिर काटने उस दिवस मालाकार,
करेगा हुँकार, "कलियाँ बन्द, हो तैयार,
सूजियो से छेदने मे आज उनकी बार!"
यह मधुर बलि, हो विजय का मोल,
मानिनी, तब तक हृदय मत खोल,
हिमकिरीटिनि की परम उपहार,
री सजनि, वनराजि की शृगार।

चतुर्वेदीजी के काव्य मे, भारतीय पद्धति का अलकार-शास्त्री रस-व्यजना न मानकर, केवल भाव-व्यजना मानेगा। ऊपर से देखने पर उनके काव्य मे वीर रस की प्रधानता मालूम होती है। किन्तु ध्यान से देखने पर उसमे अधिक व्यजना रति-भाव की होती दिखाई पडती है। परन्तु शृ गार रस भी वही होता है, जहाँ शुद्ध लौकिक और उभयनिष्ठ शृगार हो—मन्मथोद्भेद की भावना हो। अनुभय-निष्ठता, 'रति' भाव के आलबन विभाव का अरूपधारी होना या अन्य रस (शान्त आदि) का शृगारभगी से वर्णन करना शृगार रस नही है। ऐसी स्थिति सिर्फ चतुर्वेदीजी ही के काव्य की नही है, छायावादी कवियो मे अनेक की यही स्थिति है।

आधुनिक युग मे अलकार के लिए अलंकार का प्रयोग अस्वाभाविकता-दोष के अन्दर माना जाता है। किन्तु, आज भी अलकार को काव्य-वैभव तो माना ही जाता है। चतुर्वेदीजी के काव्य मे अलकारो का प्रयोग न केवल स्वाभाविक ही है, बल्कि अनूठा भी है। अलकारो की योजना उनकी शैली मे निहित है। शब्दालकारो का प्रयोग उनमे अधिक नही है, पर कही-कही श्लेष का प्रयोग अवश्य मिल जाता है, जैसे

तू मित्र,' प्रमत्त करो से ग्रीष्म मे प्राण सुखाता,
पर, उसका स्वागत गाकर किरनो पर अर्घ्य चढाता। (झरना)

यहाँ 'मित्र' शब्द का 'सखा' तथा 'सूर्य' दोनो अर्थों मे प्रयोग है। उपमा अलकार का प्रयोग अच्छा-खासा हुआ है। पर, उसमे स्वभाविकता भी गजब की है। होठो के लिए बिजली की उपमा एकदम अछूती है। इस उपमा के द्वारा होठो की दीप्तिमत्ता तथा चचलता दोनो की व्यजना कराई गई है।

कोमल रवि-किरणें आती है, वे मुझे ढूंढती घूम-घूम।
अपने बिजली-से ओठो से मेरा मुँह लेती चूम-चूम॥

रूपक-अलकार की योजना भी चतुर्वेदीजी की अनेक कविताओ मे मिलती हैं। देखिए, यहा नाद, प्रसन्नता (मोद) आदि पर प्यालियो, सुरा आदि का आरोप किया गया है

नाद की प्यालियो, मोद की ले सुरा.
गीत के तार-तारो उठी, छा गई,
प्राण के बाग मे प्रीति की पखिनी,
बोल बोली सलोने कि मैं आ गई।

(हिमतरगिनी)

अतिशयोक्ति का एक दूसरा प्रयोग देखिए। यहाँ तारो पर मणियो का अध्यवसान पाया जाता है

चिडियाँ चहकी, तारो की---
समाधि पर नभ चीत्कार तुम्हारी
आँख-मिचौनी मे राका-रानी
ने अपनी मणियाँ हारी। (हिमतरगिनी)

अप्रस्तुत प्रशसा का प्रयोग 'हिमतरगिनी' शीर्षक कविता मे मिलता है, जहाँ कलिका (अप्रस्तुत) के वर्णन द्वारा कवि की आत्मा (प्रस्तुत) की व्यजना पायी जाती है। आत्मसमर्पण के प्रसग मे उसका उदाहरण दिया जा चुका है। साधर्म्यमूलक प्रमुख अलकारो का चतुर्वेदीजी की कविताओ मे अच्छा प्रयोग मिलता है। तुल्ययोगिता की भी अच्छी छटा है। एक उदाहरण लीजिए :

काली तू, रजनी भी काली,
शासन की करनी भी काली।
काली लहर, कल्पना काली,
मेरी काल-कोठरी काली।
टोपी काली, कमली काली,
मेरी लोह-शृखला काली।
पहरे की हुकृति की व्याली,
तिस पर है गाली, ऐ आली।

इस कविता मे आगे चलकर व्यतिरेक का भी प्रयोग मिलता है

तुझे मिली हरियाली डाली,
मुझे नसीब कोठरी काली,
तेरा नभ भर मे सचार,
मेरा दस फुट का ससार,
तेरे गीत कहावे वाह,
रोना भी है मुझे गुनाह ॥
('कैदी और कोकिला')

इस प्रकार चतुर्वेदीजी की कविताओ मे सर्वत्र काव्य-सपदा बिखरी पड़ी है। उसमे राजनीति का अटपटापन ही नही है, नूतन सौदर्य का आलोक भी है। कही भी ऐसा नही है कि अलकारो के लिए उन्होने कुछ लिखा है। सभी अलकारो मे गजब की स्वाभाविकता है। अटूट साहस, देश के लिए बलिदान की भावना और वीर-दर्प उनके रस और अलकारो मे भी है।

यहाँ एक बात का उल्लेख और आवश्यक है। चतुर्वेदीजी की सम्पूर्ण कविताओ मे, उनकी राष्ट्रीय भावनाओ मे एक किस्म का सूक्ष्म सघर्ष है और वह संघर्ष है शासन-सत्ता पर हावी होने की इच्छा मे और एकमात्र अपने को उत्सर्ग कर देने वाली भावना मे। अन्त मे दूसरी भावना ही बलवती होती है। शासन-सत्ता पर हावी होने के लिए जिस राजनीतिक सगठन-शक्ति की आवश्यकता होती है। उससे कविता का मेल नही बैठता। उत्सर्ग की भावना से कविता का मेल है अत चतुर्वेदीजी मे उत्सर्ग-भावना बलवती हो गई है। इस प्रकार चतुर्वेदीजी की कविता मे त्यागमूलक राष्ट्रीयता का विकास दिखाई पड़ता है। 'दो साधे' नामक कविता मे, बडे मजे मे, चतुर्वेदीजी कहते है

एक ले चली चहल-पहल मे
मुझे बनाने राजा,
और दूसरी ने निर्जन का
सुन्दर कोना साजा।
बल पर ? बलि पर ? कहाँ रहूँ ?
किससे अपना हृदय कहूँ ?

किन्तु चतुर्वेदीजी ने बल का—शक्ति-सत्ता हथियाने का—पथ नही अपनाया। उन्हे बलि का पथ ही प्यारा है। इसे उन्होने बड़े स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त कर दिया है :

सूली का पथ ही सीखा हूँ,
सुविधा सदा बचाता आया।
मैं बलि-पथ का अंगारा हूँ,
जीवन-ज्वाल जलाता आया।

मैं पहला पत्थर मन्दिर का,
अनजाना पथ जान रहा हूँ।
गड़ूं नीव मे, अपने कधो पर,
मन्दिर अनुमान रहा हूँ।

('अमर राष्ट्र')

मै गरीब क्या जानूँ उतना,
बदल-बदल चमकीला होना।
मेरे अक अमिट होते हैं,
बेकाबू हैं जिनका धोना।
अपनी कोमल अगुलियो से,
मेरी निष्ठुरता न लजाओ,
मन्दिर की मूरत मे गढकर,
मत मेरा उपहास सजाओ।

चतुर्वेदीजी बलिपथी थे। उनकी कविताओ मे राष्ट्र के लिए अपने-आपको उत्सर्ग कर देने की भावना है। वह सघर्षरत राष्ट्र के राष्ट्रीय कवि रहे। अत उनकी कविताओ मे सघर्ष का स्वर ही प्रधान है। उनके जीवन और काव्य मे अपूर्व सामजस्य है। दोनो मे अपने आदर्श के प्रति अपूर्व निष्ठा है।

सैनिक कवि : माखनलाल चतुर्वेदी[1]

◇ ◇

मजु सिन्हा

'सैनिक' शब्द वास्तव मे, युद्धक्षेत्र मे शत्रु का सामना करने वाले और अन्तिम साँस तक मोर्चे पर डटे रहने वाले व्यक्ति के लिए रूढ हो चुका है। पर सकट के समय सम्पूर्ण देश एक सशक्त मोर्चा बन जाता है जिसकी रक्षा करने के लिए प्रत्येक देशवासी प्राणपण से लडने के लिए तत्पर रहता है। ऐसी स्थिति मे कवि जो युग का गायक है, मोर्चे पर लडते किसी सैनिक से कम नही है क्योकि देश मे जागरण, उत्साह और दुश्मन की तोपो का मुँह फेरने के लिए आह्वान करने का भी कवि पर दायित्व आच्छादित हो जाता है।

माखनलालजी का व्यक्तित्व क्रान्तियो और सीखचो मे ढला है। सत्रह वर्ष की आयु मे खण्डवा के बाम्बे बाजार मे सह-अध्यापक के स्थान पर नियुक्ति के समय उन्होने प्रधानाचार्य से कहा था, "देख लीजिए, मेरी जेबो मे हर समय कारतूस भरी रहती है और क्रान्तिकारियो से मेरा सम्बन्ध है।" वे अनेक बार जेल गए है, जेल जाना ही उनका एकमात्र श्रेय नही है अपितु स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक उनकी लेखनी ने जिन अग्नि-छन्दो का निर्माण किया है वे साहित्य की अमूल्य निधि हैं। स्वतन्त्रता की प्राप्ति पर भी यह कर्तव्य समाप्त नही हुआ अपितु और बढ गया क्योकि स्वतन्त्र देश के विकास के लिए जनता मे सामूहिक चेतना जगाना, देश को इकाई समझने की प्रेरणा देना आदि कवि के अनेक कर्तव्य शेष रह जाते है।

राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता के महान् स्रष्टा होने के साथ ही, माखनलालजी स्वतन्त्रता सग्राम के जबर्दस्त सेनानी रहे हैं, अतः उनके काव्य मे जहाँ भावना की गहराई है वही अनुभूति की तीव्रता भी है।

---

१ लेखिका के एम० ए० के प्रबन्ध का एक अध्याय।

माखनलालजी काग्रेस के सजग कार्यकर्ता रहे हैं, राजनीतिक परिवर्तनो और समय-समय पर लादे गए एक्टस् के प्रति आक्रोश उनकी रचनाओ मे प्राप्त हो जाता है। प्रथम विश्वयुद्ध मे भारतीयो की सहायता प्राप्त करने के लिए अंग्रेजो ने सात्वना दी थी कि उनके कष्टो को दूर किया जाएगा, किन्तु विजय के उपरान्त सब ओर से विरोध होते हुए भी सन् १९१८ मे रौलेट एक्ट स्वीकृत किया गया। इसके द्वारा सरकार को अधिकार प्राप्त हुए कि वह लोकप्रिय अधिकारो को कुचल दे, बिना वारण्ट के सदिग्ध व्यक्तियो को बन्दी बनाए और बिना नियमित मुकदमे के जेल भेज दे। गाधीजी ने शस्त्रो का प्रयोग वर्जित किया था और अप्रैल, सन् १९१९ मे जलियाँवाला बाग मे हत्याकाण्ड भी हो चुका था। ऐसे मे समस्त देश को तिलक की ही नीति का आश्रय था

'हथियार न लो' की हथकडियाँ
'रौलट' का हिय मे घाव लिए,
डायर से अपने लाल कटा,
कहती थी, आँचल लाल किए,
ये टूट पडेगे, ज़रा, केसरी,
कम्पित, कर हुँकार उठे,
हाँ, आन्दोलन के धन्वा को,
तू कर मे ले टकार उठे॥

समय-समय पर देश को हिला देने वाली घटनाओ का माखनलालजी ने हृदयग्राही वर्णन किया है। जलियाँवाला बाग को बलिदान की वेदी के रूप मे स्मरण किया जाता है। निरपराध सत्याग्रहियो को भून देने मे भला कौन-सा न्याय था?

नही लिया हथियार हाथ मे, नही किया कोई प्रतिकार
अत्याचार न होने देगे, बस इतनी ही थी मनुहार,
सत्याग्रह के सैनिक थे ये, सब सहकर, रहकर उपवास,
वास बन्दियो मे स्वीकृत था, हृदय-देश पर था विश्वास
मुरझा तन था, निश्चल मन था
जीवन ही केवल धन था,
मुसलमान-हिन्दूपन छोडा,
बस निर्मल अपनापन था।

सन् १९१७ मे श्री माटेग्यू ने घोषणा की कि "ब्रिटिश सम्राट् की नीति जिससे भारत सरकार पूर्ण रूप से सहमत है, यह है कि प्रशासन के प्रत्येक विभाग मे भारतीयो के सम्बन्ध अधिक बढे और स्वशासन करने वाली सस्थाओं का क्रमिक विकास इस दृष्टि से हो कि भारत उत्तरदायी शासन की प्रगतिपूर्ण प्राप्ति

करे। उन्होने (सम्राट् ने) निश्चय कर लिया है कि इस सम्बन्ध मे शीघ्रातिशीघ्र क्रियात्मक पग उठाए जाएँ।''

इस वक्तव्य से देश मे सतोष हुआ था। माखनलालजी के अनुसार यह वक्तव्य परमपुण्य का पुँज था, अमृत बरसाने वाला था .

स्वर्ग सुधा के द्वार सदा को खुलते ही है।
हम-तुम विधि की वीर तुला पर तुलते ही हैं।।
बस सुनते ही सन्देश यह हम लगे साधने साधना
शिव के समेत करने लगे श्री शक्ति चरण आराधना।।

और जब गाधीजी अपना दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह-सग्राम चला रहे थे तब भारतवासियो के हृदय मे कैसे-कैसे भाव थे यह माखनलालजी की कविता से ज्ञात हो जाता है। 'सिडीशस मीटिंग्ज एक्ट' द्वारा सरकार ने राजद्रोही सभाएँ बन्द करवा दी थी। ये सभाएँ राजद्रोही इस अर्थ मे थी कि इनमे अपना विरोध प्रकट करने को अनगिनत लोग दृढता से एकत्र हो जाते थे। जागृति की यह लहर अग्रेजी सत्ता के लिए हानिकारक थी

क्यो पडी परतत्रता की बेडियाँ ?
दासता की हाथ हथकडियाँ पडी
न्याय के मुँहबन्द, फाँसी के लिए—
कण्ठ पर जजीर की लडियाँ पडी।

अग्रेजो की नीतियो के विरोध के अतिरिक्त सामयिक दुर्दशा की प्रतिक्रियाएँ भी चतुर्वेदीजी की अनेक कविताओ मे व्यक्त है। देश के उद्धार के लिए जब अन्य कोई मार्ग नही सूझता उस समय ईश्वर से प्रार्थना करना ही शेष रह जाता है

पधारो दसो दिशा मे नाथ हुआ आर्यों का रथ-पथ बन्द,
पधारो, रघुकुल की वो शान, जिलावो दिखलाकर स्वच्छन्द।

देश भर मे कैकेयी-कलह मचा है। देवता कारागार मे चक्की पीस रहे है, गोवश नष्ट हो रहे हैं और जग-सहारक पोसे जा रहे है। देश की दयनीय दशा है

आ पुकार हुई सभा मे दिग्वसना के चीर,
आ सब कुछ खोने वाले के, जीवनसाथी धीर।
आर्य-कीर्ति का स्तम्भ अयोध्या मे अब गड जाने दे,
रामराज्य का झण्डा, नभ से पुन· रगड जाने दे।

देश के लिए जातीयता को भुलाकर, एक हो गए हिन्दू-मुसलमानो को जेल जाने के लिए उत्तेजित करते हुए कवि के शब्द है·

ब्रिटिश निशानो पर
विपदा के बाणो पर

मेरे प्यारे प्राणो पर
खेल चल भाई।
जेल चल, जेल चल, जेल चल, भाई।

और आह्वान स्वीकार किए जाने पर कैदी की भावनाएँ इन शब्दो मे व्यक्त है·

क्या ? देख न सकती जजीरो का गहना ?
हथकडियाँ क्यो ? यह ब्रिटिश राज्य का गहना
हूँ मोट खीचता लगा पेट पर जूआ
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड का कूआ

देश-प्रेम के पौधे को सीचने के लिए तमाम भारतवासी कए हो गए थे। देश के लिए अपना सर्वस्व त्यागने को जनता प्रस्तुत थी, पहले देश की इज्जत, उसके बाद कुछ और—

हिन्दमाता की दोनो आँख
नाक को रख कर बीचो-बीच
अश्रु की उज्ज्वल धारा छोड
प्रेम का पौधा देवें सीच।

कारागार मे बन्द कवि का 'दस फीट की कोठरी' ही ससार है। किन्तु वह इसमे सन्तुष्ट है क्योकि आने वाली सुबह से उसे बहुत आशाएँ हैं—काली सदियो के सिर से ढलकने वाली रात, पिघलते दुख के बादल और छलकने वाले सुख के सागर—उसे सबसे आशाएँ है—स्वतन्त्र राष्ट्र की, उन्मुक्त श्वास लेने वाली जनता की, और विकास की ओर बढते चरणो की।

दो शताब्दियो से अंग्रेजी सत्ता के काले शासन मे जकडे हुए पराधीन भारतीयो का स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए व्यग्र हो उठना स्वभाविक था। बच्चा-बच्चा देश के लिए बलि होने के लिए तत्परा और देश के कण-कण से फूटता हुआ बलिदान का स्वर माखनलालजी की प्रसिद्ध कविता 'पुष्प की अभिलाषा' मे मुखरित होता है·

मुझे तोड लेना बनमाली !
उस पथ मे देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।

'हरियालेपन की साध' और 'पर्वत की अभिलाषा' आदि कविताओ मे प्रकृति के कण-कण मे सुलगती विद्रोह की ज्वाला दृष्टिगत हो जाती है।

अग्रेजी राज्य मे देश के लिए जेल जाना तीर्थ-यात्रा से कम पुण्यशाली नहीं था। वहाँ की शारीरिक यातनाएँ उपास्य को प्रसन्न करने के लिए किए गए व्रत-पूजन

के समान ही थी .

नाम ही को पाता हूँ बिलासपुर वासियो मे
मैं तो तीर्थराज इन सीखचो मे पाता हूँ।

फिरगियो के अन्याचारो से पीडित जनता को माखनलालजी उन्ही मथुरा-वासियो के समान मानते है जो कस के नाम से काँप उठते थे। बीसवी शती के पूर्वार्द्ध मे समस्त देश मानो प्रत्यक्ष मथुरा हो गया था जिसके त्राण के लिए कृष्ण का अवतरण आवश्यक था :

अरे ! कस के बन्दीगृह की,
उन्मादक किलकार,
तीस करोड बन्दियो का भी,
खुल जाने दे द्वार।

अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान होते ही जब भारतीयो मे रण-ज्वार जाग उठा तब युगधनी के समान प्रहार सहते हुए भी खडे रह सकने की शक्ति उनमे आ गई थी। एक होकर सब विरोधी सत्ता के विरुद्ध खडे हो गए थे, प्राण त्यागना शगल हो गया था

फिरगी से बढकर के रगीन थे हम
फकत प्राण देने के शौकीन थे हम !

स्वतन्त्रता के सिपाही के लिए जीवनेच्छा और सम्मान की कामना का आकर्षण नही है। देश के लिए अपना रक्त देने का अभिमान भर उसकी पूँजी है, वह केवल लडने तक जीवित रहना चाहता है

अरिमुडो का दान
रक्त तर्पण भर का अभिमान,
लडने तक महमान,
एक पूंजी है तीर कमान।

देश की नारियाँ भी रज़िया सुल्ताना और लक्ष्मीबाई की परम्परा को आगे बढाने को तत्पर है। अपने सोए हुए सुहाग को आँखो मे उतर आने को वे कहती हैं जिससे बिना तीसरे नेत्र के त्रिनेत्र की प्रणय-ज्वाला उनमे सुलग उठे। सगर मे वे भी जाने को प्रस्तुत हैं :

चूडियाँ बहुत हुई कलाइयो पर
प्यारे, भुजदण्ड सजा दो,
तीरकमानो से सिंगार दो,
ज़रा जिरह-बख्तर पहना दो।

जवानी का आह्वान करते हुए माखनलालजी कहते हैं

पहन ले नरमुंड-माला,
उठ, स्वमुंड सुमेरु कर ले,
भूमि-सा तू पहन बाना ग्राज धानी,
प्राण तेरे साथ हैं, उठ री जवानी !

वास्तव मे वह जवानी भी क्या जो सकट मे हार बैठे। वह जवानी क्या जिसकी नसो मे रक्त नही पानी बहता हो ! जवानी वही है जो अपना बलिदान दे सके :

रक्त है ? या है नसो मे क्षुद्र पानी !
जाँच कर, तू सीस दे—देकर जवानी !

बलिपथी को सब कष्ट सहने के लिए तत्पर रहना चाहिए। स्वय को इतना दृढ बनाना चाहिए कि उसे सब कष्ट फूल लगे और उसमे इतना उत्साह हो कि वह आकाश को ओढन समझ सके और भूमि को बिस्तर के रूप मे ग्रहण कर सके :

भूखड बिछा, आकाश ओढ
नयनोदक ले, मोदक प्रहार,
ब्रह्माण्ड हथेली पर उछाल,
अपने जीवन-धन को निहार।

उसके लिए बन्धनो मे भी सुख है। हथकडियो और बेडियो मे उसे परितोष मिलता है और जो आदर भाव उसके हृदय मे देश की जय बोलने मे जागृत होता है वही इन बन्धनो के लिए भी है। विरोधियो के मन मे मानवता की भावना जगाने के लिए अपने पर किया गया हर प्रकार का अत्याचार उसे स्वीकार है .

माता मेरे बधिको का
कालीमर्दन कल्याण करे
किसी समय उनके हृदयो मे
मानवता के भाव भरें।

स्वतन्त्रता-सग्राम के सेनानी को किसी प्रकार के आश्वासनो और किसी सहायता की आवश्यकता नही है। एक बार घर से निकलकर पुन. लक्ष्य-प्राप्ति के बिना लौटना उसे नही आता, मुडकर देखना उसका काम नही है .

लहरें चीर अदृश्य तीर का,
आँका आज मुकाम,
मैं तो घर से निकल पडा हूँ,
अब तट से क्या काम ?

देश की पराधीनता से विचलित न होने वालो, भोग को ही जीवन समझने वालो को वे अपने घर मे आग लगा देने का सन्देश देते हैं। देश मे जहाँ घर-घर

मे प्रलय उतर रहा हो, उस समय नज़रो का 'प्यार उगलना', 'तबियत चलना' और पराधीन नरक-समान देश मे कल्पना के स्वर्गो का निर्माण करना गर्हित कार्य है।

सकट के दिनो मे जहाँ आह्वान के स्वर जागरण मे सहायक होते है, उत्साह की सर्जना करते हैं वही राष्ट्रनायको का गुणगान भी जनता पर उतना ही प्रभाव डालता है जितना कि इस दिशा मे किया गया कोई और कार्य। माखनलालजी की कविताओ मे कवि का ओज है और साथ ही राष्ट्रीय आन्दोलनो के नेताओ की महत्ता भी, जिनकी प्रेरणा से जनता उनका अनुकरण करे और समय आने पर नेताओ का स्थान लेने को तत्पर रहे।

देश के लिए प्राण उत्सर्ग करने वाला वीर पूज्य है। यह वीर कोई भी राष्ट्र-नायक हो सकता है। उन दिनो काग्रेस के नेताओ पर, क्रान्तिकारी वीरो पर सबकी दृष्टि रहती थी—देश का भविष्य इनके द्वारा ही रूप ले रहा है यह सबको ज्ञात था—

तू भुजा उठा दे, हे जयी!
जग चक्कर खाने लगे,
दुखियो के हिय शीतल बने,
जगतीतल हुलसाने लगे।
तेरे कधो चढे,
जगत-जीवन की आशा,
तेरे बल पर बढे
जाति, जागृति, अभिलाषा।

महात्मा गाधी की महत्ता युगो तक नही भुलाई जा सकती, उन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन देश के हितो के लिए मिटा दिया। उनके आडम्बर-रहित जीवन और आदर्शो का जनता पर अमिट प्रभाव पडा। गाधीजी 'नि शस्त्र सेनानी' थे, सत्याग्रही थे और सत्य की रक्षा करने के लिए वे अतिम श्वास तक जूझते रहे थे। 'बापू' शब्द अपने मे इतना गरिमामय है कि उसमे समस्त विश्व का वात्सल्य उमडा पडता है। निर्धनो और दलितो के रक्षक बापू युग के कण-कण मे समाते रहे और उनका युग उनमे प्रतिबिम्बित होता रहा :

तू कपास के तार-तार मे अपनापन जब बोता
राष्ट्र-हृदय के तार-तार मे वह प्रतिबिम्बित होता,
झोपड़ियों का रुदन बदल देता तू मुसकाहट मे,
करती है शृगार क्रान्ति तेरी इस उलट-पलट मे।

काग्रेस के गरम दल के नेता तिलक थे। शान्ति और सयम में, स्वतन्त्रता-प्राप्ति के सदर्भ मे, उनका विश्वास नही था। वे स्वतन्त्रता छीनने मे विश्वास

रखते थे- -"स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, इसे मांगकर नही छीनकर लेना हमारा कर्तव्य है।" और स्वतन्त्रता छीनने मे विश्वास रखने वाले इस केसरी के देहान्त मे देश पर जो वज्रपात हुआ उसका मार्मिक चित्रण माखनलालजी ने अपनी कविता 'तिलक' मे किया है। उनकी मृत्यु से जैसे देश की नौका डगमगा उठी

नभ कम्पित हो उठा, करोडो
मे यह हाहाकार हुआ,
वही हाथ से गिरा, भवर मे
जो मेरा पतवार हुआ।

तिलक की मृत्यु के समय, देश के लिए किए गए उनके अनेक कार्य और समय-समय पर भोगे गए आरोप और दण्ड भी उनकी स्मृति के साथ जुडे है, जिन्हे अलग करना सम्भव नही है। अपने पर लगाए गए आरोपो से वे लेश-मात्र भी विचलित नही होते थे

बागी, दागी कहलाने पर,
जरा न मन मे मुरझाया,
अगणित कसो ने सम्मुख
सहसा श्रीकृष्ण खडा पाया।

उनकी मृत्यु के साथ सहसा समझ मे नही आया कि देश की गति क्या होगी? क्या स्वतन्त्रता के लिए दिये गए बलिदान व्यर्थ हो जाएँगे? एक साथ अगणित प्रश्नचिह्न भारतीयो के समक्ष उठ खडे हुए

क्यो आर्य देश के तिलक चले?
क्यो कमजोरो के जोर चले?
तुम तो सहसा उस ओर चले,
यह भारत-माँ किस ओर चले?

राष्ट्रीय झण्डे की रक्षा के लिए अनगिनत वीरो ने प्राण दे दिए थे। ऐसे ही नवयुवको मे बिहार के सत्याग्रही श्री हरदेवनारायण सिह थे। सन् १९२३ के नागपुर झण्डा सत्याग्रह मे वे आए थे। "जिस दिन अखिल भारतीय राष्ट्र समिति के प्रतिनिधि स्वर्गीय वल्लभ भाई पटेल नागपुर की सभा मे कह रहे थे कि अभी तक झण्डे पर कोई नही मरा, उसी समय नागपुर जेल मे हरदेवजी प्राण दे रहे थे। श्री वल्लभ भाई के, माखनलालजी के तथा अन्य देश-भक्तो के कधे पर कफन ओढे श्री हरदेव नारायणसिह की अर्थी सहस्रो की जनता के साथ निकली और सुनहरा इतिहास बन गई। हरदेवजी से क्षमा माँगने को कहा गया था, किन्तु उनके शब्द माखनलाजी ने इस प्रकार लिखे हैं:

माथे की बिन्दी हिन्दी को चलो गोरखाली मे बोले,
वीरो को निर्वीर्य बनाया, चलो आज पातक यह धो ले।

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश के विकास तथा समृद्धि के लिए, योजनाओ की सफलता के लिए, अर्थ की आवश्यकता-पूर्ति के लिए पश्चिम से सहायता मिली है। पाश्चात्य देशो के आश्रय पर देखे जाने वाले भविष्य के सपने माखनलालजी को 'उधार के सपनो' के समान लगते है। विकासो की सफलता पर उन्हे उतनी ही प्रसन्नता होती है जितनी 'उधार के गहने' पहनकर हो सकती है

बहुत बोल क्या बोलूँ ये सब सपने है उधार के राजा।
बहुत भले लगते है, गहने है उधार के राजा ॥

वैज्ञानिक अनुसधानो मे भी माखनलालजी ने मानवता के उत्कर्ष का ही साक्षात्कार किया है। 'बलिदान और निर्माण' इन्ही दो शब्दो मे वे मानव, मानवता और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के अस्तित्व को शाश्वत हुआ देखते है :

बाँधो, सडको, निर्माणो मे बोल रहे है सपने,
ये सकल्प कारखानो के कुछ उनके, कुछ अपने
ओठो पर शब्दो की महिमा रस्ता रोक खडी है,
पूछ रही खेतो मे आजादी की यही घडी है—
क्या पूरे हो गए तुम्हारे प्राणदान-सकल्प ?
आज विशालो से डरता-सा पूछ रहा है अल्प।

निर्माण के इन सपनो को देखने के साथ ही भारत का उत्तर-पूर्व सीमात-प्रदेश चीन के बर्बर आक्रमण से त्रस्त हो उठा है। इस प्रदेश मे आक्रामक जघन्यताएँ हुई है, उन्होने फिर एक बार शरीर से टूटते हुए और वर्षो से अस्वस्थ माखनलालजी को झकोझर दिया है। उनके शब्द है

"स्वतन्त्रता के पन्द्रह वर्ष हम लोगो ने जिस शान्ति और सुरक्षा से बिताए हैं, कम नही है। हमे तो इस सबके लिए तैयार रहना है। जिस देश के तीन तरफ सागर लहराता हो, चीन-तिब्बत और काश्मीर जैसी समस्याएँ तथा भूटान, सिक्किम की रक्षा जैसे कार्य जिस देश के सामने हो, उस देश की वीरता को नवजागरण की नही, सतत जागरण की आवश्यकताहै।"

सीमाओ की रक्षा के लिए वे आह्वान करते हैं ·

गगा माँग रही है मस्तक, जमना माँग रही है सपने,
आज जवानी स्वय टटोले सिर हथेलियाँ अपने-अपने
चलो, सजाओ सैन्य, समय की भरपाई के दिन आए हैं,
आज प्राण देने के, युग की तरुणाई के दिन आए है।

पिछले कुछ वर्षों तक चीन ने भारत का मित्र होने, शान्ति का समर्थक होने का सफल अभिनय किया था, जिसकी वास्तविकता लद्दाख और नेफा मे हुए

आक्रमणो के साथ स्पष्ट हुई थी । इस आक्रमण ने देश भर को हिला दिया। जो हिमालय आज तक विदेशी से देश की रक्षा करता रहा है, वही अपनी रक्षा को पुकार उठा और माखनलालजी की वाणी भी देश-वासियो की भुजाओ मे अर्जुन का रक्त जगाने को पुकार उठी—

भरत-खण्ड ! क्या सुनते हो तुम आज हिमालय की मनुहारे,
सदा हथेली पर जो मस्तक रखते वे क्यो टिकुर निहारे,
उठो, भुजाओ मे अर्जुन का रक्त खौलने दो अय मानी,
बल की, बलि की धाराओ का सगम बन जाओ सेनानी।

मित्र-द्रोही चीन को उसके कुकृत्य का दण्ड देने के लिए वे भारत-वासियो को सगठित होने और अपनी सीमाओ की रक्षा के लिए तत्पर रहने को कहते है

चलो, उठो अब प्रलय रगिनी गा दे, सागर को दहला दे,
आज शत्रु को भारत से भिडने का थोडा मजा चखा दे,
हिमगिरी मुकुट कहाता अपना, अरे मुकुट पर वार सहोगे,
गगा-जमना माँग रही है बलियाँ, क्या इन्कार करोगे ?

अपनी सभ्यता और सस्कृति को कुचलने का प्रयास करने वाले को वे कभी क्षमा करने को तैयार नही है। देश को रक्त की आवश्यकता है

आओ, आज हिमालय ने निज महामौन को तोड़ पुकारा,
रक्त चाहिए, रक्त चाहिए, बहने दो बलिपथी धारा।

स्वतन्त्रता के अठारह वर्ष बाद भी, उनकी कविताओ मे क्रान्ति आन्दोलनो और अग्रेजो के अत्याचारो से पीडित युग का चित्रण है। जैसे एक कारवाँ अपनी नई मजिल पर पहुँच तो चुका है, पर पिछले पडाव मे घटी घटनाएँ वैसे ही रोमाचित कर देती है—घटनाएँ जिनकी स्मृति मात्र शेष है, परन्तु उनमे तीव्रता है। ऐसे ही आन्दोलनो के दौर से निकलते हुए पराधीन भारत की स्मृति बलिदान के गौरव को जगाती है .

बिखरे केश कि बिखरा वैभव, क्या अलमस्त जवानी थी,
रक्त-रक्त पर उतर रही थी, ऐसी अमर कहानी थी,
वतन जला, गोलियाँ दाग परदेशी हमसे खेला था,
जीने वाली पीढी हित उसके मरने का मेला था ।

क्राति की प्रत्येक लहर देश को प्राणदान देती थी। क्रातिकारियो पर गोलियाँ चलाई जाती थी और लोग उन्हे ऐसे झेलते थे जैसे कलियाँ बरस रही हो। इन बीती बातो मे उन लोगो के लिए अधिक आनन्द निहित है जो उस समय उन्हे झेल चुके हो। माखनलालजी की रचनाओ मे अनुभूति की सच्चाई है और वे उस समय के वातावरण का सजीव वर्णन करने मे अप्रतिम रूप से समर्थ है। पवन मे क्राति के स्वर, और देश के लिए अपना मस्तक देने के लिए आतुर लोगो को देख-

कर आनन्दोल्लसित धरा और गगन—अजब दृश्य था। नई आने वाली पीढियाँ उद्धत थी, उनमे उत्साह था और प्राण देने के लिए एक प्रकार की होड-सी लग गई थी। अग्रेज प्राण लेने मे प्रवीण थे और भारतीय नवयुवक प्राण देने मे—

गरम रक्त था पीढियाँ जग रही थी,
कि बाजी खुले प्राण की लग रही थी,
फिरगी से बढकर के रगीन थे हम
फकत प्राण देने के शौकीन थे हम।

भारत को सँवारने वाले बलिपथी की स्वरधारा आज स्वतन्त्रता के बाद भी मौन नही हुई है। जब रक्त अर्पित करने का समय आता है तो एक ही पुकार पर लोग सामने आ जाते है, मानवता की रक्षा के लिए तत्पर रहते है और किसी भी शक्ति से भयभीत नही होते

अणु से कहो अमर है निर्भय
बोल मूर्ख मानवता की जय।

प्रगति पर निरन्तर अग्रसर चरणो के ईमान पर कवि को विश्वास है। माखनलालजी के साहित्य मे क्राति जैसी शक्ति है। वास्तव मे एक अप्रतिम मानवतावादी सास्कृतिक कवि होने के साथ-साथ वे जन-जागरण के अमर गायक, बलिदान और समर्पण के पुरस्कर्ता एक अद्वितीय सैनिक-कवि भी है। ऐसा सैनिक जो अपने को मनसा, वाचा, कर्मणा देश को एव सस्कृति को अर्पित कर देता है, उसकी लेखनी आग उगलती है और समय आने पर वह स्वय बन्दूक लेकर रणक्षेत्र मे उतर जाता है। किन्तु जिसकी दृष्टि मे निर्माण और सृजन का रचनात्मक पथ कभी अवरुद्ध नही होता!

बालकवि : माखनलाल

◇ ◇

वृन्दावन नामदेव

नर्मदा के ग्रॉचल से जिस बाल-कवि माखनलाल ने अपनी किलकारियाँ गुँजाईं, उसने मानो विन्ध्याचल से टकरायी हुई ध्वनि मे यह सूचित कर दिया कि वह एक ऐसा बेजोड कवि होगा जो केवल 'एक भारतीय ग्रात्मा' ही नही, अपितु अनेक छद्म नामो की मालाएँ चढाकर माँ भारती की वह अप्रतिम पूजा करेगा जिसे भारतीय पीढी युगो-युगो तक स्मरण रखेगी।

ऐसा आठ-दस वर्ष का बालक जब अपने 'पडितजी' की चिढन-वृत्ति से पहली बार उलझ पडा तभी उसके कठ से अनेक तुकबन्दियाँ फूट पडी। सस्कृत की लघु सिद्धात कौमुदी और अमर कोश के नीरस वातावरण मे आधुनिक पैरोडी के रूप मे बालक माखनलाल ने नये अमर कोश की रचना कर डाली।

"लगा धक्का कि जा पडा ·,
सेव को मक्खियाँ धीरे, ससुरिये चाम खाय च।"

बालक माखनलाल के गुरु भी मिले तो बड़े कँडे के—सादीपन ऋषि के भी चाचा। माखनलालजी के शब्दो मे ही देखिए :

"एक बार गुरुजी के साथ उनके तीन लड़के और मैं गजाल नदी के किनारे गये। वह भी लकडी की जड़ खोदने और गाडी मे भरकर धकेल-धकेलकर ऊपर लाने के प्रयत्न मे। इसी बीच रोटी बनाने का सयोग आ पडा। गुरुजी ने देखा, नमक नही। उन्होने झट एक लडके को गाँव भेजा। जब वह नही लौटा तब चिन्ता मे दूसरे को भेजा। वह भी जब बडी देर तक न लौटा, तब वे खीझ उठे। इसी बीच मै पानी का घडा लिये उनके पास पहुँचा। मुझे खीझ का पता न था। उन्हे भरा घडा देने चला ही था कि भरे क्रोध मे उन्होने घड़ा लेकर मेरे ऊपर ही फेका, मै झट से दूर खड़ा हो गया। घडे की दुर्गति हो गई।"

बालक माखनलाल के विनोद-प्रिय हृदय ने अपने गुरु बालम भट्ट की परिस्थिति की तसवीर ही तुकबन्दियो मे उतार दी। वे वही गजाल नदी की लहरो मे

ताल मिलाकर गाने लगे•

"बालम भट के तीन छोकरे,
दो बाजारो मे जा सटके,
नमक बिन अटके ।
बालम भटके ।"

बालक माखनलाल ठड मिटाने के लिए रजाई लपेटे रात के अन्तिम प्रहर मे अभी कुडमुडा ही रहे थे कि उनकी बुआ ने प्रभाती छेड दी

जागिये रघुनाथ कुँवर
भोर भयो प्यारे

बालक कवि ने भी अपने सुरीले कठ से स्वर-लहरी फैला दी

उठो मेरे दोनो बैल
भोर भयो प्यारे ।
जगल तुम चरो घास,
अब तो छोडो घर की आस,
भोर भयो प्यारे ॥

बहन और भाई की खिलखिलाहट से पौ फट पडी । बुआ ने मानो हार मान कर विजय पा ली। उन्होने अपनी प्रभाती बन्द कर दी। बालक माखन की पक्तियाँ घर मे गूँजती रही। गली मे गूँजती रही। बैलो की घटी के साथ जगल मे गूँजती रही।

लगभग सोलह-सत्रह वर्ष की अवस्था मे इन्हे छिदगाँव आना पडा। यहाँ भी गजाल नदी की कृपा रही, किन्तु बालक माखन के कठ से अब तक 'वैष्णव-पदो' की सृष्टि होने लगी थी। एक पद देखिए

श्याम लोचन मन बस गये री ।
मधुर बैन, कर सैन नैन सो
छीन लीन मन चैन ऐन सो
कछु न सुहावत सुधि न रैन सो
जब हरि हँसि गये री ।
अति कारे प्यारे, अनियारे,
कजरारे नहि जात निहारे,
उरग समान दो अलक सँभारे
सो मेरो हिय डस गये री ।
नागर नट-मन घट-तट आयो
झटपट घूँघट पट सरकायो
मैं तन-मन की सुरत भुलानी

मानो प्राण निकसि गये री ।
कल न परत मोहे आठो जाम सखि,
कछु न सुहावत धन औ धाम सखि ।।
रूठ्यो 'माखन' चोर श्याम सखि,
हम परबस गये री ।

ऐसा ही एक वैष्णव पद इनकी प्रतिभा का परिचय देता है जिसमे बालक-हृदय की क्या बाँकी चुनौती है ! और क्या ही सुन्दर अनुभूति उत्तरी है

कुंजबिहारी गिरवरधारी
अखियन बीच समा जा रे,
कैसा है चित चोर मै देखूँ
नेक तो नजर मिला जा रे ।

कबीर के ठाठ मे

सोलह-सत्रह वर्ष की अवस्था तक एक और परिवर्तन देखने को मिलता है । देश की हवा ही कुछ रूप बदल रही थी । सुधारवादी भावनाएँ भारतीय हृदय मे उतरने लगी थी । कवि-हृदय माखनलाल ने 'कबीर के ठाठ मे' इन्ही भावनाओ का परिचय दिया । वे मानो ससार से कह उठे

जब लिया फकीरी बाना—
माँग क्यो खाना, टुकडे हराम के ।
नु फाके पर हरदम रहना,
भूख-प्यास सुख-दु ख सब सहना
प्राण गये तक कभी न कहना-
हम गुलाम है दाम के ।
जब लिया फकीरी बाना
बनकर बन्दे राम के ।।

कवि के हृदय ने अलबेले क्षणो मे गाढ शृगार के पदो मे अपनी अभिरुचि दिखायी । वे गा उठे

आली, वन माली के सग चलो,
अब सोच कहा जो भई सो भई ।

'विन्ध्या' के वन मे रहकर जिस वृन्दावन को देखा है वह भी प्रकृति-निरीक्षण का एक अपना पहलू है । कवि गाता है

बनवारी सग विहरत प्यारी
ऋतु वसत वृन्दावन आयी ।

यह वह काल था जब 'कवि' का भावुक मन प्रकृति की अलौकिक शोभा

देखने मे लीन हो गया था। जहाँ खडे वृक्षो के हिलते पत्ते, झूमती डालियाँ, मुसकराते फूल, गाते झरने, फुदकते विहग देखते रह जाते।

सप्रेजी के शिष्य

वे बचपन की बहारे इन पर अजीब रगत डालती रही और कवि माखनलाल, नेता माखनलाल आये स्वर्गीय प० माधवराव सप्रे के सम्पर्क मे। तब खूब प्यार पाया उनका, प्यार का पाया अपार अधिकार उनका। रायपुर की घटनाएँ इसकी सक्षी है।

एक दिन की बात है। कवि माखनलाल का रात को बडी देर तक रास्ता देखा गया। भोजन का समय समाप्त हो गया। सप्रेजी कुछ दु ख मे, कुछ प्यार मे, कुछ क्षोभ मे, कुछ आवेश मे आ गये। दूसरे लोगो से बोल उठे—"दरवाजा बन्द कर दो को मत आने दो।" वे दुर्वासा के दादा बन गये।

कवि बाहर खडा रह गया। थोडी देर मे खडिया से दरवाजे पर उर्दू का एक शेर उतर पडा

महल का बन्द दरवाजा किये
महफिल मे बैठे है।
बराबर ड्योढीबानो पर
यही बजहार आता है
कोई कितना सताये
हरगिज न खोल कुण्डी को
भला फिर देखता हूँ कौन-सा
मक्कार आता है।
कहा मैने—ये धमकी दीजिये
जाहरपरस्तो को,
जो आशिक है वो साहब
फाँदकर दीवार आता है।"

दरवाजे पर लिखने की खरखराहट और सरसराहट सुनकर सप्रेजी बाहर निकले और सब करिश्मा देखकर हँस पडे। सिर पर हाथ फेरा और बोले—"चलो, रोटी खाने चलो।"

नेता माखनलाल की बात क्यो रह जाय! सप्रेजी के घर की ही बात थी। माखनलालजी की अवस्था बाईस-तेईस वर्ष की रही होगी। सब भोजन करने बैठे थे। सप्रेजी के लडके गणपति, शकर, नारायण, अनत आदि भी भोजन कर रहे थे।

माखनलालजी ने थाली मे थोड़ा-सा चावल छोड दिया। सप्रेजी तुरन्त बोल

उठे—"वह भी खाओ, छोड नही सकते।" माखनलाल का उन दिनो का मन बोल उठा—"शकर, अनन्त, नारायण आदि ने भी तो छोडा है, इन्हे क्यो नही कुछ कहते ?"

दूरद्रष्टा सप्रेजी ने गम्भीरता से कहा—"तुम्हारी थाली मे इतना चावल छूटने पर इस प्रान्त की हजारो थालियो मे न जाने कितना चावल छूटने लगेगा। इस तरह देश का न जाने कितना अनाज बरबाद हो जायगा, क्योकि लोग तुम्हारी नकल करेगे, इन लोगो की नही।"

माखनलालजी ने सप्रेजी से जो कुछ पाया है वह आज भी उन्हे कल जैसा स्मरण है।

समझे कि नहीं !

जबलपुर मे सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्वागतकारिणी समिति की बैठक चल रही थी। भाषण करते हुए अपने आवेग मे नेता माखनलाल बोल गये—"समझे कि नही !" सप्रेजी नास की शीशी लेकर उठे और सभापतिजी से कहने लगे—"सभापतिजी, हम तो नही समझे, अपने वक्ता से कह दीजिए।"

बात यह थी कि उस उठते युग की वाणी की मशाल लेकर चलने वाले माखनलालजी की ध्वनि मे 'समझे कि नही' की आदत घुसी हुई थी। प० माधवराव सप्रे इसे दूर करना चाहते थे। भरे समाज के बीच की यह टोक अपना काम कर गयी। उस दिन से माखनलालजी के मुँह से वह आदत सर्वदा के लिए विदा हो गयी।

इसीलिए माखनलालजी सप्रेजी के प्रति अपने हृदय की समस्त सद्भावनाएँ अर्पित करते हुए कहते है .

"यदि मुझ जैसे बीहड आदमी का वह निर्माण कर सके तो वे किसकी श्रद्धाभक्ति और प्रेम के अधिकारी नही है ? उन्होने पद-पद पर मेरा निर्माण किया है।"

माखनलालजी ने भी अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा से लाखो को प्रेरणा दी थी।

बीजुरी काजल आँज रही

० ०

धनजय वर्मा

मै अपना अस्तित्व भूलकर, बनकर लाख करोड,
समय-सिन्धु पर लेता रहता, हरदम नयी मरोड।

हिन्दी के वरिष्ठ कवि माखनलाल चतुर्वेदी की ये पक्तियाँ उनका सही परिचय देती है। और इसका प्रमाण उनका कविता-सग्रह 'बीजुरी काजल आँज रही' हे, जिसमे ६४ कविताएँ सकलित है। इनमे पुरानी पीढी का नया स्वर और प्रकृति पर आत्मीय प्रभावो का मुक्त समर्पण है। इनमे समीकृत भाव से प्रकृति-पूजा है। और हिन्दी प्रकृति-काव्य की बीती परम्परा की तरह इनमे असाधारणता और असामान्यता की खोज नही है। उनका धरातल नितान्त सहज और आवेगापन्न है। यहाँ नितान्त लोकप्रतीको और सहानुभूति-गृहीत बिम्बो के माध्यम से प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता और सौन्दर्य की भास्वर अन्विति उभरती है, जिसमे व्यक्तित्व का सारा अवसाद-विषाद, उल्लास और उजास घुल-मिल जाता है और शेष रहता है केवल उसका मुक्त रूप जो प्रकृति की तरह धुला-खुला और अनगढ है। यह अनगढपन भाषा, भावो और 'डिक्शन' का भी है, लेकिन वही प्रभावो का रक्षक भी है। इसी से एक 'अकाव्यात्मक काव्य' का औदात्य नि सृत होता है जिसमे पहाडी झरने की-सी रवानी है, अबाध स्वर-सौन्दर्य का मुक्त प्रभाव और शब्द-स्वरो की लयात्मक झकृति है। यह निर्माण और सरचना का काव्य नही है, प्रभाव की समग्रता का काव्य है। अनुभूति की निजता और तीव्रता, उसकी शिद्दत और तपिश इन सारी कविताओ का केन्द्र-बिन्दु है, इसीलिए ये प्रभाव को लोकगीतो की-सी सहजता, आत्मीयता और निर्व्याजता से अभिव्यक्त करती हैं, साथ ही कवि की भावात्मक उपलब्धि का एक नया और जीवन्त चित्रण प्रस्तुत करती है। सहज भावना के धरातल पर प्रकृति से सपृक्ति और सहज सामग्री के साथ बालकाव्य की-सी भोली मुद्रा, प्रकृति की छबि और सौन्दर्य के छोटे से छोटे सकेत को रूप-रस-गध-स्पर्श और स्वर के स्तर पर ग्रहण कर

साधारण और सहज और ताजे बिम्बो की अभिव्यक्ति इन कविताओ मे है। इनमे प्रकृति के गत्यात्मक चित्र है और पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश का नितान्त सहज और साधारण मनुष्य की दृष्टि से अकन है। एक उम्र आती है, जब प्रभावो के ग्रहण, अनुभूति और अभिव्यक्ति सब मे एक अनायाम सहजता आ जाती है। यही इन कविताओ मे है। और ये निराला के परवर्ती काव्य के प्रकृति चित्रो और गीतो की बेसाख्ता याद दिला देती है। इनमे कवि के प्रौढ आस्थावान स्वर की अदम्य शक्ति और सहज जीवन की विराट् और वास्तविक आकुल आकाक्षाएँ है, जिसकी भूमि सूक्ष्म सवेदनशीलता और गहनतम जीवन-सत्यो की है। यह सच है कि इनका बोध पारम्परित ही है, लेकिन इनके सारे भाव और विचार कवि के व्यक्तित्व का अग बन चुके है और अनुभूति की रागात्मक तल्लीनता तथा लयात्मकता की ही तरह इनके बिम्ब भी रागात्मक और लयात्मक है। इन बिम्बो की रग-योजना और रग-बोध विशेषत दर्शनीय है जिनमे उजास लिए चटक रग हैं और है लोक-जीवन के रोजमर्रे के जीवन के प्रतीको की कतार की कतार। यह सब प्रकृत काव्य के धरातल पर सार्थक है। जो माखनलाल चतुर्वेदी को केवल राष्ट्र भावना का क्रान्ति गायक मानते है, उन्हे इस सहज प्रकृति-काव्य को देखकर आश्चर्य-मिश्रित कौतूहल हो सकता है कि कैसे और क्यो कवि इस अवस्था मे भी अपना पूर्ण विधान करता चल सकता है, नये से नये रूपाकार मे अपनी क्षमता, प्रेरणा और गति को समाहित कर लेता है? कवि के ही शब्दो मे मैं कहना चाहूँगा—'बलिदान पथ के यात्री की यह धारा कल्याणी है।'[1]

१. आकाशवाणी इन्दौर-भोपाल से साभार।

वेणु लो गूँजे धरा

◇ ◇

डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल

'हिमकिरीटिनी', 'हिमतरगिनी', 'माता', 'युगचरण' और 'समर्पण' शीर्षक काव्य-रचनाओ के विख्यात और अभिवन्द्य कवि प० माखनलाल चतुर्वेदी का यह नया काव्य-सग्रह है । 'वेणु लो गूँजे धरा'—नवीन रुचि का प्रकाशक यह कौशलपूर्ण नामकरण ही कवि के जीनव-दर्शन, काव्य-दृष्टि और प्रस्तुत रचना की आकृति-प्रकृति को बडी मार्मिकता से व्यजित करता है । मनुहार की भावना का वाहक यह प्रतीक-चित्र भारतीय हृदय के लिए गहरी सास्कृतिक सवेदना से सम्पन्न है, और कवि के रसवादी दृष्टिकोण तथा विश्व-मानव के सुख की आकाक्षा का द्योतक है। नए जीवन और जीवन-सदर्भो के निरूपण के लिए इस प्रतीक को आज के लिए भी कवि ने जीवन्त और ताजा बना दिया है। 'भूमिका' मे कवि ने अपनी ओर से स्पष्टीकरण किया है—"मेरे निकट तो 'श्यामसुन्दर' मीठा, आकर्षणशील परम सत्य है। जब वायु जोर से चलती है, मुझे लगता है उसने वेणु ले ली है, और जब अन्धड का सन्नाटा सुनता हूँ तो लगता है धरा गूँजने लगी है " इस प्रतीक के माध्यम से प्रस्तुत रचना मे नौ-दस कविताओं की वस्तु निवेदित हुई है।

इस सग्रह मे देश-प्रेम, भक्ति, प्रणय, प्रकृति, जीवन आदि विषयो पर छोटी-छोटी (केवल एक ही कविता लम्बी है—'साढे छह पृष्ठ की) ७२ मुक्तक रचनाएँ हैं, जिसमे से कुछ तो विषय-निरूपिणी कविताएँ है और कुछ अनुभूतिपरक गीत या ऐसी रचनाएँ है जिनका मूल उच्छ्वास गीतात्मक है। भाव-स्वर का वैविध्य ही इन रचनाओ का प्रावेशिक परिचय है—"उनकी सख्या भले ही कितनी हो किन्तु उनके स्वर की विविधता का ही ध्यान रखना होगा" (भूमिका)।

कवि का दृष्टिकोण सर्वत्र नवीन, वाद-मुक्त तथा स्वच्छन्द है। इस ग्रन्थ मे धूल का महत्त्व, लघु, हीन और पतित के प्रति ममत्व, जगत् के बन्धनो की मौलिकता, कलाकार के स्वर का मूल्य और उसके दायित्व की गरिमा, उच्च साहित्य

के सृजन की प्रेरणा, निम्न जीवन-मूल्यो का तिरस्कार, जीवन की सहज अनुरक्ति आदि से सम्बन्धित विचारो और भावनाओ का सुन्दर निरूपण हुआ है। युवकोचित प्रेरणा, देशाभिमान, ऐक्य व सगठन, देश का भौगोलिक व प्राकृतिक सौदर्य, सास्कृतिक गौरव, नवीन रक्त के बलिदान, बलिपथो की बाधाएँ एव उनका मुसकानयुक्त अतिक्रमण आदि से सम्बन्धित भावनाएँ तो मानो कवि के रक्त की रसीली लालिमा ही है।

दूसरा धरातल है साधना, आस्तिकता, रहस्य, भक्ति और आराधना का। इन उदात्त भावनाओ की अभिव्यक्ति अनुभूतियो से गदराये मन और कठ से हुई है। 'सूर्य-किरने, चन्द्र-किरने एक है, अनबन कहाँ है?' (अभेद-दर्शन की भावना), 'कहो कि इतनी चाँदी मत बो उस चाँदी बोनेवाले से' (प्रभु की अमित दानशीलता), 'कब मिलोगे साँस की पहचान की कड़ुवी कुरेदन?' (महामिलन की उत्कण्ठा), 'तडित की तह मे समायी मूर्ति दृग झपका उठी है' (चिर सुन्दर के दर्शन), 'यह कैसी आँख-मिचौनी है, किसने मूँदी, क्यो खोल रहा?' (रहस्य-जिज्ञासा), 'गुपचुप के सवादो जैसे, लौट गये वे कौन?' (जिज्ञासा), 'कौन बोलता है अमृत स्वर, उठ-उठकर भीतर ही भीतर!' (आत्मान्वेषण)—आदि उद्‌गारो द्वारा कवि के स्वर की पावनता एव गाम्भीर्य का तथा सग्रह की वस्तु के वजन का कुछ अनुमान हो सकता है।

प्रकृति भी सग्रह का एक आकर्षक और शक्तिशाली तत्त्व है। कवि ने प्रकृति के माध्यम से मूल्यवान् तथ्यो और अनुभूतियो को प्रभावशाली रूप मे प्रस्तुत किया है। भू-नभ-व्यापी प्रकृति के गम्भीर सौदर्य, रस और शक्ति बखेर और उछाल पर कवि मौन-मुग्ध है, और साथ ही वह एक विचित्र बेचैनी, कसमसाहट और आकर्षण से भरा हुआ है। अनादि कोश की सम्पन्नता के ये उद्‌गार देखिए

कहो कि इतनी चाँदी मत बो उस चाँदी बोने वाले से,
कहो न यो बरबाद करे, अपनी बखेर खोने वाले से।

किरन-जाल मे बाँधे कितने रग, रूप, रस, गध अनोखे,
पनघट से मरघट तक कितने अमर और ये कितने चाखे?

सूरज डूब रहा, छवि देखो, सूरज ऊग रहा छबि बाँधे,
छबियाँ ऊग-ऊग उट्ठी हैं, सिर पर ले, या ले ले काँधे?
दो आँखे कितना आरोगे? कितना, लो कितना देखोगे?

प्रकृति के अनेक चटकीले साकेतिक दृश्य-चित्र इस सग्रह मे बिखेरे मिलेगे।

काव्य के वस्तुपक्ष और शैलीपक्ष के सापेक्षिक महत्त्व और अनुपात के बारे मे सनातन वादविवाद (जो कभी-कभी आत्यन्तिक विषमताओ की सीमा को भी छू लेता है) जो कुछ और जैसा कुछ भी रहा हो, किन्तु इस सग्रह मे स्थिति स्पष्ट

है, वस्तु और शैली का स्वस्थ सतुलन। आदि से अन्त तक जीवन्त और उदात्त अनुभूतियाँ, जो शाश्वत और सामयिक जीवन की तत्त्वचिन्ता के पुष्ट स्नायुजाल पर खडी है, निरूपित हुई है। स्थूल विचार और तथ्य भी, काव्य की प्रक्रिया से गलकर भाव और रस रूप मे परिणत हुए है। भावुकता और चिंतनशीलता के योग से काव्य-वस्तु, छदो मे बिछाये जाने से पूर्व, खूब फेटी गई है। उच्छृखलता और फेनिल उबाल का प्रश्न नही। भाव व विचार कविमन के द्वारा अच्छी तरह जीए जा चुके है अत उनमे प्रौढता और गाम्भीर्य है। वे सीधे जीवन से उतरे है। सृजन की मूल प्रेरणा का स्वय ही परिचय दे देगी

चिर तरुणी क्षिति, चिर नवीन गति, चिर यौवन की बाढ सँभालो।

०

जीवन वही कि जो जीवन की अमर तरुण मौलिकता जाने ।

०

कितनी मौलिक जीवन की द्युति, कितने मौलिक जग के बन्धन।

जीवन की मौलिक शक्तियो और ऊँचे जीवन-मूल्यो (दया, दाक्षिण्य, सेवा, प्यार, श्रद्धा, श्रम, बलिदान, समर्पण आदि) के प्रति गाढी और गहरी अवस्था लबालब भरे इस सग्रह के रस-बुझे बोल मन मे चिर-तारुण्य की प्राणमयी जीवनोष्मा का सचार करने मे पूर्णतया समर्थ है। अन्तर्मन के तहखानो मे रहने वाली सीलन, बू, अँधेरा, घुटन और सडाध की अभिव्यक्ति को ही यथार्थ जीवन की ईमानदार अभिव्यक्ति मानने वालो को कदाचित् यहाँ अपने लिए अनुकूल सामग्री कम मिले या न मिले।

अभिव्यक्ति-पक्ष अथवा शैली-पक्ष भी वस्तु के अनुरूप ही प्रौढ है। कवि की शैली अभिव्यक्ति की विभिन्न मुद्राओ और भगिमाओ के चमत्कार के कारण सदैव लुभावनी रही है, और यही उसकी शैली की मौलिकता व विशिष्टता है। कवि की भाषा-नीति सदैव उदार रही है। आत्म-प्रकाशन का पूरा सुख पाने के लिए अपने विह्वलकर अभिप्रेत को एकदम फिट रूप, आकार और आवरण दे डालना—यह चाहे जिस साधन से भी हो—कवि के भाषा-प्रयोग का रहस्य है। जहाँ वर्दी, नाकिस, आशिक़ी, फ़कत, शौकीन, कीमत, जालिम, बेकाबू, सीना-जोरियाँ, फरियादे, करम, नजर, गुनाह जैसे उर्दू लफ्जो का बेखटके प्रयोग हुआ है वहाँ पतनोन्मुखी, प्रज्ञा, दिग्वसना जैसे सस्कृत के तत्सम शब्द भी प्राप्त होते हैं। ऊगन, खिलन जैसे भाववाचक सज्ञा-शब्दो के भी प्रयोग हुए है। पखनियाँ, उजाडियाँ जैसे नए शब्द भी दिखाई पडते है। उट्ठी, बैरिन, झोले, एँड-एँड, कूता, गदराये आदि देशज, व्यावहारिक व अल्पप्रचलित शब्दो से भी काम लिया गया है। आँखियाँ, बखेर, लाँबी, बरज, ग्रीषम, बहिना मे भाषा का कोमलीकरण व देशज माधुर्य मोहने वाला है। कथन-लाघव के लिए सज्ञा-शब्दो से

विभक्तियो के लोप के उदाहरण तो पच्चीसो जगह मिल जायेंगे—यथा, फूलो, अगो, बूँदो सिंचकर, बालो भर आई, कल्प की बाहों आदि। वर्ण-मैत्री की स्थापना के लिए यमक के स्थूल चमत्कार का रीतिकाल-सुलभ मोह भी पक्तियो के बीच यत्र-तत्र दिखाई पड जाता है—रग, बदरग, अटारी, कटारी, तर्पण, समर्पण आदि। सब कुछ मिलाकर भाषा बडी समर्थ और जानदार है।

कवि का शिल्प अनेक स्थलो पर बडा सूक्ष्म है। महीन वस्त्र पर घना बारीक काम किया गया है। 'प्रार्थना-पाल' (आम पकाने का) और 'सुप्ति के कटहल' मे नए स्वस्थ प्रयोगो की चेतना दिखाई पडती है। मानवीकरण, प्रतीको का प्रयोग और प्रकृति पर चेतना का आरोप, जो छायावाद के विशिष्ट व्यजन है, यहाँ पुष्ट और मर्यादित रूप मे मिलेगे। छद-प्रयोग के सम्बन्ध मे कवि स्वच्छन्द है। भाव के आरोह-अवरोह के साथ, कविता या गीत के बीच मे, सहसा ही छन्द-परिवर्तन उपस्थित हो जाता है। पक्तियो के लाघव-विस्तार का भी अनेक स्थलो पर कोई नियम नही। अनेक स्थलो पर यति-भग भी दिखाई पडा है जो मुद्रण की ही त्रुटि कही जा सकती है पर छदो मे खूब प्रवाह और गति है जो लेखनी की उम्र को साफ बता देती है। कवि का कथन है

पथरा चली पुतलियाँ, मैंने विविध धुनो मे कितना गाया।

किन्तु इस सग्रह मे ऐसे स्थल भी है जहाँ सूक्तियाँ (पृ० १५, ४०, ७९), भाव-पृथक्करण (जैसे, पूजा-सेवा, पृ० ५१), उपदेशात्मक उद्बोधन (पृ० ४२, ६६), दार्शनिक सम्बन्ध-निरूपण ('तू' और 'मैं' का सम्बन्ध) तथा अभिधात्मक कथन आदि उभर आए हैं। सग्रह मे अनेक स्थलो पर कवि अपने पाठको की बहुत कडी परीक्षा लेता है। जो रस का सच्चा गरजमन्द है उसे बुद्धि के महीन नाखून और उँगलियो के प्रयोग का श्रम करना होगा—मीग और गूदा मिलेगा अवश्य। रमणीय कल्पनाओ, भावो, सूझो और उन्मेषो का आनन्द लेते हुए उक्त वैचित्र्यपूर्ण चमत्कारो और रूपको के बीच मे से कवि के अभिप्रेत को ढूँढ निकालने मे काफी स्वास्थ्यप्रद श्रम होगा। जहाँ मलमल के पट मे सहज छनते जल की तरह मन मे उतरने वाली ऐसी पक्तियाँ है

बोल रे, मानस के पछी, मन की बोली बोल!

०

सन्ध्या के बस दो बोल सुहाने लगते है
सूरज की सौ-सौ बात नही भाती मुझको!

०

बाटो मे कुछ काँटो का भ्रम, कुछ गति का श्रम
तुम साथ रहोगे पथी को इतना क्या कम?

वहाँ ऐसी पक्तियो का भी अभाव नही दिखाई पडेगा—

विषमताएँ ले किरण उतरी धरा पर
चचला लिपटी अमावस की स्थिरा पर
चाह-जैसी चपल चमके ढल गई
गगन से वसुधा अकेली पड गई

०

प्रज्ञा दिग्वसना ? कि प्राण का पट क्यो खेच दिया !

सक्षेप मे, 'वेणु लो गूँजे धरा' छायावाद, प्रगतिवाद के श्रेष्ठ तत्त्वो और सस्कारो से सम्पन्न रचना है। वाणी के चरम-विकास की गोलाई तो कैसे कहा जाए, क्योकि क्षितिज पर पहुँचकर भी क्षितिज सदा दूर है ! सभी स्रष्टाओ की तरह स्वय कवि भी अपनी सीमा और लाचारी से अवगत है—

साँसो से गीत बे-अनुपात रही।

कान्त हीरक-कनी-सी आभावान् यह कृति हिन्दी-काव्य क्षेत्र मे अवश्य ही अभिनन्दित होगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

'हिमकिरीटिनी' का कवि

◇ ◇

डॉ० रामदरश मिश्र

'हिमकिरीटिनी' श्री माखनलाल चतुर्वेदी की प्रतिनिधि कृति कही जा सकती है क्योकि इसमे कवि की १९१३ से लेकर १९४० तक की कविताएँ सगृहीत है। प्राय यह देखने मे आया है कि हिन्दी के अधिकाश कवि और लेखक अपने लेखन-काल की प्रारम्भिक अवस्था मे जितने उन्मेषपूर्ण दीखते है उतने उन्मेषपूर्ण बाद मे नही। बाद मे जैसे सवेदना चुक जाने पर दर्शन की भगिमा लेकर जीने लगते हैं। इसलिए जब उनके लेखन का प्रतिनिधित्व करने वाली कृतियो पर विचार करना होता है तब स्वभावत उनकी प्रारम्भिक कृतियो की ओर ध्यान चला जाता है। किन्तु 'हिमकिरीटिनी' इस अर्थ मे प्रतिनिधि नही है, यानी वह एक-मात्र प्रतिनिधि नही है। चतुर्वेदीजी के कृतित्व की उनकी और भी कृतियाँ 'हिमकिरीटिनी' की ही तरह उनके लेखन का प्रतिनिधित्व करती है। अधिकाश हिन्दी लेखको के विपरीत चतुर्वेदीजी अपने लेखन मे ताजगी और उन्मेष की रक्षा करते चले है। दूसरे शब्दो मे कवि के यौवन की उष्मा और सवेदनशीलता उसकी वृद्धावस्था मे भी चुकी नही है। इसका कारण शायद यह है कि कवि ने अपने को जीवन से कभी कटने नही दिया और न यश के लिए किसी बिन्दु पर ठहरकर अपने को विशिष्ट, गुरुगम्भीर और पूज्य समझने की जड चेनना से आक्रान्त हुआ। कवि की मानव-सुलभ सहजता, स्नेहशीलता ने उसकी ताजगी और उष्मा के अक्षय कोश को चुकने नही दिया। इसलिए कवि पर विचार करने के लिए उसकी किसी कृति को लिया जा सकता है। यहाँ 'हिमकिरीटिनी' कवि पर विचार करने के लिए एक निमित्त मात्र है।

चतुर्वेदीजी के काव्य की मुख्यत तीन प्रवृत्तियाँ दिखाई पडती है—देशप्रेम, प्रकृति-प्रेम और रहस्योन्मुखता। इन तीनो प्रवृत्तियो का मूल उत्स वास्तव मे कवि के युग और उससे प्रभावित होते हुए उसके व्यक्तित्व मे देखा जा सकता है। माखनलालजी का कवि-जीवन आरम्भ होता है द्विवेदी युग से, जबकि राजनीति

के क्षेत्र मे गाधी युग का उदय हो रहा था। चतुर्वेदीजी केवल कवि नही थे, इन्होंने खुलकर भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन मे भाग लिया, अर्थात् वे इस सग्राम के सैनिक भी थे, इसलिए उन्हे राजनीतिक सघर्ष की उष्मा का गहरा अनुभव हुआ तथा अपनी बात निर्भीक रूप से कहने का साहस प्राप्त हुआ। कवि ने राष्ट्र-प्रेम को किसी व्याज से न कहकर सीधे ढग से प्रस्तुत किया। कवि की राष्ट्रीय कविताओ मे सघर्ष कर रहे सैनिक की तडप है, यौवन की उष्मा है, देश की विवशता का स्वर है, जागते हुए राष्ट्र का अभियान है, बलिदान और त्याग की चेतना है। 'कैदी और कोकिला' मे एक विसगति के माध्यम से कवि ने तत्कालीन भारत की तडप और बेबसी को बहुत ही प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत किया है

तुझे मिली हरियाली डाली,
मुझे नसीब कोठरी काली।
तेरा नभ भर मे सचार
मेरा दस फुट का ससार।
तेरे गीत कहावे वाह,
रोना भी है मुझे गुनाह।
देख विषमता तेरी मेरी,
बजा रही तिस पर रणभेरी।

मरण त्योहार, सिपाही, विद्रोही, नाश का त्योहार, तिलक, वीर पूजा, बन्धन-सुख, नि शस्त्र सेनानी, बलिपथी से, आँसू, अमर राष्ट्र आदि कविताओ मे कवि ने देश-प्रेम की विविध सवेदनाओ को अभिव्यक्ति दी है। कवि मूलतः वीरधर्मी है, वह जानता है कि बलिदान, त्याग, सघर्ष, उद्दाम घर फूँक मस्ती से ही देश-सेवा हो सकती है, तभी तो वह नवचेतना से स्पदित एक विद्रोही के निर्माणोन्मुख सघर्ष, नाश पर खेलते जीवन के उल्लास को वाणी देता-हुआ कहता है :

मैने मिट जाने मे सीखा,
है जग मे हरियाना
मेरी हरियाली दुनिया है,
मिट्टी मे मिल जाना

× ×

मिट्टी मे मिलना,
हरियाना फिर होना अगारे,
विद्रोही हैं ये सब,
कुछ होते अवतार हमारे!

× ×

सूली का पथ ही सीखा हूँ,
सुविधा सदा बचाता आया,
मै बलिपथ का अगारा हूँ
जीवन-ज्वाल जलाता आया।

× ×

अमर राष्ट्र, उद्दड राष्ट्र, उन्मुक्त राष्ट्र,
यह मेरी बोली,
यह सुधार समझौतो वाली,
मुझको भाती नही ठठोली।

कवि का यह स्वर आज तक कुन्द नही हुआ जबकि अनेक सेनानियो और सैनिको के स्वर सुख-सुविधा और समझौते मे डूब गए।

भारत की स्वाधीनता का आन्दोलन केवल राजनीतिक नही था, सास्कृतिक और सामाजिक भी था। सास्कृतिक पुनरुत्थान का भाव उससे जुडा हुआ था। इसलिए अपने प्राचीन देश की सामाजिक गरिमा के साथ ही साथ, उसकी आध्यात्मिक गरिमा भी हमे अभिभूत कर रही थी। आन्दोलन के समय के देश की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अवस्था उसकी दयनीयता के प्रति जागरूकता, उसे दूर करने की विद्रोही चेतना और सघर्ष के साथ-साथ धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि गूँथकर चलने की प्रवृत्ति लक्षित हो रही थी। इसलिए सर्वत्र वैज्ञानिक दृष्टि की प्रखरता के स्थान पर एक रहस्यमयता, मिथ या इल्यूजन की भगिमा दिखाई पडती है, दीन-हीन की अवस्था को देखने-समझने और राजनीतिक स्तर पर उसे हल करने की प्रवृत्ति के स्थान पर उसे एक आध्यात्मिक स्वर के साथ जोडकर उसके प्रति सहानुभूति, दया, कोमल, सवेदना पैदा करने की वृत्ति अधिक दिखाई पडती है। यह रोमाटिक एटीच्यूड, दीन-हीनो के हृदय मे, आँसुओ मे, पसीने मे, झोपडी मे, भगवान का निवास मानकर राजनीति को भी वैज्ञानिक दृष्टि के स्थान पर एक कुहासे भरी मानवीय गरिमा प्रदान कर रहा था। यही प्रवृत्ति साहित्य मे रहस्योन्मुखता, अस्पष्टता इल्यूजन की सृष्टि करती है। श्री माखनलाल के कवि-जीवन का पूर्ण उन्मेष छायावाद काल दिखाई पडता है। रहस्यवादिता छायावादियो मे अधिक मुखर हुई। चतुर्वेदीजी छायावादी धारा से अलग दीखते हुए भी उससे सर्वथा मुक्त न रह सके। रहस्योन्मुखता इनमे भी अपने ढग से विकसित हुई। यहाँ तक कि इनकी राष्ट्रीय कविताओ के भी बीच-बीच मे यह रहस्योन्मुखता दिखाई पडती है। कुछ कविताएँ तो स्पष्ट रूप से आद्योपात रहस्योन्मुख है। कुछ मे रहस्य की भंगिमा है। लेकिन यह सत्य है कि छायावाद का, रहस्यवाद का, उस काल की अन्य धाराओ का रहस्यवाद हठयोगियो का ग्राह्य या साम्प्रदायिक रहस्यवाद नही है। कहा जा चुका है कि यह रहस्यवाद

जिसे रहस्योन्मुखता कहना अधिक समीचीन जान पडता है राष्ट्र के सामाजिक, सास्कृतिक और राजनीतिक जागरण की चेतना के सदर्भ मे पूरा है। इसलिए राष्ट्रीय-सी लगने वाली कविताओ मे रहस्योन्मुखता और रहस्यवादी या आध्यात्मिक या भक्ति-प्रखर-सी लगने वाली कविताओ मे राष्ट्रीय चेतना की झलक कौधती है। 'हिमकिरीटिनी' मे पहला गीत मनुहार, कुज कुटीरे-यमुना तीरे, खीझमयी मनुहार, छिपूँ ?—किसमे ? धीरे-धीरे, तुम और, और मै, और मेरा उपास्य, वरदान या अभिशाप आदि कविताएँ ऐसी कविताएँ है जिनमे राष्ट्रीय जागरण के व्यक्ति की स्वच्छन्द प्रेम, धर्म की नवचेतना से सपृक्त रहस्योन्मुखता है और इनकी राष्ट्रीय कविताओ मे भी रहस्यात्मक सकेत उभर उठते है।

प्रकृति-प्रेम छायावाद की मूल प्रवृत्तियो मे से है। चतुर्वेदीजी के काव्य से भी प्रकृति के प्रति गहरा झुकाव और लगाव लक्षित होता है। वैसे यह प्रकृति आधुनिक काल के आरम्भ से ही दीखती है। वह श्रीधर पाठक से आरम्भ होकर हरिऔध, गुप्त मे एक दूसरे ढग से विकसित होती हुई छायावाद मे पूरा उन्मेष प्राप्त करती हुई आगे ही बढती गयी। माखनलालजी की प्रकृति-प्रेम सम्बन्धी कविताएँ आरम्भ मे भी द्विवेदीकालीन प्रकृति सम्बन्धी कविताओ की इतिवृत्तात्मकता या वर्णनात्मकता से ग्रस्त न होकर छायावादी कविताओ की चित्रात्मकता से मडित और मानव-चेतना से स्पदित है किन्तु छायावादी शब्द मे स्पदित मानव चेतना अधिक वैयक्तिक, सूक्ष्म तथा आन्तरिक है। चतुर्वेदीजी की कविताओ मे स्पदित चेतना अधिक उन्मुक्त, सहज और धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय सन्दर्भो से मासल है। माखनलालजी की प्रकृति-चेतना का ही विकास बाद के दिनकर, नवीन जैसे विद्रोही कवियो की प्रकृति सम्बन्धी कविताओ मे दीख पडता है। कुज कुटीरे-यमुना तीरे, झरना, कलिका से, कलिका की ओर से, हिमकिरीटिनी, कविताएँ इस सग्रह की महत्त्वपूर्ण रचनाएं है जो कवि की उपर्युक्त सौन्दर्य-चेतना को व्यक्त करती है। कवि की बाद की प्रकृति सम्बन्धी कविताएँ अधिक सहज होती गयी हैं इसलिए कि उनमे कवि ने प्रकृति के उन्मुक्त और स्वच्छन्द रूप को सवेदना के धरातल पर अनुभव किया है, किसी प्रकार के बाहरी तत्त्व, आदर्श, विचार या कानसेप्ट से उसे जोडा नही है। लोकजीवन मे व्याप्त प्रकृति रूप अपने उद्दाम हिल्लोल, निर्व्याज सुन्दरता, मस्ती के साथ इन कविताओ मे खुलता गया है, लोकजीवन से सम्बद्ध प्रकृति-रूपो को कवि लोक-शब्दावली, लोकबिम्बो और लोकगीतो की भगिमा से व्यक्त कर उनमे एक अल्हडता भर देता है। एक गीत प्रस्तुत है .

सजना जवानी चढ आयी है फसलो तक, खेतो तक
नदियो के कछार लहराये, उभय किनारे रेतो तक

०

गन्धो का क्षरण गिर-गिर जाना, पत्तो का बढ-बढ लहराना
प्रकृति नटी का अपने बेटो को रह-रह मोती पहनाना

०

दृश्य बिगडते थे, बनते थे, गगन झूमकर गाता था
काधे लिए कुल्हाडी जब मस्ताना बालम आता था
रखवाला सूरज धीरज धर चक्कर काट रहा था
बसुधा की गोदे भरने से सोना बाँट रहा था
कविता, कला, कल्पना, कोशिश, बिखरी स्वेद कणो तक
सजना जवानी चढ आयी है फसलो तक, खेतो तक

यह निस्सकोच कहा जा सकता है कि जब हिन्दी के बहुत से यशस्वी कवि भाषा और भाव के स्तर पर चुक कर अपने को दुहराते रहे है तब श्री माखनलाल के गीतो मे भाषा अधिक जीवत और भाव अधिक लोकोन्मुख हुए है।

'हिमकिरीटिनी' मे प्रकृति

० ०

डॉ० बलभद्र तिवारी

प० माखनलाल चतुर्वेदी प्रणीत 'हिमकिरीटिनी' मे प्रकृति समस्त कविताओ मे किसी न किसी रूप मे व्याप्त है। चतुर्वेदीजी आधुनिक काव्य के प्रमुख राष्ट्रवादी कवि है। उनका व्यक्तित्व केवल कवि का ही नही है, समस्त हिन्दी ससार उनके नेता, पत्रकार, नाटककार और गद्य-लेखक के स्वरूप से भी परिचित है। व्यक्ति जो कुछ है, वही उसके विचारो मे प्रतिबिम्बित होता है। इस सदर्भ मे आधुनिक-अत्याधुनिक कविता के व्यक्तिवादी होने मे उन कवियो की जीवनचर्या विशेष महत्त्व की है। चतुर्वेदीजी के काव्य मे कवि-जीवन के प्रत्यक्ष दर्शन मिलते है। उनकी सम्पूर्ण प्रकृति, विद्रोह के स्वरो से गुजायमान होती है। प्रेम, राष्ट्रीयता, सस्कृति-प्रियता, मानवतावादी धर्म-प्रियता आदि सभी मे कवि का मूल स्वर निष्ठा और कर्तव्यपरायणता से परिपूर्ण है। कवि का व्यक्तित्व उनके पत्रकार और राजनीतिक नेता के रोल को अधिक उभरने नही देता, क्योकि वे मूलत कवि है, राजनीतिज्ञ बाद मे, अत जीवन मे व्याप्त सघर्ष को अभिव्यक्ति देने मे वे सूक्ष्म हैं। सघर्ष चाहे प्रेम के क्षेत्र मे हो अथवा राष्ट्र की सेवा के क्षेत्र मे, कवि अपने स्वाभिमान और निर्भीक व्यक्तित्व का परित्याग नही कर सका है। देश की मिट्टी से अनन्य प्रेम ही इन्हे राष्ट्रीय कवि और राजनीतिक नेता बनाने का प्रमुख कारण रहा। हरिकृष्ण प्रेमी के इन शब्दों मे सत्यता है—अपने हृदय के उद्वेलन को व्यक्त करते समय भी 'देश की माटी, देश का मन' और उसके प्रति इनका झुकाव दूर नही हो सका। काव्य मे यही झुकाव किसी न किसी प्राकृतिक तथ्य और सत्य के साथ सहज और स्वाभाविक रूप मे उभर आया है। कवि ने प्रकृति के साथ कोई बलप्रयोग नही किया है और इसी कारण प्रकृति का नया स्वरूप हमारे समक्ष आया है।

प्राचीन काव्य से आधुनिक काव्यधारा तक प्रकृति का स्वतन्त्र और विषयीगत स्वरूप नही मिलता। आधुनिक युग मे इसका सूत्रपात हुआ। छायावादी

कवियो ने काव्य को कल्पनालोक मे ले जाने का प्रयास किया तथा उन्हे अपनी समस्त भावनाओ को परिपूर्ण करने का अवसर प्रकृति के क्रोड मे ही मिला। प० माखनलाल चतुर्वेदी इन सबसे अलग थे। प्रकृति का स्वरूप उनके काव्य मे एक दूसरी भूमिका पर आया है। एक ओर कवि प्रकृति के कल्याणकारी स्वरूप के प्रति कृतज्ञ है और दूसरी ओर प्रकृति के मौन सदेश का भी मूक समर्थक है। उसे अपने जीवन मे व्याप्त कर लेना चाहता है, अपने प्रियतम के प्रति प्रकृति की अभिषेक-प्रियता देखकर कवि भी नर्मदा के समान बिखर जाना चाहता है, उसकी लहरो मे व्याप्त होकर न्यौछावर होने की कामना करता है। कवि के व्यक्तित्व मे इतनी अधिक व्यापकता का दर्शन होता है कि वह बात अपनी कहता है किन्तु उसमे आभास मिलता है किसी अलौकिक वातावरण का। वास्तव मे कवि की प्रकृति उत्थान और पतन से युक्त है। इसी उत्थान-पतन की कहानी को गुलाब और भावो की बेलो के माध्यम से कवि व्यक्त करता है

खिलकर भी गुलाब लिखता है,
बाहर की बेचैनी,
भावो की बेले गढती है,
जी मे सरग नसैनी।

प्रकृति की प्रत्येक ऋतु जीवन मे सदेश लाती है और यदि व्यक्ति उसे ग्रहण नही करता तो उसका दुर्भाग्य है। सखि को सम्बोधित करके कवि श्यामल घन की गर्जना मे सुख का अनुभव करता है और उसे राग और अनुराग के पखो के सहारे उडने को प्रेरित करता है। बाह्य और आन्तरिक जीवन का सन्तुलन स्थापित करने मे कवि के प्रयास विशेष महत्त्व के है। उनका झरना केवल जलस्रोत ही नही है, उसकी शक्तियाँ अटूट और असीम है। वह कवि मजुल वीणाधारी कल्याणी जननी की वाणी का मुक्त हार है। उसके स्वर मे प्राणिमात्र के प्रति सहानुभूति है। कवि उसकी कल-कल-निनादिनी वाणी से प्रमत्त होकर जागतिक वीणा के तारो की कटुता को भूल जाना चाहता है। झरने के समान सरल व्यक्तित्व को धारण करने की उसकी कामना है। वास्तव मे झरना सघर्षरत जीवन का प्रतीक है, जिसका कार्य अपना उत्सर्ग कर अनेक का कल्याण करना है। यही कारण है कि प्रकृति के अन्य तत्त्व भी उसका साथ देते है। उसका दुशाला हरीतिमा धारण करता है। कवि का जीवन झरने के जीवन से साम्य रखता है। कवि का वह सहकर्मा है। परन्तु निर्झर उससे अधिक प्रबल है। अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कवि कहता है :

लय मेरी प्रलय न करती
तरुणो के हिये उतर के

तू कल-कल कहला लेता
पछी दल पागल करके

'कैदी और कोकिला' नामक कविता चतुर्वेदीजी की प्रसिद्ध कविताओ मे से एक है। अब तक कोकिल की टीसयुक्त वाणी कामोत्तेजक मानी जाती थी, पर कवि की नूतन-प्रियता ने उसे राष्ट्रीय कार्य मे प्रयुक्त किया है। कवि रात्रि मे कोयल के कूकने को विस्मय के साथ ग्रहण करता है। वह उसे युग की परिस्थितियो मे सामान्य चेतना की प्रेरणा देती है। वह तत्कालीन शासन के प्रति सचेष्ट और सतर्क करने वाली भी है अन्यथा अपनी मधुर वाणी के माध्यम से कैदियो के घावो को भरने का कार्य न करती। जो कोकिल रवि की किरणो से क्रीडा करती हो, जगत को जागृत करती हो, वह यदि अर्द्धरात्रि मे कूक उठती है तो उसका विशेष प्रयोजन है। यह विशेष प्रयोजन भी देश के निमित्त है। विद्रोह के बीज का वपन करने वाली कोकिल साधारण पक्षी नही है। वह पक्षी जगत की ओर से परतन्त्रता को तोडने वाली उद्बोधिका है। इस कविता के माध्यम से कवि ने शासन की नीतियो और भारतवासियो की दुर्बलता का परिचय (नभ खीच चुका है कमजोरो का खाना) दिया है। इसी प्रकार 'कुंज कुटीरे, यमुना तीरे' मे कवि प्रकृति के युवा जीवन की प्रतीक कलिका के खिलने को स्वच्छन्द रूप से होने देने की अपील करता है। श्याम और गौर युगल को नयनो मे स्थान देकर अपनी समस्त आस्था को उसके प्रति ज्ञापित करता है। सघर्ष को प्रधानता देता हुआ वह कर्मण्य हो आगे बढने का आह्वान करता है—'पत्ती को मस्ती लाने दे और कलिका कढ जाने दे।' इतना ही नही उसके 'अन्तरतर को अन्त चीर कर अपनी पर आने दे' का विचार रखता है। ऐसे सेनानी ही 'मरण त्यौहार' मनाते है। अनेक कविताओ मे कवि का रहस्यवादी स्वरूप है। अपनी अभ्यर्थना मे प्रकृति के माध्यम से कवि ने अपनी अशेष श्रद्धा उडेल दी है। मानवीकरण का दर्शन यहाँ स्पष्ट है।

'गिरि पर चढते, धीरे-धीरे' और 'कलिका से, कलिका की ओर से' कविताओ मे नये प्रयोग—नये उपमानो का सौष्ठव द्रष्टव्य है। कलिका का जीवन स्वच्छन्द है। रवि की किरणे विद्युत ओष्ठो से उसे चूम लेती है, जिसमे वह खिल जाती है। प्रकृति मे एक लय है, ताल है और अद्भुत सगीत है जिसमे वह युवा कली जागृत होती है। कली का हँसना भी एक महत्त्वपूर्ण बात है। वह मृत जाति का हँसना नही है, वह जाति जिसकी आग ठडी हो चुकी है, जीवन के सगीत को खो चुकी है, वह क्या हँसेगी? कलिका जीवन है, इसलिए वह जीवन को विकसित करती हुई विहसती है और आँख खोलकर बलिदान हो जाती है। वह उद्धारकर्त्ता भी है। जिस माँ की गोद में पल्लवित और पुष्पित हुई है उसी के निमित्त उत्सर्ग होकर वह राष्ट्रकार्य मे अपना जीवन लगाती है। यह राष्ट्र के

प्रति अप्रतिम सदेश है। बलि का जीवन जीने वाली, बलि का गान सुनाने वाली कलिका केवल एक लघु इकाई नही है। वह समस्त विश्व को आन्दोलित कर सकती है

मै बलि का गान सुनाती हूँ,
प्रभु के पथ की बनकर फकीर,
माँ पर हँस-हँस बलि होने मे,
खिच, हरी हरे मेरी लकीर।

इतिहास से ज्ञात होता है कि अनेक वैभवशाली, शक्तिशाली व्यक्तित्वो को मिट्टी मे मिल जाना पडा, परन्तु उन्होने मातृभूमि की रक्षा मे अभूतपूर्व त्याग किया है। 'विद्रोही' कविता मे ऐसे ही विशिष्ट व्यक्तित्वो का वर्णन है। प्रकृति भी ऐसे विद्रोहियो का साथ देती है। समय आने पर उनका अभिषेक करती है, उनको शीतलता प्रदान करती है, क्योकि प्रकृति स्वय नूतनता की हिमायती है, नित नवीन शृगार करती है। इसी त्याग भाव का प्रबल समर्थन 'नाश का त्यौहार', 'वीर पूजा', 'नि शस्त्र सेनानी' और 'बलिपथी से' कविताओ मे है। जन्मदाता के प्रति जन्म लेने वाले के भावो मे यदि इतनी श्रेष्ठता नहीं है तो वह व्यर्थ ही धरती का भार बनता है। जननी का सौभाग्य है कि वह वीर-प्रसू बने और बृहत्तर रूप मे राष्ट्र के दु खो के निवारण मे सहायक हो। कवि का 'निःशस्त्र सेनानी' भी अहिंसा के पथ का अनुसरण करता हुआ इस कार्य मे प्रवृत्त है। पद-पद्मो मे स्वातन्त्र्य सुधा-धारा बहाने की शक्ति ही उसकी सिद्धि है और समस्त कार्यों और सघर्षो के फलस्वरूप 'जगती तल का अमरत्व' ही उसकी प्राप्ति है। ऐसा नि शस्त्र सेनानी अपने सकुचित दायरे से मुक्त हो जाता है

देह ?—प्रिय यहाँ कहाँ परवाह
टँगे शूली पर चर्मक्षेत्र,
गेह ?—छोटा-सा हो तो कहूँ
विश्व का प्यारा धर्मक्षेत्र।

यहाँ स्वातन्त्र्य सग्राम मे लीन रहने वाले सभी शहीदो की स्मृति हरी हो जाती है, जिनके स्वागत मे भारतमाता सदैव उषा की भाँति प्रस्तुत होती है। उषा नवजीवन-दायिनी है। दुखी जन आशा के उपहार के साथ अपना जीवन प्रारम्भ करते है और नि शस्त्र सेनानी की तो स्थिति ही भिन्न है। वह इस स्वागत का सर्वथा अधिकारी है, क्योकि 'जवानी' उसके साथ है। उसमे शीश देकर पृथ्वी को भी हथेली से ध्वस्त करने की शक्ति है। 'हिमकिरीटिनी'—अन्तिम कविता की भी यही आकाक्षा है कि परम उपहार का सस्पर्श तब तक न हो जब तक कि विजय का वरण न हो जाय। कवि ने प्रकृति के समस्त शृगारो और क्रिया-कलापो का मुक्ति त्यौहार तक स्थगित रखने की इच्छा प्रकट की है

यह मधुर बलि, हो विजय का मोल,
मानिनी, तब तक हृदय मत खोल,
हिमकिरीटिनि की परम उपहार
री सजनि, वनराजि की शृगार।

इस प्रकार मानवीकरण और विविध बिम्बयोजना के माध्यम से सुमधुर उक्तियो और सूक्तियो के सौन्दर्य को प्रस्तुत करते हुए प० माखनलाल चतुर्वेदी ने राष्ट्रीय काव्य को अपने जीवन-आदर्शों के अनुरूप प्रस्तुत किया है। उनकी अन्त प्रकृति और बाह्य प्रकृति दोनो एक है। जहाँ कही प्रकृति का व्यापार कल्याणकारी है, कवि का नि शस्त्र सेनानी उसे अपने जीवन मे उतारने का उपक्रम करता है। झरना और कलिका स्वय बलिपथ के पथी है। हिमकिरीटिनी के उपहार भी उसी को प्राप्य है, जो अपने मन मे पुष्प की अभिलाषा लेकर चलता है, जिसमे मातृभूमि पर शीश चढाने जाने वालो के पथ मे गिरने की अभिलाषा है। कुल मिलाकर हिमकिरीटिनी की प्रकृति मे झरना, पुष्प, कलिका और उसका अमर बलिदान प्रमुख है। कवि ने प्रकृति के प्रत्येक अग का निरीक्षण किया है और उनके त्याग, समर्पण और उत्सर्ग को आँका है।

हमारे जनजीवन मे इसकी कमी है। यह कृति स्वतन्त्रता के पूर्व लिखी गई थी। इसमे राष्ट्रीय चेतना का प्रबल रूप प्रत्येक पक्ति मे विद्यमान है। राष्ट्रीय काव्य मे इसके सिवा अन्य बातो को कम स्थान मिलता है। वास्तव मे कवि ने प्रकृति-चित्रण के विचार से, प्राकृतिक सुषमा को अपने काव्य मे स्थान नही दिया है। वह अपने कर्मक्षेत्र मे प्रकृति की कर्मण्यता को आरोपित करने मे, उससे प्रेरणा लेने मे अधिक सचेष्ट रहा है और इसी रूप मे प्रकृति स्वाभाविक तथा कवि की वाणी से निसृत हुई है।

गद्य समीक्षा

एक भारतीय आत्मा : भारत से एकात्म

> ०

सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

श्री माखनलाल चतुर्वेदी के विषय मे लिखना मुझे कभी आसान जान पड़ा हो, या जैसा उनका काव्य है वैसे काव्य के प्रति कोई सहज या प्रवृत्तिगत आकर्षण मुझ मे रहा हो, ऐसा नही है। व्यक्तिगत रूप से भी उनसे अधिक परिचय नही रहा—केवल दो-तीन बार थोडे-थोडे समय की भेंट का ही सौभाग्य मुझे मिला है। फिर भी उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रति मेरा सम्मान कैसे निरन्तर बढता गया है, यह मेरे लिए एक प्रीतिकर विस्मय का विषय तो है, पर ऐसा नही कि उसे मै अतर्कित मानकर छोड दूँ—मेरा आत्मालोचक स्वभाव ही मुझे बाध्य करता कि उसका कारण मै खोजूँ और उसकी सगति या असगति की पडताल करूँ। मैं परीक्षण कर के ही इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि वह सम्मान उचित और तर्क-सम्मत है, और उसे प्रामाणिक मानकर ही उसे अर्पित करने मे सुख और सन्तोष का अनुभव करता हूँ।

माखनलालजी की कविता से पहला परिचय कारावास मे हुआ, और भी अनेक पाठको का पहला परिचय उसी कविता से हुआ होगा, पर उस परिस्थिति मे नही ! दिल्ली षड्यन्त्र केस के एक अभियुक्त के रूप मे दिल्ली जेल मे लम्बे दिन काटते हुए मैने एक कापी मे हिन्दी की कविताएँ उतारकर रखना आरम्भ किया था। कविता पढने मे रुचि थी और किताबे एक-साथ दो-तीन से अधिक रख नही सकता था इसलिए पसन्द की कविताएँ कापी मे नकल करके पुस्तके लौटा कर नयी पुस्तके मँगाता रहता था तभी एक दिन चमत्कृत-सा होकर 'एक भारतीय आत्मा' की छोटी-सी कविता पढी

'चाह नही, मैं सुर-बाला के केशो मे गूँथा जाऊँ
चाह नही, प्रेमी-माला मे बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नही, सम्राटो के शव पर हे हरि ! डाला जाऊँ,
चाह नही, देवो के सिर पर चढूँ, भाग्य पर इठलाऊँ,

मुझे तोड लेना, वनमाली ! उस पथ मे देना तुम फेक—
मातृभूमि पर शीश चढाने जिस पथ जावे वीर अनेक !

कविता फौरन कापी मे उतार ली गयी। इतना ही नही, एक साथी से, जिनका गला अच्छा था वह बार-बार गायी जाकर सुनने को भी मिलती रही।

जेल की अवधि समाप्त नही हुई थी कि एक और कविता—इस बार लम्बी कविता—पढने को मिली कैदी और कोकिला—

इस शान्त समय मे
अन्धकार को बेध, रो रही क्यो हो ?
कोकिल, बोलो तो !
चुपचाप, मधुर विद्रोह-बीज
इस भाँति बो रही क्यो हो ?
कोकिल बोलो तो !

यह कविता भी कापी मे उतार ली गयी, फिर गायी हुई तो नही सुनी गयी, पर रात मे अकेली कोठरी मे कई बार जोर-जोर से पढी जाती रही—मैं तब काल-कोठरी मे था और लम्बी राते प्राय कविता पढते हुए अपने ही स्वर के सख्य के सहारे कटती थी।

निस्सन्देह कविता के उन दिनो इतना प्रिय होने मे एक कारण मनोवैज्ञानिक भी रहा होगा—कोकिल के साथ अवचेतन एकात्मता का बोध, क्योकि उन दिनो क्या हम सभी बन्दी अपने को 'चुपचाप मधुर विद्रोह-बीज बोने वाले' नही मानते थे !

अनन्तर—जेल से छूट जाने के बाद जब पुस्तके रखने और सग्रह करने मे कोई बाधा न रही—तब उनके सग्रह भी पढे। तब वह पहले का उत्साह कुछ सयत हुआ, कई प्रश्न भी उभरकर मन मे आए। इन प्रश्नो के उभार और अनन्तर शमन को अपने लिए तो महत्त्व का मानता हूँ, क्योकि ये साहित्यिक शोध-यात्रा के या कि समीक्षक के विवेक के परिष्कार के चरण है, पर मेरे निजी अनुभव का हर किसी के लिए एक-सा महत्त्व नही हो सकता। इसलिए सक्षेप मे अपनी द्विधा की और स्वय पाये हुए उत्त‍र की ही चर्चा करूँ वही दूसरो के कुछ काम की हो सकती है।

'एक भारतीय आत्मा' की कविता मे जहाँ एक ओर एक सहजता, ओज और प्रवाहमयता मुझे निरन्तर आकृष्ट करती रही और अब भी करती है, वहाँ दूसरी ओर उनकी भाषा मे एक अनगढपन—एक असम और अटपटी गति—क्रमश अधिकाधिक खटकता गया। अधिकतर हिन्दी प्रदेश से बाहर ही रहते आये मुझ सरीखे व्यक्ति के लिए (यद्यपि शैशव-काल मेरा 'अच्छी हिन्दी' के ही वातावरण मे बीता और बोलना मैंने उसी मे सीखा) हिन्दी जितनी 'जानी हुई' भाषा थी कम-से-कम उतनी ही 'सीखी हुई' भाषा भी थी, इसलिए मेरे लिए स्वाभाविक

और अनिवार्य था कि मै भाषा के सस्कार के बारे मे सतर्क रहूँ—न केवल स्वय बोलते या लिखते समय, बल्कि दूसरों को लिखा या बोला हुआ पढते या सुनते समय भी। इसीलिए सवेदना की पहली चमत्कृति के बाद माखनलाल जी की कविता को लेकर भी मेरा प्रश्नाकुल हो जाना स्वाभाविक था, और स्वर्गीय महावीरप्रसाद द्विवेदी के कठोर अनुशासन मे दीक्षित बुजुर्गों के सम्पर्क ने इस प्रश्न भाव को और उकसाया ही, शान्त नही किया !

ये प्रश्न मेरे मन मे उठे, इसे लेकर मै लज्जित नही हूँ । अनन्तर उनका महत्त्व फिर मेरे लिए कम हो गया, इससे यह परिणाम मैं नही निकालता कि वे व्यर्थ थे या कि उनका उत्तर खोजने मे मैंने केवल समय नष्ट किया। इसके विपरीत मैं मानता हूँ कि मुझे दोहरा लाभ हुआ आज मै जानता हूँ कि मै वह भाषा नही लिखूंगा जो माखनलाल लिखते है या जो स्वर्गीय बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' लिखते थे, पर साथ ही यह भी जानता हूँ कि वह केवल इसलिए कि मेरा सस्कार दूसरा है, इसलिए नही कि उनकी भाषा उनके अपने कथ्य के लिए कम समर्थ या असगत थी। उन्होने जो किया वह मैं नही करूँगा क्योकि मैं कर नही सकता, उन्होने जो किया उसका सम्मान मै करूँगा क्योकि कर सकता हूँ और वह सम्मान का पात्र है।

यहाँ एकाएक मुझे लगता है कि मुझे माखनलालजी की बात अब नही, 'एक भारतीय आत्मा' की ही बात करनी चाहिए। क्योकि जो बात मै कहना चाहता हूँ उसका सन्दर्भ भारतीयता ही है। जिन सस्कारो की मैं चर्चा कर रहा हूँ, वे भारतीयता की समस्या का भाषागत पहलू है, और मेरी समझ मे यह समस्या अभी हल नही हुई है और अभी और दो-एक पीढियो तक हल होने वाली नही है। न राष्ट्रभाषा के नाम पर 'सरल हिन्दी' को अरबी-फारसी का बघार देना चाहने वाले हिन्दुस्तानीवादी उसे हल कर पाये थे, न सरल हिन्दी को सस्कृत की चाशनी मे पाक करने वाले दे पाये है, न नयी काट के 'कॉस्मोपॉलिटन हिन्दी' के समर्थक उसे चुस्त अग्रेजी-अमेरिकी जाकेट पहनाकर दे पायेगे सबकी सदाशयता को सर्वथा और सर्वदा असदिग्ध मान भी लिया जाये तो भी।

एक तरफ यह नारा है कि भारतीय सस्कृति क्योकि मिश्र सस्कृति है इसलिए जिस भाषा मे वह अभिव्यक्ति पायेगी वह भी मिश्र भाषा ही होगी। हिन्दुस्तानी के सारे आन्दोलन के मूल मे यह प्रतिज्ञा थी, इसके साथ दूसरी प्रतिज्ञा यह थी कि सस्कृति मे मिश्रण मुख्यतया मुस्लिम और हिन्दू सस्कारो का रहा है और (इसलिए) भाषा मे मिश्रण अरबी-फारसी तथा सस्कृत से आये हुए शब्दो का होगा। दूसरी तरफ यह मान्यता है कि सस्कृति एक समन्वित रूप को ही कह सकते है, और इसलिए भाषा भी समन्वित ही हो सकती है। इसके साथ यह भी प्रतिज्ञा है कि समन्वित भारतीय सस्कृति मे इस्लाम का भी योग रहा है अवश्य,

पर ऐसा नही है कि केवल दो ही तार बँटकर वह सस्कृति बनायी गयी है, उसमे अनेक धाराओ का सगम है और केवल दो को सामने रखना विकास के प्रवाह को अधूरा देखना ही नही, उसमे बाधक होना भी है।

यही स्वीकार कर लूँ कि मैं दूसरे सम्प्रदाय का हूँ। मै किसी भी प्रभाव को केवल बाहर का होने के नाते अग्राह्य या प्रतिरोध्य नही मानता। पर साथ ही मै यह भी मानता हूँ कि अनेक प्रभावो के प्रति अपने को बन्द करना और साथ ही केवल दो सत्ताओ को मिश्रित करने का (या होने देने का) प्रयत्न करना, सस्कृति को गलत समझना भी है और गलत मोड देना चाहना भी। मिश्रण की अवस्था सस्कृति से पहले की अवस्था है : वह प्रभावो के आदान-प्रदान और परस्पर सघात की अवस्था है। इस सघात के परिणाम मे जो स्थिर और आत्मनिर्भर रूप प्रकट होता है वही सस्कृति है, वही सस्कारवान् रूप है। सस्कृतियाँ भी सकर होती है अवश्य, और इससे उन्हे नया तेज भी मिल सकता है, पर सकरता अपने आप मे सस्कृति नही है।

इसी प्रक्रिया का भाषागत पर्याय भी अवश्य है, और भाषा के प्रयोक्ता का कर्तव्य है उसके प्रति जागरूक रहना। केवल पडित या अध्यापक या वैयाकरण की जागरूकता प्रक्रिया को पहचानने और अकित करने तक भी सीमित रह सकती है, पर कृतिकार उससे आगे जाता है क्योकि वह केवल पहचानने वाला नही है, उसका कार्य इस प्रक्रिया को निरन्तर ऐसी प्रणालियो मे ढालते चलना भी है जिन से भाषा प्राण-रस की वाहिका बनी रह सके।

यही पीठिका है जिस पर स्थापित करके मै एक भारतीय आत्मा के काव्य को देखता हूँ। मैंने कहा कि उनकी भाषा मैं अब न लिखूँ, पर उसका मै सम्मान करता हूँ, दोनो ही का मेरे पास कारण है – मेरी समझ मे पर्याप्त कारण। उनकी भाषा का अटपटापन और अनगढपन प्रथमत इस बात का सूचक है कि वह वस्तु को प्राथमिकता देते रहे, और यह आग्रह सर्वथा सही है। दूसरे वह यह भी सूचित करता है कि वह उस समन्वित स्थिति तक नही पहुँचे है— या उन्होने नही माना कि वह पहुँच चुके है—जिसमे भाषा एक स्थिर सस्कारी रूप ले ले, पर साथ ही उन्होने मिश्रण की प्रतिज्ञा को भी स्वीकार नही किया। यानी वह भाषा को एक जीवन्त, प्रवहमान और सतत, परिवर्तनशील साधन के रूप मे ही बरतते आये—ऐसे साधन के, जिसके बदलते रहने को उन्होने स्वीकार भी किया और साथ ही प्रेरित भी। इसीलिए उनकी भाषा अनगढ रही, अस्थिर रही, ठेठ शब्दो को भी उतनी ही सहजता से अपनाती रही जितनी से सस्कारी शब्दो को जो चाहे सस्कृत के हो चाहे फारसी के, पर इस सबके साथ सहज रही, कृत्रिम कभी नही हुई, हिन्दी ही रही, यद्यपि बनती हुई हिन्दी, हिन्दुस्तानी नही हुई— बनायी हुई हिन्दुस्तानी। उसमे मँजाव की कमी रही तो उसी हद तक जिसमे और जिस

तक हिन्दी समाज मे मँजाव की कमी है, वह अनिश्चित और बदलती हुई दीखती रही तो उसी प्रकार जिस प्रकार भारतीय समाज—और हिन्दी का व्यवहार करने वाला समाज—अनिश्चित और बदलता रहा। और किसी तरह का कोई 'झुकाव' या रुझान उस अटपटेपन के पीछे रहा तो वह निरपवाद रूप से बृहत्तर जन-समाज की ओर रहा, कभी उस अल्पसख्य आकाशचारी वर्ग की ओर नही जो पत्तल पर परोसे हुए देसी दाल-भात को घटिया मानकर तश्तरी मे पडे हुए उच्छिष्ट अग्रेजी बिस्कुट की ओर ही ललक-भरी दृष्टि से देखता है और समझता है कि इस प्रकार उसकी दृष्टि 'शहरी', 'आधुनिक' और 'विश्वोन्मुख' हो गयी है। एक भारतीय आत्मा'भारतीय' है और रही है, 'आत्मा' ही है और रहेगी।

और बात को थोडा और खीचकर यह भी कहा जा सकता है कि वह 'एक' ही है और उसका यह एक-पन, यह सहति, सबसे अधिक सम्मान की पात्र है।

इस 'एक-पन' के बारे मे एक बात और कहना चाहता हूँ। मैंने पहले भी कहा है कि 'एक भारतीय आत्मा' केवल कृतिकार कवि नही, कृती कवि है क्योकि उनकी स्नेह-छाया मे और भी कई कवि-प्रतिभाएँ पनपी है। अपनी रचना से बाहर या परे ऐसा प्रभाव भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का भी रहा और स्वर्गीय महावीरप्रसाद द्विवेदी का भी, इस लडी मे जोडने के लिए और नाम आसानी से नही मिलेगे। पर इन तीन नामो मे भी प्रत्येक का वैशिष्ट्य है भारतेन्दु अग्रेजी मुहावरे के 'फर्स्ट ऐमग ईक्वल्स' थे एक समानशील व्यसनी मडल मे प्रमुख, और उनसे दूसरो को जो प्रेरणा मिलती थी उसका आधार सखा-भाव ही था। स्वर्गीय द्विवेदी जी मुख्यतया अनुशास्ता थे—जिन प्रतिभाओ को उनसे प्रेरणा मिली वे सखावत् निकट आयी तो पुष्ट होने के बाद ही—यानी प्रेरणा-काल के बाद ही। कहा जा सकता है उनकी प्रेरणा का आधार एक प्रकार का गुरु-शिष्य सम्बन्ध ही था। एक भारतीय आत्मा इस दृष्टि से भी अद्वितीय है। माखनलालजी ने स्नेह और वात्सल्य के अमृत से ही सीचकर नयी पौध को बढाया और फूलने-फलने का अवसर दिया युवतर प्रतिभाएँ 'बराबर' न होकर भी कभी उनके निकट 'छोटी' नही हुई। स्नेह का सम्बन्ध एक साथ ही दोनो भावो का निर्वाह करता रहा। हिन्दी साहित्य क्षेत्र मे इतने लोग-पडित माखनलाल द्विवेदी को 'दादा' कहकर अपने को स्नेहसिक्त और गौरव मडित अनुभव करते है, इसमे कृती कवि के कवित्व और व्यक्तित्व दोनो के सामर्थ्य की माप है। 'साहित्य देवता' के कई अश मुझे अस्पष्ट और 'सन्ध्या-भाषा' मे लिखे-से लगते है, पर जब यह तथ्य सामने रखता हूँ तो कवि निबन्धकार का मूल-भाव दीए की लौ-सा स्पष्ट चमक उठता है. मै अपने को उसी मन्दिर के आँगन मे खडा अनुभव करता हूँ जिसमे कवि पुजारी के आसन पर बैठा है। उसके पाठ के सब बोल मुझे स्पष्ट न भी सुनाई पडे, उसकी भावना तक मैं पहुँच सकता हूँ बल्कि उसमे अपने को साझीदार पाता हूँ।

भाषा का संस्कार

० ०

इन्द्रबहादुर खरे

भावो की दृष्टि से किसी भी कलाकार को मूलत मौलिक मानने मे मुझे असुविधा होती है, आदि कवि के हृदय मे राग-विराग की जो रगीनियाँ प्रवाहित हुई थी आज का कवि भी उनका अनुभव करता है। मनोभाव तो यथावत् रहते है, हाँ, उनका स्वरूप और प्रभाव अवश्य बदलता रहता है। अभिव्यक्तिकरण अनुभूति-शक्ति पर आशिक रूप मे आश्रित है।

भाषा हमारे मनोभावो का बाना है। सुन्दर, खिले हुए, प्रफुल्ल फूलो के बाग को देखकर एक पल ठहर जाने को तबियत हो आती है, ठीक इसी प्रकार खिल-खिलाती हुई भाषा की सौन्दर्य-लहरियो मे स्नान कर अपने मन को प्रफुल्लित करने के लिए सदा लालायित रहता हूँ। भाषा तो मनोभावो का रथ है। मनोभावो को अपने रथ पर आसीन कर, भाषा की दिव्य सवारी जिस राजमहल और जिस झोपडी के किनारे से निकल जाती है, उसी के गवाक्षो और खिडकियो से दर्श-नोत्सुक नयनो की पलके मुग्ध हो जाती है।

भाषा को नया सस्कार देना साधारण प्रतिभा का कार्य नही है। भाषा के परम्परागत रूप का अमृत पीकर, नई भाषा के स्वरूप की रूपरेखा प्रस्तुत कर देना असाधारण प्रतिभा-सम्पन्न लेखक का ही कार्य है। शब्द की अन्तवृ त्ति देर से समझ मे आने वाली बात है। शब्दचेतना ही भाषा की सफलता का रहस्य है।

जिस सृष्टि-प्रतिभा मे भावो के अणु-परमाणु रूपी शब्दो के उचित सचालन की शक्ति है वही प्रतिभा भावो के नए क्षितिज खोलने मे समर्थ होगी।

अणु के बिना सृष्टि के सर्व सकलन (Sum Tottal) के दर्शन असम्भव है। शब्द भाषा का एक अणु है। यदि यह अणु सृजनात्मक दिशा मे क्रियाशील है, तो शब्द का उद्धार हो जाता है। उसकी आत्मा बदल जाती है और यदि शब्द का सयम असतुलित होकर गलत साँचे मे बैठ जाता है तो भाषा शिल्पकार द्वारा ऐसी भाव-मूर्ति बन जाती है कि जिसका पहचानना हास्यास्पद हो जाता है।

भाषा का फूल खिलाने के लिए बडे चतुर माली की आवश्यकता है अन्यथा या तो फूल का पूर्ण विकास नही हो पाता अथवा ऐसे वातावरण मे वह अपनी सुगन्ध वितरित करता है जहाँ उसे ग्रहण करने वाला कोई नही रहता।

रीतिकालीन काव्य-परम्परा की समाप्ति की प्रतिक्रियास्वरूप साहित्य—हिन्दी-पद्य और गद्य मे जो परिवर्तन हुए, उनमे उत्तरोत्तर विकास होता ही गया। द्विवेदी युग और छायावादी युग के बीच की कडी होकर पडित माखनलाल अपनी तीव्र प्रतिभा के कारण युग के प्रतिबन्धो से सदा मुक्त रहे। अवस्था की दृष्टि से वे भले ही आधुनिक न कहलाएँ किन्तु उनकी लेखनी का तारुण्य सदैव नवीन रहा।

हिन्दी गद्य का रूप सँवारने वाले आदरणीय पडित महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, जयशकर प्रसाद और रामचन्द्र शुक्ल की कडी मे पडित माखनलाल चतुर्वेदी का नाम सादर स्मरणीय है।

भाषा की दृष्टि से चतुर्वेदीजी ने किसी गद्यकार का अनुकरण नही किया। अपनी सूझ के बल पर उन्होने भाषा के देवता का नया शृगार किया। उसमे नवीन प्राण-प्रतिष्ठा की। इस भाषा मे गगा या ब्रह्मपुत्र का मन्थर प्रवाह नही है, अमरकटक मे उद्‌गम पाने वाली नर्मदा की पार्वतीय गति है, जिसके किनारे सस्कृत निवास करती है और उर्दू भी बसी है, गति ही, अनवरत गति ही जिसका जीवन है। भाषा का ऐसा मिश्रण आचार्यो के मन नही भाया। किसी ने तो यहाँतक कह दिया—'मैं चतुर्वेदीजी की भाषा को भाषा नही मानता।' पर ऐसे कहने-न कहने से तो भाषा का कुछ बनता-बिगडता नही। प्रत्येक क्रान्तिकारी साहित्यकार को यह जन-रव सुनना ही पडता है। भाषा को चतुर्वेदीजी के हाथो नया सस्कार मिल है। यह सत्य है और आने वाली पीढियाँ भी इसे स्वीकार करेगी। चतुर्वेदीजी की भाषा पर उर्दू-काव्य का प्रभाव है। वाक्यो के घुमाव, शब्द-योजना, पद-सकलन मे वन-प्रान्त की पगडडी की डगमग अल्हडता है। उर्दू काव्य की अभिव्यक्ति मे तात्कालिक प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति अजेय रहती है। यह गुण श्रोता या पाठक को तत्काल ही मत्रमुग्ध किए बिना नही रहता। चतुर्वेदीजी ने इस तात्कालिक प्रभावोतपादक गुण को अपनी भाषा की शक्ति माना है।

इसका अर्थ यह भी नही कि चतुर्वेदीजी की भाषा-शक्ति केवल यही तक सीमित है। एक जिज्ञासु अन्वेषक की भाँति चतुर्वेदीजी ने अनवरत रूप से भाषा की भूमि मे जय-स्तम्भ स्थापित किए है। भावो के सूक्ष्म स्वरूप की मूर्ति बनाना, अमूर्त एव अदृश्य भाव को मूर्तमन्त, साकार आकृति प्रदान कर, उसमे चेतना फूँककर हर शब्द को नई सजधज के साथ उपस्थित करने मे उन्होने बडा उत्साह दिखलाया है।

आसपास के वातावरण से जिस प्रकार व्यक्ति की महिमा बढ़ती है और

उसके चरित्र का रूप बनता-बिगडता है, उसी प्रकार अपने पडोसी शब्द के साथ हर शब्द की महिमा ही दूसरी हो जाती है। चन्द्रमा के चारो और यदि आसमानी रग न हो तो सम्भव है कि चन्द्रमा उतना आकर्षक न लगे, आसमानी रग की पार्श्वभूमि पाकर ही चन्द्रमा इतना खिलता है। ठीक इसी प्रकार शब्द चन्द्रमा के चारो ओर यदि विभेद (Contrast) उत्पन्न करने वाली शब्द-रेखाएँ हो तो उस विशेष शब्द का रग अधिक चटकीला हो जाता है। इस दृष्टिकोण को चतुर्वेदीजी ने खूब समझा है। इसीलिए जिस शब्द या भाव को उन्होने महत्त्व देना चाहा है उसके चारो ओर ऐसी शब्द-योजना जुटाई है कि वह विशेष शब्द या भाव अपनी पडोसिन भाषा के कारण अधिक सार्थक एव प्रसन्न हो उठा है।

शब्दो के रगो को चटकीला बनाने का सहज उपाय है कि विशेषण बडी सावधानी से रखे जाएँ। विशेषणो का उपयोग करने मे चतुर्वेदीजी बधाई के पात्र है। विशेषण सबल हो, वह सज्ञा की पूर्व विशेषता का परिचायक हो, भले ही वह सस्कृत, उर्दू और फारसी या अग्रेजी की उधारी हो, "वेदान्त की रेतीली आवाज मे, 'सोऽहमस्मि' सुनकर हम समझ भी लेते है, सिर भी डुला देते है।" आवाज के साथ 'रेतीली' विशेषण का आना कितना बोधगम्य है। 'रेत' शब्द की नीरसता कर्कशता, निष्फलता, उर्वरहीनता इत्यादि सब अर्थ 'आवाज' मे एक साथ सिमिट कर आ बैठे है। ऐसे उदाहरणो का चतुर्वेदीजी की भाषा मे टोटा नही है।

चतुर्वेदीजी की भाषा उदार है। उसमे सकुचित मनोवृत्ति के लिए स्थान नही है। शब्द विदेशी हो या प्रान्तीय अथवा देशज, उसे ग्रहण कर अपने उपयुक्त बना लेना और उसमे नया सस्कार उत्पन्न कर देना उनकी भाषा को बहुत पसन्द है। भावाभिव्यक्ति की परिस्थितिजन्य आवश्यकतानुसार शब्दो को मोड देना तथा 'जरूरत के कारखानो' के समान मुहावरे बना लेना भी चतुर्वेदीजी की ही सूझ का सामर्थ्य है।

योग्य पिता की पीढी मे यदि योग्य पुत्र ही उत्पन्न हो जाय तो उसकी पीढी के इतिहास को जानने मे अडचन नही होती। एक गद्य-खड (Paragraph) का आगामी गद्य-खड से पिता-पुत्र का ही सम्बन्ध होता है। ऐसे पिता-पुत्र के सम्बन्ध की भावना को समझकर ही चतुर्वेदीजी ने अपने विचारो के इतिहास को गद्य-खडो के विभागो मे बडी कुशलता से बाँटा है। वैष्णव भक्त के समान पाठक भावो की माला के दाने सरकाता चला जाता है तथा चतुर्वेदीजी के विचार-प्रधान गद्य का रसास्वादन प्राप्त करता है।

इस प्रकार पडित माखनलाल चतुर्वेदीजी ने हिन्दी गद्य और पद्य दोनो की भाषा को नयी दिशा और नवीन सस्कार प्रदान किया है। भाषा के निर्माताओ की कड़ी मे चतुर्वेदीजी एक अनिवार्य व्यक्तित्व बन गए है।

क्रान्ति की भाषा और आस्था का एक स्वर

◇ ◇

कृष्णबिहारी मिश्र

पडित माखनलाल चतुर्वेदी विश्रुत मनीषी-चिन्तक है, जिन्हे हिन्दी की दुनिया 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से जानती है और जो अपनी धरती पर सहज आस्था से खडे होकर जातीय प्रश्नो पर हमे अपनी दृष्टि देते है। उनका पूरा परिचय देने के लिये इतना और कहना जरूरी है कि वे एक तेजस्वी पत्रकार भी रहे है जिन्होने पत्रकारिता को देश-सेवा के अनुकूल माध्यम के रूप मे अपनाया था। और यह कि हिन्दी के दो-चार विशिष्ट वक्ताओ मे एक नाम माखनलाल चतुर्वेदी का लिया जाता है।

क्रान्तिकारी स्वर-स्रष्टा के रूप मे माखनलालजी का नाम उस समय भी काफी जोर से लिया जाता था जब जातीय स्वाधीनता के लिये पूरा देश जूझ रहा था और काफी गहराई से हम महसूस कर रहे थे कि भारत मे हमारे अज्ञान पर जीने वाला शासन होने के कारण हम सदैव विश्व के ज्ञान को बहुत देर बाद पाया करते है। और इस लाचारी के चलते हम बहुत-सी गलत बातो को सही मानते रहे है जैसे अपने को बडा सिद्ध करने के लिये धरती छोडकर गगन-बिहारी बन जाना और आकाश की बोली बोलने लगना। ऐसे ही उखडे हुए आकाशी लोगो को टोकते हुए पडित माखनलाल कहते है, "नही, आसमान के-से विचार हो परन्तु हम जमीन पर है, यह न भूले। हमे जो बोलना होगा जमीन की बोली मे बोलना होगा। हम जमीन पर रहते है जिस पर हम जन्मे है, हम जमीन पर पैदा हुए है और जमीन के उथल-पुथल के सदेशवाहक होकर ही हमे रहना है। अत: आसमान की बाते भी हम जमीन की बोली मे बोले।" यह बात विशेष रूप से उन्हे लक्ष्य कर कही गई है जो कृत्रिम पख खोसकर हमेशा उडते-उडते चलते है। और जिन्हे साहित्य-निर्माण की नही, केवल साहित्य परोसने की आदत है। माखनलालजी के शब्दो मे, "वे महापुरुष हो सकते है किन्तु साहित्यिक नही।" माखनलालजी उन्हे भी सही नही मानते जो पानी की चट्टान पर अपने सपनो के

चित्र बनाने के अभ्यासी है। इस प्रकार जो काल की पृष्ठभूमि चुनने मे भूल करता है उसे लक्ष्य कर चतुर्वेदीजी कहते है, "उसके चित्र धुधले हो, उसके गीत दुरूह हो, उसके स्वर अर्थहीन हो और उनकी इच्छाए लोकरुचि तक पहुँचने मे असमर्थ हो, तो उसमे आश्चर्य क्यो होना चाहिए ?" अपनी बात जरा और स्पष्ट करते हुए माखनलालजी कहते है, "जब तक सत थे, वे लोकवाणी बोलते थे, लोक-वाणी लिखते थे, लोकवाणी गाते थे, और लोक-हृदय मे वाणी को पहुँचाते थे। जब ऋषित्व और सन्तत्व गया तब हम शहराती जबान लिखने लगे । वह जिस पर थोडे से सिर डुल ले, वह जिसमे गिने-चुने शिक्षितो के मनोभाव प्रतिबिम्बित हो सके। कल्पना मे रसीला साहित्य देखने की हमारी दौड प्रकट करती है कि मानो हम आत्मनाश का खेल खेलते है।" इस खतरे के प्रति सचेत करते हुए वे कहते है, ' जब रसीली धारणाओ से चिपकने वाली एक पीढी हम निर्माण कर चुकेंगे, तब जिस तरह समुद्र का ज्वार समुद्र ही के बेकाबू हो जाता है, उसी तरह पीढी रसीले कलाकारो के भी बेकाबू हो जायगी, और एक बागी सेना की तरह, जब कलाकार जीवन की ओर लौटना चाहेगा तब रसीलेपन की रिश्वत पर जीने वाली वह पीढी कलाकार के साथ लौटने से इनकार कर देगी। क्या हम यह खतरे का व्यापार बन्द न करेगे ?" कहना न होगा कि इतना महत्त्वपूर्ण सवाल वही उठा सकता है जिसे संस्कृति की नब्ज की सही पहचान होगी। पडित माखनलाल मे यह परख-शक्ति पूरी मात्रा मे है तभी वे कहते है, "हम बारीक खयालो से चाहे जितने आगे बढने के आडम्बर करे, खयाल को जीवन बनाकर अथवा जीवन मे खयाल देकर सरलता के साथ अपनी बात कहना शायद भूल गये है और जो सरल भाषा मे सरल बात कहता है उसकी निश्छलता पर सन्देह-चिह्न लगाये बिना हमसे रहा नही जाता।"

जहाँ तक रुचि का सवाल है इरादो और सकल्पो को छुपाने की शहराती सभ्यता को, और जो है उसे छुपाने और जो नही है उसे प्रकट करने की नागरिक आदत को, माखनलालजी एकदम पसन्द नही करते। शायद इसीलिए प्रेमचन्द उन्हे 'अपील' करते है। प्रेमचन्द उन्हे इसलिये भी अच्छे लगते हैं क्योकि, "उन्होने जीवन को धर्म और सम्प्रदायो की तरह किश्तो मे कही भी नहीं बाटा। वे अन-विच्छिन्न जीवन के व्यापक समर्थक रहे।" यह मानवीय समर्थन साम्प्रतिक साहित्य मे क्षीण होता जा रहा है और लोक-जीवन की हाक लगाने वाले या व्यक्ति-गुहा मे सिमट गये है या साम्प्रदायिक नारेबाजी मे हकलान हो रहे है। कदाचित इसी तरुणाई की शक्ति के कायल होते हुए भी पडित्त माखनलालजी नवलेखन की कमजोरियो को बढावा नही देते। साहित्य और साहित्यकार की समस्याओ पर काफी गहराई और सहानुभूतिपूर्वक पूर्वग्रह-मुक्त होकर माखनलालजी ने विचार किया है लेकिन उन्होने कभी गलत बात से समझौता नही किया और न रुग्ण धारा

मे तैरने की कभी कोशिश की ।

हम जानते है, नवलेखन मे एक रुग्ण धारा चल रही है। और आज की एक आम शिकायत है कि हमे सुविधा-साधन नही मिलते, हम अपनी रचनात्मक शक्ति का प्रमाण कैसे दे ? माखनलालजी का इस धारा से, इन अनास्थावादियो से किसी प्रकार का समझौता नही हो सकता। उनके असन्तोष को, उनकी भूख को, उनके त्रास को यानी उनकी पूरी लाचारी को सही रूप मे स्वीकारते हुए भी माखनलालजी ने उनकी पलायन-वृत्ति को कभी प्रश्रय या सरक्षण नही दिया क्योकि उनका विश्वास है कि "चिन्तक की रचना के लिये नन्दन कानन ढूँढने की जरूरत नही हुआ करती। किन्तु लोग तो है कि उन्हे पहाड़ का चित्र बडा प्यारा लगता है किन्तु प्रत्यक्ष पहाडो की चट्टानो को देखकर उससे अरुचि और विरक्ति हुए बिना नही रहती। खयालो का यह जनानापन हमारी शहराती पीढियो मे बडे वेग से आ गया है। कभी सस्कृति, कभी इतिहास और कभी रस के नाम पर कोमलता के कायल होते हुए हम मानो प्रत्यक्ष की प्रखरता का सामना ही नही करना चाहते।" वर्गवादी न होते हुए भी माखनलालजी ने फैशनपरस्त कलावादियो के पूरे वर्ग के विरुद्ध प्राय आवाज उठाई है।

अपने समान-धर्मा और सनातन पीडित कृती साहित्यकारो के प्रति उनके मन की पूरी हमदर्दी प्रकट होती है जब वे कहते है कि, "हम नही जानते आज का कलाकार मकान मे रहता है कि कारागार मे। उसे रोटियाँ मिलती है कि नही मिलती, उसके परिवार की जिम्मेदारिया भी उस पर है या वह पशुओ की तरह गैरजिम्मेवार है ?" किन्तु उनका दृढ विश्वास है कि बडी रचना के लिए बडी पीडा भी झेलनी पडती है और सघर्षो मे ही स्वस्थ साहित्य का निर्माण होता है। कदाचित इसीलिये बम्बई विद्यापीठ के दीक्षान्त समारोह मे उन्होने नि सकोच होकर कहा था कि, "हिन्दी भाषियो से यदि मैं कहू या समस्त भारतीय साहित्यिक तरुणाई से मैं कहू तो, प्रेमचन्द और जयशकरप्रसाद की मौत मै तुम्हे सौपता हूँ। मैंने सुना कि वे अपना इलाज नही करा सके। यह भी जानने की बात है कि जीते-जी मगलाप्रसाद पारितोषिक नही पा सके। न हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति का गौरव उन्हे दिया गया।" फिर भी वे महान थे क्योकि सघर्षो मे पले थे, सघर्षों मे जीने के अभ्यासी थे और शायद इसीलिये उनके कृतित्व मे एक आलोकवर्णी सवेदना है जो प्रमाणित करती है कि वे हिन्दी जगत मे अपने युग के गवाह मात्र न थे, वे एक बहुत बडी आवश्यकता थे। आज जब कला और कलम प्रिय या मौलिक होने के लिये डावाडोल दिखाई देने लगी है, माखनलालजी की वाणी इस बात का ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत करती है कि पराधीन भारत के लेखको, चिन्तको, कवियों और पत्रकारो के पास एक निर्भीक वाणी थी जिसका ताप धीरे-धीरे बुझ रहा है या कहना चाहिए वाणी की वह निर्भीकता और समृद्धि दुर्लभ होती जा रही है।

कहना न होगा कि मानव-अस्तित्व की रक्षा के लिए और मानव-महिमा की प्रतिष्ठा के लिए निर्भीक वाणी अनिवार्य शर्त है। अन्याय और अनौचित्य का विरोध करने के लिये, मानव मूल्य और मानवीय सवेदना के उन्नयन के लिये वही वाणी चाहिए जो श्रीकृष्ण और गाधी की थी, तुलसी और निराला की थी या फिर विनोबा और माखनलाल की है। 'वाणी की दीनता' से क्षुब्ध होकर माखनलालजी कहते है कि "यदि श्रीकृष्ण की तरह हम वेणुवादन और रसक्रीडा के साथ ही सिंहासनो के उलटने, मुकुटो के गलाये जाने और महाभारत के बीच महाप्रलय कर देने के सपने अपनी कलम पर नही उतार सकते तब हम पुस्तको की ढेरी अथवा आत्मवेदना की डोरी पर चढकर अपनी अमरता ढूढने क्यो निकलते है ?" और अनुरोध के स्वर मे चतुर्वेदीजी कहते है कि, "भीख की भाषा और मुख की बोली से कृपापूर्वक साहित्य की रक्षा करे।"

इकत्तीसवे सम्मेलन के अध्यक्ष पद से १६४३ ई० मे साहित्यिको को उन्होने एक जागरण मन्त्र दिया था कि "तू अनुभव कर कि सेवाग्राम की भारतीय शक्ति ने तेरी वाणी चाही थी इसलिये कि इस वाणी से यह उनके भाग्य का लिखा मिटा सके जिनके भाग्य पर गुलाम लिखा है, और तेरी वाणी मे—उस वाणी मे जो आसेतु हिमाचल व्याप रही है—'मुक्त जीवन' उनके भाग्य पर लिख सके। वह तरुणाई जो कारखानो मे चल रही है, खेतो मे खप रही है, क्रान्ति की साधना के लिये तेरा मुह ताक रही है।" यह क्रान्ति की भाषा और आस्था का स्वर है जो स्वाधीन भारत के साहित्य मे एक अश तक खण्डित हो गया।

'बगावत' का नारा लगाते जिनका कठ सूख रहा हो और 'बगावत' की माला जपते जिन्हे झपकी आने लगी हो उनकी आँखो पर छीटे मारकर माखनलालजी की वाणी उन्हे सचेत करती है कि प्रतिकूलता का नाम बगावत नही है। "प्राणो पर खेलकर लोक-जीवन की धारा को उन्नत से उन्नततर जगत् की ओर घुमा देना सच्ची बगावत है। निर्माण के हर कील-काटे को उखाड फेंकना बगावत नही है। जिस निर्माण पर मानव-पतन, मानव-दैन्य, मानव-आडम्बर, मानव की कमजोरी और मानव के निरकुश अत्याचारो का प्रासाद खडा है, उसकी ईंट से ईंट बजाने की प्रेरणा देनेवाली हुकार करना सच्चा विद्रोह है।" विद्रोह की यह परिभाषा माखनलालजी की अपनी है। और इस परिभाषा के अनुसार माखनलालजी की वाणी शुद्ध विद्रोह की वाणी है। बडी विडम्बना है कि विद्रोह की भाषा हमे अच्छी नही लगती, इसीलिए जान-बूझकर हम उससे कतराते है। हमारी इस पलायन वृत्ति या परहेज (!) के चलते विद्रोही वाणी को उचित मूल्य-महत्त्व नही मिल पाता। परिणामत हर सचाई को सस्कृति के नाम पर गलत मान लिया जाता है और हर गलत बात को सास्कृतिक अन्दाज मे गलत मनवाने की कोशिश की जाती है। पडित माखनलाल ऐसी कोशिश को निहायत गलत मानते है।

शायद इसीलिये नागर सस्कृति पर मुग्ध, 'कैफे की गध मे डूबे साहित्यिको को सचेत करते हुए वे कहते है कि "केवल जवानी के भिनकते बेइख्तियार क्षणो को लिखना ही उचित न होगा। हमे लोक-जीवन लिखना होगा। हम शहराती-साहित्य क्यो लिखते है, क्या हम हार मान चुके है कि लोक-जीवन नही लिख सकते ?

हम शहरो मे रहते है। शहर के कुछ लोगो को लेकर विचार करते है और पन्द्रह फीसदी की आबादी और दो फीसदी के विवेक को लेकर साहित्यिक व्यवस्था देते है। और कहते है कि यह समस्त देश का विचार है। इस व्यवस्था को बदलना होगा। हमारा यह गर्व झूठा है कि गॉव मे, साहित्य नही रहता या साहित्य नही समझा जाता। तुलसीदास, सूरदास कबीर इनमे कोई भी न राज-गद्दी प्रदत्त कवि है और न शहरातीपन का दीक्षित।" आज भी कुछ ऐसे साहित्य-कार हुए है जिन्हे नागर सस्कृति और दरबारी गध धक्का मारकर वितृष्ण करती रही है और जिन्हे हम पराजित मनोभाव के वशीभूत होने के कारण, सदा हिकारत की निगाह से देखते रहे है। हमारे बुजुर्ग मनोभाव का सबूत यह है कि जब क्रान्ति का स्वर लोक-चित्त पर विश्वास-विजय प्राप्त कर लेता है तब उसकी अगवानी मे गाजे-बाजे के साथ हम सब से आगे होते है। इस ओछी प्रवृत्ति को धिक्कारते हुए माखनलालजी कहते है कि 'हमारा निर्लज्जता से भरा अध.पात वह है कि उस निर्भीक और गरीब साहित्यिक की वाणी, जन-जन और कण-कण मे व्याप्त होती है तब उसके स्वागत का जय-घोष करनेवालो मे अपने व्यवस्थित सगठन के कारण हम सबसे आगे होते है, और अपनी बलि के मूल्य पर उसे बढा-कर लानेवाले गरीबो को पीछे छोडकर अपने चमकीले वैभव से हम वह चकाचौध उत्पन्न करते है कि गरीब और विजयी कलाकार के कठोर कष्टो और सादी तपस्या को लोग भूल जायँ और उस पर पथभ्रष्ट होकर स्वार्थ-साधन के इल्जाम लगने लगे। साथ ही उसके तेजस्वी साथियो का समाज सम्मानित और सगठित न हो सके। इसी प्रकार एक विशिष्ट और पुरानी प्रतीति से सहमति प्रकट करते हुए माखनलालजी ने लिखा है कि यदि कलाकार तेजस्वी है और झुकना नही ज.नता तो उसका साहित्य नवरसो से जिस रस मे भी लिखा आता है मचो के महामानव, हम, उसकी हर कृति मे दोष निकालते है।" निराला की यही नियति थी और मुक्तिबोध हमारी इसी अरोचकी मनोवृत्ति के कारण उपेक्षित रहे। इन मनीषी कवियो के उठ जाने के बाद हमने उनके नाम पर जो जलसे और तमाशे किये वे इन बात को भी प्रमाणित करते है कि मृत्यु के उपरात श्राद्ध देने के हम अभ्यस्त है और पत्थर की पूजा मे ही हम अपनी आराधना की सार्थकता मानते रहे है। हमारा यह सस्कार हमारी सस्कृति की कदाचित् सबसे बडी कमजोरी है। पडित माखनलालजी का कृतित्व ऐसी कमजोरियो से बचने की बलवती प्रेरणा देता है

ताकि नये आलोक को पकडने मे हम चूक न जाये ।

शुरू मे कहा गया है कि पडित माखनलाल चतुर्वेदी एक मनीषी चिन्तक है जिन्होने जातीय समस्याओ पर काफी गहराई से विचार किया है। खास तौर से साहित्य और साहित्यकारो की समस्या पर । यानी उस वर्ग की समस्या पर जिनके ऊपर एक महत् सामाजिक दायित्व है। महत् दायित्व को वहन करने वाला कधा मजबूत होना चाहिए क्योकि बडे दायित्व के साथ बडी-बडी कठिनाइया भी रहती है और बडे खतरे भी रहते है। इस सन्दर्भ मे माखनलालजी ने एक बडी बात कही है कि "प्रतिभाशील साहित्यिक का पथ कडुवा भी तो है। किसी साधनाशील कला पर प्रतिभाहीनताकेआक्रमण का वह उचित समय होता है, जब अपने क्रान्तिमय विचारो के कारण धनिक उससे बिगड उठते है और उसे साधनहीन रखकर दारिद्रय प्रदान करते है, शासन उसे रूढियो के ऊपर पाकर सन्देह करता है और ऐसा कोई कष्ट नही होता जो उसकी सूझ के प्रजनन पर उसे दिया न जा सके। ऐसे समय कलाकार के ऐसे साथी उसे अकेला छोड देते है जो अमीरी के आदी है और प्रभावशील का शिकार करते है।" हिन्दी साहित्य और साहित्यकार की यही यथार्थ स्थिति है। एकाकीपन के त्रास ने महान प्रतिभावान, कवि निराला को विक्षिप्त कर दिया। माखनलालजी स्वय बडी पीडा के साथ यह महसूस करते रहे है कि अपनी विद्रोही वाणी के चलते उन्हे सदैव यत्रणा झेलनी पडी है और यह कि वह पीढी अब आयी है जो उन्हे पीडित नही देख सकती और जो उनका झुकना नही बर्दाश्त कर सकती। इस नयी पीढी के प्रति माखनलालजी के मन मे बडी ऊँची सम्भावना है। "यदि हम नवीन प्रतिभा के अपराधियो को साहित्य मे भी क्षमा कर सके, यदि हम उनके प्रखर तेज को सह सके, उनको रूढि और परम्पराओ के माप से न मापें और विश्वास करे कि जिस तरह बोली बोली जाने के बाद व्याकरण के नियम भाषा के पीछे-पीछे बनते चले आते है उसी तरह नवीन साहित्य के निर्माण के बाद उसकी परम्परा को भी बनने मे देर न लगेगी तो साहित्य को कौन-सी हानि होगी ?"

इसी तरह भाषा के प्रश्न पर विचार करते हुए सन् १६५२ मे माखनलालजी ने बडी तेज बात कही थी, "क्या करोडपतियो के द्वार पर ईमान रहन रखकर भीख माँगती हुई आपकी मातृभाषा की तसवीर आपको भली मालूम होती है ? यदिआप अपनी सहायता के कण-कण लेकर उपस्थित हो तो इस महान् कोष मे हृदयवान धनपति अपना अश मिलाये बिना न रहेगे। किन्तु हमे पहले अपने जीवन और साहित्य की कृत्रिम परिभाषा बदलनी होगी। विद्या तो वह जो मुक्त करे और विद्वान् वह जो भीख माँगे—कैसी विडम्बना है ? अत पीढी उठे, पीढियाँ उठे, पीढियो के प्राण उठे, पीढियो के मस्तक उठे और अपनी एक कोठी निर्माण करेऔर उसेएक ट्रस्ट बनाकर किसी बैंक मे रखवा दे। यदि भूमिकर की

तरह साहित्य का घर भी हिन्दी भाषियो और हिन्दी प्रेमियो की अनिवार्य आवश्यकता हो जाय तो शासन और धनवान दोनो के इस दिशा मे किये हुए प्रयत्न विधायक रूप से काम मे आने लगेगे। नही तो जिस तरह रुपया धनिको और शासन का होगा उसी तरह इच्छाएँ भी उन्ही की होगी और कार्य भी उन्ही की मर्जी से होगे या न होगे। "और इससे भी भयकर परिणाम यह होगा कि कलम और ईमान बेचने से इनकार करने पर साधन वालो द्वारा उसे भूखा मार डालने के खुले षड्यन्त्र का सामना करना होगा।" हिन्दी की हर प्रगतिशील धारा को ऐसे षड्यन्त्रो का सामना करना पडा है, इतिहास इसका साक्षी है। अस्तु। माखनलालजी का यह सकेत उनके चिन्तन की उन्नत भूमि को द्योतित करता है।

जब हम कहते है कि माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी के महान चिन्तक है तो उनका सम्पूर्ण कृतित्व हमारे सामने होता है। अकसर देखा जाता है कि जिन्हे हम चिन्तक या विचारक कहना शुरू करते है वह भारी सकट मे पड जाता है क्योकि भ्रान्तिवश उसके सामने सहजता छोडकर गभीरता ओढने की मजबूरी आ जाती है। और तब वह हमसे कटकर बहुत दूर पड जाता है क्योकि उसकी उलझी चिन्ता और रहस्यमयी भाषा हमारी समझ मे नही आती, उससे हमे कोई मानसिक सहारा नही मिलता। हिन्दी मे ऐसे चिन्तको की कमी नही है जिनका चिन्तन दूसरो के काम नही आता। प० माखनलाल चतुर्वेदी इनसे एकदम अलग है क्योकि वे 'खयाल को जीवन बनाकर' जीने के अभ्यस्त है। कदाचित इसीलिये वे सहज भाषा मे चिन्तन का आलोक बडी आसानी से हमारे दिल-दिमाग तक पहुँचा देते है। और यही रहस्य है उनकी लेखनी की सार्थकता का जो थमी हुई जातीय चेतना को उकसाने और गत्वर करने मे पूरी तरह सफल हुई है।

साहित्य-देवता और नव्य समीक्षण

◇ ◇

कन्हैयालाल सहल

'साहित्य मे किसी की तसवीर खीचते-खीचते व्यक्ति की भी एक तसवीर खिचती चली जाती है।' कलाकार जब कोई चित्र अकित करता है तो 'कल्पना की जीभ लिखने लगती है, कलम की जीभ बोलने लगती है।' साहित्य मानव-हृदय का मुग्ध सस्कार है, अनन्त जाग्रत आत्माओ का ऊँचा और गहरा स्वप्न है। वह वाणी के सरोवर मे अन्तरात्मा के निवासी की जगमगाहट है। लहरो से परे, पर लहरो मे खेलते हुए। वह वेदनाओ का सग्रहालय है, मानव-जीवन की अब तक पनपी हुई महत्ता का मन्दिर है। वह जमीन को आसमान से मिलाने वाला जीना है। वही द्विपद और चतुष्पद का विश्व को निगूढ तत्त्व सिखाता है। व्यास का कृष्ण और वाल्मीकि के राम साहित्य के पखो पर चढकर हजारो वर्षों की छाती छेदते हुए आज भी लोगो के हृदयो मे विराज रहे है।

साहित्य, देवत्व को मानवत्व की चुनौती है। यह वह लालटेन है जिसके सहारे ऋषियो का राग, पैगम्बरो का पैगाम और अवतारो की आन युगो को चीरती हमारे पास तक आ पहुँचती है।

साहित्यकार सूझ-बूझ का धनी होता है। अनन्त काल से प्रत्येक युग का साहित्यकार कल्पना करता आया है किन्तु आज भी उसकी गति अप्रतिहत है। वह सूरज और चाँद को अपने रथ के पहिये बना, सूझ के घोडो पर बैठे, बढे ही तो चला जा रहा है।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी के 'साहित्य-देवता' से यदृच्छाय कुछ पक्तियाँ मैंने ऊपर उद्धृत की है। इनको पढकर मुझे लगा है कि चिन्तक चिन्तन के बल पर जिन तथ्यो पर पहुँचता है, साहित्यकार सहज ज्ञान के सहारे उन्ही तथ्यो की उपलब्धि करता है।

साहित्य-देवता का चित्र खीचा जा सकता है या नही, यह तो 'साहित्य-देवता' स्वय जाने किन्तु साहित्य मे जो चित्र खीचे जाते है, आधुनिक समीक्षक

उनके विश्लेषण मे लगे है। रिचर्ड्स ने इस बात पर बल दिया था कि काव्य एक व्यवस्थित प्रक्रिया है जहाँ अन्त प्रेरणाओ का सकलन अथवा सगठन पाया जाता है और इसलिए काव्य का भी व्यावहारिक विश्लेषण किया जाना चाहिए।

टी० एस० इलियट ने सन् १६२३ मे लिखा था कि समीक्षण का कार्य मूलत व्यवस्था का कार्य भी है। भाषा-वैज्ञानिको ने तो ध्वनिग्राम और रूप मात्र के द्वारा भाषा का व्यावहारिक विश्लेषण किया है किन्तु प्रश्न यह है कि साहित्यालोचक भी क्या काव्य का उसी प्रकार का प्रायोगिक विश्लेषण कर सकते है ? पाश्चात्यालोचन के इतिहास मे दोनो महायुद्धो के मध्य वर्ती समीक्षको को 'नव्य समीक्षको' के नाम से अभिहित किया जाता है। अमरीका के नव्य समीक्षक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि समीक्षण विज्ञान नही है और इसे विज्ञान का रूप देना क्रम को उल्टा देना होगा। नव्य समीक्षण के प्रमुख अमेरिकी पृष्ठपोषक श्री जे० सी० रैनसम काव्य के मूल्य निर्धारण-हेतु रिचर्ड्स द्वारा प्रयुक्त विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के अत्यधिक प्रयोग को आशका की दृष्टि से देखते है। वे भी इतना तो स्वीकार करते है कि समीक्षा का वैज्ञानिक और व्यवस्थित रूप धारण करना परमावश्यक है किन्तु उनके मतानुसार इस प्रकार की वैज्ञानिकता विद्वानो के वस्तुगत सामूहिक प्रयत्नो द्वारा ही साध्य है।

नव्य समीक्षक यह नही चाहते कि एकान्त बुद्धि की सहायता से साहित्यिक कृतियो का वैज्ञानिक परीक्षण किया जाय। किन्तु वे यह अवश्य वाछनीय समझते है कि शब्द-विन्यास, समूर्तन तथा प्रतीक आदि द्वारा निर्मित साहित्य के गठन अथवा रूप का सम्यक् अध्ययन किया जाय।

काव्य-रूप के अध्ययन मे भाषा विज्ञान से कहाँ तक सहायता ली जा सकती है, यह भी विचारणीय है। जहाँ तक शब्दावली का सम्बन्ध है विज्ञान और काव्य मे एक बडा अन्तर दृष्टिगोचर होता है। विज्ञान मे इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि शब्दो को पूर्णत निश्चित अर्थ दे दिया जाय जिससे उनका अर्थ राई घटे, न तिल बढे। किन्तु काव्य मे इस प्रकार का स्थिरीकरण सम्भव नही। कविगण शब्दो मे नया-नया अर्थ भरते रहते है, अनेक शब्द जब पुराने पडकर मृतवत् कोश मे सोये रहते है, नूतन प्रयोगो द्वारा सर्जनशील कलाकार उनका कायाकल्प कर उनमे स्फूर्ति और ओज भर देते है जिसके कारण यह भास होने लगता है मानो शब्दो को पुनर्जीवन मिल गया है। लक्षणा और व्यजना कवि की ऐसी दो आँखे है जिनके द्वारा वह शब्दो की अन्तरात्मा मे प्रविष्ट होकर नये-नये अर्थों की झाकी ससार को दिखा जाता है। इससे स्पष्ट है कि काव्यालोचन मे भाषाविज्ञान की उस शाखा से, जिसे अर्थ-विज्ञान कहते है, सहायता ली जा सकती है। पाश्चात्य नव्य समीक्षक भी अपने समीक्षण कार्य मे इस प्रकार की सहायता को उपादेय मानकर चलते है।

टी० एस० इलियट ने भी निर्वैयक्तिकता पर बहुत बल दिया है जिसका प्रभाव नई आलोचना पर भी स्पष्टतः परिलक्षित होता है। उन्ही के शब्दो मे, ‘कवि माध्यम बनकर परम्परागत प्रभावो को कलात्मक रूप प्रदान करता है। रचना के समय उसका निजी व्यक्तित्व लुप्त हो जाता है।" किन्तु कवि की निर्वैयक्तिकता का अर्थ यह नही है कि उसकी कोई निजी मान्यताएँ नही होती। यदि होती भी है तो वह अपनी कृतियो मे उन्हे अभिव्यक्त नही करता। सच तो यह है कि तीव्र और व्यक्तिगत अनुभूति के द्वारा ही कवि एक सर्वसामान्य सत्य को वाणी देने अथवा जिह्वा प्रदान करने मे समर्थ होता है। अथवा 'भारतीय आत्मा' के शब्दो मे हम यह भी कह सकते है कि साहित्यकार ‘लहरो से परे है, पर है लहरो मे खेलते हुए।’

‘साहित्य देवता’ पढकर ऐसा लगता है कि सर्जनशील कलाकार काव्यात्मक बिम्बो का सहारा लेकर साहित्य देवता का चित्र खीचने लगता है। किन्तु कवि भी जब समीक्षक बनकर सामने आता है, तो अपने ही सर्जक रूप का वह विश्लेषण नही कर पाता। जो मूलत सश्लेषणात्मक अथवा सश्लिष्ट अनुभूति है, वह विश्लेषण की पकड मे कैसे आए? ‘साहित्य देवता’ मे प्रातिभ ज्ञान के सहारे सत्योपलब्धि का प्रयास है। ‘साहित्य देवता’ स्वत एक सर्जनात्मक कृति का रूप धारण कर लेती है क्योकि चतुर्वेदीजी का कलाकार जब चिन्तन करता है तब भी वह बिम्बो का ही आश्रय लेने लगता है। साहित्य-देवता जैसे आपके निबन्ध किसी भी साहित्य के, चाहे वह कितना ही समृद्ध क्यो न हो, शृगार बन सकते है।

छायावादी गद्य के पुरस्कर्त्ता

डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित

'गद्य कवियो की कसौटी है,' इस उक्ति मे गद्य के प्रति घनीभूत निष्ठा व्यक्त हुई है। पद्य (कविता) के दोष सहजोपलब्ध नही होते पर गद्य मे रचयिता की असमर्थता अधिक प्रकट हो जाती है। पद्य की एक उक्ति, कल्पना अथवा अनुभूति रचना मे चमत्कार और लालित्य का समावेश कर सकती है, पर गद्य का सर्वाश उत्कृष्ट होना आवश्यक अस्तु दुरूह है। एतदर्थ कवि कर्म की वास्तविक परीक्षा गद्य-लेखन मे है। गद्य मे केवल कृती की बौद्धिकता, वैचारिकता और वैज्ञानिक विश्लेषणपूर्ण विकल्पात्मकता ही नही अपितु रसात्मकता, भावात्मकता तथा आत्मिक सकल्पात्मकता भी अपेक्षित है। सम्प्रति गद्य उपयोगी और बौद्धिक हो रहा है और काव्य अनति विस्तारी रूप मे अव्याप्त हो उठा है। इस गद्य-युग मे भावो का गद्यीकरण होता चला जा रहा है, छन्दोविधान, अत्यानुप्रास, यति-गति आदि का तिरस्कार इसी प्रक्रिया का परिणाम है। हिन्दी गद्य के विकास-क्रम मे छायावादी काव्यान्दोलन का महत्त्वपूर्ण योग है। प्राय छायावाद का मूल्याकन उसकी काव्य निधि के आधार पर हुआ है, किन्तु कवित्व के अतिरिक्त गद्य-गरिमा मे भी यह परम्परा आत्यतिक समृद्ध है। नाटक, उपन्यास, कहानी, रेखाचित्र सस्मरण, जीवनी, निबन्ध, आलोचना आदि सभी गद्य-विधाए इस युग मे अकुरित, पोषित और पल्लवित हुई है। छायावादी कवि एक साथ ही भावुक और भावक है, वे रस-प्रयोक्ता और भोक्ता बनकर स्वस्थ सैद्धान्तिक और प्रायोगिक निष्कर्ष निरूपित करते है। प्राय अनेक रचनातत्रो का प्रवर्तन और अभिनव काव्य-मतो का अन्वेषण इस युग की विशिष्ट उपलब्धि है। छायावाद हिन्दी गद्य की प्रौढता का उत्कर्ष काल है। गद्य के कलेवर मे सुघरता एव मासलता की सृष्टि करके छायावाद ने उसे कवित्व से सरावोर करते हुए 'अलकृत सगीत' बना दिया है, जिससे वह एक विशिष्ट कोटि मे स्थापित किया जा सकता है। मेरी यह दृढ धारणा है कि छायावादी काव्य की भाति छायावादी गद्य का भी पृथक् अस्तित्व

है, क्योकि छायावाद तो एक प्रवृत्ति विशेष अथवा युगबोध है जो एक साथ ही पद्य और गद्य दोनो मे अवतरित हुआ है। प्रस्तुत गद्य अपने पूर्ववर्ती परम्परित गद्य से सर्वथा भिन्न है, अस्तु इसे निश्चय ही छायावादी गद्य के रूप मे स्वीकार करना सुसगत होगा।

'छायावादी गद्य' के वि‌शिष्ट कृतिकारो मे 'एक भारतीय आत्मा'— माखन-लाल चतुर्वेदी का नाम अग्रगण्य है। नाटक, कहानी, निबन्ध-सस्मरण और समीक्षा आदि सभी विधाओ मे उनकी गति तथा स्थिति है। चतुर्वेदीजी का गद्य साहित्य परिमाण मे विशाल है और गुणो मे उत्कृष्ट। नाटक-साहित्य के क्षेत्र मे 'कृष्णार्जुन युद्ध' और सस्मरण के साहित्य-क्षेत्र मे 'समय के पाव' उनके विशेष गौरव-ग्रन्थ है, किन्तु इन सबसे अधिक, उनके गद्य साहित्य मे सर्वोपरि एव उनके समस्त कृतित्व मे कीर्तिस्तम्भ स्वरूप कृति है 'साहित्य देवता'। आलोच्य कृति हिन्दी गद्य के इतिहास मे अपने अक्षुण्ण स्थान की अधिकारिणी है और छायावादी गद्य का प्रतिनिधित्व करने मे पूर्णत सक्षम है। छायावाद की सावयविक सन्निहिति उप-र्युक्त कृति मे प्रतिफलित हुई है, एतदर्थ चतुर्वेदीजी को छायावादी गद्य का पुरस्कर्त्ता स्वीकार किया जा सकता है।

'साहित्य देवता' बाह्य दृष्टि से भावात्मक निबधो का सग्रह है। कतिपय विचारको ने इसे गद्य काव्य' की कोटि मे प्रतिष्ठित किया है, किन्तु यह ध्यातव्य है कि चतुर्वेदीजी छायावाद के विशिष्ट कृती है, और रहे है, परिणामत छायावादी भावबोध का समग्र उन्मेष (अन्यान्य पद्य-काव्य-कृतियो के ही अनुकूल) प्रस्तुत गद्य कृति मे भी लक्षित होता है। इसे अनिवार्यत 'गद्य-काव्य' से परे कुछ और प्रामाणिक स्तर पर अधिष्ठित करना होगा। 'गद्य काव्य' एक स्थूल अभिधान है। इस सज्ञा से किसी भाव-वृत्ति का विशिष्ट आभास नही होता, अस्तु इस अस्पष्टता का निवारण करने के लिए इसका भिन्न नामकरण उपादेय और सगत है। वस्तुत छायावादी गद्य भी तथाकथित 'गद्य काव्य' का अगभूत शिल्प है। यह मात्र प्रकारान्तर है, इसलिए इसे 'गद्य काव्य' का अविरोधी, पूरक और तत्परिकर स्वरूप मानना समीचीन होगा। प्रस्तुत सज्ञा अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट, सूक्ष्म और सार्थक है। अस्तु 'छायावादी गद्य' की प्रवृत्तिगत विशेष-ताओ के आधार पर चतुर्वेदीजी के गद्य साहित्य (विशेषत साहित्य देवता) का आकलन ही प्रस्तुत निबध के सीमित कलेवर मे अवधार्य है।

आलोच्य गद्य रसात्मकता और सवेदनशीलता से ओतप्रोत है। इसका बाह्य रूप अलकृत, लययुक्त और छन्दोबद्ध-सा है जिसे देखकर सस्कृत के 'वृत्तगन्धि' का अनुमान होता है। आग्ल-साहित्य मे वर्ड्सवर्थ ने 'लिरिकल प्रोज' या 'वर्ड्सप्रोज' की जो धारणा प्रचलित की थी यह कृति उसी का प्रमाण ज्ञात होती है। प्रस्तुत गद्य निगूढ कलात्मकता, सप्राण अनुभूति, लाक्षणिक व प्रतीकात्मक अलकरण,

सूक्ष्म अपार्थिव भावतत्त्व तथा रस-समन्वित वैचारिकता का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसे वस्तुत भाव का नादमय चित्र और ध्वनिमय स्वरूप कहा जा सकता है। चतुर्वेदीजी ने चिन्तन से बोझिल भावो मे रसात्मकता का सचार करके कथा के अबाध प्रवाह को सुरक्षित रखा है। लेखक अपने गतिमय कथ्य, आत्मानुभूत सत्य और प्रबल भावातिरेक को प्राय सुसयत रूप मे प्रकट करता है जिससे कही भी अव्यवस्था अथवा दुराग्रह को स्थान नही मिला है। सामान्यत गद्य काव्य मे उत्कट भावावेग के कारण वैचारिक एकसूत्रता छिन्न-भिन्न हो जाती है और सामान्य लेखक इन भावाकुल आत्मकथनो मे अपने प्रतिपाद्य की रक्षा नही कर पाता, जिससे समस्त कथ्य अनर्गल अथवा विक्षिप्तिपूर्ण लगता है। इन अस्पष्ट और अनाधृत कथनो मे रहस्य तथा दर्शन का भी यत्र-तत्र आरोप कर दिया जाता है और उसका बाह्याग विशेषत श्रवण सुखद बना दिया जाता है, परिणामत पाठक केवल शब्द-शिल्प, लालित्य तथा प्रवाह मे ही भटक जाता है और प्रतिपाद्य विषय की ओर दृष्टिपात ही नही कर पाता। यह वैचारिक स्थिरता और न्यायिक सतुलन चतुर्वेदीजी के गद्य की प्रमुख विशेषता है।

'साहित्य देवता' का गद्य दो श्रेणियो मे उपविभाजित किया जा सकता है। प्रथमत वह अश जो काव्योन्मुखी है और गद्य वाली धारा-शैली मे लिखा गया है। द्वितीयत विचार-प्रधान अश जिसमे विवेचनात्मक समस्याओ पर लेखक के वैयक्तिक चिन्तन का प्रभाव है। इस प्रकार चतुर्वेदीजी के गद्य साहित्य का अधिकाश आद्यन्त काव्यात्मक, भावात्मक और रागात्मक है। उन्होने बौद्धिकता की अपेक्षा हृदयवृत्ति को प्राथमिकता दी है। रसस्निग्ध हार्दिकता और कलात्मकता के माध्यम से ही लेखक विचार अथवा विश्लेषण मे भी प्रवृत्त होता है। कल्पना और भाव यद्यपि उनकी अभिव्यक्ति के साधन है, पर वे साध्य से अविच्छिन्न है।

"मेरी कल्पना की जीभ को लिखने दो, कलम की जीभ को बोल लेने दो। किन्तु हृदय और मसिपात्र दोनो तो काले है। तब मेरा प्रयत्न, चातुर्य का अर्ध-विराम, अल्हडता का अर्धविराम, केवल धवलता का गर्व गिराने वाला श्याम मात्र होगा। परन्तु वे काली बूदे अमृत बिन्दुओ से भी अधिक मीठी, अधिक आकर्षक और मेरे लिए अधिक मूल्यवान है, मै उनमे अपने आराध्य का चित्र जो बना रहा हू।"

अरूप के रूप-चित्रण मे चतुर्वेदीजी ने रूपकात्मकता का आश्रय लिया है। उनके काव्य-प्रतीक बडे भास्वर है, जिनके आश्रय पर लेखक बिम्ब-विधान मे सफल होता है और एक भावात्मक चित्र अकित कर देता है।

"विस्तृत नीले आसमान का चित्रक पाकर भी, देवता तुम्हारी तसवीर खीचने मे शायद दैवी चितेरे इसलिए असफल हुए, उन्होने चन्द्र की रजतिमा की दावात मे कलम डुबोकर चित्रण की कल्पना पर चढ़ने का प्रयत्न किया और

प्रतीक्षा की उद्विग्नता मे सारा आसमान धब्बीला कर चलते बने। ऐ विश्व के प्रथम प्रभात के मंदिर, उषा के तमोमय प्रकाश की चादर तुम्हे ओढाकर तुम्हारे उस अन्तरतर का चित्र खीचने आऊगा ..." यहाँ प्रस्तुत उपकरणो के साथ अप्रस्तुत का रूपाकन एक विलक्षण कल्पना है।

युग-समस्याओ पर चतुर्वेदीजी ने बडी रसपेशल पद्धति से अपने निष्कर्ष निर्धारित किये है। साहित्य, काव्य, कला, मौलिकता-मतभेद, कवि, सवाददाता, जीवन प्रेम, धर्म, सम्प्रदाय आदि ऐसे ही प्रश्न है जो प्रामाणिक रूप मे यहाँ समाधित हुए है। काव्य के प्रति कवि की घनीभूत निष्ठा है। उसके दैवी उत्पत्तिवादी सिद्धान्त पर लेखक का अभिमत है— "काव्य चाहे दैवी न होकर राक्षसी हो किन्तु कुछ तो है, मजिल न हो लेकिन मील का पत्थर तो है। आज के कलमबद, तुम्हारा नाम है असहाय नाश और अमर निर्माण। मगनबिहारी, गगनबिहारी होते है। साहित्य के जनक अमर मानक का प्रखर अस्तित्व जानते है। तब प्रारम्भिक प्रसव और प्रथम सस्कार लिखना ही होगा।"

कवि को सम्बोधित करते हुए चतुर्वेदीजी बडी ओजस्वी भाषा मे उसे सत्सकल्पो के लिए प्रेरित करते है—"तुम कवि हो, विश्व-हृदय के गायक। परन्तु तुम हो बिना इच्छा किए, बिना जाने कवि। तुम्हारे मन की बलवान् उथल-पुथल और तुम्हारे स्वप्नो का विश्व बनाने चित्रण तुम्हारी वाणी या कलम के घाट उतरने लगता है।" सत्कवि के लिए लोक-जीवन की आस्था और आत्म-तटस्थता अत्यधिक अपेक्षित है—"वह कवि है। लोक-जीवन के आसुओ से गीला, लोक-जीवन की चाहो से दर्दीला और इस इच्छा से दूर कि वह कवि हो, और इस बात को बिना जाने कि वह कवि है।" आज के युग-विचारको की धारणा है कि विज्ञान की बाढ मे कविता का विनाशकाल आ रहा है किन्तु चतुर्वेदीजी के मतानुसार जब तक 'समय का पख' है, जब तक मनुष्य मे हृदय है, हृदय मे सुकोमल भावनाओ का आन्दोलन है और मनोभावो का प्रभाव है तब तक कविता अमर है। साहित्य को लेखक ने 'बलिदान की वेदी' कहा है और लेखनी को उस ओर प्रेरित किया है—"लेखनी, जिसके चल पडने पर मरे हुओ मे जीवन-ज्योति जगमगाने लगे, बिछडे हुए पथ मे पीछे छोड बैठने की ठानते दीखे, ऐसे अक्षरो के उपासक, शब्दो के साधु पदो के पूजक, व्यजनो के विजयानन्द-बिहारी, सन्धियो के निर्माता और अग मे अभिनव आभूषणो को समर्पित करने वाले किन्तु प्राणो के मतवाले, कलम के घाट उतारने वाले ही को अधिकार है कि वह आगे बढे, परिमल पूरित प्रफुल्लित पकज के समान शोभित हो। वह महाभाग और तुम्हारे भावो के मतवाले के मस्त सौरभ से महक उठे।" यहा युग के प्रति स्वस्थ प्रेरणा और सतर्क दिशा-निर्देश है। ये आप्त वाक्य अपने मन्तव्य मे असदिग्ध हैं और कथ्य की दृष्टि से असाधारण। लेखक साहित्य को देवता के रूप मे

प्रतिष्ठित करता है, उसे विश्व का सन्देशवाहक और जागरण-दूत सिद्ध करता है। बौद्धिकता का आश्रय लेते हुए भी चतुर्वेदीजी हृदय-तत्त्व के आस्थावान कृती है। साहित्य मे हृदय की प्रतिष्ठा उनका स्पष्ट मन्तव्य है। कला इसी सुसवेद्य हृदय मे उदित होती है और तभी कलाकार का जन्म होता है। ऐसी पुनीत कला की पीढी अगुलियो की गिनती पर होती है। "उस कला का वाहन, कलाकार का विज्ञापन चिपकाए रहने वाला शरीर नही है उसका वाहन तो वह प्रेरणा है जिस पर वह अपने सम्पूर्ण इरादो और स्वप्नो को लेकर बैठ जाती है।" चिन्तन के क्षणो से यही कलाकार "कलापिता के जोखिम-भरे उल्लास से आभूषित और कलामाता के प्राणमय बोझ से बोझीला होता है, किन्तु जब उसका चिन्तन उसकी कलम पर उतर आता है तब वह अपना ही कलापुत्र होकर विश्व के अन्तरतर की सुकोमल गोदो मे खेलता रहता है।" कलाकार के स्वरो मे रग और रगो मे स्वर होता है। उसका जीवन स्वप्न और सत्य, जन्म और मृत्यु, मुसकराहट और बेचैनी आदि विविध भावमयी अद्भुत घडियो का सचय है। इस प्रकार साहित्य और कलाकार के विविध पक्षो की बडी तात्त्विक मीमासा उपर्युक्त कृतित्व मे उपलब्ध होती है, जो इतना निगूढ चिन्तन, इस सरस पद्धति मे प्राय अन्यत्र अनुपलब्ध है।

जीवन के शाश्वत मूल्यो पर चतुर्वेदीजी का गुरु गम्भीर दृग्पात हुआ है। मानवीय धरातल पर प्रेम को वे 'बैठे बैठे का पागलपन' सिद्ध करते है। यह वृत्ति साहित्य के जगत मे रस के हृदय को छू लेने वाली मीठी किन्तु पुरुषार्थमयी सुकोमलता है। इसी प्रकार के आर्षवाक्य उक्त कृति मे बिखरे हुए दिखाई देते है। इन सूत्रो का कही-कही पृथक् भाष्य आवश्यक हो जाता है। गद्यात्मकता की दृष्टि से आलोच्य कृतित्व अतिशय प्रौढ एव पुष्ट है। उसकी अभिव्यजना-शक्ति असन्दिग्ध है। भाषा प्राय चित्रात्मक और बिम्बमयी ज्ञात होती है। चतुर्वेदीजी का गद्य, पद्य की ही भाँति अन्तरतुकान्त तथा सगीतात्मक है। उसमे उर्दू की मुहावरेदानी, कथन की लाक्षणिकता, व्यग्योक्ति और मनोरम सूक्तियो का प्राचुर्य है। परिणामत भाषा और शिल्प अत्यन्त स्फूर्त और स्पन्दनशील हो उठा है। व्यग्य, आक्रोश और भावावेश के क्षणो मे यही भाषा बडी तीक्ष्ण और मार्मिक हो जाती है। ग्राम्य तत्त्व और लोक-सत्य से समन्वित कहावते विवेच्य विषय को और अधिक प्रेषणीय बना देती है। इनसे उद्भूत गद्य अपने लालित्य एव प्रवाह मे अप्रतिम है। सवेदनशीलता और रसात्मकता की अन्तस्सलिला उसमे आद्यन्त प्रवाहित है। परिणामत उसका बाह्य रूप लययुक्त, अलकृत और सर्वथा सुगठित है।

'साहित्य देवता' का अन्तर्पक्ष तीव्र भावात्मकता से आक्रान्त है। उसमे अन्तर्निहित ध्वनि-सगीत भाव की एकात्मकता को ओर अधिक झकृत कर देता

है। लेखक का अन्तर्मन, उसकी मनुहार और उसकी करुणा निरायास ही उद्दीप्त हो गयी है। जीवन के विविध भावान्तर उक्त कृति मे विशेषत परीक्ष्य है। लेखक ने भारतीय सस्कृति के सक्रान्तिकालीन युगबोध को बडी विदग्धता के साथ सम्पुजित किया है। राष्ट्रीयता, भक्ति, अध्यात्म, रहस्य, प्रेम, काव्य की आत्मा, सत्य और सत्त्व, काव्य का कलेवर आदि इसी प्रकार के चिन्त्य विषय है। चतुर्वेदीजी को आधुनिकता के साथ ही वैष्णवता, आस्तिकता तथा भक्त्यात्मक प्रवृत्ति के प्रति भी आस्था है, किन्तु राष्ट्रीय सकल्प और सक्रिय उत्सर्ग भावना के कारण वे साम्प्रदायिक सकीर्णता से दूरस्थ है। रहस्यपूर्ण स्थलो मे उनकी उक्तिया बडी सूक्ष्म, स्वस्थ एव अस्पर्श्य है। स्थूल अभिधात्मकता से नितान्त पृथक् रहकर वे उदात्तीकरण की प्रक्रिया मे बडे सक्रिय है। उनकी छायावादी रहस्य-भावना मे यद्यपि सगुण मधुरा भक्ति का समन्वय है, पर उसमे वैयक्तिकता का एकान्तिक स्वर अधिक तीव्र नही है। प्रकृति के प्रति उनका कवि-हृदय प्राय विमुग्ध है, उसमे मध्य प्रदेश की धरती का प्रबल आकर्षण भाव है, किन्तु वे प्रकृति को केवल उद्दीपन रूप मे ही स्वीकार कर सके है। क्योकि उसमे कवि आबद्ध नही है। प्रकृति चित्रणो मे रूपकात्मकता अथवा चित्रात्मकता का सफलप्रयोगश्रेयष्कर है। सतपुडा के शिखरो पर बेतवा का ककण, किंकिणी, नूपुर नर्मदा ताप्ती का कठ-हार व करधनी, विष्णुपदी गगा-जमुना-इरावती-सिन्धु का हिमकिरीट, ये दृश्य वस्तुत बडे विराट और सूक्ष्म है। उनके शीर्षक साहित्य देवता, मुक्ति भरत जह पानी, अगुलियो की गिनती की पीढी, आशिक, तुम आने वाले हो, असहाय, श्याम-घन, सवाददाता, लहरे चीर विजय मना आदि इसी प्रकार के भावात्मक तथा वैचारिक स्थल है।

साराशत छायावादी शिल्प और भावबोध चतुर्वेदीजी के गद्य पर बहुत प्रकट है। भावुकता की परिधि मे वैचारिकता को सुरक्षित रख सकना उनकी अद्भुत शक्ति का परिचायक है। जिन स्थलो पर लेखक भावाकुल आत्मोद्गारो से अस्थिर हो उठा है वहा भी वैचारिकता का छायाभास प्राप्य है, यथा—
"हे अनन्त, मुझ सात के साथ न खेल! समुद्र के गर्भ मे भी जमीन है। तुम्हारी तरलाई के नीचे भी क्रूरता है, समुद्र की सतह मिलती है। तुम भी एक सन्देश के दीवाने हो उठते हो।"

"मेरी श्यामलता से लहरीले बादल! मेरी तरलता के अदम्य आवाहन! मेरे जीवन के कण-कण को वहा बिखेर दो।"

"ब्राह्मण, तू समुद्र-पूजन को चल! क्षत्रिय, तू लहरो को काटने उठ! वैश्य, तू समुद्र पार से लक्ष्मी कोलौटा। और शूद्र, तू अपने ब्रह्मकर्म से समस्त शरणागतो की रक्षा कर!"

उपर्युक्त कथनो मे सास्कृतिक सम्बोधन के साथ, मर्मस्पर्शी उदबोधन है।

लेखक ने सामयिक प्रश्नो पर विचार विमर्श, तर्क-वितर्क और उभयपक्षीय प्रस्तुतीकरण करके शक्ति और माधुर्य का परिचय दिया है। यत्र-तत्र विचार-वेदना, मर्महितकारी विद्रोह भाव एव सवेदनशील धारणा भी प्रस्फुटित हो गयी है। नाटकीयता, प्रश्नोत्तर, सवाद, कला, इतिवृत्तात्मकता, कथात्मक दृष्टात, दार्शनिक निष्कर्षो के कारण आलोच्य गद्य अत्यधिक रमणीय हो गया है। रूपक, अन्योक्ति, समासोक्ति और विविध अलकरणो तथा प्रतीको द्वारा लेखक के विचारो को और भी परिपुष्टता प्राप्त हुई है। चतुर्वेदीजी ने यहा अपने सरस अन्तर्मन्थन का तारतमिल प्रतिपादन तथा सुगठित उपस्थापन किया है जो छायावादी गद्य शिल्प के अन्तर्गत विशिष्ट महत्त्व का अधिकारी है।

माखनलाल चतुर्वेदी का गद्य

◇ ◇

डॉ० प्रेमशकर

श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' कवि के रूप मे अधिक यशस्वी है और इस दिशा मे उनका विद्रोही स्वर रचनाकारो के लिए प्रेरणा का विषय रहा है। उनके कवि-गौरव मे उनका गद्य-लेखन किंचित खो-सा गया है, किन्तु 'कर्मवीर' और 'प्रभा' के ख्यातनामा सम्पादक के रूप मे माखनलालजी से हिन्दी जगत सुपरिचित रहा है। अधिकाश गद्य-लेखन हमे उसी के माध्यम से प्राप्त होता रहा है। एक नाटक तथा एक कहानी-सग्रह 'कला का अनुवाद' के अतिरिक्त 'साहित्य-देवता', 'अमीर इरादे, गरीब इरादे', 'समय के पाव' माखनलाल जी के अन्य गद्य सकलन है।

'साहित्य देवता' माखनलालजी का प्रतिनिधि गद्य सकलन है और यहा उनका कवि रूप अपनी समस्त रचनात्मकता मे देखा जा सकता है। गद्य काव्य से किंचित अतिरिक्त भावनामयता की गध आती है और कभी-कभी उसकी रचना भावावेश के क्षणो मे होती है। इसी कारण सम्भवत. वर्तमान युग मे उसे एक सशक्त माध्यम के रूप मे नही स्वीकार किया जाता। वह युग-यथार्थ के साथ न्याय कर सकने मे अधिक समर्थ नही होता। पर 'साहित्य देवता' का स्वरूप किंचित भिन्न है। यहा कवि माखनलालजी भावना के आग्रही तो है, किन्तु वे अपने गन्तव्य को जानते है और अपनी भावनामयता मे आत्मविस्मरण की ऐसी स्थिति मे नही पहुच जाते कि यथार्थ जगत से उनका सम्पर्क पूर्णतया छूट जाय। पर 'साहित्य देवता' का शिल्प इस प्रकार का है कि सावधानी से ध्यान देने पर ही 'सत्य' पर दृष्टि जा सकती है। वहा सरलीकरण की प्रवृत्ति नही है। एक ऐसे रचनाकार की अनुभव-सम्पत्ति इस गद्य काव्य मे सकलित है जो जीवन को खुली आखो से देखने का अभ्यस्त है और जिसमे उसके प्रति अपार ममता का भाव विद्यमान है। 'साहित्य देवता' के भावनाभरे स्थल कही-कही रहस्यवादी वातावरण का निर्माण करते है और यहा हमे माखनलालजी अपने तन्मय क्षणो

मे प्राप्त होते है। उन्होने एक स्थान पर लिखा है—"मेरा नन्दन, मुझे नन्द-नन्दन से भी अधिक प्यारा है। मै पत्तियो के साथ लहराता हूँ, कलियो के साथ चटकता हूँ, फूलो के साथ खिलता हूँ, हवा के साथ मेरा मस्तक झुक पडता है, उष्णता के साथ मेरी साध कुम्हला जाती है और ओस-कणो के साथ मेरी आखो मे भी आँसू बनकर मेरे बाग के पौधो के उभार के आनन्द का ज्वार बनते है।" ऐसे प्रसगो मे लेखक की वैष्णव-भावना प्रकाशित हो जाती है, जो उनकी कविताओ मे अधिक स्पष्ट है। यद्यपि अन्यत्र प्रकाशित अपने एक निबन्ध मे उन्होने वैष्णव-भावना को भी विद्रोह से सम्पृक्त माना है। 'साहित्य देवता' के वे अश जिनमे लेखक ने प्रत्यक्ष रीति से वार्तालाप करना चाहा है वहाँ उसकी शैली यद्यपि अधिक भावना-प्रधान हो गई है, किन्तु अन्तिम बिन्दु तक आते-आते लेखक अपने लक्ष्य का प्रतिपादन कर ही देता है। भावना के साथ विचार तत्त्व का समन्वय माखनलालजी मे परिलक्षित होता है। कलाकार की मौलिकता को उन्होने बडा महत्त्व दिया है और यह भी कहा है कि उसे युग की प्रेरणा का भी ध्यान रखना चाहिए।

'जब रसवती बोल उठे' नामक अपने गद्यगीत मे उन्होने रचनाकार की सृजनशीलता पर दृष्टि डालते हुए लिखा है—"उसकी वीणा के तारो मे वह, तारे पिरो कर मिजराब मारता रहता है, क्योकि कुछ बेचैन-सा, कुछ बावला-सा, कुछ पत्थर-सा, कुछ उतावला-सा, कुछ खुली आँखो अनदेखा-सा, कुछ मुँदी आँखो देखता-सा कुछ त्योहारो पर रोता-सा, कुछ मकतलो मे मुसकाता-सा, अपनी कलम के काले आँसू, सूरज की किरणो को सवारने के लिए वह टपकाता ही उस दिन है जिस दिन उसकी रसवती बोल उठती है।" 'साहित्य देवता' इस दृष्टि से एक विशिष्ट कृति है। क्योकि इसमे माखनलालजी का कवि-स्रष्टा अपने पूर्ण वैभव मे रूपायित हुआ है।

माखनलालजी का दूसरा सकलन 'अमीर इरादे गरीब इरादे' है जिसमे मुख्य रूप से उनके निबन्ध सकलित है। यहाँ पर हमे लेखक के विचार अधिक स्पष्टता से देखने को मिलते है। अपनी बात को पूरी शक्ति के साथ प्रस्तुत करने मे यहाँ अधिक स्वतन्त्रता दिखाई देती है। कही-कही ऐसा प्रतीत होता है कि माखनलाल जी भाषण देने लगे है। पर यह तो स्वीकार ही करना होगा कि इसके पीछे विचारो की निष्ठा है। यदि ऐसा न होता तो उनकी बात मे वह बल न आता और ऐसा शक्तिमान वक्तव्य देने मे उन्हे सकोच होता। निबन्ध लेखन की जो एक स्वच्छन्द भूमि होती है जिसमे कल्पना का भी उपयोग निबन्धकार करते है, वह हमे यहाँ देखने को मिलती है। किन्तु इन निबन्धो की एक विशेषता यह है कि इनका लेखक अपनी पैनी दृष्टि के सहारे मर्म की बात खोजकर कह देता है। व्याख्या और विवेचन की ऐसी मौलिक क्षमता माखनलालजी मे है कि वे पुराने प्रश्नो पर भी नयी दृष्टि डाल सके है। उन्होने कला को सृजनात्मक आनन्दिनी

माना है और उसे मिलन का महोत्सव कहकर सम्बोधित किया है। उन्होने लिखा है कि कला मे अमीर और गरीब का भेद नही है। पूजा-भावना मे द्वेष नही है, जीवन के स्नेह को पान करते समय भेद-बुद्धि नही है। अत कला द्वारा किया गया प्रचार शाश्वत होता है, बेरोक-टोक होता है, दिवस और काल का भेदकर होता है, स्थायी होता है।

माखनलालजी का नवीनतम सकलन 'समय के पाँव' है जो एक प्रकार के सस्मरण अथवा स्मृतियो के रेखाकन है। यह सस्मरण इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है क्योकि लेखक ने इन व्यक्तियो को निकट से देखा है। माखनलालजी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता सग्राम के एक महत्त्वपूर्ण और सक्रिय नेता रहे है। उन्होने सभी घटनाओ को इतने निकट से देखा है कि इन सस्मरणो को पढते हुए वे दृश्य हमारे समक्ष प्रस्तुत हो उठते है। कही-कही तो ऐसा लगता है जैसे इतिहास की रेखाएँ उजागर हो गई हो। विवरण और वृत्तान्त डायरी शैली का परिचय देते है। किसी पात्र के विशेष गुण की ओर इगित करने के लिए वे अपनी सूक्ष्म दृष्टि का आश्रय लेते है। और जब ऐसे प्रसग आ उपस्थित होते है जहाँ उन्हे अपनी भावना का प्रकाशन करना होता है तब उनकी भाषा अपने उत्कर्ष पर पहुँच जाती है। पडित रविशकर शुक्ल के विषय मे उन्होने कहा है कि उनकी भुजाओ पर नर्मदा की निर्मलता, ताप्ती का अखड सौदर्य और महानदी की गौरव-गरिमा शोभित रही। कपास, ज्वार और गेहूँ के लहलहाते पौधे उनकी भुजा के सरक्षण पर गर्व कर सके। हमारी खदाने, हमारे जन-जीवन के नर-नारी उस बूढे तरुण के अन्त करण मे अपने विश्वासो को सजोकर रखते रहे।" इन सस्मरणो मे माखनलालजी का अनुभूति पक्ष सक्रिय रहा है ओर पात्रो के चित्रण मे उनकी अपनी दृष्टि भी दिखाई देती है। पर इन सस्मरणो मे लेखक ने अपने व्यक्तित्व को प्रधान नही हो जाने दिया है जो भूल प्राय सस्मरण-लेखको से हो जाया करती है।

'प्रभा' और 'कर्मवीर' के यशस्वी सम्पादक के रूप मे माखनलालजी का अधिकाश गद्य-लेखन हमे इन पत्रिकाओ मे मिलता है। पत्रकार का जो राष्ट्रीय और सामाजिक दायित्व होता है उसका निर्वाह करने मे वे अग्रणी रहे है। वे साहित्यक सृजनशील अभिरुचि के पत्रकार है और राष्ट्रीयता उनका मूल स्वर है किन्तु केवल सामयिक जीवन तक सीमित रह जाने के वे पक्षपाती नही है। उन्होने इन पत्रो के माध्यम से जहा राष्ट्रीय भावना को प्रचारित किया है, वही वे लोक-रुचि का परिष्कार करने मे भी प्रयत्नशील रहे है। ओज-सम्पन्न ये लेख हमे माखनलालजी के विद्रोही व्यक्तित्व का परिचय देते है।

माखनलालजी का गद्य दो भूमियो पर अग्रसर है। एक तो उनका वह पत्रकार रूप है जहाँ वे अपेक्षाकृत सरल भाषा मे अपने विचारो को पूर्ण सतेजता के साथ प्रस्तुत करना चाहते है। यहाँ उन्होने स्पष्टता और तीक्ष्णता का विशेष

ध्यान रखा है। पर अन्य स्थलो पर माखनलालजी का कवि गद्य के निर्माण मे अपने पूर्ण उत्कर्ष पर पहुचा है। भाषा मे तराशकर रखे गये शब्द व्यजना के सहारे चलते है। ललित गद्य के लेखन मे जो सफलता माखनलालजी को मिली है वह उन्हे इस क्षेत्र मे भी एक विशिष्ट स्थान देती है। इतना अवश्य है कि वे लालित्य के कारण किंचित गहनता मे चले गये है, पर जो प्रयास करेंगे उन्हे मुक्ता की ही प्राप्ति होगी। जो लोग अस्पष्टता की शिकायत करते है वे सभवत यह भूल जाते है कि 'एक भारतीय आत्मा' के अधिकाश गद्य की रचना एक उद्देश्य विशेष से हुई है और 'प्रभा तथा 'कर्मवीर' के माध्यम से माखन-लालजी राष्ट्रीय भावना का प्रचार करने मे सलग्न रहे है। शासन के इतने कठोर बन्धन थे कि कही-कही विवश होकर लेखक को अपना मन्तव्य अनेक तहो मे छिपाकर रखना पडता है अथवा सकेतात्मक रीति से उसका प्रकाशन हुआ है।

माखनलालजी ने जिस ललित गद्य का निर्माण किया, वह उनके व्यक्तित्व के सर्वथा अनुरूप है। उन्हे एक शब्द-शिल्पी भी कहा जा सकता है जो प्रत्येक शब्द के परिवेश को जानता हुआ उसका सार्थक प्रयोग करता है और प्रतिभा से मिलाकर उसे एक सहज रूप देता है। सस्कृतनिष्ठ भाषा का आग्रह माखनलाल जी नही करते और उनकी शब्दावली मे उर्दू के शब्द सार्थकता के साथ प्रयुक्त हुए है और इनकी सख्या पर्याप्त है। यद्यपि समस्त लेखन मे एक ऐसा सास्कृतिक वातावरण बना रहता है कि ये शब्द बाह्यारोपित परिश्रम से लादे गये नही प्रतीत होते। रचनाकार ने उन्हे अपनी भाषा मे समाहित कर दिया है—माखन-लालजी के गद्य मे एक सतत जागरूक रचनाकार का वर्षो का अनुभव, चिन्तन सकलित है। यह चिन्तन उनके लेखन की वैचारिक सम्पत्ति है और उनके दृष्टि-कोण का परिचय देता है। इस अवसर पर उनके मौलिक चिन्तन को सराहना पडता है क्योकि इसे उन्होने 'स्वानुभूति' से प्राप्त किया है। उनका समस्त चिंतन अपने युग और देश से घनिष्ठ रूप मे सम्बद्ध है। उन्होने लिखा है—"जब कला-कार अपने अनन्त चिंतन मे उतरा होता है तब वह कला-पिता के जोखिम और उल्लास से आभूषित और कला-पुत्र होकर विश्व के अनन्तर की सुकोमल गोदो मे खेलता रहता है।" माखनलालजी की गद्य-सृष्टि के मूल मे उनका व्यक्तित्व सृष्टिरत रहा है और जो लेखक व्यक्तित्व-परिचालित होते है उनके लेखन का शिल्प उनका अपना होता है। यह तो स्वीकार करना ही होगा कि माखनलाल-जी ने अपने गद्य-लेखन को भी इस रूप मे निश्चित किया है कि वह हमे अकेला, दूर से ही दिखाई दे जाता है और यह उनकी मौलिकता का असदिग्ध प्रमाण है। और जब हम माखनलालजी के समस्त गद्य-लेखन पर दृष्टि डालते है तो हमे

उसके वैविध्य को देखकर आश्चर्य होता है। कही राष्ट्रीय भावना का ओजस्वी प्रकाशन है, कही लेखन के सामाजिक दायित्व का आग्रहपूर्ण निवेदन है और कही लेखक दृश्यो और पात्रो के अकन मे रत है और कही-कही अपने वैष्णव-भाव को लिए हुए चितक की गहराइयो मे खो गया है।

'साहित्य देवता'

० ०

रामधारीसिह दिनकर'

चिन्तक, वक्ता और गद्यकार, पडित माखनलालजी के तीनो रूप उनके अन्तर्वासी कवि के ही विभिन्न रूप है। कवित्व उनका अपना स्वरूप है और वही उनकी आत्मा का निवासस्थल है। आत्मा उनकी चन्द्रमडल मे रहती है, और वह जहाँ कही भी जाते है चाँदनी की कोमलता उनके साथ जाती है। उनका गर्जन रगीन घटाओ से तथा उनकी चीख फूलो के हृदय से निकलती है। जब वह सोचते होते हैं, तब उनके सामने सारी कुरूपताओ पर चाँदनी के चूर्ण की वृष्टि होती है और जब वह बोलने लगते है तब भी उन पर कविता की सतरगी चादर तनी होती है। किसी भी वस्तु के तद्गत रूप का तटस्थ होकर वर्णन करना उनके लिए एक अनहोनी-सी बात है अतः वह वर्ण्य वस्तु के हृदय मे बैठकर उसकी उन विलक्षणताओ का रहस्य खोलते है, जो प्राय उनकी अपनी अनुभूति से युक्त होती है। प्रस्तुत पुस्तक उनके अस्फुट निबन्धो का सग्रह है। अगर हिन्दी मे निस्सार प्रलापो का वाचक होकर 'गद्य काव्य' शब्द अपने चमत्कारो से हीन न हो गया होता, तो हम इसको उच्चकोटि का गद्य-काव्य कहते। किन्तु गद्य-काव्य के नाम पर हमारी भाषा मे जैसी असमर्थ रचनाएँ चल रही है उन्हे देखते हुए इसको गद्य-काव्य कहना इसके अपमान के समान प्रतीत होता है। अपनी अद्भुत ऊँचाई, विलक्षणता और सारगर्भता के कारण यह उन सभी गद्यकाव्यो से भिन्न है, जिन्हे हम आज तक देखने के आदी रहे है। ''भारतीय भाषाओ मे तो ऐसा विलक्षण ग्रन्थ है ही नही, विश्व-साहित्य मे भी एशिया माइनर के स्वर्गीय कवि खलील जिब्रान के कुछ ग्रन्थो तथा जर्मन कवि 'नीत्शे' की 'दज स्पेक जर पुस्त्र' को छोड इसकी तुलना और किसी पुस्तक से नही की जा सकती। नाम से यह ग्रन्थ साहित्य की आलोचना जैसा दीख पडेगा और इसमे सन्देह नही कि साहित्य के स्वरूप के सम्बन्ध मे इसमे कितनी ही सूक्तियाँ बिखरी पडी है किन्तु इतना ही सब कुछ अथवा अधिकाश भी नही है। साहित्य की आलोचना, कला का मूल्याकन, जनता, समाज और

राजनीति, रूप-आसक्ति, प्रेम और स्त्री, आध्यात्मिक तृष्णा, पौरुष और बलिदान तथा भक्ति और मुक्तिरूपी विविध नक्षत्रो से खचित आकाश मे यह कोई चन्द्रमा है जो अपनी कविता की किरणे फैला रहा है। इसके भीतर जितने ही विषयो का सकेत है उन्हे देखने वाली दृष्टि कवि की दृष्टि है, उस पर सोचने वाले चिन्तक का हृदय कवि का हृदय है तथा उनके व्याख्याता मनीषी की भाषा लक्षणा, व्यजना और अलकारो से युक्त कवि की भाषा है। माखनलालजी की कविताओ की तरह उनके इस गद्य-ग्रन्थ मे भी प्रेम की मादकता और दहन की ज्वाला के बीच के द्वन्द्व है। यहा भी वह अनेक असगतियो और कुरूपताओ के बीच से जीवन के सामजस्यपूर्ण रस-रूप की स्मृति करने मे आनन्दमयता के साथ व्यस्त है। साहित्य और कला के सम्बन्ध मे जहाँ विचार है वहाँ साहित्य और कला, दोनो ही वर्तमान जीवन के ससर्ग मे लाकर जाचे गए है किन्तु इस समकालीनता की कसौटी पर कसी जाने के कारण कला के स्वरूप-निर्देश मे कोई अन्याय नही हुआ है, क्योकि खुद व्याख्यता ही अपने समय के उस अश मे रहता है जो सभी समयो के साथ है। जैसे शरीर नश्वर है, वैसे ही सभी युग भी नाशवान है, किन्तु जिस प्रकार शरीर के नष्ट हो जाने पर भी इस जीवन की वायु अगले जीवन मे जा बसती है, वैसे ही प्रत्येक युग मिटकर भी अनन्त समय के साथ रहता है। काल की सनातन आत्मा युग-विशेष की घटनाओ से बिलकुल निर्लिप्त नही रह पाती, प्रत्युत उस पर प्रत्येक युग का ताप अकित हो जाता है। साहित्य और कला को माखनलालजी मनुष्य के उस मनोमय रूप का व्याख्याता मानने है जिसके इगित पर उसका स्थूल शरीर काम करता है। जो कुछ हम देख रहे है वह विज्ञान का विषय है। इस दृश्य के पीछे जो अदृश्य भूमि है, कला वही की विहारिणी है। अतएव साहित्य और कला का धर्म जीवन का अनुगमन नही, प्रत्युत नमन होना चाहिए।

"यदि इरादो पर पहुँचने मे रेल के टिकट काम आ जाया करते तो कला के स्वर्ग को हम पत्थरो और कागजो से छू सकते थे।"

"स्वप्नो के पकडने का पथ तो अन्तरतर के स्वप्न देश ही मे से है।"

एक बार किसी अभिभाषण मे माखनलालजी ने कहा था, "जहाँ तक ब्रह्मा की सृष्टि है कला वही तक सीमित नही रहती, उससे आगे भी जाती है।" इस पुस्तक मे कला के इस दृश्यातीत रूप के अनेक उदाहरण विद्यमान है, "लिखने की सुखी इच्छा को दफनाने के दिन को ही समालोचना के मगल प्रभात बनने का सौभाग्य प्राप्त है।" इस वाक्य मे आलोचना के उस रूप की ओर सकेत है जो दर-असल असफल कवि का रूप है और सर्जना के क्षेत्र मे जिसका स्थान मुख्य नही, प्रत्युत गौण होता है। किन्तु, इस पुस्तक मे की गई साहित्य विषयक आलोचनाएँ उनसे भिन्न चीज है। अनेक लक्षणात्मक शीर्षको के अन्तर्गत उन्होने जो कुछ

आवश्यकता तथा समकालीनता की पृष्ठभूमि पर उसके विकास के ही सम्बन्ध मे है। और इन विवेचनाओ के बीच उन्होने कोई मत-निर्धारण अथवा पक्षसिद्धि नही की है, बल्कि इन विषयो को निमित्त मानकर गद्य मे स्वतन्त्र कविताएँ रची है। इस पुस्तक के भीतर आलोचना नही, स्वतत्र काव्य का रस है। यह पडित का तर्क नही, कवि की वाणी का प्रसाद है। जिस प्रकार माखनलालजी की कविता और वक्तृताएँ रसपूर्ण किन्तु धुँधली हुआ करती है उसी प्रकार इसके भी सभी अध्याय धुँधले तथा रहस्यपूर्ण है। इसमे अधिकाश प्रकरण तो ऐसे है जिनके साथ शीर्षको का कोई मेल नही दीखता लेकिन शीर्षको को बराबर ध्यान मे रखे बिना कथा भी समझ मे नही आ सकती, क्योकि शीर्षक ही वह कुजी है जिससे जगह-जगह रहस्य का द्वार उन्मुक्त होता है। इसमे जिन द्रव्यो का अवलम्ब लेकर काव्य की सृष्टि की गई है वे वैज्ञानिक विवेचन के भी उपकरण हो सकते थे। किन्तु, वैज्ञानिक पद्धति को अपनाने के बाद इसके आकार और विलक्षणता दोनो ही मे कमी आ जाती और तब इसका स्थान उन अनेक पुस्तको के बीच होता, जो आये दिन साहित्य पर स्वतन्त्र चिन्तन लेकर निकलती ही रहती है। विशेषता इसकी यह है कि इसमे साहित्य को ही पुरुष मानकर उस पर कवि की कल्पना दौडाई गई है। साहित्य के सम्बन्ध मे आलोचना और कवि-आलोचक दोनो ही श्रेणियो के लोग बहुत बार अपना मत प्रकट कर चुके है। किन्तु, साहित्य के सबध मे शुद्ध कवि की वाणी पहले-पहल इसी मे प्रस्फुटित हुई है। हमारे जानते, इस पुस्तक की अस्पष्टता का एक प्रधान कारण यह है कि लेखक को किसी भी सामान्य बात की सामान्यता से सन्तोष नही है। वह प्रत्येक भाव, प्रत्येक वस्तु के उस रूप पर जोर देता है जो तत्सम्बन्धी जन-प्रसिद्धि से काफी दूर है। 'जीवन का प्रश्नचिह्न स्त्री'—इस शीर्षक के अन्तर्गत प्रेम पर विचार करते हुए लेखक ने कहा है, "यह प्रेम है? मानव की बुरी से बुरी भावना को अच्छे से अच्छा नाम देने के लिए मानव निर्मित कोष मे शब्दो का टोटा क्यो पडने लगा? और यह इसलिये कि सौदर्य को वह मोह और दुर्बलता समझता है। जिसे हम प्रेम कहते है उसे वह इसी सौदर्य को अपने निमित्त पकड रखने की कोशिश कहता है।"

"कल्पना के मन की दुनिया मे एक ऐसी भी सीमा है जिसके परे की वस्तु वाणी के बन्धन मे ठीक से नही आ सकती, जिसकी अभिव्यक्ति टेढी-मेढी रेखाएँ खीचकर की जाती है, जो जन-प्रसिद्धि से युक्त प्रतीको के अभाव मे कथित होकर भी अकथित ही रह जाती है। प्रत्येक गभीर चिन्तक को इस दुनिया की बाते करनी पडती है और प्रत्येक को अपने लिये कुछ खास प्रतीको का निर्माण करना पडता है। सतपुडा, नर्मदा, तरुणाई और रसवन्ती माखनलालजी के ये कुछ ऐसे प्रतीक है जो काफी प्रसिद्ध है। किन्तु, इस ग्रन्थ मे उन्हे कितने ही नवीन प्रतीक बनाने पडे है अथवा यो कहिए इसमे कदम-कदम पर पाठक को नये प्रतीको की

कल्पना करनी पडती है। अगर वह ऐसा न करे तो अर्थों का एक पूरा भडार उसके सामने से अछूता निकल जाता है। केवल पाठक ही कठिनाई मे पडा हो सो बात नही है। स्थान-स्थान पर यह भी मालूम होता है कि लेखक को भी सर्जना की असीम वेदना मे से होकर गुजरना पडा है। इस पुस्तक मे माखनलालजी ने कितनी सूक्ष्म अनुभूतियो को सूक्ष्मता के साथ व्यक्त करने की कोशिश की है, तथा अनिर्वचनीय भावो को भाषा के माध्यम से व्यक्त करने मे जो कठिनाइया है उन्हे खूब ही झेला है। ऐसा मालूम पडता है कि मन के अशरीरी विचार कलम पर आने के लिए किसी वाहन की खोज मे लेखक के आसपास नजर डाल रहे हो तथा दूसरो के द्वारा व्यवहार मे लाये गये वाहन उन्हे पसन्द न आते है। ऐसी बेबसी मे उन्हे जो भी नये वाहन मिल जाते है—उन्ही पर चढकर वे चल देते है। ऐसे वाहन, जिन्हे कविता मे, भावो की कहानी कहते हुए पाठको ने कभी नही देखा है। ऐसे वाहनो मे सतपुडा, नर्मदा, छलकन गगरी, पत्थर और टाकी के साथ, काशीप्रसाद जायसवाल, सन्त निहालसिह और राहुल साकृत्यायन के भी नाम है, जिन्हे माखनलालजी ने अपनी प्रस्तुत रचना मे प्रतीक बनाकर पेश किया है।

ये है साहित्य-देवता के रूप और आत्मा की ओर कुछ सकेत। प्रत्येक साहित्य-प्रेमी पाठक को इसके दो-चार पारायण अवश्य कर लेने चाहिए।

'साहित्य देवता' की समीक्षा

विनयमोहन शर्मा

भावुकतावश 'साहित्य देवता' और 'माखनलालजी चतुर्वेदी' को अभिन्न मानने वालो की कमी नही है पर इस तादात्म्य भाव से विवेचना का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इसलिए हम स्रष्टा और सृष्टि मे विभेद मानकर ही साहित्य देवता के दर्शन करेगे। पडित माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से हिन्दी ससार मे वर्षों से परिचित है। उनके गीतो मे आधुनिकता द्विवेदी युग से ही दिखलाई देने लगी थी। आधुनिकता से हमारा तात्पर्य भावो की विशिष्ट प्रकार की अभिव्यक्ति से है जिसे जयशकर 'प्रसाद' ध्वन्यात्मक लक्षणा की वक्रता कहते है। 'हिमकिरीटिनी' के अनुसार यदि उनके लेखन की जन्मतिथि सन् १६१३ मान ली जाय तो उस समय की लिखी गई 'मेरा उपास्य' कविता मे इसी कोटि की वक्रता लिए हुए अभिव्यक्ति है·

लो आया उस दिन जब मैंने,
सध्या वदन बद किया,
क्षीण किया सर्वस्व कार्य के
उज्ज्वल-क्रम को मद किया,
द्वार बद होने ही को थे,
वायु-वेग बलशाली था
पापी हृदय कहा रसना मे
रटने को वनमाली था?
अर्ध रात्रि, विद्युत प्रकाश, घन गर्जन करता घिर आया।
लो जो बीते, सहूँ, कहूँ क्या, कौन कहेगा—'लो आया॥'

'गीताजलि' की अभिव्यक्ति की भ्राति करा देने वाली उक्त पक्तियो मे समय से आगे देखने की सूझ स्पष्ट है। इसी काल की 'प्रसाद' की रचनाओ मे भी भाषा की स्वच्छता और अभिव्यक्ति की आधुनिकता नही आ पायी थी। इसे

स्वीकार करने मे हिन्दी का समीक्षक तर्क-वितर्क नही कर सकता। 'एक भारतीय आत्मा' भावो की अपेक्षा भावाभिव्यक्ति की विशिष्टता के कारण ही हिन्दी काव्य जगत् मे विशेष रूप से सम्मानित है। प० पद्मसिह शर्मा के शब्दो मे उनके कहने की 'तर्ज़े अदा' सर्वथा उनकी है। यद्यपि उसका अनुकरण करने का यत्न तरुण कवियो एव लेखको ने बहुधा किया है तो भी किसी की अनुकृति मूल को धोखा नही दे सकी।

'साहित्य देवता' चतुर्वेदीजी के बाह्य और आभ्यन्तर दृष्टि-दर्शन का कला रूप है जिसमे 'समय के पैरो के निशान' है और मनोभावनाओ के ऐसे चित्रण है जिन्हे समय शीघ्र पोछ नही सकता। इस कलाकृति के तीन रूप दीख पडते है – १ गद्य-काव्य, २ गद्यगीत और ३ काव्यमय गद्य। इन तीनो मे एक काव्यतत्त्व के होते हुए भी उनमे परस्पर भेद भी है। गद्य-काव्य मे कल्पना तत्त्व की प्रधानता होती है, उसमे गेयता अनिवार्य नही है, उमका विस्तार महाकाव्य की कथा का रूप भी धारण कर सकता है और अनेक भावो की सयोजना भी उसमे हो सकती है। गद्य-गीत मे भावावेश, अनुभूति की गहराई और प्रवाही भाषा की अपेक्षा की जाती है। वह अतुकान्त गीतिकाव्य के समान है जिसमे एक भाव ही विशेष रूप से ध्वनित होता है। काव्यमय गद्य, लेख, कहानी, नाटक, उपन्यास सभी मे दृष्ट हो सकता है। इसके लिए केवल भाषा का काव्यमय होना पर्याप्त है।

'साहित्य देवता' के उद्गारो मे चाहे वे गद्य-काव्य के रूप मे हो, चाहे गद्य-गीत के रूप मे हो अथवा काव्यमय गद्य का ही बाना पहने हुए हो, एक चीज स्पष्ट है और वह है व्यग्य। 'काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्' की दृष्टि इनमे नही है। इन काव्यो मे विरोधाभास का चमत्कार पल-पल दिखाई देता है। हिन्दी के किसी आधुनिक कवि ने विरोध के आधार पर सूक्तियो के इतने अधिक गगनचुम्बी प्रासाद शायद ही खडे किये हो। 'साहित्य देवता' शीर्षक उद्गार की निम्न पक्तियाँ पढिये

"आँखो की पुतलियो मे यदि तुम कोई तसवीर न खीच देते तो वे बिना दाँतो के ही चीथ डालती, बिना जीभ के ही चूस लेती, परन्तु तुम सीधे कहाँ बैठते हो ? तुम्हारा चित्र बडी टेढी खीर है। तुम देवत्व को मानवत्व की चुनौती हो तुम नाथ नही हो इसलिए मैं अनाथ नही हूँ प्यारे इस समय अधोगति की ज्वाल-मालाओ से ऊँचा उठने के लिए आकर्षण चाहिए।" 'मुक्ति भरत जहँ पानी' मे भी इसी प्रकार के विरोध के दर्शन होते है। 'वह मेरे घर ही मे रहता है पर जीवन भर हम एक-दूसरे से नही मिले।" जब रसवती बोल उठे' मे एक जगह कहा गया है, "अब मेरा प्यार नन्हे बालक की तरह खारी पुतलियो की मीठी गोद पर उतर-कर चढा करता है तब काल के अनन्त परदे उठ-उठकर मेरे सकेत का स्वरूप-दर्शन किया करते है।"

ऊपर कहा गया है कि 'साहित्य देवता' के उद्गार गद्य-काव्य, गद्यगीत और काव्यमय गद्य के रूप मे व्यक्त किये गए है। गद्य-काव्य के अन्तर्गत आशिक, असहाय श्यामघन, तुम आनेवाले हो, मुरलीधर, मोहन, दूरी की निकटता आदि मे गीति तत्त्व की ध्वनि है, क्योकि उनमे भाव बार-बार प्रतिध्वनित होता है। 'तुम आनेवाले हो' मे बिना तुक का यह भाव तुक के गीत से अधिक सगीतमय है—

'मेरा सारा बाग, बिना मौसम के ही फूल उठा,
—इसलिए कि तुम आनेवाले हो
और फूल भी नीले है, पीले है, लाल है, हरे है, बैगनी है, नारगी भी हैं
मगर इन फूलो पर गूंजनेवाले परिन्द सब एक ही रग के है—
कृष्ण, श्याम, काले!''

'मुरलीधर' का एक अश सुनिये—

''क्या तुम सगीत हो?

तुम मेरे सगीत नही हो। आलापो की तरह तुम मेरी मर्जी पर लौटते कहाँ हो? माना कि तुम्हारी कृपा के बादल बेएख्तियार बरस पडते है, परन्तु उस समय तुम मेरी मलार नही बने होते।

आह! तब तुम वीणा हो, नारद के नाद ब्रह्म से विश्व झकृत कर देने-वाली। परन्तु वीणा तो मेरी गोद मे रहती है। तुम कहाँ यह शर्त स्वीकृत करते हो? माना, झनकारते ही वीणा स्वर देती है, मनुहारते ही तुम दौड आते हो, किन्तु मेरे स्वर पर सदा ही तो तुम्हारे तार नही मिलते। स्वर से स्वर न मिलने पर स्वर-लहरी से विश्व भर देनेवाली वीणा को गोद मे लेकर, और हृदय से लगाकर भी, मुझे उसके कान ऐठने पडते है। पर हाय, तुम तो मेरे कानो को वीणा बनाने के लिए घूमते हो।

—तब मधुर मुरली के सिवा तुम और क्या हो?''

सगीत की तरह ध्वनित होनेवाले गद्यगीतो का आस्वाद लेने के बाद हम 'साहित्य देवता' के उन गद्य-काव्यो का परिचय प्राप्त करेगे जिनमे भावो की सगीतात्मकता तो नही है पर भावुकता अवश्य है। इनमे मुक्ति भरत जहँ पानी, साहित्य देवता, साहित्य की वेदी, असहाय नाश या अमर निर्माण, गिरिधर गीत है, मीरा मुरली है, लहरे चीर विजया मना आदि उद्गार इसी कोटि के है।' लहरे चीर का गद्य-कवित्व देखिये—

''परायेपन के इस वारापार मे, क्या अपने अस्तित्व को डूबने से बचाये रहना, और आराध्य-तट तक पहुँचाना है? तो लोहे की दीवारे, सागर के तरल वक्षस्थल पर दौडाना, और पानी मे आग लगाना सीखिये। क्या अपने दुर्भाग्य को दो टुकडे कर देना है? तो उठिये, सागरो और महासागरो का आमन्त्रण स्वीकृत कीजिये, दुर्भाग्य समुद्र की लहरो मे जा छिपा है, लहरे काटते चलिये, दुर्भाग्य और बेडियाँ

दोनो कटते चलेगे।"

काव्यमय गद्य के अन्तर्गत उन उद्गारो को हमने परिगणित किया है जिनमे भावुकता की अपेक्षा चितन की प्रधानता है और उन्हे भी जो लम्बी कहानी बनाते है। यो कहानी गद्य-काव्य के अन्तर्गत भी ली जा सकती है पर विस्तार और कथातत्त्व के कारण हमने उन्हे काव्यमय गद्य ही माना है। 'जोगी' इसी प्रकार की कहानी है। 'जब रसवती बोल उठे' मे तरुणाई और कविता की विवेचना करते हुए कहा गया है—

"तरुणाई और कविता ये दो वस्तुएँ नही, किन्तु एक ही वस्तु के दो नाम है। तरुणाई प्रतिभा की जननी की गोद है। उम्र के उतार मे प्रतिभा तरुण रह सकती है और अमर अनहोनेपन के साथ बढती जा सकती है। किन्तु उम्र के द्वारा जीवन के कील-कॉटे ढीले होना शुरू होने के बाद, प्रतिभा अपने जन्म का प्रथम दिन मनाने नही आती। अत. तरुणाई को गिरफ्तार करो और उसमे अपने जीवन कणो को जोर से बो दो।"

'महत्त्वाकाक्षा की राख' मे समालोचक पर तीखा व्यग्य है—

"लिखने की सुखी इच्छा को दफनाने के दिन को ही समालोचन के मगल-प्रभात बनने का गौरव प्राप्त है।" यह असफल कवि समालोचक हो जाता है, जैसी ही बात है। आगे फिर कहा गया है—"आपने लेखन को दफनाने की आवश्यकता क्यो समझी? चोरो की दुनिया मे अधिक दिन रहना ठीक न समझा। समालोचक किस तरह अपनी धाक जमाता है, उसे सुनिये। समालोचना के जगत् मे अनेक बाल-लेखकों का सहार कर समालोचक को छाप जमानी होती है। फिर प्रश्न उठता है, छोटे बच्चो को चलना सिखाने के लिए माताएँ भी बच्चो के साथ उनकी उँगली पकडकर चलती है। वे उन्हे गिरने नही देती। क्या समालोचक के लिए यही करणीय नही है? ना, हमारे प्रभाव का तूफान जिन्दा रखने के लिए और हमारे अस्तित्व के बैरागी जीवन पर भस्म लपेटने के लिए तरुण और नवागत लेखको की महत्त्वाकाक्षा की राख जरूरी है।"

'अँगुलियो की गिनती को पीढी' मे साहित्य और कलाकार का सुन्दर विवेचन है। "कलाकार का जीवन द्वैत मे अद्वैत और अद्वैत मे द्वैत की अनुभूति होती है। कलाकार राहगीर की समय काटने की वस्तु मात्र नही होता। वह समय का पथ-प्रदर्शन राहगीर होता है। कलाकार के स्वरो मे रग होते है, उसके रगो मे स्वर होते है। उसके चित्रण की आत्मा सजीव होती है।" 'बैठे-बैठे का पागलपन' मे प्रेम पर चिन्तन किया गया है। उसकी व्याख्या है—"प्रेम साहित्य के जगत् मे हृदय को छू लेनेवाली मीठी किन्तु पुरुषार्थमयी सुकोमलता का नाम है।"

खोजने पर 'साहित्य देवता' मे सूक्तियो की कमी नही मिलेगी। चतुर्वेदीजी हिन्दी के उच्च कोटि के मुक्तक कवि है। उनका 'साहित्य देवता' मुक्तक-काव्य

का, जो गद्य की वाणी मे बोल रहा है, स्पृहणीय आदर्श है। हिन्दी साहित्य को उनके द्वारा इसी कोटि की भेट सम्भव थी। यह गद्य-काव्य की भूमिका-मात्र नही है, स्वय गद्य-काव्य की प्रकृत वस्तु है। भारतीय साहित्य मे 'साहित्य देवता' अपनी विशिष्ट अभिव्यक्ति-कला की दृष्टि से अप्रतिम रचना है, जिसमे साहित्य और कला के तत्त्वो पर काव्यात्मक शैली मे सुन्दर समीक्षा की गई है।

कृष्णार्जुन युद्ध

◇ ◇

डा० दशरथ ओझा

श्री माखनलाल चतुर्वेदी को हिन्दी जगत् कवि और गद्यकार के रूप मे भली प्रकार जानता है किन्तु उनका नाट्यकार रूप बहुतो से छिपा हुआ है। इस साहित्यकार ने साहित्य-साधना के प्रारभिक दिनो मे सन् १९१८ मे 'कृष्णार्जुन युद्ध' नामक नाटक की रचना की। यह नाटक जबलपुर मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सप्तम अधिवेशन के अवसर पर अभिनीत हुआ और इतना जनप्रिय हुआ कि देश के विभिन्न स्थानो पर भी इसका अभिनय किया गया । इसकी एक लाख प्रतिया पाठको के हाथो मे पहुँच चुकी है, इसी से इसकी लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि किन विशेषताओ के कारण यह नाटक इतना जनप्रिय बना ? इसकी नाट्य-कला की समीक्षा से इस प्रश्न का उत्तर मिल जायगा। इस नाटक मे नान्दी प्रस्तावना के अतिरिक्त चार अक एव बाईस दृश्य है। प्रस्तावना की शैली सस्कृत नाटको से भिन्न पारसी थियेटर से साम्य रखती है। प्रस्तावना मे ही नाटक के नायक नारद की लीलाओ का एक नया अर्थ निकाला गया है। उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे यह धारणा बन रही थी कि पौराणिक गाथाए गल्प मात्र है और समाज-सेवा की भावना इस देश मे कभी नही थी। यह तो एकमात्र पश्चिमी सभ्यता की देन है। उक्त दोनो धारणाओ को भ्रममूलक सिद्ध करने के लिये इस नाटक मे नारदीय लीला को कथावस्तु रूप मे ग्रहण किया गया है।

एक प्रसिद्ध पौराणिक गाथा है कि एक दिन विमान यात्रा करते समय चित्रसेन गन्धर्व के मुँह से पान की पीक तर्पण देते हुए गालव ऋषि की अजलि मे आ गिरी। क्रुद्ध गालव ऋषि तत्कालीन शासक श्रीकृष्ण को चित्रसेन के इस दुर्व्यवहार के लिये दोषी ठहराने लगे । गालव ऋषि का क्रोध तभी शात हुआ जब श्रीकृष्ण ने चित्रसेन के बध की प्रतिज्ञा की । प्रतिज्ञानुसार श्रीकृष्ण चित्रसेन के

वध के लिये प्रस्तुत होते है । इधर नारद के परामर्श से चित्रसेन पाडवो के यहाँ सहायतार्थ पहुँचते है। द्रौपदी और भीम मे सहायता के विषय मे विवाद खडा होता है । भीम का तर्क है कि आर्त्त की रक्षा करना धार्मिक का धर्म है। द्रौपदी का तर्क है कि गन्धर्व चित्रसेन इन्द्र के राज्य मे रहता है और उसने कृष्ण के राज्य मे अन्याय-कार्य किया, अत पाडवो पर रक्षा का दायित्व नही। कृष्ण के हमारे ऊपर अनेक उपकार है अत उनसे कलह मोल लेना अनुचित है। युधिष्ठिर की अनुपस्थिति मे कोई निर्णय लेना अर्जुन को अभीष्ट नही, किन्तु भीम आग्रह करते है कि चित्रसेन की रक्षा करना हमारा धर्म है । अर्जुन, भीम और द्रौपदी का विवाद अनिर्णीत रह जाता है, अत चित्रसेन लौटकर नारद के मतानुसार चिता जलाकर भस्म होने को प्रस्तुत होता है ताकि कृष्ण उसका वध न कर सके और उनकी प्रतिज्ञा अधूरी रह जाय।

नारद चित्रसेन की प्राण-रक्षा के लिये अहर्निश प्रयत्नशील है। वह सौभाग्य-वर्द्धक पर्व के पावन अवसर पर अर्जुन की पत्नी सुभद्रा को गगास्नान के लिये उस स्थान पर ले जाते है जहा चित्रसेन चिता सजाकर भस्म होने की तैयारी करता है और उसके बच्चे करुण क्रन्दन करते है । सुभद्रा चित्रसेन की रक्षा के लिये प्रतिश्रुत होती है और अर्जुन से कृष्ण के साथ युद्ध करने का आग्रह करती है। अर्जुन युद्ध के लिये सन्नद्ध हो जाते है। निश्चित समय पर अर्जुन और कृष्ण का युद्ध छिड जाता है । कृष्ण के प्रहार से अर्जुन आहत होते है । कृष्ण उन्हे गोद मे उठा लेते है। थोडी देर बाद अर्जुन खडे होत है और पाशुपतास्त्र का प्रयोग करने को उद्यत होते है। भयकर स्थिति उत्पन्न हो जाती है । नारद के प्रयास से ब्रह्मा गालव ऋषि से अनुरोध करते है कि वे इस भयावह स्थिति को सुधारे। युद्धभूमि मे आकर, अर्जुन द्वारा पाशुपतास्त्र के प्रयोग से पूर्व ही गालव ऋषि चित्रसेन को क्षमा कर देते है और युद्ध रुक जाता है। इस प्रकार नारद के प्रयास से सबकी प्रतिज्ञा की भी रक्षा हो जाती है और गधर्व चित्रसेन भी बच जाता है।

पडित माखनलाल मूलत राष्ट्रप्रेमी साहित्यकार है। साहित्य द्वारा देश मे नवजीवन लाने का सदा उन्होने प्रयास किया है। बीसवी शताब्दी के दूसरे दशक मे काग्रेस आन्दोलन के द्वारा देशवासी कर्तव्य-पालन के लिये सर्वस्व बलिदान करने वाले नेताओ के आह्वान से प्रभावित हो रहे थे । गाधीजी का फिजी मे सत्याग्रह आन्दोलन सफल हो चुका था और वे भारत की स्वतत्रता के लिये कृत-सकल्प हो चुके थे । लोकमान्य तिलक माण्डले के बन्दीगृह मे बन्द थे । शासकीय अन्याय के प्रति लोगो का क्षोभ बढता जा रहा था । देश के ऐसे वातावरण मे आवश्यकता एक ऐसे दूरदर्शी व्यक्ति की थी जो अध्याय का निराकरण कर देश मे सघर्ष की ज्वाला को बुझा सके। नाट्यकार को पुराणो मे नारद-लीला की ऐसी ही कथा उपलब्ध हुई। तर्पण करने वाले गालव ऋषि की अजलि मे गधर्व

चित्रसेन ने अनजाने पीक डाल दी थी अत एक प्रकार से वह निर्दोष ही था, यदि उसे दोषी मान भी लिया जाय तो उसके लिए कृष्ण द्वारा प्राणदण्ड की घोषणा करना न्यायोचित नही था। अग्रेजो के राज्य मे कितने ही निरपराध व्यक्तियो को फासी पर लटकाया जा रहा था और प्रजा मे इस अन्याय का विरोध करने का साहस नही हो रहा था। नाट्यकार का उद्देश्य है कि यदि एक समुदाय अर्जुन और भीम के समान न्यायविरत शासक के विरुद्ध उठ खडा हो तभी न्याय की रक्षा हो सकेगी। नाटककार अपने इस उद्देश्य मे पूर्ण सफल होता है, अर्जुन, भीम तथा नारद के प्रयास से चित्रसेन की रक्षा हो जाती है और कृष्ण की प्रतिज्ञा पर भी आच नही आती। ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रप्रेमी चतुर्वेदीजी के मन मे उस समय ऐसी धारणा बन रही थी कि यदि आततायी शासक के विरुद्ध प्राणो की बाजी लगाने वाले कुछ वीर मैदान मे उतर आएँ तो निश्चय ही राजा और प्रजा दोनो का कल्याण होगा।

शिल्प की दृष्टि से भी यह नाटक रगमच के सर्वथा उपयुक्त है। इसकी अभिनय शैली भारतेन्दुयुगीन पारसी थियेटर की परिमार्जित शैली है जिसमे सम्वादो की ओजस्विता पर बहुत बल दिया गया है। प्रत्येक अक मे कई दृश्य है और प्रत्येक दृश्य को नयी रग-सज्जा से सुसज्जित कर आकर्षक बनाने का प्रयास किया गया है। गायन-वादन के द्वारा नाटक को आकर्षक एव तत्कालीन जनरुचि के अनुरूप बनाने का पयत्न सफल है। शशि और शख के सम्वाद द्वारा हास्य रस की भी योजना की गई है। इस प्रकार वीर, करुणा, हास्य और रौद्र आदि रसो का आस्वादन कराने वाला यह नाटक मुख्यत वीर-रस प्रधान है, अन्य रस अगी रूप मे जाते है।

यह नाटक चरित्र-प्रधान न होकर विचार-प्रधान हो गया है। कर्तव्याकर्तव्य के निर्णय मे घटना और पात्र इस प्रकार घुल-मिल गये है कि उनका स्वतत्र व्यक्तित्व मुखरित नही होता और न्याय के लिये बलिदान ही मुख्य रूप मे सामाजिक के सामने आता है। अतएव इसे न तो घटना-प्रधान और न ही चरित्र-प्रधान कहा जा सकता है अत इसे विचार-प्रधान नाटक कहना ही उचित होगा।

पडित माखनलाल ने भारतेन्दु और प्रसाद युग की नाट्यकला को जोडने के लिए एक श्रृ खला का कार्य किया। नाटक मे विचारो पर बल देना, आधुनिक युग की नाट्य-कला की विशेषता है। पचास वर्ष पूर्व इस मेधावी साहित्यकार ने नाटक को एक नवीन दिशा मे मोडकर नाट्यक्षेत्र मे स्तुत्य कार्य किया।

द्विवेदीयुगीन नाट्य-परम्परा की विशिष्ट कड़ी : 'कृष्णार्जुन युद्ध'

मोहनलाल उपाध्याय 'निर्मोही'

'कृष्णार्जुन युद्ध' माखनलाल चतुर्वेदी का एकमात्र उपलब्ध नाटक है। चतुर्वेदीजी मूलत कवि थे। वे कुशल वक्ता तथा सफल पत्रकार थे। द्विवेदी युग के यशस्वी कृतिकारो मे 'एक भारतीय आत्मा' का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि के रूप मे 'एक भारतीय आत्मा' की रचनाएँ प्रेरणा की प्रदीप-शिखा बनकर युग-पीढी को राष्ट्रीय चेतना के प्रकाश का युग-बोध देती रही है।

देश के जीवन मे भारतेन्दु के उदय ने भारतीय रगमच को प्रवर्तन की नई दिशा दी। उनके पूर्व फारसी थिएट्रिकल कम्पनियो का रगमचो पर अधिकार था। इन नाटको के कथानक भी फारसी की प्रेम कहानियाँ होती थी। भाषा उर्दू व फारसी मिश्रित एव बोझिल हुआ करती थी। कथोपकथनो मे अभिनेयता कितने अशो तक रहती थी, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। हिन्दी का प्रथम नाटक 'नहुष' माना जाता है। इस नाटक की रचना भारतेन्दुजी के पिता गिरधरदास ने सन् १८५९ मे की थी। भारतेन्दु का जन्म सन् १८५० मे हुआ था। अपने जीवन के केवल तेंतीस वर्ष ही उन्होने अपनी आयु भोगी। अल्पायु ही मे उनकी प्रखरता सिद्ध हो चुकी थी। उन्होने मौलिक और अनूदित दोनो ही प्रकार के नाटक लिखे। उन्होने सर्वप्रथम नाटको का मानदड स्थिर किया और नाट्य मच के विकास और लोकप्रियता के लिए अनेक प्रयत्न भी किए। उनके नाटको पर सस्कृत, बगला तथा अग्रेज़ी के नाटको का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। इस विचारधारा के त्रयी सगम ने भारतेन्दु की मौलिक प्रतिभा को विकास का आलोक दिया।

भारतेन्दुजी के इन नाट्य-प्रयोगो को अधिक अच्छी तरह से रूपायित करने का श्रेय द्विवेदी युग के कृतिकारो को है। इन कृतिकारो मे पडित माखनलाल चतुर्वेदी का नाम अत्यन्त ही महत्त्व के साथ लिया जा सकता है। विशेषकर गद्य की नाट्य विधा के क्षेत्र मे उनका 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक फारसी रगमचो पर खेले जाने वाले नाटको के लिए अत्यन्त ही मुँहतोड जवाब था। सस्कृत नाटको

की शैली पर लिखा यह नाटक जबलपुर हिन्दी साहित्य सम्मेलन (१९१८ ई०) के अवसर पर खेला गया था। इस नाटक के माध्यम से चतुर्वेदीजी सम्मेलन मे आने वाले हिन्दी सेवियो को यह बताना चाहते थे कि "अब मनोविनोद का बौद्धिक स्तर मध्यप्रदेश का कितना है, आगत साहित्यकारों को उस नाते यही तो दिखाना है कि उसका बहिरग परिश्रम और बुभुक्षा का एक शुष्क क्रममात्र ही नही है। उसके निजत्व मे किंकिणीशिजना से मुखर लास्य के रेशमी डोरो से झूला झूलते हुए हृदय की रुनझुन ही मध्यप्रदेश के घर-घर मे है और हिन्दी जल्दी से जल्दी इस प्रदेश मे अपने रगो का अभिराम उत्सव किस प्रकार रचेगी, वह इस नाटक को देखकर सब समझ लेगे, आश्वस्त हो जाएँगे।"[1] और हुआ भी ऐसा ही जैसी लेखक ने आशा की थी। इस अधिवेशन के अध्यक्ष प० रामावतार शर्मा थे, स्वागताध्यक्ष प० विष्णुदत्तजी शुक्ल। सम्मेलन के बाद खण्डवा के नाट्य-दल ने 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक प्रस्तुत किया। अभिनय की दृष्टि से यह सर्वप्रथम साहित्यिक कृति थी, जिससे पहले किसी भी अन्य कृति को सम्मेलनो के अधिवेशनो मे इतनी लोकप्रियता, गौरव तथा प्रशसा प्राप्त हुई हो। साहित्यिक विषयवस्तु के दृष्टिकोण से शीघ्र ही यह नाटक भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय नाटक सिद्ध हुआ और निकट भविष्य मे इसकी ६०,००० प्रतियाँ देखते ही देखते बिक गई। यही नही, इस नाटक की सफलता, और माखनलालजी की तरुण लेखनी की प्रशसा मध्यप्रदेश के बाहर दूर-दूर तक अपनी सुरभिपूर्ण वातास लिए व्याप्त हो गई। आगामी वर्षो मे इसके अभिनय को न केवल अन्यान्य मध्यप्रदेशीय नगरो मे ही दुहराया गया, अपितु उत्तर प्रदेश, बिहार और पजाब जैसे प्रान्तो मे जहा नाटको का अपना एक निजी दृष्टिकोण रहा है, मे भी इस नाटक को स्मरणीय मच तकनीक मे एक नए गुण की अभिवृद्धि करने का श्रेय प्राप्त हुआ। इस नाटक पर पडित रविशकर शुक्ल ने (जो बाद मे मध्यप्रदेश के प्रथम मुख्यमत्री बने थे) माखनलालजी को एक स्वर्ण-पदक भी भेट किया। यह एक ऐसी प्रथम सफल नाट्य कृति समझी गई, जिसे मचकला की गेय एव अभिनेय दोनो ही दृष्टियो से मुक्तकठ से सराहना एव प्रशसा प्राप्त हुई। माखनलालजी की इस प्रथम कृति ने ही उन्हे भारत के शीर्षस्थ साहित्यकारो की पक्ति मे सम्मिलित कर लिया।

'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक की कथावस्तु पौराणिक है। इसी नाम से बगला मे तथा मराठी भाषा मे नरसिंह चिन्तामणि केलकर महोदय अपनी लेखनी उठा चुके थे। किन्तु माखनलाल जी चतुर्वेदी की बेलाग अन्तर्दृष्टि और लालित्यमयी भाषा ने इस कृति को अत्यधिक गौरव प्रदान किया। कथा अत्यन्त ही परिचित तथा सामान्य है—

---

१. माखनलाल चतुर्वेदी जीवनी—श्री ब्र० जैमिनी बरुआ पृ०, ३३२

"इन्द्र का गधर्व चित्रसेन गगा की जलक्रीडा के पश्चात् विमान द्वारा अपनी प्रिया के साथ अपने लोक को लौटता है। विमान मे ही उसकी प्रिया चित्रागी उसे पान देती है। वह मुँह के पान को नीचे थूक देता है। थूका हुआ पान नीचे अपने आश्रम मे सूर्य को प्रात काल का अर्घ्य अर्पित करते ऋषि गालब की अजलि मे गिर पडता है। यह देख ऋषि क्रोधातुर हो उठते है। वे तत्क्षण शाप देने के लिए तैयार हो जाते है, किन्तु उनके शिष्य शख और शशि उन्हे इस कार्य से रोकते है। वे उसी समय द्वारिकाधीश श्रीकृष्ण के दरबार मे न्याय की प्रार्थना हेतु पहुँचते है। गौ-ब्राह्मण प्रतिपालक भगवान कृष्ण ऋषि के साथ किए गए इस अनाचार के प्रणेता को मृत्युदण्ड देने की प्रतिज्ञा करते है। इसी बीच नारद वहाँ आते है और श्रीकृष्ण को ऐसी कठोर प्रतिज्ञा न करने का प्रबोधन देते है। वे गधर्वराज चित्रसेन को क्षमा प्रदान करवाने की दिशा मे प्रयत्नारम्भ कर देते है। फिर नारद असावधान अभागे गधर्वराज को ऋषि के शाप की सूचना देते है। गधर्वराज अपने सुखद जीवन के नाटकीय एव अप्रत्याशित इस दु खद अत के लिए हाहाकार कर उठता है। नारद की प्रेरणा से वह देवराज के पास सहायता के लिए जाता है, किन्तु उसे देवराज से निराशा ही मिलती है। फिर नारद उसे प्रबल प्रतापी, महाभारत-विजेता पाण्डवो के पास भेजते है। अर्जुन गधर्वराज की व्यथा-कथा सुनकर असमजस मे पड जाते है। तब देवर्षि उसे एक युक्ति बताते है कि एक चिता तैयार रखो और अपनी स्त्री-सहित उसके पास बैठकर अपने जीवन के शेषाश तक पत्नी-सहित आँसू बहाओ। जब श्रीकृष्ण सुदर्शन लेकर मारने आवे तब चिता मे कूद पडो। इससे श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा पूरी न होगी और उन्हे पछताना पडेगा।

उधर नारदजी श्रीकृष्ण की भगिनी अर्जुन-प्रिया सुभद्रा को प्रेरणा देकर गगा-स्नानार्थ उसी दिशा मे (जिधर गधर्वसेन अपनी प्रिया के साथ बैठा विलाप कर रहा था) ले जाते है। वहाँ चित्रसेन की पत्नी का विलाप सुनकर सुभद्रा उसे अभय दान देती है। वहाँ से लौटकर सुभद्रा कोपभवन मे आ बैठती है। अर्जुन जब सुभद्रा के पास पहुँचते है, तब सुभद्रा अपने नारी-सुलभ हाव-भावो से अर्जुन को प्रभावित कर उनसे चित्रसेन की रक्षा का अभिवचन ले लेती है। अर्जुन स्वीकार करते हे कि यद्यपि कृष्ण मित्र है, तथापि मेरे आश्रित चित्रसेन के शत्रु होने से मै उनसे अवश्य ही युद्ध करूगा। नारद भगवान शकर को भी चित्रसेन की सहायता करने की प्रेरणा देते है। शकर और पार्वती अर्जुन की विजय की कामना करते है। ब्रह्मदेव, सरस्वती और सावित्री को भी यह समाचार विदित होता है। ब्रह्मदेव चित्रसेन को क्षमा दिलाने के लिए गालव ऋषि के पास जाते है। वे जानते है कि यदि कृष्णार्जुन युद्ध हुआ तो सृष्टि का नाश हो जायगा। इसी बीच एक दिन एक अनहोनी घटना घटित हो जाती है। एक मृगछौना गालव ऋषि की अर्घ्य

के लिए उठी अजलि का जल पी लेता है। ऋषि उस छौने के इस चचल कृत्य पर हँस देते है। अब उनका विवेक जाग उठता है। वे अनुभव करते है कि गधर्वराज चित्रसेन भी अबोध है। उन्हे अपने कृत्य पर पश्चात्ताप होता है। वे रणागन मे पहुँचकर श्रीकृष्ण और अर्जुन को रण से विमुख होने की सलाह देते है।

अतिम दृश्य मे युद्ध होता है, इतने मे ही ब्रह्मदेव गालव ऋषि को साथ लेकर आ जाते है। ऋषि कहते है कि "इतने भयकर युद्ध की आवश्यकता नही है। मुझे पश्चात्ताप है कि मेरे कारण यह भीषण दृश्य उपस्थित हुआ। युद्ध बन्द करो, मैं चित्रसेन को क्षमा करता हूँ।" विश्वनाश का सभावित सकट टल जाता है। सभी प्रसन्न हो उठते है।

सक्षेप मे यही है 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक की कथावस्तु। सम्पूर्ण नाटक तीन अको का है। इस नाटक मे कुल मिलाकर छोटे-बडे इक्कीस दृश्य है। स्थान-स्थान पर नाटककार की चतुराई से कथा के औत्सुक्य को बनाये रखने के लिए अनेक मोड आये है। अभी तक सस्कृत की नाट्य-परम्परा के अनुरूप नाटको मे पाँच अक रखे जाते थे, किन्तु भारतेन्दु के पश्चात् द्विवेदी युग तक आते-आते नाटको मे तीन अक रखने का प्रयोग प्रारम्भ हो चुका था। चतुर्वेदीजी ने भी इस नाटक मे युगानुरूप तीन अको का ही समायोजन किया है। यह नाटक दृश्य-विभाजन की दृष्टि से रगमच के अनुरूप सिद्ध नही होता। घटनाएँ भी इसमे प्रमुखरूपेण दो ही है। एक तो प्रारभ मे अजलि मे चित्रसेन का थूका हुआ पान गिरने की और अत मे मृगछौने द्वारा अजलि का जल पी लेने पर, ऋषि के मानस-पटल से क्रोध का परिहार तथा युद्धनिवृत्ति की। बीच मे ऐसा आभास होने लगता है कि युद्ध अवश्यम्भावी है।

नाटक का आरभ सस्कृत नाट्य परम्परा के अनुरूप नट-नटी के वार्तालाप और देव-स्तुति से होता है और नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए प्रार्थना भी की जाती है। यह परिपटी द्विवेदी युग के कतिपय नाटको मे देखी जाती है, किन्तु पश्चिम के प्रभाव से नाट्य-प्रयोगो मे सुधार होने से धीरे-धीरे यह पद्धति आगे जाकर समाप्त हो गई।

नाटक के सभी पात्र पौराणिक महापुरुष है। इनमे चित्रसेन, श्री कृष्ण, बलराम और अर्जुन के व्यक्तित्व के साथ ही एक व्यक्तित्व जो प्राणवाहिनी शिरा के समान इस नाटक मे सचारित है, वह है नारद का व्यक्तित्व। नारद को विग्रह का अवतार माना गया है, किन्तु लेखक ने इस नाटक मे नारद को शाति की प्राण-प्रतिष्ठा करने वाला विश्व-बधुत्व एव विश्व-करुणा का मूर्तिमान प्रतीक सिद्ध किया है। सपूर्ण नाटक से ऐसा लगता है कि यदि नारद का प्रयत्न इस नाटक का मूल बिन्दु न होता तो युद्ध होता और विश्व विनाश से नही बचता। इस नाटक मे देवत्व एव दिव्यत्व का अपूर्व सगम है। श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व को दीन-प्रतिपालक,

गौ-ब्राह्मण-रक्षक के रूप मे निरूपित किया गया है। सुभद्रा के रूप मे नाटककार ने नारी-मनोविज्ञान का अभिनव प्रयोग किया है। अर्जुन श्रीकृष्ण का मित्र और बन्धु होते हुए भी अपने वीरोचित कर्तव्य के प्रति पूर्ण जागरूक है। हास्य की सर्जना गालव ऋषि के शिष्यद्वय शख और शशि के माध्यम से अच्छी हुई है। गालव के रूप मे नाटककार ने उस युग के तपस्वी ऋषि की क्षणिकतुष्ट, क्षणिक रुष्ट' वृत्ति का बडा ही मनमोहक चित्र प्रस्तुत किया है। गधर्व चित्रसेन की असहायावस्था इस नाटक की करुणा है। इस प्रकार इस नाटक मे नाटककार ने शृगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र अद्भुत और शात रस का अत्यन्त ही प्रभावोत्पादक ढग से समावेश करके नाटक को युगानुरूप सर्वागीण बना दिया है। नाटक का कथोपकथन अत्यन्त ही प्रभावोत्पादक है। भाषा प्राजल एव प्रवाहमयी है। कही-कहा मुहावरो के प्रयोग ने इस नाटक को और भी अधिक चमत्कारिक बना दिया है। कही-कही कथोपकथन अत्यन्त ही कवित्वमय बन गये है। लेखक मूल रूप मे कवि है, अत स्थान-स्थान पर काव्य की चमत्कारमयी भाषा से सगुफित कथोपकथन अत्यन्त ही विदग्ध भावबोध प्रस्तुत करते हे। कही-कही पारसी थिएटरो की सवाद-प्रणाली के अनुरूप तुकातिक प्रयोग खलते है। प्रस्तुत नाटक मे स्वगत-कथनो का अभाव भी अभिनन्दनीय है, क्योकि सस्कृत नाटको के लम्बे-लम्बे स्वगत-कथन अत्यन्त ही अस्वाभाविक तथा नाट्य कौतूहल के सुनियोजन के लिए व्यवधान ही सिद्ध होते है। कही-कही पद्यानुरूप उत्तर-प्रत्युत्तर की भी झलक लेखक ने दी है। नाटक मे गीनो का प्रयोग भी सम्यक् रूपेण हुआ हे। नट-नटी, देवगण की स्तुति, नारद की स्तुति, चित्रसेन का आमोद-प्रमोद-गान तथा बीच-बीच मे गीत अत्यन्त ही भावोत्तेजक बन पडे है। शशि और शख के हास्य-प्रेरक गीतमय सवाद नाटक की जान है, जो दर्शको के मुख पर स्मिति लाने मे पर्याप्त सहायक सिद्ध होते है।

प्रस्तुत कृति का उद्देश्य धर्म की रक्षा, न्याय का पालन और नीति का सुस-चालन है। इस नाटक की रचना सन् १९१८ मे हुई थी। उस समय लेखक पूर्ण तारुण्य वय मे था। देश पराधीनता की शृखलाओ से जकडा था। लेखक पर तिलक, महात्माजी तथा अन्य स्वतत्रता-सग्राम के सेनानियो के सुगौरवमय कृत्यो का पूर्ण प्रभाव था। लेखक स्वय एक भस्मावृत्त चिनगारी था, अत बीच-बीच मे राष्ट्रीय भावना तथा तत्कालीन अग्रेजी राज्य के खिलाफ आक्रोश एव राजनीतिक तथा सामाजिक दुर्व्यवस्था की अच्छी झलक मिलती है। नट-नटी की प्रारभिक प्रार्थना मे—

"भाव प्रकाशा, भेद विनाशा, हो बस एक राष्ट्र की भापा।
हो दृढ उद्देश्य, जिस पर हो हम सब चाहे नि शेष।
भूलो न रमेश, जन्म-कर्म की भूमि तुम्हारी भारत देश।"

तथा सवादो मे—"जो राजा प्रजा के दुखो की चिन्ता नही रखता, वह राज्य को सर्वनाश की ओर ले जाता है।" यथा राजा तथा प्रजा के अनुरूप वे कहते है—

"मनुष्य ने क्रूरता, अत्याचार, छल-कपट, द्रोह, ईर्ष्या, चोरी, व्यभिचार, असत्य आदि को अपनाया है।" आदि सूत्रधार द्वारा नारद के नवीन रूप को लेकर अग्रेजी राज्य की की गई यह टिप्पणी—"स्वय-सेवा तो विदेशी पौधा है, जो अग्रेजी राज्य ने हमारे देश मे लाकर लगाया है।' ऐसे अनेक चुटीले व्यग्य लेखक की लेखनी से अत्यन्त ही सफल उतरे है।

देशकाल के अनुरूप लेखक ने सकलनत्रय का अत्यत ही सुचारुता से निरूपण किया है। अभिनेयता की दृष्टि से यह एक पर्याप्त सुलझी हुई रचना कही जा सकती है।

'एक भारतीय आत्मा' कवि-हृदय माखनलाल चतुर्वेदी रचित यह एकमात्र नाटक द्विवेदी युग की नाट्य परम्परा की एक विशिष्ट कृति है, जिसका नाट्य साहित्य के विकास, प्रयोग एव प्रतिष्ठा के क्षेत्र मे अपना मौलिक स्थान है।

आज का नाट्य-साहित्य रगमच तथा प्रयोग की दृष्टि से विकास की मजिले तय करता हुआ पर्याप्त आगे बढ रहा है, किन्तु जिन मील के पत्थरो से हमारे नाट्य-साहित्य ने प्रेरणा प्राप्त की है उनमे 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक का अपना विशिष्ट स्थान है, जो कवि, प्रवक्ता, सुचिन्तक, अग्नि-वीणा के गायक कवि की प्रगति-दिशा का वास्तविक परिचायक है। इस नाटक मे कवि के तीनो स्वरूप—कवि, नाटककार और विद्रोही रूप यथार्थ मे रूपायित हुए है।

अमीर इरादे : गरीब इरादे

० ०

डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित

कवित्व माखनलालजी की रचनाओ का सहज धर्म है। उनका चिंतक भी कवित्व की छाँह मे अपना पथ खोजता है। स्वाभाविक है कि उनके विचार तरग की सहज गतिभगिमा लेकर उपस्थित होते है। कवित्व ने उनके चिंतन को मृदुल स्पर्श देकर उसे आनन्दनिस्यन्दिनी कला का रूप प्रदान किया है। भावुक कवित्य की इसी एकान्त साधना ने उनके वैचारिक गद्य को भी काव्य की प्रफुल्लतापूर्ण अनुभूति से पुलकित किया है, उसे तर्क-जटिल भाषा की व्यूह-रचना मे प्रवृत्त होने से बचाया है। कविता की स्वत प्रवाहिनी धारा के समान ही उनके विचार भी सहज आवेश-आवेगात्मक क्षणो की देन है, अत दीर्घ और विलबित गति मे उनकी गरिमा नही है, स्वच्छन्दता और आवेशात्मक अल्पता मे ही उनकी महिमा है। चाहे 'साहित्य देवता' की अर्चना हो, चाहे 'अमीर इरादे · गरीब इरादे' हो, सर्वत्र उनके 'चिन्तन की लाचारी' एक-सी है—गद्य और पद्य के इन भाई-बहनो मे से किसी को छोटा या बडा न कह पाने की लाचारी या कमजोरी।

चिन्तन अनिवार्यत कवित्व का विघातक नही होता। विशेषत तब जबकि उसे अनुभूति के तट सयम की राह दिखाते चलते हो। अनुभूति से बधा हुआ चिन्तन कवि-हृदय ही ऐसी भावमगी प्रस्तुत करता है कि शास्त्र भी अपनी गभी-रता के वावजूद तरल भावुकता से सजकर सहज रमणीय हो उठता है। फिर, किसी का भाषा पर अधिकार भी हो तो भाव और विचार की एक-एक गति पर शब्दो मे पायलो की झकार मुखरित न हो उठे तो आश्चर्य ही करना चाहिए। माखनलालजी के स्वभावसिद्ध कवित्व ने उनके चिन्तन और गद्य को काव्य का गौरव प्रदान किया है।

चतुर्वेदीजी के गद्य-पद्य मे उनका जीवन बोलता है। जीवन के बहुविध भोग ने उनके विचारो को बहुविध क्षेत्रो का विस्तार दिया है। उनकी बुद्धि कला, साहित्य, समाज, युग और व्यक्ति सम्बन्धी अनेक क्षेत्रो मे सचरण करती है, कही

विश्लेषणपरक होकर तो कही भावपरक बनकर। कही वे जिज्ञासापरक या व्यग्यपरक विषयो पर अपनी लेखनी चलाते है तो कही इनिवृत्तपरक विषयो पर। 'अमीर इरादे गरीब इरादे' उनके ऐसे ही विभिन्न विषयो से सम्बन्धित तेतीस छोटे बडे ललित निबन्धो का सग्रह है। निबन्ध सम्बन्धित विषयो के प्रसग मे उठने वाले अनेक प्रश्नो के समाधान प्रस्तुत करते है, विचार वैभिन्य के उल्लेखो से बचकर स्वतन्त्र रूप से व्यक्तिगत चिन्तन को उपस्थित करते है, और विविध विषयो की अव्यवस्था के बीच भी एक ही भावना की सर्वत्र ससिद्धि और एक ही दृष्टि के विस्तार के रूप मे व्यवस्था देते है।

कुछ भावात्मक तथा सस्मरणात्मक निबन्धो को अलग रखे तो इस सग्रह के निबन्धो मे कविता, कला और साहित्य से सम्बन्धित निबध ही शेष रहते है। पहले प्रकार के निबन्धो मे भी माखनलालजी की भावुकता जीवनानुभूति की गभीरता और व्यक्ति-विशिष्टताओ की सूक्ष्म पकड बडे ही प्रभावशाली ढग से व्यक्त हुई है और उनके आधार पर व्यक्ति माखनलाल को कुछ अधिक समीप से जानने का लाभ मिलता है, किन्तु हम उनके कविता आदि से सम्बन्धित निबन्धो मे व्यक्त धारणाओ के स्पष्टीकरण का ही प्रयत्न करेगे।

कवि हो या कलाकार, सर्जना मे उसकी विशिष्टता है। सर्जन का रहस्य उन्मीलित हो सके इस सम्बन्ध मे विचारक और शास्त्र-बुद्धि ने लम्बी चौडी तर्क तालिकाएँ प्रस्तुत की है, किन्तु चतुर्वेदीजी उन्हे दुहराकर चिन्तन का अभिनय नही करते। शोधकर्ता की वैज्ञानिक पद्धति अपनाकर तर्क-जटिल अनुमानो को उपस्थित नही करते। उनके मत मे कविता के निर्माण मे तीन बातो का योग रहता है—यादो का सग्रह, याद रखने जैसी दिशाओ की कामना और सूझ। शास्त्रीय शब्दावली मे अनुभवजनित स्मृति, अध्ययन और कल्पना ही तीन तत्त्व है। अनुभूति काव्य-रचना के लिए आधारभूत तत्त्व है, बिना उसके न भावोद्बोधन होता है, न चिन्तन को प्रेरणा मिलती है। अध्ययन अनुभूति को सुचारु सग्रह और व्यवस्थापन मे सहायता देता है और कल्पना उस पर सान चढाती है। कल्पना या सूझ के कारण कविता का स्वरूप जितना व्यापक ठहरता है उसके कारण 'कविता' नाम उसकी अभिव्यक्ति मे कुछ अक्षम-सा लगता है। लेकिन मात्र सूझ या कल्पना, जिसे अनुभूति का आधार नही मिलता, जिसे युग-सदर्भ ने स्वरूप प्रदान नही किया है और जिसका कल्पक खुली आँखो का तिरस्कार करके जीता रहा है, उसे महत्त्व नही दिया जा सकता। अनुभूति और अध्ययन के आधार पर उभरने वाले अर्थ ही कविता का स्वरूप गठन करने मे सार्थकोपाय सिद्ध होते है। अनुभूति जब आवेग का रूप धारण करके अध्ययन के नियत्रण मे नई दिशाएँ खोजती है, तभी नए अर्थो का सृजन कविता के रूप मे होता है। और तब कविता काल-विशेष से बँधी नही रहती।

"यादो के सग्रह की और याद रखने-जैसी दिशाओ की कामना और सूझ की सम्मिलित मनोभावना-स्वामिनी को कौन-सा नाम दिया जाए ? कविता ? यह नाम न जाने क्यो जरा छोटा पडता-सा नजर आता है, इस शब्द मे से त्रिकालज्ञता का बोध जो नही निकलता। 'सूझ' तो समय के तीनो टुकडो के अन्त करण मे से गुजरकर उन्हे छेदता हुआ, नित्य नवीनता के साथ बढता जानेवाला मानवता का वह डोरा है, जिस पर सम्पूर्ण विश्व के जड-चेतन का भान ठहरा हुआ है। इसीलिए सूझ के स्वामी एक युग बनाते है, दूसरे युग का पालन करते है और तीसरे युग को उखाडकर फेकते जाते है।" (पृ० १० ११)

अनुभूति, अध्ययन और सूझ साहित्य मे सत्य, भावना और कल्पना का रूप धारण कर लेते हैऔर तीनो साहित्य की महान पूर्णता के साधन है। इनके बीच भेद करना प्रतिभा का नही, प्रतिभाहीनता का प्रदर्शन है। "सत्य काव्य मे आकर अनुकूल वातावरणो से अलकृत होता है। भावना कला मे आकर हृदय से वस्तु तक स्नेह की सीधी खडी रेखा खीच पाती है। कल्पना, कला मे भी, मानव और मानवी को ऊँचे पर गहरे मे, विस्तृत पर बैठकर अल्प का उचित आकलन करने, अल्प मे जन्म लेकर विस्तृत और गहरे तक पहुचने या पहुँचा देने का वह बल है, माँ की भाषा मे बोले तो प्रज्ञा के नन्हे शिशु को बढा ले जाने वाली कल्पना माँ की उँगली है, जिसके सहारे मानवता जीवित है।" (पृ० ५०)

अनुभूति का सचय ही अध्ययन और भावना का बल पाकर कविता के रूप मे बाहर फूट निकलता है। स्मरण मे गूजते हुए अनुभूति के स्वर ही हमारी वाणी के सितार के तार झकृत कर देते है, जिन पर भावना की तरग बेसहारा होकर दौड भरती चली आती है। वर्ड्स्वर्थ और 'प्रसाद' की वाणी मे बोलते हुए इसीलिए माखनलालजी कविता को 'सचित उन्माद का बेकाबू होना' और 'वेद-नाओ का एकीकरण' जैसा नाम देते है। किन्तु कवित्व की इस बेचैन अभिव्यक्ति को वे इस कारण स्वीकार नही करते कि वे पलायनवादी बनना चाहते है या व्यक्तिगत मानस भूमिकाओ मे रमण करना उन्हे रुचिकर है, बल्कि इसलिए स्वीकार करते है कि सायास रचित कविताओ को वे सहज रमणीय काव्य-रचना से अलग रखना चाहते है। घनीभूत वेदनाओ का, सचित उन्माद का बेकाबू होना एक ऐसी तत्परतामय स्थिति है जहाँ कवि सहज उच्छ्वास के रूप मे काव्य-रचना तो कर सकता है, तुकबदी नही कर सकता। और 'कवि तुकबद नही हुआ करता। वेदनाओ का घनीभूत एकीकरण और प्रियतम, आराध्य या प्रेरणा के प्रति रहने वाले सचित उन्माद का बेकाबू हो पडना 'रा' पर 'सा' और 'सा' पर 'रा' जोडकर कैसे उतरकर आ सकता है ?" (पृ० १३)

तुके जोडने मे कवि-साधना की सफलता नही है। कवित्व की साधना सफल होती है—'सहस्र-सहस्र कठो की बेचैनी का गीत' बन जाने मे। अकेले कठ की

पुकार मे जब हजार माँओ का क्रन्दन, विरहणियो का आत्म-निवेदन और खेतिहर के गीत गूज उठते है तभी कवित्व सफल होता है। उस सफलता मे कवि की भाषा आप-से-आप सानुप्रास और प्रवाहमयी होकर सचारित होती है। तुको का साम्य आप ही उपस्थित हो जाता है। "जिस तरह पर्वतो की हरियाली और नदियो के उतार-चढाव मे भी एक सौदर्य का साम्य होता है उसी तरह कवि का विलाप और आलाप जब जगत् का गीत बनना चाहता है तब उसकी पक्तियो मे सगीत की धुन पर तुलने वाला तुको का साम्य आ जाया करता है' कवि जब अपनी पानीदार कलम से उन्हे लिख देता है तब वे जीवित रहने वाले जगत् के बार-बार दोहराने की वस्तु हो जाया करते है।" (पृ० १३)

सहस्र-सहस्र कठो की पुकार बन जाने के इसी प्रयत्न के सदर्भ मे कवि के समक्ष एक प्रश्न उपस्थित होता है ' वह अपने अन्तर्मन का गीत गाये अथवा बहिर्जगत को ध्यान मे रखकर रचना करे। अन्तर्जगत और बहिर्जगत का द्वन्द्व बहुत पुराना है और अपने अकेलेपन मे दोनो मे से कोई भी दृष्टि अधूरी और एकागी है। अन्तर्दृष्टि मानव-मन के स्तरो को चाहे जितना उद्घाटित करे, युगीन जीवन को ग्रहण और चित्रित न कर पाने के कारण अधूरी ही रही आयेगी और इसी तरह बाहरी जगत् के साथ अन्तर्मन को स्पर्श न कर पाने वाली जिज्ञासा भी अपूर्णता की स्थिति से परे नही हो पाती। स्रष्टा की सफलता उसके द्रष्टा होने मे है। द्रष्टा जैसा वह बाहरी जगत और स्थूल पदार्थ जगत का होता है वैसा ही आन्तरिक सूक्ष्म जगत् का भी। अत दोनो का साम्य ही कवि को काम्य है—

"दृष्टि का काम बाहर देखना भी है और भीतर को भी, जब वह बाहर को देखती है, तब मनोभावनाओ के ऐसे चित्रण कलम पर आ जाते है, जिन्हे समय के द्वारा शीघ्र पोछा नही जा सकता यदि मनोभावनाओ की सतह ऐसी हो जिसमे अगणितो का उल्लास और उनकी भावना प्रतिबिम्बित हो उठी हो। यही कारण है कि नेत्र से दीखने वाले सब कुछ की ओर से आँखे मूद लेने पर उसका पता नही लगता, किन्तु भीतर को दीखने वाली दुनिया आँखे मूद लेने के बाद भी दीखती और सूझती रहती है, इसलिए वह समय के हाथो मिटाये नही मिटती। इसलिए समय के निशानो वाली वस्तु समय बदलते ही अपना अस्तित्व खोने लगती है, और समय के नियन्त्रण या 'सस्कृत' के नाम से पुकारी जाती रही है। युग का लेखक न तो खुली आँखो से देखकर उलट-पलट होते जगत पर अपना श्रम दान करने से चूक सकता है, न मुदी आँखो की दुनिया मे महामहिम मानव की कोमलतम और प्रखर मनोभावनाओ की पहुँच तक जाने से रुक सकता है।" (पृ० ६)

कवित्व की सार्थकता उसकी असाधारणता मे ही है, किन्तु यह असाधारणता उसके व्यक्तिगत होने मे नही, बल्कि इस बात मे है कि वह सबके हृदय की

वृत्तियो को एक-सा उभारकर उन्हे एक ऐसा प्रभावशाली व्यक्तित्व अर्पित कर देती है जो व्यवहार जगत् मे किसी वस्तु या घटना कोनही मिला करता। कविता के गुणो की सुदीर्घ तालिका यूरोपीय स्वच्छन्दतावादी कवियो के समान बनाई जाय या न बनाई जाय, उसके डिफेस मे वक्तव्य जारी किया जाय या न किया जाय, इतना सहज ही स्वीकार किया जा सकता है कि कविता भूत, भविष्य और वर्तमान के आवरण को भेदकर कालातीत अवस्था मे और विभिन्न स्तरो पर कृतीवती होती है। "ससार की बडी से बडी वेदना का चीत्कार जगत् के द्वारा इतने शीघ्र भुलाया जात है, मानो उसकी ध्वनि गुनगुनाहट से भी गई-बीती हो। किन्तु जब कोई कवि पुकार उठता है तब उसकी पुकार वह होती है जो अनेक शताब्दियो तक आवाज ही लगाती चली जाती है। उसकी आवाज अपने पास के प्रियतम को नही पुकारती, वह आगे आनेवाली पीढियो के हृदय मे छिपकर बैठने वाले प्राणधन को भी पुकार उठती है। वह उल्लास और विलास ही नही लिखता अपनी सिसक और मुसक के अक्षरो मे वह किसी जाति के भाग्य को लिखा करता है। वे, वह आवाज है, जो गुफाओ से सन्देश लेती है और राजमहलो तक सन्देश पहुँचाती है।" (पृ० १४)

कबिता का क्षेत्र विस्तृत होता है और कवि की पहुँच अनवरुद्ध भाव से सर्वत्र होती है। कविता किसी जाति का प्रतिनिधित्व करने, उसे सस्कार देने मे और उसका भविष्य निर्माण करने मे महत्त्वपूर्ण योग देती है। मात्र इन्द्रधनुषी कल्पनाओ मे रमण करके कविता को सार्थक मान लेना 'मधुराई के जुए के दाँव पर कला का अन्त करण बेचनाहै।'' कवि कल्पनाशील होता है उसे वैसा होनाही है किन्तु कल्पना उसे पख देकर कहे कि इस भूतलको छोडकर गगनबिहारी बनोऔर जहाँ से उड रहे हो उस ओरआँख घुमाकर भी न देखना तो कृतित्व असार्थक हो जाता है। जीवन और कथन को दूर रखने से कब तक काम चलेगा! अपने को और अपनो को पहचाने बिना जीवन और राष्ट्र के गायक बनने का दम भरना किसी के लिए कहाँ तक सभवहोगा और होगा भी तो वह सम्मान कितने दिन ठहरेगा! "ऐसा न हो कि हम लिखे और वस्तु मुहाफिजखानो के बस्तो मे बाँधकर रख दी जाये। हम कभी अपने गर्व को भी तो देख लिया करे। हमारे गाँव-गँवई के लोग हमे जानते नही है और दावा है कि राष्ट्र जानता है। यह दूरी नही है। यह जीवन के प्रति हमारे ईमान का अभाव है। इस अभाव कीपूर्ति हमारा उत्तरदायित्वहै।" (पृ० २०)। जो लोग इस उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक नही है और केवल अपने मन की उडान मे ही कृतित्व की सफलता मान बैठते है उन्हे स्मरण रखना चाहिए कि शाश्वतता साधारणता की भूमि पर ही जन्म लेती है।" कविता को अपनी जागीर कहकर, बाँधकर रखने का जो आयास हम करते है उसमे शब्दो की क्लिष्टता, कल्पनाओ की दुरूहता और सबसे अधिक हमारे जीवन के हमारे काव्य

से दूर-से-दूर रहने और होते जाने वाले स्वभाव का हम इतना पोषण करते है कि हमारी कहन काव्य का आनन्द देने वाली होने के बजाय कूट प्रश्नो की बुझौवल सी हो जाती है, जिसका सीधा परिणाम एक ही होता है कि "बुद्धि-वैभव का कला-पथी, बलिदान और साधारणता का मार्ग छोडकर जब भी ऊँचे पर चढा, वह 'कैलाशवासी' हो गया।" (पृ० २१)।

दूसरी ओर कविता को युगो की सीमारेखा मे बदी बनाना और "समय को मुर्गियाँ कोडने का दडबा-सा बना लेना" भी बुद्धिमत्ता नही है। समय की दीवार लाघकर विचार एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र की ओर जाने या अनजाने बढते चलते है और दो भिन्न युगो के बीच भी एक परम्परा सास लेती रहती है। इस परम्परा का बडा महत्त्व है, उससे कटकर कविता जीवित नही रह सकती "कहन नगण्य भले तनकर कहलाए किन्तु उसे युगो-युगो पीछे देखना ही होगा। हर निशाने के भाग्य मे लिखा है कि वह पीछे तनने मे झिझका कि आगे का लक्ष्य खडित हुआ, अतः वर्तमान मे मर जाने वाले कीडे-मकोडे बनने के बजाय क्यो न हम विरासत के अधिकारी कहे जाएँ जो कि यथार्थ है, हमारी उदासीनता और नकारात्मकता के बावजूद भी।" (पृ० ३२-३३)।

परम्परा के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाने की जैसी आवश्यकता नई पीढी को है, वैसी ही पुरानी पीढी को भी है। नई और पुरानी पीढी के बीच के आज के द्वन्द्व मे पुरानी पीढी नयो की उपेक्षा करने के कारण कम दोषी नही है। "पिछले तीस-पैतीस वर्षोमे पीढियो मे हमने जो कुछ बोया है वही तो उगा है ··क्या वर्तमान पीढी को देखकर अपनी उपज के इस चातुर्य पर हमारे विश्वामित्र मुँह नही फेर रहे है? अत जिनकी मूछे छोटी है उन्ही को युग के विवेक की ओर नही लौटना है किन्तु जिसके बाल सफेद हो गए है या होने लगे है या जिन्हे अपने काव्य और विवेक की विशेषता का दावा है उन्हे भी अपनी भूलो का प्रक्षालन करने के लिए युगो-युगो की ओर लौटकर देखना पडेगा, और उपहासपूर्वक जिनकी उपेक्षा की थी, आयासपूर्वक उन युगो की खोज करनी होगी।" (पृ० ३३)

परम्परा और नयेपन मे विरोध कहाँ है? सही मानो मे तो कवित्व मे ही नवीनता का अधिवास है। कवि का स्वयभू होना ही उसकी नवीनता के कारण सार्थक है। लेकिन इसका यह अर्थ तो नही कि वह जब कभी नवीन होता है तो इस हद तक कि लोग उसे अजनबी समझे, उसकी आकृति-प्रकृति दोनो सर्वथा अनदेखी और अनहोनी हो। वस्तुत नवीनता परम्परा मे से ही नई प्रेरकता लेकर उगती है। काव्य वही महिमाशाली होता है या माना जा सकता है जो आगे आनेवाली पीढियो को प्रभावित करता हो। "कविता, जो कवि के नाम पर पडी रह जाये, जिसमे आगे आनेवाली पीढियो के तन्तु न विद्यमान रहे, तो फिर वह कविता काल के स्थानीयत्व के बोझ से ही क्यो न दब जायेगी? कवि के अर्थ, नयी पीढ़ी

से निकटता का रिश्ता क्यो न हो ? नया युग, नयी पीढी, नयी कविता इन शब्दो मे नवीनता का आरोप कर हम उन्हे विशेष वृत का गुलाम और विशेष काल की बदिनी बना देते है। फिर विचार, सयम, माधुर्य और सौन्दर्य का देश, काल और पात्र से परे होने का दावा हम धूल मे मिला देते है। कही आकर हम विचारक कवि से उसका स्वयप्रभ-रूप, उसका स्वयभूत्व छीन लेते है। तब क्या हम किसी को नवीन कहकर उसे गाली देते है ? उसके माधुर्य और प्रेरकत्व को काल के चरणो मे बाधकर उसे समय सोचकर मर जाने की सूचना देने लगते है ? क्या ऐसा करने का हमे कोई अधिकार है ?" (पृ० ३०-३१)

कविता के सदर्भ मे भाव और विचार मे से किसी एक की ग्राह्यता और दूसरे की अग्राह्यता का झगडा भी निरर्थक है। भावो से हृदयोद्वेलन मे सहायता मिलती है और विचारो से जीवन-मूल्यो की स्थापना होती है। दोनो ही महत्त्व-पूर्ण और काव्य मे काम्य है।' जो भाव विचारो के पास जाते डरते है, वे मोहक हो, वे अमर हरगिज नही हो सकते। चीजे गहने पहनाने से, अथवा चटक-मटक से अधिक दिनो नही टिकती। अधिक दिनो तो विचार ही टिकते है।" (पृ० ३०)। बात तो तब है जब बात मे नयेपन की चटक हो, कोई नया विचार उभरता हो। इस नयेपन मे स्वय एक चमत्कार आ जाता है। "जो कथन नवीन है, वह बेदाग है। अलकार-रहित भी उसके मौन घुघरुओ की आवाज नियति के कानो पर कभी मन्द और कभी तीक्ष्ण पड ही रही है। वह नवीन कथन विधायक है, क्रियात्मक है, वह परिस्थितियो के बीच निर्भीक है।" (पृ० ३२) अतएव "कवि की साध यह होनी चाहिए कि कवि के नाते भले ही उसकी रचना पुरानी पड जाये, और नयी पीढी के नये जौहर युगो-युगो चमकने लगे, किन्तु विचार के नाते उसकी कृतियो की अनन्तराशि मानव-स्मृति के लिए बची रह जानी चाहिए। यह हम यहाँ न भूले कि जो पीढियो से भूलते आए है कि विचारो के मानी उपदेश के नही। विचार प्रेरक शक्ति है, उपदेश प्रेरणा की अयथार्थता और जीवन के दम्भ-जैसी असहाय है।" (पृ० ३०)। काव्य का आदर्श ही यह है कि वह पुरुषार्थ जगा सके, गान की तृप्ति तो दे मान का गौरव भी दे। "पीढी को तुम मधुर गान दो तो प्राणो की उठान भी दो, सपने फूले तो बलि के पुष्प भी फूले, कली चटके तो आकाश से गोलियाँ भी चटक दे।" (पृ० २४)।

कविता को कला कहकर उसे व्यापारिक दृष्टि से देखना उचित नही है। कविता कभी-कभी जीवन मे और सूझो मे आने वाली लहरे है और उसे कला कहकर माँ को जननी कहलाते समय प्रजनन को उसका व्यापार मान लेने जैसा अपमान करना है। "इसीलिए अपने उल्लासो, आवेगो, अतिरेको, आँसुओ और समर्पणो मे कविता का लेखक कला और असफलता इन दोनो को न्यौतते समय पिछली न्यौत सकता है किन्तु पहली को न्यौतकर कला का व्यवसायी कहलाना

आदर की वस्तु नही मानता।" (पृ० ३५) । "जीवन जब उतरता है तब कला चढती है। ये एक दूसरे के बिना नही रह सकते, एक-दूसरे का साजव-शृंगार भी यही करेगे किन्तु एक-दूसरे के अस्तित्व से ऋषियो की तरह बेवास्ता से रहकर।" (पृ० ४१) ।

फिर भी कला कोई तिरस्करणीय वस्तु नही है । वह हमारी सृजनात्मक आनन्दिनी का अभिषेक किया जाने वाला नाम है। "मिलन का महोत्सव है।" उसका विचित्र आकर्षण और सम्मोहन है। जीवन और सहज आभिव्यक्ति के ऊपर उसकी प्रतिष्ठा नही होनी चाहिए, किन्तु उसके रहते कला के सम्मोहन को अस्वीकार भी नही किया जाना चाहिए, क्योकि "कला बहुत फैलती है, युगो-युगो फैलती है और देश-देशान्तर पर छा जाती है कला जहाँ एक तरफ भगवान की रचना का भावानुवाद है वही दूसरी तरफ सृष्टि के मौन आनन्दकणो की मानो वह साँस है।" (पृ० ५३) । उसे कोई बाधा नही सताती, प्रचार की उसे आवश्यकता नही होती। "कला जनजीवन से अपमानित होकर भी ऐसा कुछ करने के लिए प्रस्तुत नही होती जो उसके श्रम और आनन्द के अतिरेक से निर्मित योग को, प्रकृति की पुकार, जीवन की आवश्यकता और भगवान की वाणी की उल्लास और उसाँस-वृत्तियो को व्यक्त न कर सके। इसलिए जब किसी देश की मूर्ति, उसके चित्त, उसका नृत्य, उसका सगीत, उसका साहित्य और उसका काव्य किसी दूसरे देश मे पहुँचता है तब वहाँ उसका स्वागत किया जाता है।" (पृ० ५३-५४) । यो कला से भेद और दूरी अपने आप मिट जाती है।

कला और कला के बीच अभिव्यक्ति और माध्यम का अन्तर हो सकता है, प्रभाव का अन्तर नही होता। मानव और पशु सभी समान रूप से उससे प्रभावित होते है। कला का महत्त्व अपने देश-कालादि का प्रतिनिधित्व करने के कारण है, हृदय की बात को दूसरे हृदय तक पहुँचाने के कारण है। 'कला श्रम को माधुर्य से मिलाने और इस तरह अस्तित्व को अमर बनाने का साधन है।" इतिहास का परिरक्षण उसी के द्वारा होता है, "जब शासन और प्रचार के रथचक्र ठहर जाते है और युग का प्रचार जूडा डाल देता है तब कला मानो ऊँचे पर उठकर विश्वबधुत्व की स्थापना करती है, सीमाओ के बन्धन तोडती है, मानव और मानवी के विकारो को आकार प्रदान करती है, उल्लासो की खैरात बाँटती है, आँसुओ के मोती बना-बनाकर ढालती है कि जरूरतमद दुनिया उसे लूट ले।" (पृ० ५६) ।

लेकिन कला इतना महत्त्व पाकर भी और युग तथा परिवेश-सृजन मे महत्त्व पूर्ण सीमा तक स्वीकृति पाकर भी साहित्य को केवल आकार दे पाते है, उसका प्रकार नही बन पाते। "साहित्य की मूल आत्मा तो मानव-विकार है, जिन पर सृष्टि ठहरी हुई है। क्रोध, लोभ, आकर्षण, द्रोह, ममता, घृणा और इसी तरह के अन्य प्रकार साहित्य के पैर फैलाने के क्षेत्र है।" (पृ० ४५) । साहित्य का

सृजन होता है प्रज्ञा की आँखो से देख-भालकर। "प्रज्ञा का कोष यादो और अनुभूतियो की दूर और निकट की प्रेरणाओ मे निवास करता है। यदि विकारो को कभी अनचाहे और कभी मनचाहे आकार दे-देकर कलाकार ने पीढियो मे रस और विष न बोया होता तो क्या आज पीढी नाम की कोई चीज़ होती ?" (पृ० ४६)। वस्तुत इतिहास का ज्ञान मुख्य वस्तु नही है, प्रसाद, निराला और उनके समय को जानना महत्त्वपूर्ण नही है। "रस ही मूल वस्तु है। जहाँ से रस प्रारभ हुआ, बात प्रारभ हो गयी, जहाँ रस समाप्त हो गया, बात समाप्त हो गयी। यह तो व्यक्ति-स्थान और समय के उपद्रव मात्र है कि जहाँ रस नही है वहाँ भी पीढियाँ कलाहीनता को कला कहने के लिए वाध्य है।" (पृ० ४६)। उपयोगिता और काल-बधन साहित्य के लिए महत्त्वपूर्ण नही है, यह काम विज्ञान और तर्क आदि का है। उसमे रस की चर्चा नही होती और साहित्य मे उनके तत्त्वो का आग्रह नही होता। कला की त्रिकालज्ञता उनसे बधकर नही रहती। "कला नाक देने वाले का गुणगान ही है, नथ देने वाले का वर्णन तो वह प्रसगानुकूल ही करती है।" (पृ० ४९)।

कविता, कला और साहित्य को चतुर्वेदीजी ने इतने सन्दर्भो मे देखा-परखा है कि पूरे शास्त्र की परिधि तैयार हो जाती है, किन्तु उनका उद्देश्य शास्त्र-रचना करना नही है। उनके निबध भी उनकी निर्बन्ध भावुकता की ही देन है और सहज उच्छ्वास की गति से ही उनकी रचना हुई है। विवेचन और उसके विस्तार मे शास्त्रीयता की न उनकी दृष्टि ही है, न उनसे अपेक्षा ही की जा सकती है। अत यदि इन निबधो मे तर्क की तडक-भडक नही दिखाई देती तो इनका उद्देश्य उससे पराजित नही होता, बल्कि उल्टे मार्मिक अनुभूति, सहज ईमानदारी और ललित अभिव्यक्ति की सराहना के साथ इन्हे ललित साहित्य की निधि मानना चाहिए, कवि की अन्तर्दृष्टि की श्लाघा करनी चाहिए और यही इनका वाछित भी है।

प्रगमनशील भाव-यात्रा : समय के पाँव

डा० जगदीश गुप्त

'समय के पॉव' मे सग्रहीत सभी लेख, जिनकी सख्या पच्चीस है, व्यक्तियो से बँधे है। तिलक और गाधी विशेषत ऐसे महापुरुष है जिनसे कई लेख सम्बद्ध है। सम्माननीय लेखक के मत से महान् व्यक्तियो के चरित से सम्बद्ध होने के कारण ही उसके सस्मरणो का यह सग्रह अधिक 'प्रगमनशील' है। यह विशेषण न केवल कवि-कल्पना से उद्भूत है वरन् इसके पीछे भी काव्य-प्रेरणा निहित है। उन्नीसवी सदी के अमरीकी कवि लागफेलो की एक सुप्रसिद्ध कविता मे महापुरुषवादी जीवन-दृष्टि का परिचय देते हुए समय की रेत पर अकित महान् आत्माओ के उदात्त जीवन के चरण-चिह्नो को मानवता के मार्गदर्शक आदर्श के रूप मे कल्पित किया गया है। चतुर्वेदीजी ने शाश्वत गति की उस विशाल चेतना को समय पर ही आरोपित कर दिया और इस प्रकार अमूर्त मे मूर्त की धारणा करते हुए मानवीकरण की पद्धति से 'समय के पॉव' की प्रगमनशीलता तक उनकी भाव-यात्रा सम्पन्न हुई। मै इसे भाव-यात्रा ही कहूँगा क्योकि जो सस्मरण इस सग्रह मे समाविष्ट हुए है वे माखनलालजी के प्रगाढ वैष्णव-भाव से अन्तर्लीन राष्ट्रीयता की क्रान्ति और आत्मोत्सर्ग से घनीभूत हार्दिकता से आद्यन्त आपूरित है, इसीलिए उन्हे 'समय के पॉव' पर मस्तक रखने के सिवा और कोई चारा नही दिखाई देता। 'दो शब्द' मे बिस्तरे पर पडे-पडे मै इतना ही लिख सकता हू, वाक्य पढते हुए मुझे लगा कि जैसे किसी ने भीतर कही कुछ सोया हुआ जगा दिया हो। मेरी ऑखो के आगे खडवा का सारा दृश्य घूम गया—उनका कमरा, दवाइयो की शीशियो की भाषा मे बोलती उनकी टेबुल, उनकी क्षीण काया को अपनी उज्ज्वलता मे निरन्तर सहेजने वाली उनकी शैया और प्रत्यभिज्ञान के इस क्षण के बाद मैं इसी सग्रह के एक अन्य पृष्ठ पर दूसरा वाक्य पढता हूँ—"इन अनगिनत सस्मरणो को लेकर इनका बोझ ढोना भर बाकी रह गया है" तो लगता है कि मन मे कुछ जगाया ही नही वरन् झकझोर भी दिया गया।

ऐसा प्रभाव मुझ पर नही हुआ, मैं समझता हूँ उन सभी पर होगा जो उनकी आत्मीयता के भाजन रहे है और 'एक भारतीय आत्मा' की आत्मीयता सीमित कभी नही रही, यह मै अनुभव से जानता हूँ। यह सग्रह, मेरा विश्वास है, सभी को सस्मरणो मे समविष्ट महापुरुषो के अतिरिक्त एक और महापुरुष के निकट लाएगा जो कोई और नही स्वय इसका लेखक है। पृ० ११३ पर ही पूर्वोद्धृत वाक्य के ठीक आगे 'इतने प्यारे' सस्मरणो को 'कॉलमो की सीमा' मे बाँधने की बात सामने आती है जिससे ज्ञात होता है कि 'कर्मवीर' का सम्पादक अपने पत्र की सीमा सोच रहा है। यद्यपि इसका स्पष्ट निर्देश भूमिका मे नही किया गया है तथापि यह निष्कर्ष सरलता से निकल आता है कि इस सग्रह की बहुत-सी सामग्री ऐसी है जो सम्पादकीय रूप मे 'कर्मवीर' के कालमो की शोभावृद्धि कर चुकी है। सुमित्रा-नन्दन पत और रामचन्द्र शुक्ल विषयक लेख तो टिप्पणियो के अश-भर है जो एक पृष्ठ से भी कम के है। उनकी प्रकृति भी सामान्य ही है। 'हिमकिरीटिनी' भारतमाता के मुकुट रूप मे हिमालय लेखक की राष्ट्रीय चेतना के उन्नत और उदात्त रूप का प्रेरक आधार रहा है। अत यह स्वाभाविक ही है कि वह अपने मान्य राष्ट्रनायको के इस सस्मरण-सग्रह को चीनी आक्रान्त हिमशिखरो पर समस्त देश का ध्यान आकर्षित करते हुए कल्पना के धनुष पर वाण की तरह रखकर लक्ष्य-बेध का उपक्रम करे। उसकी इस चेष्टा से एक बूढी काया के भीतर अबाध गति से तरगायित अदम्य तारुण्य की झलक मिलती है। इतना ही नही, इस क्रम मे जब वह लोकमान्य तिलक, राष्ट्रपिता बापू सुभाषचन्द्र बोस और 'झाँसी की रानी' की गायिका सुभद्राकुमारी चौहान का नामोल्लेख करता है तो—प्रकारान्तर से ही सही—पाठक इन व्यक्तित्वो के प्रति लेखक की विशेष निष्ठा और आत्मीयता के गम्भीर सत्य का साक्षात्कार कर लेता है। प्रस्तुत पुस्तक का पृष्ठ-पृष्ठ इसी का साक्षी है।

पहला सस्मरण है 'तुम्हारी स्मृति' जो लिखा गया है तिलक की स्मृति मे, पर लेखक ने शीर्षक मे 'तिलक' शब्द का प्रयोग न करके आत्मीयतामूलक 'तुम्हारी' पद का व्यवहार किया है, प० मोतीलाल नेहरू तथा 'श्रीयुत रामचन्द्र शुक्ल' जैसे निर्वैयक्तिकतापरक शीर्षको से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तिलक का व्यक्तित्व चतुर्वेदीजी की ममता और श्रद्धा का सबसे अधिक भागी है। उन्होने तिलक को 'परम मुक्ति, पूर्ण स्वाधीनता का उपासक, उमगो और क्रियाओ का युवा तपस्वी' कहकर उनके 'भारतीय स्वतन्त्रता की नीव रखने वाले चरणो मे शत-वन्दन अर्पित किए है, जो बाणेदार पणा' तेजस्विता लोकमान्य तिलक राष्ट्र-भाषा मे आवश्यक मानते थे, उसी की प्रतिष्ठा का प्रयत्न माखनलालजी ने अपनी जीवन-व्यापी साहित्य साधना मे किया है। तिलक की क्रान्तिकारी वृत्ति के साथ महात्मा गाधी की अहिंसा की सगति बैठाना बहुतो के लिए कष्टकर होता है

परन्तु चतुर्वेदीजी ने अपने जीवन के समस्त अनुभव की शक्ति से लिखा है कि "लोकमान्य और महात्माजी मे जो लोग विरोध देखते रहे है उन्होने न लोकमान्य को पहचाना, न भारतवर्ष को।" उनकी ऐसी अनुभूत उद्घोषणाएँ इस कृति मे जगह-जगह उपलब्ध होती है जो भारतीयता की परख के लिए एक सूक्ष्म अन्त-र्दृष्टि प्रदान करती है, अत मूल्यवान और स्मरणीय है। आत्म-अनुभव ही नही, आत्मकथा की स्फुट छाया भी प्राय सभी प्रमुख सस्मरणो मे विद्यमान है।

भारतीय जनता मे विद्रोह न करने की वृत्ति को वे गुलामी का अभिशाप मानते है। सुभाष के विषय मे लिखते समय वे अपने क्रान्तिकारी जीवन की स्मृति से विभोर होकर फिर उसी आत्मीयता की भाषा अपना लेते है जिसका सकेत तिलक के प्रसग मे किया जा चुका है—

"रहस्य सोचा अरविन्द ने, रहस्य काव्य बनाकर लिखा रवीन्द्र ने और रहस्य अवतरित हुआ तुम्हारे रूप मे।"

लेख का अन्त 'तुम , 'तुम्हारी' और 'तुम्हारे' की भावाकुल शब्द-शृखला के साथ होता है। विद्रोह की शक्ति रखने वाली सकल्पशील कर्मठ तरुणाई पर रीझ-रीझ उठना माखनलालजी की विवशता है। फिर वही द्वन्द्व लेखक के सामने आता है। गाधीजी की सयमशील मर्यादित अहिंसा और उससे लोहा लेने वाली सुभाष की क्रान्तिमयी शक्ति-उपासना—किसका पक्ष ले वह ? ऐसे मार्मिक स्थल पर उसका लेखन नही, लेखन के माध्यम से घटित हुआ मनोन्मथन द्रष्टव्य है—

"न जाने कौन-कौन गाधी-विरोधी तुम्हे स्वय नष्ट करने पडे और गाधी के आशीर्वादो से भरी हरिपुरा काग्रेस के सभापतित्व की गादी—वह राष्ट्रपतित्व—तुमने, स्वय गाधी और वल्लभभाई और गाधीवादियो के हाथो ग्रहण किया, इसमे भी कौन हारा, तुम या गाधी ?"

स्पष्ट है कि वे गाधीजी की विजय को गौरवान्वित नही करना चाहते है। उनके सत्याग्रह के प्रति बौद्धिक रूप से आस्थावान् होते हुए भी चतुर्वेदीजी का क्रान्तिचेता कविहृदय तिलक और सुभाष जैसे व्यक्तियो के साथ ही बिलम जाता है। गाधीजी को 'महात्मा' मानते हुए भी वे सुभाष को निस्सकोच भाव से महा-मानव की उपाधि से विभूषित कर देते है।

इस सग्रह मे जो कुछ उन्होने गाधी और विनोबा के विषय मे लिखा है वह माखनलालजी के व्यक्तित्व के दूसरे पक्ष को प्रस्तुत करता है। इसकी सत्य-निष्ठा, त्यागवृत्ति, सकल्प-दृढता और सबसे अधिक कर्मकौशल उनके लिए वरेण्य रहा है। गाधीजी को 'महात्मा' के पूर्व एक और उपाधि भारतीय लोक-चेतना ने दी थी और वह थी 'कर्मवीर'। इसमे निहित वीरता की धारणा वीर रस के अन्तर्गत आने वाले चारो प्रकारो से भिन्न कोटि की थी और तिलक के 'गीतारहस्य' के कर्मयोग

आकस्मिक नही है कि जिस पत्र के वह सम्पादक बने वह 'कर्मवीर' ही निकला। यह सगति उनके स्वभाव, दृष्टिकोण और व्यवहार-जगत् की अन्तरग एकता की सूचक है। गाधी और विनोबा के व्यक्तित्व मे निहित वैष्णवता और सन्त-सुलभ चारित्रिक-बल ने उन्हे और भी अभिभूत किया जो इनके विपय मे लिखी गयी उनकी अर्थबहुल पक्तियो से प्रमाणित होता है। निकट सम्पर्क मे आकर व्यक्तियो की महानता का बोध दैनन्दिन आचरण की सूक्ष्म और साहसपूर्ण भगिमाओ से किस प्रकार होता है, इसका आत्मचरितमूलक प्रचुर आख्यान इनसे सम्बद्ध लेखो मे मिलता है।

'महात्मा गाधी को सबसे पहले मैने लखनऊ काग्रेस मे देखा था' जैसे वाक्य से सीधे-सीधे सस्मरण का समारम्भ होता है। बीच-बीच मे भी यही विधि अपनायी गयी है। 'एक बार मै बापू के साथ वर्धा से बम्बई की यात्रा कर रहा था' आदि। छोटे-छोटे प्रसग समय के अन्तराल से छनकर स्मृति के सहारे सचित किये गए है जिनके पीछे लेखक का निजी व्यक्तित्व पर्याप्त मुखरता के साथ प्रत्यक्ष होता चलता है। उनके विषय मे लिखी गयी जीवनी को इन लेखो के सन्दर्भ मे सशोधित-परिवर्धित करना पडेगा, ऐसा मुझे लगता है। गाधीजी ने किस-किस प्रकार से उन्हे तथा उनकी उपस्थिति मे गणेशशकर विद्यार्थी जैसे विद्रोह-प्राण कार्यकर्त्ताओ को अभिभूत किया इसकी सजीव स्मृतियाँ यथेष्ट रोचकता के साथ लिखी गयी हैं। "बापू को कौन रोक सकता है ? वह तो नर्मदा की धार है," एक ग्रामीण का यह अभिमत नर्मदा के प्रति राग-बद्ध उनके ही हृदय मे सुरक्षित रह सकता था। लेखक को सबसे अधिक आकर्षण गाधीजी के प्रति कदाचित् इसलिए हुआ कि उन्होने मुक्तकठ से लोकमान्य की आवाज को समय मे डूब जाने की उद्घोषणा की थी जिसे उसने लेख के आरम्भ मे ही प्रस्तुत कर दिया है। यह शृ खला टूटी नही, तिलक की वाणी से प्रदीप्त महात्माजी और गाधी-विचार-रश्मियो से आलोकित आचार्य विनोबा— यह क्रम लेखक की दृष्टि से ओझल हो जाता तो सम्भवत उसकी निजी वाणी का तेज भी मन्द पड जाता। किन्तु वास्तविकता यह है कि उसके भीतर भी वही ज्योतिशिखा प्रज्वलित दिखायी देती है।

यहाँ मैं चाहूँगा कि माखनलालजी की महापुरुषवादी जीवन-दृष्टि की सीमा की ओर भी सकेत कर दूँ। विनोबाजी के सस्मरण मे ही यह प्रश्न उन्होने उठाया है, कि समूह की अपेक्षा व्यक्ति को, युगपुरुष को, क्यो न शक्ति एव सामर्थ्य का स्रोत माना जाए ? वह शक्तिस्रोत जमाने का बागी होता है, अपना जमाना स्वय निर्माण करता है, जैसी धारणाएँ व्यक्त करते हुए जब वे रूपक को और आगे ले चलते है तो यहाँ तक कह डालते है—

"विश्व को एक प्रवाह कहा जाता है। प्रवाह तो निम्नगामी ठहरा। युग-पुरुष इस चिरन्तन प्रवाह को जडत्व के पतन-पथ से खीचकर चिन्मय केन्द्र की

ओर मोड देता है।"

इस विचार-पद्धति मे विश्व को सहज रूप से अधोगामी मान लिया गया है जब कि अरविन्द जैसे भारतीय मनीषी ही यह प्रतिपादित कर चुके है कि सम्पूर्ण विश्वचेतना उच्चतर आध्यात्मिक सन्तुलन की ओर अग्रसर हो रही है। भारतीय अवतारवादी दृष्टि भी धर्म मे समय-समय पर होनेवाली ग्लानि की ही कल्पना करती है। आत्यन्तिक रूप से विश्व की स्वाभाविक गति पतन या अधर्म की ओर है ऐसी मान्यता उसको कदापि इष्ट नही है। "जमाना लाचार होकर उसके यानी महापुरुष के पीछे चलने को बाध्य होता है।" चतुर्वेदीजी सम्भवत स्वय अपने इस अभिमत को प्रेमचन्द से कला-सम्बन्धी निजी मतभेद की बात कहते हुए विस्मृत कर देते है। वहाँ वे प्रेमचन्द के इस विचार का खण्डन करते है कि व्यक्ति का जीवन समाज का प्रतिनिधि है। तर्क किया जा सकता है कि यदि सामान्य व्यक्ति का जीवन समाज का स्वरूप व्यक्त नही कर सकता तो महापुरुष भी तो अन्तत व्यक्ति ही है। सारे समाज की चेतना का प्रतिनिधित्व उसके द्वारा भी कैसे सम्भव स्वीकार किया जा सकता है! वास्तव मे महापुरुषवाद एक जगह जाकर समाजवाद के ठीक विरोध मे आ जाता है और इतिहास की आधुनिक व्याख्याएँ भी उसके विपरीत ही है। महापुरुष समाज का निर्माता है इससे कम महत्त्व इस बात का नही है कि समाज ही ऐसे व्यक्तियो के उद्भव का कारण होता है। मै मानता हूँ कि व्यक्ति का निषेध करके समाज की कल्पना नही की जा सकती, किन्तु घटनाओ और व्यक्तियो की महत्ता भी समाज-निरपेक्ष दृष्टि से प्रतिपादित नही की जा सकती। चतुर्वेदीजी ने शायद भावात्मक अतिरजना मे ऐसा कहा हो, यह सोचा जा सकता है, पर मुझे ऐसा लगता नही है। महापुरुषवादी विचारधारा उनकी आस्था और जीवनदृष्टि का अनिवार्य अग है, उनके व्यक्तित्व से उसे अलग नही किया जा सकता। यो उनमे वह अन्तर्दृष्टि है जो किसी वस्तु के प्रेरक चैतन्य रूप को सूक्ष्मता से ग्रहण करने के लिए उत्सुक रहती है तथा ऊपर से विरोधपूर्ण लगने वाली वस्तु की आन्तरिक सगति से परिचालित होती है। इसका एक उदाहरण इस बात से मिल जाता है कि मैथिलीशरण वाले लेख मे वे सुधारवाद का पक्ष लेते है किन्तु प्रसादवाले लेख मे उसके विरुद्ध छायावाद के उत्कर्ष की सराहना करने मे भी सकोच नही करते। यहाँ उनकी समय के पाँवो की प्रगमनशीलता-ही कदाचित् लक्षित होती है। महात्मा गाधी से गम्भीर रूप से प्रभावित होते हुए भी हिन्दी के विषय मे मतभेद के स्थलो पर टडनजी को उनका समर्थन बराबर प्राप्त होता रहा। उनकी स्पष्ट उद्घोषणा थी, "कि जो हिन्दी इस देश के प्रत्येक भाषा-भाषी और निवासी का गौरव और तर्क नही बन सकती वह दरिद्री हिन्दी पुरुषोत्तमदास टण्डन की हिन्दी नही है।" यह उक्ति आज के हिन्दी-विरोधी प्राण-घाती आन्दोलन की आँख खोलने का ही कार्य नही करेगी वरन् हिन्दी-प्रेमियो

के भीतर छिपी हुई सकीर्णता का परदा भी उधाड देगी। देशव्यापी असकीर्ण राष्ट्रीय भावना से हिन्दी का पक्ष लेने मे वे टण्डनजी के दक्षिणबाहु रहे है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के प्रति लिखा हुआ उनका सस्मरण आत्मीयता और स्नेह-भाव के जिस भीतरी स्तर की अभिव्यक्ति करता है, वह अन्यतम है। उसमे अपने छोटे के प्रति भी आदर का वह भाव आ सका है जो अत्यन्त निकटता और परिचय की सघनता से ही सम्भव है। शीलवश स्वय लेखक ने तो नही कहा पर मैं कह सकता हूँ कि एक तेजस्वी कवयित्री के रूप मे सुभद्राजी की सजीव मूर्ति के निर्माण का प्रमुख श्रेय माखनलाल चतुर्वेदीजी को ही है। उन्होने लिखा है, 'कलम इस क्रान्तिबाला के हाथो पडी, परन्तु वह तृणशलाका उन्ही की दी हुई थी इसमे सन्देह नही। यह अर्थपूर्ण है कि नर्मदा के प्रति सहज ससक्ति रखने वाला कवि जब 'झाँसी की रानी' की लेखिका के अभाव का रूपक की भाषा मे स्मरण करे तो उसे लगे 'मानो नर्मदा की धारा को कोई महाकौशल के अचलो मे से चुराकर ले गया हो और इस निर्मल धारा के बिना तट के पुण्यतीर्थो के सारे घाट मानो अपना अर्थ और उपयोग खो बैठे हो।" मर्म को इससे अधिक छूना उचित नही होगा।

'साहित्य देवता' के मान्य शैलीकार, साहित्य-चिन्तक और कल्पनाशील भावक कवि के दर्शन इस कृति मे सर्वत्र होते है और इसलिए भी यह सग्रहणीय है। कठोर यथार्थ की भूमि मे प्रवेश कर चुकने के कारण आज का युग इतनी भावुकता से अलग हट आया है परन्तु उसका उचित सम्मान करने की बुद्धि उसमे है। गुप्तजी के शब्दो मे कहना होगा, 'कर सकता उसका मूल्य कौन है चुकता ?' व्यग्य की भाषा भी लेखक द्वारा कही-कही अपनायी गई है। पडित रविशकर शुक्ल के सस्मरण मे, शुरू होते ही जनसामान्य को स्वभाव के अनुसार सात वर्गो मे बाँटकर, धारा प्रवाह रूप मे जिस प्रकार अनुभव सम्पन्नता के साथ प्रस्तुत किया है, वह असाधारण प्रतिभा का परिचायक है। कोई चाहे तो वर्ग-विभाजन की शास्त्रीय परीक्षा करके ननुनच कर सकता है, पर जिस विचार-समृद्धि का और स्वानुभव को व्यक्त करने की जिस बौद्धिक विधि का प्रयोग किया है वह अपने मे ही एक उपलब्धि लगती है। सूक्ष्म अर्थगर्भित सूत्रवाक्यो का सृजन उनके गद्य का अतिरिक्त महिमा प्रदान करता है। चाहता था कि कुछ ऐसे वाक्य उद्धृत भी करूँ पर विस्तार यो ही हो गया अत पृष्ठ सख्या मात्र दिये दे रहा हूँ—४७, ४८, ६६, ८८, ८९, ९८, १०१, १०२, ११८, १२०, १२२ आदि। कुछ काव्यात्मक कथनो की ओर निर्देश करने का लोभ फिर भी सवरण नही कर सकूँगा क्योकि उनमे सूत्रा-वाक्यो से भी उत्कृष्टतर रचनाशक्ति परिलक्षित होती है यथा—

१. मानो लालटेनो के रूप मे वृक्षो मे प्रकाश के फल फले हो।—पृ० ३९

२ अहिंसा की लहर हिंसा की कालिख पोछने मे व्यस्त थी। (पृ० १२०)

३ वे (गुरुदेव) मखमल जैसे कोमल शब्द बोल रहे थे। (पृ० १२३)

४ उनका (राजर्षि का) इमली के बीजो जैसा नपातुला मत देखने तथा सुनने को मिला। (पृ० १४१)

ये वाक्य कल्पनागत मौलिकता से सम्पन्न बिम्बात्मक एव सृजनशील भाषा प्रकृति और कवि के परिष्कृत रूप-बोध को व्यक्त करते है। निश्चय ही उपर्युक्त गुण इस कृति को विशिष्टता प्रदान करते है।

एक भाव-भरा गद्य-काव्यात्मक गुच्छा : समय के पाँव

※ ०

डॉ० प्रभाकर माचवे

यह पुस्तक माखनलाल चतुर्वेदी के राजनीतिक नेताओ, आदर्श पुरुषो, साहित्यिक सहयोगियो और प्रिय व्यक्तियो के प्रति श्रद्धाजलि भरे निबन्धो का सग्रह है। व्यक्तियो के सस्मरण, मूल्याकन, रेखा-चित्रण और उनके प्रति समय-समय पर किये गए 'एक भारतीय आत्मा' के श्रद्धा-ज्ञापन का यह भावभरा गद्य काव्यात्मक गुच्छा है। पन्तजी पर तो केवल तेरह पक्तियाँ है। उसका एक अश माखनलालजी की शैली का किंचित आनन्द देगा —"वह तो पक्षी है, उसकी तान मे एक नैसर्गिक विकास है। ऊषा की आलोक-भरी आभा मे प्रत्येक प्राण गाता है। पर जब उसने गाया था तब सन्ध्या की उलझनभरी छाया थी। उसका हृदय छायाभरी उलझन मे निकलकर चिर-प्रकाश के उषालोक मे नाच उठा है उसके गान मे पर्वत का वैभव, निर्झर का शैशव और वन की पाती है। वह विजन वन का राजकुमार स्वर और सौदर्य से हृदय हृदय मे राजकर रहा है। उसमे मधु है, शराब नही, आकर्षण है, तीव्रता नही, जिसका अश-अश झकार है, जिसका रोम-रोम कम्पन है, जो रूप का स्वर और स्वर का रूप है।"

माखनलालजी का एक ग्रीक की तरह सौदर्य-प्रेम उनके सभी निबन्धो मे परिव्याप्त है। पच्चीस निबन्धो मे केवल एक महिला सुभद्राजी पर लेख है। जो उनके आत्मीयजन है, जैसे टण्डनजी, गणेशजी, लक्ष्मणसिंह चौहान या सुभद्राजी, उन पर निबन्ध बहुत ही कमाल के है। ऐसा लगता है कि हम निबन्ध नही, डायरी पढ रहे है, व्यक्तिगत सस्मरण सुन रहे है, उनके सभी निबन्धो मे एक कुशल और प्रभावशाली वक्ता की सफल वक्तृता के गुण है। 'विट' से वे भरपूर है, सूक्तियां बिखरी पडी है अनन्त मणियो-सी और भाषा जैसे उनकी कलम की नोक पर खेल रही है।

माखनलालजी की राष्ट्रीयता का विकास उस पीढी मे हुआ जब 'साहू को सराहूँ या सराहू छत्रसाल' वाली मन स्थिति सभी तरुणो की थी। तिलक और गाधी के बीच का यह सक्रमणकाल था इसलिए तिलक पर पहला निबन्ध है, गाधी पर अगले चार। ये इस पुस्तक की आत्मा है। एक ओर गाधीजी के शिष्य विनोबा, मश्रूवाला पर माखनलालजी ने लिखा है, दूसरी ओर उनका विद्रोही कलाकार मन क्रान्ति की ओर खिचा है। सुभाष और भगतसिह पर निबन्ध पठनीय है। कही-कही निबन्ध पत्रकार की शोकाजलि के रूप मे है।

सबसे मनोरजक बात मुझे लगती है कि माखनलालजी के साहित्यिक निबधो से उनकी उदार कलाभिरुचि, उनकी व्यापक मानवीय सहानुभूति और समकालीनो के प्रति उस एक पीढा पहले वाला सौहार्द जो अबके साहित्यिको मे शून्य-प्राय होता जा रहा है, छलक-छलक उठता है। उदाहरणार्थ प्रेमचन्द पर वे कहते हुए अपना मतभेद कैसी मधुरता से व्यक्त करते है—"कला के सम्बन्ध मे मेरा उनका थोडा मतभेद रहा। उनका विचारथा कि व्यक्ति का जीवन समाज का प्रतिनिधि है और समाज की गतिविधि का सकेत करता है और मेरा खयाल था कि जब जनता रूपी समुद्र ने मिलकर लहरो का ज्वार बनाना छोड दिया हो, तब समुद्र की लहरो का टूटकर जल-बिन्दुओ मे बट जाना और केवल उन्ही बिन्दुओ का चित्रण सम्पूर्ण समुद्र की उसके ज्वार की, विरोधियो को निगलने के, उसके सामर्थ्य की, उसके अपने गाम्भीर्य की, हृदय मे बनने और निवास करने वाली रत्नराशि की याद नही दिला सकती।"

आन्तरिक भावनाओं का चित्रांकन : समय के पाँव

○ ○

जगदीश चतुर्वेदी

दादा की पक्तियाँ गुनगुना रहा हूँ, शायद 'निकष' मे पढी थी —

"साँझ आई तो गगन के पख वाले गीत
क्यो चुप हो गये ?
साँझ आई, वे हृदय के रोष वाले मीत
क्यो चुप हो गये ?"

पक्तियाँ अनायास ही उभर आयी है और मै उनके सामने रखे ग्रन्थ को पढ-कर ये पक्तियाँ और जोर से गाना चाहता हूँ। इन निबन्धो मे भी कुछ अमिट हस्ताक्षरो की स्मृति ही तो है, जो दादा की वृद्ध आँखो मे अनायास एक चमक सी पैदा कर जाती है। जब तिलक की याद आती है तो एक अतिरिक्त जोश से भर उठते है, गाधीजी की स्मृति उन्हे एक शोक से आप्लावित कर देती है और टण्डन-जी तथा सुभद्राकुमारी चौहान और ठाकुर लक्ष्मणसिंह का अभाव उन्हे एक व्यक्ति-गत पारिवारिक क्लेश का आभास देता है। उन्हे पुरातत्ववेत्ता काशीप्रसाद जायसवाल की स्मृति आती है और तेजोदीप्ति से प्रभापूर्ण उनका मुखमण्डल एक अवसाद से भर उठता है। राजनीति, पत्रकारिता और साहित्य का त्रिवेणी सगम जो माखन-लाल चतुर्वेदी की सर्वतोमुखी प्रतिभा तथा विशिष्ट व्यक्तित्व का प्रतीक है, इसी पारस्परिक सौहार्द तथा स्वजनोचित सहयोग की पावन भावना का परिणाम है। लगता है ये तमाम मीत चुप हो गए है और माखनलालजी उन शान्ति-कपोतो के लिए अनवरत शोक सवेदना से आप्लावित है।

दूसरी ओर ये निबन्ध साहित्य, सस्कृति तथा राजनैतिक विचारधारा को तटस्थ पर्यवेक्षक की पैनी नजर से देखने का प्रमाण देते है। विनोबा के निबन्ध मे उनका कवि व्यक्तित्व नई पीढी के ढग से सोचने लगता है। माखनलाल चतुर्वेदी कह उठते है — जाने कब, किसने जमाने की स्मृति मे 'सघे शक्ति कलौयुगे' वाली कहावत शामिल कर दी और तब से आज तक बिना सोचे-समझे लोग इस

भ्रान्ति को दोहराते चले आ रहे है। विचार की कसौटी पर चाहे जिस युग को कसिये, व्यक्ति और केवल एक व्यक्ति मिलेगा जिसके महान् गुरुत्वाकर्षण के चारो ओर, व्यक्ति-समूह, सौरमण्डल के उपग्रहो की भाँति चक्कर काटता हुआ पाया जायेगा ?" समूह नही व्यक्ति ही युग के सार्थवाहक होते है और व्यक्तिगत निष्ठा के कारण ही समाज मे वे पथ-प्रदर्शक बनते हे। माखनलालजी इस बात को निर्भीकता से स्वीकार कर सके, यह स्तुत्य है।

'प्रेमचन्द चले गये' शीर्षक निबन्ध भाषा-शैली की दृष्टि से तो एक अमूल्य रचना है ही, साहित्य-समीक्षक की प्रेमचन्दजी के प्रति बरती गई उदासीनता के लिए कहे गये वाक्यो के कारण भी विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करता है। माखनलालजी के शब्दो मे—"प्रेमचन्द ने जो किया, इतना अधिक किया कि वह अपने युग की जनता के लेखक और कवियो की भी प्रतिभा और आकलन की वाचा फोडने के लिए बहुत काफी था। लेखन मे जितने उपकरण उन्होने जमाये सब सामाजिक आदर्शो को लेकर। उन्होने धनिक और निरकुश उपकरण के रूप मे व्यक्तिवाद को यदि बलवान नही बनने दिया तो गरीबो के व्यक्तिवाद की हिन्दी साहित्य मे अवश्य नीव डाली। यदि उनकी रचना यूरोप मे प्रकाशित होती तो सिद्धान्तो के सघर्ष की एक ज्वाला जगाती जो प्रेमचन्द को अपने समकालीन लेखको से ऊँची से ऊँची सतह पर ले जाती, किन्तु दुख यही है कि हिन्दी ससार मे प्रेमचन्द के चिन्तन का आकलन प्रेमचन्द की चोरियाँ और कमजोरियाँ ढूढने के प्रदर्शन तक ही जा पाया।" यहाँ भी माखनलालजी गरीबो के व्यक्तिवाद की बात करते है, किन्तु सामाजिक आदर्शो पर दृढता से सृजनरत प्रेमचन्द की समाज-सापेक्ष दृष्टि की अवहेलना उन्हे असहनीय है। समीक्षको की इस उपेक्षा पर वह एक जगह आगे लिखते है, "सच्चा कलाकार मरकर भी नही मरता।"

सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य, व्यक्तित्व तथा उनकी जीवन दृष्टि के सम्बन्ध मे माखनलालजी ने सटीक व्याख्या प्रस्तुत की है। निश्चय ही उनके एक-एक शब्द का महत्त्व हे और वे सब शब्द एक ऐसा रेखाचित्र प्रस्तुत करते है कि यदि शीर्षक न भी दिया जाता, तो भी साहित्यिक खोज निकालता कि यह शब्दचित्र मात्र पतजी का ही हो सकता है। पन्तजी माखनलालजी से छोटे है और वह स्नेह भी इस कृति मे परिलक्षित होता है। निबन्ध की पहली पक्ति इस प्रकार है, "वह तो पक्षी है उसकी तान मे एक नैसर्गिक विकास है।"

माखनलालजी द्विवेदीयुगीन लेखको के भी सहयोगी रहे है। 'मै आगे का जयजयकार' शीर्षक निबन्ध मे द्विवेदीयुगीन लेखको के साथ मैथिलीशरणजी की खडीबोली काव्य के लिए की गई अनवरत साधना का दिग्दर्शन कराया गया है। स्वय चतुर्वेदीजी स्वीकार करते है - अपना क्षुद्र तुकबन्दियो का जो भी मोह मुझमे विद्यमान था, उसे खडीबोली की ओर मोड़ने का सम्पूर्ण श्रेय श्री मैथिली-

शरणजी गुप्त को है।" इसके पहले चतुर्वेदीजी इसी निबन्ध मे बता चुके है कि, "उस समय मै तुकबन्दियाँ लिखने तो लगा था, किन्तु वातावरण की रुचि के अनुकूल ब्रजभाषा मे ही लिखता था।" उस समय ब्रजभाषा मे तुकबन्दियाँ लिखने वाले माखनलाल विभिन्न राजनीतिक कार्यकलापो मे सक्रिय रहने के साथ-साथ भी अनवरत साहित्य-सृजन करते रहे और काव्य के विलक्षण और अप्रितम प्रयोग उन्होने अपनी रचनाओ मे किये।

प्रसाद पर लिखे गये सस्मरणात्मक निबन्ध मे जहाँ प्रसाद के काव्य तथा उनकी गद्य कृतियो पर माखनलालजी के युक्तियुक्त विचार मिलते है वही यह भी ज्ञात होना है कि हिन्दी की छायावादी कविता को प्रसाद जहाँ काशी मे प्रतिष्ठापित कर रहे थे, वही माखनलाल महाकौशल मे बैठे उस कविता का एकान्त मनन तथा सृजन कर रहे थे। आपने लिखा है—"इस तरह की रचनाओ को सबसे पहले स्वर्गीय श्री गणेशशकर विद्यार्थी ने, 'प्रताप' मे प्रकाशित किया, यद्यपि सर्वसाधारण मे इस धारा के फैलने की उन्हे आशा न थी। उन्होने मुझसे कहा भी था कि ऐसी पक्तियो को लिखकर आप अकेले पड जाएँगे। मुझे यह मालूम नही था कि इस दिशा मे श्री जयशकर प्रसाद कुछ लिख रहे है बहुत कुछ कर रहे है। मुझे उनकी रचनाओ की ओर उन्मुख होने का बहुत विलम्ब से अवसर मिला।" इससे ज्ञात होता है कि छायावाद के ये दोनो सिरमौर कवि काव्य-इतिहास की विशिष्ट उपलब्धि हिन्दी ससार को एक ही समय विभिन्न स्थानो मे बैठे हुए प्रदान कर रहे थे।

जहाँ प्रसाद, पन्त, सुभद्राकुमारी, प्रेमचन्द की स्मृति मे सराबोर माखनलाल जी अपने निबन्धो मे तत्कालीन समाज तथा साहित्यिक एव राजनैतिक जीवन का चित्रण करते चलते है, वही दूसरी ओर महात्मा गाधी, मोतीलाल नेहरू, तिलक और पुरुषोत्तमदासटण्डन की स्मृति मे अभिभूत वह विभिन्न समसामयिक समस्याओ पर भी अपने विचार प्रकट करते है। टण्डनजी को हिन्दी भक्त कहकर अन्य भाषाओ के प्रति उनके सगादर की तनिक अवहेलना करनेवालो के लिए उन्होने कहा है—"लोग अकसर यह कहते सुने जाते है कि श्रद्धेय टण्डन जी केवल हिन्दी के बहुत बडे भक्त है। किन्तु टण्डनजी ने एक बार मुझसे कहा था और इस आशय के उन्होने जहा-तहा भाषण भी दिए है कि 'यदि हिन्दी भारतीय स्वतन्त्रता के आडे आयेगी तो मै स्वय उसका गला घोट दूगा।" द्रष्टव्य है, यह निबन्ध टण्डनजी की मृत्यु से लगभग डेढ वर्ष पूर्व लिखा गया था।

इन निबन्धो मे भारत की महान विभूतियो का महज गुणगान ही नही, माखनलालजी के उनके साथ बिताये क्षणो तथा उनके नैकट्य से उत्पन्न सहज आतरिक भावनाओ का चित्राकन भी है। चतुर्वेदीजी की शिल्पगत विशिष्टता ने

निबन्धो को साहित्य की अमूल्य धरोहर बना दिया है।

इन साहित्य, राजनीति तथा पत्रकारिता क्षेत्र के अमिट हस्ताक्षरो की स्मृति हृदय को एक श्रद्धा से विभोर कर देती है और 'समय के पाँव' पर अनायास झुक जाने को मन ललक उठता है।

चिन्तक की लाचारी

◇ ◇

डॉ० महेन्द्र भटनागर

श्रीयुत माखनलाल चतुर्वेदी युग-निर्माता कवि ही नही, उनके व्यक्तित्व के अन्य पहलू भी है यद्यपि उनका कवि सर्वाधिक सशक्त व सफल है। उनके अन्य स्वरूपो पर उनका कवि पूर्ण रूप से छाया हुआ है। काव्य के अतिरिक्त अन्य विधाओ मे निर्मित उनके रचनात्मक साहित्य पर कवित्व अर्थात् भावात्मकता का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। वे पत्रकार है, विचारक है, भाषणकर्ता है, निबन्धकार है, नाटककार है। हिन्दी गद्य मे अभिनव शैली के जनक के रूप मे उनका महत्त्व अक्षुण्ण है। यदि किसी कवि की श्रेष्ठता का मापक उसके द्वारा लिखित गद्य है, तो यह कथन माखनलाल चतुर्वेदीजी पर बडा सही उतरता है। हिन्दी गद्य के महान् निर्माताओ मे उनका नाम अमर है। उन्होने हिन्दी गद्य को समृद्ध ही नही किया है, उसे विशिष्ट शैली भी दी है। विचार-प्रकाशन की उनकी भगिमा नितान्त मौलिक, अत्यधिक रोचक, आकर्षक, अलकृत एव प्रभावी है।

'चिन्तक की लाचारी' उनके प्रमुख भाषणो का महत्त्वपूर्ण सकलन है। ये भाषण समय-समय पर विशिष्ट अवसरो पर दिये गये थे। इन भाषणो के समय भिन्न-भिन्न है, तथा वे भिन्न स्वभाव व स्तर के जन-जीवन के सम्मुख उपस्थित किये गये थे। स्वय वक्ता के शब्दो मे—"पहले तो कभी-कभी कुछ भाषण ऐसे स्थानो पर भी दिये गये है जहाँ केवल शालाओ के विद्यार्थी अथवा भोले-भाले देशवासी रहे है, जहॉ विचारो और चिन्तन का विश्लेषण किसी अग्रेजी को लैटिन बना देने जैसी भूल होती है क्योकि जो स्तर प्रत्यक्ष था उसे भूलकर खयालो पर चढ जाने का मर्कटत्व कुछ शोभता नही था, सभव भी नही था। साथ ही परि-स्थितियो पर बोली हुई ये पक्तिया जाने किस समय के लिए थी और आज उनका कुछ उपयोग भी है, कौन जाने ?" (भूमिका, पृ०२)। सकलन मे चौदह भाषण सकलित है, यथा 'सूझो का काटोवाला पथ' (बम्बई हिन्दी विद्यापीठ, दीक्षान्त

'रचना शीर्षक ढूढती है' (ओरिएण्टल कान्फ्रेंस, पटना १९४८), 'विजयी होवे यह भाषा—यह राज' (मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, गोदिया अधिवेशन, १९५२), 'साहित्य और साहित्यिक' (हिन्दी साहित्य समिति, मुरादाबाद, १९४३), 'गोस्वामी तुलसीदास' (होल्कर महाविद्यालय, इन्दौर १९३८), 'पत्रकार सघर्ष और सभावनाएँ' (द्वितीय पत्रकार परिषद्, भरतपुर, १९२७), 'साहित्य के चिन्तक की लाचारी' (आकाशवाणी, नागपुर), 'समय के सिर पर तेरा वन्दन अभिनन्दन' (सुहृद् सघ, मुजफ्फरपुर, १९४४) 'हिन्दी प्रचार, उसकी परम्परा, जोखिम और गतिविधि' (राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन, जलगाव, १९४१), 'हिन्दी का पत्रकार' (अट्ठाईसवे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अन्तर्गत अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण १९३९), 'इकसठवी वर्षगाठ पर' (वर्षगाठ समारोह, अकोला, १९४८), 'कविकुल-गुरु कालिदास' (कालिदास समारोह, खडवा, १९५८) और 'अभिभाषण' (इकत्तीसवे अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन का अध्यक्षीय भाषण, १९४३)।

इस प्रकार 'चिन्तक की लाचारी' सन् १९२७ से सन् १९५८ तक अर्थात् बत्तीस वर्ष की अवधि का अन्तराल लिए हुए है। यह काल आधुनिक भारत का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काल है। राजनीतिक एव सामाजिक, सास्कृतिक, साहित्यिक क्षेत्रो मे इस अवधि मे देश मे युगान्तरकारी परिवर्तन हुए है। यह काल दूरगामी प्रभाव उत्पन्न करने वाले अनेक आन्दोलनो को अपने मे समेटे हुए है। अनेक समाज-सुधारको, राजनीतिज्ञो व विचारको का आविर्भाव इसी काल मे भारत मे हुआ। राजनीतिक स्वाधीनता का संग्राम तथा सास्कृतिक क्षेत्र मे वैचारिक सघर्ष इस युग के प्रबुद्ध जनजीवन के अग रहे है। श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने अपने व्यक्तित्व के अनेक पहलुओ से इस काल का बहुमुखी नेतृत्व किया है। राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने और हिन्दी साहित्य को दिशा देने मे उनका योगदान आज भली-भाँति आका जा सकता है। हिन्दी भारतीय स्वाधीनता सघर्ष को मुखरित करने तथा उसे शक्ति पहुँचाने मे अन्य भारतीय भाषाओ की तुलना मे सबसे आगे रही है। कहना न होगा, यह सब वह श्री माखनलाल चतुर्वेदी जैसे सरस्वती-पुत्रो की कर्मठता व प्रतिभा के बल पर ही सम्पन्न कर सकी। माखनलालजी हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा के अग्रगण्य कवियो मे से है। राष्ट्रीय स्वाधीनता व एकता की भावना उनके राष्ट्रीय काव्य के माध्यम से भी प्रसारित हुई, पुष्ट हुई, अनेक बलिपथियो के वक्तव्य व सस्मरण इसके प्रमाण है। भारतीय जन-मानस को उत्तेजित व प्रेरित करने मे माखनलालजी सिद्धहस्त है। वस्तुत उन्होने हिन्दी समझने वाले विशाल भारतीय जन समुदाय के हृदयलोक पर शासन किया है। यह सफलता अद्भुत है, चमत्कारी है, वरेण्य है। वाणी और कलम के ऐसे धनी ससार मे अत्यल्प

धनी है। स्पष्ट ही उनकी वाणी का प्रभाव अचूक रहा है। 'चिन्तक की लाचारी' मे वक्ता माखनलालजी वाणी के जादूगर के रूप मे उपस्थित है। भाषा जैसे उनकी अनुचरी है, भावावेग के हाथ उसके रग गहरे-हल्के होते चलते है। परिष्कृत भाषा मे ओजस्वी अभिव्यजन, गहन गभीर विचार-प्रकाशन, सरल-तरल-मधुर अनुरोध-निवेदन, सभी सहज अवतरित है।

विषय की दृष्टि से 'चिन्तक की लाचारी' पक्षो को धारण किये हुए है। अपने समय के अनेक ज्वलन्त साहित्यिक प्रश्नो को वक्ता लेखक ने इन भाषणों मे उठाया है। युगधर्म के प्रति जागरूकता मे माखनलालजी अपना सानी नही रखते। युगधर्म की पृष्ठभूमि पर वे साहित्यिक प्रश्नो का समाधान खोजते है। यही कारण है कि वे अपने युग को प्रभावित कर नई पीढी का मार्गदर्शन कर सके। उनका प्रगतिशील चिन्तक युगधर्म का पालन तो करता ही है, अपनी प्राणवत्ता और कलात्मक अभिधान के कारण चिरजीवी भी हो उठा है। सहृदय व्यक्ति में वैज्ञानिक दृष्टि का होना उसकी स्थापनाओ, मान्यताओ को अत्यधिक प्रभावी ढग से व्यक्त करने मे सहायक होता है। उसके विचार भविष्य मे भी आलोक-स्तम्भ का कार्य करते है। वे सार्वकालिक व सर्वदेशीय होते है। 'चिन्तक की लाचारी' मे सकलित भाषणो के शीर्षक देखने पर उनकी विषय-सामग्री का बोध होता है। इन भाषणो मे माखनलालजी ने अधिकतर साहित्य, भाषा, समाचार-पत्र, साहित्यिक सस्थाओ आदि पर अपने विचार व्यक्त किये है।

साहित्य के सबध मे माखनलालजी की धारणा बडी उदात्त है। उसे उन्होने व्यापक दृष्टिकोण से देखा है। विषय-सकीर्णता उन्हे प्रिय नही। व्यक्ति और समाज के अभ्युत्थान का साधन है साहित्य। एतदर्थ, साहित्यकार का दायित्व भी उतना ही महान् है। उनका मत है—"विश्व के निर्माण मे साहित्यिक का बहुत बडा हिस्सा है।" साहित्यिक मर्यादा एव गरिमा से हीन रचनाएँ अल्पजीवी होती है। साहित्यकार को सस्कृति का स्पष्ट ज्ञान अपेक्षित है। प्रत्येक रचना का मूल्याकन उसकी विषय-सामग्री पर अवलम्बित है। कथ्य की परख से ही कृति की श्रेष्ठता व शाश्वतता घोषित की जा सकती है। वे कहते है—'यदि हमारे साहित्य मे भी हमारी सास्कृतिक धारणाएँ स्पष्ट नही है तो वे बारीक-खयाली के कारण थोडी देर सिर भले ही डुलवा लें, किन्तु वे मानव-मन पर अधिक दिनो तक नही ठहर सकती। अत निर्णायक तत्त्व वस्तु है। विचारो-भावो को ही प्राथमिकता देनी है। स्पष्ट स्थापनाएँ ही चिन्तन को सही दिशा दे सकेगी। वे निर्भ्रान्त रूप मे अपनी धारणा स्थापित करते है—"साहित्यिक, इतिहास और कर्तव्य का सम्मिलित रचनाकार है · वह यथार्थ की कमी को कल्पना से पूरी करने वाला मार्गदर्शक है · एक और युग का चरित्र-निर्माण कर वह अपनी रचनाओ द्वारा वर्तमान का दिशा-दर्शन भी करता चलता है।"

साहित्यकार के लिए मौलिकता अनिवार्य है। माखनलालजी ने सूझ अथवा मौलिकता के महत्त्व को बडे सशक्त रूप मे प्रस्तुत किया है। सूझ के अभाव में साहित्यकार को रसोइये के स्तर पर ले आते है। ऐसे तथाकथित साहित्यकारो के प्रति व्यग्य करते हुए वे कहते है—'जिन्हे साहित्य-निर्माण की नही, केवल साहित्य परोसने की आदत है, वे महापुरुष हो सकते है, किन्तु साहित्यिक नही दूसरे की वस्तु को कलापूर्वक परोसने के रसोइयेपन को भी आप अपनी मौलिकता न कहे हमारी रचना हमारी अपनी हो। रसोइये की तरह हम किसी की रचना परोसने का पेशा न करते हो और यदि करते हो तो उसे पेशे की ईमानदारी से स्वीकार करते हो। साथ ही कोई व्यापार या बैक तब चलता है जब उसके सचालक अपनी भी एक धनराशि उसमे मिलावे। इसी तरह लेखक की सिद्धि भी तब महान् होती है जबकि अध्ययन मे से रस खीचते हुए भी उसका अपना कुछ पीढी के देने योग्य हो।" पर यह मौलिकता परम्परा से कटी हुई नही है यद्यपि नवीनता की जीवन्त शक्ति व वेग अप्रतिहत है। "परम्परा के विशाल वट-वृक्ष की अपेक्षा सूझ के दो नन्हे-नन्हे पखो पर उसके श्रद्धा के अस्तित्व की उडान सुरक्षित है। जिस नवीनता से हम घबराते है, उस नवीनता की प्रेरणा तो हमे अप्राप्य भविष्य ने नही, प्राप्त इतिहास ने ही दी है। मन्ददृष्टि रूढि को सिर पर लादकर चलती है, और तीव्र दृष्टि आज की अचानकता को कल का आश्चर्य बनाती है और परसो के अभ्यास का रूप देकर आये दिन के आविष्कारो का निर्माण कर युग के वैभव के रूप मे उन्हे प्रस्तुत कर देती है।" फिर भी "अनेक रचनाओ से प्रेरित होकर ही विश्व को अपनी मौलिक उसासे, अपनी मौलिक वन्दनाए देनी होती है।" सूझ माना कि ईश्वर प्रदत्त वस्तु है, तथापि अभ्यास की भी कोई कम जरूरत नही। "प्रतिभा और पुरुषार्थ दोनो मानो एक दूसरे की अमर आवश्यकताएँ हैं, सूझ कला का बल है, माध्यम और अभ्यास उसके पख है जिनके बिना वह उड नही सकती। स्वाध्याय और श्रम जीवन की तरह ही कला के अस्तित्व को चिरतन रखने के आकर्षण बिन्दु है।"

माखनलालजी की एक दुर्बलता है, जो उनके इन भाषणो मे जगह-जगह व्यक्त हुई है और वह है उनकी शृगार रस के प्रति अनुदारता। इसका कारण युगीन प्रभाव हो सकता है। तत्कालीन समाज आदर्शवादी भावनाओ से अनुप्राणित था। नैतिक नियमो को कट्टरता से पालन करने का उद्घोष हो रहा था। ऐसी स्थिति मे नारी और शृगार के प्रति समाजचेता कवि उन्मुख नही हो सकते थे। महावीरप्रसाद द्विवेदी-युगीन ही नही, परवर्ती छायावादी कवियो मे भी यह भावना द्रष्टव्य है। द्विवेदी युग मे यदि नारी-प्रणय और शृगार का बहिष्कार किया गया तो छायावादी युग मे नारी के प्रति सकोच प्रदर्शित हुआ।

सकी। माखनलालजी कुछ तो गाधीवादी प्रभाव के कारण तथा कुछ राष्ट्रीय काव्य-धारा के पुरस्कर्त्ता होने के कारण शृगार-वर्णन से बचते रहे तथा ऐसे साहित्य को समाज-कल्याण के लिए घातक समझते रहे। ऐसी रचनाओ को उन्होने 'रसीले साहित्य' की सज्ञा दी है। वास्तव मे 'रसीले साहित्य'[१] से उनका अभिप्राय अश्लील साहित्य से नही है, प्रत्युत घोर शृ गारिक भावनाओ से है। नारी को वे 'केवल चढती उम्र की विलासिनी' बनाए जाने के पक्ष मे नही। वे नही चाहते कि इस प्रकार साहित्यकार नारी के साथ खिलवाड करे। ऐसे साहित्य के प्रशसको की मनोभावनाओ को उन्होने 'भिनकने वाली मक्खियाँ' कहा है। रसीला साहित्य उनके निकट 'जहर की खैरात' है, खतरे का व्यापार है। स्थूल शारीरिक प्रेम व शृ गार की भावनाओ से आगाह करते हुए वे लिखते है—"केवल जवानी के भिनकते बेइख्तियार क्षणो को लिखना ही उचित न होगा।" प्रणय-व्यापार चित्रित करने वालो को बडे तीखे अन्दाज मे वे कहते है, "क्या नारी से केवल अपरिपक्व तरुण आवेगो की प्रेरणा मिलती है? हम अपनी दुर्गन्धित अतृप्ति का विश्व की जननी पर यह आरोप क्यो करते है कि वह प्रियतम के रग मे केवल विषय-सुख ढूँढती है?" एक अन्य स्थल पर आक्रोश इन शब्दो मे फूट पडा है, "स्त्री को उसने सिर्फ रमणी रूप मे ही देखना आरम्भ किया। वह भूल ही गया कि स्त्री माँ भी है, पुत्री भी है, बहन भी है। ऐसे ही साहित्य के विषय मे दुनिया सोचने को बाध्य होती है कि वह डालने लायक पागल कुत्ता तो नही है।" स्पष्ट है, माखनलालजी स्थूल प्रणय-व्यापारो के चित्रण को सामाजिक स्वास्थ्य के लिए घातक समझते है। ऐसा साहित्य उनके लिए यौन साहित्य है। हिन्दी कवियो के रुग्ण शृ गार के वर्णन को पढकर उनकी सौन्दर्य-भावना विद्रोह कर उठती है। उनका कथन है, "यौन-काव्य लिखने मे हम तो नवाबो को मात करने लगे।" ऐसी वाणी को उन्होने 'नवरगिणी वाणी वेश्या' कहा है। इसीलिए "यह हमारा साहित्य सृजन है जो हमारी तरलाई की ढालू जमीन की ओर पतनोन्मुख ढुलकते जाना सिद्ध कर रहा है।" वे नर-नारी के स्थूल शारीरिक प्रेम को प्रेम नही मानते। वे लिखते है, "विलास का रक्तकर वसूल करनेवाली भावना को हम साहित्यिको ने प्रेम का नाम दे रखा है।" साहित्यकार का कर्म वे इस स्तर पर स्वीकार नही करते। इसमे सदेह नही है, शृ गार-वर्णन मे कवियो-लेखको को विशेष रूप से सतर्क रहने की जरूरत है। जरा-सी असावधानी अथवा भावातिरेक से अभिव्यक्ति की मर्यादा भग हो सकती है। अनेक कवियो ने प्रेम व शृ गार के नाम पर अथवा अनेक उपन्यासकारो ने मनोविज्ञान के नाम पर नारी के घोर

---

१. रसीले साहित्य से चतुर्वेदीजी का तात्पर्य विकृत शृ गार से ही है। अन्यथा स्वय चतुर्वेदीज ने भी शृ गार के निर्मल किन्तु प्रगाढ क्षणो को गाया है।—सम्पादक

अश्लील चित्र अकित किए है। सभवत माखनलालजी ऐसी ही रचनाओ से क्षुब्ध हैं। वे साहित्यकार के सम्बन्ध मे बडी उदात्त भावना रखते है। उनकी स्पष्ट घोषणा है कि वह "उत्थान का सदेशवाहक है, पतन का पृष्ठपोषक नही।" तभी वे लिखते है—"साहित्य दिमागी ऐयाशी नही है, न वह हमारे पतन का सुन्दर शब्दो में किया गया गायन ही है· साहित्य हमारे जीवन की समस्या है। उसमे हमारा सम्पूर्ण जीवन प्रतिबिम्बत होता है। वह जीवन के मीठे क्षणो का सग्रह मात्र नही है।" उन्होने बडे सतुलित ढग से एक स्थल पर लिखा है, "मैं मीठे विचारो के खिलाफ नही हूँ। मीठे विचार देना भी साहित्य का कर्तव्य है। लेकिन मीठे विचार देना ही नही हमारे साहित्यिक मिठास को मर्यादा देते हुए साहित्य निर्माण करे। विकारो का मक्खियो से भिनभिनाता कुम्भीपाक नरक न बनावे।" तभी कालिदास की प्रशसा करते हुए वे लिखते है, "किन्तु शृगार रस का इतना मस्त गायक सस्कृति और शील के किनारो के बीच स्नेह की धारा को बहाकर ले जाता है, यह देखकर अचम्भा हुए बिना नही रहता।" पर, भडकीली भावनाओ को वे किंचित भी सहन नही करते। ऐसे साहित्य को नष्ट कर देना ही उनकी दृष्टि मे उचित है, क्योकि ऐसा साहित्य समाज को सर्वनाश की ओर सहज ही ले जा सकता है।

श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने साहित्य को समाज-सापेक्ष स्वीकार किया है। उन्होने वैयक्तिकता को महत्त्व नही दिया। प्राचीन साहित्य के प्रति उनके क्रान्तिकारी विचारो का समाहार इस प्रकार है, "प्राचीन साहित्य, हृदय का सतोष बनकर भले रह ले, वह लोक-जीवन की ग्राम समस्याओ को नही सुलझा सकता। स्पष्ट है, साहित्य लोकजीवन से सम्पृक्त है। उसे युगीन समस्याओ के समाधान भी प्रस्तुत करने है तथा लोक-रुचि का ध्यान रखना है। काल की पृष्ठ-भूमि चुनने मे साहित्यकार को अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए। सामयिकता की अवहेलना अक्षम्य है। युग का प्रतिबिम्ब कलाओ पर अकित होता ही है। "आज का साहित्यिक जब तक आज की समस्याएँ नही लिखेगा तब तक समाज उसके साथ नही रह सकता।" पर, साथ ही, यह भी आवश्यक है कि "वह क्षणिक लहरो और परिस्थितियों से ऊपर उठकर बोले।" सामयिकता के प्रति कर्तव्य-निर्वाह सतही साहित्य-लेखन का पर्याय नही है। न तेजस्विता ही साहित्य मे अनगढ कला का दूसरा नाम है। "उसमे राष्ट्र की धमनियो को छूने वाली ज्योति, प्रेम की उन्मादकारिणी लहर और चरित्र की तपोपूर्ण आत्मा होनी चाहिए।" ऐसा सामयिक साहित्य ही शाश्वत होता है, अन्यथा वह समाचारो से पहले ही मर जाता है। साहित्यिक कृतियो मे भाव, विचार, कल्पना एव कला की निहिति अनिवार्य है। इन तत्त्वो की उपेक्षा करके कोई भी सामयिक विषय से सम्बद्ध कृति

विवरणो और साहित्यिक कृतियो के विन्यास मे यही अन्तर है। इसलिए जब माखनलालजी यह लिखते है, "यदि समाज की उथल-पुथल को व्यक्त न कर सकने वाली ध्वनि हमारी वाणी मे आई, तो हम यह जाने रहे कि उसकी उम्र अधिक नही है।" साहित्यकार और साहित्यिक कृति की सामाजिकता का ही समर्थन है। यही नही, वे तेरहवे अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षीय अभिभाषणमे साहित्य के प्रचार-प्रसार के सबध मे विधिवत् एक विस्तृत योजना का प्रारूप भी प्रस्तुत करते है। साहित्य और समाज अन्योन्याश्रय है। वे अटूट है। ऐसे स्थलो पर श्री माखनलाल चतुर्वेजी का व्यक्तित्व एक साहित्य नेता के रूप मे प्रस्फुटित हुआ है।

'चिन्तक की लाचारी' मे सकलित अनेक भाषणो मे भाषा पर भी विचार किया गया है। राष्ट्रभाषा के स्वरूप पर माखनलालजी के विचार आज विशेष महत्त्व के हो उठे है, भले ही वे वर्तमान जटिल सदर्भो मे अभिव्यक्त न किए गए हो। उनकी सार्थकता आज भी है। उनके शब्दो मे "हिन्दी का दायरा इसलिए बढा कि वह राष्ट्र की वाणी होने की सरलता रखती है।" हिन्दी चिरकाल से भारत की राष्ट्रभाषा रही है, यद्यपि राजभाषा का पद उसे स्वातन्त्र्योत्तर युग मे ही मिला। हिन्दी को देशव्यापी बनाने मे सतो का योगदान प्रमुख है। सतो ने हिन्दी को सम्पूर्ण देश मे फैलाया। श्री माखन-लाल चतुर्वेदी के शब्दो मे, "भारत मे एक जाति रही है, जो भाषा को तीर्थ-यात्रियो के द्वारा दक्षिण से उत्तर और उत्तर से दक्षिण तक पहुँचाती रही है। उन्हे सत कहते थे। उस समय भाषा का निर्माण, भाषा का सगोपन, भाषा का लेन-देन उन सतो के द्वारा होता रहता था, उन्ही दिनो हिन्दी का निर्माण हुआ है। इसके बचपन के दिन सतो की जीभ की गोद मे दुलार से बीते है। सतो की कलम पर खेल कर इसने तारुण्य पाया है, और सतो की अखिल भारतीय यात्राओ से अखड भारत की वाणी बनने का इसे अवसर प्राप्त हुआ है।" व्यापारियो और शासको ने भी हिन्दी के प्रसार मे योग दिया, इसमे सदेह नही। पर, हिन्दी को जो गौरव और महत्त्व सतो द्वारा प्राप्त हुआ वह अद्वितीय है। हिन्दी इसी कारण सस्कृत के समान पूत बन सकी। हिन्दी और अन्य प्रान्तीय भाषाओ के परस्पर सम्बन्धो के बारे मे श्री माखनलाल चतुर्वेदी के विचार समन्वयवादी, प्रगतिशील एव उदार है। वे 'भाषा का गृह-कलह' कदापि पसन्द नही करते। उनके विचार नितान्त स्पष्ट है, जो सभी को ग्राह्य हो सकते है।

"यदि हमारे देश के भिन्न-भिन्न प्रान्त समूचे महान देश के आवश्यक घटक है तो हमारे प्रान्तो की भिन्न-भिन्न भाषाएँ हमारी राष्ट्रभाषा की महान घटक क्यो न होगी और उनका बल, अस्तित्व और गौरव परस्परावलम्बी क्यो

"प्रान्तीय भाषाओ मे हिन्दी भाषा की तरह ही और कुछ मे तो हिन्दी भाषा से कही अधिक कालगुरता विद्यमान है। हिन्दी भाषा तो राष्ट्रभाषा इसलिए बन सकी है कि राष्ट्र के हृदयो को एक हृदय मे जोडे रखने के लिए जब एक भारतीय भाषा की आवश्यकता हुई तब हिन्दी ही सबसे अधिक देश के लोगो की जनसख्या में समझी जाने योग्य भाषा सिद्ध हुई।"

यह कल्पना उचित नही है कि प्रान्तीय भाषाएँ राज है, और राष्ट्रभाषा साम्राज्य है। प्रान्तीय भाषाओ की ज्ञानहीनता, हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद प्रदान नही किए हुए है। उर्दू, सस्कृत और अग्रेजी भाषाओ की स्थिति एव उपादेयता के सम्बन्ध मे भी यत्र-तत्र प्रसगानुसार विच र व्यक्त किए है, जो व्यावहारिकता पर आश्रित है। उर्दू और सस्कृत शब्दो के बहिष्कार करनेवालो से वे कहते है, "यदि विचारो को बोलनेवालो के पास पहुँचाना है, तो उत्तर भारत मे घूमती राष्ट्रवाणी से उर्दू शब्दो का तिरस्कार न हो सकेगा, और दक्षिण भारत मे प्रवेश करती राष्ट्रवाणी से सस्कृत शब्दो को देश-निकाला नही दिया जा सकता।" निश्चय ही माखनलालजी किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त नही है। वास्तविकता को ध्यान मे रखकर ही उनका चितन आकार लेता है। इसी कारण बुद्धि और तर्क को बडी सुगमता से प्रभावित करता है। इसमे न भावुकता है न बौद्धिक एकागिता, भाषा विज्ञान के अनुसार सस्कृत यद्यपि मृत भाषा है, तथापि उसका उपयोग भारतीय भाषाओ के लिए अपरिहार्य है। इस तथ्य को बडे सतुलित ढग से उन्होने प्रस्तुत किया है, जो दोनो प्रकार के अतिवादियो का मार्गदर्शन कर रहा है, "इस हिन्दी भाषा मे हम जबरदस्ती सस्कृत शब्द न ठूँसे क्योकि अपने जिन गुणो के कारण सस्कृत स्वय मरी उन्ही को अपनी भाषा मे लाकर उसे हम जिन्दा नही रख सकेंगे। साथ ही हमे यह भी न भूलना चाहिए कि सस्कृत की धातुओ के आधार पर ही हिन्दुस्तान की नौ भाषाए बनी है।" इसी प्रकार अग्रेजी के प्रति उनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय स्वाभिमान पर आधारित होते हुए भी अधविरोध का नही है। वे लिखते है, "हमारी राष्ट्रभाषा की दुश्मन उर्दू नही, 'तमिल नही, मराठी नही, गुजराती नही। हमारी दुश्मन अग्रेजी है। इसलिए नही कि वह अग्रेजो की भाषा है, इसलिए नही कि वह ज्ञान से खाली है, किन्तु वह इसलिए कि उसने हमारे राष्ट्र की वाणियो के आसन को खुद हथियाकर, राष्ट्र को अपने ही घर मे, अपनी दृष्टि मे निरुपयोगी बना दिया है।" समन्वय, सम्मिश्रण, सहयोग आदि की उदार भावना उनके भाषा विचारो मे द्रष्टव्य है। यह व्यापक दृष्टिकोण देश की आवश्यकता एव उसके कल्याण के अनुरूप है। वह हर प्रकार से युक्तियुक्त भी है। और निश्चय ही, हम देख रहे है, हिन्दी मे अनेक प्रान्तीय तथा विदेशी भाषाओ के शब्द निरन्तर खपते जा रहे है। हिन्दी उन्हे अपनी प्रकृति के